Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्णसंख्या ६१ Reg. No. A 708

भाग ११ मेष १९७७ । अप्रैल १९२० संख्या १

Vol XI. No 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ११ | मेष, संवत् १९७७। अप्रैल, सन् १९२०। | संख्या १

अपनी चर्चा
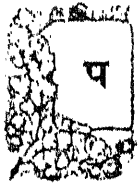
परमात्माकी कृपासे आज विज्ञान अपने जीवनके पहले पांच वर्ष पूरे कर, छठे वर्षमें प्रवेश कर रहा है। जिनके परिश्रम और शुभ कामनाओंसे विज्ञानका जन्म हुआ था वह दोनों सज्जन—महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट० और प्रोफेसर रामदास गौड़, एम० ए०,—इस अरसेमें प्रयागको छोड़ काशीवास करने चले गये हैं। रसायनाचार्य रामदास गौड़ने विज्ञानकी जो सेवा की है, जो विज्ञानको उनसे सहायता मिलती रही है, उसका हाल पूरी तरह विज्ञानके कार्यकर्ता ही जान सकते हैं। रसाय० गौड़ने इस समयमें विज्ञानके साथ वही उपकार किया है जो माता अपने इकलौते बेटेके साथ करती है। एक बरस तक उन्होंने उसे अपूर्व आत्मत्याग और उदार उत्साहके साथ चलाया और उसके बाद जब जब उसने अपनी तुतलाती हुई भाषामें उनसे माखनमिश्री मांगी, उन्होंने बड़े प्रेमसे उसका मान रखा। डा० झाके पूर्ण ज्ञान और पक्व अनुभवसे विज्ञानको जो लाभ पहुँचता रहा है वह भी वर्णनातीत है।

खेद केवल इतना ही है कि जिस व्यक्तिके देश भाषा-भक्तिके भावोंसे और जिसके अदम्य उत्साहसे प्रेरित होकर विज्ञानपरिषद्के कार्यकर्ताओंका यह साहस हुआ था कि विज्ञानका प्रकाशन आरम्भ कर दें; जो व्यक्ति तन, मन, धनसे विज्ञानकी सहायता करनेको तैयार रहता था; जो भाषा द्वारा शिक्षा दिये जानेका कट्टर पक्षपाती था; जो विज्ञान प्रचारके महत्वको पूर्णतया जानता था, वह व्यक्ति आज विज्ञानको शैशवावस्था छोड़ बाल्यावस्थामें पदार्पण करते हुए देखनेको नहीं है। यदि भारतके सपूत स्वर्गीय माननीय डा० सुन्दरलाल, सी०,

आई० ई० आज जीवित होते तो उनके हर्षका पारावार न होता।

विज्ञानके शैशव-कालके प्रेमियोंको, विज्ञानके लेखकोंको, भी हम इस अवसरपर बधाई देते हैं कि उनकी उदार सहायता और सहानुभूतिसे विज्ञान इतने दिन सकुशल चलता रहा है। हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें भी लेखक महोदय इसी प्रकार सहायता देते रहेंगे और सहानुभूति बनाये रहेंगे।

अब तक विज्ञानने क्या किया है ?

स्वभावतः यह प्रश्न पैदा होता है कि विज्ञानने अभी तक कुछ किया है या नहीं और भविष्यमें उससे कुछ आशा कर सकते हैं या नहीं ?

भारतवर्षमें शिक्षाका प्रचार बढ़ता जा रहा है। यद्यपि अभी तक सरकारने शिक्षा प्रचारके उचित मार्गों और उदार नीतिका अवलम्बन नहीं किया है, तथापि इतना निश्चय है कि शिक्षाका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता जायगा। निश्शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देनेके लिये सरकारको अपनी पुरानी लीक बदलनी पड़ेगी और देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देनी पड़ेगी। ज्यों ज्यों शिक्षाका प्रचार बढ़ता जायगा मौलिक गवेषणा और अन्वेषणका काम अधिक परिमाणमें होने लगेगा। संसारके उन देशोंको ले लीजिये जिनकी आबादी केवल चार पांच करोड़ है। उनमें भी इतने शोध होते रहते हैं कि दर्जनों मासिक और साप्ताहिक पत्र केवल इसी उद्देश्यसे निकलते हैं कि उनका विस्तृत ब्यौरा छापते रहें। सोचिये कि जिस समय भारतमें शिक्षा प्रत्येक व्यक्तिको मिलने लगेगी, उस समय क्या इतना भी गवेषणात्मक काम न होगा कि एक क्या हज़ार विज्ञानोंकी आवश्यकता पड़े ?

विज्ञान उसी शुभ दिन और शुभ घड़ीकी प्रतीक्षा कर रहा है जब भारतमें गली गली और कूँचे कूँचेमें शोध होने लगेंगे और वह उनका वर्णन कर विज्ञान-वीरोंका उत्साह बढ़ायेगा और जीवन सफल करेगा। वर्तमान कालमें तो विज्ञानका उद्देश्य यही है कि वैज्ञानिक ज्ञानका प्रचार करे और भारतकी पुनर्जागृतिमें सहायक हो।

विज्ञानके गत पांच वर्षोंमें लगभग ३००० पृष्ठ अथवा साधारण पुस्तकोंके आकारके प्रायः ६००० पृष्ठ छप चुके हैं। यदि अब तक जो १० भाग निकल चुके हैं, उनके संग्रहको छोटा सा विश्वकोश कहें तो अनुचित न होगा। गत पांच वर्षोंमें विज्ञानके प्रायः सभी अंगों पर लेख निकल चुके हैं। रसायन शास्त्र, जीवविज्ञान (पशुशास्त्र और वनस्पति शास्त्र), ज्योतिष, बीजगणित, त्रिकोणमिति, बीज ज्यामिति, ज्यामिति, भूगर्भशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, प्रकाश, शब्द, चुम्बक, विद्युत्, औद्योगिकरसायन, सुवर्णकारी, पैमाइश, पशु-पालन, कृषी शास्त्र, होमियोपैथी, स्वास्थ्य-रक्षा, वैद्यक, जीवाणुशास्त्र, इत्यादि विषयोंपर अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इनमेंसे प्रायः निम्न लिखित विषयोंपर पूरी लेखमालाएँ निकल चुकी हैं और ६ पुस्तकाकार छप चुकी हैं:—

(१) चुम्बक (२) डा० बोसका संसारभ्रमण (३) पैमाइश (४) शिक्षितोंका स्वास्थ्य (५) सुवर्णकारी (६) भोजन विचार (७) अंकगणितकी शिक्षा (८) विद्युच्छास्त्र (९) त्रिकोणमिति (१०) बीजज्यामिति (११) मनोरञ्जक विज्ञान (१२) वैज्ञानिक कहानियां (कुल मिलाकर सात) (१३) वैज्ञानिक वेदान्त (१४) होमियोपैथी (१५) वैज्ञानिकोंकी जीवनी (१६) विकाशवाद (१७) बीज-परम्परा (१८) भुनगा पुराण (१९) खेतीके प्राण और उसकी रक्षा (२०) वनस्पतिशास्त्र (२१) औद्योगिकरसायन (२२) समाज-शास्त्र (२३) स्वास्थ्य-रक्षा (२४) इञ्जीनियरीके चमत्कार (२५) प्रकाश (२६) भौतिक शास्त्र (२७) रसायन शास्त्र। शेषमेंसे कोई भी लेखमाला प्रकाशित कर सकते हैं और वह प्रायः १५० पृष्ठ की अच्छी पुस्तकका आकार ग्रहण कर सकती है। इनके अतिरिक्त विविध वैज्ञानिक विषयोंपर

जिनको अल्पबुद्धिवाले मनुष्य भी समझ सकते हैं, अच्छा संग्रह निकल चुका है।

पांच वर्षमें इतना वैज्ञानिक साहित्य पैदा करना हमारी अल्पबुद्धिके अनुसार, संतोष-जनक काम है। वैज्ञानिक साहित्यका कितना विस्तार है और हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य कितना परिमित और थोड़ा है, इस बातको हम भली भांति जानते हैं। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि हिन्दीके कुछ सम्पादक, लेखक और अगुआ जो विज्ञान और विज्ञान परिषद्के कामको अत्यन्त हीन और तुच्छ समझकर उसका जहां तहां मौका पड़ने पर जिक्र खैर तर्क करना ना मुनासिब समझते रहे हैं, उससे उन्होंने अनजाने इस महत्त्वके कार्यमें कुछ रुकावटें ही डाली हैं। बरोदेके पुस्तकालयोंके सम्बन्धमें एक प्रदर्शिनी हुई थी। उसके सम्बन्धमें किसी सज्जनने मौडर्नरिव्यूमें एक लेख लिखा था, जिसमें प्रसंगवश यह लिख दिया था कि देशी-भाषाओंमें एक भी वैज्ञानिक पत्र नहीं है। सम्पादकने उसी अंशके नीचे एक टिप्पणी देकर यह लिखा कि हमें कमसे कम दो वैज्ञानिक पत्रोंके अस्तित्वका ज्ञान है, जिनमेंसे एक हिन्दीमें है और दूसरा बंगलामें। इधर कुछ हिन्दीके सम्पादकोंका नमूना देखियेः—

"हिन्दीमें अभी विज्ञानोंका नाम तक नहीं आया है। अतः...(एक पत्रिकाका नाम) इस दिशामें भी प्रयत्न करेगी और समय समयपर लेखोंद्वारा इनकी चर्चा करेगी।"

"हमारी भाषामें वैज्ञानिक पुस्तकोंका पूरा अभाव है"

बहुतसे अवतरण दिये जा सकते हैं, पर हम व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहते। किसी संस्थाके अस्तित्व को इस प्रकार भूल जाना, उस संस्थाके साथ घोर अन्याय करना है। सम्पादकोंका कर्तव्य है कि जनता तक सच्चा ज्ञान पहुँचावें। अपने पाठकोंको भ्रममें डालना या झूठी बातें बताना अधर्म है।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि संसार की उन्नतिशीला जातियोंका वैज्ञानिक साहित्य बहुत विस्तृत और हिन्दीका अत्यंत संकुचित है। हम अपने उन मित्रोंसे सहमत हैं जो यह कहते हैं कि हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी पूर्त्ति बहुत जल्दी होनी चाहिये। पर उपदेश देना आसान होता है और किसी कार्यका संचालन अत्यन्त कठिन। वैज्ञानिक विषयोंपर पुस्तकें लिखी जायँ तो किसके लिए? अधिकांश हिन्दी भाषा भाषी घोर अंधकारमें पड़े हुए हैं। उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है। जो थोड़ा बहुत पढ़ना जानते हैं उन्हें छबीली भठियारिन, जासूसी उपन्यास और हाथरसकी लावनियोंमें जो अपूर्व आनन्द आता है वह शुष्क वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें कहाँ आ सकता है। रहे अब कुछ शिक्षित मध्यस्थितिके लोग। उन्हें यदि पढ़नेका शौक़ भी पैदा होता है तो पौलिटिक्सकी ओर झुकते हैं। पौलिटिक्समें टांग अड़ाना सबके लिए आसान है, परन्तु अभाग्यवश सच्चे राजनीतिक सिद्धान्तोंका समझना विरले ही मनुष्यका काम है। राजनीति, इत्यादि विज्ञानकी शाखाओंका कौन अध्ययन करे? जो थोड़े बहुत विद्यार्थी कालिजोंमें भूलसे विज्ञान पढ़ने लगते हैं, वह उस घड़ीको बड़ी उत्सुकतासे देखा करते हैं, जब वह अपनी किताबोंको खैरबाद कह सकते हैं। वह अपना अमूल्य समय साधारण जानकारी बढ़ानेमें लगावें तो क्यों लगावें? जो कोई उनकी योग्यताका अन्दाज़ा लगायेगा वह उनके डिपलोमा (उपाधिपत्र) देखेगा; फिर वह हिन्दी चिन्दीके वैज्ञानिक ग्रन्थ पढ़कर क्यों समय नष्ट करें? इस लेखकको १२ बरससे कालिजके विद्यार्थियोंसे मिलने जुलने और पढ़ानेका सौभाग्य प्राप्त है। उसका अनुभव यही है कि वर्तमान कुत्सित शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियोंमेंसे विद्याभिरुचि बिलकुल निकाल देती है और उनमें वस्तुतः पढ़नेसे घृणा उत्पन्न कर देती है। यह केवल भारतीयोंके आभ्या

न्तरिक संस्कार हैं कि उनके हृदयमें थोड़ा बहुत विद्या प्रेम बच रहता है।

शायद कुछ पाठक यह समझें कि जो कुछ लिखा गया है वह अतिशयोक्ति है। परन्तु इस कथनका प्रमाण सुगमतासे दिया जा सकता है। अपने संयुक्त प्रान्तको ही ले लीजिये। यहां अनेक कालेज और स्कूल हैं, सैकड़ों हज़ारों ग्रेजुएट हैं। यह सब मिलकर कितना साहित्यिक काम (Literary output) करते हैं। हमें तो जान पड़ता है कि बैठे बैठे मक्खो मारा करते हैं।

अब ज़रा सोचिये कि वैज्ञानिक साहित्य निर्माण किया जाय तो किसके लिये? अलमारियों-के लिए? फिर इतना रुपया लगानेको कहांसे आवे?

स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि अवस्था इतनी शोचनीय है तो वर्तमान कालमें क्या कर्तव्य है? आजकल देश भरमें एक प्रबल शक्ति काम कर रही है। वह शक्ति देशके उद्धार-की उत्कट इच्छा है, जिसका एक मुख्य रूप भाषा-भक्ति है। इसी शक्तिकी उपासनासे हमारे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। यही हमारी रक्षा करेगी। इसी शक्तिके प्रतापसे हिन्दी साहित्यके वैज्ञानिक तथा अन्योन्य अंगोंकी धीरे धीरे पूर्ति होती जा रही है। यही भाषा भक्तिके भाव सैकड़ों क्या हज़ारों भारतीय हृदयोंमें उमड़ कर उन्हें वर्तमानमें ग्रन्थ संग्रह करनेके लिए प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि विज्ञान आदि पत्र, जिनके बहुत से लेखोंको पाठक समझ भी न पाते होंगे और अन्यो-न्य ग्रन्थ जो प्रायः उतने ही कठिन होंगे बिकते ही जाते हैं। यही भाषाकी भक्ति ग्रन्थ-संग्रह करने-की इच्छाको थोड़े कालमें अध्ययन और गवेषणा-की रुचिमें बदल देगी। यही भक्ति हमारी शिक्षा प्रणालीमें आवश्यक सुधार करावेगी, जिससे हमारे देशके विद्यार्थियोंकी शक्तियोंका पूरा विकास होगा और वह जी जानसे विद्याध्ययनमें लग जायंगे और मौलिक गवेषणाओंसे अपने देशका गौरव और सम्पत्ति बढ़ायेंगे। स्मरण रहे कि ज्ञानका पंथ बड़ा भयावना है। इस पन्थमें मनको मारकर और चित्तकी वृत्तियोंको एकाग्र करके काम करना पड़ता है। पूरा ज्ञान प्राप्त करलेना लोहे-के चने चबाना है। कोई कितने ही मनोरञ्जक ढंग-से क्यों न लिखे गूढ़ विषयोंकी कठिनाई दूर हीं नहीं हो सकती। विज्ञानके अध्ययनके लिए भी मनुष्यको पूरा प्रयत्न करना पड़ता है। जो कोई यह समझे कि दूसरे उसके लिए परिश्रम करें और वह बिना प्रयास ही उनके परिश्रमके फलसे लाभ उठावे, तो यह निराशामात्र है। अतएव स्वदेश प्रेमियों और भाषाके भक्तोंसे प्रार्थना है कि अब वह तन, मन, धनसे विविध विज्ञानोंके अध्य-यनमें लग जांय और थोड़े ही दिनोंमें सब देशमें एक ऐसी हलचल मचा दें, जिससे शीघ्र ही व्यव-सायिक और वैज्ञानिक दृष्टिसे हमारा देश अन्य देशोंसे पिछड़ा न रह जाय।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि 'विज्ञान' ने अब तक किस प्रकार और कितने साहित्यकी रचना की है। अपनी शक्तिके अनुसार यह भविष्यमें भी इसी प्रकार सेवा करता रहेगा, यदि कोई विशेष दुर्घटना उपस्थिति न हो गई तो।

गत दो वर्षोंमें विज्ञानको बहुत महँगा काग़ज़ खरीदना पड़ा है। इसी कारण सम्पादक और मैनेजरके अवैतनिक होते हुए और लेख बिना पुरुस्कार दिये मिलते हुए भी ६००) का घाटा उठाना पड़ा। इस घाटेके सहनेके लिए परिषद् तैयार नहीं है। अन्य पत्रोंने, सरस्वती आदिने तो अपना आकार छोटा कर दिया, चन्दा बढ़ा दिया और काग़ज़ हलका लगाया। विज्ञान प्रायः सभी तरहसे वैसा ही निकलता रहा जैसा आरम्भमें निकलता था। इसीसे उसे आज यह दिन देखना पड़ा। हम विज्ञान हितैषियोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि वह इस घाटेको पूरा करनेका प्रबन्ध करें और भविष्यके लिए ऐसा व्यवस्था करें कि विज्ञान

अपने उद्देश्योंको पूरा करता हुआ राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सेवा करता रहे।

कई माससे विज्ञान नियत समयपर नहीं निकल पाता। इसका मुख्य कारण प्रेसोंका कुप्रबन्ध है। जब तक अपना प्रेस न होगा, इसी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। हम अपने उदार पाठकों और विज्ञान प्रेमियोंसे प्रार्थना करते हैं कि वह शीघ्र दसहज़ार रुपये इकट्ठे करनेका प्रयत्न करें। इस रुपयेसे एक छापाखाना खोल दिया जायगा, जिसमें विज्ञान छपता रहेगा और जिसकी आमदनीसे विज्ञानको अधिक उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया जायगा। छापेखानेकी आमदनीसे ग्रन्थ प्रकाशनका भी प्रबन्ध किया जायगा।

महोबेमें पानोंकी खेती

आदिकालसे महोबा पानोंके लिये उत्तरीय भारतमें बहुत मशहूर है। यहांका पान बहुत करारा (brittle) होता है। ज़रा सा मोड़नेसे फौरन टूट जाता है। पान देखनेमें बहुत बड़ा होता है। यहांका पान रेल द्वारा कलकत्ता और पंजाब तक जाता है। इस कामके लिये यहां कई कोठियां हैं, जहां पान इकट्ठे किये और पार्सल बनाकर भेजे जाते हैं। पानोंकी खेती प्रायः महोबे ख़ास या उसके आस पासमें ही होती है। यहां हम अपने पाठकोंकी जानकारीके लिये महोबेका थोड़ा सा वर्णन देकर पानोंकी खेतीका हाल लिखेंगे। महोबा, जो कि ज़िला हमीरपुर (बुंदेलखंड) के उसी नामके सब डिवीज़नका सदर मुक़ाम है, २५°१८' उत्तर अक्षांश और ७९°५२' पूर्व देशान्तरमें फ़तहपुर-बांदा-सागर सड़क पर है। महोबा होकर जी० आई० पी० रेलवेकी झांसी-मानिकपुर लाइन गई है—यह स्थान बहुत पुराना है और विश्वास किया जाता है कि अनेक युगोंमें इसके अनेक नाम रहे हैं। त्रेतायुगमें इसका नाम केकपूर था और द्वापरमें पटनपुर और कलिकालमें महोबा। यह कहा जाता है कि ८५७ वि० के लगभग प्रसिद्ध चंदेल राजा चन्द्रवर्माने एक बड़ा यज्ञ अथवा महोत्सव किया था। इसीसे इसका नाम महोबा पड़ा। चन्दबरदाईने अपने रासोमें इस स्थानका नाम महोत्सा अथवा महोत्सानगर लिखा है। अन्य बातोंसे यह पता लगता है कि सं० ९५७ वि० के लगभग चन्देलोंकी राजधानी खजुरहासे इस स्थान पर उठ आई थी। परन्तु अब महोबेमें थोड़े से खंडहर और तीन चार बड़े बड़े तालाब इस स्थानकी पूर्व शोभा, प्राचीन गौरव और चन्देलोंके महत्व तथा उदार हृदयताके चिह्न मात्र रह गये हैं। आधुनिक महोबा कोई बड़ा स्थान नहीं है। सन् १९०१ में इस नगरकी जनसंख्या केवल १०,०७४ थी। व्यापारकी दृष्टिसे यह स्थान ज़िले भरमें सबसे अच्छा है और यह आशा की जाती है कि जब हमीरपुरका ज़िला उठ कर महोबा चला जायगा तो यह स्थान और भी उन्नति करेगा। महोबेमें कई छोटे छोटे तालाबोंको छोड़कर चार बड़े बड़े तालाब क्रमसे यह हैं—विजयनगर, मदनसागर, कीरतसागर और कल्याणसागर। इन्हीं तालाबोंसे आबपाशीके लिये नहरें भी निकाली गई हैं। पानके खेत इन्हीं तालाबों या इनसे निकली हुई नहर या नालोंके पास हैं।

यह खेत बहुधा ऊँची ढालू ज़मीन पर, जहां पानी इकट्ठा न हो सके, होते हैं। पानके लिये बालू मिली हुई (रेतीली) मिट्टी की ज़रूरत है। पानोंके लिये एकसी गरमी, कुछ स्थायी नमी और बड़ी देखभालकी ज़रूरत होती है। क्योंकि पानकी बेल बहुत नाज़ुक होती है। गरमियोंमें खेतोंको बराबर तर रखनेकी ज़रूरत होती है, परन्तु बहुत ज़्यादा पानी भी नुक़सान करता है और पानी कभी जमा न रहने देना चाहिये। पौधोंके

लिये धूप अच्छी नहीं, न बहुत छांह ही अच्छी है। बहुत हवा भी अच्छी नहीं और न बिलकुल कम हवा।

खादके लिये सरसोंका तेल या उसकी खली डाली जाती है। कहीं कहीं जिस नालेसे आब-पाशी करते हैं उसका पानी सूख जानेके बाद उसकी मिट्टी भी डालते हैं। बंगालमें बारीक पिसा हुआ गोबर भी खादके तौर पर देते हैं। मध्यप्रदेशमें जब पौधा नया होता है तो दूध डालते हैं। यह बहुत अच्छा खादका काम करता है। अलसीकी खली पौधोंके लिये हानिकारक है।

पानके खेत दूरसे एक नीचे फूसके पौध घर (hot house) अथवा फूससे ढके हुए लम्बे तथा नीचे 'हाल' (hall) से प्रतीत होते हैं। परन्तु अन्दरसे बहुत सुन्दर और ठंडे मालूम होते हैं, विशेषतः बाहरके तापकी अपेक्षा। पानोंकी सीधी बेलें क्रमसे चढ़ी हुई और पानीसे खूब सिंची हुई, आस पासके उजाड़ बन खण्डमें, विशेष कर गरमियोंमें आँखोंको तरावट देनेवाली और बहुत रमणीक मालूम होती हैं। एक मुहाल महोबामें 'दरीबा' (अर्थात् पानका दूकान) नामका है जहां पानोंकी खेती ५० से १८ बीघा तकमें होती है और अलहदा खेतोंकी संख्या ५५ से २० तक है; जो न दो बीघेसे ज़ियादा और न पांच बिसवेसे कम होते हैं। खेत चारों ओरसे बांस वा चटाई लगा कर सुरक्षित रखे जाते हैं और ऊपरी छत बांसकी खपच्चियोंकी टट्टीकी बनाई जाती है, जिस पर छितरा छितरा फूस या अरंडके पत्ते डाल दिये जाते हैं। इन खेतोंको महोबेमें 'बरेजे' कहते हैं और पान वाले 'बरई' कहलाते हैं। बरई लोग सुअरों और अन्य जंगली जानवरों और चोरोंसे खेतोंकी रक्षा करनेके लिये उन्हीं खेतोंमें रात दिन बन्द किये पड़े रहते हैं। एक खेतमें तीन साल बराबर बोते रहते हैं; फिर एक साल परती छोड़ देते हैं। पौधे बोने के दो तरीक़े हैं:—(१) पुरानी बेलोंमेंसे क़लम काटी जाती हैं जो खेतोंमें लगा दी जाती हैं। इनके जोड़ोंमें से अंकुर फूट कर पौधे होकर बढ़ने लगते हैं। एक बेलसे कई क़लम ली जाती हैं। क़लम तीस बत्तीस अंगुलके फ़ासले-पर लम्बी सीधी क़तारोंमें लगाई जाती हैं। कुछ लोग बीच बीचमें मिर्च या पोई भी लगा देते हैं, जिसमें खेतमें छांह रहनेके अतिरिक्त खेतवालेको तरकारीका भी सुभीता रहे। (२) फ़सलके आख़िरमें बेल जड़से फुट डेढ़ फुट छोड़ दी जाती है और यह ज़मीनमें लम्बी दबा दी जाती है। कुछ समय बाद जोड़ोंकी जगहसे नई जड़ें फूटने लगती हैं। तब पुरानी जड़ काट कर फेंक दी जाती हैं।

पौधोंको बड़ा होनेमें एक साल लगता है। होलीके लगभग पान बोया जाता है और अगली साल उसी समय क़लम काटी जाती हैं। क़लमोंसे जब पौधा जम जाता है तो जड़के समीपके पुराने पान तोड़कर बेच दिये जाते हैं। जब बेल बढ़ने लगती है तो उसको सहारा देने के लिये 'सलइया' (सनका सरकंडा) उसके पास खोंस देते हैं—उसीके सहारे बेल ऊपर को जाती है। बरसातको छोड़कर इसमें बारहों महीने पानी दिया जाता है। इस कामके लिये मिट्टीके बड़े बड़े घड़े खेतके चारों तरफ़ रखे रहते हैं। पानी उन नालोंसे जिनके कि किनारे खेत होते हैं लिया जाता है। इसके अतिरिक्त हर एक खेतवालेके दो एक कुएं खेतके समीप नालेकी तली (bed) में खुदे रहते हैं जो कि गरमियोंमें जब नाले सूख जाते हैं काममें लाये जाते हैं। यह कुएं बीस बाईस हाथ गहरे होते हैं।

'पान' (जिसको कि संस्कृतमें ताम्बूल और अरबी और फ़ारसीमें तम्बोल वा बर्ग तम्बोल और सिंहाली और तामीलमें नागवल्ली कहते हैं) का (botanical) वैज्ञानिक नाम पाईपरबीटिल (Piper Betle) है जो कि प्राकृतिक कक्षा (Natural order) पिपेरेसिई (Piperaceae) की एक बेल है। यह एक

(perennial diœcious creeper) बारहों महीने होनेवाली बेल है और सम्भवतः जावा द्वीपकी निवासी है। जैसा कि सबको विदित है हमारे देशमें पान खाया जाता है और इसका आजकल सर्वत्र प्रचार है। यहां विना पान दिये किसीका सत्कार पूरा नहीं समझा जाता। पूजन, हवन आदिमें भी इसकी विशेष आवश्यकता रहती है। लगा हुआ पान हलका उत्तेजक (gentle stimulant and exhilarant) का गुण रखता है। प्राचीन आर्य ग्रन्थकारोंकी राय है कि पान तड़के, खाना खानेके बाद और सोते वक्त खाना चाहिये। शुश्रुत के अनुसार पान सुगन्धित (aromatic), अफरन दूर करने वाला (carminative), उत्तेजक (stumilant) और तीखा होता (astringent) है। यह मुखकी दुर्गन्ध दूर करता है, सांसको सुगन्धित करता है और स्वरको ठीक करता है। अन्य लेखकोंके अनुसार यह कामोद्दीपक (aphrodisiac) भी है। औषधिके रूपमें इसका रस कफ़के विकारके रोगोंमें बहुत उपकारी है। सदा सरलतासे उपलब्ध होनेके कारण पानका पत्ता बहुत सी बातोंमें घरेलू दवाइयों के रूपमें काम आता है। पानके डंठलका (stalk) तेलमें डुबो कर बच्चोंके पेट फूलने और कब्ज़ होने पर शफ़ाके रूपमें (suppository) प्रयोग किया जाता है। पानके पत्ते सिर दर्दमें चांद पर और दूध रोकनेके लिये स्तनों पर लगाये जाते हैं। यह दर्द करनेवाली सूजी हुई गिलटियोंके बैठानेके लिये भी उन पर लगाये जाते हैं। बहुत ज़्यादा पान खानेसे शराबके नशेकासा असर होता है। खराब फोड़ोंपर पान बांधनेसे वह अच्छे होने लगते हैं। कोनकन (Konkon) में इसका फल शहदमें मिला कर खांसीमें दिया जाता है। कहा जाता है कि उड़ीसामें इसकी जड़ सन्तानोत्पत्ति रोकनेके लिये दी जाती है। पैंसली महोदयका कहना है कि बच्चोंकी बदहज़मीमें पत्तोंका अर्क़ गरम करके दिया जाता है। यही अर्क़ दूधके साथ हिस्टीरियामें भी दिया जाता है। एक प्रकारके रुईके पौधेकी जड़ पानोंके अर्क़में पीस कर उसकी सहायतासे पुराने रासायनिक लोग औषधिके लिये हीरेकी भस्म तैयार करते थे।

हमारे देशमें सरकारी अथवा अन्य यूरोपियन डाक्टरोंने इस औषधिके गुणोंकी ओर यथार्थ ध्यान नहीं दिया है। परन्तु जावामें इस ओर बहुत कुछ ध्यान आकर्षित हुआ है और वहां के डच वनस्पति शास्त्रवेत्ताओं तथा डाक्टरोंने प्रयोगोंके बाद यह स्थिर किया है कि उस देशकी मन्की (miasmatic) तथा नम जलवायुमें पान चबानेसे वास्तवमें स्वास्थ्य बढ़ता है। (Netherlands Indian Government) जावाकी सरकारने यह हुक्म दे रखा है कि अस्वस्थ मनुष्यों और क़ैदियोंको पान दिये जायं। उनका विश्वास है कि इससे बीमारी कम हो जाती है। कफ़ और श्वास सम्बन्धी रोगोंमें भी यह उपकारी पाया गया है। यूरोपमें इसके गुणोंकी ओर ध्यान बहुत आकर्षित न होनेका शायद यह कारण हो कि केवल हरी पत्तियां ही गुणकारी हैं और सूखनेपर उनका उड़नशील तैल (volatile oil) निकलजाता है, जिसके साथ ही उसके बहुमूल्य गुण भी चले जाते हैं। परन्तु देग और भपके (distillation) से इसका उड़नशील तैल (volatile oil) पृथक् किया जा सकता है और सम्भव है कि यह औषधिकी दृष्टिसे गुणकारी और (stable) स्थायी हो। यह तैल जवा द्वीपसे जरमनी भेजा जाता है और जर्मनोंनेइसके गुणोंकी प्रशंसा भी की है। डीमोक महोदयका कहना है कि डी० एस० केंपने सन् १८८७ में पानीके साथ हरी पत्तियोंका अर्क़ (distil) निकालकर दो पीले बसंती रंगके तेल निकाले थे। इनमेंसे एक भारी और दूसरा हलका था। दोनोंमें पानके पत्तेकी सी सुगन्ध थी, परन्तु हलका तेल दूसरेकी अपेक्षा अधिक सुगन्धित (aromatic) था। हालमें ही डाक्टर वाट सन् १८९२ में लिखते हैं—"पत्तोंके ईथरीय घोल (ethereal solution) से एक वानस्पतिक क्षार (alkaloid) अराकीन (arakene) नामका

निकाला गया है। इसीसे कुकेनके लवणों (salts) के सदृश लवण (salts) भी बनाये गये हैं। वानस्पतिक क्षार (alkaloid) और उसके लवणों (salts) का स्वाद कुछ तीक्ष्ण है। वह थूक (saliva) को बढ़ाते, हृदपिंड (heart) की क्रियाको मंद करते और रेचक होते हैं।

डाक्टर टोमसन (Surgeon Major D. R. Thomson, M. D., C.I. E., Madras) का कहना है कि पत्तोंका रस वेदनायुक्त चक्षु संबन्धी रोगोंमें डाला जाता है। डा० घोष (Asstt. Surgeon T. N. Ghose, Meerut) का कहना है कि जब आंख आती है तो इसका ताज़ा रस आँख धोनेके लिये उपयोगी होता है और दिनौंधीके लिये भी गुणकारी है। डा० पिकेची (Surgeon D. Picachy, Purneah) लिखते हैं कि मैंने पानका, आग पर गरम करके और सरसोंके तेलमें मिलाकर, गलेकी वेदना (sore throat) प्रभृति रोगोंमें सफलता पूर्वक उपयोग किया है। डाक्टर थार्नटन (Civil Surgeon G. H. Thornton, B. A., M. B., Monghyr) का कहना है कि पानकी पतली जड़ (कुलंजन ?) काली मिरचके साथ खिला कर स्त्रियोंमें बन्ध्यत्व पैदा किया जाता है। यह कहा जाता है कि यह डिम्बाशयका पक्षाघात (paralysis of the ovary) करके बादमें उनको (ovaries) क्रियाहीन (atrophy) कर देता है। डा० मुकुरजी (Surgeon A. C. Mukerji, Noakhali) का कहना है कि बंगला पान कंठनाली उपदाहके लिये बहुत गुणकारी है। नारायण मिश्र लिखते हैं 'कि इसकी जड़ (कुलंजन ?) साधारण तौरसे गानेवाले अपना स्वर ठीक रखनेके लिये खाते हैं। लालमोहम्मद (Hospital Assistant Central Provinces) लिखते हैं कि पानके पत्ते शरबतके रूपमें मसाला मिला कर एक औंस दिनमें तीन दफे देनेसे शारीरिक दुर्बलता (general debility) के लिये गुणकारी होते हैं।

—मुकटबिहारीलाल दर, बी० एस-सी०

प्रकृतिके स्वांग

होलीको बीते थोड़े ही दिन हुए हैं। पाठकोंने देखा ही होगा कि क्रमशः स्वांग निकालना कम होता जाता है। पूरबमें होलीके मौकेपर बड़ी अश्लील गालियों और गीतोंका व्यवहार होता है। पछांहमें तोभी बहुत गनीमत है, पर क्या पूरब और क्या पश्चिम दोनों तरफ स्वांगोंका निकालना कम होता जाता है और भय है कि धीरे धीरे बिलकुल ही बन्द हो जायगा। सच पूछिये तो यही एक ऐसी बात होती थी, जिसमें मनुष्यको चतुराई और मौलिकतासे काम लेना पड़ता था। राजपूतानेमें और ब्रजमें प्रति दिन प्रत्येक मुहल्लेमें नये नये स्वांग मावससे लेकर धुलैंडी तक निकला करते थे। कहीं नारदजी वीणा लिए भजन गाते नज़र आते थे, तो कहीं महादेव और पार्वतीके दर्शन होते थे। कहीं झांसीकी रानी हाथमें नेज़ा हिलाती वीरवेषसे घोड़े पर सवार निकलती थी, तो कहीं ढोला मारूके अपूर्व प्रेमका दृश्य दिखाई पड़ता था। पर आजकल कुछ फ़ैशनकी धुनमें, कुछ सुधार की सनकमें, कुछ मंहगीसे तङ्ग आकर और कुछ अस्वास्थ्यके कारण यह चतुराई और कारीगरी देखनेमें नहीं आती। शिक्षित समाजका कर्तव्य है कि मौलिकताकी बुझती हुई चिंगारीकी रक्षा करे।

इङ्गलेण्डमें भी ऐसे बहुतसे अवसर होते हैं, जब स्वांग निकलते हैं। अभी हमारे एक मित्रने
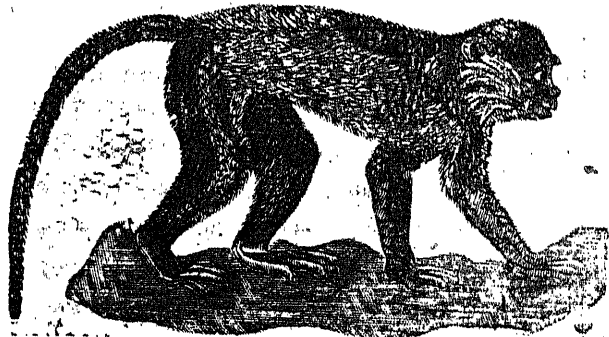
चित्र १—गिबेट बन्दर

मैनचेस्टर विश्वविद्यालयके एक उत्सवके कुछ चित्र भेजे थे। उसमें अनेक स्वांग निकाले गये थे, जो एकसे एक निराले और मौलिकता प्रदर्शक थे।

प्रकृति भी स्वांग निकालनेकी बड़ी शौकीन है। इसके स्वांग बड़े विचित्र हुआ करते हैं। मनुष्य जब स्वांग निकालता है थोड़ी देरके लिए अपने कपड़ोंको और अन्य आडम्बरोंको बदल लेता है। कहीं अजीब तरहकी डाढ़ी मूंछ लगाता है, कहीं अजीब तरहके कपड़े पहन लेता है, कभी अपने चेहरे, हाथ पैरोंको रंग डालता है। प्रकृति जीवोंके अंगों और प्रकृतिको ही बदल देती है। वास्तवमें वह जैसाकि प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ने एक स्थानपर लिखा है सृष्टिकी तख्ती पर मश्क़ करती है, एकसे एक विचित्र अद्भुत और निराले और सुहावने रूप पैदा करती है, बनाती है और बिगाड़ती है। मनुष्य की सृष्टि करनेमें ही उसने हज़ारों स्तनपायी पशुओंको बनाया और बिगाड़ा, तब कहीं अपने रचयिताके अनुरूप यह साढ़े तीन हाथका पुतला बना पाया।

इन अनेक रूपोंमेंसे जो उसने बनाये और बिगाड़े कुछ अब तक चले आते हैं और कुछमें विचित्र विचित्र परिवर्तन हो नये नये रूप बन गये हैं। आज हम पाठकोंको होलीकी बधाई देते हुए इन रूपोंमेंसे कुछके दर्शन कराएंगे।

पहला चित्र गिवेट (Givet) का है। इसे टोटा (Tota) भी कहते हैं। यह अफ्रीकामें पाया जाता है और यूरोपके मदारी इन्हीं बन्दरोंको अपने पास रखते हैं। इसकी आगेको निकली हुई पेशानी, लम्बोतरा मुंह, झुकी हुई भौंहें और लम्बी दुम तो देखने लायक हैं ही, परन्तु ज्यादा लुत्फ़की चीज़ है इसके लम्बे लम्बे गलमुच्छे। आये कोई गलमुच्छोंका शौकीन और इसके सिरके दुतरफा निकले हुए सफेद बालोंवाले गलमुच्छोंसे मुकाबला करे। इन्हीं गलमुच्छोंसे इसका चेहरा बड़ा रोबदार मालूम पड़ता है।
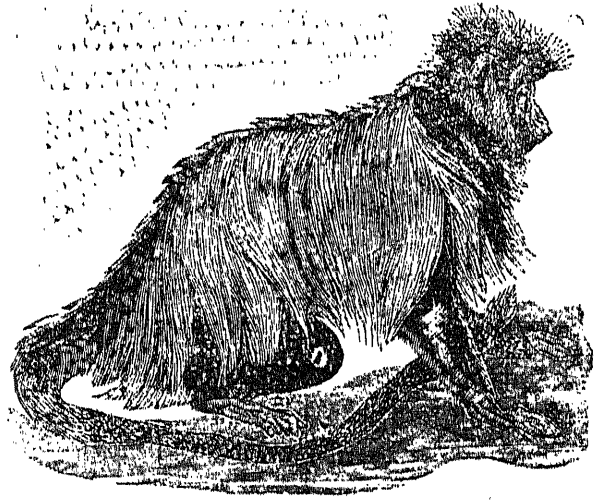
चित्र २—कोलोबस सेटेनस (भालू बन्दर)

इसका रंग भी विचित्र होता है। कुल बदनका रंग कुछ हलका हरासा दिखाई पड़ता है, जो वास्तवमें काले और पीले बालोंके मेलसे उत्पन्न हो जाता है। चारों पैरों और पूंछका रंग बाहरकी ओर कुछ भूरा सा होता है, पर भीतरकी तरफ़ कुछ अधिक सफेद होता है। पेट भी सफेद बालोंसे ढका होता है। चेहरे, कान और तलवों की खाल काली होती है, पर उसमें कहीं कहीं बैंजनी झलक भी आ जाती है, जो प्रायः सभी बंदरोंमें पाई जाती है।

बन्दरों की एक और जाति है, जिसे कोलोबस (Colobus) कहते हैं। इनके पूंछ भी होती है और गालोंके अन्दरकी थैलियां भी। इस जातिमें विलक्षणता यह होती है कि पंजेमें अंगूठा नहीं होता। केवल चार उंगलियां होती हैं। यह भी अफ्रीकामें पाये जाते हैं। इस जातिमें एक उपजाति है, जिसे कोलोबससेटेनस (Colobus Satanas) कहते हैं। इसी उपजातिके एक बन्दरका चित्र यहां दिया जाता है।

इसके खड़े हुए सरके बाल, भीतरको बैठा हुआ माथा, पिचकी हुई नाक, शेरकी सी अयाल (केशर) रीछको लजानेवाले लम्बे लम्बे काले बाल

और लम्बी पूंछ देखने लायक हैं। इसका रंग सरसे पूंछके सिरे तक गहरा काला होता है।
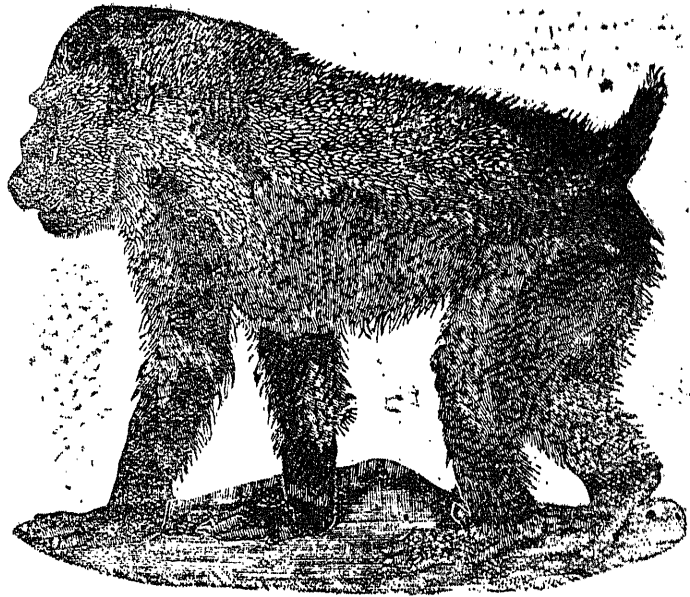
तीसरा चित्र एक अन्य जाति के बन्दरका है जिसे ड्रिल कहते हैं। इसकी शकल डरावनी होती है। हाथ, पैर मोटे और मज़बूत, कपोलास्थि उभरी हुई; माथा ऊपरसे पिचका हुआ, पर आंखोंके ऊपर आगेको निकला हुआ, पूंछ बहुत छोटी, जिस पर छोटे छोटे कड़े बाल उगे होते हैं। शरीरके आगेका हिस्सा हरे रंगका होता है और उसमें पीले रंगके वृत्त बने रहते हैं। कान और मुंह काला होता है, पंजे ताम्र वर्णके होते हैं। बचपनमें इसका स्वभाव बहुत शान्त होता है और सहजमें ही पाला जा सकता है। पर बड़े होने पर इसका पालना मुशकिल हो जाता है।

चित्र ३—ड्रिल

भारतीय-चित्रकला

(ले०—पं० भगवती प्रसाद मिश्र)

प्रथम परिच्छेद

भारतवर्षमें अति प्राचीन कालसे चित्र-कला प्रचलित है। ईसाके जन्मके सहस्रों वर्ष पूर्व भी यहाँके चित्र-कारोंने जो निपुणता प्राप्त की थी वैसी निपुणता १५०० ई० तक भी यूरोपके चित्रकार प्राप्त न कर सके थे। पर अभाग्य वश अब उस समय के बने हुए चित्रोंके नष्ट भ्रष्ट चिह्न भी दुर्लभ हो गये हैं। इन चिन्होंके न मिलनेसे ही यह तात्पर्य निकाल लेना उचित नहीं है कि उस प्राचीन समयमें यहाँ चित्रकला थी ही नहीं। भला क्या यह कभी सम्भव हो सकता है, कि अद्वितीय विज्ञानों, दर्शन शास्त्रों, न्याय, गणित, ज्योतिष, साहित्य, मूर्ति-निर्माण तथा भवन-निर्माण कला इत्यादि-का जन्मदाता भारतवर्ष चित्रकलामें ही पिछड़ा रह गया हो। उस समय भी यहाँ बड़े अद्भुत तथा मनोहारी चित्र बनाये जाते थे। पर मूर्तियों तथा भवनोंकी भाँति अधिक ठहराऊ न होनेके कारण वह बहुत दिन बीतनेपर विविध कारणोंसे नष्ट हो गये। इसीसे उनके स्मारक चिह्न आज कल दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

प्राचीन समयमें यहाँ दीवारोंपर ही चित्र अङ्कित करनेकी प्रथा थी। ऐसे चित्र यदि मकानों-की भीतरी दीवारों पर बनाये जाते तो आज कल-के बने चित्रों से कहीं अधिक ठहराऊ होते, पर साधारणतः उस समय चित्र ऐसे स्थानोंपर बनाये जाते थे जो जलवायुसे बहुत सुरक्षित न हुआ

करते थे। इतनाही नहीं, वरन जो इमारतें इनसे विभूषित की जाती थीं वह स्वयं बहुत टिकाऊ न होती थीं। प्रकृतिका नियम ही ऐसा है कि समयान्तरमें सभी वस्तु नष्ट हो जाती हैं। इन इमारतोंके गिरनेसे इनकी दीवारोंपर बने हुए चित्रों-का भी समूल नाश हो गया। बहुत अन्वेषण करनेपर प्राचीन समयके बने उन्हीं चित्रोंके चिह्न अबतक मिल सके हैं, जो पर्वतकी गुफाओं जैसे जलवायुसे सुरक्षित स्थानोंकी दीवारोंपर अंकित किये गये थे।

हमारे यहाँके प्राचीन ग्रन्थों तथा पुराणोंमें चित्रों तथा चित्रशालाओंका वर्णन बराबर मिलता है। इसीसे यह पता लगता है कि भारतमें अति प्राचीनकालसे चित्रकला चली आरही है।

रामायणमें चित्र गृहोंका वर्णन कई स्थानों-पर आया है। उदाहरणके लिए लीजिये। जिस समय हनूमान जी सीताकी खोजमें समुद्र लाँघ-कर लंकापुरीमें पहुँचे, वह रावणके महलोंकी शोभा देखकर चकित हो गये। वाल्मीकिजीने लिखा है कि:—

" आससादच लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्र निवेशनम्।
प्रकारेणार्कवर्णेन, भास्वरेणाभि संवृतम्॥२॥
कच्य कोपहितै श्चित्रैः स्तोरणैर्हेम भूषणैः।
विचित्राभिश्च कक्षाभिः द्वारैश्चरुचिरावृत्तम॥४॥
—सुन्दरकाण्ड सर्ग ६।

यहाँ चित्रोंसे सजे निवेशका स्पष्ट वर्णन किया गया है। इसे कोईभी अस्वीकार नहीं कर सकता। यह ग्रन्थ खीष्ट संवतसे कमसे कम १००० वर्ष पहले का* बना है। यदि धार्मिक भावसे देखा जाय तो यह इस समयसे भी बहुत पहिलेका प्रतीत होगा, पर विदेशी लोग रामायणको इतना प्राचीन ग्रन्थ माननेमें बहुधा हिचकते हैं। उनके मतसे यह खीष्ट संवत्‌से छः सातसौ वर्ष पूर्वका ही बना है। उनका ऐसा कहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। भारतको उसके प्राचीन गौरवसे

* यूरोपीय विद्वानोंके मतानुसार भी यह सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ खीष्ट सम्बत से कमसे कम ५०० वर्ष पूर्वका रचा है। प्रोफेसर मेकडानेल (Professor Macdonell) का मत है कि (१) रामायणका मूल भाग महाभारत से प्राचीन है, क्योंकि रामकी कथा तथा अन्य कथाओंका भी उल्लेख (जिनका कि वर्णन रामायण में किया गया है) महा-भारतमें पाया जाता है। (२) रामायण बौद्ध पाली ग्रन्थों से (जो विन्सेंट स्मिथके मतानुसार खीष्ट संवत से तीन चार सौ वर्ष पूर्वके बने हैं) भी बहुत प्राचीन प्रतीत होता है। क्योंकि "दशरथ जातक" नामके एक पालीभाषाके ग्रन्थमें रामकी कथा कुछ परिवर्तित रूपमें पायी जाती है। दोनों कथाओं तथा उनके छन्दों को तुलनात्मक दृष्टिसे देखने पर यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि रामायणकी रचना इन बौद्ध ग्रन्थों से अवश्य पहिलेकी है।

(३) इस पौराणिक ग्रन्थमें पाटलिपुत्र नामक (पटना) नगर जो कि कालशोक द्वारा ईसा से पूर्व ३८० में बसाया गया था, उसका नाम कहीं नहीं मिलता। उस राजधानी के पाससे रामका जाना रामायणमें लिखा है किन्तु उसपुरी का नाम तथा वर्णन कुछ भी नहीं दिया गया है, यद्यपि कौशाम्बी, काम्पिल्य, कान्यकुब्ज आदिका नाम अनेक स्थानों में मिलता है।

उपर्युक्त बातोंसे इस ग्रन्थकी रचना खीष्ट सम्वत-से कमसे कम ५ सौ वर्ष पूर्वकी जान पड़ती है। पर वास्तवमें इस ग्रन्थ की रचना इससे कहीं प्राचीन है।

पाणिनिका व्याकरण गोल्डस्टकर (Goldstucker) के मत से ईसा से पूर्व ८ वीं और ११ वीं सदीके मध्यमें और मेक्समूलर (Max-Muller) के मतसे ईसासे पूर्व ६ठीं शताब्दी में बना था। कोई भी विद्वान यह कदापि नहीं कह सकता कि पाणिनिका व्याकरण वाल्मीकीय रामायण से पूर्व बना है। इस व्याकरणके नियमोंका कुछभी अवलम्बन रामायणकी रचनामें नहीं किया गया है और न इस व्याकरण का कुछ प्रभाव ही उसपर पड़ा है। हां, पर यह सम्भव हो सकता है की इस ग्रन्थ ने पाणिनिको अपने व्याकरणके लिखनेमें बहुत कुछ सहायता दी हो। तात्पर्य यह कि पश्चिमी विद्वानोंके मतानुसार रामायण का रचनाकाल ईसा से छः सातसौ वर्ष पहले का है।

जहाँतक हो सके अलग कर देनेके लिये लोग प्रायः ऐसी ऊटपटाँग बातें कहा करते हैं। यह लोग सर्वशक्ति सम्पन्न हैं; जो चाहें सो कहें। उनकी जिह्वामें ताले नहीं लगाये जा सकते। भारतवर्ष हीन दीन है। कटाक्ष, आक्षेप और और आक्रमण तो सदासे ही उसके हिस्से पड़े हैं। किसी शायरने ठीक ही कहा है :—

" तबाही जिसकी किस्मतमें लिखी वक्ते हशरसे थी।

इसी गुलशनकी शाखे खुश्क पर है आशियां मेरा ॥"

थोड़ा ही विचारनेसे यह जान पड़ता है कि जिस समय रामायण लिखी गयी थी उस समय भारतवर्षमें चित्रकला अन्य कलाओं तथा विद्याओंके साथ अच्छी उन्नति कर चुकी थी। यहाँके चित्रकार ऐसे दक्ष होगये थे कि रावण ऐसे महापराकमी राजाओंके महलोंको भी चित्रोंसे सजानेके लिए वह बुलाये जाते थे और अपनी कारीगरीका नमूना राजमहलोंकी दीवारोंपर दिखाते थे।

यहाँ किस समयसे चित्रकलाकी उत्पत्ति हुई यह कहना बहुत ही कठिन है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि रामायणके रचनाकालके पहिले ही यहाँ इस कलाका जन्म हो चुका था। इस कलाकी उत्पत्तिके विषयमें हमारे यहाँ एक अति उत्तम कथा है। किसी नगरमें एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उस बिचारेके एकही पुत्र था। वह अचानक मर गया। पिता बड़ाही दुखी हुआ और उसने पुत्रको पुनः पानेके लिये बहुत प्रयत्न किया। उसे छोड़ देने के लिये यमराजसे अनेक प्रार्थनाएँ कीं, पर उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हुआ। अन्तमें वह विलाप करता हुआ एक राजाके पास पहुँचा और अपना दुःख उसने कह सुनाया। राजाका भी हृदय पसीज गया। वह तुरंत ब्रह्माके पास गया। ब्रह्माने राजासे सब बातें सुनकर उसे चित्रविद्या सिखा दी और ब्राह्मणके मृत बालकका चित्र बनानेको कहा। जब चित्र तैयार होगया तब सृष्टिकर्ता ने उसमें प्राण डाल दिये।

इसी चित्रकलाके सम्बन्धमें हमारे यहाँ ऊषा और चित्रलेखाकी एक अति प्राचीन पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। उसका इस जगहपर उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। बाणासुर नामक एक बड़ा पराक्रमी दैत्य शोणितपुर नामक नगरमें राज्य करता था। उसकी कन्या ऊषा एक दिन कैलाशको गई। उसने वहाँ महादेव और पार्वतीको पासा खेलते हुये देखा। बस उसे भी इच्छा हुई कि मेरा विवाह हो जाय और मैं भी अपने पतिके साथ पासा खेलूँ। उसकी यह इच्छा देखकर पार्वतीने उसे वर दिया और कुछ ही दिन बाद राजकुमार अनिरुद्ध उसे स्वप्नमें दीख पड़ा, ऊषा उसके मनोहर रूपसे मोहित हो गई। उसने उसीको अपना पति बनाना निश्चित किया और उसका पता लगानेका प्रयत्न करने लगी। उसकी चित्रलेखा नामक दासी चित्रकलामें बड़ी कुशल थी। उसने पृथ्वीतलके अनेक राजपुत्रोंके चित्र बनाये, पर ऊषाने किसीको भी पसन्द न किया। अन्तमें जब चित्रलेखाने अनिरुद्धका चित्र अङ्कित किया तब ऊषाने उसे पहिचान लिया और समझ गयी कि इसी राजकुमारने स्वप्नमें मेरा चुम्बन किया था। इसके उपरान्त चित्रलेखा योग मार्गसे द्वारिका गई और वहाँसे उसने अनिरुद्धको लाकर ऊषासे मिला दिया। दोनोंका गान्धर्व विवाह हो गया। कुछ दिन बाद यह बात बाणासुरको मालूम हुई। उसने अनिरुद्धको मारनेके लिए अनेक दैत्य भेजे। द्वारिकासे श्रीकृष्ण और यादव लोग अनिरुद्ध की सहायताको आये। कैलाशसे शंकर और स्वामिकार्तिक बाणासुरकी ओरसे युद्ध करने आये। बड़ा घोर युद्ध हुआ, पर अन्तमें सन्धि हो गई और ऊषाके साथ अनिरुद्धका विवाह हो गया। चित्रकलाने ही इस घटनामें सबसे मुख्य कार्य किया था। इसीने दो हृदयोंको, जिनमें प्रेम की

उत्ताल तरंगें हिलोरें ले रहीथीं और जो मिलनेके लिए उत्कण्ठित थे, अन्तमें आपसमें मिला दिया। यह कथा उस प्राचीन समयके चित्रकारोंकी निपुणताको कैसे पूर्णरूपसे दरसाती है। धन्य-थे वह चित्रकार जोकि एक बार भी किसी व्यक्तिका रूप देखकर अथवा उसके रूप और स्वभाव का वर्णन सुनकर उसका चित्र तत्काल अङ्कित कर देते थे। आजकलके यूरोपीय चित्रकार अब किसी व्यक्तिको अपने सामने घण्टों 'कवायद' करा लेते हैं तब कहीं उसकी प्रतिकृति बना सकते हैं। हमारी ऐसी अद्भुत प्राचीनकलाका वर्णन सुनकर आज कल भी उसे प्राप्त करनेके लिए देशी और विदेशी चित्रकार दोनों तरसा करते हैं।

इन चित्रकलाओंके अलावा हमारे संस्कृत साहित्यमें भी प्राचीन चित्रकलाका विस्तृत वर्णन मिलता है। भारतवर्षके धुरंधर नाटककार भवभूतिने अपने प्रसिद्ध 'उत्तर रामचरित' नामक नाटकके प्रथम अंकमें दीवारपर बने चित्रोंका बहुत ही उत्तम वर्णन किया है। प्रायः एक पूरा दृश्य ही इससे भरा है। 'उत्तर रामचरित' में ही नहीं, वरन् संस्कृतके अन्य अनेक नाटकोंमें भी चित्रशालाओं और चित्रपटोंका उल्लेख किया गया है।

कालिदासका रचा हुआ "मालविकाग्नि मित्र" नामक एक नाटक है। इसके मुख्य पात्र अग्निमित्र और उनकी रानीकी दासी मालविका हैं। मालविका अत्यन्त रूपवती तथा संगीत आदि अनेक गुणोंसे सम्पन्न थी। रानी को इस बातका बड़ा ही डर था कि राजा दासीपर अवश्य आशक्त हो जायँगे। इसी कारण वह यथा सम्भव उसे अपने स्वामीके सम्मुख न होने देती थी। पर जो भाग्यमें लिखा है वह टालनेसे नहीं टलता। रानीने स्वयं भूलसे उस दासीका चित्र राजाकी चित्रशालामें अंकित करवा दिया। अग्निमित्रने एक दिन वहाँ जाकर दासीका चित्र देख लिया। बस, फिर क्या था, उसके रूप-पर वह तत्काल मोहित हो गये और रानीके निषेध करनेपर भी उन्होंने उससे विवाह कर लिया।

इसी महाकविने अपने सुप्रसिद्ध 'अभिज्ञान शकुन्तला नामक नाटकके छठवें अंकमें भी शकुन्तलाके चित्रका बड़ा मनोहर वर्णन किया है। इस नाटकके कुछ संस्करणोंमें देखनेसे तो यह विदित होता है कि यह चित्र किसी चित्रकार द्वारा अंकित किया गया था और उसमें जो कुछ असमानता थी उसे दुष्यन्तने ठीक करना चाहा था। किन्तु यह मत बहुत कारणों-से अधिक माननीय नहीं है। दूसरे संस्करणोंसे यह स्पष्ट झलकता है कि महाराजने स्वयं इस चित्रको बनाया था और उसमें जो स्थान प्रथम बार बनानेमें छूट गये थे उनको पुनः रंगोंसे भरनेके लिये इच्छा प्रगट की; किन्तु महारानी वसुमतीके अचानक आजानेसे दिलके अरमान दिलमें ही रह गये। *

स्वयं महाराजके मित्र माढव्य द्वारा इस चित्रका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

"शकुन्तला शिथिल दिखाई देती है। थक जानेके कारण डहडहे आम्र वृक्षके तने पर उसने अपने शरीरको टेक दिया है। बूस-पल्लव पानी-के छिड़कावके कारण चमक रहे हैं। थकावटसे शकुन्तलाके बाँह गिरे पड़ते हैं। मुखमण्डलपर पसीना आ गया है। सिरके बालोंकी गाँठ ढीली पड़ गई हैं और उसमें गूँथे हुए फूल धीरे धीरे गिर रहे हैं। उसके आस पास और जो दो स्त्रियाँ खड़ी हैं वह उसकी सहेलियाँ जान पड़ती हैं।"

---

*इस चित्रपट पर दुष्यन्तने अपनी प्रियाके चित्रको ठीक उसी प्रकार अंकित कियाथा जैसा कि उन्होंने कण्व ऋषिके आश्रम पर दो सखियोंके साथ प्रथम बार देखा था।

यह चित्र ऐसा उत्तम बना था कि माढव्यने इसे देखते ही इसमें शकुन्तलाके रूपको पहिचान लिया। पर यह चित्र अभी पूर्ण नहीं हुआ था। इसके पीछेकी ज़मीन खाली ही छोड़ दी गई थी। दुष्यन्त अब इसमें रंग भरनेके लिये उद्यत हुए। चतुरिकाको रंग, कूँची इत्यादि लानेके लिये आदेश देकर वह अपने मित्र माढव्यसे कहते हैं :—

"श्रूयताम्
कार्य्या सैकतलीनहंसमिथुना
स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा
गौरीगुरोः पावनाः ॥
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरो।
र्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्ण मृगस्य वामनयनं,
कण्डूयमानां मृगीम् ॥"

अर्थः—"सुनो मित्र, मैं चाहता हूँ कि इस चित्रमें मालिनी नदी बनाई जाय। उसके किनारे-पर रेतीमें हंसोंके जोड़े युगलें दिखायी दें। आगे बढ़कर हिमालय पर्वत की तराई चित्रित की जाय। उसमें एक ओर हरिनों के झुण्ड चरते हों और दूसरी ओर एक वृक्षकी डालियोंपर छालके वस्त्र धूपमें सुखानेको डाले गये हों और उस वृक्षके नीचे एक हरिणी खड़ी अपनी बाँई आँख-को धीरे धीरे कृष्ण मृगके सींगोंसे खुजा रही हो।"

इतना ही नहीं, वरन् महाराज शकुन्तलाको कुछ आभूषण भी पहिनाना चाहते हैं:—

कृतं नकर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्ड विलम्बि केशरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥

अर्थात् उनकी यह इच्छा है कि प्यारी शकुन्तलाके कानोंमें शिरीषके 'कर्णफूल' जिसके पुष्पोंकी नरम पखुड़ियाँ उसके कपोलोंपर लटकती हों, पहिनाये जायँ और छातीपर कोमल कमलकी कलियोंका हार भी बनाया जाय।

भला इन बारीक बातोंको दुष्यन्त ऐसे प्रेमी-के सिवा और कौन दरसा सकता था? यह साधारण चित्रकारकी शक्तिके नितान्त बाहर था। सभी लोग इस सौंदर्य्य जन्य प्रेमके नशेका अनु-भव नहीं कर सकते। दुष्यन्तकी भाँति प्रेमी हृदय-वाले ही इस विचित्र नशेके मदसे मतवाले हो सकते हैं। मतवाले होनेपर ही उनके हृदयमें नाना-प्रकारके उत्तमोत्तम भावोंका आविर्भाव हो सकता है। जब तक ऐसे भाव हृदयमें नहीं उत्पन्न होते तबतक भावपूर्ण कविताकी भाँति भावपूर्ण चित्रोंका भी बनना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जाता है। बिना इस सौंदर्य्यजन्य प्रेमको चखे, कोई सच्चा कलावान् नहीं हो सकता। इस नशेमें और दूसरे नशोंमें बड़ाही घोर अन्तर है। और नशे डर से उतर जाते हैं, पर यह किसी डर-से भी नहीं उतरता। और नशोंमें नींद आ जाती है पर इसमें नींद एकदम भाग जाती है। और नशे कुछ कालके बाद उतर जाते हैं पर यह नशा कभी उतरना जानता ही नहीं। यही कारण है कि सच्चे कवि तथा चित्रकार इत्यादि अपने कार्य में पूर्णतया लीन हो जाते हैं। उन्हें सुख, दुख, गरमी, सरदी, मान, अपमान, तथा अन्य सांसारिक प्रपञ्चों की परवाह नहीं रह जाती। उनके मस्तिष्कमें अपने कार्य्योंकी ही धुन समाई रहती है।

दुष्यन्त इसी नशेमें झूम रहे थे कि माढव्यने चित्रमें एक और भी निपुणता देख उनसे पूछा—"मित्र! रानी चकित सी होकर पंकज रूपी हथेलीसे अपने ओठोंको क्यों छिपाये हैं? (ध्यान पूर्वक निरीक्षण कर) ओह मैं समझ गया, एक भौंरा उनके मुखको कमल जान उसपर बैठा चाहता है।"

महाराज अपने धुनमें थे ही। यह सुनते ही कि एक भौंरा शकुन्तलाके मुखको कमल जान उसपर बैठा चाहता है, उन्हें तत्काल कण्व ऋषिके आश्रममें

शकुन्तलाके प्रथमवार दर्शनका दृश्य स्मरण आ गया। चित्रमें यह ऐसा साक्षात् दिखाया गया था कि उन्हें देशकाल, जीव निर्जीव किसीका ध्यान ही न रहा। उसपर अचानक दृष्टि डालते ही विचारने लगे कि।

"कः पौरवे वसुमतीं
शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं,
मुग्धासु तपस्विकन्यासु॥

जबतक दुष्टोंको दण्ड देनेवाला मैं पृथ्वीका रखवाला बना हूँ तब तक कौन ऐसा है जो ऋषि कन्याओंको सताता है। बस फिर क्या था, वह एकाएक माढ्यसे कह उठे कि "इस धृष्ट भौंरेको दूर करो"। उस प्राचीन समयमें प्रकृतिकी वस्तुओंका ऐसा सादृश्य दिखाना असम्भव न था।

प्राचीन यवन चित्रकार भी (Greek artists) प्रायः ऐसे चित्र बनाते थे कि लोग उन्हें देख भ्रममें पड़ जाते थे। उनमें अंकित किये हुये मनुष्य तथा जानवरोंको दर्शक वास्तवमें जीवित मनुष्य तथा जानवर समझने लगते थे। चीन देशके चित्रकारोंके विषयमें भी एक ऐसी ही कथा इतिहासमें पाई जाती है। ट्सओफ्यूहिंग (Tsao Fuh-hing) नामी चित्रकार तीसरी खीष्ट शताब्दीका था और चीनके बादशाह सुन्क्यूओं (Sunkuan) का आश्रित था। एक बार किसी चित्रमें इसने एक मक्खीका ऐसा आकार बना दिया था कि स्वयं बादशाहने इसे वास्तवमें मक्खी ही समझ लिया और उसे चित्रपरसे उड़ा भी देना चाहा।

उत्तर रामचरित के अतिरिक्त भवभूतिने "मालती माधव" नामका एक दूसरा नाटक रचा है। इसमें भी चित्र लेखनका उल्लेख आया है। माधव अपनी प्रिया मालतीका चित्र खींचने बैठा है, पर नहीं बना सका। वह चित्रकलासे अनभिज्ञ होनेके कारण तसवीर न बनासका, यह कदापि, संभव नहीं। यदि ऐसा होता तो वह चित्रलिखनेको बैठता ही नहीं। पर चित्र न बननेका दूसरा ही कारण था, जिसे भवभूतिने बड़ी ही कुशलतासे बताया है। माधव कहता है कि:—

"वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्प पूर
स्तत्संकल्पोपहित जड़िमस्तम्भमभ्येति गात्रम्॥
सद्यःस्विद्यन्नय मविरतो त्कम्पलोलाङ्गुलीकः
पाणिर्लेखा विधिषु नितरां वर्त्तते किंकरोमि।

अर्थात्—बारबार उमड़े हुये आँसुओंका प्रवाह आँख पर परदा डाले हुए है। मालती विषयक संकल्पसे जड़ता शरीरमें आकर 'स्तम्भ' हो रहा है। चित्र लिखनेमें हाथकी यह दशा है कि वह पसीनेसे तर है। उंगलियाँ निरन्तर कांप रही हैं। क्या करूं कैसे चित्र लिखूं।

प्राचीन समयमें यहां चित्रकलाके होनेके उपर्युक्त प्रमाण तो संस्कृत भाषाके पुराणों तथा नाटकोंमें मिलते हैं। अब बौद्धग्रन्थोंपर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है।

पाली भाषामें लिखे हुये "विनय पीठक" नामक ग्रन्थमें ऐसी बहुत सी कथाएँ हैं, जिनमें राजाओंके विहारभवनों तथा उनमें बने हुए चित्रागारोंका (चित्तागार) वर्णन आता है। 'चित्तागारोंमें' प्रायः दीवारों पर चित्र बनते थे और वह "पतिभान चित्तं" कहे जाते थे।

बुद्धदेवने ऐसे चित्रोंके बनानेका निषेध किया था। यद्यपि उन्होंने केवल बेल बूटोंसे ही मकानों और राजाओंके विहारभवनोंको सजानेकी आज्ञा दी थी तथापि उपर्युक्त ग्रन्थोंमें कोशलके राजा पासेनदिके विहारोंमें चित्रागारोंका उल्लेख किया गया है, जो निश्चय मूर्तियों तथा चित्रोंसे विभूषित थे। यह 'विनयपीठक' नामका ग्रन्थ बहुत ही प्राचीन है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि विक्रमसे कमसे कम तीन चार सौ वर्ष पहलेका यह बना है। लंका द्वीपके "महावंश" नामक ऐतिहासिक ग्रन्थको भी देखनेसे यह प्रतीत होता है कि विक्रमसे लगभग १०० वर्ष पहले दुत्थगामिनि

नामके राजाने 'रूवनबेलिके' 'डेगोवाके' भीतरी कमरेको चित्रोंसे सजवाया था।

सत्रहवीं शताब्दीके तारादत्त नामक तिब्बतके एक इतिहासरचयिताके मतानुसार भी यहांकी चित्रकला बहुत प्राचीन जान पड़ती है। उन्होंने प्रारम्भिक समयसे लेकर अपने समय तककी भारतवर्षीय-बौद्ध-चित्रकलाका संक्षिप्त इतिहास लिखा है। उनका कथन है कि भारतवर्षके सभी कला-कौशल "उपदेशक" के स्वर्गारोहणके बहुत पहले से ही प्रचलित हैं (४२३ विक्रमसे पूर्व।) *

यह इतिहासकार खासकर अति प्राचीन दीवार-पर बने चित्रोंकी बहुत ही प्रशंसा करते हैं। इनका कथन है कि इन चित्रोंके निर्माणकर्ता अवश्य देवता लोग थे और देवताओंके पश्चात् इस काम को 'यक्ष' अथवा पुण्यवान लोग करने लगे। इन लोगोंको स्वयं भगवान्का इष्ट था और महाराज अशोकने इन्हें २५०पू० ई० में अपने यहां काम करनेके लिये लगाया था। यक्षोंके उपरान्त यह कला नागार्जुनकी अध्यक्षतामें नाग लोगोंके हाथ लगी।

यह तारादत्तकी कही हुई बात केवल दन्त कथा नहीं हो सकती। भारतवर्षके कारीगर अब तक अपनी कला को एक गुप्त मंत्रयुक्त माया ही समझते हैं। उनका प्रायः यही विश्वास रहता है कि उनकी कला ईश्वरकी ही देन है और वह स्वयं विश्वकर्माके वंशज हैं।

आजसे प्रायः बीस वर्ष पहले यूरोपवाले इस बातको स्वीकार नहीं करते थे कि भारतवर्षमें बौद्धधर्मके प्रचारके पूर्व भी कोई चित्रकला थी। पर आज कल यद्यपि उनको विश्वास करानेके लिए अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं तथापि हठधर्मी या अहंकारसे वह अपने सिद्धान्तकी पूंछ अब भी पकड़े ही हैं। भारतको जैसे हो तैसे नीचा दिखाकर पददलित करना चाहिये, यही भारतके विषय-में उनकी नीति है। यह मान लेनेपर भी कि बौद्ध-कालके पहले यहां चित्रकला थी वह अब कहने लगे हैं कि उससे पहले चित्रकलाके कोई नियम निश्चित न थे। वह कला तो केवल खेल थी और लोगोंके कौतूहलको ही बढ़ाया करती थी। वाह! क्या सीधा सादा निर्णय उन लोगोंने कर दिया और हम लोगोंने सुन लिया। हम लोगोंको उचित है कि डंकेकी चोट उसका विरोध करें। भला क्या यह कभी सम्भव हो सकता है कि जिन प्राचीन भारतवासियोंके राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन सभी सुव्यवस्थित नियमोंसे जकड़े हुये थे और इस समय भी कुछ अंशोंमें जकड़े हुये हैं, उन्होंने चित्रकलाके विभागमें ही नियमोंको जलाञ्जली दे दी हो। यह कदापि सम्भव नहीं। कमसे कम हम तो इसको कभी नहीं मान सकते। यहां चित्रकलाके लिये भी अवश्य नियम बनाये गये थे, पर अभाग्यवश उस समयके प्राचीन चित्रोंकी भांति जिन ग्रन्थोंमें यह नियम लिखे गये थे, उनका लोप हो गया है। किन्तु बादके बने कुछ ग्रन्थोंको देखनेसे इस बातका अवश्य प्रमाण मिलता है कि बौद्धकालसे पहली भी यहां चित्र-कलाके नियम अवश्य रहे होंगे।

वत्स्ययानने तीसरी शताब्दीमें "कामसूत्र" नामक ग्रन्थ रचा है। इसमें षड्अंग अर्थात् भारती चित्रकलाके छः अंगोंका वर्णन आता है। वत्स्ययान ही 'षड्अंग' के जन्मदाता थे, यह कभी नहीं कहा जा सकता। "काम सूत्र" के देखनेसे यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि इन्होंने अवश्य किसी प्राचीन ग्रन्थसे अपनी इस पुस्तकके लिये मसाला लिया है। इसीसे यह अनुमान किया जाता है कि बौद्धकालके पहले भी "षड्अंग" बने थे और उनमें कुछ हेर फेर कर उन्हें वत्स्ययानने अपने "काम-सूत्र" में लिख दिया है। वत्स्ययान वर्णित 'षड्-अंग' इस प्रकार हैं:—

(१) रूपभेद (२) प्रमाणम् (३) भाव (४) लावण्ययोजनम् (५) सादृश्यं तथा (६) वर्णिका भङ्ग।

---

*He ascribes a great antiquity to all the arts and crafts of India, 'dating even from the remote age prior to the disappearance of the teacher 480 B. C.)

(१) रूप भेद—प्रकृतिकी वस्तुओंके आकार ज्ञानके तथा इमारतों और दृश्योंके चित्र बनानेके नियम को कहते हैं।

(२) प्रमाणम्—शरीरके अवयवोंकी नाप (anatom.) तथा पर्सपेक्टिव* (Perspective) को कहते हैं।

(३) भाव (दर्शन)—शरीरके प्रत्येक अंगपर आन्तरिक भावोंको दरसानेको कहते हैं।

(४) लावण्ययोजनं—शरीरकी अच्छी गढ़न तथा सौन्दर्य आदिके दिखानेको कहते हैं।

(५) सादृश्यं—जो वस्तु जैसी दिखाई पड़े उसे ठीक उसी प्रकार बनानेको सादृश्यम् कहते हैं।

(६) वार्णिकाभङ्ग—उचित रीतिसे कूंचियों तथा रंगोंको काममें लानेको वर्णिकाभङ्ग कहते हैं।

बादको बौद्ध चित्रकलाकी अद्भुत उन्नति देखनेसे यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि यहांके चित्रकार "षड्अंग" का अवश्य अभ्यास करते थे तथा इन्हें अपनी कलाके मुख्य सिद्धान्त मानते थे। पुराने बौद्ध चित्रोंके अवलोकनसे इन बातोंका पूर्ण प्रमाण मिल जाता है। 'षड्अंग' के नियमोंका पालन इन सब चित्रोंमें किया गया है? अजन्ताके गुफा-मन्दिरोंमें बने चित्र आज भी इस बातको दिखा रहे हैं कि 'काम सूत्र' में बताये हुए नियमोंका पालन करनेसे उस समयके चितेरोंने कैसी दक्षता प्राप्त की थी। यही नियम नहीं वरन् और दूसरे नियम भी जांच पड़ताल करके निकाले गये थे। जब बौद्धकाल बीत गया चित्रकलाका सम्मान भी घट गया; पर इन नियमोंका पालन बराबर होता था।

चीन देशकी चित्रकलामें इसी प्रकारके छः नियम रखे गये थे; पर अधिकतर यह हमारे नियमोंके ही आधार पर थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि चीनवाले इन नियमोंको भारतवर्ष से ले गये थे। आज कल भी इसके बहुत से प्रमाण मौजूद हैं।

अन्वेषण करने पर "चित्रलेखन" नामका एक दूसरा ग्रन्थ भी प्राप्त हुआ है। यह पूर्वबौद्ध कालिक कथाओंके आधारपर लिखा गया है और निश्चय अत्यन्त प्राचीन जान पड़ता है। धार्मिक चित्रोंके बनानेके विषयमें इसमें बहुत सी बातें दी गई हैं। चित्रकलाका लाभ दिखाते हुए इसमें यह कहा गया है कि इसी कलाकी सहायतासे यज्ञोंमें पूजन करनेके लिये प्रतिमा बनाई जाती थीं। इसका सबसे मनोहर प्रकरण शरीरके अवयवोंके प्रमाणके विषयमें है। देवताओंके रूप बनानेके लिये वृहत्‌परिमाण और साधारण पुरुषोंके आकार अंकित करनेके लिये छोटी नाप दी गई हैं। इस ग्रन्थमें कहा गया है कि चित्रोंमें राजाओंके आकारसे साधारण प्रकारके पुरुषोंका आकार छोटा होना चाहिये। भारतवर्षके चित्रकारोंका ही नहीं, वरन् प्राचीन समयमें अन्य देशोंके चित्रकारोंका भी यही सिद्धान्त रहता था। विक्रमसे लगभग दो हज़ार वर्ष पहले ऐसीरिया और मिश्रमें चित्रकलाका उदय हुआ था। उस समयके वहांके बने युद्धके चित्रोंमें भी राजाओंके आकार सिपाहियोंके आकारसे वृहद् दिखाये हैं। उस समयके राजा मामूली सैनिकोंसे अधिक बली तथा शस्त्रास्त्रसे अधिक सुसज्जित होते थे और समरस्थलमें अधिक पराक्रम भी दिखाते थे। इसी कारण उनका रूप साधारण मनुष्योंके रूपकी अपेक्षा विशाल बनाया जाता था। "चित्रलेखन" में देवताओं, राजाओं तथा साधारण मनुष्योंके चेहरे बनानेके लिये भी अनेक नियम दिये गये हैं। "देवताओंके चेहरे चौखूँटे, सुन्दर, कान्तिवान तथा प्रभावशाली होने चाहियें और चेहरोंकी परित्र रेखा (outline) गाढ़ी होनी चाहिये। देवताओंके चेहरेको त्रिकोण, वक्र, अण्डाकार तथा गोल बनाना निषिद्ध है। जो उपरोक्त नियमोंका पालन करता हुआ देवताओंके चित्र अंकित करेगा वह

*एक ही स्थानसे देखी जानेवाली समभूमि पर वर्तमान अनेक वस्तु जिस प्रकार नत्रों को प्रतीत होती हैं ठीक उसी भांति उनके अंकित करनेकी कलाका नाम अंग्रेजी भाषामें "पर्सपेक्टिव" है।

अवश्य ईश्वरीय शक्तिका भागी होगा।" मनुष्योंके चेहरेके विषयमें उक्त ग्रन्थकी यह आज्ञा है कि वह शान्तिपूर्ण, लम्बे, त्रिकोण, इत्यादि होने चाहियें। आगे चलकर ग्रन्थकारने कहा है कि राजाओं और देवताओंके सिरके बाल कुछ नीलमा लिये हुये दिखाने चाहियें। इस ग्रन्थने चित्रकारोंको स्त्रियों के चित्रके सम्बन्धमें कुछ स्वाधीनता दी है। पर शरीरके अवयवोंकी गढ़न बिगाड़नेके यह विरुद्ध है। ग्रन्थकारने प्रगल्भवाक्यमें यह भी कहा है कि स्त्रियों के ऐसे चित्र बनाओ कि जिन्हें देखनेसे वह खुशीला प्रतीत हों। इस ग्रन्थद्वारा चित्रकारको चित्रोंमें अनेक स्त्रियोंके रूप गढ़नेकी आज्ञा दी गई है; पर प्रत्येकका परस्पर कुछ सम्बन्ध होना अत्यावश्यक है। उनके आकार खड़े और रूप युवावस्थाके होने चाहियें। इस पुस्तकमें और भी अनेक चित्रविद्या सम्बन्धी नियम दिये गये हैं। इनपर भली भाँति मनन करनेसे यह विदित होता है कि प्राचीन भारतवर्ष ने इस कलाको भी अपनी सभ्यतामें एक अति उच्चपद प्रदान किया था और यह एक मुख्य विद्या समझी जाती थी।

यह प्राचीन ग्रन्थ जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है "शिल्पशास्त्र" से बहुत मिलता जुलता है। "शिल्पशास्त्र" का निर्माण गुप्त राजाओंके समयमें हुआ था। यह ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थोंकी भांति लोप नहीं हो गया है। आजकल भी हम लोग सुगमतासे इसकी प्रतियाँ देख सकते हैं। भारतवर्षके प्रायः सभी कला कौशलके नियम और सिद्धान्त दिये हुए हैं। इसका सर्वोत्तम प्रकरण मनुष्यके अवयवोंकी नापका है। कैसे कैसे मनुष्योंके किस किस नापके शरीर होने चाहिएँ, यह इसमें अच्छी तरहसे बताया गया है। सबका उल्लेख करना यहां उपयुक्त न होगा। केवल कुछ थोड़ेसे नियम उदाहरणार्थ दे दिये जाते हैं। ईश्वरोंकी प्रतिमा (आकार) बनानेके लिये इस ग्रंथमें एक "नवमुख" नामक प्रणाली दी गई है। यह प्रणाली बताती है कि एक आदर्श मनुष्यके शरीरके अवयवोंको किस नापका बनाना चाहिये। यदि मान लिया जाय कि चेहरे (अर्थात् ठुड्डीसे लेकर माथेमें बालोंकी जड़ तक) की नाप एक इंच है तो इस ग्रन्थमें बताये नियमके अनुसार शरीरके अन्य अवयवोंकी नाप नीचेकी भांति होगी :—

चेहरेकी लम्बाई	...	...	१ इंच
पूरे शरीरकी	„	...	८ इंच मयचेहरेके
धड़ की	„	...	३ „
जांघकी	„	...	२ „
पिंडलीकी	„	...	२ „
गरदन, घुटने और गट्टेकी	„	१	„ (सब मिलाके)
पाँव की	„	...	१ „
हथेलीकी	„	...	१ „

शिल्पशास्त्रमें ऐसी नाप और भी सूक्ष्म रूपमें दी हुई हैं। पर इनका काम बहुत विशाल मूर्तियोंके बनानेमें पड़ता है। ग्रन्थकारने आगे चलकर इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया है कि एक आदर्श मनुष्यका कंधा चौड़ा, कमर पतली (सिंहकी भांति); अंग चिकने, उँगलियाँ पतली और नुकीली; भुजाएँ लम्बी, नाभि गहरी और नेत्र बड़े तथा लम्बे (कमलके समान) बनाने चाहियें। आजकलके नई रोशनीके कुछ चित्रकला प्रेमी सज्जन गण यह सुनकर हँस पड़ते हैं। वह कहते हैं कि भला क्या कहीं मनुष्यका ऐसा आकार होता है? ऐसे सज्जनोंसे मेरी यही प्रार्थना है कि किसी पर्वके दिन काशी अथवा प्रयागमें आकर ध्यान पूर्वक प्रत्येक यात्रीके शरीरको देखें; उन्हें उपर्युक्त प्रकारका आकार अवश्य दृष्टिगोचर होगा।

केवल इसी 'शिल्पशास्त्र' के अवलोकनसे हम लोगोंको इस बातका पूरा प्रमाण मिलता है कि भारतवर्षमें चित्रकलाका कैसा ऊँचा दरजा था। इसका अध्ययन और अभ्यास वैज्ञानिक रीतिसे किया जाता था। यह कला केवल खेल न थी, वरन् यहाँकी एक मुख्य विद्या मानी जाती थी।

बिच्छू

(ले०—श्री शङ्कर राव जोशी, एल० ए-जी)

हमारे अधिकांश पाठक बिच्छूसे अवश्य ही परिचित होंगे, तथापि यह बात बहुत ही कम लोग जानते होंगे कि बिच्छू भी आत्महत्या करता है। जब यह प्राणी ऐसे संकटमें फँस जाता है कि जिसमें उसके प्राणोंकी रक्षा होनी असम्भव सा मालूम होने लगता है, तब वह आत्महत्या कर लेता है। आज हम अपने पाठकोंको यह बात सप्रमाण दिखानेकी चेष्टा करेंगे।

हमने एक बार अपने एक मित्रसे कहा कि बिच्छू भी मनुष्यकी तरह आत्मघात करता है। यह सुनकर हमारे मित्र खूब हँसे और उन्होंने हमें "पागल" की उपाधि देही दी। इसके कुछ रोज़ बाद हमने उनको प्रत्यक्ष दिखा दिया कि हमारा कहना वास्तवमें सही था।

इंगलैंडके प्रसिद्ध कवि बायरनका नाम हमारे अधिकांश पाठकोंने सुना होगा। उसने अपनी एक कवितामें उपमा देते हुए लिखा है कि बिच्छू आत्महत्या करता है। "नेचर" नामक एक अंगरेज़ी साप्ताहिक पत्रमें "बिडी" नामक एक गृहस्थने एक पत्र प्रकाशित कराया था। हम उस पत्रका सारांश नीचे देते हैं :—

जिस समय मैं मद्रासमें था, तभी निम्न लिखित घटना हुई। एक रोज़ सवेरे मेरा एक नौकर मेरे पास एक काला बिच्छू लेकर आया। बिच्छू थका सा जान पड़ता था। मैंने उसे एक डिब्बीमें बंद कर दिया। दोपहर तक बिच्छू उस डब्बीमें ही रखा रहा। दोपहरमें मैं उस डब्बीको धूपमें रखकर बिच्छूका हाल चाल देखता रहा। डब्बी धूपमें रखते ही सूर्य्यकी किरणोंकी उष्णता और दैदीप्यमान प्रकाशसे बेचारा बिच्छू भौंचक सा रह गया। वह डिब्बीमेंसे निकल भागनेके लिये चारों ओर दौड़धूप करने लगा, इसी समय मुझे यह स्मरण हो आया कि उष्णता से छुटकारा पाना असम्भव सा मालूम होनेपर बिच्छू आत्म-हत्या कर लेता है। फिर क्या था, मैंने भी प्रयोग द्वारा सत्यासत्यका निर्णय करनेका इरादा कर लिया। मैं अपनी अलमारीमेंसे लेन्स निकाल लाया और सूर्यकी किरणों और बिच्छूके बीचमें रखकर बिच्छूके ऊपर किरणोंका फोकस जमाया। ऐसा करते ही बेचारा बिच्छू एक दम घबराया। वह पसीनेमें तर बतर होकर खूब दौड़ धूप करने और वमन करने लगा। मैंने फिर उसपर किरण डालीं। वह फिर घबराया। मैंने पांच सात बार ऐसा ही किया। जब बिच्छूको मालूम हो गया कि यहांसे छुटकारा पानेकी कोई आशा नहीं और जिधर जाओ उधर ही शरीर जलता है, तब उसने लाचार होकर अपनी पीठ पर जोरसे डंक मार लिया। डंक मारते ही उसके शरीरमेंसे एक प्रकारका प्रवाही पदार्थ बाहर निकला और वह प्राणी तत्काल मर गया!"

डा० अलन टाम्सन, एफ० आर० एस० नामक एक विद्वानने भी "नेचर" नामक मासिक पत्रमें उसी सम्बन्धमें एक पत्र प्रकाशित कराया था। टाम्सनके पत्रका आशय बीडीके पत्रके आशयसे बिलकुल मिलता जुलता है। अतः टाम्सनके पत्रका आशय देकर उस बातको दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं।

लेखकने भी एक बार ऐसा ही प्रयोग किया था। लेन्सके बदले लेखकने एक दूसरे ही साधनका आश्रय लिया था।

एक बिच्छूको एक चौड़ी कटोरीमें रखकर उस कटोरीके चारों ओर आग जलाई गई थी, कटोरी गरम होनेपर बिच्छूने अपनी प्राणरक्षाके

लिये बहुत यत्न किया, किन्तु वहांसे उद्धार पानेकी निराशा होते ही उसने अपनी पीठपर डंक मारकर आत्महत्या करली।

—:o:—

धूलके रोगोत्पादक जीवाणु

साधारण हवाके एक घन गज़में १०० से १००० तक जीवाणु रहते हैं। यह जीवाणु उड़ते हुए कणोंमें चिपटे रहते हैं, क्योंकि स्वयं हवासे भारी होनेके कारण वह छोटे ढेलोंकी तरह गिर सकते हैं। इसीलिये जिस वायुमें धूल कण नहीं होते उसमें जीवाणु भी बहुत कम होते हैं। धूल उड़ानेसे हवामें जीवाणुओं की संख्या बहुत बढ़ जाती है। बहुत से बैक्टीरिया जो हवामें होते हैं हानिकारक नहीं होते, पर कभी कभी रोगोत्पादक जीवाणु उड़ते हुए त्रसरेणुओं और धूल कणोंमें चिपटे रहते हैं। मकानोंकी वायुमें छोटे छोटे उड़ते हुए कण बहुतसे होते हैं। यह बात अंधेरे कमरेमें एक छोटेसे छेद या तंग दरार द्वारा भीतर आई हुई धूपकी किरणोंमें अच्छी तरह देखी जा सकती है।

जीवाणुओंके भारी होनेके कारण भू मितलके समीपकी हवामें जीवाणुओंकी संख्या ज़्यादा होती है और ज्यों ज्यों ऊपर जाते हैं उनकी संख्या कम होती जाती है—यहां तक कि पहाड़की वायु बहुत शुद्ध होती है। जब पानी बरसता है तो हवा धुल जाती है और कुछ कालके लिए वायुमंडलमें जीवाणु कम होजाते हैं। अब हम धूलके रोगोत्पादक जीवाणुओंके विषयमें कुछ कहेंगे; परन्तु यहां यह कहदेना उचित है कि जो रोग धूलसे फैलते हैं वह विशेषतः श्वास संबंधी रोग हैं।

धूलमें पाये जानेवाले रोगोत्पादक जीवाणु

डिफथीरिया, निमोनिया और जुकाम (catarrh) के जीवाणु धूलमें पाये जाते हैं। परन्तु सबसे अधिक सामान्य क्षयरोगके जीवाणु (tubercle) (bacillus) हैं। चेचक और लाल बुखार (Scarlet fever) के जीवाणु सूखकर इधर उधर उड़कर जा सकते हैं और खसरा और सम्भवतः कुकर खांसीके भी जीवाणु हवासे फैलते हैं।

जीवाणु हवामें कहांसे आते हैं?

असावधान क्षयरोगीके मकानकी धूलमें ट्यूबर्किल बैसिलस होते हैं। जिन मकानोंमें क्षय रोगी नहीं रहे हैं वहांकी धूलमें यह जीवाणु नहीं पाये जाते। सिवाय धनुष्टंकार (tetanus) और उनके संबंधी जीवाणुओंके प्रायः सब रोगोत्पादक जीवाणु जो धूलमें पाये जाते हैं थूकसे आते हैं। थूकमें रह सकनेवाले रोगोत्पादक जीवाणुकी महानसंख्या पर यदि हम ध्यान दें [क्षय, निमोनिया, इनफ्लूएंज़ा, सर्दी, मेनिञ्जाइटिस (Meningitis,) लालबुखार (Scarlet fever) खसरा, और प्लेगके जीवाणु] तो हम इस बातकी नितान्त आवश्यकता सरलतासे समझ सकेंगे कि दूसरोंके हितार्थ इमारतों, सड़कों और आम रास्तों पर किसीको न थूकना चाहिये। रूमाल भी रोग फैलानेके कारण हो सकते हैं। इसलिये उनको जल्दी जल्दी बदलना चाहिये —विशेषतः जब कि किसीको जुकाम या श्वासनली संबन्धी कोई रोग हो, क्योंकि अगर थूक या नाकका श्लेषमा जेबके रूमालपर सूख जाय तो उसके बाद जब कभी वह झाड़ कर निकाला जायगा तो अत्यन्त छोटे छोटे (क्षुद्र) अनन्त जीवाणु लिपटे हुये कण हवामें उड़कर फैल जायंगे।

धूल रोकनेके उपाय

यद्यपि रोगोत्पादक जीवाणुओंको धूलमें मिलनेसे यथाशक्ति रोकना चाहिये फिर भी धूलको जीवाणुओंसे शून्य रखना असम्भवसा है। जैसा कि हम पहले कह आये हैं धूल बीमारी फैलाती है और इसीलिये जहां तक हो सके धूलसे बचनेकी कोशिश करनी चाहिये। मकानोंमें जहां तक हो सके पानी छिड़कवाके झाड़ू लगवानी चाहिये। यह विशेषतः

कच्चे फ़र्शोंके लिये बहुत आवश्यक है, क्योंकि इनपर झाड़ू देते हुए धूल बहुत उड़ती है। हरएक मकानका फर्श यथाशक्ति पक्का होना चाहिये, क्योंकि कच्चा फ़र्श बीमारीका घर है। म्यूनिसिपेलटियोंका भी यह कर्त्तव्य है कि वह सड़कोंपर पानी छिड़कवावें और साफ रखें। स्कूल और अन्य पब्लिक (public) इमारतें भी पानी छिड़क कर झाड़ी जानी चाहियें। स्कूलके कमरे स्कूल ख़तम होनेके बाद ही – या अगर हो सके तो बहुत तड़के—झाड़ दिये जाने चाहियें, जिसमें सुबहको जब लड़के आयें उसके पहिले ही सब गर्द बैठ जाय। अन्य पब्लिक इमारतें भी इसी तरह भीड़ भाड़ होनेके बहुत पहले ही झाड़ दी जानी चाहियें। दीवार, मेज़, कुर्सी अलमारी वग़ैरा भी गीले कपड़ेसे पोंछ देनी चाहियें, जिसमें धूल उसके साथ चिपट कर चली जाय; क्योंकि धूलको केवल हवामें उड़ाना जिससे वह श्वासमें जाय या फिर उन्हीं चीज़ोंपर बैठ जाय, बिलकुल मूर्खता है। जो कमरे ज़्यादा काममें लाये जाते हैं उन सबमें सख़्त फ़र्श (पत्थर लकड़ी) और सादा सामान (मेज़ कुर्सी वग़ैरा), भारी क़ालीन और गद्देदार सामान (upholstored furnituro) की अपेक्षा ज़्यादा स्वास्थकर (hygenic) हैं, क्योंकि सादे सामान को धूलसे बचाना सहज है। स्वास्थ्य कर्मचारियोंकी राय है कि धूल साफ करनेके लिये शून्य-बुहारी (vacuum cleaners) का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि उनके द्वारा धूल साफ हो जाती है, परन्तु उड़ती नहीं और इसीलिये श्वास द्वारा फेफड़ेमें नहीं जा सकती। जो लोग गद्देदार सामान (upholstered furniture) रखते हैं प्रायः धनी होते हैं—उनको तो कमसे कम सफाई, सरलता, तथा स्वास्थ्यके लिये एक शून्य-बुहारी अथवा वेकुअम क्लीनर (vacuum cleaner) अवश्य रखना चाहिये। मामूली तौरसे अच्छी शून्य-बुहारी (vacuum cleaner) कोई ५०) में मिल सकती है। पाश्चात्य देशोंमें विशेषकर अमेरिकामें इसका बहुत प्रयोग होता है।

धूलके रोकनेकी आवश्यकता

जीवाणु फैलाकर हानि पहुँचानेके अतिरिक्त धूलके कण स्वयं पलक (eyelid) की (lin'ng) झिल्ली और वायु नालियोंमें जलन पैदा (irritate) कर देते हैं; और इनके कोमल तलों को (surfaces) आहत करते हैं। जीवाणुओं को तो (विशेषतः मवाद उत्पादक जीवाणुओं को) यह फैलाते तथा वृद्धि करनेमें सहायता देते हैं। जहां हवामें धूल बराबर उड़ा करती है वहां आंखके रोग और गला बैठना (sore throat) बहुत होता है। धूल पैदा करनेवाले व्यवसाय बहुत ही अस्वास्थ्यकर होते हैं, जिनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं—जैसे सान रखना—कि उनमें काम करनेसे व्यवसायियोंकी श्वास नालीकी झिल्ली (linig) पैने कणोंसे इतनी आहत हो जाती है कि उनमें से बहुतसे श्वास संबन्धी (विशेषतः क्षय) रोगोंका शिकार होते हैं। यदि सान रखने और संग तराशी आदिमें पानीकी धारका उपयोग किया जाय और रूई धुनने, बुनने और अन्य धूल युक्त व्यवसायोंमें हवाके झोंकोंका प्रयोग किया जाय तो बहुत से काम करनेवाले श्वास सम्बन्धी और फुफ्फुस संबन्धी रोगोंसे बच जायं।

—मुकुट बिहारीलाल दर, बी० एस-सी०

नहरी गांवोंमें पैदावारकी कमी और उसके दूर करनेके उपाय

(ले०—पथिक)

मुझे प्रायः किसानोंसे अधिक मिलना पड़ता है। हर जगह उनसे इस बातकी शिकायत सुनता हूँ कि जबसे उनके गांवमें नहर आई है तबसे खेतोंकी पैदावार कम होती जाती है। यह कहते हैं कि जब उनके यहां नहर न थी उस समय भी

उनके यहाँ इतना ही अन्न पैदा हो जाता था जितना कि अब होता है। यह बात है भी ठीक, परन्तु सरकारी फार्मोंपर यह शिकायत नहीं है। इससे प्रगट होता है कि इस कमीके कुछ कारण हैं, जिनमेंसे मेरी रायमें मुख्य दो हैं :—

(१) कृषकोंकी निर्धनता।

(२) असावधानी, कुप्रबंध या मूर्खता।

प्रथम कारणकी विशेष व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती। इससे आप इतना ही जान लें कि हमारे कृषक निर्धनताके कारण उन विशेष यंत्रोंको खरीद नहीं सकते जो कि सरकारी फार्मोंपर काममें लाये जाते हैं। उनके पास बैल भी इतने मज़बूत नहीं होते कि वह खेतोंकी जोताई गहरी कर सकें।

द्वितीय कारण ऐसा है जो थोड़ेसे प्रयत्नसे दूर किया जा सकता है। इसमें विशेषकर नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देना चाहियेः—

(क) बिना आवश्यकताके पानी देना

प्रायः कृषक नहरमें पानी आते समय यह विचारने लगते हैं कि कदाचित् अगले सप्ताहमें पानी नहीं आया तो हमारे खेत सूख जावगे, इसलिये अभी पानी दे देना चाहिये। जल्दी पानी देनेका यह फल होता है कि पौदोंकी जड़ें खुराककी तलाशमें गहरी नहीं जातीं, ऊपर ही रह जाती हैं। जब खेत सूखने लगता है तो मिट्टी कड़ी हो जाती है और जड़ोंमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वह कड़ी मिट्टीमें गहरी जा सकें। इसलिये ऐसे खेतोंको दूसरी या तीसरी सिंचाई बहुत जल्दी करनी पड़ती है। ऐसे खेतोंके पौदे बीमार और कमज़ोर रहते हैं। उन्हें पानी भी कई बार देना पड़ता है।

(ख) आवश्यकतासे अधिक पानी देना

बहुधा कृषक खेतमें पानी काट कर अपने घर चले जाते हैं या वहीं पर सो रहते हैं। जब खेत तालावकी तरह भर जाता है तब पानी बंद करते हैं। उन्हें इस बातका ज़रा भी ज्ञान नहीं कि अधिक पानीसे क्या हानियां होती हैं। ऐसा करनेसे यह हानियां होतीं हैं :—

(१) पौदोंकी जड़ सड़ जाती हैं।

(२) अधिक पानीसे खेतमें नाइट्रेट नामी पौदेकी खूराक नत्रजन वायुके रूपमें होकर उड़ जाती है।

(३) घासोंको अपना घर बनानेका अवसर मिलता है।

(४) हानिकारक पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं, जैसे रेह।

(ग) नहर के भरोसे अधिक रक़बा बोना

बहुतसे कृषक नहरकी आशामें अधिक रक़बा (फसलोंका) बो देते हैं। अन्तमें जब पानी नहीं मिलता तो खेत बिना सींचे रह जाते हैं और पैदावार कम हो जाती है।

(घ) जमींदार और उनके कारिन्दोंकी नादिर शाही

ज़मींदार खुद भी खेत कराते रहते हैं। सबसे पहिले पानी इन्हींके खेतोंमें दिया जाता है। इसके बाद उन लोगोंकी बारी आती है जो उनकी खुशामद करते रहते हैं। इनके बाद कहीं ग़रीब कृषकोंका नम्बर आता है। इनके खेतोंकी वही दशा होती है जो उस मनुष्यकी होती है, जिसे जान निकल जानेपर अमृत पिलाया जाता है। यदि समयपर पानी न दिया जावेगा तो बहुत कम लाभ होगा।

उपाय

(१) नहरकी आबपाशी (सिंचाई) पर उतना ही रक़बा बोना चाहिये जितना कि आसानीसे सींचा जा सके। बाकी रक़बेमें वह जिंस बोनी चाहिये जो कि बिना आबपाशीके हो सके; जैसे चना, बजड़ा इत्यादि।

(२) खेतोंमें क्यारी बनाकर सिंचाई करनी चाहिये। इससे पानी भी कम लगेगा और अधिक रकबा भी सींचा जा सकेगा। समयकी भी बचत होगी।

किसानोंसे यही बात करानेके लिये अब सरकारने कानून बनाया है कि जो कृषक क्यारी बनाकर सिंचाई न करेंगे उन्हें नहरकी सिंचाई सवाई देनी पड़ेगी।

(३) जब खेत कट जावे तब पलेवा करके लोहेके हलोंसे जोत देना चाहिये। इससे घासोंकी जड़ें उखड़ जावेंगी और वह नष्ट हो जावेंगी। अधिक मूल्यके हल खरीदनेकी आवश्यकता नहीं। मेस्टन २ या ३ वाट्सहलसे यह काम लिया जा सकता है। इनके प्रयोगसे पौदोंकी खूराक भी जमीनमें तैयार हो जावेगी।

(४) जिन खेतोंमें दो या तीन फसलें बोई जाती हैं उनमें खाद भी डालते रहना चाहिये।

(५) जमींदारके दबावसे बचनेका सरल उपाय यही है कि पढ़ना लिखना सीखें और सभा इत्यादि बनाकर हाकिमोंको अपना दुःख बतलाते रहें।

मकड़ी।

(ले०—अध्यापक महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी, एल. टी., विशारद)

हमारे घरोंमें अनेक कीट पतंग देखनेमें आते हैं। यदि दो चार दिन तक झाड़ू बुहारू न लगाई जाय, किवाड़ न खोले जायं, तो घरमें जगह जगह कोनोंमें मकड़ीके जाले फल जाते हैं। आपने बहुधा देखा होगा कि यह मकड़ियां जाल फैलाकर ताकमें बैठी रहती हैं और जहां कोई मक्खी या छोटा कीड़ा चमकते हुए सुन्दर बुने हुए जालपर आकर बैठ जाता है यह अपना पंजा फैलाकर उनको अपने चंगुलमें ले लेती हैं। इन मकड़ियोंमें एक प्रकारका विष भी होता है, जो यदि कहीं बदनमें लग जाय तो बहुत पीड़ा पहुँचाता है। मकड़ियोंकी प्रकृतिके सम्बन्धमें दो एक बातें यहां लिखी जाती हैं।

कुछ मकड़ियोंमें सुन्दर जाल बुननेकी विशेष योग्यता होती है और कुछ जालकी रचनाशैलीके लिए बड़ी निपुण होती हैं। पहली कोटिमें वह मकड़ियाँ रखी गयी हैं जो पेड़ोंपर एक डालीसे दूसरी डाली तक घेरेदार जाले बुनती हैं। दूसरी कोटिमें ऐसी मकड़ियां हैं जो घरोंमें बहुधा अपना डेरा जमाती हैं। दूसरी कोटिवाली मकड़ियां दीवालके कोनोंमें जाल फैलाती हैं, जो धरातलके समानान्तर होते हैं। इस जालके ऊपर अनेक ताने बाने होते हैं, जिनमें कीट पतंग आकर फंस जाते हैं और मकड़ीके लिए बैठे बैठाए भोजनकी सामग्री जुट जाती है। इस संहारक-यन्त्रका सबसे विचित्र भाग वह होता है जहां मकड़ी बैठी हुई अपने शिकारकी बाट जोहती रहती है। यह भाग एक गोल सुरंगकी तरह होता है, जिसमें दो द्वार होते हैं जो दुहरा काम करते हैं। एक द्वार धरातलके समानान्तर होता है और जालके ऊपर तक पहुंच जाता है। दूसरा द्वार खड़ा (vertical) होता है जिसमेंसे होकर नीचे उतरनेकी राह होती है। पहले द्वारसे मकड़ी फंसे हुए शिकारपर टूट पड़ती है। दूसरे द्वारसे खटके के दर्वाज़े (Trapdoor) का काम लिया जाता है।

जब मकड़ी किसी कीड़ेको पकड़ पाती है उसका रक्त चूस कर मुर्दा शरीरको जालेसे दूर फेंक देती है। इस बातका वह बड़ा ख़याल रखती है कि मृतक शरीरका कोई अंग जालमें फंसा न रह जाय नहीं तो कीड़े पतंगे डर कर उसके चंगुलमें नहीं फंसने पावेंगे। मकड़ी जैसे ही किसी मक्खीका रक्त चूस चुकती है उसे सुरंगके दरवाज़े तक घसीट लाती है और नीचेवाले द्वारसे बाहर ढकेल देती है। जब किसी भयंकर कीड़ेका सामना पड़ता है सुरंगके इसी द्वारसे वह अपनी जान लेकर भग भी जाती है, परन्तु ऐसा अवसर बहुत कम पड़ता है।

मरे हुए कीड़ों पतिंगोंकी हड्डियां फेंकने का ही काम मुख्यतः इस द्वारसे लिया जाता है।

बहुतसे लोग मकड़ीके रूपसे घृणा करते हैं। यदि वह ध्यान से देखें तो जान पड़ेगा कि ऐसा कोई जानवर नहीं है जिसकी बुद्धि इससे बढ़कर हो और न किसीकी बनावट ही इतनी विचित्र होती है। यदि निष्पक्ष होकर देखा जाय तो इसका कुरूप भूल जायगा। कुछ आदमी मकड़ियोंसे बहुत डरते हैं। यह सच है कि कुछ मकड़ियां ऐसी होती हैं जिनका विष सांपके विषसे किसी प्रकार कम नहीं होता परन्तु ऐसी मकड़ियां गरम देशोंमें ही पायी जाती हैं। जो मकड़ियां तहखानों या अंधेरी कोठरियोंमें रहती हैं, उनके काटनेसे कहीं कहीं मृत्यु हो गयी है परन्तु साधरणतः काटे हुए स्थानके आसपास तीव्र वेदना और सूजन होती है।

चित्र—चिड़िया का शिकार करने वाली मकड़ी

इटली, सिसली, बर्बर इत्यादि भूमध्य सागरके किनारेके देशोंमें एक प्रकारकी मकड़ी होती है जिसके बारेमें लोगोंका विश्वास था कि उसके काटनेसे वही लक्षण दिखाई पड़ते हैं जो पागल कुत्तोंके काटनेसे होते हैं। पुराने लेखकोंका कहना है कि इसके काटने से मनुष्य संज्ञाहीन हो जाता है और शरीरमें ऐंठन होने लगती है, जिसके लिये गाना बजाना बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती थी। रोगीको लोग खूब नचाते थे यहां तक कि वह नाचते नाचते थक कर गिर पड़ता था और अचेत हो जाता था। परन्तु आज कलकी खोजसे जान पड़ता है कि इन मकड़ियोंमें इतना विष नहीं होता जितना उस समयके लोग समझते थे।*

मकड़ियोंकी विषकी थैली उसी प्रकारकी होती है जैसी सांपोंकी। भेद इतनाही होता है कि मकड़ियोंकी थैली बहुत ही छोटी होती है। इस थैलीका सम्बन्ध दांतसे होता है। जब मकड़ी काटती है तब दांतके द्वारा विष घावमें चला जाता है।

*इन मकड़ियोंको टैरेंटुला मकड़ा और इस नाच को टैरेंटुला डांस कहते हैं।

गरम देशोंकी मकड़ियोंमें यह विषैला द्रव इतना तीव्र होता है कि बहुत बड़े बड़े जीव काटते ही ऐंठ जाते हैं। इसीके द्वारा मकड़ी उन चिड़ियों को मार डालती हैं जिन्हें वह पेड़ोंपर पकड़ पाती हैं। दिये हुए चित्र ४में एक ऐसा ही दृश्य दिखाया गया है। एक छोटीसी चिड़िया अपने घोंसलेके पास ही मकड़ीके चंगुलमें फँस गई है।

कुछ मकड़ियां तो मुट्ठीके समान बड़ी होती हैं। यह मुर्गीके बच्चे और कबूतरोंको पकड़कर गला दबा देती हैं और तुरन्त ही निर्जीव करके रक्त चूस जाती हैं। कोलम्बियामें ऐसी मकड़ियां बहुत पाई जाती हैं। इसीलिए वहांवाले इन्हें मुर्गीका बच्चा पकड़नेवाली मकड़ी (Chicken spider) कहते हैं।

डा० रायकी वक्तृता

(गताङ्कसे सम्मिलित)

आब ज़रा उन देशोंकी ओर दृष्टि डालिये जिनमें ऐसे कड़े और निर्जीव नियम नहीं बने हुए हैं। केम्ब्रिजमें मेक्सवेलके बाद रेले, रेलेके बाद टोमसन, टोमसनके बाद रुदरफोर्ड भौतिक विज्ञानके केवेण्डिश प्रोफेसर नियुक्त हुए। इटलीमें जिस भांति प्रोफेसरोंकी नियुक्ति होती है, उसका वर्णन डा० यंगने इस प्रकार किया है:—जिस विषयका आचार्यपद खाली होता है उस विषयके विख्यात प्रोफ़ेसरोंकी एक समिति गवर्मेण्ट इस लिये बनाती है कि प्रार्थनापत्रोंपर विचार करे। प्रार्थनापत्र देनेके समयसे पांच वर्ष पहले तकके प्रार्थियोंके गवेषणात्मक कार्यका विचार किया जाता है। यदि कोई जगद्विख्यात प्रार्थी हुआ तो पांच वर्षसे पहलेके कामपर भी विचार कर लेते हैं। ऐसा करनेसे इटलीमें बड़े योग्य व्यक्तियोंकी नियुक्ति ही प्रोफेसरोंके पदपर हो पाती है, जो देशके गौरवको हर प्रकार बढ़ाते रहते हैं और अन्य देशोंके प्रोफेसरोंके मुकाबलेमें कम नहीं ठहरते।

हमारे देशमें प्रोफेसरोंकी नियुक्ति कुछ बड़े अफसरोंके हाथमें है। प्रान्तीय बेड़ेके प्रोफेसर डैरेक्टर नियुक्त करते हैं और राष्ट्रीय बेड़के इण्डिया कौंसिल। यह एक प्रकारका नवाबी ढंग है। प्रायः डैरेक्टर आदि पदाधिकारी ऐसे सज्जन होते हैं जो अपने जीवनके किसी कालमें पाण्डित्य सम्बन्धी ख्याति पा चुके हैं (यद्यपि ऐसा होना अनिवार्य नहीं है), परन्तु शासनकार्यमें पड़ जानेके कारण उन्हें विज्ञानके विविध अंगोंकी प्रगतिका कुछ ज्ञान नहीं होता। अपने स्वभाव और अभ्यासके कारण वह प्रार्थियोंकी योग्यताका निर्णय करनेके अयोग्य हो जाते हैं। और यही कारण है कि कभी कभी बड़ा खराब चुनाव हो जाता है। कलकत्ता विश्वविद्यालयके कमीशनने भरतीके वर्तमान नियमोंकी बुराइयां बतलाई हैं और यह परामर्श दिया है कि तालीमका इन्तज़ाम प्रोफेसराना ढंगपर होना चाहिये, न कि नौकराना ढंगपर।

इस देशके अधिकारी पश्चिमी देशोंमें शिक्षा पाये हुए आदमियोंका यशगान करते करते नहीं थकते। व्यवहारमें कलकत्तेके सर्वोत्कृष्ट पदवीधरोंसे (जिनमें प्रेमचन्द रायचन्द स्कोलर और दर्शन और विज्ञानके आचार्य भी शामिल होते हैं, जो अपने मौलिक निबन्धोंको पश्चिमी देशोंकी विद्वन्मण्डलियोंके मुख-पत्रोंमें छपवाकर कीर्त्तिलाभ कर चुके हैं) लण्डनके तीसरे दर्जेके आदमी या ओक्सफर्ड और केम्ब्रिजके साधारण पदवीधर अच्छे समझे जाते हैं। किसी नौसिखेको कालेज या यूनिवर्सिटीके आचार्य पदपर नियुक्त करनेके दुष्परिमाणोंपर डा० यंगने लिखा है:—

"इङ्गलेण्डमें प्रत्युत् आचार्य पदोंपर अधिकांश ऐसे आदमी नियुक्त हैं, जो नियुक्तिके समय यूरोपमें केवल होनहार विद्यार्थी समझे जा सकते थे। यह सज्जन बीस बीस सालसे या और भी अधिक समयसे काम कर रहे हैं, और तब तक करते रहेंगे जब तक कि उनके पेंशन लेनेका समय

न आ जायगा। उनमेंसे कुछ तो काम करते करते मर जायंगे और मरते समय, केम्ब्रिजमें जो उन्होंने योग्यताका परिचय दिया था उसके अतिरिक्त, कुछ काम उल्लेख योग्य न दिखाई पड़ेगा। कुछ योग्य हैं अवश्य, पर अभाग्यवश अधिकांश इसी तरह के हैं।"

भारतीय बुद्धिकी गुप्त योग्यता

स्वतंत्र और स्वस्थ अवस्थामें यदि भारतवासियोंको काम करने दिया जाय तो वह क्या कर दिखा सकते हैं, इसका ज्ञान कलकत्तेके यूनिवर्सिटी कालेज ओफ सायंसके कामसे हो सकता है। इस कालेजकी स्थापना सर रासबिहारी घोष और सर टी० एन० पालितके उदारता पूर्वक दिये हुए धनसे हुई। रुपयेकी कमीके कारण प्रयोगशाला, पुस्तकालय और मिस्त्रीखानेकी व्यवस्था यथेष्ट न हो सकी। तथापि वही एक संस्था है, जिसमें जीवन और कार्यतत्परताके चिह्न दिखाई पड़ते हैं, जिनका अन्दाज़ा उन मौलिक निबन्धोंसे लगता है जो यूरोप और अमेरिकाके प्रमुख वैज्ञानिक पत्रोंमें छपे हैं। एक वर्षमें (१९१८—१९१९) १८ व्यवहार गणित, २४ भौतिक विज्ञान और २१ रसायन शास्त्रके विभागोंसे मौलिक निबन्ध प्रकाशित हुए। तिसपर भी इस संस्थाके प्रति गवर्मेंटका वह बर्ताव है जो एक भिकमंगे लड़केके साथ होता है और उसे बहुत छोटी छोटी रकमें गवर्मेंटसे मिली हैं।

जो कुछ अभी उन्होंने कर दिखाया है उससे उनकी संभावना और गुप्त कार्यक्षमताका पूरा परिचय मिल जाता है। इस लिए यह परमावश्यक है कि भारतवासियोंको स्वयं काम करनेका पूरा मौका देना चाहिए; उन्हें सदा रस्सियों द्वारा (कठपुतलियोंकी नाईं) न नचाना चाहिये। जिस नीतिके अनुसार उनसे अभी तक व्यवहार किया जाता था वह यह थी कि उनके लिए सब काम कर दिया जाय, उनसे कुछ न कराया जाय। इस बातसे यह पूरी तरहसे समझमें आजायगा कि उनको उच्च पदोंसे क्यों वञ्चित रखा गया है। इस प्रकार योग्यता और गुप्त शक्तिको व्यर्थ नष्ट होने दिया जाता है। जिस मार्गका अवलम्ब जापानने किया है वह यहांसे बिलकुल विपरीत है और जो उसके सुपरिणाम हैं वह सभीको मालूम हैं। जिस स्वावलम्बी भारतका स्वप्न इण्डस्ट्रियल कमीशनने देखा है उसके संगठनके लिए यह परमावश्यक है कि दक्ष, विशेषज्ञ और काम करनेवाले यहां ही पैदा किये जायं।

शुद्ध विज्ञान बनाम शिल्प विज्ञान

आजकल शिल्पशालाओंके खोलनेके लिये जनताका बड़ा आग्रह हो रहा है। शिल्पशिक्षासे जो यूरोप और अमेरिकामें लाभ हुआ है, उसको और भारतकी व्यवसायिक अवस्थाकी हीनताको देखते हुए यह आग्रह स्वाभाविक है, परन्तु हमें शुद्ध विज्ञानकी उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखना चाहिये। स्मरण रहे कि शुद्ध विज्ञानके बिना शिल्प विज्ञान खड़ा नहीं रह सकता। प्रोफेसर हक्सलेने कहा है कि जिसे जनता शिल्प विज्ञान कहती है, वह विशेष समस्याओंमें विज्ञानका उपयोग मात्र है। यूरोपकी उन्नत जातियां वैज्ञानिक गवेषणाकी आरम्भिक और विकासात्मक अवस्थाएं समाप्त कर चुकी हैं, तभी उन्हें व्यवसायिक प्राधान्य प्राप्त हुआ है। हम प्रायः भूल जाते हैं कि प्रत्येक रासायनिक अथवा वैद्युत व्यवसायका आधार वह गवेषणात्मक काम होता है जो प्रयोगशालामें बरसों तक धीरे धीरे, चुपचाप, शान्तिसे होता रहता है। लगभग सौ वर्ष हुए फैरेडेने ओर्स्टेडका प्रयोग दुहराया और आश्चर्यसे देखा कि चुम्बक विद्युत धाराकी परिक्रमा करता है। इस प्रयोगसे विद्युत-मोटरोंका जन्म हुआ। बेतार कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है, जिसकी कल्पना समस्त गवेषणाओंसे अलग ही हो गयी हो; परन्तु जैसा कि प्रेग महोदयने कहा है, कि वह अटूट और क्रमबद्ध गवेषणाओंके तारतम्यकी गौण-उत्पत्ति है और फैरेडे और मैक्सवेल-

ने लगा हुई ज और मार्कोनी तक के परिश्रमका फल है।

शुद्ध और व्यवहारिक विज्ञानोंकी भारतमें उतनी ही आवश्यकता है जितनी अन्य देशोंमें है। इन दोनोंके गुणोंकी तुलना करनेके उद्देश्यसे मैं कोई लम्बा चौड़ा व्याख्यान न दूँगा, पर इतना अवश्य कहूँगा कि केवल एकके सहारे कोई देश उन्नति नहीं कर सकता। भारतमें राजनीतिक जागृति होनेवाली है, पर किसी भी देशमें राजनीतिक जीवन पनप नहीं सकता जब तक कि उसके मास्तिष्क और व्यवसायिक साधन पूर्ण रूपसे परिपुष्ट नहीं होते। भारतको अतएव शुद्ध विज्ञानकी उतनीही आवश्यकता है जितनी व्यवसायिक अथवा शिल्प-विज्ञानकी।

विज्ञानका साधारण उन्नति और शिष्टतासे सम्बन्ध

साधारण शिक्षा और शिष्टता तथा अन्य सामाजिक कामोंको भी हम उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकते। सर पोप (Sir. W. Pope.) ने ठीक कहा है।

"प्रत्येक राष्ट्रका अस्तित्व उसके कृषि और शिल्प व्यवसायोंपर निर्भर है। इनका और अन्य विद्या व्यसनोंका परिचनमें उतना ही परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना शिराओं और धमनियोंका। जहां इनमेंसे एकमें भी त्रुटि आई कि दूसरेमें भी दोष पैदा हो जाते हैं। जिस राष्ट्रमें जन साधारण विज्ञानका यथोचित अनुशीलन नहीं करते वहां मास्तिष्ककी उपज कम हो जाती है, धीरे धीरे शिल्प नष्ट होने लगते हैं, निरी कृषिका आश्रय रह जाता है और राजनीतिज्ञोंकी जगह कोरे आन्दोलन-कर्ता रह जाते हैं।"

हम अपने देशमें ही इन सिद्धान्तोंकी अवहेलनाका फल भोग रहे हैं। जनताकी कार्यक्षमता बहुत घट गई है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण भारतीयोंके जीवनकी अल्पतामें मिलता है। जन्म होनेपर यहां बच्चेकी २३ वर्ष तक जीते रहनेकी आशा की जाती है, पर इङ्गलैण्डमें ४६ वर्ष। अभाग्यवश भारतमें यह औसत जीवन बराबर घटता जा रहा है।

हमारी सांसारिक उन्नतिके लिए तो विज्ञानका अध्ययन अनिवार्य है ही, परन्तु भारतीय युवकोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें इसका विशेष महत्व और आवश्यकता है। जैसाकि हम पहले बतला चुके हैं विद्याविषयक निस्तब्धता रहनेके कारण हममें शास्त्रके प्रमाणका बात बातमें सहारा ढूंढ़नेकी बुरी लत पड़ गयी थी। बुद्धि विश्वासके पहियेसे बंधी हुई थी और शास्त्रार्थ करनेमें सदा ऐसी बातोंको मान कर चलना पड़ता था, जिनमें सन्देह करनेकी या जिनमें दोष दिखलानेकी किसीको स्वतंत्रता न थी। इस लिए बुद्धिको उसके बन्धनोंसे मुक्त करना परमावश्यक था और इस कार्यमें जो सफलता विज्ञानको हो सकती है, वह निर्विवाद है। विज्ञान किसी भी बातको विश्वासपर नहीं स्वीकार करता, वरन् खोज और आलोचनाकी विविध रीतियोंसे जांच करके मानता है। हमारे मनोंको उदार और निष्पक्ष बनाना विज्ञानके ही हाथ है। हमारे नवयुवकोंमें योग्यताकी कमी नहीं है। केवल धैर्य और दृढ़ संकल्पकी आवश्यकता है। विज्ञानका अनुशीलन वही कर सकता है जो आत्म समर्पण करनेके योग्य है, यह हक्सलेका मत है। विज्ञानके अनुशीलनमें धैर्यसे निरीक्षण करके घटनाओंकी व्याख्या करनी पड़ती है। वहां तर्ककी दाल नहीं गलती। वैज्ञानिक चित्त वृत्तिके विषयमें फैरेडेने बहुत ठीक कहा है:—

"वैज्ञानिकको सब बातें सुन लेनी चाहिये; पर निर्णय करनेका भार अपने ऊपर रखना चाहिये; उसे ऊपरकी दिखावटसे ही धोखा न खाना चाहिये; न उसे कोई कट्टर मत स्थिर कर लेना चाहिये; न किसी सम्प्रदायका अनुयायी होना चाहिये और सिद्धान्त निश्चय करनेमें किसीको गुरु न बनाना चाहिये। उसे वस्तुओंमें, न कि व्यक्तियोंमें, श्रद्धा रखनी चाहिये। सत्यकी खोज उसका परम उद्देश्य होना चाहिये। यदि इन सब गुणोंके होते हुए वह

परिश्रम करे तो प्रकृतिके मन्दिरमें अवश्य जानेके समर्थ होगा।" हमारे युवकोंको चाहिये कि इन गुणोंको अंगीकार करें और इसका सरलतम उपाय विज्ञानका अनुशीलन है।

हर तरहसे हमारी व्यक्तिगत और जातीय वृद्धि-के लिए विज्ञानकी उन्नति परमावश्यक है। इस उद्देशकी पूर्त्तिके लिए गवर्मेंएट और जनताकी सह-कारिता परमावश्यक है। गवर्मेंएटको विज्ञान शिक्षामें रुपया अधिकाधिक लगाना चाहिये, उधर हमारे उदार दान शील देशी भाइयोंका भी कुछ कर्तव्य है। संसारके धन कुबेरोंने, साहूकारोंने, विज्ञानके प्रचारमें बहुत कुछ सहायता की है। हमारे देशमें भी टाटा, पालित और घोषके उदाहरण हैं। जिस नगरमें मैं इस समय व्याख्यान दे रहा हूं, रुईका अच्छा व्यवसाय है। यहां साहूकारोंके मुकुट-मणि, मिलाधीश और व्यापारी रहते हैं। उन्हें एएड्रू कारनिगीका (जो अपने परिश्रमसे ही दुनिया-में सबसे बड़ा सेठ बन गया था) यह मौटो न भूलना चाहिये कि "लक्ष्मी-सम्पन्न होकर मरना अपमानित होकर मरना है।" उसने १०० करोड़से भी ज़्यादाका दान विशेषतः मजदूरोंके पाठनालयों और गवेषणालयोंके निमित्त दिया। मैं स्वदेश वासी धनवानों और श्रीमानोंसे निवेदन करता हूं कि कारनिगी जैसे परोपकारी व्यक्तियोंका अनुकरण करें और मुझे निश्चय है कि उनकी सहायतासे विज्ञानका यथेष्ट प्रचार होगा। ऐसे कालेजोंकी जहां भारतीय सज्जन गवेषणा कर रहे हैं, संख्या बढ़ानी चाहिये। देशके प्रत्येक विद्यालयमें शुद्ध विज्ञान (विशेषतः भौतिक और रसायन शास्त्र) की शिक्षाकी ओर अधिक ध्यान दिया जाय और व्यवहारिक विज्ञानकी शिक्षाके लिये अधिक विद्या-लय खोले जायं। स्मरण रहे कि वर्तमान समयमें जो पाश्चात्य देशोंको व्यवसायिक लकवा मार गया है उससे भारतको पूरा पूरा फ़ायदा उठाना चाहिये। यदि ईश्वरकी कृपासे भारतवर्ष इस सुअवसरको हाथसे न जाने देगा; यदि उसके वैज्ञानिक और व्यवसाय-कुशल सपूत इस गाड़ीके चलानेमें कंधा लगायें; यदि भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, खानिविद्या, इञ्जीनियरी, नौका और वायुयान चालन और जीव विज्ञानके अध्ययन करने वाले हजारोंकी संख्यामें कालेजोंमें भर जायं; यदि ला कालेजोंकी अपेक्षा सायंस और शिल्प कालेजोंमें अधिक विद्यार्थी जाने लगें; यदि भारतीय बेड़ोंमें भारतीय ही लिये जाने लगें; और यदि धनवान लोग विज्ञान और शिल्प सीखनेके लिए अधिक छात्र वृत्तियां देने लगें; तो भारत संसारकी जातियोंमें शीघ्र ही अग्रसर हो जायगा और फिर उसका राजनीतिक उद्धार सहज ही हो जायगा।

गैसकी रोशनी

आजकल कई प्रकारकी गैस रोशनी करनेमें काम आती हैं। इनमें सबसे अधिक काममें आने वाली गैस कोल गैस है, जो पत्थरके कोयलेको बन्द बरतनों या रिटोर्टोंमें हवाकी अलग रखकर तपानेसे बनती है। यह बात बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध थी कि उपरोक्त क्रियासे एक जलनेवाली गैस बनती है; पर विलियम मुर्डोक (William Murdoch) नामी एक स्काचने पहले पहल यह कर दिखलाया (सं० १८५५ वि०) कि इसी विधिसे मामूली नित्यके कामोंके लिए भी गैस बनाई जा सकती है। इस घटनाके दस या बारह बरस पीछे ही गैसका इङ्गलेण्डमें सर्वत्र प्रचार होने लगा, जिससे नगरोंकी शोभा और जन साधारणकी सुविधामें बड़ी वृद्धि हुई। उन्नीसवीं शताब्दीके एक लेखकने इस महतपरिवर्तनका इस भांति वर्णन किया है:—"सं० १८१० ई० से पहले जो हमारी सड़कोंकी मन-हूस शकल थी वह हमें अच्छी तरह याद है। उस ज़मानेमें सड़ककी लम्पोंकी इतनी खराब रोशनी

होती थी कि राहगीर चोर और चौकीदार, फर्श और नालीमें, फर्क न जान सकता था। अब तो हालत बहुत बदल गयी है, क्योंकि लम्पोंकी रोशनी दिनकी रोशनीसे कुछ ही कम है। इसीसे बहुतसे भय और असन्तोषके वह कारण गलियोंमें देखनेमें नहीं आते, जिन्हें किसी ज़मानेमें विवश होकर सहना ही पड़ता था।"

रेलकी गाड़ियोंमें प्रायः तीन तरहके लेम्प आज कल देखनेको मिलते हैं। एक वह जिनमें खाली गैस जलती है। दूसरे वह जिनमें गैस द्वारा गरम होकर जाली प्रकाश करती है। तीसरे बिजलीके लेम्प। इन तीनों प्रकारके लेम्पोंमें पाठकोंने अन्तर देखा होगा। केवल गैसकी लौके और गैस द्वारा गरम हुई जालीके प्रकाशमें कितना महत् अन्तर है तथापि उक्त लेखकने गैसके प्रकाशको ही दिनका प्रकाश जैसा बतलाया है। यदि वह उत्तम जालीका प्रकाश देख पाता तो उसके आश्चर्यका क्या ठिकाना रहता, पर एक बात इस कथनसे अवश्य प्रतीत होती है और वह यह है कि गैसकी रोशनीके पहले गलियोंमें बड़ी खराब रोशनी होती होगी।

पत्थरका कोयला कोई निश्चित यौगिक नहीं है। वह कई पदार्थोंका मिश्रणमात्र है, पर मिश्रणके अवयवोंकी सच्ची प्रकृतिका ज्ञान हमें अभी तक नहीं हुआ है। कोयलेमें निम्नलिखित मौलिक पाये जाते हैं:—कर्बन, उज्जन, ओषजन, नत्रजन और गंधक। अन्तिम दो कम मात्रामें पाये जाते हैं। जब पत्थरके कोयलेको बन्द बरतनों (रिटोर्टों) में तपाते हैं या डिस्टिल करते हैं तो जलानेकी गैस, द्रवोंका मिश्रण, जिसमें अमोनिया और टार (अलकतरा) प्रधान होते हैं, प्राप्त होता है और रिटोर्टमें कोक बच रहता है। वास्तवमें उत्पन्न हुए पदार्थोंका प्रकार और उनकी मात्रा, कोयलेकी प्रकृति और
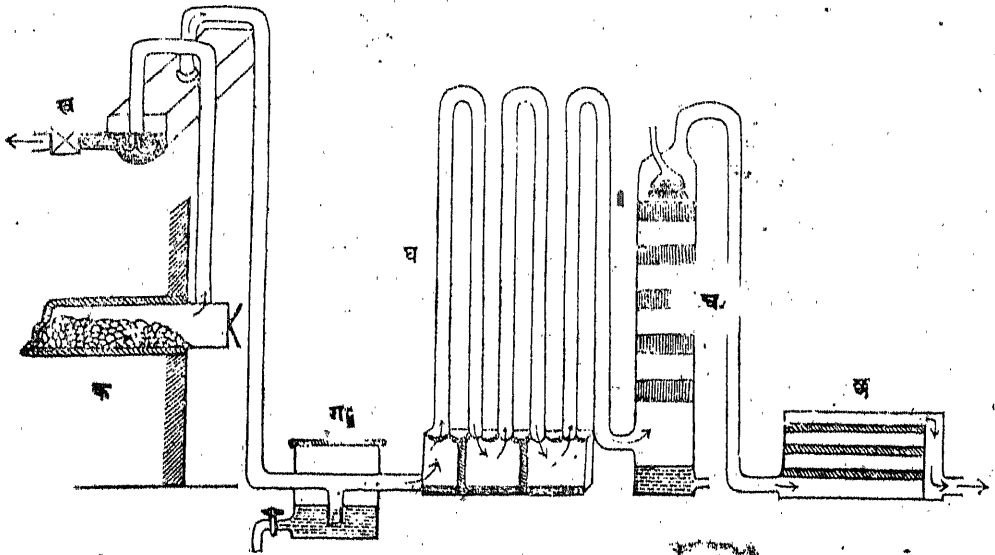
चित्र ४—कौल गैस बनाने और शुद्ध करनेका यंत्र

तपानेके तापक्रम (आंच) पर निर्भर होता है, परन्तु प्रायः गैसके कारखानोंमें एक टन कोयलेसे नीचे दिये पदार्थ इन परिमाणोंमें मिलते हैं :—

(१)	जलानेकी गैस	११००० घन फुट
(२)	अलकतरा	१२० पौण्ड
(३)	अमोनियम गंधेत	२५ पौण्ड
(४)	कोक	१५०० „

५० वर्ष पहले अमोनिया और अलकतरा किसी काममें न आते थे, बल्कि उनका पैदा होना एक

प्रकारकी आफत समझी जाती थी। पर आज कल यह बड़े कामके पदार्थ समझे जाते हैं। कभी कभी तो अमोनियाके दाम तपाये हुए कोयलेसे ज्यादा बैठते हैं। अलकतरेसे तो आज कल न जाने कितने अमूल्य पदार्थ बनाये जाते हैं। कोकका भी लोहेके कारखानोंमें बहुत काम पड़ता है। पाठक इसका तथा गैस बनानेका सूक्ष्म वृत्तान्त 'ताताका लोहेका कारखाना' शीर्षक लेखमें पढ़ चुके हैं।* यहां पर केवल गैस बनानेका कुछ विस्तृत वृत्तान्त दिया जायगा।

कोयला बड़े बड़े मिट्टी (फायरक्ले) के बरतनोंमें तपाया जाता है। इनमेंसे एक क चित्र ५ में दिखलाया गया है। यहांसे गैस ऊपर जानेवाली नलीमें चढ़ती है, जिसका दूसरा छोर एक नालीमें डूबा रहता है। यहां पर कुछ पानी और अलकतरा जमा होजाता है, जो बहकर ख द्वारा टार-वेल (कोलटार जमा होनेका स्थान) में पहुंच जाता है। जैसा तीरों द्वारा बतलाया है गैस एक दूसरे पै ग में चढ़कर ग में होती हुई घ में पहुंचती है। ग में पहुंचनेपर बहुत कुछ जल अमोनियाको घुलाकर नीचेके हौजमें जमा हो जाता है। घ में भी बड़ी लम्बी लम्बी नलियां हैं, जिनमें गैस खूब ठंडी हो जाती है और रहा सहा पानी और अमोनिया (घोल) जमा हो जाता है। घ से निकल कर गैस च गुम्बदमें चढ़ती है। च गुम्बदके ऊपरसे पानीका फव्वारा गिरता है, जो गैसको अच्छी तरह धो देता है। धोनेसे प्रायः बचा खुचा अमोनिया, कुछ कर्बनद्विओषिद (CO_2) और उज्जन गन्धिद (H_2S) पानीमें घुल जाते हैं। यहांसे निकल कर गैस छ में जाती है जहां उपरोक्त दोनों पदार्थ गैसमेंसे अलग कर लिये जाते हैं। कर्बन द्विओषिद और उज्जन-गन्धिदका अलग करलेना बड़ा आवश्यक है, क्योंकि पहला पदार्थ तो गैसके प्रकाशको कम कर देता है, दूसरा जलकर गंधक द्विओषिद बनाता है, जो मकानोंमें रहनेवालोंके स्वास्थ्यको और रखे हुए सामानको खराब कर देता है।

छ में पहले गैसोंको चूनेकी तहोंमें से निकलना पड़ता है, जिनमें कर्बनद्विओषिद जज़्ब हो जाता है। बादमें लोह ओषिदमें होकर गैस निकलती है। उसमेंका उज्जन गंधिद लोह ओषिदको लोह गंधिदमें बदल देता है और स्वयम् पानी बन जाता है। यह लोह गंधिद यदि हवामें रख दिया जाय तो फिर ओषिदमें बदल जाता है और गंधक अलग हो जाता है। इस भाँति उसी लोह ओषिद का कई बार प्रयोग किया जा सकता है। पर कुछ दिनों बाद उसमें इतना गंधक इकट्ठा हो जाता है कि वह निकम्मा हो जाता है और गंधक का तेज़ाब बनानेवालोंके हाथ बेच दिया जाता है।

शुद्ध होनेके बाद गैस गैसमापक (गैसोमीटर) में पहुँच जाती है और वहांसे ग्राहकोंके पास पैपों द्वारा पहुँचती रहती है।

हम पहलेही बतला चुके हैं कि गैसका संगठन कोयलेकी जाति और तापक्रमपर निर्भर होता है। इसी लिए भिन्न भिन्न कारखानोंकी गैस भिन्न भिन्न संगठनकी होती हैं। यदि एक ही कारखानेको लिया जाय, तो उसमें भी सदा एकसी गैस नहीं बनती है। मामूली तौरपर गैसके अवयवोंके प्रकार और परिमाण इस प्रकार होते हैं:—

उज्जन	४८ प्रतिशत (आयतनमें)	
मिथेन	३५	,, ,,
असंपृक्त कर्बोज्ज	४	,, ,,
कर्बन एकोषिद	५	,, ,,
कर्बन द्विओषिद	५	,, ,,
नत्रजन	६	,, ,,
ओषजन	५	,, ,,

लौमेंसे क्यों प्रकाश निकलता है?

ऊपरकी गिनाई हुई गैसोंमेंसे नत्रजन और कर्बन द्विओषिद जलती ही नहीं, यह तो बिना जले हा वायुमण्डलमें जा मिलती हैं। अतएव इनके रहनेसे गैस पतली पड़ जाती है (उसमें मिलावट

*देखो विज्ञान भाग ७ पृष्ठ ६६

हो जाती है) और इसीलिये उसकी प्रकाश करनेकी शक्ति कम हो जाती है। उज्जन अप्रकाशमान अदृश्यप्राय लौसे जलती है; कर्बन एक ओषिद्के जलनेसे अप्रकाशमान नीली लौ पैदा होती है, मिथेन मन्द प्रकाशवाली लौसे जलती है। इथिलीन आदि असंपृक्त कर्बोज्ज अवश्य प्रकाशमान लौ पैदा करते हैं और इन्हींसे गैस का प्रकाश होता है। यहांपर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि गैसोंके जलनेसे प्रकाश क्यों पैदा होता है? क्या कारण है कि मिथेन अथवा इथिलीनके जलनेसे प्रकाश पैदा

चित्र ६—मोमबत्ती की लौ। क—बेजली गैस। ख—जलती हुई प्रकाशमान गैस। ग—नीला भाग, जिसमें भाप बड़ी तेज़ी से जलती है। घ—जलती हुई गैसका अदृश्य-प्राय प्रान्त।

हो और उज्जनके जलनेसे न हो? इस प्रश्नका उत्तर सर हम्फ्री डेवीने बहुत दिन हुए दिया था। लौका प्रकाशमान होना उन कर्बन-कणोंपर निर्भर होता है, जो कर्बोज्ज़ोंके टूटनेसे पैदा होते हैं और जलती हुई गैसोंकी गर्मीसे गरम होकर प्रकाश देने लगते हैं। इन कर्बन-कणोंके वर्तमान होनेका प्रमाण यह है कि यदि किसी कटोरीको किसी लौके प्रकाशमान भागमें थोड़ी देर रखें तो उसपर काजल जम जाता है। प्रायः यह कण वायुमें नहीं पहुँच पाते, क्योंकि लौके किनारे तक पहुँचनेपर वह वायुकी ओषजनसे मिलकर कर्बन द्विओषिद बना लेते हैं। इसीलिये प्रत्येक लौमें, जो कर्बोज्ज़ोंको जलानेसे पैदा होती है, तीन प्रान्त होते हैं। एक भीतरी प्रान्त जिसमें बेजली गैस अथवा वाष्प रहती है। दूसरा प्रकाशमान प्रान्त जिसमें उत्तप्त कर्बन-कण रहते हैं। तीसरा एक अदृश्य-प्राय बाहरी भाग जो प्रकाशमान भागको घेरे रहता है और जिसमें कर्बनकण जलते हैं।

चित्र ७—क भागमें यदि जल्दीसे दियासलाईका सिरा घुसेड़ दिया जाय तो मसाला न जलेगा। क्योंकि उसमें बेजली गैस होती है। इसी प्रकार यदि उसमें एक नलीका सिरा रख दिया जाय, तो बेजली गैस नलीके दूसरे सिरेसे निकलने लगेगी और जलाई जा सकती है।

उपर्युक्त व्याख्यासे ज्ञात होगा कि यदि कर्बन-प्रद पदार्थ गैसमें मिला दिये जायँ तो गैसकी प्रकाश देनेकी शक्ति बढ़ाई जा सकती है। इसीलिए असंपृक्त कर्बोज्ज़ोंको मिलाकर कम प्रकाश देनेवाली गैसोंको अधिक प्रकाश देनेवाली बना देते हैं।

इसी प्रकार उज्जनके जलनेसे जो लौ पैदा होती है, उसमें ठोस कण पहुंचा दें तो तीव्र प्रकाश उत्पन्न होता है। उज्जन और ओषजनके

मिश्रणको जला कर उसमें चूनेकी एक छड़ी रख देते हैं। छड़ी खूब गरम होकर तब प्रकाश देने लगती है। इसीको लैम लैट कहते हैं।

कोल गैसमें यदि ओषजनकी पर्याप्त मात्रा मिला दी जाती है तो बहुत ज्यादा गरमी पैदा होती है। इस सिद्धांतका प्रयोग बुनसन नामी वैज्ञानिकने एक बरनरमें किया था जो अबतक उसके नामसे विख्यात है। बुनसनके बरनरमें गैस एक बहुत छोटे छेदमेंसे निकलती है। यह छेद एक चौड़ी नलीसे घिरा हुआ होता है, जिसके निचले भागमें दो छेद होते हैं। गैस छिद्रमेंसे बड़े जोरसे निकलती है और ऊपर चढ़ती हुई आसपासके छेदोंमेंसे हवा खींचती हुई साथ ले जाती है। इन पार्श्वस्थित छेदोंको बन्द करने या थोड़ा बहुत खोलनेके लिये एक पोला नलीपर चढ़ा रहता है। इस पोलेमें भी उतने ही बड़े छेद रहते हैं। अतएव इसके छेद और नलीके छेद जब मिल जाते हैं तब पूरे खुले रहते हैं, नहीं तो थोड़े खुले होते हैं या बिलकुल ढक जाते हैं।
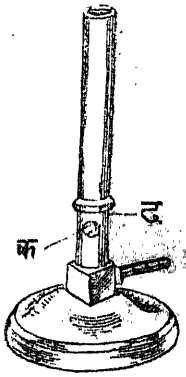
चित्र ८—क, छिद्र। द, पोला।

बरनर जलानेके लिए पहले नलीके छेद पोला घुमा कर बन्द कर देने चाहियें। दियासलाई जला-कर गैसकी टोंटी खोल गैस जलानी चाहिये। पहिले प्रकाशमान लौ पैदा होती है। फिर पोला घुमाकर अप्रकाशमान कर देना चाहिये। यदि बहुत ज्यादा हवा नलीमें घुसती है तो लौ विस्फोटन-शील हो जाती है और नलीके अन्दर प्रवेश कर सूक्ष्म छिद्रके ऊपर जलती रहती है। ऐसी अवस्थामें गैसके जलनेसे बड़े हानिकारक पदार्थ पैदा होते हैं, जिनकी उपस्थिति सौभाग्यवश उन-की दुर्गन्धसे मालूम हो जाती है। यदि हवाके स्थानपर हम ओषजनका प्रयोग करें तो और भी ज्यादा गर्मी पैदा हो सकती है, क्योंकि हवामें जो ओषजनके साथ नत्रजन मिली रहती है वह उसे पतली और निर्बल कर देती है। पर ओषजनका प्रयोग करते समय उपरोक्त बरनर काममें नहीं ला सकते, क्योंकि इसमें लौके नलीमें प्रवेश करने-का और विस्फोटन होनेका डर रहता है। इसी-लिये एक विशेष बनावटका बरनर काममें लाया जाता है। इसमें दो नलियां होती हैं, एकके भीतर दूसरी। गैस बाहरकी नलीमें जाती है और मुँह-पर जला दी जाती है। एक लम्बी धुआँ देती हुई लौ इस प्रकार पैदा होती है अब भीतरी ट्यूब द्वारा हवा अथवा ओषजन भेजी जाती है और वह पहलेकी लौको जोर-दार, ज्यादा गरम और ज्योति हीन कर देती है। ऐसी लौ यदि किसी चूनेकी डली या छड़ी से स्पर्श करे तो उसे श्वेत-उत्तप्त कर दे। फिर छड़ीमेंसे बड़ा तीव्र प्रकाश निकलता है। यह भी एक प्रकारकी लैमलैट हुई।
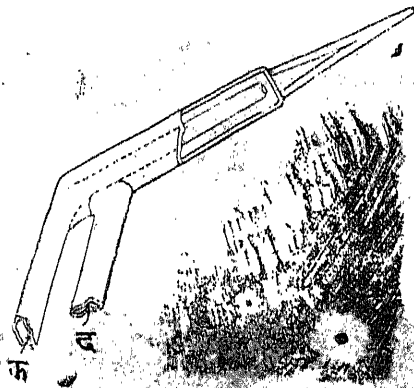
चित्र ९—द, द्वारा गैस जाती है क, द्वारा वायु या ओषजन जाती है।

इस ओषजन-कोलगैस-लौका प्रयोग कृत्रिम रत्नोंके बनानेमें सफलता पूर्वक हुआ है। कोलगैस-की लौका प्रकाश साधारणतः कम होता है। यह पाठक रेलके डिब्बोंमें देखते ही होंगे, परन्तु जालीकी (मैंटिल) सहायतासे यह प्रकाश बहुत तेज किया जा सकता है। जालीके आविष्कारने ही अब तक कोलगैसको आलोककारियोंके समूहमें अच्छी स्थितिमें छोड़ा है, नहीं तो बिजली कभीकी इसका सिर नीचा कर देती और किसी कामका न

छोड़ती। कलकत्तेकी गलियोंमें और सड़कों पर जो गैसका प्रकाश होता है वह प्रयाग और लखनऊकी बिजलीकी बत्तियोंसे कहीं बढ़ा चढ़ा है।

एसीटिलीन

कोल गैसको छोड़ दूसरा स्थान एसिटिलीन-का है। यह गैस गैसमसाले (केलसियम कर्बिद) पर पानी डालनेसे पैदा होती है। यह बाइसिकिलों और मोटरोंमें प्रायः जलाई जाती है। साधारण तौरपर तो यह धुआं देनेवाली ज्योतिसे जलती है, पर खास तौरके बरनरमेंसे निकलनेपर, जिसमें निकलनेसे उसमें कुछ हवा मिल जाती है, वह बड़े तीव्र प्रकाशसे जलती है। पर अभा-ग्यवश बड़े पयमानेपर इसका प्रयोग नहीं हो सकता। इसके दो कारण हैं। एक तो इसमें बड़ी दुर्गंध आती है। दूसरे यदि इसे इकट्ठा करके पात्रमें दबा कर रखें तो धड़ाके के साथ यह खुद बखुद उड़ जाती है और नुकसान पहुँचाती है। इसका एक महत्व पूर्ण उपयोग 'आगका चाकू' शीर्षकमें दिया है।
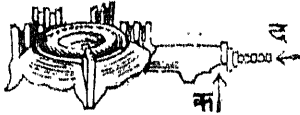
चित्र १०—गैस चूल्हा। द द्वारा गैस प्रवेश करती है। क, द्वारा वायु जाती है। बीचके छल्लेमें जो छिद्र हैं, उनमेंसे निकल कर गैस जलती है। उठे हुए डंडों पर पतीली रक्खी जाती है।

—करामत हुसन कुरैशी, एम. एस-सी.

गृहस्थ विद्यार्थी

[ले०—पं० मनोहरलाल भार्गव, एम. ए.]

'लाइन, ललाइन, क्या कर रही हो,' यह कहती हुई रामूकी मा लाला शिवनरायनके घरके सकड़े आंगनमें जा खड़ी हुई। इतनेमें, "आई" यह शब्द रसोई घरमें-से सुनाई पड़ा। रसोई क्या थी, धुआंका भण्डार था। उसमेंसे धुआं निकलकर तंग आंगनाई और इधर उधरके छोटे छोटे कमरोंमें भर रहा था। लाला शिवनरायनकी गृहलक्ष्मी इसी धूमागारमेंसे आंखें रगड़ती हुई बाहर निकलीं और बोलीं, "कहो रामूकी माई, कैसे आईं। आओ, बैठो।"

रामूकी मा कुछ मटक कर बोली, "कुछ खबर भी रहती है कि दिन रात चकी चूल्हेसे ही भूभा करती हो। तुम्हारे द्वारपर रंगपुरसे नाई लल्लूको देखने आया है और लालाको आवाज दे रहा है, पर तुम्हें पता ही नहीं।"

ललाइन यह शुभ समाचार सुनकर प्रसन्न हुई और बोलीं, "रामूकी मा, तुम्हारे हाथ जोड़ूं, बाहर खटिया डाल दो और नाऊके चिलम पानीका ठीक कर दो, तब तक मैं रसोई बनाती हूँ और लाला भी आये जाते हैं।" यह सुन रामूकी माने सब ठीक ठाक कर दिया और नाऊसे लालाकी और उनके बेटे रामदयालकी बड़ी तारीफ करती रही।

रामूकी मा एक विधवा ब्राह्मणी थी, जो लाला शिवनरायनके पासवाले घरमें रहा करती थी। यह बहुत धनाढ्य कुलकी कन्या थी, पर ब्याही आई थी एक कुलीन किन्तु गरीब घरमें। कुटिल काल न जाने कितनोंको बनाता बिगाड़ता रहता है, न जाने कितनोंकी आशालताओंको फलने फूलनेके पहले ही सुखाकर अनर्थ करता रहता है। ब्याहके थोड़े दिन बादही रामूकीमाके मायकेवालों का काम बिगड़ गया, दिवाला पिट गया और कोई नामलेवा और पानी देवा तक न रहा। रामूकी माने पतिको सर्वस्व समझ, उन्हींकी सेवामें रत रह कर अपने मनको शान्ति दी, पर दो वर्षमें ही उसके पति देव और उसकी आंखोंका तारा, मनका दुलारा रामू भी उसे धोखा दे सदाके लिये चल बसा। इस वज्रपातको भी रामूकी माने सह लिया और तबसे सब गांवके बच्चोंको प्यार करना, उन्हें खिलाना पिलाना और आड़ी भीड़में सबके काम आना, यही उसका नियम, यही उसका व्रत है। गांवकी सरल हृदया स्त्रियां भी उसके इस सद्-

व्यवहारको नहीं भूलतीं और सदा उसका मान, आदर करती रहती हैं और उसे किसी बातकी तकलीफ नहीं होने देतीं। एक रामूकी खो, उसके हृदयके प्रेमने अनेक बालकोंकी जीवन-बेलियोंको सींचा और वह गांव भरके बालकोंकी "डोकरी" हो रही है।

लाला शिवनरायनलाल एक उच्च कुलके कायस्थ हैं, पर हैं बहुत गरीब। बिचारे नित्य अपने गांवसे दो कोस चलकर कानपुर जाते हैं, वहां दिन भर एक दुकानपर मुनीमका काम करते हैं, शामको फिर दो कोस लौट कर आते आते बदहवास हो जाते हैं। पर करें क्या? पापी पेट सब कुछ करा लेता है। इतना परिश्रम करनेपर भी बिचारेको १०) महीनेके आखीरमें मिलते हैं। शायद इतनेमें भी उनकी मार पीट कर गुजर हो जाती; क्योंकि घरमें केवल तीन प्राणी थे; पर उन्हें ४) महीना एक विधवा बहिनको भेजना पड़ता था। इस कारण घरका खर्च भी बड़ी मुश्किलसे चलता था।

लाला शिवनरायनका लड़का, रामदयाल, बड़ा परिश्रमी और सहनशील और विद्या व्यसनी था। वह नित्य अपने पिताके साथ सवेरे ही कानपुर चला जाता था। वहां स्कूलमें पढ़ता और शामको वापिस आता। लड़केको तेज और ज़हीन समझ स्कूलकी फीस माफ कर दी गई थी और मास्टर गण पुस्तकें भी मंगनी दे दिया करते थे। रामदयाल इस वर्ष नवीं कक्षामें पढ़ता था। यद्यपि लाला शिवनरायनकी हालत अच्छी न थी, तथापि जिनके घरोंमें अनब्याही लड़कियां बड़ी उम्रकी थीं, कभी कभी रामदयालका स्मरण कर लेते थे। रंगपुरके लाला भवानी दयालने अपनी लड़कीकी सगाई अच्छे अमीर घरानोंमें करनेकी बड़ी कोशिश की, पर सफल न हुए। जो लड़के इंट्रेंस पास थे उनके पिता दो हज़ारसे कम पर राज़ी ही न होते थे। हताश हो रामदयालकी ओर उनकी दृष्टि गई और उन्होंने बात पक्की करनेके लिये नाई भेज दिया।

ललाइनजी भी नित्य देवी देवताओंसे मिन्नत मांगा करती थीं कि लल्लूका ब्याह जल्दी हो जाय, जिसमें उनके एकान्त कारावासका भार कुछ कम हो जाय। आज लाला और ललाइनके हर्षका पारावार नहीं था।

× × × × ×

रामदयालका विवाह हो गया। बहू घर आई। बड़ी खुशियां मनाई गईं। ब्याहकी धूम धाम खतम होनेपर जब हिसाब लगाया तो पता चला कि महाजनके २००) से अधिक देने हैं। इसका ख़्याल आते ही लाला जीकी खुशी आधी रह गई। अब उन्हें दिन रात कर्ज़के अदा करनेकी फिक्र रहने लगी। इसी प्रकार एक साल और गुजर गया और रामदयाल भी इण्ट्रेंस पास हो गया। गरमियोंकी छुट्टीमें एक जगह नौकरी करके उसने कुछ रुपया भी कमा लिया।

छुट्टियां खतम होनेके उपरान्त रामदयाल प्रयागके हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउसमें दाखिल हो गया और इष्ट मित्रों और शहरके कुछ सज्जनोंकी सहायता से तीन ट्यूशन मिल गये, जिनसे ३०) के लगभग उसे आमदनी हो जाती थी। अब लाला शिवनरायनकी कुछ आशा बँधी। मौक़े बेमौक़े उन्हें रामदयालसे कुछ सहायता मिलती रहती थी। वह समझने लगे कि दो तीन बरस और मुसीबतके काटने हैं, फिर तो बेटा कहीं न कहीं बी० ए० पास करके नौकरी कर लेगा और दरिद्र दूर हो जायगी।

एक साल निकल गया। रामदयाल अब द्वितीय वर्षमें पढ़ रहा है। उसके माता पिताको उसकी आशाओंके पूरे होनेका समय और भी पास दीखने लगा। रामकी बहू अब गर्भवती हो गई है, इससे उनकी खुशी और भी बढ़ गयी है। उन्होंने रीत रिवाजके अनुसार सब काम किये। नौ महीने

बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ; जिसका नाम विष्णुदत्त रखा। उधर रामदयाल भी एफ. ए. की परीक्षा दे घर लौट आये और आनन्दसे रहने लगे। दो महीने बाद परीक्षा फल भी प्रकाशित हो गया। रामदयाल विश्वविद्यालयमें प्रथम रहे और उन्हें सरकारकी ओरसे १२) छात्रवृत्ति मिलनेकी आज्ञा भी गज़टमें निकल गयी।

लाला शिवनरायन और उनकी धर्म पत्नी अब अपनेको बड़ा भाग्यवान समझने और भगवानको धन्यवाद देने लगे। अब रामदयालके कालेज खुलनेके दिन निकट आ गये हैं, इस लिए वह रामदयालकी जानेकी तय्यारी कर रहे हैं। पर देवता किसीका सुख नहीं देख सकते। उन्हें सदा उपद्रव खड़ा करनेमें ही आनन्द आता है। एक दिन जैसे ही लाला शिवनरायन कामपरसे लौटे उन्हें हैजा हो गया। रातके समय न डाक्टर, न दवा। एक नकली वैद्य गांवमें रहते थे, उन्हींको बुलाया गया, पर कुछ इलाज न हो सका। दिन निकलनेके पहले उनका देहान्त हो गया। मरनेके कुछ देर पहले वह रामदयालसे सानुरोध कह गये कि तुम अपनी माकी मनसे सेवा करना और हमारे पीछे उसे तकलीफ न होने देना।

रामदयालके सर परसे आज एक देवताका साया उठ गया। जिस रामदयालको आज तक यह न मालूम था कि गृहस्थी किसे कहते हैं, आज उसके कन्धोंपर दुतर्फा बोझ पड़ गया। इधर दिलमें यह अभिलाषा थी कि बी. ए. पास कर वकालतका इम्तहान दे। उधर गृहस्थीकी बेड़ी उसे आगे बढ़नेसे रोकती थी। रह रहके उसे गांवोंके रहनेवालोंकी बेबसीका ख्याल आता था कि बिचारे किस मुसीबतसे दिन काटते हैं और सैकड़ों बिना चिकित्सा और औषधिके बे मौत मर जाते हैं। खैर मनको मसोस, बेचारेने बापका अन्त्येष्टिकर्म किया। ज्योंही वह श्मशान से लौटा, घर पर आकर देखा कि माताजीको भी हैजा हो गया है। बिचारेने बहुत दौड़ धूप की। समझता था कि मा कमसे कम घरकी देख भाल तो करती रहेंगी, पर दुर्दैवको मंजूर न था कि वह सुखकी नींद सोवे। सायंकालको माताका स्वर्गवास हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्त्री और पुत्रको ले प्रयाग की ओर प्रयाण किया और एक घर किराये परले ट्यूशन तलाश की और पढ़ना आरम्भ कर दिया। घरमें अकेली स्त्री थी, वह घरका काम काज करती कि बच्चेकी देख भाल। उधर रामदयाल दो ट्यूशनोंके लिए समय निकालते कि अपने पढ़ने और श्रीमतीजीकी सहायता करनेके लिए। सौभाग्यवश स्त्री बहुत सहिष्णु थी। खाना बनाना, बच्चेको रखना, बरतन मांजना, कपड़े सीना और पतिकी सेवा करना—इन सब कामोंके लिए वह समय निकाल ही लेती थी; पर स्वभावतः इसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता था। बच्चेको दूध पिलाना, परस्वयम् रूखी सूखी रोटियां खाकर गुजर करना, बहुत दिन तक साथ साथ नहीं चल सकता था। परिणाम यह हुआ कि दूध सूख गया और बालक भूखा रहने लगा। स्वभावतः वह अधिक रोने लगा और चिड़चिड़ा हो गया। माता उसे कभी खिचड़ी, कभी साबूदाना, कभी दूध खिलाती थी, पर वह दुर्बल ही बना रहता था। ७ या ८ महीनेके बच्चेको अन्न देना, उसका पेट बिगाड़ देना है। जहां तक हो सके पानी न दे और न एक वर्षके पहले अन्न, क्योंकि बच्चेका आमाशय मंडको हज़म नहीं कर सकता।

हिन्दू औरतें आपसमें बहुत ही जल्द हिलमिल जाती हैं। उनके संस्कार ऐसे होते हैं कि वह दूसरोंकी सेवा और सहायता करनेके लिए सदा उद्यत रहती हैं। उन्हें केवल एक बात असहनीय होती है और वह है ईर्षा। जो उनकी सन्तति, सम्पत्ति और सुहागको देखकर जलती नहीं है, उसके सामने वह अपना हृदय खोल देती हैं और निष्कपट और निश्छल प्रेम करती हैं। रामदयालजीकी पत्नी, सावित्री, यथा नाम तथा गुणाः थी।

पतिपरायणता, कोमलता, सहिष्णुता और दृढ़ संकल्पतामें अद्वितीय थी। स्वभाव बड़ा सरल था। सबसे मीठा बोलना उसने माके दूधके साथ पिया था।

सर्वगुण सम्पन्ना सावित्रीसे आस पासकी स्त्रियोंसे थोड़े ही दिनोंमें परिचय हो गया। वह कभी कभी आतीं, बात चीत करके उसका जी खुश करतीं और मौका पड़नेपर उसकी सहायता करतीं।

एक दिन दोपहरके समय बन्नोकी दादी, सावित्रीके पास आई और बहुत देर तक बातें करती रहीं। उस दिन विष्णुदत्तके दस्त लग रहे थे। वह बड़ा बेचैन था और रोता था। यह देख बन्नोकी दादी कहने लगीं, "बहू, लल्लू तो बहुत रोता है और इसे दस्त भी बहुत लग रहे हैं। तुम एक काम करो। एक पैसेकी अफीम बाज़ारसे मंगा लो। आधी रत्ती अफीम सुबह और उतनी ही शाम को लल्लूको दे दिया करो। इसके दस्त भी बन्द हो जायंगे और यह रोया भी न करेगा।"

सावित्री—अफीम नुकसान तो न करेगी?

बन्नोकी दादी—बिलकुल नहीं। दूसरे तुम्हारे अब लड़काबाला होनेवाला है। अभीसे इसे अफीम देना शुरू करो, तो तुम्हें दुख न देगा, नहीं तो तुम्हें बड़ी मुश्किल पड़ेगी।

सावित्री बिचारी भोली भाली थी। उसने सोचा कि जो बात बड़ी बूढ़ी कहती हैं, वह ठीक होगी। उसने बन्नोकी दादीको ही निहोरा कि अफीम ला दो। अफीम आ गई और उसका प्रयोग भी होने लगा। दूसरे ही दिन दस्त बन्द हो गये और साथ ही रोना भी।

दो तीन दिन बाद कालेजकी छुट्टी थी। रामदयालजी को उस दिन पढ़ानेके लिए भी न जाना था। उन्होंने निश्चय किया कि आज प्राणेश्वरीसे अवश्य बातें करेंगे। दोपहरको जब घरके काम काजसे फुर्सत मिली, तो सावित्री जहां पति सो रहे थे, वहां पहुंची और पायँतेकी ओर बैठ पैर दाबने लगी। कोमल हाथका स्पर्श होते ही रामदयाल अपनी प्रियाकी तरफ देखकर बोलेः—

"आज कल तो तुम्हें बड़ा कष्ट सहना पड़ता है।"

सावित्री—प्राणनाथ, आपको दर्शनोंसे ही मेरे सब कष्ट दूर हो जाते हैं। ईश्वर आपको सुखी रखे, यही मेरी दिन रातकी रटन है।

राम०—आजकल लल्लू बहुत सुस्त रहता है। खटोलेपर पड़ा पड़ा सोता रहता है या जब आंख खोलता है तो मुस्कराया करता है।

सावित्री—बच्चोंको ईश्वरने समझ दी है। यह बिचारा भी किसीको कष्ट नहीं देता। आराममें सोया करता है। अब तो इसने रोना बिलकुल छोड़ दिया है। दस्त भी बन्द हो गये हैं।

राम०—पर इसकी आंखें क्यों चढ़ी सी रहती हैं?

सावित्री—दस्तोंसे कमजोर हो गया है। इसीसे सुस्त रहता है।

राम०—अब तक तो हम तुम्हें कुछ सुख न दे सके। ईश्वर जाने वह दिन कब आयगा, जब हमारे मनकी अभिलाषा पूरी होगी।

सावित्री—आप ईश्वरमें पूरा विश्वास रखिये। ईश्वर सब भली करेंगे। अपना काम किये जायं। यदि फिक्र ज्यादा किया करेंगे तो आपका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। किसी तरह आप बी० ए० पास कर लें, तो सब ठीक ठाक हो जायगा। फिर आप किसी स्कूलमें नौकरी कर लीजियेगा और वकालत पढ़ियेगा। वकील हो जाने से तो घरका दरिद्र दूर हो जायगा।

राम०—देखिये; ईश्वरको क्या मंजूर है। मैं तो तुम्हें सुबहसे शाम तक काममें पिसता हुआ देखता हूँ। जब तुम्हारे मुरझाये हुए चेहरे और बढ़ती दुर्बलता पर ख्याल करता हूँ, तो मुझे रह रह कर प्रचलित प्रथा पर क्रोध आता है। जो और देशोंमें खाने खेलनेके दिन समझे जाते हैं, वही हम

भारतवासियोंका घुल घुल कर मरनेका ज़माना होता है। इस कुप्रथाके कारण सैकड़ों नव युवकोंके दिलोंकी उमंगें दिलोंमें ही रह जाती हैं। उन्हें या तो बीचमें हीपढ़ना छोड़ देना पड़ता है या परिस्थितिसे लड़ते झगड़ते सदाके लिये स्वास्थ्यसे हाथ धो बैठते हैं। उधर उनकी स्त्रियोंकी गृहस्थीके धन्धे, सन्तानके पालनेके भार और दारिद्र्यके सन्तापसे पीड़ित हो या तो अकाल मृत्यु हो जाती है या आजन्म रोगिणी रह ज़िन्दगीके दिन गिनती रहती हैं और संसारका सुख भोगे बिना ही मर जाती हैं।

सावित्री—प्राणनाथ, आज आप कैसी बातें कर रहे हैं। स्त्रीको तो केवल पतिके दर्शन चाहियें। यदि वह अपने पति और सन्तानको प्रसन्नवदन देख सकती है, तो उसे किसी अन्य पदार्थकी इच्छा नहीं होती।

राम—ठीक है, पर प्रकृतिके नियम अटल हैं। उचित पुष्टिकारक भोजन न मिलनेका प्रभाव शरीरपर पड़े बिना नहीं रह सकता। मानाकि मनकी प्रफुल्लता और आभ्यान्तरिक संतुष्टिका प्रभाव भी शरीरपर पड़ता है, पर यह कहां तक सहायक हो सकता है।

विष्णुदत्तको आठवें दसवें दिन दस्त हो जाया करते थे। प्रत्येक बार अफीमकी मात्रा बढ़ा दी जाती थी। कुछ दिनके लिए दस्त बन्द हो जाते थे, पर फिर जारी हो जाते थे। इस ढंगसे चार पांच महीने निकल गये। वैशाख लगते ही कालेजकी छुट्टियां हो गईं। तब रामदयाल जी को घरके कामके लिए अधिक समय मिलने लगा। सावित्रीको आठवां महीना था। अतएव रामदयालने जापेका सब इन्तजाम करना शुरू कर दिया। उनको अब विष्णुदत्तके स्वास्थ्यकी बड़ी फिक्र हो गई। वैशाखकी गरमी और दस्तोंकी वजहसे पैदा हुई कमज़ोरीने विष्णुदत्तका बुरा हाल कर दिया। अब उसके दस्त अफीमके बल से बन्द न होते थे। एक दिन सावित्रीके कहनेसे रामदयाल उसे डा० रामानन्द के पास ले गये। डाक्टरने बहुत इलाज किया, पर दस्तोंमें फायदा न हुआ। एक दिन डा० को खयाल आया कि कहीं बालकको अफीम तो नहीं दी जाती। उन्होंने रामदयालसे पूछा। रामदयालने जब पूछताछकी तब भेद खुला। डाक्टर महोदयने इनको बहुत बुरा भला कहा और बतलाया, "आपकी मूर्खतासे बच्चेका आमाशय बिलकुल बिगड़ गया है। मैं प्रयत्न करूंगा कि भविष्यमें बच्चेको अफीम देनेकी आवश्यकता न रहे, पर आपने इसका स्वास्थ्य सदाके लिए बिगाड़ दिया है। दस बारह दिन हुए कि अज मनोहरलालकी लड़की अफीमके ज़हरीले असरसे मर चुकी है। उसे भी अफीम देते देते संग्रहणी हो गई थी, पर आपके बच्चेकी हालत इतनी खराब नहीं हुई है।"

रामदयाल सुनकर चुप हो गये। उन्होंने घर-पर पहुंचकर अपनी स्त्रीसे केवल इतना कहा कि डाक्टर बाबूने अफीम देनेको मने कर दिया है! उन्हें यह खयाल था कि कदाचित् पूरा भेद खोल देनेसे सावित्रीको मानसिक दुःख पैदा हो जाय और भ्रूणको उससे हानि पहुंचे। साथ ही उन्होंने यह संकल्प कर लिया कि भविष्यमें किसी बालक को अफीम न देने देंगे।

आषाढ़ मासमें सावित्रीके एक सुन्दर बालिका पैदा हुई। जापेके समय मोहल्लेकी स्त्रियोंने सब काम संभाल लिया और २० दिन तक सावित्रीकी खूब सेवा सुश्रूषा की। तदुपरांत बिचारी सावित्रीको फिर गृहस्थीका काम संभालना पड़ा। पहलेसे काम प्रायः ड्योढ़ा हो गया था। पर वह बिना कुछ शिकायत किये शान्तिसे काम करती जाती थी।

इस प्रकार चार बरस बीत गये। इस अरसेमें सावित्रीके दो और लड़के हो गये। अब वह चार बच्चोंकी मा है। लाला रामदयाल बी० ए०, एल-एल० बी० कानपुरमें वकालत करने लग गये हैं।

सावित्री भी अपने पास और दूसके रिश्तेदारोंको मानती है। उनकी आवभगत और लेनदेनमें वह कभी नहीं हिचकती है। सबका आदर करती है, सबका मान रखती है। रामूकी माको भी छोटे लड़केके मुण्डनके समय उसने बुलाया। एक धोती और पांच रुपये उसके भेट किये। रामूकी मा 'दूध न न्हाओ पूतन फलो'—यह असीस दे घरको वापिस चली गई।

अब वह ज़माना आ गया जिसकी राह दम्पति चार बरससे देख रहे थे। अब उनकी दुःखकी रात कटी और सुखका उदय हुआ। वह दोनों एक दूसरेके प्रेममें पगे रहते थे और आनन्दसे दिन बिताते थे। चार बरसके कठिन परिश्रमसे दम्पति-का स्वास्थ्य बिगड़ गया था, पर वह समझते थे कि थोड़े दिनोंमें अच्छा हो जायगा।

वकील साहबका काम खूब चलता है। दिन रात दरवाज़े पर मुवक्किलोंकी भीड़ लगी रहती है। इसके अतिरिक्त वह स्थानीय सनातनधर्म सभाके बड़े उत्साही मेम्बरोंमें हैं और प्रत्येक रवि-वारको सभामन्दिरमें जा प्रभावशाली व्याख्यान देते हैं। उधर सावित्री यद्यपि सब प्रकारसे सुखी है, पर भीतरसे न जाने उसका जी क्यों न प्रसन्न होता है। वह बहुत प्रयत्न करती है कि खुश रहे पर उसका दिल सदा ऐसा मालूम होता है कि बैठा जाता है। वह धीरे धीरे दुबली होती जाती है।

कुछ दिनोंके बाद वकील साहबको भी यह बात खटकने लगी। उन्होंने एक अनुभवी डाक्टर-को बुलाया, उनसे चिकित्सा कराई तो पता चला कि सावित्रीको राजयक्ष्मा हो गया है। चारबरसमें चार बालकोंको जन्म देना, उनका पालनपोषण करना गृहस्थीका कामकाज करना और अन्तमें रूखा सूखा पुष्ट न करनेवाला भोजन करके सो रहना—इन सब बातोंका उसपर बराबर प्रभाव पड़ता रहा। इसीसे उसकी जीवन शक्ति धीरे धीरे दुर्बल होती गई और अन्तमें इस रोगसे ग्रसित हो गई। हिन्दुओंमें इसी कारण यह प्रथा है कि पांचवें महीनेसे पुष्टकारी पदार्थ देने लगते हैं और जब तक बच्चा दूध पीता रहता है बराबर देते रहते हैं। पर जबसे मुसलमानोंकी सभ्यताके प्रभावसे स्त्रियोंको पैरकी जूती समझने लगे हैं तबसे इस नियमकी ओर कम ध्यान देने लगे हैं। उसका फल भी तत्काल ही मिल जाता है। सन्तान दुर्बल होती है। धीरे धीरे कद ठिंगना, आयु क्षीण होती जाती है। स्त्रियोंकी मृत्युसंख्या बढ़ती जाती है। हिन्दू जाति विनाशकी ओर तेज़ीसे चली जा रही है। यदि इसे नाशसे बचाना है, यदि पुराने आर्योंका कुछ निशान पृथ्वी-तलपर छोड़ना है, तो हिन्दुओ स्त्रियोंका आदर करना सीखो। पुरुषों को पुष्टिकारक भोजन देना केवल वर्तमानमें काम आयगा, स्त्रियोंको पुष्टिकारक भोजन देना भविष्य-के लिए प्रबन्ध करना है। जातिका भविष्य उसी-पर निर्भर है।

छः महीने बाद सावित्रीके फिर एक लड़का हुआ। प्रसूतके बाद वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी। अब उसकी खुराक भी कम हो गयी और उसका रोग भी बढ़ता जाता था। डा० की अनुमतिसे वकील साहब उसे भुवाली स्वास्थ्यगृहमें भी ले गये, पर कुछ आराम न हुआ। "मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की।" एक दिन प्रातःकाल सावित्रीकी अवस्था अच्छी मालूम पड़ती थी। रामदयालजी दिलमें सोचने लगे कि अब आराम होना शुरू हो गया। आठ बजेके लगभग सावित्रीने उन्हें बुलाया। वह अन्दर आये तो सावित्री हाथ जोड़ कर उनसे बोली, "प्राणनाथ, सिरहाने बैठ जाइये और मेरा सर गोदमें रख, अन्तिम बार प्यार कर लीजिये। अब मैं नहीं बचूंगी। मैं थोड़ी देरकी ही मेहमान हूं। आपको मैंने सदा ही कष्ट दिया, पर आशा यह लगी रहती थी कि कभी तो दुखका अन्त होगा। अब जबकि ईश्वरने दिन फेरे और दुःख दूर होनेके साधन उपस्थित हुए तो मैं आपकी सेवा न कर

सकी। यह इच्छा मेरे दिलमें ही मेरे साथ चली। मरकर भी मैं आपको कष्ट ही दिये जाती हूं। प्राणनाथ, मेरे अपराध क्षमा करना और मेरे बच्चों-को... ..." इतना कहते कहते सावित्रीका गला रुक गया और वह उठकर पतिसे आलिंगन करने-का प्रयत्न करने लगी, कि हिचकी आई और प्राण-पखेरू ने अस्थिपिञ्जरसे निकल अज्ञातपथ पर यात्रा आरम्भ करदी। रामदयालकी प्राणपियारी सावित्री, उनकी सुख दुखकी साथिन सावित्री, उनके बच्चों की मा सावित्री—इस संसारमें नहीं है। सावित्री के प्रेममें उन्होंने माता पिताके वियोगको सह लिया था, सावित्रीकी भक्ति और पतिपरायणता-के कारण उन्हें दरिद्रताका दुख नहीं जान पड़ता था। सावित्रीकी दृढ़तासे वह अपने लक्षित मार्गसे क़दम नहीं हटा सकते थे। आज उनके जीवनका कर्णधार, उनकी सुमरनीका सुमेर, उनकी आशा-ओंका केन्द्र, संसारमें नहीं रहा। धीरे धीरे धर्मके भावोंने उन्हें सचेत किया। उन्हें ख़याल आया कि अब प्यारीकी मट्टी ठिकाने लगानी चाहिये, उसके परलोक गमनका मार्ग उचित अनुष्ठानों द्वारा सुगम बनाना उनका कर्तव्य है।

१३ दिन में सब क्रिया कर्म करके वह बच्चों सहित कानपुर लौट आये। उनकी बुआ आईं। कुछ दिन रहकर छोटे बच्चेको लेगईं, पर और बच्चे साथ न गये। वकीलजीने बच्चोंके खिलाने खाने बनाने आदि कामोंके लिए कई नौकर रख लिए; परन्तु बच्चोंको पहलेकी अपेक्षा अब बहुत कम सुख मिलता है। इसी लिए उन्होंने अपनी विध-वा बुआको बुलाकर अपने यहां रखलिया है। बुआने बच्चोंकी देख भाल और घरके प्रबंधका भार अपने ऊपर लेलिया है। बच्चोंको तो अब एक दूसरी मा मिल गयी है, पर वकील साहब सदा अनमनेसे रहते हैं। पुराने ज़मानेकी हंसी उनके चेहरेपर कभी भूले भटके भी दिखाई नहीं पड़ती।

—:o:—

टंगस्टनलेम्प*

[ले०—अध्यापक चुन्नीलाल साहनी, एम०एस-सी०]

आज कल जिस लैम्पका सबसे अधिक प्रचार है उसमें टंगस्टन धातुका (tungsten) तार काम आता है। इसका तन्तु कई प्रकारसे बनता है। डाक्टर वेल्शबेक (Dr. Walsbach) ने टंगस्टन-की बुकनी (tungsten powder) को किसी जैव पदार्थ (organic material) जैसे गोंदके साथ मिलाकर पतली गावदुम नलीके छिद्रमें होकर निकाला, जैसा कि कोयलेके तार खींचनेमें करते हैं। इस तारको गरम करके उसके अवयवी वायु, ओषजन और उज्जन निकाल दिये जाते हैं और तत्-पश्चात् उसको जलवाष्प या किसी अन्य अणुदको उपस्थितिमें गरम करके लाल कर लेते हैं, जिससे कर्बन (carbon) का अंश भी निकल जाता है और टंगस्टनके तन्तुके कण जुड़े हुए रह जाते हैं। मज़बूत करनेके लिये उसे शून्य (vacuum) में रखकर, बिजलीकी धारा बहा कर उसको खूब तपाते हैं। ऐसा करनेसे तारके सब हिस्से भली भांति जुड़ जाते हैं। इस क्रियाको सिंटरिंग (sintoring) कहते हैं। डा० जस्ट (Dr. *Just*) और हेनेमन (Hanaman) की विधि भिन्न है। उन्होंने कर्बनके तन्तुको (tungsten chloride) टंगस्टन हरिदकी वाष्पमें तपाया, जिससे कि उसपर टंगस्टन जम गया। इसमेंसे कोयला निकाल कर, पूर्वोक्त विधिसे 'सिंटर' कर लेते हैं।

इस प्रकारसे जो तार तैयार होता है वह लैम्प-में इस प्रकार लगा दिया जाता है, जैसा चित्र ११ में दिखाया है। ऊपरके भागमें V के आकारके तार लगे हैं और नीचे हुक लगे हैं। इन्हीं V के आकारके तारोंके कारण तन्तु आपसमें शृङ्खला (series) में जुड़े हुए हैं। चूं कि इनमें बहुतसे जोड़ हैं इससे

* विज्ञान भाग १० अंक १ के पृष्ठ १६ से आगे।

तन्तु अथवा फिलेमेंट (filament) के टूटनेका बहुत डर रहता है और यह तन्तु उतने मज़बूत भी नहीं होते जितने खींचे हुए होते हैं। इसीलिए वैज्ञानिक लोगोंको यह फिकर हुई कि इस धातुको पीटकर तार बनानेकी विधि निकालनी चाहिए। अर्थात् किसी प्रकार उसको वर्धनशील (ductile) बनाना चाहिये। सं० १९६६ वि० में कूलिज महोदयने इसको वर्द्धनशील (ductile) बनानेकी विधि निकाल ली और अब इसके तार खींचे जाते हैं। अतएव जो टंगस्टन तन्तुओंमें बहुतसे जोड़ होते थे वह अब नहीं होते; क्योंकि अब एक ही तार लम्बा खींचा जा सकता है। तंगस्टनको वर्द्धनशील बनानेकी विधि यह है :—

चित्र ११—टंगस्टन लेम्पका तार।

चित्र १२—टंगस्टन लेम्प।

टंगस्टनकी बुकनी (tungston powder) को लोहेके सांचेमें रख कर खूब दबाते हैं और इस प्रकार एक छड़ बना ली जाती है। यह छड़ (brittle) भंजनशील होती है। छड़को पहले धीरे धीरे उज्जनमें गरम करते हैं और बादमें बिजलीके भट्टेमें (electric furnace) २८५०°श तक गरम करते हैं। धातु करीब $\frac{१}{७}$ वां हिस्सा सिकुड़ जाती है और बहुत सख्त हो जाती है। तत्पश्चात् उसे पीट कर पतला कर लेते हैं। तारको बड़े ऊंचे तापक्रम पर (लगभग १३००°श) पीटते हैं और विशेष यंत्र द्वारा इस कामको करते हैं। पीटते पीटते तारका व्यास ३ मि० मी० अर्थात् ०३ इंच तक घटा देते हैं। इसके बाद गरम सूराखोंमेंसे तारको खींचा जाता है और उसका व्यास ०००१ इंच तक घटा लिया जाता है।
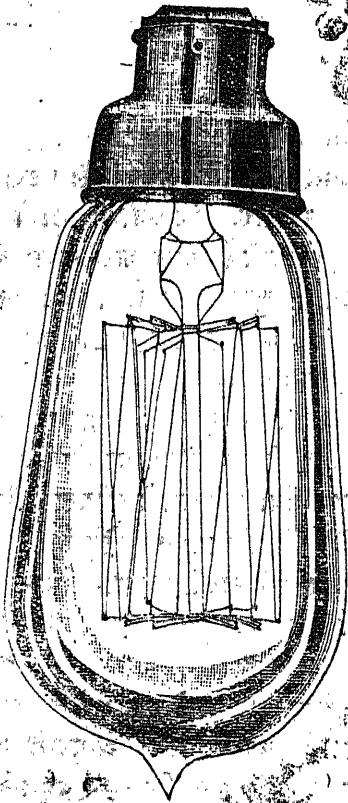
—चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी.

पौल डु चैलू

झूठेका कोई विश्वास नहीं करता, इस बातका एक अच्छा उदाहरण

(ले०—पं० रामानन्द त्रिपाठी, एम. ए.)

पौल बेलोनी डु चैलु (Paul Belloni Du Chaillu) का जन्म ३१ जुलाई सं० १८३५ के दिन हुआ था। पहले आप पेरिसमें शिक्षा पाते रहे और बादमें एक फ्रांसीसी उपनिवेश गैबूनमें (Gaboon), जो अफ्रीकाके पश्चिमी समुद्र तट पर एटलांटिक महासागर और कोनगोके बीचमें है। आपको बचपनसे ही भ्रमण, यात्रा और देशाटनका बड़ा शौक़ था। बीस बरसकी उम्रमें ही आपने अपने निवास-स्थानके आस पासके प्रान्तको छान डाला और अमेरिकाके सामयिक पत्रोंमें बहुतसे लेख इसी विषयमें लिखे। लेखोंपर मुग्ध होकर फिलेडेल्फियाकी एक परिषद्ने आपको यह काम सौंपा कि रहस्य-पूर्ण-प्रदेश

का पूरा हाल दर्याफ़ करें। उस समयमें फ्रांसीसी कानगोको यही नाम दिया गया था, क्योंकि उसका बहुत कम हाल मालूम था। चैलू महोदयने उस प्रदेशमें खूब सैर की और उसका पूरा हाल जान लिया। उस प्रदेशका, और वहांके निवासियों और उनकी रहन सहन और रीत रिवाजका वर्णन उन्होंने बड़ी योग्यतासे (Explorations and adventures in Equatorial Africa) 'एक्सप्लोरेशंस एण्ड एडवेंचर्स इन इक्वेटोरियल एफ्रीका नामक पुस्तकमें किया है। यह ग्रन्थ बड़े महत्वका समझा जाता है। इस कामके लिए उन्हें प्रायः ८००० मील पैदल चलना पड़ा। इसी पुस्तकमें उन्होंने उस सच्चे बनमानुसका विस्तृत वर्णन दिया है, जिसे आज कल गौरिला कहते हैं। इनसे पहले एण्ड्रू बैटल (Andrew Battel) नामी एक अंग्रेजी मल्लाहने भी गौरिलाका बहुत अच्छा वृत्तान्त लिखा था, जो 'पिलग्रिमेज' में छपा था। एण्ड्रू ने कुछ ऐसी बातें अवश्य लिखी थीं, जिनमें कल्पना शक्तिसे अधिक काम लिया गया था, जैसे हाथियोंका गौरिलाओं द्वारा मार भगाया जाना, गौरिलाओंका दल बांधकर जाना और हबशियोंको मारना, तथापि उसका लिखा हुआ वृत्तान्त इतना पूर्ण और स्पष्ट है, मानों आज कलके किसी प्राणि-विज्ञान-विशारदने लिखा है। परन्तु वैज्ञानिकोंको न एण्ड्रू की बातका विश्वास हुआ और न डूचैलू का। उस समय तक यूरोपमें कहीं भी गौरिला किसीने न देखा था। वैज्ञानिकोंने केवल कपाल, और कंकालके अन्य भाग देखे थे, पर उन्हें इस भयानक पशुके वृत्तान्तमें बड़ा अविश्वास था।

वैज्ञानिकोंका यह अविश्वास अकारण न था। डुचैलूने गौरिलाका प्राकृतिक-इतिहास तो ठीक ठीक वर्णन किया था, पर अपने यात्रा वर्णनमें ऐसी ऐसी घटनाओंका उल्लेख किया था, जो आज तक सच नहीं मानी जातीं। दूसरे उनको कुछ झूठ बोलनेकी आदत थी। इस आदतने उन्हें बड़ा ख्वार किया और उनके जीवन भरके परिश्रमपर पानी फेर दिया। वह एक पूरे जवान गौरिलाकी खाल इङ्गलैण्ड ले गये थे और उसे वहांपर भरवा कर रखना चाहते थे। इस खालको देखकर किसीने उनसे कहा कि मुंहपरकी त्वचा उड़ गई है। उन्होंने कहा कि नहीं उड़ी है। इस पर एक अन्य व्यक्तिने बल पूर्वक कहा कि त्वचा अवश्य उड़ गई है और मुंह पर काला रोगन कर दिया गया है। तब तो डुचैलू महाशयने समझा कि बे तरह फंसे, यहां दाल न गलेगी; अतएव उन्होंने स्वीकार कर लिया कि न्यूयोर्कमें खाल दिखलाते समय मुंहपर काला रोगन कर दिया था। इस एक घटनाका वैज्ञानिक संसारपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और उनका रहा सहा विश्वास भी जाता रहा।

जो कुछ डुचैलू महोदयने गौरिलाके जीवनके विषयमें लिखा था वह पीछेसे उनकी ही यात्राओं और अन्य सज्जनोंकी खोजसे सच्चा पाया गया, तथापि उनके मौलिक काममें थोड़ा बहुत सन्देह लोगोंको बना ही रहा। उनकी भूगोल, मनुष्य-विज्ञान और पशुविज्ञान सम्बन्धी गवेषणाओंको बट्टा काट कर ही मानते थे। डुचैलूके गौरिलाके वृत्तान्तकी हक्सलेने बड़ी तीव्र आलोचना करते हुए कहा था, "सम्भव है यह सच हो, पर यह प्रमाण नहीं समझा जा सकता।"*

डुचैलू महोदयने अपने जीवनका अधिकांश समय अमेरिकामें ही बिताया। बुढ़ापेमें उन्होंने उत्तरीय यूरोपके कम ज्ञात-रास्तोंपर बहुत अच्छा निबंध लिखा। सं० १९०३ की २९वीं अप्रैलको, आजसे ठीक १७ वर्ष पहले, सेंटपीटर्स बर्गमें उनका देहान्त हुआ।

---

* It may be truth but it is not evidence.

समालोचना

सौर रोज़ नामचा १९७७—प्रकाशक ज्ञान मण्डल, काशी। मूल्य केवल ।।)

इतना सस्ता और उपयोगी रोज़नामचा शायद ही मिले। इसमें सौर पंचाङ्ग, पर्व सूची, साहित्य जयन्तियां और राजधर्म जयन्तियां, राष्ट्रीय संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण, हिन्दी सामयिक पत्रोंकी सूची, रेल डाक और तारके विषयकी आवश्यक बातें, आदि बहुत से उपयोगी ज्ञातव्य विषय दिये हैं। प्रत्येक दिनका हाल लिखनेके लिए एक पृष्ठ दिया है, जिसमें अंग्रेज़ी, चान्द्र और सौर तिथियां भी दी हैं। पृष्ठके निचले भागमें किसी कविकी सूक्ति भी दे रखी है। अतएव हर तरहसे यह रोज़नामचा अन्य रोज़नामचोंकी अपेक्षा आदरणीय और उपयोगी है।

गान्धी गौरव—लेखक और प्रकाशक पं० गोकुलचन्द शर्मा, साहित्य सदन अलीगढ़। मूल्य ।।।)

यह काव्य-ग्रन्थ बहुत ही समयानुकूल है। शृङ्गार रस प्रधान कवितायें पढ़नेसे बालकों और नवयुवकोंपर कुछ अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। प्रस्तुत ग्रन्थको पढ़कर मन पवित्र और उत्साहित हो जाता है और चरित्रपर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। पुरानी कथाओंको बारबार कुछ परिवर्तन करके लिखनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है। इस ग्रन्थके निर्माण कर्ताने एक नये रागको अलापा है और लेखकोंको एक नया रास्ता दिखलाया है, जिसके लिए वह विशेषतः धन्यवादके पात्र हैं।

यद्यपि कहीं कहीं लेखन शैलीमें त्रुटियां दिखाई पड़ती हैं और बहुत जगह शब्दोंका अनावश्यक प्रयोग हुआ है, तथापि पुस्तक बहुत अच्छी और उपयोगी है। प्रत्येक देश-भक्तको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

जयद्रथ-वध नाटक—लेखक और प्रकाशक पं० गोकुलचन्द शर्मा, साहित्य सदन अलीगढ़। मूल्य ।।=)

यह एक आधुनिक संस्कृत नाटक (वीर धर्म दर्पण) का अनुवाद है। लेखकने अनुवादमें 'स्वाभाविकता, सरलता तथा सरसता को' हाथसे नहीं जाने दिया है।

श्रीशारदा—मासिक पत्रिका। सम्पादक—साहित्य शास्त्री पं नर्मदाप्रसाद मिश्र, बी. ए., विशारद। वार्षिक मूल्य ४)।

यह साहित्यिक पत्रिका बड़ी सजधजसे जबलपुरसे निकली है। इसमें लेख उपयोगी और विद्वत्ता पूर्ण होते हैं। चित्र भी अच्छे रहते हैं। छपाई और सफाईकी दृष्टिसे भी यह पत्रिका बहुत अच्छी है। इसके दो अंक निकल चुके हैं। दूसरा अंक पहलेसे भी अच्छा निकला। पहले अंकके निकलनेपर हमसे समालोचना करनेकी प्रार्थना की गई थी, पर हम यह देखना चाहते थे कि आगेके अंक भी उसी कोटिके निकल सकेंगे या नहीं। दूसरा अंक देखनेसे पूर्ण आशा होती है कि यह हिन्दी पत्रोंमें बहुत ऊंचा स्थान पायेगी।

प्रभा—मासिक पत्रिका। संपादक श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थी तथा देवदत्त शर्मा, बी. ए.। प्रकाशक प्रताप कार्यालय कानपुर। वार्षिक मूल्य ४)

यह पत्रिका भी उत्तम कोटिकी है। चार या पांच अंक अब तक निकल चुके हैं। उनसे प्रतीत होता है कि राजनीति, इतिहास और सम्पत्ति शास्त्र के अच्छे अच्छे लेख इसमें निकलते रहेंगे। आज कल राजनीतिज्ञोंका प्रायः अभाव सा ही है; हां, आन्दोलन कर्ता बहुत हैं और उनकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जाती है। अतएव ऐसी उच्च कोटिकी राजनीतिक पत्रिकाकी बड़ी आवश्यकता थी। ईश्वर इसको चिरायु करे।

संसार—मासिक पत्रिका, सम्पादक उदयनारायण बाजपेयी तथा नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी. ए.। वार्षिक मूल्य ३) मैनेजर संसार हटिया, कानपुरसे प्राप्य।

इस पत्रका उद्देश है साम्यवादका प्रचार। लेख अच्छे, उपयोगी और विचारणीय होते हैं। इस

का पूरा हाल दर्याफ़ करें। उस समयमें फ्रांसीसी कानयोंको यही नाम दिया गया था, क्योंकि उसका बहुत कम हाल मालूम था। चैलू महोदयने उस प्रदेशमें खूब सैर की और उसका पूरा हाल जान लिया। उस प्रदेशका, और वहांके निवासियों और उनकी रहन सहन और रीत रिवाजका वर्णन उन्होंने बड़ी योग्यतासे (Explorations and adventures in Equatorial Africa) 'एकसप्लोरेशंस एण्ड एडवेश्चर्स इन इक्वेटोरियल एफ्रीका नामक पुस्तकमें किया है। यह ग्रन्थ बड़े महत्वका समझा जाता है। इस कामके लिए उन्हें प्रायः ८००० मील पैदल चलना पड़ा। इसी पुस्तकमें उन्होंने उस सच्चे बनमानुसका विस्तृत वर्णन दिया है, जिसे आज कल गौरिला कहते हैं। इनसे पहले एण्ड्रू बैटल (Andrew Battel) नामी एक अंग्रेज़ी मल्लाहने भी गौरिलाका बहुत अच्छा वृत्तान्त लिखा था, जो 'पिलग्रिमेज' में छपा था। एण्ड्रू ने कुछ ऐसी बातें अवश्य लिखी थीं, जिनमें कल्पना शक्तिसे अधिक काम लिया गया था; जैसे हाथियोंका गौरिलाओं द्वारा मार भगाया जाना, गौरिलाओंका दल बांधकर आना और हबशियोंको मारना, तथापि उसका लिखा हुआ वृत्तान्त इतना पूर्ण और स्पष्ट है, मानों आज कलके किसी प्राणि-विद्या-विशारदने लिखा है। परन्तु वैज्ञानिकोंको न एण्ड्रू की बातका विश्वास हुआ और न डूचैलू का। उस समय तक यूरोपमें कहीं भी गौरिला किसीने न देखा था। वैज्ञानिकोंने केवल कपाल, और कंकालके अन्य भाग देखे थे, पर उन्हें इस भयानक पशुके वृत्तान्तमें बड़ा अविश्वास था।

वैज्ञानिकोंका यह अविश्वास अकारण न था। डुचैलूने गौरिलाका प्राकृतिक-इतिहास तो ठीक ठीक वर्णन किया था, पर आपने यात्रा वर्णनमें ऐसी ऐसी घटनाओंका उल्लेख किया था, जो आज तक सच नहीं मानी जातीं। दूसरे उनको कुछ झूठ बोलनेकी आदत थी। इस आदतने उन्हें बड़ा ख्वार किया और उनके जीवन भरके परिश्रमपर पानी फेर दिया। वह एक पूरे जवान गौरिलाकी खाल इङ्गलैण्ड ले गये थे और उसे वहांपर भरवा कर रखना चाहते थे। इस खालको देखकर किसीने उनसे कहा कि मुंहपरकी त्वचा उड़ गई है। उन्होंने कहा कि नहीं उड़ी है। इस पर एक अन्य व्यक्तिने बल पूर्वक कहा कि त्वचा अवश्य उड़ गई है और मुंह पर काला रोगन कर दिया गया है। तब तो डुचैलू महाशयने समझा कि बे तरह फंसे, यहां दाल न गलेगी; अतएव उन्होंने स्वीकार कर लिया कि न्यूयोर्कमें खाल दिखलाते समय मुंहपर काला रोगन कर दिया था। इस एक घटनाका वैज्ञानिक संसारपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और उनका रहा सहा विश्वास भी जाता रहा।

जो कुछ डुचैलू महोदयने गौरिलाके जीवनके विषयमें लिखा था वह पीछेसे उनकी ही यात्राओं और अन्य सज्जनोंकी खोजसे सच्चा पाया गया, तथापि उनके मौलिक काममें थोड़ा बहुत सन्देह लोगोंको बना ही रहा। उनकी भूगोल, मनुष्य-विज्ञान और पशुविज्ञान सम्बन्धी गवेषणाओंको बट्टा काट कर ही मानते थे। डुचैलूके गौरिलाके वृत्तान्तकी हक्सलेने बड़ी तीव्र आलोचना करते हुए कहा थी, "सम्भव है यह सच हो, पर यह प्रमाण नहीं समझा जा सकता।"*

डुचैलू महोदयने अपने जीवनका अधिकांश समय अमेरिकामें ही बिताया। बुढ़ापेमें उन्होंने उत्तरीय यूरोपके कम-ज्ञात-रास्तोंपर बहुत अच्छा निबंध लिखा। सं० १९०३ की २९वीं अप्रेलको, आजसे ठीक १७ वर्ष पहले, सेंटपीटर्स बर्गमें उनका देहान्त हुआ।

---

* It may be truth but it is not evidence.

समालोचना

सौर रोज़नामचा १९७७—प्रकाशक ज्ञान मण्डल, काशी। मूल्य केवल ॥)

इतना सस्ता और उपयोगी रोजनामचा शायद ही मिले। इसमें सौर पंचाङ्ग, पर्व सूची, साहित्य जयन्तियां और राजधर्म जयन्तियां, राष्ट्रीय संस्थाओंका संक्षिप्त विवरण, हिन्दी सामयिक पत्रोंकी सूची, रेल डाक और तारके विषयकी आवश्यक बातें, आदि बहुत से उपयोगी ज्ञातव्य विषय दिये हैं। प्रत्येक दिनका हाल लिखनेके लिए एक पृष्ठ दिया है, जिसमें अंग्रेजी, चान्द्र और सौर तिथियां भी दी हैं। पृष्ठके निचले भागमें किसी कविकी सूक्ति भी दे रखी है। अतएव हर तरहसे यह रोजनामचा अन्य रोजनामचोंकी अपेक्षा आदरणीय और उपयोगी है।

गान्धी गौरव—लेखक और प्रकाशक पं० गोकुलचन्द्र शर्मा, साहित्य सदन अलीगढ़। मूल्य ॥।)

यह काव्य-ग्रन्थ बहुत ही समयानुकूल है। शृङ्गार रस प्रधान कवितायें पढ़नेसे बालकों और नवयुवकोंपर कुछ अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। प्रस्तुत ग्रन्थको पढ़कर मन पवित्र और उत्साहित हो जाता है और चरित्रपर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। पुरानी कथाओंको बारबार कुछ परिवर्तन करके लिखनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है। इस ग्रन्थके निर्माण कर्ताने एक नये रागको अलापा है और लेखकोंको एक नया रास्ता दिखलाया है, जिसके लिए वह विशेषतः धन्यवादके पात्र हैं।

यद्यपि कहीं कहीं लेखन शैलीमें त्रुटियां दिखाई पड़ती हैं और बहुत जगह शब्दोंका अनावश्यक प्रयोग हुआ है, तथापि पुस्तक बहुत अच्छी और उपयोगी है। प्रत्येक देश-भक्तको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

जयद्रथ-वध नाटक—लेखक और प्रकाशक पं० गोकुलचन्द्र शर्मा, साहित्य सदन अलीगढ़। मूल्य ॥=)

यह एक आधुनिक संस्कृत नाटक (वीर धर्म दर्पण) का अनुवाद है। लेखकने अनुवादमें 'स्वाभाविकता, सरलता तथा सरसता को' हाथसे नहीं जाने दिया है।

श्रीशारदा—मासिक पत्रिका। सम्पादक—साहित्य शास्त्री पं नर्मदाप्रसाद मिश्र, बी. ए, विशारद। वार्षिक मूल्य ४)।

यह साहित्यिक पत्रिका बड़ी सजधजसे जबलपुरसे निकली है। इसमें लेख उपयोगी और विद्वत्ता पूर्ण होते हैं। चित्र भी अच्छे रहते हैं। छपाई और सफाईकी दृष्टिसे भी यह पत्रिका बहुत अच्छी है। इसके दो अंक निकल चुके हैं। दूसरा अंक पहलेसे भी अच्छा निकला। पहले अंकके निकलनेपर हमसे समालोचना करनेकी प्रार्थना की गई थी, पर हम यह देखना चाहते थे कि आगेके अंक भी उसी कोटिके निकल सकेंगे या नहीं। दूसरा अंक देखनेसे पूर्ण आशा होती है कि यह हिन्दी पत्रोंमें बहुत ऊंचा स्थान पायेगी।

प्रभा—मासिक पत्रिका। संपादक श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थी तथा देवदत्त शर्मा, बी. ए.। प्रकाशक प्रताप कार्यालय कानपुर। वार्षिक मूल्य ४)।

यह पत्रिका भी उत्तम कोटिकी है। चार या पांच अंक अब तक निकल चुके हैं। उनसे प्रतीत होता है कि राजनीति, इतिहास और सम्पत्ति शास्त्रके अच्छे अच्छे लेख इसमें निकलते रहेंगे। आज कल राजनीतिज्ञोंका प्रायः अभाव सा ही है; हां, आन्दोलन कर्ता बहुत हैं और उनकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जाती है। अतएव ऐसी उच्च कोटिकी राजनीतिक पत्रिकाकी बड़ी आवश्यकता थी। ईश्वर इसको चिरायु करे।

संसार—मासिक पत्रिका, सम्पादक लक्ष्मणनारायण वाजपेयी तथा नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी. ए.। वार्षिक मूल्य ३) मैनेजर संसार हटिया, कानपुरसे प्राप्य।

इस पत्रका उद्देश है साम्यवादका प्रचार। लेख अच्छे, उपयोगी और विचारणीय होते हैं। इस

पत्रसे भी बहुत कुछ आशायें हैं। ईश्वरसे प्रार्थना है कि यह अपने उद्देश्यमें सफल हो देशकी सेवा करता रहे।

त्रिदेव निरूपण—ले० श्रीपाद दामोदर सातव लेकर और अनुवादक श्रीदशरथ बलवन्तयादव। प्रकाशक जयदेव ब्रादर्स, बड़ौदा। मूल्य ।~)

यह पुस्तक बड़ी योग्यतासे लिखी गई है। इसमें बड़ी खोजसे यह बात सिद्ध की गई है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश केवल प्राकृतिक वस्तुओंके नाम हैं और सुर और असुरोंके संग्रामोंकी कथा प्राकृतिक घटनाओंके अलंकारात्मक वर्णन। युक्तियां अकाट्य और न्याय संगत हैं। वस्तुतः पुराणोंका अध्ययन उसी ढंग पर होना चाहिये, जिस ढंगसे कुछ कथाओंकी आलोचना समालोच्य ग्रन्थमें की गई है।

देश दर्शन—ले० ठाकुर शिवनन्दनसिंह। प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई। मूल्य २।)

इस ग्रन्थमें भारत जनताकी अधोगति और उससे उठनेके उपायों पर बड़ी योग्यता, विद्वत्ता और पूर्णतासे विचार किया गया है। प्रत्येक देशके प्रेमी और सच्चे हितैषीको देशकी परिस्थितिका पूरा ज्ञान हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। तदनन्तर उसे यह मालूम होना चाहिये कि जो त्रुटियां हैं, उनके दूर करनेके क्या क्या उपाय हैं। यह दोनों बातें समालोच्यग्रंथके पढ़नेसे भली भांति मालूम हो सकती हैं। यद्यपि हम राजनीतिक परतंत्रता भोग रहे हैं, पर हमारी सामाजिक स्वतंत्रता तो हमारे हाथोंमें है। यदि राजनीतिक सुधारोंके न मिलने पर हम विदेशियोंको कोसते हैं, तो सामाजिक कुरीतियोंका प्रतिरोध न करनेका कलंक और महापाप हम अपने सर क्यों चढ़ाते जाते हैं। यद्यपि हम यह मानते हैं कि परतंत्र जातिका अन्तःकरण मृतप्राय हो जाता है, उसका मन शिथिल, बुद्धि कुण्ठित और मस्तिष्क अकर्मण्य हो जाता है, तथापि हम यह माननेके लिए तय्यार नहीं हैं कि जितना जोश आज कल भारतीय जनताके दिलोंमें भरा हुआ है, उससे सामाजिक सुधार भी नहीं हो सकता। स्त्रियोंकी भारतमें अच्छेसे अच्छे घरोंसे लेकर नीच कुलों तकमें कैसी बुरी दशा है। उस बुरी दशाका प्रायश्चित रूप क्या दण्ड भारतको मिल रहा है, यह समालोच्य पुस्तकको पढ़नेसे भली भांति ज्ञात हो जायगा।

प्रत्येक जीव ब्रह्मका अवतार है—यह सिद्धान्त जिस जातिने सारे संसारके सामने रखा है, वही जाति आज स्त्रियोंको विषयका साधन, बच्चे पैदा करनेका यंत्र, घरका काम काज करने वाला अवैतनिक नौकर और घोरातिघोर अत्याचार करनेका पात्र, समझती है। आत्मा आत्माकी सहायतासे ही उन्नति करती है, आत्मा आत्माके कारण ही अवनति करती है। जो दूसरेका तिरस्कार करेगा, धार्मिक दृष्टिसे उसका अधःपतन पहले ही हो जायगा, यह अनिवार्य है। जिस जातिकी स्त्रियां शोचमें डूबी रहती हैं, वह जाति शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो जाती है। यह सब बातें समालोच्य ग्रन्थमें बड़ी खूबीसे दिखलाई गई हैं।

यद्यपि हम ग्रन्थ लेखकसे इस बातमें सहमत नहीं हैं कि नवीन वैज्ञानिक उपायोंसे उपज बढ़ाना, जनसंख्या रोकनेका प्रयत्न करनेसे अधिक कठिन है, तथापि हम यह मानते हैं कि आजकल जैसी पशुवृत्ति फैली हुई है, उसका रोकना परमावश्यक है।

पर एक कठिनाई बड़ी भारी है। किसी भी देशकी जनता प्रायः पाशविक नियमोंसे ही प्रेरित होती है। उनको क्षुधा और विषय वासना, यह दो आवश्यकतायें सदा प्रेरित करती रहती हैं। इनके समाधान होने पर, वस्त्र और धनकी इच्छा भी सताती है। उन तक जन-संख्याके प्रतिरोधकी चर्चा पहुँचाना और समझाना अत्यन्त दुष्कर है। यूरोपमें तो आर्थिक शक्तियोंने बड़ी काया पलट की, भारतमें वही काम धर्मके प्रवाहने किया। वर्तमान समयमें भारत-जनताका भाग्य निर्णय कौन सी शक्तियां करेंगी, यह कहना बड़ा मुश्किल है। हमारा कर्तव्य यह है कि ज्ञानका प्रकाश भारतके प्रत्येक घरमें पहुंचानेका प्रयत्न करें और फल ईश्वर के ऊपर छोड़ दें।

वैज्ञानिकीय

(१) आगका चाकू

चाकूसे काटनेका काम लिया जाता है। चाकूसे मामूली तौर पर सफाईके साथ मोम या रोटी या पनीर काट सकते हैं। कदाचित् काठ काटना पड़े तो चाकूकी जगह आरी या आरा काममें लाना पड़ता है। यदि कोई लोहेको ही काटने को कहदे तब तो होशोहवास ही ठिकाने न रहें। लोहेके मोटे गरडर, छड़ या शहतीरोंको काटनेमें प्रायः बड़ी कठिनाई पड़ा करती है, पर धन्य है सायंसके नये नये आविष्कारोंको कि बड़े बड़े मुश्किल काम आसान होते जा रहे हैं। यदि ब्लोपैपमें (धौंकनी नली) एसीटलीन जला कर ओषजन मिलायी जाय तो २७७०° श तापक्रमवाली लौ पैदा हो जाती है। यदि यह लौ किसी लोहेके टुकड़ेपर पड़ने दी जाय तो लोहा शीघ्र ही उस स्थानपर गरम होकर सुर्ख हो जाता है। यदि रक्त उत्तप्त लोहेपर ओषजनकी बहुत बारीक धारा छोड़ी जाय तो लोहा ओषिदमें बदल कर पानीकी तरह बह जाता है और ओषजनकी बारीक धारा इस भांति काटती है जैसे चाकू पानीको या मोम को काटता चला जाता है। यह काम बड़ी सफाईसे और बड़ी तेज़ीसे होता है। प्रायः काम उतनी ही तेज़ीसे होता है जितना कैंचीसे मोटा काश्मीरा काटते समय होता है। १६१० में ब्रुसेल्स (Belgium) की प्रदर्शनीमें आग लगी और बड़े बड़े गरडरोंके गिरने और जमनेसे एक लोहेका अजीब उलझा हुआ लच्छासा बन गया था। उस उलझनको काट काट कर रास्ता साफ करनेमें इसी आतिशी छुरीसे काम लिया गया था।

(२) आगकी सरेस

काठके टुकड़ोंको चिपकानेके लिए सरेस काम आती है। धातुओंके टुकड़ोंको चिपकाने या जोड़नेमें टांका बहुत आता है, पर टांकेका जोड़ मज़बूत नहीं होता। ज़ोर पड़नेपर या ठोकने पीटनेपर टूट जाता है। इसी कारण जब कभी मज़बूतीकी ज़रूरत पड़ती थी तो लोहेके टुकड़ों या यंत्रोंके अंगोंको रिवेट कर देते थे। पर हालमें ही एक नई विधि निकली है जिसे एल्यूमिनो थरमी कहते हैं। जिन दो टुकड़ोंको जोड़ना होता है उन्हें अलुमिनियमकी और लोहेके ओषिदकी बुकनीमें दबा देते हैं। बादमें मगनीसियमके तारको जला कर मिश्रणमें आग लगा देते हैं। अलुमिनियम ओषिद बन जाता है और लोहा। यह पैदा हुआ लोहा, लोहेके दोनों टुकड़ों को इस खूबीके साथ जोड़ देता है कि मालूम होता है कि वह पहले अलग न थे। इस अनुष्ठानमें बड़ी तेज़ गरमी पैदा होती है। ५४००° फा अथवा ३०००° शका तापक्रम पैदा हो जाता है। प्रयोग कर्ताको, जो तीव्र प्रकाश होता है, उससे आंखोंकी रक्षा करनेके लिए खास तरहके चश्मेका प्रयोग करना पड़ता है। यह अलुमिनोथरमीका एक विशेष उपयोग है, जिसे थरमिट कहते हैं। इसका प्रयोग बहुतसे मौलिकों जैसे क्रोमियम, मैंगेनीज़ आदिके बनानेमें होता है।

(३) ऐसी फौलाद जिसपर दाग़ न पड़े

सबका यह अनुभव है कि जहां फौलाद पर तेज़ाब या पानी गिरा कि उसपर दाग़ पड़े। तरकारी तराशनेके चाकू या फल काटनेकी छुरियां बहुत जल्द ख़राब हो जाती हैं। अतएव ऐसी फौलादका आविष्कार जिसपर धब्बे न पड़ें बड़े महत्वका विषय है। क्रोमियम एक धातु है, जो पच्चीस वर्ष पहले २५ पौण्ड प्रतिपौण्ड अर्थात् ७५०) सेर आती थी। पूर्वोक्त अलुमिनोथरमी की बदौलत अब वही १०) सेर मिलती है। इसी क्रोमियमको फौलादमें मिला देनेसे बे दाग़ फौलाद बन जाती है, जिसपर खानेकी चीजों और तेज़ाबोंके कारण धब्बा नहीं पड़ता। इसी धातुके मिलानेसे एक प्रकारकी अत्यन्त कठोर फौलाद, जिसे क्रोम-स्टील कहते हैं, बनाई जाती है। क्रोम स्टील-

की धुरें, हाल, कमानी और जड़ाज़ोंकी रक्षा करनेके लिए चद्दरें बनती हैं।

(४) रद्दी टायर का उपयोग

अब बाईसिकिल प्रायः घर घर देखनेमें आती हैं। मोटर भी जहां तहां व्यवहारमें आती हैं। पुरानी होनेपर इनके 'टायर' रद्दी समझ कर फेंक दिये जाते हैं, परन्तु यदि किसी प्रकार उसका रबर निकाल लिया जावे तो उसका बहुत तरहसे उपयोग हो सकता है। बाज़ारमें रबर-टायरमें चिप्पी लगाने और उसे मरम्मत करनेके लिये जो रबर-सौल्यूशन मिलता है, वह प्रायः बेनज़ोल, वा तारपीनके तेलमें घुलाया हुआ रबर होता है। उपरोक्त दोनों द्रव्योंके व्यवहारमें लानेका एक कारण यह है कि यह सभी उड़नशील (volatile) होते हैं अर्थात् हवाके स्पर्शके साथ ही तुरन्त उड़ जाते हैं, परन्तु यह महँगे भी बहुत हैं। यही काम 'स्पिरिट' से निकल सकता है। परन्तु यह भी कुछ सस्ती नहीं पड़ती। इन सबकी अपेक्षा किरासीन, पेट्रोल या मिट्टी का तेल बहुत ज्यादा सस्ता है और इसमें रबर गलानेका काम अच्छी तरह हो सकता है। किसी बर्तनमें रबर टायरके टुकड़े काट कर और तेलमें भिगो कर दो तीन दिन छोड़ दीजिये। वह अच्छी तरह फूल जायगा। इसके अनन्तर यदि नीचेसे धीमी धीमी आंच दीजिये तो रबर घुलकर नरम हो जायगा। आग लकड़ीके कोयले या टिकियाकी हो तो अच्छा। प्रचण्ड ताप देनेकी बिलकुल ज़रूरत नहीं। एक बातसे और सतर्क होना चाहिये। किरासीनके तेलके गरम होने पर उसमेंसे जो वाष्प निकले उसका अग्निसे सम्पर्क न होने पाये, नहीं वह जल उठेगी। संभव हो तो वक-यन्त्र या चिमनीकी राह उस धुएँको कुछ ऊपर उठा कर या ठंडा कर बाहर निकालना अच्छा है। अब बर्तनमें घुले हुये रबरसे क्या क्या तैयार हो सकता है यह देखना चाहिये। रबरके इस घोलमें कपड़ा भिगो लिया जाय तो ठंडा होनेपर न उसमें वायु और न जल प्रवेश कर सकता है अर्थात् वह air tight और water tight हो जायगा। यदि एक बार भिगोनेसे कपड़ेके सब छिद्र न बन्द न होवें तो दुबारा भिगो लेना चाहिये। इस कपड़ेसे जपानी ढंगके तकिये, कुर्सीके गद्दे इत्यादि तैयार हो सकते हैं। खूब हल्के और पतले मल मल और रेशमपर इसका कलफ चढ़ाकर हवामें उड़ाने योग्य 'बेलून' इत्यादि लड़कोंके खिलौने बन सकते हैं। यदि घोल गाढ़ा उतारा जाय तो उससे 'मोमजामा' या रबर कलाथ भी जिससे बरसाती कपड़े प्रस्तुत हो सकते हैं बन सकते हैं। यदि विज्ञानके पाठक इस प्रयोगकी परीक्षा करना चाहें और इस सम्बन्धमें विशेष हाल दर्याफ्त करना चाहें तो सम्पादक भारतवर्ष—'इंगित' C/o गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड संस २०१ कर्नवालिस स्ट्रीट कलकत्तेके पतेसे पत्र व्यवहार करें।

—गोपालनरायन सेन सिंह

(५) सुगन्धित द्रव्य तैयार करनेकी विधि

किसी बोतलके ऊपर चौड़े मुंह की कीप या फनेल रखिये। कीपमें बरफका चूर डालिये। कीपकी बाहरी दीवारसे लगेलगे चारों ओर जिस फूल द्रव्यकी सुगंधि उतारनी हो उसे बिछा दीजिये। सुगंधि कीपके आस पासकी ठंडी हवाके ज़ोरसे खिंच कर कीपके चतुर्दिक जल कणोंमें व्याप्त हो जायगी। ऊपरसे थोड़ी थोड़ी स्पिरिट डालकर आप बोतलमें सुगंधि संचित कर लीजिये और कागसे बन्द कर लीजिये

—गोपाल नरायन सेन सिंह

(६) चिमनीको पक्का करनेकी विधि

लम्पके लिए अबरख की देशी चिमनी बाज़ारमें बहुत दिनोंसे मिलती हैं, परन्तु वह एक ही नापकी आती हैं, इसलिए कांचकी चिमनियोंके टूटनेसे जो असुविधा होती है वह बन्द नहीं हुई। चिमनियोंको पक्का करनेका एक प्रयोग लिखा जाता है। ठंडे पानीमें थोड़ा साधारण निमक घोल लीजिये। फिर किसी बर्तनमें काफी पानी डालकर

और उसमें नई चिमनी डुबोकर आग पर चढ़ा दीजिये। नीचेसे धीमी आंच दीजिये और जब पानी गरम हो जाय तो उसे उतार लीजिये। चिमनीको ज्योंका त्यों खारे पानीमें ठंडा होने दीजिये। जब बिलकुल ठंडा हो जाय तो सुखाकर काममें लाइये। चिमनी अब पहलेसे कम चटकेगी।

—गोपालनरायन सेन सिंह बी० ए०

(७) प्रह्लादकी चटशाल

झांसीके ज़िलेमें बेतवा नदीके किनारे डिकोली नामका एक गांव है। यह स्थान हिरण्य कश्यपकी राजधानी एरचसे कोई दो मीलकी दूरी पर है। कहते हैं, कि यहां एक पहाड़ी पर प्रह्लादके गुरु संडय अमर्ककी चटशाल थी। यहां प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ल पूर्णिमाको एक बड़ा भारी मेला होता है, जिसमें प्रायः दस पन्द्रह हज़ार आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। (—स्वदेश)

(८) चावल खानेकी ठीक विधि

चावलोंको बिना धोये खौलते हुए पानीमें डाल देना चाहिये। पानी इस अन्दाज़से रखना चाहिये कि माड़ निकालनेकी आवश्यकता न पड़े। मतलब यह कि मड़मार चावल पकाने चाहियें। माड़ निकाल देनेसे बहुतसे पुष्टिकारक पदार्थ जो चावलके ऊपरी भागमें रहते हैं, निकल जाते हैं; बाकी रह जाता है केवल मंड याश्वेतसार (Starch)। चावलके ऊपर एक लालिमा लिये हुए पतली तह रहती है। ज्यादा कूटनेसे वह निकल जाती है। चांवल को कूटते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि यह लाल तह नहीं उतर जाती। वास्तवमें इसी लाल परतमें सबसे अधिक पौष्टिक पदार्थों-की मात्रा होती है। चावलकी सफेदी पर लट्टू हो जानेवालोंको हुशियार रहना चाहिये।

परिषद्के समाचार

बाबू मंगलाप्रसादजी, एम. ए., बी- एल. की असामयिक मृत्युका समाचार सुनकर हमें अत्यन्त शोक हुआ। आप बड़े उत्साही और परोपकारी सज्जन थे। आपको हिन्दीके प्रचारसे विशेष अनुराग था। परिषद्के जन्मसे ही आप उसके सभ्य थे और उसके सभी कामोंमें सहायता देते रहते थे। उनका विद्या प्रेम, नम्र स्वभाव, मिलनशीलता और ऊंचे आदर्श सराहनीय थे। हिन्दी संसारको विशेषतः उनसे बहुत आशाएं थीं, पर 'हर इच्छा बलवान'। ईश्वरसे प्रार्थना है कि स्वर्गमें उनकी आत्माको सुख दे और उनके कुटुम्बियोंको यहां पर शान्ति।

× × × × ×

परिषद्के एक सभ्य, श्रीयुत हरिश्चन्द्रजी, एम. एस-सी., को प्रान्तीय सरकारने आइ. सी. एस. में नियुक्तिके लिए चुना है। आप प्रयाग विश्वविद्यालयके सर्वोत्तम छात्रोंमेंसे एक हैं। आप प्रायः सभी परीक्षाओंमें सर्वोच्च स्थान पाते रहे थे और इसी कारण विश्वविद्यालयकी ओरसे आपकी सिफारिश डिप्टी कलेक्टरीके लिए हुई थी और आपकी उस पदपर नियुक्ति भी हो गई थी। आपको विलायतमें अध्ययन करनेके लिए एक सरकारी छात्रवृत्ति मिली थी, पर आपने युद्ध के कारण अस्वीकार की। अब आप विलायत गये हैं। हमें आशा है कि आप वहां पर भी ऐसी ही सफलता प्राप्त करेंगे और यश कमाकर सकुशल स्वदेश लौटेंगे।

× × × × ×

प्रोफेसर करम नारायण, एम. एस-सी. गत अगस्तमें पशु-शास्त्रका अध्ययन करनेके लिए इङ्गलेण्ड गये। जानेके तीन वर्ष पहिलेसे वह केंचुए-का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने उसके सम्बन्धमें कई नई बातें खोज निकाली थीं और कई बातोंका

भ्रम संशोधन किया था। उनकी गवेषणाकी मौलिकता और महत्वने डा० वुडलेण्ड (म्योर कालेज, प्रयाग) और मेजर स्टीविंसन (गवर्मेंण्ट कालेज, लाहौर) पर अच्छा प्रभाव डाला और उन्हींकी अनुमतिसे आपने डी. एस-सी. डिग्री प्राप्त करनेके लिए विलायत जाना निश्चित किया। जानेके पहले आपने अपना निबन्ध पञ्जाब विश्वविद्यालयको डी. एस-सी. उपाधि प्रदानकी प्रार्थनाके साथ और क्वार्टरली जरनेल ओव् माइक्रोस्कोपीकेल सायंसको प्रकाशनार्थ भेज दिया था। हम अपने पाठकोंको सहर्ष यह समाचार सुनाते हैं कि पंजाब विश्वविद्यालयने आपको डाक्टरकी पदवी प्रदान कर दी है और उपर्युक्त वैज्ञानिक पत्रने आपका निबन्ध छाप दिया है। आप पहले ही भारतीय हैं, जिनका इतना विस्तृत और सचित्र लेख इस पत्रमें छपा है। पत्रके संपादक प्राणि-विद्या-विशारदोंके मुकुटमणि सर ई. लैंकेस्टरने आपको एक पत्र भी लिखा है, जिसमें उन्होंने आपकी बड़ी प्रशंसा की है। हम आपको परिषद्की ओरसे बधाई देते हैं।

× × × × ×

पं० गोपालप्रसाद भार्गव, मालिक भार्गव बरफ़-खाना आगरा ने विज्ञानकी सहायतार्थ ५०) का दान दिया है। आपको परिषद्की ओरसे अनेक धन्यवाद।

× × × × ×

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थायी समितिने विज्ञानकी सहायतार्थ इस वर्ष १०१) दिये हैं। परिषद्की ओरसे सम्मेलनको कोटिशः धन्यवाद।

× × × × ×

प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ने एक ग्रन्थ "वैज्ञानिक अद्वैतवाद" लिखा है, जिसका कुछ अंश विज्ञानमें भी छप चुका है। अब पूरा ग्रन्थ ज्ञान मण्डल काशी छाप कर प्रकाशित करेगा। प्रोफ़ेसर महोदय ने बड़ी योग्यतासे यह दिखलाया है कि हिन्दुओंके मत मतान्तरोंमें वेदान्त कितने ऊंचे दरजेका है और आधुनिक विज्ञान उसके सिद्धान्तपर किस प्रकार प्रकाश डाल रहा है और बतला रहा है कि मेरा अन्तिम लक्ष्य वेदान्त ही है। वास्तवमें यह ग्रन्थ वैज्ञानिक साहित्यका भूषण होगा। इसका अनुवाद अन्य भाषाओं अंग्रेजी आदिमें भी होना चाहिये।

× × × × ×

अध्यापक चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी. ने कोषाध्यक्षके पद त्याग दिया है। अब आप सहायक मंत्रीके और प्रोफेसर ब्रजराज, एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी. कोषाध्यक्षके पदपर काम करेंगे।

हिसाब

१ अक्तूबर १९१९ से ३१ मार्च १९२० तक

आय

रोकड़ बाक़ी ३० सितम्बर १९१९ को	१७२९।-)-२
सभ्योंसे वार्षिक चंदेके	४०७।-)
महाराजा मयूरभंजसे सदाके लिए	१५०)
हिन्दी पुस्तकोंकी बिक्रीसे	२९१॥=)॥
उर्दू " "	॥-)
बा० गोपालनारायण सेन सिंहसे पुस्तक छपाई के	६४)
योग	२५९३।-)॥२

व्यय

दफ़्तर ख़र्च	१५९॥≡)
डाक व्यय	४३=)
मैजिक लालटेनके लिए	२००)
विज्ञानके हिसाबमें जमा किये ३० सभ्योंके	९०)
नोटिसोंकी छपाई	६≡)
अलमारी और मुतफ़र्रिक़ ख़र्च	३२॥=)॥
योग	५३०=)॥
रोकड़ बाक़ी १९ मार्च १९२० को	२०६३-) २
	२५९३।-)॥ २

अप्रैल १९२०

आय

रोकड़ बाकी	२०६३≡)२
सभ्यों से चंदेके	२४)
हिन्दी पुस्तकों की बिक्रीके	४)॥
	२१०१॥≡)॥२

व्यय

दफ्तर खर्च	४३।-)।
मुत्फर्रिक	४।≡)।
१६००) के कैश सारटीफिकेट खरीदे	१२५०)
योग	१२८७॥)॥
बाकी	८१३॥≡)२
	२१०१॥≡)॥२

प्राप्ति स्वीकार

१ अक्टूबर १९१९ से ३० अप्रैल १९२० तक

अक्टूबर १९१९

श्री० कौशल किशोर भार्गव, जयपुर	११)
राय ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती बहादुर, प्रयाग	१२)
श्री० गोपाल स्वरूप भार्गव, प्रयाग	१०)
श्री० महाराजा, म्यूरगंज	१५०)
प्रो० लालजी श्रीवास्तव, अजमेर	५)
प्रो० शंकर प्रसाद भार्गव, बरहामपुर	६)
पं० श्रीकृष्ण जोशी, नाभा	२४)
श्री० सालिग्राम टंडन डिप्टी कलेक्टर, भयरायच	२४)
पं० श्रीनाथ मिश्र, दरभङ्गा	२४)

नवम्बर १९१९

श्री० गोपाल स्वरूप भार्गव, प्रयाग	१)
श्री० सुखदेवप्रसाद टंडन इंजिनियर, आगरा	१२)
श्री० योगेश्वर जोशी वैद्य, कनखल	२४)
श्री० प्यारेलाल गर्ग, कानपुर	४)
प्रो० लालजी श्रीवास्तव, अजमेर	५)
श्री० राधा मोहन गोकुलजी, कलकत्ता	२४)
श्री० सतीशचन्द्र देव, प्रयाग	१०)
श्री० विनायकराव, जबलपुर	२४)
श्री० महाराजा, छतरपुर	२४)

दिसम्बर १९१९

प्रो० फैयाज बहादुर खाँ, प्रयाग	१२)
प्रो० गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, नागपुर	१२)
प्रो० प्यारेलाल गर्ग, कानपुर	४)
मा० पं० गोकरणनाथ मिश्र, लखनऊ	१२)
प्रो० लालजी श्रीवास्तव, अजमेर	५)
श्री० बाबू राम गुप्त, इटावा	१०)
ला० सीताराम, बी० ए०, प्रयाग	१२)

जनवरी १९२०

प्रो० निहालकरण सेठी, काशी	१२)
प्रो० सुरेन्द्रनाथ देव, प्रयाग	४)
प्रो० फुलदीप सहाय वर्मा, काशी	४)
प्रो० लालजी श्रीवास्तव	५)
प्रो० प्यारेलाल गर्ग, कानपुर	४)

फरवरी १९२०

प्रो० फुलदीप सहाय वर्मा, काशी	४)
प्रो० के० एस० तम्मा, मेरठ	१२)
प्रो० लालजी श्रीवास्तव, अजमेर	५)
श्री० हरिश्चन्द्र प्रयाग।	२४)

मार्च १९२०

प्रो० लालजी श्रीवास्तव, अजमेर	५)
प्रो० सतीशचन्द्र देव, प्रयाग	१०)
प्रो० फुलदीप सहाय वर्मा, काशी	४)

अप्रैल १९२०

श्रीमोहनलाल जौहरी, बम्बई	२४)
प्रो० परमानन्द, प्रयाग	१०)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्णसंख्या ६२
भाग ११
Vol XI.

Reg. No. A 708

वृष १९७७। मई १९२०

संख्या २
No 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञ हिन्दी हितैषियो !

विज्ञानने आपकी और आपके साहित्यकी पांच वर्ष सेवा की और घाटा उठाया। इसपर भी आपके मित्रोंने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। क्या अब आप इस ओर उनका ध्यान दिला सकते हैं और उसकी ग्राहक संख्या बढ़ा सकते हैं ? यदि ग्राहक संख्या न बढ़ायी गयी तो कागज और अन्य चीजोंकी मँहगाईसे तंग आकर या तो विज्ञान का चंदा बढ़ा दिया जायेगा या उसकी पृष्ठ संख्या कम कर दी जायगी। इसलिए आपसे सविनय प्रार्थना है कि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने का यत्न कीजिए।

उन रोचक लेखोंकी सूची जो पिछले अंकमें निकल चुके हैं नीचे दी जाती है।

१—अपनी चर्चा।
२—महोबेमें पानोंकी खेती।
३—प्रकृतिके स्वांग।
४—भारतीय चित्रकला।
५—बिच्छू।
६—धूलके रोगोत्पादक जीवाणु।
७—नहरी गावोंमें पैदावार की कमी और उसके दूर करनेके उपाय।
८—मकड़ी।
९—डा० रायकी वक्तृता।
१०—गैसकी रोशनी।
११—गृहस्थ विद्यार्थी।
१२—टंगस्टन लेम्प।
१३—पोलडू चेलू।
१४—वैज्ञानिकीय।
१५—परिषद् समाचार।

विज्ञानके पिछले अङ्क भी मिल सकते हैं। उन अङ्कोंकी पूरी पूरी विषय सूची देना असम्भव है परन्तु कुछ लेखोंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

१—तारपीन और बिरोजा।
२—वायु-मंडलपर विजय।
३—बिजली कैसे बनायी जाती है ?
४—भोजन की पुकार।
५—तारों भरी रात।
६—स्वास्थ्य-रक्षा।
७—फूलोंके संसारमें एक पागलका प्रवेश।
८—फिटकिरी।
९—बिजलीकी रोशनी।
१०—चतुर बैरिस्टर।
११—आकाशी दूत।
१२—भूल भूलैया।
१३—बीजोंका प्रवास।
१४—बीज परम्पराका नियम।
१५—खाद्य।
१६—नमक और नमककी खानें।
१७—गरम देशोंके योग्य वस्त्र।
१८—मदन दहन।
१९—स्कूल जानेवाले विद्यार्थियोंके दांतोंकी कुदशा।
२०—मनुष्यका नया नौकर इत्यादि इत्यादि।

विज्ञानका पुराना अंक नमूनेके लिए भी मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागसे मुफ्त मिल सकता है। नये अंकके लिए ।-) के टिकट भेजिये।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ११ | वृष, संवत् १९७७। मई, सन् १९२०। | संख्या २

भाषाशास्त्र

(लेखक—लाला कन्नोमल, एम० ए०)

बहुत सी भाषाओंमें एकसे शब्द मिलते हैं। कभी कभी तो इन शब्दोंका एक ही रूप रहता है और बहुधा देशकालके प्रभावसे कुछ कुछ परिवर्तित हो जाता है; यह अपने परिवर्तित रूपोंमें भी पहचाने जा सकते हैं। उदाहरणतः नीचे छः भाषाओंके शब्द लिखे जाते हैं, जो वास्तवमें एक ही हैं। थोड़ा बहुत रूपान्तर हो गया है जिसके नियमित कारण हैं:—

	शब्द	शब्द	शब्द	शब्द
संस्कृत—	पितृ	स्था	युग	विद्
फार्सी—	पिदर	ओस्तद्	युग्ध	वद्
यूनानी—	पेटर	रास्तेमी	जुगो	फेस्टे
लेटिन—	पेटर	स्तो	जुगम्	विदो
जर्मन—	वेटर	स्तेह	जोख	विस्से
अँगरेज़ी—	फादर	स्टैण्ड	योक	विट

संस्कृतके कमसे कम ६०० धातु अंगरेज़ी भाषामें हैं।

इन शब्दोंका इस प्रकार आपसमें मिलना अकस्मात् घटना नहीं है। यह इस बातका प्रमाण है कि अत्यन्त प्राचीन कालमें कोई ऐसा समय था, जब इन सब भाषाओंके बोलनेवालोंके पूर्व पुरुष एक स्थानपर ही रहते थे और एक भाषा ही बोलते थे। बादमें वह पृथक् पृथक् हुये। पृथक् पृथक् देशोंमें जानेसे देशकालके प्रभावसे भाषाओंमें तो भिन्नता हो गई लेकिन सब आवश्यक चीज़ों और कामोंके नाम न्यूनाधिक वही रहे। यही कारण है कि इन भाषाओंमें सूक्ष्म दृष्टिसे खोज करनेसे अनेक शब्द एकसे निकलते हैं। यूरोपके विद्वानोंको ग्रीक, लेटिन आदि भाषाओंमें एकसे शब्दोंका मिलना खटकता तो अवश्य था पर वह किसी व्यापक नियमको नहीं बता सकते थे। १८ वीं शताब्दीके अन्तमें जब सर विलियम जोन्स भारतवर्षमें आये और उन्होंने दत्तचित्त हो संस्कृत सीखी तो उन्हें मालूम हुआ कि संस्कृत भाषाकी सहायतासे वह

यूरोपकी सब मुख्य मुख्य भाषाओंकी समताका कारण बता सकते हैं। इन्होंने यूरोपके विद्वानोंका ध्यान इस तरफ आकर्षित किया और परिणाम यह हुआ कि अनेक पाश्चात्य विद्वान संस्कृत पढ़ने लगे और भाषा-समता सम्बन्धी प्रश्न जिन्हें यह ग्रीक लेटिन आदि भाषाओंकी सहायतासे नहीं हल कर सकते थे, संस्कृतद्वारा हल करने लगे—

अनेक पाश्चात्य विद्वानोंमेंसे जिन्होंने संस्कृत पढ़ कर भाषाशास्त्र का विकास किया है निम्न-लिखित थोड़ेसे नाम हैं—

सर विलियम जोन्स, टोमस कोलब्रुक, बेलनटाइन बुकनन, करे, क्राफर्ड, डेविस ईलियट, एलिस, हैटन, लीडिन, मेकेंञी, मार्स्डन, म्यूर, प्रिंसिप, रेनेल, टर्नौर, वालिश, वारन, विल्किंस, विल्सन आदि आदि।

भाषाओंकी गम्भीर गवेषणासे यह पता लगा कि अत्यन्त प्राचीन कालमें आर्यजाति एक ही थी और मध्यएशियामें रहती थी। इस जातिके सब मनुष्य एक ही भाषा बोलते थे और सभ्यताके मूल नियमोंसे भलीभांति परिचित थे। यह नगरोंमें रहते थे। इन्होंने बड़े बड़े किले बनाये थे।

घोड़ा, बैल, भेड़, बकरी, कुत्ता आदि सभी पालतू जानवरोंको रखते थे। इनके पशुओंके झुण्ड पर कभी कभी रीछ और भेड़िये आ टूटते थे और पालतू जानवरोंको ले जाते थे। इनके घरोंमें चूहे और मक्खियां भी थीं। जो धातुएं हमारे काममें आजकल आती हैं उनसे काम लेना यह भी जानते थे। यह कपड़ा बुनना और नावें बनाना जानते थे और अपनी नावोंको पतवारोंसे खेआ करते थे। यह हज़ार लककी गिनती भी जानते थे। इन्होंने आकाशके कितने ही ग्रह और तारे देखकर उनका समय चन्द्रमाकी गतिके अनुसार बांध दिया था। यह ईश्वरकी उपासना भी करते थे और उसके रहनेका स्थान आकाशमें बताते थे।

यह सब बातें किस समयकी हैं इसके विषयमें कोई कुछ निश्चय रूपसे नहीं कह सकता है। इतना तो कहा गया है कि यह काल कमसे कम ३००० वर्ष पहलेका होगा। आर्यजातिके निवासस्थानके विषयमें भी विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। कोई कहते हैं कि यह लोग हिन्दुकुश पर्वतश्रेणी और कास्पियन समुद्रके मध्यमें रहते थे। कोई कहते हैं कि यह उत्तर ध्रुव-देशोंमें रहते थे। किसीका मत है कि इनका निवासस्थान उत्तरी रूस है। कुछ विद्वानोंका यह मत भी है कि यह सप्त नदियोंके बीचके देशमें रहते थे और यह देश पंजाब है। इसका प्रमाण वेदोंमें भी है। जहां कहीं भी रहते हों और किसी कालमें क्यों न रहते हों यह बात बहुमतसे सिद्ध है कि आर्यजाति नामकी एक जाति थी और उसी जातिकी संतानोंमें से संसारकी मुख्य मुख्य जातियां हैं। जिस समय यह जाति अपना निज निवासस्थान छोड़कर तितर बितर हुई तो उसकी एक शाखा पश्चिममें चली गई और डेन्यूब नदीके समीपवर्ती यूरोपके प्रान्तोंमें बसी। यह शाखा केल्ट्सके नामसे विख्यात हुई। इसके पीछे दूसरी शाखा जिसका नाम ट्यूटंस था पश्चिम दिशाको ही रवाना हुई। डेन्यूब नदीके किनारे बसनेवाली केल्टस शाखाके लोगोंको दूर पश्चिममें वेल्स आइर्लेण्ड, स्काटलेण्ड देशोंमें ढकेल दिया और आप उनके स्थान पर जम गई। एक और शाखा जो स्लेवोनियन्स् कहलाती थी, रूस देशमें जा बसी और शनैः शनैः पोलेण्ड बोहेमिया आदि स्थानोंमें फैल गई। दो शाखाएं यूनान और रोम देशोंमें जा बसीं। एक शाखा भारतवर्षमें आई जिसकी भाषा संस्कृत थी। एक और शाखा ईरान देशको गई और उसकी भाषा फारसी थी। इस प्रकार आर्यजातिकी सात शाखाएं हुईं और वह भिन्न भिन्न देशोंमें जा बसीं। इन्हींकी सन्तानोंमें भारतवर्ष, ईरान और यूरोप देशके मनुष्य हैं। इस प्रकार इन सबमें भाईचारेका सगा रिश्ता है। अति प्राचीन कालके पृथक् पृथक् रहने-

से यह लोग ऐसे मालूम होने लगे हैं कि इनमें कभी कुछ रिश्ता ही नहीं था, पर वास्तवमें यह बात नहीं है। भाषाशास्त्रके अटूट प्रमाणोंसे सिद्ध हो गया है कि आर्यजाति एक ही थी और उसीके सन्तानोंमेंसे हिन्दू, ईरानी और यूरोप देशवासी हैं। आर्यजातिकी पूर्वोक्त सात शाखाओंकी भाषाएं यह हैं:—

(१) हिन्दूशाखाकी भाषा संस्कृत है, जिसमें-से बंगाली, हिन्दी, मरहटी आदि उपभाषाएं बनी हैं।

(२) ईरानी शाखाकी भाषाएं, जन्द, फार्सी, पर्सियन और अर्मिनियन हैं।

(३) स्लेवोनिक शाखाकी भाषाएं, रसियन, इल्लिरिक, पोलिश और बोहेमियन हैं।

(४) केल्टिक शाखाकी भाषाएं, मुख्य दो थीं अर्थात् गेलिक और किमरिक। गेलिक की तीन उपभाषाएं हैं—१ आइरिश २ हाइलेण्ड स्कोच और ३ मेंक्स जो मेनद्वीपमें बोली जाती है।

किमरिककी दो उपभाषाएं हैं—१ वेल्श और २ ब्रेटन, जो फ्रांस देशके उत्तरमें ब्रिटेनी प्रान्तमें बोली जाती है।

(५) यूनानी शाखा की भाषा ग्रीक है, जिसमें से रोमेइक उपभाषा उत्पन्न हुई है।

(६) रोमकी शाखाकी मुख्य भाषा लेटिन है। इसमेंसे ४ उपभाषाएं उत्पन्न हुई हैं जिनके नाम यह हैं:—१ इटेलियन, २ स्पेनिश ३ पोर्चुगीज़ और ४ फ्रेंश्च। यह चारों उपभाषाएँ रोमेन्स नामसे भी व्यक्त हैं, क्योंकि वह रोमन लोगोंकी भाषासे निकली हैं।

(७) ट्यूटनिक शाखाकी मुख्य भाषाएं तीन हैं—

१—स्केन्डीनेवियन, जिसमेंसे आइसलेण्डिक, नोर्वीजियन, स्वीडिश और डेनिश उपभाषाएं उत्पन्न हुई हैं।

२—हाई जर्मन जिसमेंसे प्रचलित जर्मन भाषा निकली है।

३—लो जर्मन जिसमेंसे प्राचीन फ्रीसियन, डच, फ्लेमिश, सेक्सन और पुरानी अंगरेज़ी उपभाषाएं निकली हैं।

इन सब भाषाओंके कुटुम्बको इन्डोयूरोपियन फेमली कहते हैं। इससे ज्ञात होगा कि अंगरेज़ी भाषा, जिसका आजकल खूब प्रचार है, ट्यूटनिक शाखाकी लो जर्मन भाषासे निकली है। प्रचलित अंगरेज़ी भाषामें ग्रीक, फ्रेंश्च और लेटिन भाषाओं-के बहुत से शब्द मिले हैं।

उपरोक्त सब भाषाओंमें संस्कृत सबसे बड़ी, पूर्ण और महत्त्वशालिनी भाषा है। यह भाषा अब भी बोली और लिखी जाती है। इसका साहित्य भाण्डार बड़ा विशाल और प्रतिभाशाली है। इसीके आधारपर आधुनिक भाषाशास्त्रकी नींव डली है और इसीके प्रभावसे आर्य जातिकी प्राचीन दशाका वृत्तान्त मालूम हुआ है। संस्कृत भाषाके जाननेसे यूरोपके विचारोंमें बड़ा परि-वर्त्तन हो गया है और हो रहा है। इसी भाषाकी प्रशंसामें मोक्षमूलरने लिखा है कि जो बातें हम संस्कृत साहित्य पढ़नेसे मालूम कर सकते हैं, वह ग्रीक भाषाके पढ़नेसे कभी नहीं उपलब्ध हो सकती हैं। खेद है कि जिस भाषाकी प्रशंसा यूरोपके धुरन्धर विद्वान् मुक्तकण्ठसे करें और जिसके प्रकाशसे संसारके प्राचीन इतिहासकी खोज लगाई जाय उस भाषाको एतद्देशीय मनुष्य ऐसी उदासीनतासे देखें और उसे मृत भाषा कह कर कुछ पण्डित और पुजारियोंके लिये ही छोड़ दें।

उपरोक्त भाषाओंका हम एक नक़शा देते हैं, जिससे इस लेखका विषय भली भांति स्पष्ट हो जायगा—
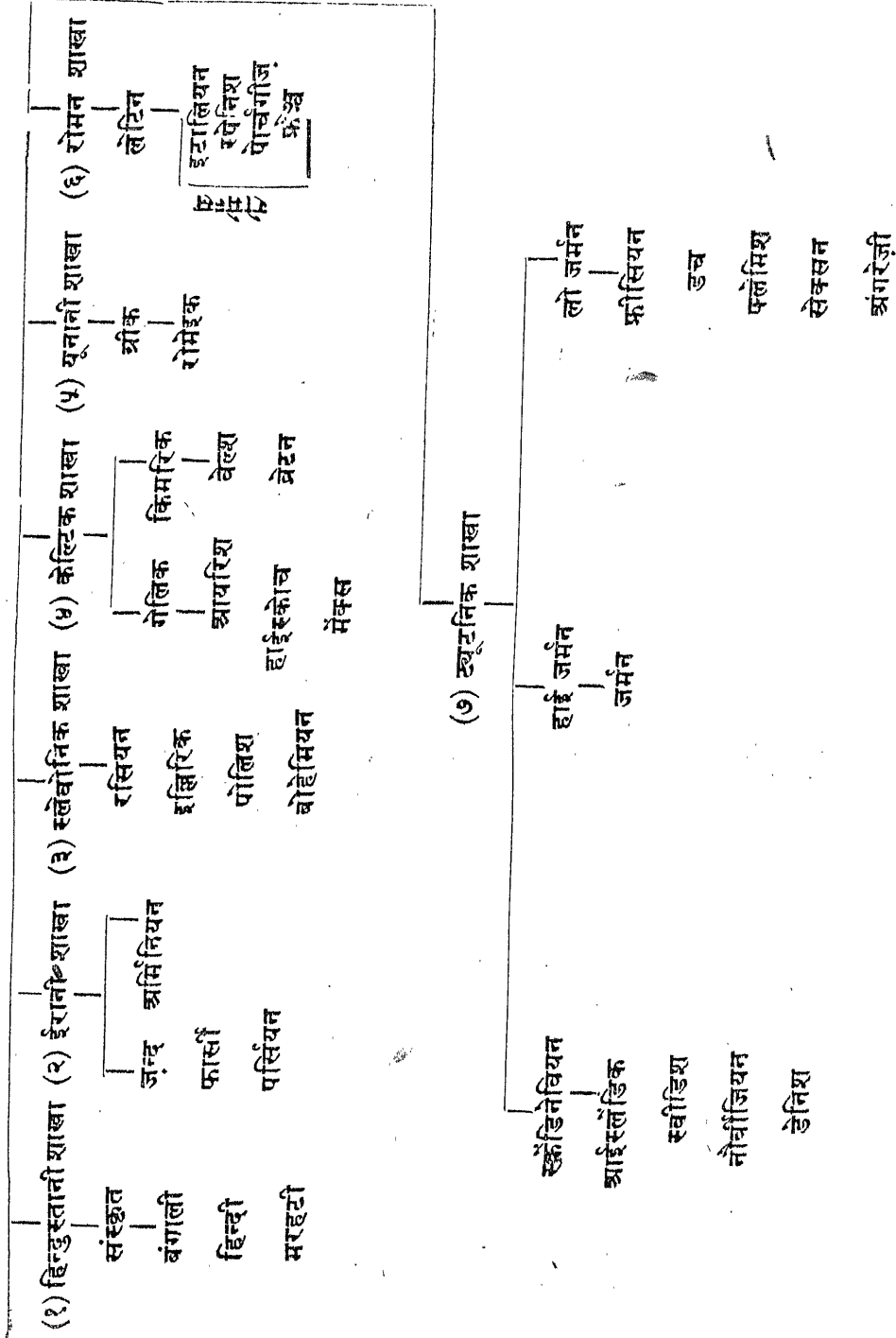
नोट—अंगरेज़ी भाषामें ग्रीक, लेटिन और फ्रेञ्चका बहुत मेल है और वह स्वयं ट्यूटनिक शाखाकी लो-जर्मनमेंसे निकली है।

रोशनाई

रोशनाईकी उपयोगिताकी इस युगमें बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। सारा संसार मान चुका है कि बिना रोशनाईके एक दिन भी संसारका काम नहीं चल सकता। किन्तु हतभाग्य भारतवर्ष मामूलीसे मामूली वस्तुओंके लिए भी विदेशका मुंह ताकता है।

रोशनाई कई प्रकारकी होती है—(१) लिखनेकी रोशनाई, (२) छापेकी रोशनाई, (३) मोहर देनेकी रोशनाई Stamping Ink, (४) जूतेकी रोशनाई इत्यादि इस लेखमें मैं लिखनेकी रोशनाईके विषयमें कुछ लिखूंगा। लिखनेकी रोशनाई कई रंगकी होती है; जैसे काली, लाल, हरी, नीली, ब्लू ब्लैक (blue black) आदि। हर तरहकी रोशनाई बाजारमें तीन अवस्थामें आती है। (१) तरल (liquid) (२) टिकिया (tablets) (३) बुकनी (powder)। आज कल तरल और टिकियाका ज़माना है, बुकनी न बाज़ारमें मिलती है और न कोई खरीदना ही चाहता है, क्योंकि इसमें दो बुराइयां होती हैं—(१) यदि इसे पानीमें घोल दें तो तुरन्त स्याही नहीं तैयार होती; इसके लिए कमसे कम दो तीन दिन लगते हैं। (२) इसमें कचरा बैठ जाता है। हां, मैं माननेके लिए तैयार हूं कि कुछ दिन हुए या आज कल भी कहीं कहीं एक प्रकारकी स्याही बुकनीकी अवस्थामें पाई जाती है, जिसका वर्णन मैं रोशनाईकी टिकियाके साथ करूंगा।

अच्छी रोशनाइयोंमें पांच गुण होने चाहियें—(१) स्याहीका रंग गहरा हो। यदि लिखते समय फीका हो तो कुछ देरमें या सूखने पर गहरा हो जाय।

(२) स्याहीका बहाव अच्छा हो (freedom of flow) अर्थात् उसमें यह बुराई न हो कि कलममें चिपटी रह जाय और कागज पर लिखा ही न जा सके। दूसरे क़लमसे एकसां उतरती जाय।

(३) स्याहीका रंग बहुत दिनों तक ज्योंका त्यों बना रहे, बदले नहीं।

(४) धोने पर मिटे नहीं।

(५) काग़ज़को खा न जाय।

बहुत सी रोशनाइयोंमें चौथे गुणका सर्वथा अभाव रहता है अर्थात् पानीसे धोनेपर उनके अक्षर अदृश्य हो जाते हैं और कोरा काग़ज़ ही बच रहता है।

रोशनाईकी टिकिया और बुकनी

टिकिया बनानेके लिए बाज़ारमें एक मेशीन मिलती है, जिसकी सहायतासे हम लोग थोड़े समयमें अधिक काम कर सकते हैं। इन टिकियाओंको केवल पानीमें घोल देनेसे अच्छी रोशनाई बन जाती है। आज कल बाज़ारमें जितनी रोशनाईकी टिकिया मिलती हैं, वह वास्तवमें रोशनाई नहीं होती, किन्तु कई प्रकारके जर्मनीके बने हुए रंग होते हैं। इनका परिमाण डेक्सट्रिन या घुलनशील मंड (Starch) मिला कर अधिक कर दिया जाता है। इनमें अच्छी रोशनाईके सब गुण नहीं होते। ऊपर दिये हुये तीसरे और चौथे गुणोंको छोड़ इनमें और सभी गुण मौजूद रहते हैं। यदि इन रंगोंकी मेशीन द्वारा टिकिया न बना योंही छोड़ दें तो वही "रोशनाईकी बुकनी" कही जायगी। अब मैं पाठकोंके लाभार्थ "रोशनाईकी टिकिया" तथा "रोशनाईकी बुकनी" बनानेकी विधि देता हूं।

मिथिल ब्लू (Methyl blue) ६ पौंड—१२) रु० पौंडके हिसाबसे ६ पौन्ड का दाम १०८) रु०
मिथिल वायलेट (Methyl violet) ३,,—१२) रु० ,, ,, ३ पौन्ड ,, ,, ३६) रु०
डेक्सट्रिन (Dextrine) ६० पौंड—।=) आने ,, ,, ६० हौन्ड ,, ,, २२॥) रु०
७२ पौंड रोशनाई तैयार करनेमें खर्च हुआ— १६६॥) रु०

तीनों पदार्थोंकी बुकनी कर, अच्छी तरह मिला देना चाहिये। मेशीनका दबाव टिकिया बनानेके लिए काफी है; डेक्सट्रिन एक लसदार पदार्थ है, अतएव पानी या और कोई चीज़ देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। दबाव पड़ने पर आप ही टिकिया बन जाती है। टिकिया बनानेकी मेशीन कमसे कम २००) रु०में मिलती है; इसीसे कुछ लोग इसे बुकनी ही रहने देते हैं। किन्तु मेशीनसे लाभ यह होता है कि उसके द्वारा टिकिया बराबर की बनती हैं; ऐसा नहीं होता कि कोई टिकिया बड़ी तो कोई छोटी।

इस बुकनीके एक पौंडसे ७०० टिकिया तैयार होती हैं। ७२ पौंड बुकनीमें ७२×७०० = ५०४०० अर्थात् ३५० ग्रौस टिकिया बनीं। इन्हें यदि १=) प्रति ग्रौसके हिसाबसे बेचा जाय तो ३५० ग्रौस ३९३।।।) आनेमें बिकेंगी। इस स्याहीके बेचनेसे कितना लाभ होगा यह नीचे दिये अंकोंसे स्पष्ट हो जायगा।

रोशनाई बनानेका खर्च	१६६।।)
रोशनाई रखनेके बक्सका दाम (प्रत्येक ग्रोसके लिये =)के हिसाबसे)	४३।।।)
एजेन्टोंको कमीशन („ „)	४३।।।)
योग	२५४)

३९३।।।)मेंसे यदि २५४ घटा दिया जाय तो १३९।।।) बचा अर्थात् ५० फी सैकड़ेसे भी अधिक लाभ हो सकता है। जो लोग टिकिया बना कर बेचना नहीं चाहते उन्हें कागज़की छोटी छोटी पुड़ियोंमें बुकनी रख कर बेचनी चाहिये। ऊपर लिखी हुई रासायनिक पदार्थ (Chemicals) मेसर्स बी० के० पाल ऐन्ड को० कलकत्ता या बङ्गाल केमिकल वर्क्स कलकत्ताके यहां मिल सकते हैं और मेशीन मेसर्स पी० एन० दत्त एण्डको कलकत्ताके यहां।

सरल रोशनाई

इस प्रकारकी रोशनाईकी जान गैलिक एसिड (gallic acid) है। गैलिकाम्ल माजूफल, डिवि-डिवी, आमकी गुठली, हर्र आदिकई फलोंमें पाया जाता है। गैलिक ऐसिडके साथ यदि कसीस मिलाया जाय तो काले रंगकी बढ़िया रोशनाई बन सकती है।

आज कलकी दुनिया कम खर्चमें अच्छी चीज़ बनाना चाहती है, क्योंकि तभी व्यापारिक परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी सम्भावना है। व्यापारिक क्षेत्रमें बाज़ी मारनेके लिये हमें भी उचित है कि सस्ती चीज़ोंको काममें ला उत्तम पदार्थ बनावें। मैं सस्ती चीज़ों के व्यवहारके लिये ज़ोर देता हूँ और यथासम्भव स्वयं भी सस्ती वस्तुओंके ही व्यवहार-से रोशनाई बनाना बतलाऊँगा। माजूफल तीन रुपये सेरसे सोलह बीस रुपये सेर तक मिलता है। इसे काममें लाना अधिक खर्च करना है। डिवी-डिवी एक विदेशी फल है। यदि हम इससे काम लें तो दूसरे देशोंसे पार न पावेंगे, क्योंकि इसीके भाव पर हम लोगोंकी रोशनाईका दाम भी घटता, बढ़ता रहेगा। आमकी गुठली एक तो बहुतायतसे मिलती ही नहीं और यदि मिलती भी है तो गरीब लोग उसकी रोटी बनाकर खाते हैं। मैं दूसरोंका आहार भी छीनना नहीं चाहता। बाकी बची हर्र; यह सस्ती भी होती है और इससे रोश-नाई भी अच्छी बनती है।

हर्र दो प्रकारकी होती है। एक छोटी और दूसरी बड़ी, बड़ी हर्र रोशनाई बनानेके काममें आती है। इससे जो रोशनाई बनती है उसका रंग बहुत दिनों तक खराब नहीं होता। यथा सम्भव नई हर्रोंसे काम लेना चाहिये। पुरानी हर्रें या सड़ी हुई हर्रोंसे अच्छी रोशनाई नहीं बनती। सर्वोत्तम रोशनाई बनानेके लिये हर्रोंको सुखाकर उसके छिलके और बीजको अलग कर देते हैं। फिर छिलकेको कूट कर पानीके साथ किसी

मिट्टीके बर्तनमें रख सड़ने देते हैं। गर्मीके दिनोंमें इसके लिये एक हफ्ता काफी है; किन्तु जाड़ेके दिनोंमें अधिक समयकी आवश्यकता होती है। जब इसमें भुकड़ी लगने लगती है तब बचे हुये पानीको किसी कड़ाहमें डालकर उबाते हैं और थोड़ी थोड़ी मात्रामें नीचे लिखे पदार्थोंको मिलाते जाते हैं। इसे बराबर चलाते रहना चाहिये जिसमें सब चीज़ें अच्छी तरह घुल कर एक दूसरेसे मिल जायँ। जब सब चीज़ें अच्छी तरह मिल जाती हैं तब आगसे उतार कर छान लेते हैं। यह बहुत बढ़िया रोशनाई होती है। यदि इसमें थोड़ा सा इन्डिगोकारमाइन मिला दिया जाय तो उम्दा ब्लू-ब्लैक रोशनाई बन जाती है।

रोशनाई बनानेके कुछ नुस्खेः—

(१) माजूफल—२५ भाग तोल कर

कसीस	१०	„	„
गोंद	१०	„	„
पानी	१००	„	„
कारबोलिक एसिड	२	„	„

(२) रोशनाईकी बुकनी

माजूफल	१२ भाग तोल कर		
कसीस	५	„	„
गोंद	२	„	„
चीनी	१	„	„

(३) माजूफल ... २२। भाग तोलकर

कसीस	... ७५	„	„
गोंद	... २५	„	„
पानी	... १०००„		„

(४) स्फिटेन्स ब्लू-ब्लैक रोशनाई

माजूफल	... १५ भाग तोल कर		
कसीस	... ५	„	„
पानी	... २००	„	„
इन्डिगो कारमाइन१॥		„	„

इन रोशनाइयोंमें माजूफलके बदले हर्र इस्तैमाल कर सकते हैं। इन रोशनाइयोंको भुकड़ीसे बचाने-के लिये थोड़ा सा कार्बोलिक एसिड डाल देते हैं। मेरे एक मित्रने मुझसे एक बार कहा था कि लवंगका अर्क भी रोशनाईको भुकड़ी लगनेसे बचाता है। किन्तु मुझे प्रयोग कर देखनेका समय नहीं मिला; पाठक चाहें तो प्रयोग कर देख सकते हैं। "इन्डिगो कारमाइन" के बनानेकी रीति "नील के रंग" के साथ बतलायी जायगी। यह किसी (केमिस्ट) दवाफरोशके यहाँ मिल सकता है।

—रमेश प्रसाद, बी. एस-सी.

छोटी छोटी बातोंका बड़ा परिणाम

नित्यके जीवनमें अनेक ऐसे अवसर आ-जाते हैं, जब हमसे छोटी छोटी बातों-को भूल जानेका अनुरोध किया जाता है। हम अपने आप भी छोटी छोटी बातोंपर ध्यान देना अनुचित समझते हैं और बहुत बार उन्हें टाल जाते हैं। पर इसका कारण क्या है? छोटी छोटी बातोंको टाल देना, उनपर ध्यान न देना, हमें क्यों सिखाया जाता है? इसका प्रभाव हमपर, हमारे चरित्रपर, क्या पड़ता है? वास्तव-में इस अभ्याससे, इस टेव से, हमें हानि उठानी पड़ती है अथवा लाभ? इन्हीं सब प्रश्नोंपर आज हम विचार करना चाहते हैं।

प्रायः छोटी छोटी बातोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखनेका कारण उनका तुच्छ होना ही समझा जाता है, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे बात कुछ और ही है। वस्तुतः छोटी छोटी बातोंको इस लिए टाल देते हैं कि उनका परिणाम सदा भयंकर और हानिकारक होता है। उन्हें यदि टाल न दें तो इतने झगड़े टंटे खड़े हो जायं कि समस्त जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो जाय। सत्यका अनादर कर, उसको छिपाना

आवश्यक है और उसका फल मनुष्यको भोगना पड़ता है। बचपनसे ही छोटी छोटी बातोंको तुच्छ समझ कर टाल देनेकी आदत अच्छी नहीं, क्योंकि इससे निरीक्षण करनेकी शक्ति घट जाती है। बच्चोंको आरम्भसे ही यह शिक्षा देना चाहिये कि कोई बात इस दुनियामें छोटी और तिरस्कार करने योग्य नहीं है। जो काम करो बहुत सोच समझ कर करो, जो बात तुम्हें अपने लक्षित मार्ग-से हटाये, उससे बचो, अन्यथा सभी बातोंको पूरे ध्यानसे देखो, विचार करो और उनसे लाभ उठाओ।

कुछ उदाहरण हम अपने कथनके समर्थनके लिए दिये देते हैं। मान लीजिये कि आप बाज़ारमें चले आ रहे हैं और अचानक किसी आदमीका धक्का लग गया। प्रायः सभी इसे एक छोटी सी बात कहेंगे और टाल देनेका उपदेश देंगे। पर टाल देनेका उपदेश क्यों दिया जाता है? क्या इस लिए कि घटना तुच्छ है? वास्तविक कारण यह है कि यदि टाल न दें और झगड़ा करनेको उद्यत हो जायं, तो समय, शक्ति, धन आदिका बहुत कुछ अपव्यय और दुरुपयोग होनेकी संभावना होती है। इन सब बातोंका ख़याल करके और यह सोच कर कि और बहुत से आवश्यक और उपयोगी काम करने हैं, टाल देना ही उचित समझा जाता है। पाठकोंने बहुत से ऐसे मुकद्मों-का हाल सुना होगा कि जिनमें दो चार हाथ भूमिपर लाखों रुपये खर्च हो गये हैं।

महाभारतमें लिखा है कि पाण्डवोंने एक घर बनाया था, जिसमें छाया, प्रकाश और परावर्तनका ऐसा प्रबन्ध रखा था कि थलमें जलका और जलमें थलका आभास होता था। पाण्डवोंने कौरवोंको महलके देखनेका निमंत्रण दिया। कौरव आये। दुर्योधन थलमें कपड़े समेट कर, सावधान होकर, आगे बढ़ने लगा; पर जहां पानी आया वहां असा-वधानीसे गिर पड़ा और भीग गया। द्रौपदीसे यह देख कर न रहा गया और कह बैठी, "आखिर हैं तो अंधेकी सन्तान"। इन शब्दोंने ही वह द्वेष-के बीज बो दिये, जिनका फलस्वरूप महाभारत हुआ और भारतका भारी अधःपतन आरम्भ हो गया।

लार्ड रैलेने एक बार यह निश्चय किया कि गैसोंका गुरुत्व निकालें। उन्होंने प्रत्येक गैस कई विधियोंसे बनाकर शुद्ध की और गुरुत्व निकाला। नत्रजन भी उन्होंने दो तरहसे बनाई—एक तो वायुसे ओषजन अलग करके और दूसरे कई ओषधियोंको तपा कर। क्रमसे दोनों तरहसे बनाई हुई नत्रजनको एक कांचकी कुप्पीमें भर कर तोला तो मालूम हुआ कि वायुसे बनाई हुई नत्र-जनका भार २·३१०१ ग्राम और ओषधियोंको तपाकर बनाई हुई नत्रजनका भार २·२९९० ग्राम बैठता है। (दबाव और तापक्रम दोनों दफा एक ही था।) यह मूल्य एक ही प्रयोगसे नहीं निकाले गये थे, किन्तु कई प्रयोगोंके परिणामोंके औसत निकालनेसे प्राप्त हुए थे। इनमें अन्तर केवल ११ मिलीग्राम (सहस्रांशग्राम) अर्थात् एक तोलेका दस हज़ारवां भाग था, पर लार्ड रेलेने इस छोटी सी बातको टाल न दिया। प्रयोगपर प्रयोग करते गये। उन्होंने गूढ़ विचार करके वह सब त्रुटियां निकाल दीं, जिनसे तोलमें अशुद्धता आ सकती थी और यह निश्चय कर लिया कि यह अन्तर प्रायोगिक अशुद्धताकी अवधिके बाहर है। अर्थात् प्रयोगोंके कारण इतना अन्तर नहीं हो सकता—यह अन्तर वास्तविक है। इतना निश्चय करनेपर उन्होंने १८९२ की २९वीं सितम्बरके नेचरमें लिखा "हालमें ही नत्रजनका गुरुत्व निकालनेसे जो मुझे मूल्य मिले हैं, उनसे मैं बड़ी दुविधामें पड़ गया हूं। मैं बड़ा अनुगृहीत हूंगा, यदि आपके पाठकोंमें-से कोई सज्जन उसका कारण बतला सकेंगे। दो विभिन्न विधियोंसे नत्रजन बना कर प्रयोग करनेसे भिन्न भिन्न गुरुत्व निकलते हैं।" इस घटनाके पश्चात् लार्ड रेलेने सर विलियम रेमसेके साथ गवेषणा शुरू की और आर्गन नामक गैसका पता

चलाया। यह गैस नत्रजनसे प्रायः ड्योढ़ी भारी है। और हवामें थोड़ी मात्रामें मिली रहती है। जब हवासे नत्रजन तय्यार की जाती है तो यह गैस नत्रजनमें ही मिली रह जाती है। अतएव उसका गुरुत्व अधिक निकलता है। कहां तोलेके दस हज़ारवें भागका अन्तर और कहां एक नये मौलिक (गैस) का आविष्कार। यदि रेले महोदय भी इस छोटी सी बातपर ध्यान न देते तो आज हम इस गैससे परिचित न होते। लार्ड रेलेके प्रयोग करने से प्रायः १०० वर्ष पहले केवेण्डिश महोदयने वायुकी नत्रजनके ओषिद् बनाये थे और यह देखा था कि नत्रजन सबकी सब नहीं खप जाती और उसका एक थोड़ा सा भाग बच रहता है। उन्होंने यह अनुमान किया था कि सम्भवतः वायुमें एक और अज्ञात मौलिक मिला हुआ है, पर उन्होंने उसकी परीक्षा नहीं की। अतएव उसके खोज निकालनेका यश किसी औरको ही मिला।

वोल्टा महोदयको एक दिन क्या सूझी कि एक ताम्बे और एक जस्तेके टुकड़ेको उठा कर खेल करने लगे। खेलते खेलते उन्होंने उन टुकड़ोंका एक एक छोर तो ज़बानपर रख लिया और दूसरे छोरोंको मिला दिया। मिलाते ही उन्हें एक हलके धक्केका अनुभव हुआ। जब जब स्वतंत्र छोरोंको उन्होंने मिलाया, तब तब यह हलका धक्का लगा। सहसा उन्हें प्रोफेसर गेलवेनीके प्रयोगकी सुधि उठ आयी, फिर तो उनके हर्षका पारावार नहीं रहा। कुछ दिन पहले प्रोफेसर गैलवेनीने यह निरीक्षण किया था कि यदि किसी चिरे हुए मेंढ़कके कटिप्रदेशकी नसों और टांगकी मांस ग्रन्थियोंको एक ऐसे चिमटेके दो सिरोंसे स्पर्श कराया जाय, जिसके दोनों भाग भिन्न भिन्न धातुओंके बने हों तो मुर्दा मेंढ़क फड़क उठता है। इससे पूर्व उन्होंने यह भी देखा था कि विद्युत-यंत्रोंसे पैदा हुई बिजली भी ऐसी फड़कन पैदा कर देती है। अतएव उन्होंने यह सिद्धान्त ठहराया कि चिमटेसे स्पर्श करानेपर जो फड़कन होती है वह मेंढ़कके शरीरस्थ पशु-विद्युत्के कारण होती है। इस सिद्धान्तका विरोध बहुत से वैज्ञानिकोंने किया, जिनमें मुख्य वोल्टा थे। वोल्टा महोदयका कहना था कि धातु-निर्मित चिमटेके सम्पर्कसे बिजली पैदा होती है। उपरोक्त घटनाके पश्चात् उन्हें पूर्णतया स्पष्ट हो गया कि बिजली ताम्बे और धातुके संपर्कसे और उनके छोर किसी घोलमें डूबे होनेसे पैदा होती है। इसी सिद्धान्तपर उन्होंने साधारण विद्युत्-घटका निर्माण किया।

संसारमें भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहां बहुत अच्छी नील पैदा होती है। यहांसे लाखों मन नील प्रति वर्ष यूरोपको जाया करती थी, पर थोड़े दिनोंसे उसका निर्यात बहुत कम हो गया है। गत युद्धमें निस्सन्देह भारतके भाग जागे और नीलकी खेतीसे लोगोंने फायदा उठाया, पर जान पड़ता है कि यह बुझते हुए दीपककी आखिरी चमक दमक है। यदि नये नये परिष्कृत उपायोंका आश्रय लेकर नीलकी खेती और निर्माण विधि परिमार्जित न की जायगी, भारतीय नीलको भारतमें भी कोई न पूछेगा। रंगरेज़ जब विलायती कृत्रिम नीलको न कुछ समयमें तय्यार कर लेते हैं तो देशी नीलको तय्यार करनेमें क्यों समय और शक्ति खराब करेंगे।

कृत्रिम नीलके इतिहासमें भी एक अत्यन्त तुच्छ घटनाने चमत्कार कर दिखाया। नकली नील नेपथेलीनसे बनायी जाती है। नेपथेलीन वही सफेद दुर्गंधमय पदार्थ है, जिसकी गोलियां प्लेग कालमें मकानोंमें रखते हैं या कपड़ोंको किसारीके खानेसे बचानेमें काममें लाते हैं। पहले नेपथेलीनसे थैलिक अम्ल बनाते हैं। ऐसा करनेके लिए नेपथेलीनपर गरम और गाढ़े गंधकाम्लकी क्रिया कराते हैं, तथापि परिवर्तन अत्यन्त धीरे धीरे होता है। इस विधिके सुधारनेके उद्देश्यसे जो प्रयोग हो रहे थे, उन्हींमें एक बार एक थरमामीटर (तापमापक) की घुन्डी (bulb) टूट गई और पारा गरम किये हुए द्रवोंमें जा मिला। पारेने

पहुंचते ही परिवर्तनकी गति बढ़ा दी और उसे सुगम बना दिया। कदाचित थरमामीटर न टूटता तो कृत्रिम नील आज दिन बाज़ारोंमें दिखाई भी न पड़ती।

प्रीस्टली महोदयको गैसोंके बनाने, इकट्ठा करने और उनकी परीक्षा करनेका बड़ा शौक़ था। एक बार उनके पास एक आतिशी शीशा या ताल आगया। उससे उनको विशेष प्रेम हो गया और उसके स्वत्वका उन्हें बड़ा अभिमान था। एक दिन उसी तालको लिये लिये वह अपनी प्रयोगशालामें घूम रहे थे और जिस तिस पदार्थपर उसके द्वारा सूर्यकी किरणोंको केन्द्रीभूत करते थे। जब उन्होंने पारद ओषिद पर किरणोंको एकत्रित करके डाला तो उन्हें मालूम हुआ कि उसमेंसे एक प्रकारकी गैस निकलती है। इस प्रकार बच्चोंकी तरह बे सिर पैरके खेल करते हुए प्रीस्टलीने उस गैस, ओषजन, का आविष्कार किया जिसके कारण उनका नाम सदा याद रहेगा।

सैकेरीनका आविष्कार भी इसी अद्भुत रीतिसे हुआ। आविष्कर्ता महोदय एक दिन प्रयोगशाला बन्द करनेके कुछ देर पहले अपने कामसे बड़े असन्तुष्ट हो रहे थे। चलते चलते उन्होंने उन सब द्रवोंको मिला दिया जिनसे वह प्रयोग कर रहे थे और इस मिश्रणसे कुछ देर तक खेल करके घर चले गये। घर पहुंच कर हाथ धोये और रोटी खाने लगे। रोटी मीठी लगी। मांसपर हाथ बढ़ाया, मांस मीठा लगा। जिस चीज़को हाथ लगाते थे वही मीठी हो जाती थी। वह बहुत बिगड़े और कहने लगे—"आज हमारे साथ अच्छा मज़ाक हुआ है। सभी चीज़ोंमें दिल खोल कर शकर डाली गई है।" उनके घरमेंसे कहा गया कि शकर नहीं मिलायी गई है। उनसे यह भी पूछा गया, "आज आपको क्या हो गया है। जो चीज़ें औरोंको फीकी मालूम होती हैं आपको मीठी लगती हैं! इसमें क्या रहस्य है।" तब उन्हें खयाल आया कि कहीं उनके हाथोंमें मीठे कर देनेकी शक्ति तो नहीं आगई है। हाथको चाटा तो अत्यन्त मीठा पाया। दौड़े हुए प्रयोगशाला पहुंचे, वहां द्रवोंके मिश्रणको शकरसे सैकड़ों गुना अधिक मीठा पाया। फिर तो उन्हें स्पष्ट हो गया कि द्रवोंके मिलानेसे एक नया यौगिक बन गया है। बादमें प्रयोग करके उन्होंने सैकेरीनके बनानेकी ठीक विधि जान ली।

जगद्विख्यात रसायनशास्त्री लीबिगने एक बार एक द्रव बनाया, जो आयोडीनके हरिदसे (Chloride of Iodine) बहुत कुछ मिलता जुलता था। उन्हें कुछ अन्तर भी दिखायी दिया, पर उन्होंने कुछ ध्यान न देकर शीशीपर आयोडीन हरिदकी चिप्पी लगा दी। कुछ महीने बाद ही उन्हें खबर मिली कि बेलार्ड नामी फ्रांसीसीने एक नया द्रव-मौलिक निकाला है। तब उन्हें खयाल आया कि वास्तवमें यही द्रव था जो उन्होंने तय्यार किया था और जो कई महीनोंसे उनकी आंखोंके सामने रखा था। पाठक स्वयम् अनुमान कर सकते हैं कि उस समय उन्हें कितनी आत्मग्लानि हुई होगी और अपनी असावधानीपर कितना पश्चात्ताप।

हालमें ही स्वनामधन्य कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुरको नोबिल प्राइज़ मिला है। इन्हीं नोबिल महाशयके विषयमें एक बड़ी रोचक कथा प्रचलित है। एक दिन प्रयोग करते हुए उनकी उंगली चिर गई। उन्होंने चिरी हुई जगहपर लगानेके लिए कुछ कोलोडियन (Collodion) मंगाया। कोलोडियन गन कौटन (आतिशीरुई) का ईथर और मद्यसारमें घोल होता है। अतएव हवा लगते ही सख्त पड़ जाता है और चिरी हुई जगहपर एक कृत्रिम चमड़ा सा बना लेता है। उन्होंने थोड़ा सा कोलोडियन उंगलीपर लगा लिया और शेष एक बर्तनमें डाल दिया जिसमें नत्रो-ग्लिसरीन था। डालनेके उपरान्त उन्होंने देखा कि कतीरा सा जम गया है। इस घटना द्वारा वस्तुतः एक ऐसा आविष्कार हो गया, जिससे नोबिल महोदयने करोड़ों रुपये कमाये और संसारको असीम लाभ पहुंचाया।

सं १७८१ में सर विलियम हर्शल अपने दूर-वीक्षण द्वारा आकाशका अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक तारा अन्य तारोंसे बड़ा प्रतीत होता है। उन्होंने अनुमान किया कि वह एक धुमकेतु तारा है, परन्तु पीछेसे मालूम हुआ कि वह एक ग्रह है, जिसे आज कल यूरेनस (वरुण) कहते हैं। पहले भी बहुत आदमियों ने उसे देखा था पर तिलकी ओट पहाड़ इसी को कहते हैं।

डोबेरीनर (Doberioner) महोदय एक बार उज्जन गैससे प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने गैस बहुत से घटोंमें भर भर कर रख ली थी। आवश्यकता पड़नेपर उन्होंने एक चटखे हुए वायु-घट (gas jar) में भी गैस भर ली और उसे पानीमें ही औंधा खड़ा रहने दिया। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि घटमें पानी धीरे धीरे चढ़ रहा है। १२ घंटेमें १॥ इंच और २४ घंटेमें २॥ इंच पानी चढ़ गया। उन्होंने इसे एक छोटी सी बात—तुच्छ घटना—समझकर छोड़ दिया। इसी तुच्छ घटनाका हाल सुनकर ग्राहम महोदयने वह अद्भुत और चमत्कारिक प्रयोग गैसीय वितरण (gaseous diffusion) पर किया जिसके कारण उनका नाम अमर हो गया है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि किसी गैसको बारीक छेदोंमें होकर निकलकर फैल जानेकी, वितरण की, गति उसके घनत्वके वर्गमूलसे विपरीत सम्बन्ध रखती है। यदि वायुका वितरण वेग क मान लें और उज्जनका ख और उनका घनत्व क्रमसे व तथा उ मान लें तो $\frac{क}{ख} = \sqrt{\frac{उ}{व}}$। वायु उज्जनसे प्रायः साढ़े चौदह गुनी भारी है। अतएव घटकी दरारमेंसे उज्जनके यदि ३·८ भाग बाहर चले जाते हैं तो एक भाग वायु अन्दर आती है। इसी कारण घटके अन्दर दबाव कम होकर पानी चढ़ जाता है।

अभी थोड़े दिनोंकी बात है कि गर्मियोंकी छुट्टियां होनेके एक दिन पहले पर्किन महोदय अपनी प्रयोगशालामें काम कर रहे थे। चलते चलते सोडियमके कुछ बचे हुये टुकड़े उन्होंने एक परखनलीमें डाल दिये, जिसमें आइसोप्रीन नामक द्रव रखा हुआ था। कालेज खुलनेपर उन्होंने देखा कि उस नलीमें एक रबड़ सदृश पदार्थ भरा है। निकाल कर देखा तो रबड़के सभी गुण उसमें मौजूद थे। इसी आकस्मिक प्रयोगमें कृत्रिम रबड़का जन्म हुआ।

उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं, पर जितने दिये गये हैं पर्याप्त होंगे। उनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि छोटी छोटी घटनाओंका महत्व पूर्ण परिणाम निकल सकता है। अतएव उन्हें उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखकर सदा गम्भीर विचार और परिणाम दर्शितासे काम लेना चाहिये। जान बूझकर आंख बन्द करके चलना न सीखना चाहिये। इसमें सिवा हानिके लाभ नहीं हो सकता। परमात्माने जो ज्ञानके साधन दिये हैं अवश्य काममें लाने चाहिएँ।

—करामतहुसैन कुरैशी

भारतीय इतिहास सम्बन्धी खोज और उसका फल

[लेखक—श्रीयुत मुन्शी देवीप्रसादजी मुंसिफ़]

पुस्तकोंको छोड़कर इतिहासकी खोज शिलालेखों, दानपत्रों और सिक्कों वगैरहसे करनेका काम अंग्रेज़ोंने प्रायः १२५ वर्षसे हिन्दुस्तानमें * चलाया है और इसमें उनको सफलता भी बहुत कुछ हुई है। यह सफ-

* ऐसी खोज पहले भी होती थी। इसका प्रमाण कश्मीरके प्रसिद्ध इतिहास राजतरंगणीमें मिलता है। कल्हणभट्ट ने, जिसने संवत् १२०५ में यह पुस्तक बनाई, भूमिकामें जहां यह लिखा है कि प्राचीन वृत्तान्तोंकी खोजमें किन किन ग्रंथों और लिखावटोंकी सहायता ली है, वहां वह शिलालेखों और दानपत्रोंके भी नाम लेता है और कहता

लता हिन्दुस्तानके इतिहाससे ही सम्बन्ध रखती है, परन्तु हिन्दुस्तानियोंको उसका हाल बहुत ही कम मालूम है; क्योंकि इस सफलताकी सारी बातें अंगरेज़ीमें छपती हैं। यदि हिन्दी-भाषामें छपी होतीं तो सबको और विशेष कर हिन्दुओंको मालूम हो जातीं, जिनके छिपे हुए पुराने इतिहास-का प्रकाश इस खोजसे हुआ है। इसपर यह प्रश्न उठता है कि अंग्रेज़ोंने तो हिन्दुओं और हिन्दुस्तानके लिए इतना परिश्रम और रुपया ख़र्च किया है, पर हिन्दुओंने क्या किया? उनसे तो अब तक इतना भी नहीं हो सका है कि वह भी एशियाटिक सोसायटीके समान अपनी कोई ऐतिहासिक सोसायटी बनाते या इंडियन ऐंटीक्वेरी और एपिग्राफिका इंडिका ऐसा कोई मासिक अथवा त्रैमासिक पत्र ही हिन्दीमें निकालते, जिसके द्वारा अंग्रेज़ोंके खोजका सारांश भी सर्व-साधारण को मालूम होता और हिन्दुस्तानियोंकी खोजका वृत्तान्त उसमें छप कर लोगोंको मालूम होता, जिससे खोजके काममें उन्नति होती और देशी विद्वानोंका ध्यान भी इधर खिंचता।

सुना जाता है कि कलकत्ता, बम्बई और पूना वग़ैरःमें तो विद्वान खोजके काममें लग रहे हैं और उन्होंने इसमें सफलता भी प्राप्त की है, परन्तु हिन्दुस्तान, राजपूताना और मालवा आदि देशोंमें खोज तो क्या, उसकी बात भी नहीं सुनी गई और जो सुनी गई है तो बहुत कम।

राजपूतानेमें खोजका काम अबसे प्रायः ४० वर्ष पहले रियासत टोंकके सुप्रसिद्ध पंडित रामकर्णजी ने शुरू किया था और इसमें उनको सफलता भी पूरी पूरी हुई थी। हाड़ौती और टोंकके पोलिटिकल एजेंट कप्तान डबल्यु जे. डबल्यु मेवर ने मेवाड़की मशहूर झील, राजसमंदकी पाल पर कई शिलालेख देखकर पंडितजीको अपनी एजंटीके इलाके में वैसे ही शिलालेख ढूंढ़ कर उनकी नकलें करनेके वास्ते भेजा था। पंडितजीने कई महीनों तक बूंदी, कोटा, झालावाड़ और शाहपुरेकी रियासतोंमें दौरा करके सैकड़ों शिलालेखोंके छापे लिये और फिर पुराने अक्षरोंके पढ़नेका अभ्यास करके वह शिलालेख बड़े परिश्रमसे पढ़े और उनका तर्जुमे मुझसे लिखाकर साहबको छापों सहित दे दिये। साहब उनका मेरी सहायतासे अंग्रेज़ीमें

है कि राजाओंके इतिहासके सम्बन्धमें मैंने अगले पंडितों की ११ पुस्तकों और नील ऋषिके नीलमत पुराणको पढ़ा है और उन शिलालेखोंसे जो मंदिरोंके निर्माण और राजाओंके भूमिदानसे सम्बन्ध रखते हैं, बहुत सी अशुद्धियों का सुधार किया है।

कश्मीरकी फ़ारसी तवारीख़ोंमें लिखा है कि वहांके मुसलमान बादशाह सिकन्दरको, जिसके नामके साथ "बुतशकन" (मूर्त्तियां तोड़नेवाला) का दुमछल्ला लगा हुआ है, परसपुरमें राजा ललितपीडके बनाये हुए बड़े आलीशान मंदिर तोड़नेके पीछे एक पेटीमें ताम्रपत्रपर खुदा हुआ एक लेख मिला था। उसमें यह लिखा था कि आजसे १६०० बरस पीछे इसको सिकंदर नामक एक यवन गिरा देगा।

शिलालेख पढ़नेकी विद्या जैनियोंमें भी थी। कर्नल टॉड को जो प्राचीन शिलालेख मिले थे उनको उनके गुरु ज्ञानचन्द्र-जतीने पढ़ा था।

मुझे गांव चारणोद (मेवाड़) के विद्वान गुरां उमेददत्तजीने जोधपुरमें अपने पुस्तक-भंडारकी कई पुरानी पुस्तकें दिखाई थीं। उनमेंकी एक पुस्तकमें कई प्राचीन लिपियोंकी वर्णमालायें भी लिखी थीं।

जैन-मंदिरोंके शिलालेखोंकी नकलें जती लोग अक्षरोंमें सिंदूर भरभर कर ले जाते हैं। मुझे कई शिलालेखोंमें उनका सिंदूर भरा हुआ मिला है। यदि कोई सज्जन शोधक जातियों से मेलजोल करके पता लगावें तो संभव है कि उनके और जैन पंचायतके पुस्तक भंडारोंमें बहुतसे पुराने शिलालेख और तांबे पर खुदे हुए दानपत्र मिल जायँ।

अब जो कहा जाता है कि हिंदुओंमें कोई पुराने शिलालेखोंको नहीं पढ़ सकता था, अंग्रेजोंने बरसों परिश्रम करके इनको पढ़ा है, सो मेरे नजदीक इनके परिश्रममें कुछ अंश यहांके पंडितोंकी सहायताका भी अवश्य रहा होगा।

तर्जुमा कराकर वलायत ले गये और मुझे भी एक सर्टिफिकेट दे गये ।

फिर पंडितजीको रियासत टोंकने भी उसी कामपर नियत करके अपने इलाकेमें भेजा । पंडितजी कई गाँवोंमें फिर कर पुराने शिलालेखोंके छापे लाये और उनके वृत्तान्तकी गुलजार इब्राहीम* नामक पुस्तक हिन्दी और उर्दूमें तैयार करके दरबारको भेंट की । पंडितजीको उम्मेद थी कि कुछ कदर होगी और आगेके लिए कुछ खर्च बढ़ाया जायगा; परन्तु दरबारियोंने नवाब साहबसे कह दिया कि इस किताबमें तवारीख तो कुछ है ही नहीं; हिन्दुओंके मन्दिरोंका ही हाल है। इसपर पंडितजीको कुछ शाबाशी भी नहीं मिली और खर्च भी जो मिलता था बन्द हो गया । इससे पंडितजीने निराश हो यह दोहा कह—

सुन्यो न समझ्यो ना कोऊ, ना कछु दीनी दाद ।
गुलजार इब्राहीम हू, भयो ऊंट को पाद ॥

बैठ रहे । बस उनकी खोजका काम बन्द हो गया और पंडितजीको मरे प्रायः ३४, ३५ बरस हो गये हैं । उनके बेटे पोते भी मर गये हैं, परन्तु पंडितजीकी खोजका दफ्तर उनके घरमें बिखरा पड़ा है । यदि प्राचीन शोधके लिए हिंदुओंकी कोई सोसाइटी होती तो पंडितजीका यह दफ्तर उसको दे दिया जाता और उसकी मासिक पत्रिका तथा वार्षिक रिपोर्टोंसे पंडितजीका परिश्रम प्रकाशित होकर सर्व साधारणको मालूम हो जाता, पर आज कोई यह भी नहीं जानता है कि पंडित रामकर्णजो कौन थे और उन्होंने इतिहासकी खोजमें क्या काम किया था ।

पंडितजीकी खोजका थोड़ा सा सारांश मैंने लिख लिया था । उसकी मुख्य मुख्य बातें, जो लोगोंको मालूम न थीं, यह हैं—

रियासत बूंदीमें

१. श्रीकृष्णजी और राजा इन्द्र की लड़ाईका स्थान और चिह्न, गैंद (गयंद) पहाड़में जिसकी कथा श्रीमद्भागवतमें है ।

२. निकुंभ आदि ६ दैत्योंकी बसाई हुई नगरी खटराष्ट्रपुरी, जिसे अब खटकड कहते हैं ।

३. श्रीकृष्णजीका खटकडके दैत्योंको मारकर वहांका राज्य वसुदेवजीके मित्र ब्रह्मदत्त ब्राह्मणको देना ।

४. बिल्वकेश्वर महादेवजीका मन्दिर, जिसकी स्थापना श्रीकृष्णजीने देवराज इन्द्रपर विजयपानेकी यादगारमें की थी । यह कथा हरिवंश पुराणके पारिजातहरणखण्डमें है ।

५- खटकडका पिछला इतिहास ।

६. महेसर (महेश्वर) के चंद्रवंशी राजा रन्तिदेवका बसाया हुआ रन्तदेवपत्तन, जिसे अब केशवरायजीकी पाटण कहते हैं ।

७. जम्बुकेश्वर महादेवजीका पुराना बाण, जिसमें पानीकी मारसे बड़ी बड़ी गराड़ें पड़ गई हैं और जिसपर बन्धाबके लिए पीतलका खोला चढ़ा रहता है ।

८. परशुरामजीका कुंड, जिसका पानी दिनमें कई रंगत बदलता है ।

९. मार्कण्डेय ऋषिका आश्रम और चंद्रवंशी राजा सुरथका बसाया हुआ सुरथपुर, जिसे अब सथूर कहते हैं और रक्तदंतिका देवीका पुराना मंदिर जिसकी कथा मार्कण्डेयपुराण में है ।

१०. रक्तदन्तिका देवीके मन्दिरमें रखे हुए संवत् १३३ और १३२ वगैराके पुराने शिलालेख जिनके अक्षर घिस गये हैं ।

११. हिडम्ब दैत्य का स्थान जिसे भीम पांडवने मारकर उसकी बेटी हिडंबासे ब्याह किया था ।

१२. हिडम्बकेश्वर महादेवजीका मंदिर, जिन्हें अब होडेश्वरजी कहते हैं और जिनकी स्थापना भीमने अपनी फतहकी यादगारमें की थी, जो गाँव हिंडोलीमें है ।

* नवाब साहिबका नाम इब्राहिमखां है । इससे पंडितजीने इस पुस्तकका नाम गुलजार इब्राहीम रखा था ।

रियासत कोटामें

१. कंसवागांव (कण्डवाश्रम) में मौर्य राजाधिराज धवलराजके आश्रित छोटे राजा शवगण का शिलालेख, संवत् ७९५ का, कर्णेश्वर महादेवजीके मन्दिरमें।

२. गुजरातके महाराज सिद्धराज जयसिंहका जन्मस्थान और उसके पिता कर्णका बनाया हुआ चोमा गांवका शिखरबंद मंदिर और इस मन्दिरका शिलालेख जो पढ़ा नहीं गया।

३. गांव आंवामें पोपाबाईका राज्य और उसकी अंधाधुंध हुकूमत और अद्भुत न्याय नीतिकी कथा। इस कथाके प्रसङ्गसे उस समयकी कवितांके इतने नमूने भी मालूम हुए हैं:—

नवसौ कुंआं नवसौ बाव,
नवसौ कांवर अठेडा जाय॥
अउर देशमें कुवार विसाय
आंवां रहे तो गेहूं खाय॥ १॥

आउ पेडा नी लग बाल।
गधेको लेगया कोटवाल॥ २॥

भरिवारा घोड़ा चढ़े पंडित पाला जाय॥
देखो पारख पेमकी* पोपा पेड़ा खाय॥ ३॥

पोपां बाई पारसनाथ।
धंदा हलाओ बद्रीनाथ॥ ४॥

४. गांव कणवासमें अहरू नदीके तट पर राजा कर्णके बनाये हुए पुराने मंदिर। इस गांव और नदीका वर्णन इस पुराने दोहेमें किया गया है।

आंवा घणांजु आमल्यां अहरू बडो निवास।
जो सुख चाहो साहबा वास करो कणवास॥१

५. पवारोंकी डोड शाखाकी पुरानी राजधानी डोलरगढ़, जिसको अब गढ़ गागरान कहते हैं और उसके पुराने शिलालेख।

६. बंसकदेव महादेवजी का चबूतरा, जिसपर पहाड़का कराड़ा झुका हुआ है और जहां तालियां बजा बजा कर ऐसा कहनेसे—

बंसकदेव पानी पावे,
आया लोग तसाया जावे,

इस पहाड़की दरारमेंसे पानीकी बूंदें टपकने लगती हैं और कुछ देर पीछे बन्द हो जाती हैं।

७. पुराने शहर कोषवर्द्धनका पता, जिसे अब शेरगढ़ कहते हैं; वहांके नागवंशी राजा सर्वनामके बेटे देवदत्तका शिलालेख संवत् ८४७ का; बौद्धोंके विहार और सोमनाथ महादेवके पुराने मंदिरके शिलालेख संवत् १०७४ और १०७५ के; और १ शिलालेख भट्टार्क महाराजाधिराज वाकपतिदेवके परपोते सिंधुराजके पोते भोजराजके बेटे उदियादित्यका, जिसमें संवत् ११०० के आगेके अंक पत्थर परसे जाते रहे हैं। इसके सिवाय जैन मंदिरमें भी कई बड़ी बड़ी मूर्त्तियां संवत् १००२ औ ११६२ आदिकी बनी हुई हैं।

८. मोउ नामक १ कसबे में गुडमार नामक बूंटीका पता, जिससे सांप और अफीमका जहर उतर जाता है।

९ आलमपुर नामक गांवमें पर्नानदीके तटपर कपिल मुनिका आश्रम।

१०. बलास नदी के तीर पर, बलास नामक एक पुराने शहर के खंडहर, जहां के खीचीराजा अजेसीने बादशाह को बेटी नहीं दी थी और बादशाही फौज आनेपर उसकी बेटी ऊदलदेवाई अपनी सहेलियों सहित एक दहमें कूदकर मर गई थी; वह तो 'कन्यादह,' और जिस दहमें बनियों की औरतें डूबकर मरी थीं वह 'बणियानी दह' कहलाता है। एक पुराना जैनमंदिर भी है। उसमें संवत् ११६, ११६ और १२०७ के शिलालेख हैं।

११. कसबे अडरूमें एक पुराना जैनमंदिर, जिसकी १ मूर्त्तिपर संवत् ५०८ खुदा है और कई मूर्त्तियों पर संवत् १३०० के पीछे के लेख हैं।

*पेम आंवांके राजा का नाम था, जिसके समयमें पोपांबाई राज का काम करती थी।

रियासत झालावाड़में

१. झालरापाटनमें कनकपुर पट्टणका पता, जहांकी राजकुमारी हंसावली की अद्भुत कथा है; यहांका एक पुराना शिलालेख संवत् ७४६ का, जिसे राजा दुर्गगण के भाई व्यूयकने महादेवजी-के मंदिर में लगवाया था; १ पुराना जैन मंदिर, जिसमें ११५४ तकके लेख मूर्त्तियों पर खुदे हैं; इसमा ओडणीका तलाव, जिसने अपनी ओड (बेलदार) जातिमें धर्म-कर्मका प्रचार किया था; चंद्रभागा नदीके एक नालेपर सुलेमानी दानों-की उत्पत्तिका स्थान, और मार्कण्डेयपुराणमें कही हुई रक्तदंतिका देवीका मंदिर, जिसे अब सातारेई कहते हैं।

२. शहरके मैदानके पास एक पहाड़ीपर बौद्धोंके देहगोप और जैन सिद्धोंकी मूर्त्तियां, जिनमें संवत् १०६६ से १२६६ तकके लेख खुदे हैं।

३. महाभारतमें लिखे हुए चंद्रहास्य के पिता राजा कुन्तलकी राजधानी अवन्तिका पुरीका पता; गांव सारथलमें, जहां संवत् १६ और १७७ के घिसे-पिसे लेख सतियोंके पत्थरों पर हैं।

४. १. लंबर तुंगपालके समयका संवत् १००३ का दानपत्र।

२. गोलवाल गोतके चौहानों की पुरानी राजधानी टोडा।

३. टोंक टोडेके सोलंकी राजाओंकी वंशावली।

४. गांव बदलाईमें संवत् १०२७ का १ शिलालेख।

५. राजा इन्द्रसिंहका बसाया हुआ हस्तिनापुर, जिसे अब हथौना कहते हैं।

६. उज्जैन के महाराजाधिराज विक्रमादित्य-के मामा शिव महाराजका बसाया हुआ मेंडोर, जिसे अब मंडावर कहते हैं।

७. गांव कारोलेमें तवरोंकी बादशाहीका, संवत् १०४६ का एक दानपत्र।

८. गांव साकनेके जैन मंदिरमें सरस्वति-गच्छके जैनगुरु कुंदकुन्दाचार्यकी कुछ पट्टावलि।

९. गांव घुआंमें भक्त धनाजाटका खेत।

१०. महाराज पृथ्वीराज चौहानके सामन्त चाहडदेवके बड़े सेनापतिका सम्वत् १२४४ का शिलालेख,* उसीके बसाये हुये गांव सोनवा और बनाये हुए सोपालेश्वर महादेवजीके मन्दिरमें महाराज पृथ्वीराज-के समयका दानपत्र।

११. गांव नानेरमें एक पूज्य माईकी मूर्त्ति जो नेपालके राजा मचकुन्दका कामदार था।

१२. गांव नयाटीलामें दहिया राजपूतोंकी राजधानी।

१३. लांक नामका † पुराना गाँव, जो लङ्काकी जगह बसा है, जिसमें जमीनके नीचेसे कभी कभी कोई पुरानी लाश भी निकल आती है, जिसका ढांचा अबके लोगोंके डीलडौलसे दूना होता है।

१४. कसबे गुगोरमें खीचीराजा धीर या धीरत-सिंहका चबूतरा जहां आनेसे सांपके काटेहुओंका जहर उतरता है और खीची राजाओंका सतीवाड़ा, जिसमें १४ शिलालेख सम्वत् १४१०से १७८१ तकके हैं।

रियासत शाहपुरामें

१. धुधमार राजाके शहरका पुराना खेड़ा "धनोप", जहां राष्ट्रकूट राजाओंका राज्य था और धंकेश्वर महादेवके मन्दिरमें दन्तिवर्माके बेटे गोविन्दराजका सम्वत् १०६३का शिलालेख।

---

* इस शिलालेखसे पृथ्वीराज रासामें लिखे हुये पृथ्वीराज के समयके संवत् जो १०० बरस पहलेके हैं, गलत साबित होते हैं।

† यह नकली लंका थी जो किसी राजाने यहां राम लीलाके लिए बनाई थी, इसके समयका पता नहीं।

अब पण्डित रामकर्णजीको थोड़े समय तक ही राजपूतानेके १ छोटेसे टुकड़ेमें खोज करनेसे इतनी बहुत सफलता हुई थी तो सारे राजपूताने और मालवे आदि देशोंमें खोज करनेसे हिन्दुस्तानियोंको कितनी अधिक सफलता हो सकती है। पर इसका कोई उत्तम सार्वजनिक साधन और प्रबन्ध होना चाहिये।

फिर और कुछ भी

पण्डितजीके कुछ समय पीछे उदयपुरके कविराज सांवलदासजीने भी मेवाड़का इतिहास बनानेके प्रसङ्गसे खोजका काम चलाया था। उनको पुराने दो शिलालेख तथा दानपत्र उदयपुरके राज्यमे मिले भी थे, जो उन्होंने बीरविनोदमें छपा दिये हैं। वीरविनोद उन्हींका बनाया हुआ एक बड़ा इतिहास-ग्रन्थ है, जिसमें उदयपुरके सिवा और रजवाड़ों तथा बादशाहोंका हाल भी है। वह छप भी गया है; परन्तु महाराना साहबने न जाने किस प्रयोजनसे उसे छिपा रखा है; बाहर नहीं निकलने दिया है। उससे कविराजजीकी खोज मौजूद होने पर भी नहींके बराबर हो गई है।

अजमेरके राजपूताना म्यूज़ियमके सुपरिंटेण्डेण्ट रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचंदजी ओझा भी राजपूतानेमें खोज करते हैं। उनकी खोजका कुछ सारांश म्यूज़ियमकी वार्षिक रिपोर्टमें निकल जाता है; पर स्वतन्त्ररूपसे पूरा हाल नहीं छपता।

मैंने भी मारवाड़ वगैरहमें कुछ खोज की है। सैकड़ों शिलालेख और दानपत्र संग्रह हो गये हैं, जिनसे इतिहास संबन्धी कोरियों नई बातें मालूम हुई हैं। जिन राजाओंके नाम भूलके समुद्रमें डूब गये थे, उनके भी पते लगे हैं। यह सब बातें इतिहासकी खोज करनेवालोंके कामकी हैं। परन्तु उनको टीका टिप्पणी सहित पुस्तकोंके रूपमें देनेका अभी तक समय नहीं आया है। क्योंकि बहुत बड़ा काम है। एक आदमीके करनेका नहीं है। यदि सम्मेलन किसी ऐसी कमेटी या पत्रिकाका प्रबन्ध कर सका, जिसमें केवल खोजका ही काम और विषय और इसी सम्बन्धके लेख और निबन्ध छपा करें, तो यह सारा संग्रह उसके अर्पण हो सकेगा।

चुम्बकीय परिभाषा

जो पारिभाषिक शब्द प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव एम० एस-सी० रचित 'चुम्बक' नामक पुस्तकमें आये हैं उन सबको, तथा अन्य आवश्यक परिभाषाओंको यहांपर इसलिए छापे देते हैं कि विद्यार्थियों तथा लेखकोंको आवश्यकता पड़नेपर एक ही जगह मिल जायँ।

A

Aclinic line झुकाव-शून्यरेखा, बे झुकाव रेखा

Agonic line हटाव-शून्य, बेहटाव रेखा

Appendix परिशिष्ट

Arm भुजदण्ड, बाजू

Artificial कृत्रिम

Astatic स्वतंत्र

Attraction आकर्षण

Axial line अक्षीय रेखा

Axis अक्ष

B

Ballended magnet बनैटीकी शकलका चुम्बक अथवा बनैटी चुम्बक

Barm agnet चौकोर चुम्बक

Bench घोड़ी, बेंच

Bifilar द्वितन्तुक, द्विसूत्री

Broadside position of a magnet मध्यरेखा-स्थिति

C

Cast iron ढलवां लोहा
Centimetre शतांशमीटर
Centre केन्द्र
Centre of gravity गुरुत्वकेन्द्र
Charts नकशे, मानचित्र
Chemical रासायनिक
Clamp चंगुल, चुटकी
Coercive force घातकशक्ति
Coercivity धारण शक्ति
Coil घिरनी, रील, बेठन
Combination जुट्ट
Compass needle दिग्दर्शक, दिक्सूचक, कुतुबनुमा
Component अवयव
Consequent poles गौण केन्द्र
Coulomb कूलम्ब—एक वैज्ञानिकका नाम; बिजलीकी मात्राकी व्यवहारिक इकाई।
Couple युगल
Cosecant कोटि-छेदन रेखा
Cosine कोटिज्या
Cotangent कोटि स्पर्श रेखा
Curve वक्र
Cylinderical magnet गोल दण्ड चुम्बक

D

Declination चुम्बकीय हटाव
Deflection विचलन, हटाव, झुमाव
Demagnetise चुम्बकत्व निकालना
Demagnetising force चुम्बकत्व निकालने वालीशक्ति
Diagonal कर्ण
Diamagnetic विचुम्बकीय
Diamagnetism विचुम्बकत्व
Dip झुकाव
Dipcircle झुकावमापकवृत्त
Dipneedle झुकाव सूचक
Direction दिशा
Divided touch पृथक् स्पर्श
Duperry ड्युपेरी—एक वैज्ञानिकका ना
Dyne डाइन,शक्तिकी इकाई

E

Earth magnet पार्थिव चुम्बक, पृथ्वी-चुम्बक
End on position of a magnet अक्षीयरेखास्थिति
Equation समीकरण
Equator भूमध्य रेखा
Equatorial line मध्य रेखा
Electro magnet विद्युत् चुम्बक
Electric current विद्युत् धारा
Electricity विद्युत्
Equipotential समावस्थावाला

F

Field क्षेत्र
Field of force शक्ति-क्षेत्र
Force शक्ति
" " line of शक्तिकी रेखा, शक्ति-रेखा

G

Galvanometer धारा मापक
Gauss गौस, अर्थात् प्रभावकी इकाई; एक वैज्ञानिकका नाम
Grams-weight ग्राम भार
Gimbals, जिम्बेल, चूड़ी

H

Halley हेली
Hansteen हैंसटीन
Hollow खोखले
Horizontal component क्षितिज अवयव
Horse shoe magnet नाल चुम्बक
Hysterisis चुम्बकीय जड़ता

Induction उत्पादन
Infinity अनन्त
Intensity प्रभाव
Investigation गवेषणा
Isochronous समकालीन
Isoclinic समझुकाववाली
Isogonic सम-हटाववाली

K

Keeper रक्षक
Kelvin केल्विन; एक वैज्ञानिक का नाम
Kilogram किलोग्राम

L

Laminated magnets चुम्बक-जुट्ट, तहदार चुम्बक, पुट चुम्बक
Law of inverse squares विपरीत वर्गका नियम
" " Paralellogram of forces शक्ति समानन्तर चतुर्भुजका नियम
Level समतल, समथर
Lifting power of a magnet चुम्बककी उठाने की शक्ति
Like समान, एकसे, सजातीय
Lines of force शक्तिकी रेखाएँ
Lodestone चुम्बक पत्थर, प्राकृतिक चुम्बक, पथ प्रदर्शक पत्थर

M

Magnet चुम्बक मकनातीस, लोहचुंबा
Magnetic चुम्बकीय
" axis चुम्बकीय अक्ष
" field चुम्बकीय क्षेत्र
" elements चुम्बकीय तत्व
" equator चुम्बकीय मध्यरेखा
" Moment चुम्बकीय घूर्ण
Magnetise चुम्बक बनाना
Magnetism चुम्बकत्व
Magnetometer चुम्बकत्वमापक
Magnitude परिमाण
Meridian याम्योत्तर
Molecule अणु
Molecular magnet अणु-चुम्बक
Moment घूर्ण
" " of Inertia मात्राघूर्ण
Mutual परस्पर

N

Negative ऋणात्मक
Neutral zone उदासीन भाग
Nitric acid शोरेका तेज़ाब
Non-magnetic अचुम्बकीय

O

Oblong दीर्घाकार
Oscillation झोंटा, कम्पन
" Chamber कम्पन वक्स

P

Parallelogram of forces शक्ति समानान्तर चतुर्भुज
Paramagnetic चिचुम्बकीय
Permanent magnet स्थिर चुम्बक, स्थायी चुम्बक
Permeability चुम्बकत्वप्रवेशन
Pivot कीली, चूल
Pivoted अक्षारूढ, कीलीपर रखा हुआ
Pointer सूचक
Pole चुम्बकीय शक्तिका केन्द्र, छोर
Position स्थिति
" of rest ठहरनेकी स्थिति (जगह)
Positive धनात्मक
Potential अवस्था
Practical details अनुष्ठान
Product गुणन फल
Properties गुण

R

Repulsion निराकरण, हटाना
Ratio निष्पत्ति
Recalescence पुनरुद्दीपन
Reluctance विमुखता
Reluctivity विमुखत्व
Resistance बाधा
Research गवेषणा
Resultant लब्ध
Retentivity ग्रहणशक्ति
Ross, Sir James सर जेम्स रोस, एक वैज्ञानिकका नाम

S

Saturated परिपूर्ण, संपृक्त
Scale परिमाण
Screen परदा
Secant छेदन रेखा
Shell पत्राकार
Similar समान, सजातीय
Sine ज्या
Single touch एक स्पर्श
Solenoid नलाकार
Spiral सर्पिल
Soft iron मुलायम लोहा
Stand अड्डा
Stirrup रकाब
Steel फौलाद स्पात
Strength प्रबलता
Surface तल, पृष्ठ
Susceptibility चुम्बकत्वशीलता
System पद्धति
Shackleton, Sir Ernest, सर अरनेस्ट शेकल्टन

T

Tangent स्पर्श रेखा
Torsion ऐंठन
" balance ऐंठन तुला
Triangle त्रिकोण
Twist ऐंठन

U

Unlike असमान, विषम,

V

Vertical component ऊर्ध्व अवयव
" plane ऊर्ध्व तल

प्रयाग, वसन्त पञ्चमी, १६७६] —शारदासेवक

सर चार्ल्स डार्विन और इरेसमस डार्विन

इरेसमस डार्विन

इरेसमस डार्विनका जन्म एल्टन, नौट्स, में १२ दिसम्बर सं० १७३१ के दिन हुआ था। उन्होंने एडिनबरामें डाक्टरी शिक्षा पाकर, लिचफील्डमें काम करना शुरू कर दिया और थोड़े ही दिनोंमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली।

उन्हें विज्ञानसे विशेष प्रेम था, किन्तु उन्होंने कोई मारकेका काम नहीं किया, जिससे उनका नाम विख्यात डाक्टरोंकी श्रेणीमें रखा जाता। वह मद्यपानके बड़े कट्टर विरोधी थे और सम्भवतः उन्हींका प्रभाव इनके जगद्विख्यात स्वनामधन्य सर चार्ल्स डार्विनपर पड़ा जो इनके पोते थे।

इनके दो विवाह हुए थे और दोनोंके ही परिणामोंसे इन्होंने संसारका बड़ा उपकार किया। पहले विवाहसे तो उन्हें सर चार्ल्स डार्विनके बाबा और दूसरेसे सरजान गाल्टनके नाना होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जैसा पाठकोंको विदित

होगा सर चार्ल्स डारविनने तो विख्यात विकाशवादके सिद्धान्तकी रचना कर वैज्ञानिक संसारमें एक नये युगकी स्थापना की और सर फ्रांसिस गैल्टनने स्वतन्त्र परिश्रम और विचारसे विकाशवाद और बीज परम्पराके सिद्धांतोंका आविष्कार किया और सुप्रजावादकी नींव डालकर, मनुष्य जातिकी भावी उन्नतिका एक नया मार्ग दिखला दिया। वस्तुतः सुप्रजावादानुमत विवाहका इससे अच्छा उदाहरण कहां मिल सकता है।

अपनी जिंदगीमें इरेसमस डार्विन अच्छे कवि समझे जाते थे, परन्तु उनकी कवितामें सिवाय तुकबन्दी, दृष्टान्तों और कथाओंके कोई वास्तविक रस नहीं मिलता। अतएव उसे कविता कहना उचित नहीं। हां एक बात अवश्य है। जो प्रगाढ़ प्रेम पितामहको जीवोंके साथ था वही पोतेमें भी बादमें विकसित रूपमें पाया गया। इरेसमस डार्विनने अपनी कविताओंमें स्थान स्थानपर यह विचार प्रकट किया है कि पौधोंमें भी चेतना शक्ति और इच्छा शक्तिके चिह्न पाये जाते हैं। इन विचारोंको इनके पड़पोते, सर फ्रांसिस डार्विनने, और हमारे विज्ञानाचार्य सर जगदीशचन्द्र वसुने वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध कर दिखलाया है।

सबसे बड़े मारके की बात इनके सम्बंधमें यह है कि इन्होंने अपनी कविताओंमें विकाशवादकी भी चर्चा की है, किन्तु जैसा कि इनके मशहूर पोतेने कहा है "इनके विचारोंमें कल्पनाकी अधिक और विज्ञानकी कम मात्रा है" अर्थात् जिस सिद्धान्तपर वह पहुँचे, केवल कल्पनाके आश्रयसे पहुँचे, प्राकृतिक घटनाओं और तथ्योंके अवलोकन और अध्ययनसे नहीं।

चार्ल्स डार्विन

इनका जन्म १२ फरवरी सं० १८०९ को श्रूसबरीमें हुआ। इनके पिता डा० राबर्ट डार्विन भी अच्छे चिकित्सक थे। उनके विषयमें चार्ल्स डार्विनने लिखा है:—"उनसे अधिक प्रज्ञावान मनुष्य मैंने आज तक नहीं देखा।" डार्विनकी माता जोसिया वेजवुडकी सबसे बड़ी कन्या थीं। सर फ्रांसिस डार्विन (चार्ल्स डार्विनके पुत्र) ने अपने पिताकी जीवनीमें लिखा है कि "संम्भवतः उन्हें स्वभावकी कोमलता उनकी मातासे और बुद्धिकी प्रखरता पितामहसे मिली थी।"

जब डार्विन आठ बरसके थे तभी उनकी माताका देहान्त हो गया। उसी साल उन्हें एक स्कूलमें भरती होना पड़ा, जिसमें वह प्रायः एक सालतक पढ़ते रहे। उन्होंने अपनी "आत्म कहानी"में, जो अपने बच्चोंके लिये लिखी थी, एक जगह लिखा है:—"इस स्कूलमें जानेके पहले ही मेरी प्राकृतिक विज्ञानके अध्ययन और चीज़ोंके संग्रह करनेकी रुचि बहुत बढ़ गई थी। मैं पौदोंका नाम जान लेनेका बड़ा प्रयत्न करता था और सभी तरहकी चीज़ें—कौड़ी, सिक्के, खनिज आदि—जमा किया करता था। जमा करनेकी प्रबल इच्छा जो प्रकृति विज्ञानी, पुरानी या अद्भुत वस्तुओंके संग्राहक अथवा कंजूसमें पाई जाती है, मेरे अन्दर भी विकसित रूपमें मौजूद थी। यह गुण मेरा निजका था, क्योंकि मेरे अन्य भाई बहिनोंमें इसका लवलेश भी नहीं था।"

सं० १८१८में डार्विन डा० बटलरके स्कूलमें जा भरती हुए और उसीमें सात साल तक पढ़ते रहे। स्कूलके अध्यापक उन्हें बहुत ही मन्द-बुद्धि समझते थे। इसी विषयमें उन्होंने बड़े होकर, लिखा, "मेरे मन के विकासके लिये डा० बटलरके स्कूलसे अधिक बुरी जगह नहीं हो सकती थी, क्योंकि वहाँ केवल पुरानी भाषाओंके साहित्य और पुराना भूगोल और इतिहास छोड़ कर और कुछ न पढ़ाया जाता था। शिक्षाके साधनकी दृष्टिसे देखा जाय तो इस स्कूलका अस्तित्व कुछ भी न था। जब मैंने स्कूल छोड़ा तो मैं आयुके विचारसे न कम पढ़ा था, न ज़्यादा; परन्तु मेरे अध्यापक और मेरे पिता

मुझे बहुत ही साधारण लड़का समझते थे, जिसकी बुद्धि औसत दर्जे से भी कम थी।"

जब डार्विन महोदय स्कूलमें पढ़ते थे तो पितामह की तरह उन्हें कवितासे विशेष प्रेम था, जो बड़े होनेपर जाता रहा। उन्हें एक और किताबसे बड़ा प्रेम था, जिसका नाम "दी वण्डर्स ओफ दी वर्ल्ड" था। इस पुस्तकके पढ़नेसे उनको देशाटन करनेकी बड़ी उत्कट इच्छा पैदा हुई, जो बाद में "बीगल" नामी जहाज़में सफ़र करनेसे पूरी हुई। इस स्कूलको छोड़कर वह एडिंबरामें डाक्टरी पढ़नेके लिये गये, पर उन्हें कुछ सफलता न हुई। न वह चीरफाड़ का (व्यवच्छेदन) काम कर सकते थे और न चित्र खींच सकते थे। यह दो त्रुटियाँ उनकी जनम भर न गई। एक बार उन्हें दो शस्त्रोपचार देखनेसे पड़े, जिनमेंसे एक एक बालक पर था, परन्तु समाप्त होनेके पहले ही वह भागकर चले आये। स्मरण रहे कि उन दिनों क्लोरोफार्मका उपयोग न होता था और शस्त्रोपचारोंमें बड़ा कष्ट हुआ करता था।

प्रायः साधारण मनुष्य यह समझा करते हैं कि प्रकृति-विज्ञानी बड़े निर्दयी होते हैं। उन्हें डार्विनके जीवनका हाल पढ़कर इस मिथ्या धारणाको त्याग देना चाहिये। उनका हृदय बड़ा कोमल और दयालु था। वह प्रायः कहा करते थे कि यह दोनों गुण उनकी बहिनके प्रभावसे उनके हृदयमें अंकुरित हुये थे और उन्हें यह सन्देह सदैव बना रहा कि कोमलता व्यक्तिगत गुण है अथवा प्राकृतिक।

पाठकोंको यह स्पष्ट होगया होगा कि स्वभावसे ही डार्विन डाक्टरीके अयोग्य थे। अतएव थोड़े दिन बाद ही उन्होंने अपने पिताकी आज्ञासे यह निश्चय कर लिया कि पादरी बन जायँ और इसी उद्देश्यसे केम्ब्रिज चले गये। वहाँ जाकर उन्हें बड़ी कठिनाई पड़ी, क्योंकि वह ग्रीक अक्षरों तक को भूल गये थे। वह अपना समय व्यर्थ खोने लगे। दिन रात सैर, शिकार और मय-नोशीका शग़ल रहता था।

केम्ब्रिज़में भी प्रकृति विज्ञानका प्रेम उन्हें पूर्ववत बना रहा। वह गुबरीलोंका संग्रह किया करते थे। इनका यह व्यसन देख एक दिन एक मित्र ने कहा— "आप एक न एक दिन रायल सोसाइटीके सदस्य अवश्य बना लिये जायँगे"। यह कल्पना उन्हें शेखचिल्लीकी सी प्रतीत होती थी, पर बाद में जो सन्मान इनका वैज्ञानिक संसारमें हुआ उसके सामने यह अत्यन्त तुच्छ थी।

केम्ब्रिजमें उन्हें कुछ संगीतसे भी प्रेम होगया था। जब जातीय गीत बजाया या गाया जाता था तो उनकी रीढ़की हड्डी फड़क उठती थी, जिससे उन्हें बड़ा आश्चर्य होता था क्योंकि न तो यह स्वयं गा सकते थे और न जातीय गीतको ही पहचान सकते थे, यदि वह और दिनोंकी अपेक्षा अधिक धीरे या जल्दी बजाया जाता था।

१८३१ में बीगल नामक जहाज़पर अवैतनिक प्रकृति-विज्ञानीके पदपर नियुक्त होकर वह देशाटनके लिये निकल पड़े। इस घटनाको वह अपने जीवनमें सब से अधिक महत्वपूर्ण बतलाते हैं। पांच बरस तक वह निरन्तर निरीक्षण करते गये और उल्लेख करते गये। अन्तमें जुलाईमें इन्होंने "उपजातियोंकी उत्पत्ति"के विषयमें बातोंके लिखनेके लिए खाता खोला। इस विषयमें वह बहुत दिनोंसे विचार कर रहे थे और बादमें २० वर्ष तक निरन्तर अध्ययन करते रहे।

सं० १८३९ में अपनी माकी भतीजी, अपनी बहिन, एमा वेजवुडसे इन्होंने विवाह कर लिया। यह विवाह भी सुप्रजावाद-सम्मत था क्योंकि इनकी सन्तानमें सर जार्ज डार्विन, सर फ्रांसिस डार्विन, श्री० होरेस डार्विन और मेजर लियोनार्ड डार्विन सम्मिलित थे, जिनकी ख्याति संसारमें फैल रही है। डार्विन महोदय श्रद्धावान

पति और पिता थे। इनके पुत्र सर फ्रांसिस डार्विनने इनकी जीवनीमें जो "स्मृति" शीर्षक अध्याय लिखा है, वह प्रत्येक मनुष्यको, जिसके हृदयमें चरित्रकी सुन्दरताके लिए कुछ भी आदर है, पढ़ना चाहिये। उनके बच्चे उनके बड़े भक्त थे। उनकी पति-परायणा प्रियतमा सदैव उनकी देख भाल रखा करती थीं और आजन्म अजीर्णका यथोचित उपचार किया करती थीं। इस पातिव्रतके कारण ही वह संसारमें नाम पैदा कर गये। उनकी जीवनी में लिखा है:—

"चालीस वर्ष तक उन्हें एक दिन भी साधारण मनुष्यका सा स्वास्थ्य-सुख अनुभव नहीं हुआ। इस प्रकार उनका जीवन रोग-जनित दुर्बलता तथा कष्ट से लड़ते झगड़ते व्यतीत हुआ। इस सम्बन्धमें उस बातका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता जिसके कारण वह इस कष्टको सहज ही उठा सके और अन्त तक रगड़ेमें कदम जमाये रहे।" पाठक जान ही गये होंगे कि वह बात क्या थी। वह थी उनकी धर्म-पत्नीकी पति-सेवा और प्रेम।

डार्विनका विकाश सिद्धान्त सृष्टिकी उत्पत्ति जड़ यान्त्रिक नियमों के अनुसार मानता है। इस बातको ध्यानमें रख कर जब हम डार्विनके स्वभाव और उसके हृदयकी कोमलतापर विचार करते हैं तो बड़ा आश्चर्य आता है। जिस व्यक्तिको प्रत्येक जीव, कीड़े, मकोड़ों तक, से अगाध प्रेम था; जो पुष्पों के अपूर्व रङ्ग रूपको देख कर और उनके कोमल अंग स्पर्श करके मग्न हो जाया करता था, उसीके द्वारा जीवनकी मीमांसाके लिए एक जड़, रसहीन और भाव-शून्य सिद्धान्त रचा जाय—इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है। डार्विनके लेख जीव-विज्ञानके सभी विभागों में व्याप रहे हैं। जीवन अथवा उसके विभिन्न स्वरूपोंपर कोई वाद विवाद अथवा विचार बिना उनका हवाला दिये करना असम्भव है।

डार्विन का स्वभाव पुष्पोंके समान सरल और कोमल था। वह कभी वाद विवाद या तर्क कुतर्क करना जानते ही न थे। उनके अनुयायियोंमें हक्सले, हैकिल आदि बड़े बड़े उद्भट विद्वान थे और वही इनके पक्षका समर्थन करनेमें व्यस्त रहते थे। उनका व्यक्तित्व और उनके उपदेश उस सिद्धान्तसे बिलकुल भिन्न थे, जो उनके नामसे विख्यात है। जीव-विज्ञानमें अब उनके सिद्धान्तकी गौण स्थिति है। अब वह उन समस्याओंके हल करने में किसी काम का नहीं समझा जाता, जिनके लिए उसकी रचना हुई थी।

निस्सन्देह डार्विन बड़ी उच्च कोटिके निरीक्षक थे, किन्तु गहरे तत्वदर्शी नहीं थे। आदिसे अन्त तक वह जीवनका अध्ययन और मनन करते रहे, पर जीवन की सच्ची प्रकृति जाननेको उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। जब कभी वह गूढ़ और सूक्ष्म विषयोंपर विचार करने लगते थे तो उनका मस्तिष्क क्रियाहीन हो जाता था। प्रायः उनके कामसे यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की जाती है कि सृष्टिमें प्रयोजन अथवा लक्ष्य नहीं दिखाई पड़ता, पर एक स्थानपर उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि मेरी अन्तरात्माका विश्वास यह है कि संसारकी उत्पत्ति यों ही अकस्मात नहीं हो गई थी।

सन १८८२ की १६ अप्रैलको आपका देहान्त हुआ। आपका शव न्यूटनकी क़ब्रके पास ही वेस्ट मिनिस्टर एबी में दफनाया गया है।

—मनोहरलाल भार्गव, एम० ए०

सर जगदीशचन्द्र वसु

'टाइम्स आव इण्डिया' के लण्डन के संवाददाता ने ३० अप्रैल १६२० के पत्रमें सर जगदीशचन्द्र वसु के सम्बन्ध में लिखा है—

सर जगदीशचन्द्र वसु १३ मईको रायल सोसाइटीके विधि पूर्वक फेलो (सदस्य) बनाये जायँगे। इसी संध्याको 'नेचर' के सम्पादक सर रिचर्ड ग्रेगरीके सभापतित्वमें उन्होंने लण्डन क्लबके विश्वविद्यालयमें अपने आविष्कारोंके सम्बन्धमें व्याख्यान दिया। सर जगदीशने अपने कामको उचित प्रतिष्ठा दिलाने और विरोधियोंनेके पक्षपातोंके मर्दन करनेमें जो लगातार धीरता दिखाई है वह अद्भुत और प्रशंसनीय है। २१ क्रामवेल रोडपर उनका जो स्वागत किया गया था उसमें उन्होंने कहा था कि जैसे आविष्कार मेरे हैं वैसे आविष्कारोंकी जितनी आलोचना प्रत्यालोचना की जाय अच्छा है, नहीं तो विज्ञान और अंधविश्वासमें अन्तर ही क्या रह जाता है और दोनों ऐसे मिल जाते हैं कि पीछे एक दूसरेसे अलग करना असम्भव हो जाता है। उन्होंने इस बातमें बड़ी बुद्धिमानी की कि प्रोफेसर ए० डी० वालरके 'टाइम्स' में प्रकाशित कराये पत्र के अनुसार, जिसमें इन महाशयने कुछ सप्ताह पहिले यह लिखा था कि सर जगदीशने रायल सोसायटी आव मेडिसिनमें पौदोंकी बाढ़पर जो प्रयोग अपने क्रेस्कोग्राफ (Crescograph) द्वारा दिखलाया था भ्रममूलक (Dubious) था, समाचारपत्रों द्वारा शङ्का समाधान करना पसंद नहीं किया। जब आह्वाहन (Challenge) नहीं माना गया तब समाचारपत्रवालोंने इस बातपर बहुत ज़ोर डाला कि वह सम्वाददाताओंसे मिलें और अपने विचार प्रकट करें। इस बातके लिये उनके डेरेपर तार, टेलीफोन और सम्वाददाता पहुंचने लगे। सबका उत्तर उन्होंने यह दिया कि जो विषय निरानिर वैज्ञानिक और पारिभाषिक (Technical) है उसको समाचारपत्रों द्वारा सर्व साधारणके सामने शङ्का समाधानके लिये उपस्थित करना अनुचित है। ऐसा करनेका एक कारण उन्होंने यह बतलाया कि मैं अपने आविष्कार स्वतंत्रता पूर्वक करना चाहता हूं और दूसरा कारण यह है कि जब इनका संक्षिप्त समाचार तार द्वारा भारतवर्ष पहुंचेगा तब लोग समझेंगे कि इसमें जातिगत ईर्षा द्वेष काम कर रहे हैं।

इस गम्भीर मौनसे और शारीरधर्म वैज्ञानिकों (physiologists) के चित्त में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि सर जगदीशपर जो अन्याय पूर्ण आक्रमण हो रहे हैं उनको रोका जाय। सर जगदीशको इस बातमें सचमुच बड़ी असुविधा थी कि वह अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म यंत्र क्रेस्कोग्राफको प्रोफेसर वालरके आदेशानुसार एक प्रयोगशाला से दूसरी प्रयोगशालामें ले जायँ और सर्वसाधारणको अपने आविष्कारकी सच्चाई दिखलावें। इस यंत्रमें जहाँ इतनी खूबी है कि वह पौदोंकी प्रतिक्षण की बाढ़ भी दर्शकोंको दिखला सकता है वहां नज़ाकत भी इतनी है कि एक जगह से दूसरी जगह हटानेमें इसके अङ्ग ऐसे शिथिल पड़ जाते हैं कि कुछ दिनके बाद काम के लायक हो पाते हैं। इस असुविधाको देखते हुए प्रोफेसर डबलू० एम० बेलिसने इसी मासके आरम्भ में 'टाइम्स' में यह युक्ति बतायी कि जिन प्रयोगोंको प्रोफेसर वालर आशङ्का जनक समझते हैं वह किसी ऐसी जगह दुहराये जायँ जहाँ निष्पक्ष भाव रह सके और इसके लिए उन्होंने यूनीवर्सिटी कालेज की अपनी ही प्रयोगशाला उचित समझी। यद्यपि सर जगदीशको सुविधा इसमें थी कि प्रयोग वहीं दिखाये जायँ जहाँ ठहरे थे अर्थात् सर रिचर्ड स्टेपलीकी प्रयोगशालामें, जिसको अस्थायी रूपसे उन्होंने ले लिया था, क्योंकि वहाँकी परिस्थिति

ऐसी थी कि यह यंत्र सुगमतापूर्वक काम कर सकता था, तथापि उन्होंने यह सलाह मान ली और यह निश्चय हो गया कि प्रोफेसर बेलिसके बचनानुसार ही काम किया जाय।

शुक्रवारको युनीवर्सिटी कालेजकी प्रयोगशालामें बड़े बड़े विज्ञानवेत्ताओंकी पंचायत (Jury) के सामने प्रयोग दिखाया गया। प्रयोग का उद्देश्य यह सिद्ध करने का था कि क्रेस्कोग्राफसे जो सूचना मिलती है वह बढ़ते हुए अङ्कोंकी अत्यन्त सूक्ष्म बाढ़की एक वृहदाकार गति है है और जैसा प्रोफेसर वालर कहते हैं कि इसके कारण नाना प्रकारके भौतिक क्षोभ (ताप; विद्युत् इत्यादि) हैं वह बात ठीक नहीं है। सुननेमें आया है कि पंच लोग जिसमें प्रोफेसर बेलिस, ब्लैकमैन और डामेन तथा लार्ड रेले हैं यह घोषणा करने वाले हैं कि प्रयोगसे निस्संदेह सिद्ध हो गया कि क्रेस्कोग्राफसे सचमुच बढ़ते हुए पौदोंकी बाढ़की गति अद्भुत सूक्ष्मता के साथ नाप जा सकती है। सर जगदीश वसु की इससे बढ़ कर विजय क्या हो सकती है! प्रोफेसर वालर भी अब चुप हो जायँगे। भारतवर्ष के एक प्रमुख वैज्ञानिकने यह दिखला दिया कि इतना भड़कानेपर भी गंभीरता और उदारताको हाथसे न छोड़ना चाहिये। इससे नव भारतको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये जो कभी कभी तुनकमिजाजी दिखलाते हैं। सर जगदीश बराबर इस भाव से काम करते रहे हैं कि काम करते जाओ सत्यकी विजय अन्तमें अवश्य होगी और यह उन्होंने करके दिखला दिया। वसु महोदयके क्रेस्कोग्राफके विषयमें अब वैज्ञानिकोंको कुछ सन्देह नहीं है। वस्तुतः सत्यकी विजय हो गई है।

—महावीरप्रसाद

धन*

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज ! बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥

हाभारतका युद्ध छिड़नेके पहले भीष्म, द्रोण, शल्य इत्यादि गुरुजनोंने युधिष्ठिर महाराजसे कहा था कि पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं। कौरवों ने हम लोगोंको अर्थ से बांध रखा है। और यही कारण बतलाया था कि यह जानते हुए भी कि युधिष्ठिरका पक्ष न्याययुक्त है और कौरवोंका अन्यायपूर्ण, वह कौरवोंका साथ देनेको क्यों विवश थे! आपको यह बतलानेके लिए कि धन जिससे सब अर्थोंकी प्राप्ति होती है मनुष्यपर ही नहीं वरन् मनुष्यतापर कितना अधिकार रखता है, केवल यह श्लोक ही काफी है। यह उस अवसरपर कहा गया था जब धन और बलके मदके कारण दुर्योधन अपने ही भाई पांडवोंको कुचल डालना चाहते थे और जब बाल ब्रह्मचारी मृत्युपर भी अधिकार रखनेवाले, संसारमें अद्वितीय वीर तथा नीतिवेत्ता भीष्मपितामह सत्यपर चलनेवाले प्राण से प्यारे पांडवोंके सम्मुख युद्ध करनेको तैयार थे। इससे आपको समझ लेना चाहिये कि धन-बल कितना बड़ा है। धनसे देवता, दानव, मनुष्य सब वशमें किये जा सकते हैं। यदि यह कहा जाय कि धनवान होनेके कारण गूंगेको बोलनेकी शक्ति आ जाती है और लूले, लँगड़ेको दौड़नेकी शक्ति तो अत्युक्ति न होगी। धनकी महिमा ऐसी है कि मिट्टीका लोंधा भी बड़ी बड़ी आत्माओंको नीचा दिखा सकता है और अपनेको विद्या, बुद्धि, बल, धर्म न्याय सबका अधिष्ठाता समझता है और धन के अभाव से

* यह लेख राय बरेली की नागरी प्रचारिणी सभा के [illegible] वार्षिक अधिवेशन में पढ़ा गया था।

मनुष्य ऐसे ऐसे काम करनेको लाचार होता है जो मनुष्यके पदसे गिरा कर, पशुकी कोटिमें ही नहीं, मिट्टी और पत्थरकी श्रेणीमें पहुँचा देते हैं। निर्धनताके कारण ही मनुष्य झूठ बोलता, चोरी करता, अपने भाईका गला काटता, खुशामद करता, रातको दिन और दिनको रात बताता, धर्म बेचता, जितने निर्दय-कर्म हैं सब करनेको विवश होता है। इसलिए यह सच है कि मनुष्य धनका दास है, परंतु यह कुछ अंशमें सच नहीं कि धन किसीका दास नहीं।

जब धनकी इतनी महिमा है, जब धनके बिना न तो धर्म ही बच सकता है, न काम ही चल सकता है और न संसारके बन्धनसे ही छुटकारा मिल सकता है तब धनकी निंदा क्यों की गई है? धनको बड़े बड़े विचारवान, विद्वान, योगी, मुनि घृणित क्यों कहते हैं? जितने तत्वदर्शी पुरुष हैं सभी धनको त्याज्य समझते हैं, सभी कहते हैं कि इसके चंगुलमें नहीं फँसना चाहिये, यहाँ तक घोषणा करते हैं कि यदि मनुष्य कंचन, कामिनी और क्रोध अथवा काम, क्रोध और लोभसे बचा रहे तो उससे कोई पाप नहीं हो सकता। कहाँ तो यह बात कि धनके बिना धर्म और मोक्ष कुछ भी नहीं मिल सकता और कहाँ यह कि धन ही पापका मूल है। जहाँ यह बात सच है कि 'भूखे भगति न होहि गोपाला,' वहाँ यह सच है कि 'अर्थस्य पुरुषो दासो'। इन दोनोंमें किसको ठीक माना जाय?

यथार्थ बात यह है कि धन एक बल है और बहुत बड़ा बल है। यह ऐसा बल है जिसके द्वारा धर्मबल, विद्याबल, बुद्धिबल, बाहुबल यहाँ तक कि संसारमें जितने बल हैं सबका आवाहन किया जा सकता है, इसलिए इसको त्याज्य समझना उचित नहीं। जो देश या जो मनुष्य धनको त्याज्य समझकर इसके पास नहीं जायगा उसकी वही दशा होगी जो दशा आत्माकी बिना शरीरके होती है अथवा शरीरकी बिना इन्द्रियोंके होती है। धनको घृणाकी दृष्टिसे देखनेका यह तात्पर्य्य नहीं है कि यह बहुत अपवित्र वस्तु है, इसका संसर्ग ही नहीं होना चाहिये; वरन् इसका अर्थ यह है कि धनसे ईर्षा, मद, मत्सरता, इत्यादि आसुरी गुण बहुत जल्द प्राप्त होते हैं; क्षमा, दया, न्याय इत्यादि दैवी गुण कठिनतासे प्राप्त होते हैं। इसलिए धनका घोड़ा इतना स्वतंत्र नहीं कर देना चाहिये कि वह समाजको संगठित और सुरक्षित रखनेवाले नियमका उल्लंघन कर जाय और रथ, रथी, सारथी सबको नर्क कुण्डमें गिरा दे। यदि आप विचार करें तो जान पड़ेगा कि जिस प्रकार धनको पापका मूल कहा है उसी प्रकार इन्द्रियोंको भी। इन्द्रियोंके विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह उक्ति बिलकुल सच है कि मछली, पतिङ्गा, हिरन इत्यादि तो एक एक इन्द्रियकी प्रबलताके कारण फँसते हैं परन्तु मनुष्यमें पाँचों इन्द्रियोंकी प्रबलता है, इसलिए मनुष्यका बचना तो परमेश्वरकी कृपा पर ही अवलम्बित है। परन्तु फिर भी इन्द्रियोंको एक सीमा तक पुष्ट करना और रखना आवश्यक कहा गया है। हाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि इनको इतना प्रबल न बना दिया जाय कि यह मर्यादाका उल्लंघन करके समाजको नष्ट भ्रष्ट कर दें। ठीक यही बात धनके लिए भी है। धनकी उपयोगिता यही है कि भोजन वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओंके लिए जितना उचित हो उतना अपना समझे और शेषको परमेश्वरका समझकर समाजको आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों प्रकारसे सुव्यवस्थित दशामें रखनेके लिए काममें लगा दे और राजर्षि जनककी तरह यह समझे कि परमेश्वर की ओरसे वह उसका प्रबन्धकर्ता नियुक्त हुआ है। इन दोनों आध्यात्मिक और आधिभौतिक शक्तियोंको सुव्यवस्थित रखनेमें ही कल्याण है। किसी एकके कम होनेसे समाजका अधःपतन होता है। संसारका इतिहास इसका साक्षी है।

धनकी इतनी मीमांसा ही यहाँ पर्याप्त जान

पड़ती है। अब यह बतलाना है कि जिस धनकी इतनी महिमा है वह क्या है, कैसे प्राप्त होता है और इसकी रक्षा कैसे की जाती है? इन तीन प्रश्नों के पेटमें बहुत से शास्त्रोंका समावेश है, जिससे यह विषय इतना व्यापक और दुरूह है कि मेरे जैसे साधारण बुद्धिवाले मनुष्यके लिए इसके समझानेका प्रयत्न करना वैसा ही है जैसा लँगड़ेको संसारकी सैर करनेका प्रयत्न। यहाँ मैं संक्षेपमें केवल उतना ही बतलाना चाहता हूँ जितना आजकल प्रत्येक नरनारीको साधारणतः जानना चाहिये। गंभीर विचार तो वही लोग कर सकते हैं जो इस विषयका अध्ययन करते हों और इसकी चर्चामें दिनरात लगे रहते हों।

अर्थशास्त्री कहते हैं कि धन वह है जिससे व्यवहारमें आनेवाली वस्तुओंका अदला-बदला होसके। जितनी वस्तुएं प्रत्येक मनुष्यके जीवन निर्वाहके लिए आवश्यक हैं उन सबको एक ही मनुष्य नहीं बना सकता। यदि वह बनाना भी चाहे तो वैसी सफलता नहीं हो सकती, इसलिए उसको विवश होकर दूसरोंका सहारा लेना पड़ता है। यदि कोई मनुष्य किसानी करनेमें निपुण है तो वह अपना शरीर ढकनेके लिए कपड़ा लत्ता भी उतनी उत्तमतासे नहीं बना सकता और न उसको इसके लिए इतना अवकाश ही मिल सकता है। हाँ, यदि वह बहुत परिश्रमी हो तो अपने खेतसे उपजी कपासको कातकर सूत बना सकता है और काता हुआ सूत जुलाहेको देकर कपड़ा तैयार करवा सकता है या यदि जुलाहेके कपड़ा मौजूद है तो अपने सूतके बदले वह तुरंत ही कपड़ा ले सकता है। इस अदलबदलमें किसानको यह ख़याल रखना पड़ता है कि जितने सूतसे जुलाहा कपड़ा तैयार कर सकता है उतना सूत तो देना ही चाहिये, साथ ही साथ जुलाहेको जितना परिश्रम करना पड़ा है उसकी मजूरी भी देनी चाहिये। मजूरी देनेमें भी यह विचार करना पड़ेगा कि उसने किस उत्तमतासे काम किया है।

अच्छा, कपड़ेके लिए तो उसने जुलाहेका आश्रय लिया। अब उसको जरूरत है हलकी। इसके लिए उसको बढ़ई और लुहारकी शरण लेनी पड़ेगी। इसी तरह आप समझ सकते हैं कि खेती करनेवालोंको किसका किसका सहारा लेना पड़ता है। लुहार, चमार, जुलहा, नाई, धोबी इत्यादि समाजके आवश्यक अंग इसीके लिए समझे गये। इन सबको अपनी मिहनतके बदले खाने, पीने, पहनने, ओढ़नेकी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। किसानके यहाँ खाने, पीनेकी वस्तुएं बहुतायतसे उपजती हैं। इसलिए वह इन्हींके बदले अपना सारा काम चलाता है; खेत काटनेकी मजूरी भी अनाजके ही रूपमें देता है; मिरचा, नोन, तरकारी भी अनाजके ही बदले खरीदता है। इसलिए किसानका धन उसकी खेतीका अनाज है। अनाज उपजानेके लिए उसको हल, बैलकी आवश्यकता पड़ती है और हल, बैलकी पूंजीके अनुसार ही वह खेतोंको जोतता और अनाज पैदा करता है। इसलिए उसके धनकी नाप हल, बैलकी संख्यासे होती है। देहातमें अब भी जब कोई किसीके यहाँ शादी विवाहका सम्बन्ध करता है तब यही जाँचता है कि उसके पास कै मूंड़ गोरू हैं. कै हलकी खेती है, कितनी सीर होती है, इत्यादि।

बहुत से लोग समझते हैं कि रुपया पैसा ही धन है, परन्तु यह उनकी भूल है। रुपया पैसा तो अदल बदलके सुगम करनेका साधन मात्र है। ५० ६० वर्ष पहले लोगोंके पास इतने रुपये नहीं थे जितने आजकल दिखाई पड़ते हैं और न नौकरीके बदले ही इतने रुपये पैसे मिलते थे जितने आजकल, परन्तु फिर भी इतना कष्ट नहीं था, जितना आजकल है। मैंने सुना है कि दस, पन्द्रह या बीस रुपयेकी नौकरी बहुत बड़ी नौकरी समझी जाती थी। इससे लोग आरामसे खाते पीते भी थे; नौकर, चाकर, घोड़ा, गाय इत्यादि भी रख सकते थे, हट्टे कट्टे भी बने रहते थे और खाने-

की चिन्ता भी नहीं बनी रहती थी। उस समयके दो रुपयेके सिपाही अपने कुटुम्बका अच्छी तरह पालन पोषण कर लेते थे, दो तीन आनेमें कहार पच्चीसों घड़े पानी भर जाता था, परन्तु अब उसी कामके लिए कई गुने दाम देने पड़ते हैं तोभी न तो देनेवालेको और न लेनेवालेको सन्तोष होता है। कोई रुपया पैसा न तो खा ही सकता है न पहिन ही। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि रुपया पैसा धन नहीं है, यह एक सम्मानमात्र है और इसका चलन केवल इसलिए हुआ कि अदल बदलमें सुविधा हो। पीछेसे इसके द्वारा धन नापनेकी भी सुगमता होगयी।

रुपये पैसेसे अदल बदलमें किस प्रकार सुविधा होती है यह बात एक उदाहरणसे भली भांति समझमें आजावेगी। मान लीजिये कि मोहनके पास अनाज है पर वस्त्र नहीं। उसको जुलाहेके पास वस्त्र-के लिए जाना पड़ेगा। जुलाहेके पास जानेपर जान पड़ा कि उसे अनाजकी ज़रूरत नहीं है उसके कुटुम्बके लिए सालभरके लिए काफी अनाज है, उसे तो एक घोड़ेकी ज़रूरत है जिससे वह दूर दूरके गावोंमें जाकर सस्ती कपास खरीद कर सके और कपड़ा बना सके। ऐसी दशामें उस किसान-को दूसरे जुलाहोंके पास जाना पड़ेगा और पूछना होगा कि अनाजके बदले कपड़ा कौन देगा? यदि कोई जुलाहा अनाजका भूखा न हुआ तो उसे घोड़ा बेचनेवालेके पास जाना पड़ेगा और अपने अनाजके बदले घोड़ा खरीदेगा, सस्ता या महँगा जैसी दोनोंकी आवश्यकताएं हों, और वह घोड़ा लाकर उस जुलाहेको देना पड़ेगा जो घोड़ेके बदले कपड़ा देना चाहता है। इतना कष्ट उठानेपर भी दोनोंको संतोष न होगा क्योंकि सम्भव है कि जुलाहेको घोड़ा पसन्द न आवे। इस प्रकार बिना रुपये पैसेके उस किसानका काम तो चल गया परन्तु इतनी देरमें और इतना कष्ट उठानेके बाद। ऐसी दशामें जब कि रुपये पैसेका चलन न हो आव-श्यक वस्तुओंके अदलबदलमें बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं और समयपर काम नहीं होता। यदि रुपये पैसेका चलन हो तो किसान अपने अनाज-के बदले रुपये ही लेता है और उस रुपयेसे जिन जिन वस्तुओंकी आवश्यकता हो उनको सुविधापूर्वक खरीद सकता है। रुपये, पैसे, चलन-सार सिक्के, नोट, चेक इत्यादि विषयोंकी विवे-चना किसी स्वतंत्र लेखमें की जायगी, इस समय तो यह बतलानेका उद्देश है कि धन क्या है और इसकी वृद्धि कैसे होती है।

अभी बतलाया गया है कि जिससे व्यवहारमें आनेवाली चीज़ोंका अदला बदला हो सके वह धन है। इससे यह स्पष्ट है कि जिससे व्यवहारमें आनेवाली चीज़ें अधिकतासे प्राप्त हो सकें वह ही धन है। इस दृष्टिसे मनुष्यका सबसे बड़ा धन भूमि है, क्योंकि पृथ्वीमातासे मनुष्य सारी आव-श्यक वस्तुएं प्राप्त कर सकता है और इसी वास्ते पृथ्वीको माताका सर्वोच्च पद दिया गया है क्योंकि जैसे मातासे बालकके भरण-पोषणके सब आवश्यक पदार्थ प्राप्त होते हैं वैसे ही पृथ्वीसे भी। एक बातमें पृथ्वीका दर्जा माताके दर्जेसे भी उच्च है। वह यह है कि माता पिताका आधार भी पृथ्वी है। यही कारण है कि प्राचीनकालमें ही नहीं आजकल भी जिसके पास थोड़ी सी भी भूमि है वह भूपति, नरपति कहा जाता है और वह सब धनियोंका सरदार माना जाता है। यह भी स्पष्ट है कि पृथ्वी किसी मनुष्यकी सम्पत्ति इस दृष्टिसे नहीं है कि परमेश्वरने उसको ही पृथ्वीका स्वामी रचा है वरन् इस दृष्टिसे है कि वह उस पृथ्वीकी रक्षा अपने बाहुबलसे कर सकता है। यही कारण है कि आदि कालसे पृथ्वीका स्वामी वही होता आया है जिसमें बल था और अब भी जिसके अधीन सबसे अधिक भूमि है वही अधिक बलवान है और उसीकी तूती सारे संसारमें बोलती है।

इससे यह समझ लेना चाहिये कि केवल पृथ्वी ही सब कुछ है और यही पर्याप्त धन है। पृथ्वीसे ही काम नहीं चलता। इसके साथ विद्या-

बल, बुद्धिबल, आत्मबल अत्यन्त आवश्यक है; जब तक यह तीनों न होंगे, तब तक संगठन शक्ति नहीं होगी और बिना संगठन शक्तिके सब बल और सब धन निष्फल है। भारतवर्षकी हीन दशाका प्रधान कारण संगठनशक्ति विहीनता है। इस संगठनशक्तिके प्रभावसे छोटेसे टापू जापान और मुट्ठीभर जापानियोंने रूसको नाकों चने चबवा दिये और इस समय राष्ट्रसंघका एक प्रधान सदस्यका पद पा लिया। इस संगठनशक्तिके प्रभावसे भारतवासी अनभिज्ञ नहीं थे। प्रातः स्मरणीय राजा रामचन्द्रने इसी शक्तिसे रावण जैसे महाबल मदान्ध राजाको नीचा दिखाया। इसका ह्रास कैसे हुआ और इसका कारण अब भी मौजूद है या नहीं—इसका सम्बन्ध आजके विषयसे नहीं है, इसलिए यह कभी फिर बतलाया जायगा।

यदि किसी व्यक्ति, जाति या राष्ट्रके पास पृथ्वी हो, बुद्धि हो, विद्या हो और आत्मबल हो तो उसके समान उन्नत या सुखी दूसरा कोई नहीं है। पृथ्वीकी बात सब जानते हैं। इस अवसरपर यह बतला देना भी आवश्यक है कि अन्य तीन बलोंसे धन कैसे बढ़ सकता है। आप यह जानते हैं, कि ब्रिटिश साम्राज्यका उद्गमस्थान एक छोटासा टापू है जिसका विस्तार इस संयुक्तप्रांतके तीन चौथाईके लगभग है; परन्तु इन तीनों बलोंसे इस छोटेसे टापूके निवासियोंने अपना साम्राज्य देशदेशान्तरोंमें फैला दिया है। इस बड़े साम्राज्यके स्थापित करनेवाले वह नरपति नहीं थे, जो पृथ्वीके एक छोटेसे टुकड़ेके स्वयम्भू स्वामी बनकर उसीपर जन्म लेनेवाले छोटे छोटे मनुष्योंपर अपनी ठकुराई दिखाते हैं, वरन् वह छोटे छोटे मनुष्य थे, जिनके पास माता पिताकी छोड़ी हुई सम्पत्ति तो नहीं थी; परन्तु उत्साह था, साहस था, निर्भयता थी, आत्मविश्वास था, बुद्धि थी, संगठनशक्ति थी, और खोज करनेकी उत्कट लालसा थी। ब्रिटेनका अथवा इङ्गलैण्डका इधर ७०० वर्षोंका इतिहास पढ़िये, तो आपको मालूम हो जायगा कि ब्रिटेन इस समय प्रधान पदपर क्यों है और साथ ही साथ यह भी जान पड़ेगा कि इसमें किस बलकी कमी है।

धनका व्यापारसे बड़ा सम्बन्ध है। व्यापारमें ही लक्ष्मीका निवास है; परन्तु बिना विद्याके, बिना बाहुबलके, व्यापारकी दशा सुधर नहीं सकती और न उस व्यापारसे देशको लाभ ही पहुँच सकता है। विद्या और बाहुबल विहीन व्यापार पनपने नहीं पाता और यदि पनपता भी है तो वह अपना सुधार करनेको जगह बिगाड़ करता है। और अधिकतर दल्लाली द्वारा पूंजी बढ़ाता है। इस समय भारतवर्षमें व्यापारका सच्चा रूप कहीं कहीं दिखाई पड़ता है। ऐसे व्यापारसे हम रुपयेमें पन्द्रह आना गँवाते हैं और सिर्फ एक आना अपनी गाँठ कर पाते हैं। इन पन्द्रह आनोंके खो देनेसे ही हमारी आर्थिक दशाकी हीनताका कोई ठिकाना नहीं रहा और हमारे बड़े बड़े विद्वान और चतुर कारीगर तेल, नोन, लकड़ीमें ही रात दिन फँसे रहते हैं; न तो इस लोकमें कुछ कर पाते हैं और न परलोकके लिए ही कुछ कर जाते हैं।

इन पन्द्रह आनोंकी रक्षाके लिए आपको विज्ञानसे मदद लेनी पड़ेगी, जिसके द्वारा ही इस युगमें कलाकौशलकी वृद्धि हो सकती है और ऊसर पृथ्वी भी सुजला, सुफला और शस्यश्यामला बनायी जा सकती है। विज्ञानकी विशेष चर्चा यहाँ इसलिए करनी पड़ी कि आजकल कुछ लोगोंके विचार ऐसे होगये हैं कि यूरोपीय महाभारतका प्रधान कारण विज्ञान ही है, जिसको हमारे देशवासी भी बिना सोचे समझे ठीक मान लेते हैं। कोई कोई तो यहाँतक कहते सुनाई पड़ते हैं कि हमारे पूर्वजोंने इसी कारण बड़ी मशीनें नहीं तैयार करायीं, 'महायंत्राणि वर्जयेत,' यद्यपि उनमें यह शक्ति थी और चर्खोंसे काम लेते रहे कि बड़ी बड़ी मशीनोंसे अत्याचारकी सम्भावना है। ऐसे भोले भाले भाई यह नहीं जानते कि विज्ञान एक बहुत बड़ा बल है और बलका सदुपयोग और

दुरुपयोग मनुष्यके दैवी और आसुरी अंशसे होता है। यही बल दैवी अंशवाला मनुष्य आत्मोत्सर्गमें लगाता है और आसुरी अंशवाला आत्मघातमें। जैसे आगसे ऋषि, मुनि इस लोक और परलोक दोनोंको सुखी और शान्त करते थे और दुष्ट लोग दुखी और अशांत।

विज्ञानकी उन्नतिके साथ ही साथ अर्थशास्त्र और इतिहासके अध्ययनकी भी बड़ी आवश्यकता है। प्रत्येक नरनारीका यह कर्तव्य है कि यदि वह देशकी दशा सुधारा चाहता है तो वह इनको पढ़े पढ़ावे और पुस्तकालयों, वाचनालयों और व्याख्यानों द्वारा इनका प्रचार कोने कोनेमें करे। तभी उसको असली धर्मका ज्ञान होगा और वह शुद्ध सनातनधर्मके मार्गपर चलता हुआ अपने कुटुम्बको, गाँवको, देशको, नहीं नहीं, संसारको उन्नत कर सकता है अन्यथा नहीं।

कोई समय ऐसा था कि भारतवर्ष शरीररक्षाकी आवश्यक वस्तुओंसे भरापूरा था, आबादी इतनी नहीं थी, अन्य अन्य देशोंसे चढ़ाऊपरी नहीं थी, जंगलों और पहाड़ोंमें भोजनकी सामग्री इतनी मिल जाती थी कि कोई भी मनुष्य बिना किसीका आश्रय लिए अपना जीवन कन्द, मूल, फल, फूलसे सुखपूर्वक व्यतीत कर सकता था, आत्मविकासमें दिनरात मग्न रहा सकता था। उस समय आदर्श यह था कि बड़े बड़े राजा महाराजा भी संकट, विपत्तिके समय उसकी शरणमें जाते थे और उसकी अमृतभरी वाणीसे अपने क्षुब्ध और दुखी चित्तको शान्त करते थे, उससे निष्पक्ष सम्मति लेते थे और अपनेको धन्य धन्य समझते थे। वह भी निष्पक्ष सम्मति देता था क्योंकि आत्माको अजर अमर समझनेके कारण उसे किसी भौतिक शक्तिका भय नहीं रहता था और उसके लिए शरीररक्षाकी आवश्यक सामग्री काफीसे अधिक प्रकृति स्वयम् ही पहुँचा देती थी। फिर ऐसे लोग तत्त्वदर्शी, निष्पक्ष, निरभिमान, निर्भय, निष्काम, जगद्गुरु न बनें तो कौन दूसरा बन सकता था परन्तु आजकल खाने पीनेकी सामग्री जंगलोंमें भी सुगमतापूर्वक नहीं मिल सकती। पहले तो जंगल, पहाड़, इतने रहे नहीं, दूसरे जो हैं उनमें भी स्वतंत्रतापूर्वक किसीका निर्वाह नहीं हो सकता। अब देशकी प्राकृतिक दशा बहुत बदल गई है, समाजमें चढ़ाऊपरी भोजन-वस्त्रमें ही नहीं है; नीतिमें, धर्ममें, समाज संगठनमें अपने ही देशवासियोंका सामना नहीं करना पड़ रहा है। इसलिए जीवन-संग्रामकी समस्या बड़ी ही दुरूह और कठिन हो गई है। अब साधु, सन्यासियोंको भी धन इकट्ठा करनेकी चिन्ता सताने लगी है।

इसलिए हमारी नम्र प्रार्थना है कि आपलोग धन बढ़ानेके जितने साधन हैं उनको सरल करनेकी चिन्ता कीजिये। जिसके पास रुपया है वह उससे समाज और देशकी बुद्धि और विद्याको ऊँचे तलपर उठानेका प्रयत्न करे। जिसके पास बुद्धि और विद्या है वह समाजकी संगठनशक्ति दृढ़ करे। हमारा कार्यक्रम किस ढंगका होना चाहिये और उसके लिए हमें कौनसा भाग लेना चाहिये इसको अपनी योग्यताके अनुसार चुन लीजिये और अपने अपने काममें लग जाइये।

—o—

घर गीत ३

प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

(१)

प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

प्यारा बयाबान और जङ्गल
झील, पहाड़, झाड़ और दलदल
बीहड़, बाग़, फूल, मेवा, फल
प्यारा है हर एक नज़ारा

प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

(२)

प्यारी गंगा; प्यारी जमना
गोदावरी, नर्मदा, कृष्णा
हिमालया, हिन्दू कुश, विन्ध्या
प्यारी ज़मीन् आस्मां प्यारा
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

(३)

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई
बौद्ध, पारसी, जैनी भाई
मन्दिर, मूरत, तीरथ, मसजिद
मक्का, प्राग, हज्ज, हरद्वारा
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

(४)

तुझ को दिल से प्यार करें हम
तुझ पर जान निसार करें हम
तेरा दम हर बार भरें हम
तू दिलबर, तू यार हमारा
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

श्रीपद्म-कोट ४.४.१९२० } —श्री० पा०

—:o:—
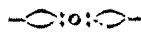
पांचों भूत और दर्शन
विज्ञानका विकास

[ले०—"अब्दुल्लाह"]

कहावत है कि शैतान जान नहीं मारता पर हलाकान तो करता है। सौ सवा सौ बरस हुए पच्छाहीं वैज्ञानिकोंने मुद्दतके लगे पांचों भूतोंसे अपना पिंड छुड़ाया, पर पुराने भूत जब तक जला न दिये जायँ पीछा नहीं छोड़ते। यह कोई मामूली भूत भी नहीं जो साधारण ओझाओं* और दर्शनियोंके काबूका हो। और लगा भी दार्शनिकोंको था।

"तुलसी वे कैसे जियें जिनको लागे पांच।"

फल यह हुआ कि इस बीसवीं शताब्दीमें ज़माना वैज्ञानिकोंका आया और दार्शनिकोंका, ज़वालसा हो गया। दार्शनिकोंकी क्रियाहीनता पर उनकी निस्तब्धता पर, वैज्ञानिक हँसी उड़ाने लगे, फबतियां उड़ाने लगे। वैज्ञानिकों की कर्म्मण्यतासे लाभ उठाते हुए भी दार्शनिक अपने स्वभावसिद्ध उपेक्षासे काम लेने लगे। इस पारस्परिक विरोधसे कोई उपकार न देख कर कुछ सम-दर्शियोंने दोनों पक्षोंको मिलाकर उनका भ्रम दूर करने की चेष्टा की। उन्होंने देखा कि दोनों सत्यकी खोजमें हैं, एक ही केन्द्र पर पहुँचनेका उद्योग कर रहे हैं, पर मार्ग भिन्न भिन्न हैं। इनका ध्येय अन्धोंका हाथी हो रहा है। यह वह ढाल है जिसका एक पहलू पीतलका और दूसरा तांबेका है, जिसे भिन्न भिन्न दिशाओंसे देख कर वैज्ञानिक और दार्शनिक अफीमचियोंके काल्पनिक गन्नेके खेत पर लड़ रहे हैं। दार्शनिक सत्यकी खोजमें अंतरंग परीक्षामें लगा आया है। उसे बहिरंग परीक्षा की बान नहीं। कहते हैं कि बिना बानके चन्दनसे माथा चर्राता है, अब कभी अंतरंगसे बहिरङ्ग परीक्षाकी ओर आया ठोकरें खायीं और उलटे पावँ लौट गया। एक सत्यके प्रकृति और पुरुष यह दो प्रधानरूप हैं। पुरुष एक रस निर्विकार ठहरा और प्रकृति विकारवती बहुरुपिया जिसके अङ्ग तहबतह रहस्योंसे गठित हैं। दार्शनिक

* "ओझा" शब्द "उपाध्याय" का प्राकृत रूप है। संस्कृतका "उपाध्याय" शब्द घिस घिसकर धीरे धीरे सुन्दर मधुर हिन्दीका "ओझा" बन गया है।

"दर्शनियां" साधारणतः उन व्यक्तियों को कहते हैं जिसके सिर भवानी खेलती हों, जिसके ऊपर बड़े बड़े भूत आते हों।

पुरुषकी ओर प्रवृत्त हुआ और वैज्ञानिक प्रकृतिकी ओर। जब कभी दार्शनिकने प्रकृतिकी ओर देखा उसका रूप भिन्न पाया। जब कभी वैज्ञानिकने पुरुषकी ओर निगाह की उसके अनेक रूप देखे। भारतीय छः आस्तिक और छः नास्तिक मिलाकर बारह दर्शनोंके कायल हैं, परन्तु यह भी ढीला-ढाला विभाग है, सुभीतेके अङ्क हैं। चार्वाक, बृहस्पति, कपिल, कणादने प्रकृतिपर ही दृष्टि रखकर अपने विचारोंका विस्तार किया। यद्यपि यह दार्शनिक समझे जाते हैं, यद्यपि इनका उपाय अंतरङ्ग परीक्षा ही थी, तथापि यह बहिरङ्ग परीक्षापर अधिक प्रवृत्त थे। उदाहरणके लिए जल ही लीजिये। कणादका विचार जो कुछ जलके सम्बन्धमें द्रव्यरूपमें था वह इसी साधारण पानीके सम्बन्धका था। उनकी कोरी कल्पना न थी, जो कि आगे जाकर पंचतन्मात्रावादियोंकी हुई। देखिये, गङ्गाधर सूरि काणाद सिद्धांतचन्द्रिकामें क्या कहते हैं—

"शुक्लमेव रूपम्। नच कालिन्दी जलादौ नील रूपोपलंभादयुक्त मिदमिति वाच्यम्। ...तत्र नीलवस्त्र पृतीतेरा श्रयोपाधिकत्वात्। अतएव कालिन्दी जलस्य वियति विक्षेपे सति धवलिमोपलभ्यते।"

पानी सफेद होता है। कह सकते हैं कि ग़लत है, देखो जमुनाजीका जल नीलगूं है। उत्तर यह है कि उसका नीलापन आश्रयके कारण है क्योंकि जमुनाजलको ही ज़रा ऊपर उछालिये देखिये सफेद है या नहीं।*

ज़ाहिर है कि काणादोंकी तबीयत बहिरंग-परीक्षाकी ओर मायल थी, वह अपने सिद्धान्तोंको जांचकी कसौटीपर कसना चाहते थे और भरसक अपनी इच्छा पूरी कर लेते थे, पर उन्होंने कहीं और कोशिश की होती तो उन्हें मालूम होता कि जल नीलगूं ज़रूर है, पर परीक्षाकी रीति न्यारी है, उछालने से रंग का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता।

कणाद आदि दार्शनिकोंके समयमें बहिरंग परीक्षाके साधनोंका निर्म्माण नहीं हुआ था, रीति ही नहीं बनी थी। आजकल वैज्ञानिक परीक्षाओंके राजमार्गसे चलनेवाले भी इस बातका कम अनुभव करते हैं कि कैसे कैसे ऊबड़ खाबड़ प्रदेश साफ़ किये गये हैं, कितनी सकरी गलियां चौड़ी की गई हैं। कितने कांटे कूटे जंगल झाड़ीकी सफाई हुई है। कितने खंदक पाटे गये हैं, कितनी पगडंडियां बन्द कर दी गयी हैं। बड़ी कुटाई पिटाई बड़ी पैमाइशके बाद यह शाह राह खुली है जिसपर आजकलका वैज्ञानिक सरपट नहीं दौड़ रहा है, बल्कि इन दिनों अपने वेगके सामने बिजलीको भी पीछे छोड़ता जाता है।

उस कालमें आज कलका यह सुभीता एक मनराजाको वा कल्पना रानीको प्राप्त था। मनको जवीय कहते ही हैं। इनकी तेज़ीको आजकलका वैज्ञानिक भी नहीं पा सकता। उसे भी यह दो चार हाथ पीछे छोड़ ही जाते हैं। उसे अकसर अनुभवके राजमार्गसे बहकाकर हवामें उड़ा ले जाते हैं। परन्तु वैज्ञानिकको इस धोखेसे बचानेको इसी मार्गके और बटोही बराबर उसकी सहायता करते रहते हैं। इस राजमार्गपर इस मनरूपी बटपार का बहुत डर नहीं है।

दार्शनिक युगमें इस राजमार्गका पता ही न था, कुछ कांटे कूटे झाड़ी जंगल खंदक आदि कठिनाइयों से घिरी पगडंडियां ज़रूर थीं, परन्तु मनके विमानपर कल्पनाके आकाशमें जो स्वच्छन्द विचरण कर सकते थे, इन पगडंडियोंकी क्या परवाह करते। यह पगडंडियां कणाद, बृहस्पति, चार्वाक, कपिल आदिके सामने ही मिट चली थीं। गौतम, जैमिनि, पतंजलि आदिने जो शुद्ध अन्तरंग परीक्षाके पैरो थे, इनकी ओर ध्यान ही न दिया, बल्कि कणादकी बहिरंग-परीक्षाकी रीतिको जबर्दस्ती अन्तरंगके सांचेमें ढाला और पदार्थोंका विभाग

* शास्त्रिवृन्द क्षमा करें। पाठकोंके सुबीतेके लिए भावानुवाद पवित्र दार्शनिक भाषामें नहीं किया गया।

और उनके भौतिक अध्ययनको जिनमें सात सीढ़ियां क़ायम की गयी थीं, तर्क की पराकाष्ठापर चढ़नेके लिए विचारकी सोलह डंडेकी *सीढ़ी बनायी; जिनमें युक्तिसे इन सातोंको शामिल कर लिया। प्राचीन विज्ञानवाले कीटका दर्शनके भृंगी ने गा बजाकर अपने रूपमें परिणत कर लिया।

आरंभमें ही दार्शनिकने देखा कि पृथ्वी मात्रमें कुछ नमी कुछ गरमी कुछ हवा मिली जुली रहती ही है, उसी तरह पानीमें खौलानेपर भी कुछ न कुछ तहमें बैठता ही है, पानी गरमीको भी धारण करता ही है, [बरफको आंच देनेपर भी ठंढा पानी बना तो गरमी उसमें जरूर समायी] पानीमें वायुके बुद्बुद् होते ही हैं, बल्कि हवा अच्छी तरह पानीमें घुली मिली होती है। इन बातोंको देखकर दार्शनिकको कहना पड़ा कि जो पंचमहाभूत हमको प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं उनमेंसे प्रत्येकमें वस्तुतः शेष चारों थोड़ा बहुत मिले हुए हैं। जैसे पृथ्वी तत्वमें पार्थिव अंश मुख्य है और शेष तत्वमें गौण इन्हीं विचारोंसे पंच तन्मात्राओंकी कल्पना हो गयी। सच्ची बात यह है कि यद्यपि दार्शनिकोंने या यों कहिये कि आदि वैज्ञानिकोंने प्रकृतिके ठीक रहस्यपर अँगुली रखी, और उसकी पाँच अवस्थाओंको ही मुख्य भाग माने और प्रत्येक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें विकृति भी मानी, जिसके लिए श्रुति† साक्षी है, परन्तु सत्यका परदा खुलते खुलते रुक गया, कल्पनादेवी बाज़ी मार ले गयीं, रहस्य परसे उँगली हट गयी। काम अधूरा रह गया। पंचतन्मात्राकी कल्पनावाले आगे बढ़े और खयालकी इमारत खड़ी कर दी। पांचों अवस्थाओंको पांच वस्तुएँ मानीं। जो विकार था प्रकार हो गया। परन्तु दशाको वस्तु मानना इतनी बड़ी भूल है कि इसका बहुत दिनोंतक स्थिर रहना संभव न था। इसीलिए यह बहुत जल्द स्पष्ट हो गया कि इन "वस्तुओं" की स्थिति* वास्तविक जगत्में तो है ही नहीं; क्योंकि इनके लक्षण जगत्में स्थायी नहीं दीखते। उधर तर्कने बड़ी सहायता की। उसने रंग भूमिमें आकर बड़े ज़ोरोंके साथ ताल ठोंक कर ललकारा, कि "बतावे कोई, कि वस्तुकी वास्तविक स्थिति भी कुछ है। वह तो गुणोंका समूहमात्र है। रंगरूप कोमलता गन्ध यही सब बातें "विशेष" को मिला कर ही तो कमलकी कल्पना होती है। यह गुण नहों, तो कमल कहां है? हमारी इंद्रियां इन्हीं गुणोंका अनुभव करके इशारा करती हैं कि कमल है। कमल की तो कल्पना हमारे भीतर है; इसीलिए वस्तु मात्र कल्पना ठहरी।" सत्य बचन महाराज, बिलकुल ठीक है, बस इसीलिए पंचमहाभूत भी कल्पनामें ही स्थित हो गये। उनकी वस्तुस्थिति कुछ नहीं! मैं हँसता नहीं हूँ, बात "बावन तोले पाव रत्ती" ठीक है वैज्ञानिक भी आपकी दलीलके कायल हैं, वह भी अपने एलिमेंटों [या अगर आपकी मरज़ी हो तो एलिमेंट्स सही गो हिन्दीमें अंग्रेज़ी तरकीब ज़रा बेढब सी है] या मूल पदार्थोंके शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी ही परीक्षा करते हैं, और इस परखके पीछे "गरम करते हैं, पिघलाते हैं, गलाते हैं, तथा विश्लेषण करते हैं।" इन पीछेवाली क्रियाओंसे भी उन्हें क्या मालूम होता है?—वही गुण। वैज्ञानिक भी पदार्थको गुणोंका समूह ही मानता है, इसपर दार्शनिक चौंके नहीं। सौ सयाने एक मत। परन्तु वह वस्तुस्थितिको कोरी कल्पना नहीं कहता। वह वस्तुसत्ताको काल्पनिक पदार्थ नहीं मानता, "हां कुछ काल्पनिक पदार्थोंकी सत्ता वह जरूर मानता है क्योंकि मानने को मजबूर है। पाठक न भूलें कि "काल्पनिक पदार्थोंकी सत्ताको मानना" एक बात है और "पदार्थोंकी सत्ताको काल्पनिक मानना" दूसरी बात है। जैसे शुद्ध पृथिवी, शुद्ध जल, शुद्ध वायु, आदि पदार्थ दार्शनिकोंको कहीं

* भ्रम यह था कि "दशा" को वस्तु माना। परन्तु वस्तुका था अभाव; इसलिए "वस्तुत्व" कल्पनामें ही रहगया, दशामें नित्यता कहां। अतः नित्यता काल्पनिक रह गयी।

† आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः अद्भ्यां पृथिव्यः। इत्यादि

वस्तुस्थितिमें नहीं मिले। वैसे ही "पूर्ण ठोस (Perfect Solid) पूर्ण द्रव (Perfect Liquid) और पूर्ण वायव्य (Perfect Gas) वैज्ञानिकको भी नहीं मिले हैं, समझका फेर है, कहने के बदले हुए ढंग हैं—जिसे दार्शनिक शुद्ध पृथिवी कहता था उसे ही वैज्ञानिक पूर्ण ठोस वा दृढ (Perfect Solid) कहता है। अन्तर यह है कि वैज्ञानिक इसे उपादान वा मूलपदार्थ नहीं कहता वरन् इसे अवस्था वा दशा कहता है। समदर्शियोंने इसी भूलको सुधार कर दोनों पद्धतियोंमें सामंजस्यका मार्ग खोलदिया है इस भ्रमके निराकरणके लिए वह साधुवादके पात्र हैं।

पांचों भूतोंकी कथा छेड़नेके लिए हमने भूमिका लिखनेको लेखनी उठायी, पर बात बहुत बढ़ गयी। मीन १९७६ के विज्ञानमें हमारे परम मित्र शास्त्रिवर पं० चन्द्रशेखर ओझा महोदयने पांचों भूतोंको अपनी सिद्धिके बलसे विज्ञानके सिर बुलाया, उस लेखको पढ़कर फकीर अब्दुल्ला को फिक्र हुई कि किसी दुआ तावीज़से इस बच्चेके सरसे यह बला दूर होनी चाहिए, इसीलिए आज उसे कलमेकी फूँक मारनेकी जरूरत हुई। यों तो विज्ञानके लेखोंमें साधारणतः छोटी मोटी भूलें होती ही रहती हैं, परन्तु शास्त्रीजी जैसे विद्वानों की बातोंसे विज्ञानके मार्गमें भूलोंके कुश-कंटक आना महत्वकी बाधा है। उनका परिष्कार करना लेखक जैसे खादिम फुक़राका फर्ज़ मुक़द्दम है।

हमने यहां तक संक्षेपसे वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारोंकी रीतियां और उनके विकासका दिग्दर्शन किया है। हमारी वैज्ञानिक और दार्शनिक पूंजी थोड़ी है, इतनी नहीं कि शास्त्रीजी जैसे विद्याधन सम्पन्नके मद मुकाबिल खड़े हो सकें। हमने जो कुछ लिख पाया है उन्हीं जैसे विद्वानोंके संसर्गसे प्राप्त हुआ है। परन्तु यह उभय पक्षके विद्वानोंकी समदर्शिताका निचोड़ है। शास्त्रीजीसे विनीत प्रार्थना है कि पुनः विचार करें।

जो कुछ महत्वकी भूलें हुई हैं अब हम उन्हें खंडन नहीं, मंडन रूपसे देनेकी चेष्टा करेंगे। जहां कहीं शास्त्रीजीके वाक्य उद्धृत हैं, वहां उनके वाक्योंकी अगाड़ी पिछाड़ी उलटे कामोंसे बन्द कर दी गयी है। उन्हीं वाक्योंके साथ साथ अपने वाक्य लगाकर उनके कथनों को सुधारनेकी ढिठाई की गयी है। मित्र हैं, रूठ कर मुझे दंड देनेको खड़े होंगे, तो हम दोनों "बौद्ध" हैं, सह लेंगे, निबट लेंगे, विज्ञानके पाठक खातिर जमा रखें।

सिरनामेसे ही, साथ नाम अल्लाहके, शुरू करता हूँ। "क्या एलिमेंट्स और पञ्चभूत एक हैं" इसी प्रश्नके उत्तरमें सारा लेख लिखा गया है। शास्त्रीजीको यह भ्रम है कि "इस समय पञ्चभूत और एलिमेंट्स इन दोनोंको एक करनेका बड़ा प्रयत्न किया जा रहा है।" आयँ! अब्दुल्लाह सोलह बरससे विज्ञानकी ही सेवा करता रहा है; पर उसे आज तक पता न था कि समदर्शी वैज्ञानिक ऐसे ऊटपटांग प्रयत्नमें लगे हुए हैं? महाराज, ऐसा अद्भुत उद्योग किस संस्थामें हो रहा है? कौन महापुरुष इस नयी ईजादका कीर्त्तिधन बटोरनेवाले हैं? अब्दुल्लाह और उसके जाने हुए जितने वैज्ञानिक हैं कोई भी इस महत्प्रयत्नकी खबर नहीं रखता! वह तो आज तक यही समझे हुए थे कि "एलिमेंट्स" और पंचमहाभूत एक नहीं हैं। सौ बरस पहले यूरोपके दक़ियानूसी बूढ़े ऐसा अवश्य समझते थे, जिनके खंडनमें अनेक पुराने वैज्ञानिकों को पुस्तकोंके सफ़हे काले करने पड़े थे। क्या वह फिर इस महासंग्रामवाली क़यामतके बाद क़ब्रसे निकल आये? ओझाजी महाराज, इस म्लेच्छको विश्वास नहीं होता!

सारा लेख इसी भ्रमकी नींवपर खड़ा है। नम्र निवेदन है कि "यहां दलदली ज़मीन भी नहीं है, हवा है, यहां इमारत खड़ी नहीं रह सकती।" अगर इसकी नींवपर एक खयाली इमारत खड़ी न हो गयी होती, तो शायद आगे हमें कुछ लिखनेकी ज़रूरत भी न थी। इस भ्रमका मुख्य कारण है

परायी भाषा और पराये विचारोंका भद्दा उलथा। लोगोंने अंग्रेज़ी दानीकी रवमें "एलिमेंट" का उलथा "तत्त्व" और "भूत" कर दिया। यह न सोचा कि अंग्रेजीमें इन शब्दोंसे क्या क्या अर्थ निकलते हैं। "भारतीयोंने जिन उपायोंसे अपने सिद्धान्त निश्चित किये हैं, पाश्चात्य भी उन्हीं उपायोंसे अपने सिद्धान्तोंको निश्चित करते हैं, इस बातका कोई काफ़ी सबूत नहीं है।" बल्कि दोनोंके उपायोंमें अन्तर है, इस बातके सबूत काफ़ीसे ज़्यादा हैं। ध्येय यदि एक ही होतो ध्येय तक पहुँचनेके मार्ग भिन्न भिन्न हो सकते हैं ऐसा होने पर भी यात्री लोग अन्तमें मिल सकते हैं। इस मेल का प्रयत्न साध्य है श्रेय है—परन्तु निरर्थक भी है, क्योंकि वह मिलेंगे ही, फिर ऐसे निरर्थक प्रयत्नसे क्या लाभ ?"

"एलिमेंट्स" कहते हैं मूल पदार्थोंको। भूतको "एलिमेंट्स" कहना अशुद्ध है। पांचों भूतों की कल्पना हमारे यहां मूल पदार्थोंके अर्थमें नहीं है वरन् प्रकृतिकी यह पांच दशाएँ हैं। मूल पदार्थ यौगिकोंके उपादान हैं। मकरध्वज एक यौगिक पदार्थ है, इसके उपादान वा मूल पदार्थ पारा और गंधक हैं। चाप और तापके भेदसे पदार्थ मात्र चाहे मूल हों चाहे यौगिक, घन, द्रव और वायव्य तीनों अवस्थाओंमें पाये जा सकते हैं। घन गंधकके वायुका हो जाने पर भी गन्धकत्व नष्ट नहीं होता। भारतीय दर्शनोंके अनुसार प्रकृति की एक दशा का नाम पृथ्वी है, उसकी स्थिति द्रव वा वायव्य दशामें नहीं है। रही लक्षणोंकी बात सो सुनिये।

ज्ञानकी पांचों इन्द्रियोंके द्वाराही हमें अनुभव होता है। इस अनुभवके रूप पांच हैं—शब्द,स्पर्श, रूप, रस और गंध। पाँच तत्त्व भी समझे गये। (चार्वाक चारही मानते थे, क्योंकि उस समयके वह कट्टर प्रत्यक्षवादी थे। आकाश उनके लिए प्रत्यक्ष न था।) जब ज्ञानके विषय पांच हुए तो उन्हें क्रमसे एक एक तत्वसे सम्बन्ध कराना आसान हुआ। प्रकाश, तेज, अग्नि, सूर्य्य और आंखोंका रूपसे सम्बन्ध प्रत्यक्ष ही था। शब्द वायुके न हिलने डोलने परभी न जाने, कैसे पहुँच जाता था। आकाशका इसका सहारा माना जाना अवश्यम्भावी था। * वायु अरूप पाया गया। रंगीन वायु किसीने देखी न थी। उसका अनुभव तभी होता था जब बहती थी और त्वचामें लगती थी। इसीसे उसका गुण स्पर्श हुआ। जिह्वा सदा लालासे नम रहती है। जितने स्वाद हैं द्रवरूपमें ही जिह्वासे संयुक्त हुए, इससे जलका गुण रस हुआ। गंधभी पार्थिव पदार्थोंमें ही पायी गयी। शुद्ध वायु गंधहीन थी ही। इसीसे गंधवती पृथ्वी हुई। अनुभवके साथ अधिक विचार हुआ तो यह अधिक उपयुक्त जान पड़ा कि पृथ्वीके साथ शब्द को छोड़) शेष चार गुण, जलमें तीन गुण, तेजमें दो, वायुमें एक और आकाशमें अकेला शब्द इन्हें मानना पड़ा।† जब इन विचारोंका विस्तार हुआ, तर्कने दूरतक पहुँचाया, साधर्म्य वैधर्म्यके झगड़े बढ़े। कणादने सम्पूर्ण सत्ताके अनुशीलनके लिए अभावको मिलाकर सात पदार्थ माने। उनमें द्रव्यगुण कर्म्म आदिके विभाग जो कणादने किये वही प्रायः थोड़े थोड़े मतभेदके साथ सभी आस्तिक दार्शनिकोंने माने।

कणादने द्रव्योंमेंसे पृथिवी, जल, अग्नि, और वायुके नित्यानित्य दो रूप मानकर नित्यरूप परमाणुको ही माना। इनके मतसे पार्थिव परमाणु

* रूपवान् वायु न देखकर भी और युक्तिसे वायुका नानात्व कणादने भी माना है। "वायोर्वायुसंमूर्च्छनं नानात्व लिंगम्।" दोनों ओरसे वायु आती है धक्का लगता है, अतः वायु अनेक है। इस विचारमें वस्तुस्थितिको दूसरी ही दृष्टिसे देखा गया है।

† रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी। रूपरस स्पर्शवत्य आपोद्रवाः स्निग्धाः। तेजोरूप स्पर्शवत्। स्पर्शवान् वायुः। तत्राकाशे न विद्यन्ते। (कणाद)

जलीय परमाणु नहीं बन सकता। इनके परमाणु कोरी कल्पनापर अवलम्बित थे—ठीक उसी तरह जैसे डाल्टनके। अन्तर इतनाही हुआ कि फरासीसी लाभेश्वरके काँटेके सहारे रासायनिक विश्लेषणोंसे डाल्टनके सिद्धान्तोंने गणितका रूप ग्रहण किया। परमाणु देखे तो नहीं गये, परन्तु तोल नाप अंकके शिकंजेमें कसकर कल्पनामें बड़े सहायक हुए। कणादको यह सुभीता न था। हम कणादकी बुद्धि, उनकी तपस्या, उनके विज्ञानकी डाल्टनसे बहुत ऊँची श्रेणी समझते हैं, क्योंकि वही डाल्टनकी कल्पनाके वास्तविक मूल थे।

कणादने द्व्यणुक त्रसरेणु आदिकी कल्पना जो कर रखी थी, उसीके सहारे डाल्टनके भी द्व्यणुक त्रसरेणु आदि चले; परन्तु अभिगद्रादि वैज्ञानिकोंने अणु, परमाणु आदिके अन्तर और भी स्पष्ट दिखाये। द्व्यणुक आदि बने रहते भी द्विपरमाणुक त्रिपरमाणुक आदि सिद्ध हुए, कोरी कल्पनाकी बात नहीं रही। हाँ, लाभेश्वरने पुराने पाश्चात्य चार तत्त्वोंके माननेवाले चार्वाकोंके चेले यवनोंके सिद्धान्तोंका खंडन करते हुए सिद्ध किया कि अग्नि कोई मूल पदार्थ वा उपादान नहीं है वरन् विकारकी एक दशा है। निदान पच्छुत्तर धरसकी बात है कि वैज्ञानिक मौलिक और यौगिक पदार्थों का विभाग और घन, द्रव, वायव्य यह तीन दशाएं निश्चित रूपसे मानने लगे। पदार्थ मात्रकी यह तीन दशाएं मानीं, परन्तु किसी पदार्थके अणुओंके "संयोग विभाग *" के ही तारतम्यसे उस पदार्थमें घनत्वसे द्रवत्व, द्रवत्वसे वायुत्वका विकार माना क्योंकि यह सभी बातें असंख्य परीक्षाओंसे सिद्ध हुईं।

भौतिक विज्ञानियोंमें यंगने प्रभाको आकाशके तरंगोंका फल माना। यंगसे पूर्व नयतनु प्रभाके परमाणु कणादकी ही तरहसे मानता था। और आज प्लांक और ऐन्स्टैन दो महावैज्ञानिक कणादके ही अनुकूल तेजके परमाणु† मानकर अपने सिद्धान्तोंको स्थिर कर रहे हैं। हालके एक सूर्य्य-ग्रहणने इन वैज्ञानिकोंके पक्षमें गवाही दी है। विज्ञान सततवर्धमानशास्त्र है, दलदली ज़मीन जरूर है पर वही समय पाकर कड़ी होती जाती है और फोर्टविलियमकी सी इमारतें भी इसपर खड़ी हो सकती हैं। देखिये, प्रयागका पेजट ब्रिज (जिसे ब्रजके गिरिराजजीकी "पैकम्माकी" इज्जत मिल रही है) बालूकी ही भीतपर खड़ा है। यह अनोखी बात नहीं है। शास्त्रीजी स्वयं जानते हैं कि अपने ही यहाँ प्राचीनोंसे नव्योंसे कितने मतभेद हैं और नव्योंने न्यायमें कितनी वृद्धि की—क्या दलदली ज़मीन समझ कर कोई "थियोरी" छोड़ देता है?

सर जे. जे. टामसनने यह सिद्ध किया है कि पदार्थमात्र विद्युत् है, वा यों कहिये कि विद्युत्कणोंसे ही परमाणुओंकी रचना हुई है। रेडियम आदि विकीरक मौलिकोंने विज्ञानकी प्रयोगशालाओंमें खड़े होकर इस बातकी गवाही दी। यह तेजोमय हैं वा शक्तिके पुंजमात्र हैं अर्थात् शक्तिकी मात्रा विशेषके घनीभवन हैं। अर्थात् शक्ति ही पदार्थका रूप ग्रहण करती है। शक्ति वस्तु बनती है, वस्तुका उपादान है, वस्तुका मूलरूप है। इन धारणाओंमें अभी परिवर्त्तन हो सकते हैं और होंगे, परन्तु कोरीकल्पनाके आधारपर कभी नहीं। प्रयोगकी कसौटी पर कसे बिना इस बाजारमें सौदा नहीं होता। यदि केवल कल्पनापर कूदनेवाले बृहस्पतिके समयसे लेकर आजतक हवामें महल खड़ा करनेका अधिकार रखते हैं तो क्या हम दलदली ज़मीनपर भी भीत खड़ी करनेके अधिकारी नहीं हैं? यह कुछ राजनीतिका मैदान तो है नहीं कि आत्मनिर्णय अपने लिए रखिये और दूसरोंके अधिकार भी छीन लीजिए।

* "संयोग विभाग" यहां दार्शनिक अर्थमें आये हैं। आधुनिक रासायनिक "संयोग-वियोग" इनसे भिन्न हैं।

† इसे "कांटम थियोरी" कहते हैं।

अब्दुल्लाहकी रायमें कणाद आजकलकी शुद्ध वैज्ञानिक शैलीके विचारवाले महात्मा थे। अपनेसे पहलेके "वायोरग्निः अग्नेरापः" आदि अवस्था परिवर्तनके श्रुति वाक्योंको स्वयं प्रत्यक्ष न कर सकनेके कारण अवस्थाभेदपर ज़ोर न दे सके। आजकलके कट्टर वैज्ञानिक भी "अग्नेः वायुः वायोरापः अद्भ्यां पृथिव्यः" तक ही माननेको तैयार हैं। हाँ, सर जे० जे० टामसन प्रभृति दूरदर्शी विज्ञानाचार्योंने "आकाशद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यां पृथिव्यः"—की पूरी साक्षी दी है। "थियोरी" कल्पनाको कहते हैं जो अभी कसौटीपर कसी जा रही है। "ला" या नियम या धर्म्म उसी कल्पनाका नाम तब पड़ता है जब सब तरहसे सिद्धान्तकी सत्यता उसका तथ्य उसका खरापन सिद्ध होजाता है। शक-शुबहेकी गुंजाइश नहीं रह जाती। "थियोरी" ही पक्का सिद्धान्त बन जाती है। इसी लिये "थियोरी" का भी कोई निरादर नहीं करता। टामसनकी "थियोरी" कोई साधारण "थियोरी" भी नहीं है।

वायुके नानात्वको माननेके लिये गत डेढ़ सौ बरसोंमें इतनी सामग्री मिली कि यह बात सिद्ध हो गयी कि वायव्य एक दशा है जिसमें कोई भी वस्तु पायी जा सकती है। जब रंगीन, गन्धयुक्त हवाएं पायी गयीं, वायुके लक्षणोंमें केवल स्पर्शका ही रहना ठीक न रहा। यहाँ रङ्ग और गंध पृथ्वीके आश्रयसे न था। कुछ काल पीछे जब प्रायः सभी वायुओंको चाप और ताप बढ़ा घटाकर द्रव्य और द्रव्यसे घन कर लिया गया तब यह बात पक्की हो गयी कि घन द्रव्य वायव्य यह तीनों अवस्थाएं चाप और तापपर निर्भर हैं। जब गन्धमय द्रवोंकी अधिक संख्या जानी गयी, शुद्ध वायुमें परिणत होनेवाले गन्धमय द्रव पाये गये, यह निश्चय हो गया कि द्रवमें गन्ध पृथ्वीके आश्रयसे नहीं है। इसीलिए द्रवको गन्धमयी भी मानना पड़ा। यदि हम दार्शनिक भाषामें इसी बातको कहें तो यों कहसकते हैं कि जलमें द्रव्यत्व, स्नेह, रूप, स्पर्श यह सामान्य हैं और रस और गन्ध विशेष। जलमें नानात्व जिस दृष्टिसे प्रतिपादित करते थे वह सामान्य गुणोंके आश्रय था। अब जलमें नानात्व विशेष गुणोंसे देखते हैं। यह साद्यन्त शुद्ध "वैशेषिक" रीति है। शुद्ध "वैज्ञानिक" रीति है। इसीलिए समदर्शीपक्ष यदि कहे कि आपका "जल" द्रव्यका ही नाम है तो क्या बेजा है? वायुमें तरलत्व, स्पर्श, निराकारत्वको सामान्य और गन्ध और वर्णको विशेष कहें तो क्या हर्ज है? वायव्य दशामें भी नाना वस्तुएं हैं।

द्रव्य अवस्थामें अनेक वस्तुएं हैं और पार्थिवरूपमें असंख्य। वायुत्व, द्रवत्व, घनत्व सामान्य दशाएं हैं और उनमें प्रत्येक वस्तु अपने विशेष गुणोंसे पहचानी जाती है। कणादका उद्देश्य यही था, रीति यही थी, परन्तु परिस्थितिमें परिवर्त्तन होनेसे हम उनकी ही रीतिपर पदार्थोंका अनुशीलन करें तो भी वैज्ञानिक रीतिसे विरोध नहीं पड़ता वरन् दोनों रीतियोंकी एकता सिद्ध होती है।

विज्ञानके साथ साथ यद्यपि तर्ककी पढ़ाई इन दिनों यहाँ नहीं होती तथापि विज्ञानका काम तर्कके विना नहीं चल सकता। यूरोपमें यवनोंके प्रभावसे बहुत काल तक तर्कमें (Dadetion) "आगम"की रीतिका प्रचार था जिससे दार्शनिक पक्षकी प्रबलता थी और विज्ञानका पौधा पनपने नहीं पाता था। बेकनने अगुआ होकर (Indaction) "निगम" शैलीका प्रचार किया। विज्ञानको इससे सहायता मिली। भारतवर्षके तर्कशास्त्रमें दोनों शैलियोंका संयोग है। यहाँ वस्तुतः दर्शन और विज्ञान कभी अलग हुए ही नहीं। वेदान्त दर्शनोंका दर्शन और विज्ञानोंका विज्ञान है। अध्यात्म विद्या दोनोंका एकीकरण है। यह हमारी अपनी चीज़ है। हमारे यहाँ सभी दर्शनोंका ध्येय परम श्रेयस् है। विज्ञानका ध्येय परम सत्य है। सत्य और श्रेयस् यह यदि दो नहीं हो सकते, यदि लक्ष्य एक ही है, तो दोनोंका मिलना अवश्यम्भावी है। जो "यत्न" कर रहे हैं वह बड़े उतावले हैं, और जो इस प्रयत्नको

असंभवको संभव करनेकी चेष्टा समझते हैं, उन्होंने दूर तक निगाह नहीं की है।

शास्त्रीजी कहते हैं "वैज्ञानिक पदार्थोंके गुणोंका विश्लेषण करता है और दार्शनिक गुणोंका प्रत्यक्ष करता है"। नहीं महाराज, वैज्ञानिक गुणोंका विश्लेषण नहीं करता, पदार्थोंका ही विश्लेषण करता है और उपादानोंके गुणोंका प्रत्यक्षानुभव करता है, और उपादानोंके गुणोंमेंसे थोड़ेका ही अनुभव करता है, सोभी "सूत्रों" और "आप्त वाक्य" की ऐनक लगाकर। "इस पदार्थके उपादान कौन तत्त्व हैं, इसका निर्णय करना दार्शनिकके लिए कठिन है।" इसीलिए कि वह बातोंकी तहतक जानेकी कोशिश नहीं करता। या तो उसे प्रत्यक्ष परीक्षाओंसे आलस्य है, या वह रीति ही नहीं जानता, अथवा उसका उद्देश्य यह नहीं है कि वह डाल डाल और पातपात छाने; वह वृक्षकी शाखाओं पल्लवोंपर दृष्टि फेरते हुए, बिना उसके विस्तारके जाने ही, मूलतक पहुँचनेकी फिक्रमें है। सारांश यह कि वह रासायनिक नहीं है, कुछ अंशतक भौतिक विज्ञानी कहा जा सकता है।

"आकाश शब्दाश्रय है, ईथर प्रकाशाश्रय है, इस कारण गुण भिन्न होनेसे पदार्थ भिन्न हुए।" आकाशको शब्दाश्रय माननेके लिए क्या कोई प्रमाण, "आप्तवाक्य" के सिवा भी है? आश्रय शब्दका प्रयोग अब दूसरे अर्थमें होना चाहिए। शब्दका आश्रय है कानवाली इंद्रिय। प्रकाशका आश्रय है आंखवाली इंद्रिय। कानके पर्देपर स्फुरणसे जो अनुभव होता है, उसे शब्द कहते हैं। यह स्फुरण हड्डियोंका हो, रक्तकाहो, वायुका हो, जलका हो, काष्ठ-पाषाण धातु आदि किसीका भी हो सकता है। हां, वायु मंडलसे हम घिरे हैं इसीलिए प्रायः सभी स्फुरण वायुके द्वारा कानमें आते हैं। आकाशमें भी स्फुरण मानते हैं। आकाशके स्फुरणोंका अनुभव कानको नहीं होता, आंखको होता है।* यह दार्शनिकोंकी अटकलपच्चू कल्पना नहीं है, वरन् अनेक परीक्षाओंका निष्कर्ष है। इसमें भी वैज्ञानिकोंमें यह मतभेद है कि एक पक्ष प्रभाको परमाणुरूपा और दूसरा पक्ष आकाशतरंगोद्भूता मानता है। परमाणुवादियोंको प्रभाके लिए आकाशकी ज़रूरत नहीं पड़ती। वह आकाशके लिए कणादके स्वरमें "न आकाशे न विद्यन्ते" ही कहते हैं * वैज्ञानिक "ईथर" को ठीक कणादके "आकाश" सा ही मानता है। वह भी ईथरको "विभु" वा ओतप्रोतभावसे सर्वत्र व्यापक कहता है। उसके परमाणु नहीं मानता।

"वैज्ञानिक वायु समस्त भूमंडलमें फैला हुआ है, उसीसे मनुष्योंकी श्वास प्रश्वासकी क्रिया सम्पन्न होती है। उस वायुमें स्पर्श, गन्ध और शब्द यह तीन गुण वर्त्तमान हैं। पंचभूतान्तर्गत वायुके गुण शब्द स्पर्श हैं।" यहां भी भ्रममें पड़ गये। वायुमंडलवाली हवामें गंध नहीं है। गंधमय पदार्थोंके आश्रयसे और दार्शनिकोंके शब्दोंमें गन्धवती पृथ्वीके आश्रयसे, उसमें गंध है। "तीन" गुण आपको किसी विज्ञान लव दुर्विदग्धने बता दिया होगा। "वायु के उपादानभूत पदार्थोंमें वैज्ञानिक "गंध की" सत्ता स्वीकार करते हैं। कहिये काफ़ी भेद है कि नहीं?" जी नहीं, बिल्कुल नहीं। आपकी प्रतिज्ञा तो कन्नेसे कटी हुई है। पहले तो जिस वायुकी चर्चा आप करते हैं वह मिश्रण है; यौगिक नहीं। रासायनिक उपादानकी खोज यौगिकमें करते हैं। मौलिकों वा उनके मिश्रण

* यह बात नोट करनेके काबिल है कि कणाद "शब्द" की गुणों में गिनती तक नहीं करते। व्याख्याकार ही "च" के सहारे सत्रहसे चौबीसगुण गिना देते हैं। और शब्दको भी शामिल करते हैं। इसमें सबसे पुराने प्रमाण प्रशस्तपादके ही हैं।

* ताप के रूप में त्वचा द्वारा और पदार्थों के रासायनिक परिवर्त्तन द्वारा (अदृश्य प्रकाशका) भी अनुभव होता है।—सं०

में नहीं। इस मिश्रणमें, इस मिश्रणके "उपादानों" में भी, गंधकी कहीं गंध नहीं है। किसी गंदी जगहकी हवापर ही किसी विज्ञानलवदुर्विग्धने यह हवा बांधी होगी। "मूलं नास्ति कुतः शाखा", तर्कका पूर्वावयव नष्ट हो गया तो उत्तर पक्ष कहां रहा? भेदके काफी नाकाफी होनेका प्रश्न ही क्या है, जब भेदका अभाव हो गया

वैज्ञानिकोंके वायु तत्त्वसे तो अभेद हो गया। देखिये, अपने ही घर आयुर्वेद त्रिदोषमें वायुको भी एक दोष मानता है। प्राणादि पंच वायुओंकी क्रिया दर्शन और आयुर्वेद दोनों ही वर्णन करते हैं। बाई से पेट भी फूलता है। क्या इन सबके वायुके लक्षणोंमें भेद नहीं है?

"पंचभूत वाला वायु सब वायव्य पदार्थोंका बोधन करता है" ऐसा कहना बिलकुल ठीक है। क्योंकि पंचभूतवाले सिद्धान्तोंके प्रतिपादक "गंधवान्" वायुसे अभिज्ञ नहीं थे, इसीलिए वायुके गुणोंमें गन्धकी अव्याप्ति हुई। रंगीन हवा भी नहीं देखी थी। अतः वर्णकी भी अव्याप्ति हुई है। पच्चीस बरस पहलेके लोग "वायुयान" शब्दका लक्षण यदि गुब्बारे मात्रपर करते तो आज के एरोप्लेन के लिए क्या "वायुयान" शब्द प्रयुक्त करनेमें उन्हें रुकावट होती? अज्ञानके कारण यदि लक्ष्यके सभी लक्षण पहले न कहे गये हों तो क्या सम्यक् ज्ञान हो जानेपर लक्ष्यको हो उन अपूर्ण लक्षणोंके अनुकूल आप बदल डालेंगे? दार्शनिकोंने कई बातोंमें ऐसा ही कर डाला है, परन्तु यह अज्ञान को स्थायी कर देनेकी एक रीति है।

"शब्द, स्पर्श, रूप, तथा रस यह गुण जलके हैं, पर वैज्ञानिक समाजमें इस गुणवाले किसी तरल पदार्थ का पता नहीं मिलता।" इसमें भी समझ का फेर है। ज़रूर पता है, सभी वैज्ञानिक, और अवैज्ञानिक भी, इस पदार्थको पानी या उसके अन्य नामों से पुकारते हैं। विशुद्ध स्रुत जल किसी दार्शनिक ने चखा न था, इसलिए उसे विशुद्ध जल की रसहीनताका पता न था। शेष "शब्द, स्पर्श, रूप" तो विशुद्ध स्रुतजलमें भी हैं।

"पंचभूतान्तर्गत पृथिवीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह गुण हैं। इससे किसी कठिन पदार्थका बोधन नहीं होता।" बस हद हो गयी। क्या सभी पार्थिव पदार्थोंमें, दार्शनिकोंके अनुसार ही सही, यह पाँचों गुण मौजूद हैं? वैज्ञानिकोंके अनुसार अवश्य हैं। बात यह है कि जब वैज्ञानिक घ्राणमात्र का ठेका लेता है तब उसे सभी प्राणियोंके घ्राणपर विचार करना पड़ता है। इसीलिए वह किसी परमाणवाले कठिन पदार्थ को "नितान्त" गन्धहीन नहीं पाता। "रस" का भी यही हाल है। स्पर्श और शब्द तो इतने प्रत्यक्ष हैं कि कुछ कहना बाहुल्य है।

"पंचभूतमें किन पांच पदार्थोंकी गणना है, उनका परिचय हम लोगोंको नहीं है।" यह बड़े खेदकी बात है। परन्तु अब्दुल्लाहकी धारणा है कि हम लोग शब्दों के टेढ़े मेढ़े प्रयोगों और तर्ककी प्रत्न और नव्य प्रणालियों और उलथा की उलटपलटमें उलझकर घबरा गये हैं। शब्दोंके उलझनमें पड़कर वस्तुस्थितिका तिरस्कार करना हमारी आदत हो गयी है। पुराने विद्वानों और पूज्य ऋषियोंका उचित आदर न करके हमलोग उन्हें सर्वज्ञ समझते हैं। साथ ही "हमलोगोंके" सिवा पाश्चात्य विज्ञान दुर्विदग्ध भी पुराने पूज्योंका उचित आदर करना छोड़ उन्हें, पाश्चात्योंका अनुकरण करके, निरादर और अवहेलाका पात्र समझते हैं और प्राच्यको सर्वथा तुच्छ और पाश्चात्यको सर्वथा पूज्य मानते हैं। दोनोंही "अतिक्रमण" कर रहे हैं। दोनों ही भूले हैं। मार्ग कहीं बीचमें है। समदर्शी उसे ही दिखाता है।

उपादानवाले प्रश्नमें उभयपक्ष भूल करते हैं, एक दूसरेको समझ नहीं रहे हैं। पंचभूत उपादान नहीं हैं। यह पदार्थोंकी अवस्थाका नाम है। जलके उपादान उज्जन और ओषजन वायु हैं। इन वायुओंके संयोगसे जल बनता है, वियोगसे जल नहीं

रह जाता। जल और उसके उपादान दोनों ही, पृथ्वीकी तरह घन, जलकी तरह द्रव और वायुकी तरह वायव्य अवस्थामें रह सकते हैं। कोई समय था कि पृथ्वीपर सभी पदार्थ वायव्य अवस्थामें थे। तब भी धरती थी ही। अब तीनों अवस्थाओंमें हैं तब भी है। इस धरतीको ही पंचभौतिक पृथ्वी कहना दार्शनिकोंका इष्ट न था। उनका इष्ट था दृढत्व, परन्तु उसका लक्षण ठीक न कर सके। यही कमजोरी थी।

हां, "उपादान" शब्दको एक और अर्थमें प्रयुक्त करते थे और अब वैज्ञानिक भी करने लगे हैं। वह है एक अवस्थाको दूसरी अवस्थाका समवायि-कारण मानना। गीताके अनुसार प्रकृतिकी अष्टधा अवस्था है।* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। यह भी श्रुति वाक्योंसे तथा पुराणोंसे पता चलता है कि प्राचीन लोग अहंकारसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीका होना मानते थे। सृष्टिक्रमके ही वर्णनमें यह कहा गया है। पंच-भूत और उपादानोंका यहाँ वस्तुतः प्रश्न ही नहीं है। यहाँ भी अवस्था परिवर्त्तन ही बताया है। उत्तरोत्तर सूक्ष्मसे स्थूल और "विभु" से "परमाणुमय" रचनाका अनुक्रम है। वैज्ञानिक केवल आकाशसे ही पृथ्वी तककी रचनाका क़ायल है। आकाशसे ऊपर उसकी गति ही नहीं, क्योंकि आकाश तकको वह वस्तुमें गिनता है, परन्तु मन, बुद्धि अहंकार उसके नज़दीक अवस्तु हैं, अध्यात्मविद्या सम्बन्धी हैं, बहुतोंके निकट "अज्ञेय" हैं। वैज्ञानिक और दार्शनिक यूरोपमें दूर दूर रहते हैं। हमारी पवित्र भूमिमें वैज्ञानिक और दार्शनिक बराबर एक ही चले आये हैं। फूट तो युरोपवाले डाल रहे हैं। भारतीय विचारशीलोंको इस बातमें सतर्क रहना चाहिए।

एक भारी भ्रम और फैला हुआ है। वह यह कि "विज्ञान यूरोपका है, पश्चिमका है। दर्शन भारतका है, पूरबका है। पूरब, पश्चिम मिल नहीं सकते।" साठ बरसके लगभग हुए फरासीसी वुर्ट्ज़ने "History of Chemical theories" में रासायनिक सिद्धान्तोंका इतिहास "रसायन फरासीसी विज्ञान है" इस वाक्यसे आरंभ किया था। इस भूलके लिये चारों ओरसे बौछार पड़ी। अब तक उसकी पुस्तक और उसकी आलोचना पढ़ी जाती है। ज्ञानविज्ञान मानवसम्पत्ति है, किसी देश विदेश की चीज़ नहीं है। और न किसी देशकी मुहर उसपर लगनी चाहिये। लगे भी तो भारतवर्षके आदर्शके अनुसार ऐसी अनुचित मुहरोंकी अवहेला ही उचित है। हमारे देशमें किसी विद्याको वा धर्मको भारतवर्षीय नहीं बताया है। इस देशके वा भारतीयोंके लिये नहीं वरन् मनुष्यमात्रके लिये है। ज्ञान विज्ञान मनुष्यमात्रकी सम्पत्ति है। विज्ञान पाश्चात्य वा प्राच्य नहीं है। विज्ञान सार्वभौम है जो उसका अनुशीलन करे उसकी सम्पत्ति है। यदि अङ्गरेज़ इसे अपनावें तो हमें चाहिये कि हम उनसे छीन लें। हमने राजनैतिक बल खोया हो, परन्तु मानसिक और आध्यात्मिक बल नहीं खोया है। जो लोग विज्ञान और दर्शनको मिलानेमें प्रवृत्त हैं, पूरब पश्चिमको नहीं मिला रहे हैं। यह संभव है कि वह पश्चिमी दृष्टिकोणको बदलकर पूरबी दृष्टिकोण कर रहे हों। यही तो मज़मून छीन लेनेकी एक तरकीब है। हमें चाहिए कि जो कुछ देखनेमें पाश्चात्य लगे उसे हम भृंगोकी तरह प्राच्यरूप देकर उसमें प्राच्य आत्मा का प्रवेश करा दें।

अब्दुल्लाहने विज्ञानके पाठकोंको इस बार इस लंबे लेखकी शिरोवेदना विवश होकर दी। बहुत दिनोंसे उसका विचार था कि प्राच्य और पाश्चात्य

* भूमिरापोऽनलो वायुः खंमनो बुद्धि रेवच,
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। (भ० गी०)
यहां प्रकृति दो रूपमें बतायी है, परा और अपरा। पराके ही यह आठ रूप वा अवस्थाएं बतायी हैं। यह याद रहे कि सांख्यवाले प्रकृतिको एकही मानते हैं, पुरुषको अनेक।

वैज्ञानिक रीतियों और विचारों पर समीक्षात्मक लेख निकलें। परन्तु ऐसा कोई लेखक नहीं दीखता जो उभयपक्षका सम्यक् ज्ञान रखता हो। इसलिए आशा है कि इस तरहके शास्त्रार्थसे ही कुछ काम बन जाय।

लौन्दका महीना

[लेखक—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी० एल्० टी०, विशारद]
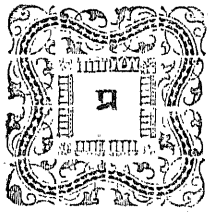
प्रत्येक हिन्दू जानता है कि हर तीसरे वर्ष एकही नामके दो महीने होते हैं। इस वर्ष भी दो श्रावण महीने होंगे। इनमेंसे एकको अधिमास या मलमास कहते हैं। पुरानी प्रथा यह थी कि इस महीनेमें नौकरी करनेवालोंको न वेतन दिया जाता था और न महाजनको व्याज। इस महीनेमें देहातवाले शिवकी आराधना विशेष रूपसे करते हैं और यदि होसका तो गंगोतरीका नहीं तो प्रयाग, काशीका गंगाजल बैजनाथ बाबाको जाकर चढ़ा आते हैं। शहरोंमें इस बातकी विशेषता बहुत कम देखी जाती है। अब कहीं कहीं देखनेमें आता है कि जहां देशी महीनेके अनुसार लेन देनका व्यवहार है वहां नौकर चाकर मलमासका भी वेतन और महाजन व्याज लेते हैं। एकाधको तो कहते हुए सुना है कि क्या इस महीनेमें काम नहीं कराते हैं जो वेतन न देंगे। इन्हीं कारणोंसे अब लोग अंग्रेज़ी महीनेसे हिसाब किताब रखने लग गये हैं। इस लेखमें यह बतलाया जायगा कि अधिमास क्या है और क्यों माना जाता है।

संसार देश और कालके द्वारा बँधा हुआ है। जितने प्राणी हैं सब इन दोनोंके वशीभूत हैं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा जो देश और कालसे कुछ सम्बन्ध न रखता हो। और देश और काल दोनोंके निर्णायक हैं सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारे। इसलिए प्रत्येक मनुष्य इनके सम्बन्धमें भी कुछ न कुछ अवश्य जानता है। मैं समझता हूँ कि सूर्य, चन्द्रमाका ज्ञान उसी समयसे मनुष्यको होने लगता है जबसे उसमें कुछ समझ बूझ आने लगती है और जैसे जैसे ज्ञान बढ़ता है सूर्य और चन्द्रमाका भी विशेष ज्ञान होने लगता है। लोग जानते हैं कि सूर्यसे दिनका बोध होता है और चन्द्रमासे सप्ताह, पक्ष और महीनेका, क्योंकि सूर्यके उदय और अस्त होनेसे दिन रातका बोध होता है और चन्द्रमाके घटने बढ़नेसे महीनेका। [illegible] लोग साधारणतः जानते हैं कि शुक्लपक्षमें चन्द्रमा हंसियाके आकारसे बढ़ते बढ़ते ६, ७ दिनमें आधा गोल हो जाता है और आधा गोल होनेके बाद भी बढ़ते बढ़ते ७, ८ दिनमें पूरा गोल हो जाता है, फिर घटने लगता है और एक सप्ताहमें आधा ही गोल रह जाता है, परन्तु घटना बन्द नहीं होता। इस प्रकार एक सप्ताहमें सात दिन, एक पक्ष या पखवारेमें १५ दिन और एक मासमें तीस दिनकी कल्पना हुई। यह जान रखना चाहिये कि यह संख्याएं मोटे हिसाबसे हैं।

चन्द्रमाके घटने बढ़नेका क्रम ऐसा सीधा है कि छोटा सा बालक भी बिना कष्टके समझ लेता है, इसीलिए अनुमान होता है कि समय गणनाका वैज्ञानिक विचार पहले पहल चन्द्रमाको ही इष्ट मानकर किया गया होगा। यह अनुमान इस बातसे और भी पक्का हो जाता है कि जितनी जातियां हैं प्रायः सबके व्यवहार और पर्व चान्द्र गणनासे मनाये जाते हैं।

ईसाइयोंका ईस्टर संडे उस इतवारको मनाया जाता है जो २५ वीं मार्चके बाद वाली पूर्णिमाके बाद पड़े। मुसलमानोंका महीना दोजका चन्द्रमा देखनेपर आरम्भ होता है और इनके त्योहारोंकी तिथियां चन्द्रदर्शनके बाद ही नियत की जाती हैं। गणित और विज्ञान कुछ काम नहीं देते। हमारे

यहां भी प्रधान प्रधान उत्सव और पर्व चान्द्र गणनासे नियत किये जाते हैं; परन्तु इस गणनामें गणित और विज्ञानका साथ नहीं छोड़ा जाता, चाहे अठवारों आकाश बादलसे घिरा हो अमावस्या या पूर्णमासी या दशमी उसी दिन मनायी जायगी जिस दिन गणनासे होती है, इसलिए हमारे त्योहारों के दिन सैकड़ों वर्ष पहलेसे नियत हो सकते हैं।

परन्तु चान्द्रगणनामें एक त्रुटि यह रह जाती है कि ऋतुओंका क्रम ठीक नहीं रहता। ऋतु परिवर्तनका कारण सूर्य है। सूर्य जब विषुवत् रेखासे उत्तर होता है तब वसन्तका आरम्भ होने लगता है और जिस समय वह शिरके ऊपर हो जाता है उस समय प्रचंड गरमी पड़ती है और वर्षा ऋतुकी तैयारी होती रहती है। खेती बारीका सारा काम काज ऋतुओंके अनुसार ही किया जाता है। इसलिए ऋतुओंकी गणना सूर्यके हिसाबसे ही होती आती है। किसान भाई खेत जोतने और अनाज बोनेका समय सूर्यके हिसाबसे ही नियत करते हैं। इसलिए सूर्यके अनुसार समय की गणना करना भी परम आवश्यक ठहरा। मेरा अनुमान है कि सूर्यके अनुसार समयकी गणना करनेका आरम्भ तभीसे हो गया होगा जबसे मनुष्य जाति खेती करके अन्न उपजानेमें लगी, इसलिए इस गणनाका आरम्भकाल भी बहुत पुराना होगा। इसकी प्राचीनता यों सिद्ध होती है कि हमारे कुछ पर्व हज़ारों वर्षोंसे सूर्यके स्थानके विचारसे ही नियत किये जाते हैं, जैसे मकर संक्रान्तिके दिन मकरका मेला प्रयागमें, मेष संक्रान्तिके दिन बैशाखीका मेला अमृतसरमें, एवं विवाहादि जितने शुभ कार्य हैं सब उत्तरायण सूर्यमें किये जाते हैं। जिस 'संकल्प' मंत्रके बिना किसी हिन्दूका नित्य नैमित्तिक कर्म नहीं पूरा होता उस संकल्पमें चान्द्र और सौर दोनों गणनाओंका विचार रखा गया है। इन सब बातोंसे यह ठीक नहीं जान पड़ता कि सौर गणना यूनानियोंके ज्योतिष सिद्धान्तके अनुसार हिन्दुओंमें मानी जाने लगी है जैसा कि डाक्टर थिबो का कथन है; क्योंकि यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि किसी जाति या राष्ट्रके उत्सव उसके जीवनके प्रारम्भ कालसे ही मनाये जाते हैं। और इनके मनानेकी रीतियां भी उस जातिकी विशेष रीतियां होती हैं जिनसे उस जातिकी विशेषता झलकती है। फिर जब इन उत्सवोंकी तिथियां चान्द्र और सौर दोनों गणनाओंसे नियुक्त होती हैं तब सौरगणनाके पुरानेपनमें कुछ भी संदेह नहीं रह जाता, क्योंकि यह बात कोई भी इतिहास माननेको तैयार नहीं होगा कि हिन्दुओंके प्रधान त्योहार ईसाके तीन चार सौ वर्ष पहले से आरम्भ हुए होंगे जब कि यूनानियोंमें सौर गणनाका कुछ आरम्भ होने लगा था।

डाक्टर थिबो 'पंच सिद्धान्तिका' की प्रस्तावनामें पृष्ठ ५१ पर लिखते हैं:—

That the similarities observed between the Greek and Hindu system are due to a transfer of the elements of the former to India, will at present be hardly called into doubt.........while the general question as to the sources of scientific Hindu astronomy admits of one answer only, doubts begin to suggest themselves as soon as we proceed to ask from what particular Greek works the early Siddhant writers may have borrowed and to what time the first transmittance of astronomical knowledge has to be assigned.......................

पृष्ठ ५४ पर फिर लिखते हैं —

But if we, on the other hand, *suppose* that only a very imperfect knowledge of Greek astronomy was transmitted to India and that Hindu Jyotishees endeavoured to erect on that basis a *complete system* of their own, we can understand how there came into existence books of the type of Surya Siddhant, which although evincing a fundamental dependence on Greek

astronomy, yet show unmistakable traces of originality in numerous details, remaining indeed in by far the greater number of cases inferior to their original yet hitting here and there on new devices and methods of undeniable merit and ingenuity. The perfect Hindu system would in that case have to be characterised not either as a mere loan from the Greek or as a mere adaptation in the ordinary sense of the word but rather as a combination and further development proceeding on partly original lines of elements of astronomical knowledge; *transmitted in a rude and detached condition from the west.* And the merit of originality as far as it goes would most probably belong to the unknown author of the old Surya Siddhant.

इस लंबे अवतरणके लिये हम क्षमा माँगते हुए यह बतलाना चाहते हैं कि यूरोपीय विद्वान भारतवर्षके सम्बन्धमें जो कुछ लिखने बैठते हैं उसके पहले ही यह विचार अपने चित्तमें बैठा लेते हैं, कि इनका मौलिक कुछ नहीं है सब दूसरोंसे लिया गया है और जहाँ कहीं उनकी दाल नहीं गलती वहाँ यह कह देते हैं कि वहाँ से कूड़ा कचरा (rude and detached) लेकर और फटक फटकाकर भारतियोंने साफ किया और कुछ अपनी अक्ल भी लगा दी। मेरा कहना यह है कि जब उनको लेना ही था तो कूड़ा कचरा क्यों लिया, क्योंकि यदि कूड़ा कचरा लेनेका अवसर मिलता था तो अच्छा भी तो ले सकते थे। इन सब बातोंका शङ्का-समाधान किसी स्वतंत्र लेखमें किया जायगा। इस समय हमारा कहना यह है कि हिन्दू ज्योतिष स्वतंत्ररूपसे विकसित हुआ है और सौर तथा चान्द्रगणनाका आरम्भकाल ईसाके हज़ारों वर्ष पहलेसे अवश्य है, जिसका प्रमाण संस्कृत साहित्यके अध्ययन करनेसे मिल सकेगा।

बस इसी चान्द्र और सौर गणनाके मेलसे अधिमासकी उत्पत्ति हुई है।

यदि एक महीने तक आकाशकी सैर कीजिये और प्रतिदिन यह देखिये कि चन्द्रमा किस किस तारेके पास होकर पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है तो आपको जान पड़ेगा कि २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनटमें पृथ्वीकी परिक्रमा कर आता है। इसकी परीक्षा आप ऐसे कर सकते हैं—

जिस दिन चन्द्रमा किसी चमकीले तारे के पास दिखाई पड़े, उस दिनको और समयको अपनी नोट बुकमें लिख लीजिये। अगर हो सके तो यह भी लिख लीजिये कि उस तारेसे चन्द्रमा कितने अन्तर पर और किस दिशामें है। फिर आप देखिये कि उसी तारेके पास उतने ही अन्तरपर (स्थूल रूपसे) उसी दिशामें कब आता है। आपको विदित हो जायगा कि इतने समयमें २७ दिन बीत जाते हैं। ठीक ठीक समय वही है जो ऊपर दिया गया है अर्थात् २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनट; परन्तु इतने दिनका महीना नहीं माना जाता। बात यह है कि जैसे चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है उसी प्रकार सूर्य भी पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है (वास्तवमें पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है। परन्तु यहां हम समझानेमें सुगमताके लिए यही मान लेंगे कि सूर्य ही परिक्रमा करता है)। परन्तु सूर्यकी एक परिक्रमा ३६५ दिन ६ घंटे १२ मिनटमें पूरी होती है।* चान्द्रमास उस समयसे आरम्भ होता है जिस समय सूर्य और चन्द्रमा एक सीधमें (याम्योत्तर वृत्तमें) आजाते हैं और जब फिर उसी सीधमें आते हैं तब अन्त होता है। इसमें २९ दिन १२ घंटे ४४ मिनट मध्यम मानसे लगते हैं। कभी इससे दो तीन घंटे कम होता है और कभी अधिक। यह समझनेके लिए आपको

* एक परिक्रमामें ३६० भाग होते हैं। प्रत्येकको अंश कहते हैं। इसलिए सूर्य प्रतिदिन एक अंशके लगभग पूरब हटता हुआ समझना चाहिये।

सूर्य और चन्द्रमाकी चालके सम्बन्धमें भी कुछ जानना होगा। उदाहरणके लिए घड़ीकी दोनों सुइयां लीजिये। चन्द्रमाको मिनट बतानेवाली बड़ी सुई समझिये और सूर्यको घंटा बतानेवाली छोटी सुई। जैसे बड़ी सुई ६० मिनटमें या १ घंटेमें एक चक्कर लगाती है वैसेही चन्द्रमा २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनटमें पृथ्वीका चक्कर लगाता है और जैसे छोटी सुई एक चक्कर बारह घंटोंमें लगाती है वैसेही सूरज ३६५ दिन ६ घंटे १२ मिनटमें पृथ्वीका एक चक्कर लगाता है। १२ बजे छोटी और बड़ी सुई एक सीधमें रहती हैं, इसीको अमावस्या समझ लीजिये। अब बड़ी सुई छोटी सुईसे अलग होने लगी। जब छोटी सुई १ बजेके चिह्नपर पहुँचेगी बड़ी एक चक्कर लगाकर फिर बारह बजेके चिह्नपर पहुँच जायगी, परन्तु एक चक्कर लगानेपर भी बड़ी सुई छोटी सुई की सीधमें नहीं पहुँच सकती (अथवा चन्द्रमा सूर्यकी सीधमें नहीं आ सकता)। इसके लिए उसको $५\frac{५}{११}$ मिनट और चलना पड़ेगा, क्योंकि छोटी सुईसे बड़ी सुईका अन्तर एक घंटेमें कुल परिधिका $\frac{११}{१२}$ भाग होता है इसलिए $\frac{१}{१२}$ भाग और पहुँचनेके लिए उसको $\frac{११}{१२} : \frac{१}{१२} :: १$ घंटा : स अर्थात् $\frac{१}{११}$ घंटा या $५\frac{५}{११}$ मिनट और चाहियें। इसी प्रकार अमावस्याके बाद जब चन्द्रमा सूर्यसे अलग होने लगता है तब सूर्य तो धीरे धीरे चलता है, परन्तु चन्द्रमा जल्दी जल्दी चलनेके कारण अपना चक्कर जल्दी लगा लेता है, तथापि सूर्यकी सीधमें नहीं पहुँच पाता, क्योंकि सूर्य २७ दिन में २७ अंशके लगभग आगे हो जाता है; इसलिए यह अन्तर चन्द्रमा २ दिनमें पूरा कर लेता है। गणना करनेकी रीति यह है—

१ दिनमें चन्द्रमा कुल परिक्रमा का $२७\frac{१}{३}$ भाग पूरा करता है और सूर्य $\frac{१}{३६५}$ भाग। इसलिए एक दिनमें चन्द्रमा सूर्य से $\frac{१}{२७\frac{१}{३}} - \frac{१}{३६५}$ भाग; अर्थात्

$$\frac{३}{८२} - \frac{१}{३६५} = \frac{१०९५ - ८२}{८२ \times ३६५} = \frac{१०१३}{२९९३०}$$ आगे बढ़ता है, इसलिए फिर एक सीधमें आनेके लिए

परिक्रमा परिक्रमा

$$\frac{१०१३}{२९९३०} : १ :: १ \text{ दिन} : \text{चान्द्रमास}$$

अर्थात् चान्द्रमास का मध्यम मान $= \frac{२९९३०}{१०१३}$ दिन अथवा २९ दिन १३ घंटे जो सूक्ष्म गणनासे २९ दिन १२ घंटे ४४ मिनट होते हैं।

यहां एक बातका और विचार करनेकी ज़रूरत है—घड़ीके उदाहरणमें एक सुगमता यह है कि घड़ीकी दोनों सुइयां समान गतिसे भ्रमण करती हैं, परन्तु सूर्य और चन्द्रमाकी गति सदा समान नहीं होती। यह विज्ञान भागमें बतलाया जा चुका है जिसे यहां भी संक्षेपसे दुहरा दिया जाता है कि चन्द्रमा या सूर्यके परिक्रमा करनेकी राह या कक्षा वृत्तके आकारकी नहीं है वरन् दीर्घ वृत्तके आकारकी है जिससे कभी तो चन्द्रमा पृथ्वीके पास आ जाता है और कभी दूर; इसी प्रकार सूर्य भी कभी पास आता है और कभी दूर; इस कारण इनकी गतियोंमें भी अन्तर पड़ जाता है। कितना अंतर पड़ता है इसका नियम भी केपलर सिद्धान्तके नामसे विज्ञानमें बतलाया गया है। मोटा हिसाब यों है कि जब सूर्य या चन्द्रमा पृथ्वीके बहुत पास आजाते हैं तब उनकी चाल तेज़ हो जाती है और जब बहुत दूर हो जाते हैं तब चाल बहुत मंद हो जाती है। जैसे जैसे पास आते जाते हैं तैसे तैसे चाल तेज़ होने लगती है और जैसे जैसे दूर होते जाते हैं चाल मन्द होती जाती है। जैसे कोई आलसी नौकर जब कभी बाज़ार

जाता है तो जब तक मकानसे दूर रहता है तब तक तो बहुत धीरे धीरे चलता है, मगर मकानके सामने आते ही अपनी चाल तेज़ कर देता है जिससे मालिक जाने कि नौकर बड़ा मिहनती है। सूर्य अथवा चन्द्रमाकी कक्षाका वह विन्दु जो पृथ्वीसे बहुत पास है शीघ्रोच्च (perigee) कहलाता है। इस विन्दुके पास सूर्य या चन्द्रमा शीघ्र गतिसे भ्रमण करता है और इनकी कक्षाका वह विन्दु जो पृथ्वीसे बहुत दूर रहता है मन्दोच्च कहलाता है, क्योंकि इस विन्दुके पास सूर्य या चन्द्रमा सबसे मन्द गतिसे भ्रमण करते हैं। चन्द्रमा तो २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनटमें शीघ्रोच्च और मन्दोच्च दोनों विन्दुओंपर हो आता है, परन्तु सूर्य वर्षमें एक बार शीघ्रोच्च पर पहुंच जाता है और एक बार मन्दोच्च पर। १ ली जुलाईको सूर्य मन्दोच्चपर पहुंचता है। इस समय इसकी गति सबसे मन्द होती है और आकार भी दूर पड़जानेके कारण छोटा हो जाता है। ३१ दिसम्बरको सूर्य शीघ्रोच्चपर पहुंचता है। इस स्थानपर इसकी चाल सबसे तेज होती है। आकार भी जितना बड़ा दिखाई पड़ सकता है दिखाई पड़ता है।

यहां यह भ्रम हो सकता है कि १ ली जुलाईको जब सूर्य सबसे दूर हो जाता है तब तो गरमी कम पड़नी चाहिये और ३१ दिसम्बरको जब सबसे पास होता है गरमी अधिक होनी चाहिये। किन्तु बात ठीक उलटी होती है। इसका कारण यह है कि गरमी सरदीका अन्तर सूर्यके दूर या पास होनेसे उतना नहीं पड़ता, जितना उसकी किरणोंके सीधे या तिरछे आनेसे पड़ता है। ३१ दिसम्बरको सूर्य बहुत दक्खिन चला जाता है, इस लिए किरणें तिरछी आती हैं; और १ ली जुलाई को सूर्य उत्तरमें आजाता है, इस लिए दूर होते हुए भी किरणें सीधी आती हैं। यह तो साधारण अनुभवकी बात है कि जब कोई चीज़ थालीमें सुखानी होती है और धूप कम पड़ने लगती है तो थाली टेढ़ी करके रखते हैं। जिससे किरणें थाली-पर समकोण बनाती हुई और अधिक आती हैं। चित्रमें देखिये—
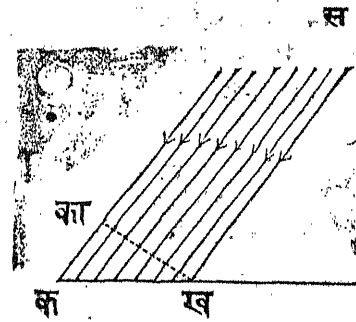
'स' सूर्य की किरणें तिरछी पड़नेके कारण 'क ख' भागपर फैल जाती हैं, परन्तु यदि 'का ख' तल 'क ख' के स्थान पर हो जाय तो उतनी ही किरणें छोटेसे भागपर हो जानेके कारण अधिक गरमी पहुंचाएँगी।

	पृथ्वीसे दूरी मीलोंमें	सूर्यका आकार	सूर्यकी दैनिक गति
सूर्यमन्दोच्च		३१ कला ३२ वि०	५६ कला ५७ विकला
,, शीघ्रोच्च		३२ कला ३६ वि०	६१ ,, २१ ,,
,, मध्यदूरी	९२००००००	३२ कला	५९ ,, ८ ,,
		चन्द्रमाका आकार	चन्द्रमाकी दैनिक गति
चन्द्रमन्दोच्च		२९° ५ कला	१२° २' ५१''
,, शीघ्रोच्च		३३° ५ कला	१४° १९' २३''
,, मध्यदूरी	२३८०००	३१° ५ कला	१३° १०' ३५''

शीघ्रोच्च मन्दोच्च की बात बीचमें इसलिए लायी गयी कि इसके बिना जाने यह नहीं समझमें आवेगा कि चान्द्रमास घटता बढ़ता क्यों है। आपको बतलाया गया है कि एक अमावस्यासे दूसरी अमावस्या या एक पूर्णिमासे दूसरी पूर्णिमा तकके समयको एक चान्द्रमास कहते हैं। और चन्द्रमा एक परिक्रमा करनेमें २७ दिन पौने आठ घंटेके लगभग लगाता है। जिस समय सूर्य-मन्दोच्चके पास रहता है उस समय अर्थात् जून जुलाई अगस्तमें चान्द्रमास साधारणतः छोटा होता है; कारण यह कि सूर्य मंदगतिके कारण कम हटता है। इसलिए चन्द्रमाको कम अंतर पूरा करना पड़ता है; परन्तु यदि ऐसी दशामें चन्द्रमाका मन्दोच्च भी पास हो तो मंद गतिके कारण चन्द्रमा वही अंतर कुछ देरमें पूरा करेगा और चान्द्रमास-का मान कुछ बड़ा होगा और यदि शीघ्रोच्चके पास हो तो चान्द्रमास सबसे छोटा होगा, क्योंकि सूर्य चन्द्रमाका अन्तर कम और चन्द्रमा की चाल सबसे अधिक। इसलिए १ जुलाईसे तीन महीने इधर या उधर चान्द्रमास छोटा होना चाहिये। इसके प्रतिकूल जब सूर्य अपने शीघ्रोच्चके पास हो तो सूर्यकी सीधमें आनेके लिए चन्द्रमाको अधिक अन्तर तै करना पड़ेगा; इसलिए साधा-रणतः चान्द्रमास बड़ा होता है। साथ ही साथ यदि चन्द्रमाका मन्दोच्च भी सूर्यके पास रहा तब तो चन्द्रमाको धीरे धीरे चलते हुए बड़े अन्तरको तै करना पड़ेगा और चान्द्रमास सबसे बड़ा होगा। यह बात दिसम्बरके तीन मास इधरसे तीन मास बाद तक हो सकती है अर्थात् अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर जनवरी फरवरी और मार्च। इन्हीं महीनोंमें चान्द्रमास बड़ा होगा। हां यदि चन्द्रमाका शीघ्रोच्च सूर्यके पास रहा तो चन्द्रमा-की गति तीव्र रहेगी और चान्द्रमास कुछ छोटा होगा—नीचेकी सारिणीसे आपको ज्ञान पड़ेगा, कि वेध द्वारा प्राप्त चन्द्रमा और सूर्यके मन्दोच्च तथा चान्द्रमासके मानोंमें क्या सम्बन्ध है? यह सारिणी पायोनियरके आधार पर तैयार की गयी है।

चान्द्रमासका मान (अमावस्यासे अमावस्या तकका समय)	अमावस्या की तारीख	चन्द्रमाके शीघ्रोच्च पर पहुँचनेकी तारीख	चन्द्रमाके मन्दोच्च पर पहुँचनेकी तारीख
२९ दिन ८ घंटे ४२ मि०	जेठ ७७, १८ मईके ११ बजे ५५ मि०	१९ मई	७ मई
२९ दि० १० घं० ४७ मि०	वैशाख ७७, १९ अप्रैलके ३ बजे १३ मि०	२१ अप्रैल	८ अप्रैल
५९ दि० ५ घं० २९ मि०	चैत्र ७६, २० मार्चके १६ बजे २६ मिनट	२४ मार्च	१२ मार्च
५९ दि० १४ घं० ७ मि०	माघ ७६, २१ जनवरीके १० बजे ५७ मि०	४ जनवरी	१६ जनवरी
२९ दि० १८ घं० ४१ मि०	अगहन ७६, २२ नवम्बर-के २० बजे ५० मि०	८ नवम्बर	२३ नवम्बर
	कार्तिक ७६, २४ अक्टू-बरके २ बजे ९ मिनट	११ अक्टूबर	२७ अक्टूबर

फरवरी और दिसम्बरका पायोनियर न मिलनेसे इन महीनोंकी स्थितियां नहीं दी गयी हैं। इसी लिए चैत्र और माघ तथा माघ और अगहनकी अमावस्याओंका अन्तर दिया गया है जो दो चान्द्र-मासोंके मानके समान है। आधा कर देनेसे जान पड़ेगा कि पौष, माघकी अमावस्याओंका अन्तर २६ दिन १६ घं० ३१/२ मि० है। यह सबसे बड़ा चान्द्र मास है, कारण यह कि सूर्य तो इस महीनेमें बहुत तेज़ चलता है और चन्द्रमा अमावस्याके पास मन्दोच्च पर होनेके कारण बहुत मंद चलता है। इस लिए जब सूर्य बहुत बढ़ गया और चन्द्रमा मन्द हो गया तो सूर्यकी सीधमें पहुँचनेके लिए देर लगेगी ही।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि चन्द्रमासका मान कम और अधिक क्यों होता है, कम किन महीनोंमें हो सकता है और अधिक किन महीनोंमें। अब आपको यह भी बतला देना चाहिये कि सौरमास क्या है और वह सदा एकसा रहता है या वह भी घटता बढ़ता रहता है?

सूर्य आकाशमें जिस राहसे घूमता हुआ पृथ्वीकी परिक्रमा करता जान पड़ता है उसको सूर्यकी कक्षा कहते हैं। इसीका नाम क्रान्तिवृत्त, अयमण्डल (ecliptic) भी है। इस कक्षा के १२ समान विभाग कर दिये गये हैं। प्रत्येकको राशि कहते हैं। स्थूल रूपसे पहचाननेके लिए प्रत्येक राशिमें जो मुख्य तारे हैं उनको काममें लाते हैं। इन बारह राशियोंके नाम यह हैं—

मेष, बृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, बृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, और मीन। जिस दिन सूर्य नयी राशिमें प्रवेश करता है उस दिनको उस राशिकी संक्रान्ति कहते हैं। मकर संक्रान्तिके नामसे बहुतोंको परिचय होगा, क्योंकि इस दिन प्रयागमें विशेष भीड़ होती है।* और इसी दिन खिचड़ी और तिल इत्यादिका दान किया जाता है। यह उस दिन मनायी जाती है जिस दिन सूर्य मकर राशिमें प्रवेश करते हैं।

एक समय था जब इसी दिन सूर्यका दक्खिनकी तरफका जाना रुक जाता था और उत्तरकी तरफका चलना आरम्भ होता था और इसी समयसे उत्तरायन सूर्य कहलाते थे। अब तो सूर्यका उत्तराभिमुख होना २४ दिन पहलेसे आरम्भ हो जाता है। इसकी चर्चा किसी अन्य लेखमें की जायगी।

मेष संक्रान्तिसे भी लोग थोड़े बहुत परिचित होंगे। इस दिन सतुआका दान दिया जाता है। काशीकी तरफ उसी दिन पर्व मनाया जाता है। अवधके रायबरेली ज़िले तथा अन्य ज़िलोंमें वैशाखकी अमावस को सतुआही अमावस कहते हैं। साधारणतः १३, १४ जनवरीको सूर्य मकर राशिमें प्रवेश करता है और १३, १४ अप्रैलको मेष राशिमें। यह भी बतलाया गया है कि सूर्य ३१ दिसम्बरके दिन शीघ्रोच्चमें पहुंचता है और १ जुलाई को मन्दोच्चमें। इसलिए दिसम्बरके आसपासके सौरमास छोटे होंगे, क्योंकि सूर्य शीघ्रोच्चमें रहनेके कारण एक राशि बहुत थोड़े समयमें पूरा कर लेता है और सबसे छोटा महीना सौरमासका धनु होना चाहिये, क्योंकि इसी राशिमें शीघ्रोच्च है। इसी प्रकार १ ली जुलाईको मन्दोच्चमें पहुंचता है। इसलिए इस स्थानके आसपास सौर मास बड़ा होना चाहिए और सबसे बड़ा सौरमास मिथुनका होना चाहिये, सौरमासों के मान यह हैं।

---

*माघ मकर गति रवि जब होई।
तीरथराज आव सब कोई॥

मेष	वा सौर	चैत्र	३० दिन	५६ घड़ी	४६ पल	२२ घंटे	४४ मि०
वृष	,,	वैशाख	३१ ,,	२५ ,,	३६ ,,	१० ,,	१६ ,,
मिथुन	,,	ज्येष्ठ	३१ ,,	३८ ,,	३५ ,,	१५ ,,	२६ ,,
कर्क	,,	आषाढ़	३१ ,,	२७ ,,	५७ ,,	११ ,,	११ ,,
सिंह	,,	श्रावण	३१ ,,	० ,,	२० ,,	० ,,	८ ,,
कन्या	,,	भाद्रपद	३० ,,	२५ ,,	४० ,,	१० ,,	१६ ,,
तुला	,,	आश्विन	२९ ,,	५२ ,,	५१ ,,	२१ ,,	८ ,,
वृश्चिक	,,	कार्त्तिक	२९ ,,	२६ ,,	१ ,,	११ ,,	३६ ,,
धनु	,,	अगहन	२९ ,,	१९ ,,	९ ,,	७ ,,	४० ,,
मकर	,,	पौष	२९ ,,	२७ ,,	२३ ,,	१० ,,	५७ ,,
कुम्भ	,,	माघ	२९ ,,	५० ,,	४ ,,	२० ,,	२ ,,
मीन	,,	फाल्गुन	३० ,,	२२ ,,	३ ,,	८ ,,	४९ ,,

(यह सारिणी सम्मेलन पत्रिका भाग ३ अङ्क ६ से ली गयी है।)

बारह चान्द्र मास या साधारण एक वर्षमें कुल मिलाकर ३५४ दिन ८ घंटे ४८·५ मिनट होते हैं, परन्तु एक सौर वर्षमें ३६५ दिन ६ घंटे १२ मिनट ९ सेकंड होते हैं। मान लीजिये कि किसी वर्ष साधारण चान्द्र वर्ष और सौर वर्षका आरम्भ एक साथ हो तो इनका अन्त एक साथ नहीं होगा। चान्द्र वर्ष १० दिन २१ घंटे २३ मिनट ३९ सेकंड सौर वर्षसे पहले ही समाप्त हो जायगा अर्थात् दूसरे वर्ष चान्द्र वर्षका आरम्भ इतने ही पहले होगा और इसके दूने समय अर्थात् २१ दिन १८ घंटे ४७ मिनट १८ सेकंड सौर वर्षके पहले समाप्त हो जायगा। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते जितने समयमें ३३ चान्द्रमास पूरे होते हैं उतने समयमें ३२ सौर मास। बस यहीं एक चान्द्र मास दुहरा दिया जाता है। अर्थात् इसकी स्वतन्त्र गणना नहीं की जाती। इसी मासको अधिमास कहते हैं। कौन चान्द्रमास दुहराना चाहिये इसकी कसौटी यह रखी गयी है कि जिस चान्द्रमासमें संक्रान्ति न पड़े वही अधिमास कहलावे।

चान्द्रमास और सौर मासकी सारिणियोंसे आपको विदित होगा कि सबसे बड़ा चान्द्रमास भी २९ दिन १९ घंटे और ३ मिनटका होता है। इधर,मीनसे तुलातक या सौर चैत्रसे आश्विन तक कोई भी सौर मास इस चान्द्रमाससे छोटा नहीं होता। इसलिए इन्हीं मासोंमें ऐसा होता है कि संक्रांति किसी चान्द्र मासमें न पड़े अर्थात् दो अमावस्याओंके बीच संक्रान्ति न हो। बस इसीको अधिमास कहते हैं।

सारिणीसे यह भी पता लगेगा कि कार्तिक, अगहन और पौषके महीने चान्द्रमाससे छोटे होते हैं। उनमें पौषका सौर मास सबसे छोटे चान्द्रमासके समान होता है। इसलिए यह भी सम्भव है कि इन तीनों चान्द्रमासोंमेंसे किसीमें दो संक्रान्तियां पड़ जाँय। जिस चान्द्रमासमें दो संक्रांतियाँ पड़ जाती हैं उसे क्षयमास कहते हैं और उस महीनेका नाम ही नहीं रखा जाता। साथ ही साथ उस साल दो अधिक मास होते हैं। यह घटना सौ बरसमें एक बार होती है।

अधिमास और क्षय मासका निराकरण सिद्धान्त शिरोमणिके इस श्लोकसे किया जाता है—

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्यात्।
द्वि संक्रांतिमासः क्षयाख्यः कदाचित्॥
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्।
तदा वर्ष मध्येऽधिमास द्वयं च॥

इस अधिमास और क्षय मासका पचड़ा (यदि यह पचड़ा हो तो) इसलिए करते हैं जिससे

सौर और चान्द्रगणनाका क्रम ऐसा रहे कि व्यवहारमें असुविधा न रहे। यदि हर तीसरे वर्ष अधिक मास न रखा जाय तो मुसलमानोंकी तरह हमारे महीने भी और पर्व तीसरे वर्ष एक मास पीछे रह सकते हैं और कभी होली बरसात या जाड़ेमें करनी पड़े और कभी दिवाली या दशहरा कड़ी धूपमें। खेतीबारी करनेवाले तो अपना समय किसी न किसी तरह निर्द्धारित करेंगे ही, क्योंकि चान्द्रमाससे उनका किसी तरह काम नहीं चल सकता।

आशा है कि पाठकोंको अधिमासके होनेका कारण इस लेखसे ज्ञात हो गया होगा। किसी अन्य लेखमें चान्द्र सौर गणनापर विस्तारपूर्वक विचार किया जायगा, क्योंकि आजकल अन्य प्रश्नोंके साथ एक प्रश्न यह भी है कि हम लोगोंके राष्ट्रीय कामोंमें कौनसी तिथि, मास और सम्वत् काममें लाये जायँ, जिससे व्यवहारमें सुविधा हो।

ग्राहकोंसे निवेदन

जिस सफेद कागज पर विज्ञान छपता था, अब वह इलाहाबाद और कलकत्तेके बाज़ारमें नहीं मिल रहा है। इसी कारण जैसा कागज़ मिला वैसा ही लेकर छपवाया, कागज़के लिए प्रबंध कर रहे हैं, जैसे ही कागज़ मिल जावेगा विज्ञानका कागज़ बदल दिया जावेगा। आशा है ग्राहकगण हमको कागज़ बदलनेके लिए क्षमा करेंगे।

—मंत्री

प्राप्ति-स्वीकार

बा० कौशलकिशोर भार्गव जयपुर	८)
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१०१)
रावसाहब विजयसिंहजी साहब मासूदा (अजमेर)	१००)

धन्यवाद

हिन्दी साहित्य सम्मेलन और रावसाहब विजयसिंहजी साहबको हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है जिन्होंने यह रुपया विज्ञान के घाटे की पूर्ति के लिए प्रदान किया

शोक समाचार

हमको बड़े शोकके साथ लिखना पड़ता है कि परिषद्‌के बड़े उत्साही सभ्य बा० गोपालनारायणसेनसिंह १८ मईको स्वर्गवासी हुए। आप काशीसे परीक्षा देकर यहां काम करनेके लिए आये हुए थे। इन्फ्ल्यूएञ्जाने आपका पीछा किया और लेगया। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि आपके बूढ़े बापको उनके बुढ़ापेमें शान्ति दे।

बधाई

परिषद्‌के सभ्य रायबहादुर मु० गोकुलप्रसाद एम० ए० एल-एल० बी० हाईकोर्ट इलाहाबादके जज होगये हैं। हम आपको बधाई देते हैं।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेसमें मुद्रित तथा विज्ञान परिषद, प्रयाग से प्रकाशित।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्णसंख्या ६३ | Reg. No. A 708

भाग ११ | मिथुन १९७७ । जून १९२० | संख्या ३

Vol XI. | No 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी

विषय सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञ हिन्दी हितैषियो !

विज्ञानने आपकी और आपके साहित्य की पाँच वर्ष सेवा की और घाटा उठाया। इस पर भी आपके मित्रोंने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। क्या अब आप इस ओर उनका ध्यान दिला सकते हैं और उसकी ग्राहक संख्या बढ़ा सकते हैं? यदि ग्राहक संख्या न बढ़ायी गयी तो कागज और अन्य चीजोंकी महँगाईसे तंग आकर या तो विज्ञान का चंदा बढ़ा दिया जायेगा या उसकी पृष्ठ संख्या कम कर दी जायगी। इसलिये आपसे सविनय प्रार्थना है कि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने का यत्न कीजिये।

उन रोचक लेखोंकी सूची जो पिछले अंकों में निकल चुके हैं नीचे दी जाती है।

१—अपनी चर्चा।
२—महोबेमें पानोंकी खेती।
३—प्रकृतिके स्वांग।
४—भारतीय चित्रकला।
५—बिच्छू।
६—धूलके रोगोत्पादक जीवाणु।
७—नहरी गावोंमें पैदावार की कमी और उसके दूर करनेके उपाय।
८—मकड़ी।
९—डा० रायकी वक्तृता।
१०—गैसकी रोशनी।
११—गृहस्थ विद्यार्थी।
१२—टंगस्टन लेम्प।
१३—गील डू चैलू।
१४—वैज्ञानिकीय।
१५—परिषद् समाचार।

विज्ञानके पिछले अङ्क भी मिल सकते हैं। उन अङ्कोंकी पूरी पूरी विषय सूची देना असम्भव है, परन्तु कुछ लेखोंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

१—तारपीन और विरोजा।
२—वायु-मंडलपर विजय।
३—बिजली कैसे बनायी जाती है?
४—भोजन की पुकार।
५—तारों भरी रात।
६—स्वास्थ्य-रक्षा।
७—फूलोंके संसारमें एक पागलका प्रवेश।
८—फिटकरी।
९—बिजली की रोशनी।
१०—चतुर बैरिस्टर।
११—आकाशी दूत।
१२—भूल भूलैयां।
१३—बीजोंका प्रवास।
१४—बीज परम्पराका नियम।
१५—खाद्य।
१६—नमक और नमककी खानें।
१७—गरम देशोंके योग्य वस्त्र।
१८—मदन दहन।
१९—स्कूल जानेवाले विद्यार्थियोंके दांतों की दुर्दशा।
२०—मनुष्यका नया नौकर इत्यादि इत्यादि।

विज्ञानका पुराना अंक नमूनेके लिए भी मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागसे मुफ्त मिल सकता है। नये अंकके लिए।-) के टिकट भेजिये।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ११ { मिथुन, संवत् १९७७। जून, सन् १९२०। } संख्या ३

बहीखातेका सैद्धान्तिक विवेचन

बहीखातेका विकास
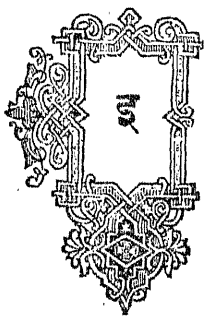
इतिहासज्ञोंका अनुमान है कि मनुष्यने अन्य विद्याओंकी अपेक्षा सबसे पहले गृह निर्माण विद्याका ही आविष्कार किया था। युक्तिवाद-से भी इतिहासज्ञोंका यह अनुमान ठीक जान पड़ता है, क्योंकि प्रारंभिककालमें मनुष्यकी उदरपूर्तिके साधन कुछ कम न थे। प्रकृति देवीने कंदमूल, फलफूल और लतागुल्मादि बहुत अधिक परिमाणमें उगा रखे थे। इसके अतिरिक्त पशु पक्षी आदि भी बहुत थे। इन सबके सहारे उस समयका मानवसमाज अपनी उदरपूर्तिमें कुछ भी कठिनाई अनुभव नहीं करता था। इसलिए उनमें परस्पर इनके लिए न तो कभी लड़ाई झगड़ा ही होता था और न नवीन खाद्यपदार्थ आविष्कार करनेकी ओर ही किसीका ध्यान जाता था। यदि उस समय उनकी एक-मात्र आवश्यकता थी तो यह थी कि वह सरदी गरमी, आंधी, पानी और अन्यान्य प्राकृतिक घटनाओंसे अपनी रक्षा कैसे करें। उनके रहनेको न तो घर थे और न प्रकृति देवी ने ही ऐसे किसी साधनकी उनके लिये सृष्टि की थी। हां, वृक्षादिकी छायाका आवश्यकता आपड़ने-पर आश्रय लेकर वह अपनी जान मालकी इन प्राकृतिक घटनाओंसे रक्षा कर लेते थे, परन्तु फिर भी भारी हानि उठाते थे। यह वृक्षादि साधारण समयोंमें ही उनकी रक्षा कर सकते थे। साथ ही इस भूमंडलपर उन्हें ऐसा भी कोई प्रदेश न मालूम था कि जहां यह उत्पात बिलकुल होते ही न थे और जहां निवास कर वह अमन व अमानके साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। इसीसे उस समयके मनुष्योंने अपनी सारी बुद्धि गृहनिर्माण कलाके आविष्कार करनेमें व्यय की और अन्तमें सफल भी हुए। इन आदि पुरुषोंसे सबसे मूल्यवान

और सबसे पहला उत्तरदान जो उनकी सन्तानोंको मिला वह यही था।

इतिहासज्ञोंका मत है कि गृहनिर्माणकलाके आविष्कारके पश्चात् मनुष्यने बहीखातेकी कलाका ही आविष्कार किया है। क्योंकि अपनी जान और मालकी रक्षाकी चिंतासे तो आदिम मनुष्योंकी सन्तान मुक्त हो ही चुकी थी। अतः उसकी चित्तवृत्ति किसी ऐसी चीज़के आविष्कारमें रत हुई कि जो उसकी उन्नतिमें सहायता दे सके। आदिम मनुष्योंकी यह सन्तान तिजारत करना प्रारम्भ कर चुकी थी। अलबत्ता यह तिजारत उस समय केवल अदला बदलीके रूपमें ही थी, परन्तु वह धीरे धीरे इस रूपको छोड़कर अपने असली रूपकी ओर प्रगति कर-रही थी। इन लोगोंकी इस बढ़ती हुई तिजारतने उन्हें उसका हिसाब किताब रखनेकी कलाका आविष्कार करनेकी ओर झुकाया और इसीसे इतिहासज्ञोंके मतसे मनुष्यने जो दूसरा आविष्कार किया वह बहीखातेकी विद्या सम्बन्धी था। अस्तु हमारी यह विद्या भी प्राचीनतम होनेका दावा रखती है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह बात स्पष्ट है कि नामा लेखा भी इस संसारके प्रारम्भमें ही आविष्कृत हुआ होगा। और वह भी इतने पहले कि जब मनुष्यको किसी भी प्रकारकी नीति (कानून) की आवश्यकता न प्रतीत हुई होगी और न औषधोपचारकी विद्याका ध्यान आया होगा। क्योंकि यह एक प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी फालतू चीजका दूसरों की फालतू चीज़से विनिमय करना चाहता है। इसका हेतु मानवी प्रकृतिका वैचित्र्य प्रेम है। मनुष्य सदा विभिन्नताको चाहता है। एक से खाने, पीने, एकसे रहने सहने आदिमें उसे रस नहीं मालूम पड़ता। अतएव वह यह चाहता है कि उसके पासकी वस्तुका वह किसी दूसरी वस्तुसे जिसे वह चाहता है बदला करे। इस बदलाईमें उसे हिसाब किताब लगानेकी आवश्यकता होती है। अपनी कितनी चीज़का वह दूसरेकी कितनी चीजसे बदला करे कि उसे किसी तरहका नुकसान न उठाना पड़े, इस हिसाबके लगानेमें प्राचीन समयकी असभ्य जातियां सबसे पहले हाथ और पैरकी अंगुलियोंका उपयोग करने लगी थीं। इसीलिए ५ अथवा १० की संख्या हिसाब किताबकी इकाईका काम देती थी। जो समाज एक हाथकी ही अंगुलीसे अपना हिसाब किताब लगाती थी वह पांचको इकाई और जो दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे हिसाब करती थी वह दसको इकाई मानती थी। यही कारण है कि यूनानियोंने ५ और मेक्सिको वालोंने २० और अन्य लोगोंने १० अथवा इनके कई गुनेको हिसाब किताबकी इकाई माना था।

उपर्युक्त अनुमानोंके अतिरिक्त भी बहीखातेकी प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है। प्राचीन सभ्यताके जो कतिपय भग्नावशेष अभी तक मिलते हैं उनमें इस विद्याके कईएक ज्वलन्त प्रमाण मिलते हैं। यह प्रमाण इस विद्याके प्रेमीजनोंको आनन्दित किये बिना नहीं रह सकते। माना कि आजकलकी जितनी प्रौढ़ावस्था इस विद्याकी उस समय न थी, परन्तु फिर भी क्या हमारे लिए यह कम संतोष और आनन्दकी बात हो सकती है कि हमारे पूर्वज इसके ज्ञानसे भी उसी प्रकार परिचित थे जैसे कि अन्यान्य विद्याओंसे। हम इसमें उन्नति करनेका श्रेय अपने ऊपर ले सकते हैं, परन्तु यह नहीं कह सकते कि अन्यान्य बातोंकी भांति वह भी हमें हमारे पूर्वजोंसे उत्तरदानके रूपमें नहीं मिली है।

बैबिलोनके इतिहासकी ओर ज़रा दृष्टिपात करिये। पुरातत्ववेत्ताओंको इस इतिहास प्रसिद्ध देशके भग्नावशेषोंमें कई एक ऐसी मिट्टीकी ईंटें (Tablets तख़्तियां) मिली हैं कि जिनपर हिसाब किताब लिखा हुआ है। यह ईंटें कच्ची मिट्टीकी तैयार करके धातुकी क़लमसे लिखी गई हैं

और लिखनेके पश्चात् अवेमें अथवा भट्टीमें पकाकर पक्की कर दी गई हैं। इन ईंटोंमेंसे कई एक तो ईसाके पूर्व २६०० वर्षकी पुरानी हैं। और इनपर कर्ज़ोंका, साझे आदि अन्य व्यापारिक बातोंका उल्लेख मिलता है। इन्हीं ईंटोंसे हमें एक जगह पता लगता है कि एजीबी (Egibi) के निवासी ईसाके पूर्वकी ४थी शताब्दी तक बैबिलोन देशमें सराफी और लेनदेनका धंधा करते थे। इन लोगोंके हिसाब किताबसे भरी हुई कई ईंटें ¾ इञ्च × ¾ इञ्चसे लगाकर ८ इञ्च × १२ इञ्च तककी मिलती हैं। इन ईंटोंके दोनों तरफ इन लोगोंके हिसाब किताब लिखे हैं। कई ईंटें तो ऐसी भी मिली हैं कि जिनके दोनों तरफ ही नहीं वरन् मोटाईके चारों तरफ भी हिसाब किताब लिखा है। इन ईंटोंमेंसे बहुतेरा बिना तारीख़की हैं। इनकी परीक्षा करनेवालोंका अनुमान है कि उस समयके व्यापारी लोग भी प्रत्येक व्यापारका दो बार उल्लेख किया करते थे। जिन ईंटोंपर वह पहले उल्लेख करते थे उनमें न तो उसका पूरा ब्योरा देते थे और न तारीख़। इसके बाद इन्हीं लेनदेनोंको वह दूसरी ईंटोंपर जो इनसे बड़ी और लंबी चौड़ी हुआ करती थीं पूरे ब्योरेके साथ मिती लिखा करते थे। इन ईंटोंके लिखनेमें वह बड़ी सावधानी रखते थे। यह बात उनकी लिखावटकी सफ़ाई आदि देखनेसे भलीप्रकार विदित होती है। इन मिट्टीकी ईंटोंके स्थानमें पीछे जाकर पपीरसकी ईंटें कि जिनपर धातुकी कलमके बजाय बरूसे लिखा जा सकता था काममें आने लगीं।

रोमकी रिपब्लिकके समयमें इस विद्याका विकास और प्रचार हुआ। इसके अन्तर्गत कई प्रकारके कर वसूल किये जाते थे; अस्तु उन सबका जुदा जुदा हिसाब रखना पड़ता था। इसलिए सरकारमें हिसाब किताबकी पद्धति बड़ी बढ़ी चढ़ी थी। उस समयमें इस विद्याका क्षेत्र केवल सरकारी महकमों तक परिमित नहीं था। जनसाधारणमें भी इसका प्रयोग प्रचलित था। रोम राज्यके प्रत्येक परिवारमें एक बही रक्खी जाती थी। इस बहीमें घरका बड़ा बूढ़ा घरकी आय और व्ययका लेखा रखता था। इस बहीको वह लोग (adversaria) एड्वरसरिया कहा करते थे। इस रोज़नामचेसे प्रतिमास आय और व्ययकी क़लमें (items) एक और बहीमें लिख ली जाती थीं। इस बहीको वह लोग कोडेक्स एक्सेप्टी येट डिपेन्सी (Codex Accepti et Depensi) अथवा आय और व्ययका रजिस्टर कहा करते थे। इसमें ऋणीकी रज़ामंदीसे (जमा खर्च) दर्ज की गई प्रत्येक रक़म सत्य मानी जाती थी। रिपब्लिक द्वारा प्रारम्भ की हुई यह नामा लेखाकी पद्धति रोमन साम्राज्यमें फिर भी काम आती रही। इस साम्राज्यके ही अन्तर्गत साल भरके खर्चका बजट बनाये जानेका रिवाज भी प्रचलित हुआ।

अब इस पुरानी कथाको छोड़कर ज़रा मध्यकालके इतिहासकी ओर दृष्टिपात करिये। ग्रेट ब्रिटेनके इतिहास लेखकोंका मत है कि वहांपर इस विद्याके अस्तित्वका पता ईसाकी १२वीं शताब्दीसे लगता है। सबसे पहला जो इस विषयका प्रमाण है वह सन् ११३०-३१ के सालका इङ्गलैंड और स्काटलैंडके एक्सचेकरका हिसाब है। इस हिसाबको वह लोग इङ्गलिश पाइपरोल कहा करते थे। इसके पहले भी हिसाब किताब रखनेकी कोई पद्धति वहांपर थी अथवा नहीं यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। हां, इस विषयका विश्वस्त अथवा अविश्वस्त कैसा भी प्रमाण अभी तक पुरातत्वज्ञोंको नहीं मिला है। यह पाइपरोल प्रति वर्ष तैयार किया जाता था। इसमें इङ्गलिस्तानके राजाका वहांकी सरकारको कितना देना लेना था वह सब हिसाब लिखा जाता था। यह खज़ानेमें (Exchequer) राज-खज़ांची द्वारा

तैयार किया जाता था। इसकी एक प्रति चैंसलरको और एक प्रति राजाको भेज दी जाती थी। परन्तु राजाको कापी भेजनेकी पद्धति पीछेसे छोड़ दी गई। प्रति वर्ष ईस्टर और माइकलमा (Michaelmas) प्रत्येक काउन्टीके शेरिफके नाम हुक्म जारी कर दिया जाता था कि एक नियत तारीखको एक्सचेकरके दफ़्तरमें हाज़िर होवें, और अपने अपने इलाकेकी मालगुज़ारी (Revenues) आदिका हिसाब पेश करें। प्रत्येक ईस्टरपर यह शेरिफ लोग मालगुज़ारी आदि लगानका रुपया अपने हिसाबमें जमा कराते थे और उन्हें इसकी रसीदके रूपमें एक टैली (Tally) मिलती थी। यह टैली लकड़ीका एक डंडा हुआ करती थी। इसपर लेनदेनका हिसाब लिखा रहा करता था। पौंड, शिलिङ्ग और पैंस इस टैलीपर खत (notch) लगाकर दर्शा दिये जाते थे। यह टैली लिख लेनेके पश्चात् इस प्रकार दो टुकड़ोंमें तोड़ दी जाती थी कि दोनों एक ही रक़मका देन लेन दर्शाती रहें। ईस्टरके बाद आनेवाले माइकलमापर फिर यह शेरिफ लोग एक्सचेकरके यहां उपस्थित होते थे। इस समय अपने इलाकेकी सारे सालकी मालगुज़ारी आदिका रुपया उन्हें देना पड़ता था। और यह इस टैलीकी सहायतासे किया जाता था। शेरिफके पासवाला टैलीका टुकड़ा एक्सचेकरके पासमें पड़े हुए टुकड़ेसे बराबर मेल खा जाता तो यह समझ लिया जाता कि पहले पेटे जमा कराई हुई रकम जो कि इस हिसाबमें दरसाई गई हैं ख़ज़ानेमें आ चुकी हैं। बाक़ीके लगानका रुपया खर्च आदि और सिलक बाकी द्वारा तय जमा खर्च करा दिया जाता था।

एक्सचेकर द्वारा ऐसी कड़ी हिसाबकी पद्धति चलाये जानेसे बहुतसे कारपोरेशन और अन्तमें बहुतसे ज़मींदार जागीरदार भी अपनी आय व्ययका हिसाब किताब रखने लगे। ऐसे खानगी हिसाब किताबका प्रमाण, हाउस होल्ड रोल आफ एलनार (Household Role of Eleanor), लीस्टरकी काउन्टसका सन् १२६५ का मिलता है।

इसी समयके लगभग, इतिहासज्ञोंको इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि उस देशमें मेनर्सका सरवे भी किया जाता था। इस सरवेमें ज़मीनकी मपतीके अलावा घरोंका, गाय, बैल घोड़े आदि पशुओंका, काश्तके हथियारोंका, काश्तकारोंका, व काश्तकारीकी शर्तबन्दी आदिका भी वर्णन रहता था। इसीके साथ साथ एक दूसरा भी पत्रक तैयार किया जाता था कि जिसमें आय और व्ययका ब्यौरा दिया जाता था।

जो जो कारपोरेशन उस समय अस्तित्वमें थे वह भी ऐसे हिसाब किताब रखते थे, यह बात भी हमें लंडनके चैम्बरलेनके सन् १३३४ ई० के हिसाबको देखनेसे ज्ञात होती है।

प्रायः १५वीं शताब्दीके अन्ततक उस देशमें पाउन्ड शिलिंग और पैंस आदि रोमन अक्षरोंमें लिखे जाते थे। परन्तु इस समयसे और उसके पश्चात्से वहांपर भी अरबी अंकोंका, जिनका कि प्रयोग इटलीमें लगभग १२वीं शताब्दीसे प्रचलित था, प्रयोग जारी होगया। परन्तु तब तक यह सब जगह काममें न आते थे।

१६वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक बहीखातेका प्रयोग सब जगह होने लगा था। क्या सरकारी दफ़्तरोंमें, क्या टाउन और सिटी कारपोरेशनोंमें, क्या खानगी और पब्लिक कम्पनियोंमें, सर्वत्र आय व्ययका हिसाब रखा जाता था। परन्तु उस समयका बहीखाता आजकलका सा संमिश्रित नहीं था। उस समय यह केवल नगद लेन देना और क्रय विक्रय आदिकी जांच करनेके लिये प्रयोग किया जाता था।

इस विद्याका परिचायक शब्द अंगरेज़ीमें बुक कीपिंग अथवा अकाउन्टेन्सी है। अका-

उएटेन्सी फरासीसी भाषाके शब्द (compter) काम्पटरसे, जोकि लेटिनके काम्प्युटेअर (computare) शब्दसे उत्पन्न हुआ है, व्युत्पन्न है। अंगरेजी भाषाका यह शब्द पहले आजकलकी तरह न लिखा जाकर अकाम्पटेन्ट (accomptant) लिखा जाता था, जो उसका उपर्युक्त फरासीसी भाषाके शब्दसे व्युत्पन्न होना सिद्ध करता है। धीरे धीरे इस शब्दका भी लोप होगया और अब वह शब्द अकाउन्टेन्ट (accountant) लिखा जाने लगा है। यही इस विद्याका संक्षिप्तमें पश्चिमीय इतिहास है।

विज्ञान और ईश्वर

जब मनुष्य देखता है तब पहले उसको बाहिरी सृष्टि दिखलाई देती है और उसके यह मालूम होता है कि यह सृष्टि अनेक नक्षत्रोंका एक समूह है। यही नहीं बल्कि यह सृष्टि और भी कुछ है जिसका उसे कुछ पता नहीं। यद्यपि मनुष्योंने दूरबीन ले आकाशको छानडाला तो भी इसकी सीमाका पता नहीं लगा। दीर्घतामें तो इसकी कोई सीमा ही नहीं परन्तु लघुतामें भी यह असीम है। इस लघुताकी असीमताको देखनेके लिए हमें भीतर घुसना चाहिये।

रसायनज्ञोंने अपनी अद्भुत विचारशक्ति और निर्माणशक्ति द्वारा यह मालूम किया है कि जिन पदार्थोंसे हमारी भूमि बनी है उन्हीं पदार्थोंसे नक्षत्रादि भी बने हैं। अभी तक ऐसा कोई पदार्थ नहीं मालूम हुआ है जो आकाशी लोकोंमें हो और हमारे लोकमें न हो। इससे मालूम होता है कि सारे ब्रह्मांडकी बनावट एकसा है और जिन पदार्थोंसे सूर्यादि तारे बने हैं उन्हींसे एक कण भी बना है। इस प्रकारसे विचार करनेपर यही विश्वास होता है कि यदि मनुष्य जलके एक बिन्दुका पूर्ण रहस्य जानले, तो वह सब पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका भेद जान जायगा और समस्त घटनाओंका समझ लेना उसके लिए बाएंहाथका खेल हो जायगा।

जब एक जल बिन्दु अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखा जाता है तो उसमें धूल, गरदा, कीड़े इत्यादि दिखलाई देते हैं, जो जलमें साधारणतः पाये जाते हैं और जलसे भिन्न होते हैं। यह पदार्थ जलसे छान कर अथवा और किसी रीतिसे निकाल दिये जायं तो अणुवीक्षण और अधिक सहायता नहीं दे सकेगा और उसके द्वारा देखनेसे केवल जल स्वच्छ दिखाई पड़ेगा। यहां पर रसायनज्ञ आता है और कहता है कि जल अब भी निर्मल नहीं है। इसमें हर प्रकारकी गैसें जो हवामें हैं घुली हुई हैं। खौलाकर गैसोंको भी अलग करदिया और स्रुत जलका नमूना सामने अध्ययन करनेके लिये रखा है। देखनेमें यह निर्मल और सरल बोध होता है। प्रकृतिमें इसकी प्रचुरता, महत्व और उपयोगिता देख मनुष्य इसे मौलिक समझते थे, परन्तु आजकल रसायनज्ञ इसे तत्व नहीं समझते बल्कि यौगिक मानते हैं। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि यह जल दो गैसोंके संयोगसे बना है, जो गुणोंमें ज़रा भी जलके समान नहीं हैं। इन गैसोंका नाम है ओषजन और उज्जन। इन गैसोंको मौलिक मानते हैं। कुल मिलाकर लगभग ८४ मौलिक हैं। इन्हीं ८४ तत्वोंसे सारा ब्रह्माण्ड बना हुआ है। हमारी पृथिवीकी, हर वस्तु हलकी, भारी, गैस, द्रव, ठोस, काली सफेद, धातु, यहां तक कि जीवोंके शरीर भी इन्हींसे बने हैं। ज्योतिष शास्त्र भी रसायनज्ञकी बातोंकी पुष्टि करता है और कहता है कि जो कुछ दूरबीन इत्यादि यंत्रोंसे अभी तक मालूम हुआ है वह सब रसायनज्ञके उपरोक्त कथनको सच बतलाया है।

यहां तक यह मालूम हुआ कि वह जल दो तत्वोंका बना है। अब देखना है कि यह तत्व क्या हैं। रसायनज्ञका मत है कि प्रत्येक तत्व अत्यन्त छोटे छोटे कणोंका बना हुआ है जिनको वह परमाणु (atoms) कहता है। एक तत्वके सब परमाणु एक ही प्रकारके होते हैं, परन्तु दूसरे तत्वके परमाणुओंसे बिलकुल भिन्न होते हं। सोना क्यों सोना ही है, वह चांदी क्यों नहीं है? इसका उत्तर रसायनज्ञ यही देता है कि सोनेके परमाणु सोनेके ही बने होते हैं और इन परमाणुओंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता है और न उनके और अधिक छोटे भाग हो सकते हैं।

जब एक तत्वके परमाणुका योग दूसरे तत्वके परमाणुके संग होता है तब एक नवीन वस्तु बनजाती है, जो प्रथम दोनों तत्वोंसे बिलकुल भिन्न गुणोंकी होती है और जिसको यौगिक (compound) कहते हैं। यौगिक क्यों बन जाते हैं? इसका कारण रसायनज्ञ एक शक्ति बतलाता है जिसको वह युयुत्सा chemical affinity कहता है। वह कहता है कि जितनी शक्ति और चंचलता इस संसारमें दिखलाई देती है वह अधिकतर युयुत्साके कारण है। जब कोयला जलता है तब वह ओषजनसे मिल जाता है; चाहे वह विद्युत उत्पन्न करनेके लिए जलाया जाय, चाहे एंजिन चलानेके लिये और चाहे रोटी पकानेके लिये। परन्तु कोयलेका जलना केवल इस रासायनिक शक्तिके कारण होता है। जब वनस्पति, मनुष्य अथवा अन्य कोई जीव अपने भोजनके पदार्थको पाते हैं तब भोज्य पदार्थ परिवर्तित होकर उनके शरीरके भिन्न भिन्न अंश बन जाते हैं। यह परिवर्तन रासायनिक होते हैं। इस कारण रासायनिक शक्ति ही सबके शरीरोंका कारण है। थोड़े दिन पहले पश्चिमीय रसायन शास्त्र यहीं तक पहुंचा था, यही बातें हमारे स्कूल और कालेजोंकी रासायनिक पुस्तकोंमें पढ़ाई जाती थीं।

रसायनज्ञोंका यह विश्वास था कि मौलिकोंके उपरोक्त परमाणु अखण्डनीय हैं अर्थात् पदार्थका सबसे छोटा भाग परमाणु है, जिसके और अधिक खंड नहीं हो सकते। परंतु अभी थोड़े दिन हुए कि फ्रांसके महाशय क्यूरी और उनकी धर्मपत्नीने एक ऐसी वस्तु ढूंढ़ी है जिसका नाम रेडियम है, जिससे यह विदित होता है कि परमाणुके भी खंड होते हैं। यह एक ऐसी अद्भुत और अत्यन्त उपयोगी वस्तु निकली है, जिसके द्वारा पदार्थ विषयक आन्तरिक ज्ञान और भी अधिक प्राप्त होता है। दूरबीन चाहे जितनी बड़ी हो जाय और चाहे जितनी शक्ति आकाशको बेधनेकी प्रदान करे—नक्षत्रोंके ऊपर नक्षत्र दिखलाती जाय—तो भी वह सब नक्षत्रोंको नहीं दिखला सकती, क्योंकि हमारी धारणा असीम है और अनन्त नक्षत्रोंका मानती है और दूरबीन अनन्त तक पहुंच नहीं सकती।

परन्तु यह नवीन आविष्कृत पदार्थ हमको संसारके भीतर बहुत गहरेमें ले जाती है और परमाणुओंसे भी अधिक सूक्ष्म वस्तुओंको दिखलाती है और ऐसे ऐसे चमत्कार करना सिखलाती है जो कि अभी तक हम कर नहीं सकते थे और न जानते ही थे कि किस प्रकार करने चाहियें। उस बड़े रसायनज्ञने, जिसने रेडियमको ढूंढ़कर निकाला है, इसको एक तत्व साबित किया है और अन्य तत्वोंकी भांति यह भी परमाणुओंका बना है, जैसे सोना सोनेके परमाणुओंसे और कोयला कोयलेके परमाणुओंसे बना है। परन्तु एक टुकड़ा सोनेका अथवा कोयलेका यदि स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता और न उसमेंसे कोई शक्ति निकलती है। पर रेडियम यदि योंही छोड़ दिया जाय उसमेंसे कई प्रकारकी

शक्तियां इतने परिमाणमें निकलती हैं जिनका विचार करना कठिन है। चाहे जितनी देरतक हम उसकी ओर देखते रहें, उसमें से शक्तियां निरन्तर निकलती ही रहतीं हैं और उसमें किसी प्रकारसे इनकी कमी भी नहीं होती और न स्वयम् रेडियम ही कम होता है।*

यह रसायनशास्त्रका एक सिद्धान्त है कि रोशनी और गर्मी किसी वस्तुसे तभी उत्पन्न होती हैं जब उसके परमाणु किसी दूसरी वस्तुके परमाणुसे सम्मिलित होते हैं और रोशनी गरमी तभीतक निकला करती हैं जबतक दोनों वस्तुओंका परिमाण कुछ न कुछ बना रहता है। परन्तु दोनोंका परिमाण कम ही होता जाता है, यहांतक कि जिस समय एकका भी अस्तित्व न रहा उसी समय रोशनी और गर्मीका उत्पन्न होना बन्द हो जाता है। परन्तु रेडियमका ऐसा हाल नहीं, वह लगातार रोशनी और गर्मी दिया ही करता है, पर तो भी उसमें कुछ कमी नहीं होती। इसका मसला तो मूसाकी जलती हुई झाड़ीका हो गया, जिससे रोशनी और गरमी निकलती थी पर स्वयम् नहीं जलती थी।

यहां एक बात और विचारमें आती है कि सम्भव है रेडियम उन वस्तुओंके समान हो जैसे कांच, जो सूर्यके सामने रखनेसे रोशनी गरमी देता है, परन्तु स्वयम् नहीं जलता और न कम होता है। अथवा फासफोरसके समान हो जो वायुके परमाणुओंसे टकराते ही स्वयम् जल उठता है। यद्यपि हमको हवा स्थिर मालूम होती है तो भी उसके परमाणु सदा चला फिरा करते हैं और इस गतिके लिए उनमें शक्ति रहती है, सम्भव है कि जब रेडियमसे वायुके परमाणु टकराते हों तब वह उस शक्तिको अपनेमें ले लेता हो और उसीको रोशनी और गर्मीमें परिवर्तन करके निकाल देता हो। इन बातोंकी भी परीक्षा की गई है और इन परीक्षाओंका फल यही निकला है कि चाहे जितना परिवर्तन भारमें किया जाय, चाहे जितना परिवर्तन गरमी और सरदीकी दशामें हो जाय अथवा चाहे किसी गैसके भीतर रेडियम रखा जाय तो भी उसका शक्ति—श्रोत जारी ही रहता है।* वह अपना कार्य अपनी साधारण चालके अनुसार करता ही जाता है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि रेडियमकी शक्ति उसके भीतरसे ही निकलती है और उसका सम्बन्ध किसी बाहरी पदार्थ से नहीं है।

रेडियमके परमाणुकी शक्ति अन्य तत्वोंके परमाणुओंकी शक्तिसे बिलकुल भिन्न है। सबसे बड़ा गुण इसके परमाणुका यह है कि उससे बड़ी तीक्ष्ण किरणें निकलती हैं और अन्य वस्तुओंको प्रकाशित करती हैं। रेडियमके इस गुणका नाम रेडियो-एक्टिविटी अर्थात् रेडियमकी चंचलता रक्खा गया है। परन्तु यह गुण संसारकी लगभग सभी वस्तुओंमें है परन्तु अत्यन्त कम अवस्थामें। इससे विदित हुआ कि रेडियम किसी न किसी परिमाणमें सर्वत्र विराजमान है और उसकी शक्ति ही विचित्र नहीं बल्कि उसका विस्तार भी विचित्र है।

अब तो रसायनज्ञोंकी गति मति पलट गई और अपने अनुभवोंके अनुसार कहते हैं कि परमाणु जिनको अभी तक हम लोग अखण्ड समझ रहे थे, वस्तुतः अत्यन्त छोटे कणोंके बने हैं जो कि प्रबल शक्तियोंके द्वारा एक दूसरेसे जुड़े हुए रहते हैं और यह शक्तियां हर परमाणुके भीतर विद्यमान हैं।

*कई वैज्ञानिकोंने यह पता लगा लिया है कि रेडियममेंसे कितनी शक्ति निकलती है और वह कितने दिन जीवित रह सकता है। रेडियमकी आयु १०००००० वर्ष है। और इस कालमें वह १०००००००००० कलारी गरमी बाहर निकालता है।—सं०

*इस कथनमें भी अतिशयोक्ति है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। भार शब्द दबावके अर्थमें प्रयुक्त हो, तो दूसरी बात है।—सं०

जिस प्रकार विद्युतादि शक्तियोंकी नाप जोख पदार्थ-विज्ञानी कर लेते हैं, उसी प्रकार परमाणुके भीतरकी शक्तियोंकी भी माप की गई है, जिनके परिमाण अविश्वसनीय बोध होते हैं। इस संसारकी जो शक्तियां जैसे रासायनिक शक्ति भूमिकी आकर्षण शक्ति, गरमीकी शक्ति, प्रकाशकी शक्ति, इत्यादि जो अभी तक मनुष्योंको मालूम थीं, वह सब इस परमाणुके भीतरकी शक्तिके सामने तुच्छ पड़ गईं। परमाणु जिसको अभीतक लोग जड़ और अटूट समझ रहे थे और जो बाहरी शक्तियोंके कारण चला फिरा करता था, वास्तवमें संसारकी अधिकांश शक्तियोंका एक हौज़ है। उन शक्तियोंका नाम इंट्राएटामिक शक्ति (Intra-atomic energy) अर्थात् परमाणुकी आन्तरिक शक्ति रखा गया है। यह शक्ति अन्य सब शक्तियोंसे, जो अभी तक पश्चिमीय विज्ञानियोंको मालूम हुई हैं, बढ़कर निकली है और इसके द्वारा वह अब संसारको एक नये ढंगसे समझ रहे हैं। इस शक्तिको भारतवासी प्राचीनकालसे जानते आ रहे हैं और इसीका नाम भारतवासियोंने तन्मात्रिक शक्ति रखा है।

अभीतक प्रचण्ड अग्निकी शक्ति नक्षत्रोंका लड़ना और टूटना अथवा प्रकाशकी शीघ्रता बड़े आश्चर्यसे देखा जाता था, परन्तु यह सब बातें तन्मात्रिक शक्तिके सामने कुछ भी नहीं हैं।

पश्चिमीय विज्ञानी कहते हैं कि यह नवीन शक्ति संसारको एक नवीन ढंगसे समझनेके लिये ही नहीं है वलिक यह एक व्यवहारिक वस्तु है, यह एक अर्थ साधक और दाल रोटीकी बात है। हम शक्तिके ऊपर जीवन निर्वाह करते हैं, हम भूमिसे काले पत्थर खोदते हैं और उनके जलानेसे जो शक्ति उत्पन्न होती है उससे अपने जीवनके बहुतसे कार्य सम्भालते हैं। हम खेतोंमें नाज बोते हैं, जो सूर्यसे शक्ति ग्रहण करते हैं और उसी शक्तिपर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। हम सदा अधिक शक्ति चाहते हैं। हमारी सदाकी आवश्यकता यही है कि शक्तिका सुलभ मूल-स्थान हमको मिल जाय। हम सोचा करते हैं कि क्या हम ज्वारभाटेको नहीं नाथ सकते? सूर्यके प्रकाशको फांसकर क्या हम कलें नहीं चला सकते? इत्यादि। वस्तुतः हमको भास होता है कि यदि हमको असीम शक्ति मुफ़्तमें मिल जाय तो यह पृथ्वी वैकुण्ठ हो जाय। तब हमको ट्राम, रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, पुतलीघर, भट्टे, छापेकी कलें इत्यादि सभीके चलानेमें कुछ व्यय नहीं करना पड़ेगा और हम अपनी सभ्यताको अधिक उच्चश्रेणीकी बना सकेंगे।

रेडियम और उसकी चंचलता हमसे कहती है कि वास्तविक असीम शक्ति बिना कुछ व्यय किये हमको मिल सकती है। यही नहीं बल्कि वह हमारे हाथमें ही रखी हुई है, यदि हम केवल उसके ऊपर अधिकार पानेकी विधि जान लें। इस समय जैसे हम मोटर एंजिनोंके चलानेमें विद्युतकी चिनगारी वायु और पेट्रोलके मिश्रणके भीतर भेजते हैं, उसी प्रकार यदि हम परमाणुको तोड़ सकें तो फिर हमको और कुछ काम करनेको नहीं रह जायगा। तब हम ऐसे बड़े बड़े कार्य कर सकेंगे जिनको मनुष्योंने अभीतक स्वप्नमें भी नहीं देखा था।

माननीय आर. जे. स्ट्रट महोदयने रेडियमके ऊपर कुछ अधिकार प्राप्त किया है और उसके द्वारा एक घड़ीको चलाया है, यदि घड़ीके पुर्ज़े ठीक बने रहे तो वह हज़ारों वर्षों तक चलती रहेगी। परन्तु रेडियम एक अति दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तु है। वह मिट्टी, बालू, अथवा हवासे बिलकुल भिन्न है, क्योंकि उसके परमाणु सदा टूटा फूटा करते हैं। जब हम उसकी चालको रोकने अथवा बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं तब हम निष्फल होते और जब हम अन्य तत्वोंके परमाणुओंकी चाल जो बहुत धीमी है बढ़ाना चाहते हैं तब भी निष्फल होते हैं।

हमको जितनी शक्तिकी आवश्यकता है उस से कहीं अधिक शक्ति परमाणुके भीतर भरी हुई है, परन्तु अभीतक किसीके हाथमें उसके खोलने की कुञ्जी नहीं लगी है। यद्यपि संसार भरके विद्याके कार्यालय इन बातोंकी खोजमें लगे हुए रसायन हैं तोभी अभीतक सफलता प्राप्त नहीं हुई है। परन्तु रसायनज्ञोंका यह पूर्ण विश्वास है कि इसका पता अवश्य लग जायगा और सौ वर्षके भीतर ही सफलता प्राप्त हो जायगी। जब यह मालूम हो जायगा तब मनुष्योंके सब कार्य और कार्य्यालय बदल जायंगे। फिर कोयलेको किसी कामके लिये कोई नहीं पूछेगा। केवल अजायब घरमें रखनेकी वस्तु हो जायगी!

यहांतक तो परमाणुके भीतरकी शक्तिका वर्णन हुआ। अब परमाणुकी बनावटको भी देखना चाहिये। लार्ड केलविनने कहा था कि यदि एक जलका बिन्दु इस पृथ्वीके बराबर बढ़ा दिया जाय तब उसके प्रत्येक अणुका परिमाण एक क्रिकेटके गेंदके बराबर होजायगा। उपरोक्त कथनका तात्पर्य सबसे छोटी वस्तुका केवल छोटापन दिखलानेका है, परन्तु इस बीसवीं शताब्दीमें विज्ञानवेत्ताओंको व्यवहारिक अनुभवोंसे यह मालूम हुआ है कि अणु पदार्थका सबसे छोटा भाग नहीं है, बल्कि इसके भी अनेक भाग हैं और परमाणुकी बनावटकी तुलना सूर्य सम्प्रदायके संग देते हैं। जैसे सूर्य सम्प्रदायके नक्षत्र एक दूसरेसे करोड़ों कोसकी दूरीपर रहते हुए अत्यन्त शीघ्रतासे दौड़ा करते हैं और एक आकर्षण शक्तिके द्वारा अपने अपने स्थानमें बने भी रहते हैं उसी प्रकार परमाणविक सम्प्रदायके नक्षत्र अर्थात् (इलेक्ट्रोन) विद्युत्कण एक दूसरेसे बहुत दूरीपर हैं और वह सूर्य सम्प्रदायके नक्षत्रोंसे कहीं अधिक शीघ्रगामी हैं। यदि हम परमाणविक सम्प्रदायके सूर्यके पास पहुंचना चाहें तो हमारी यात्रा वैसी ही होगी जैसे वरुण तारेकी सूर्यकी ओर। और जैसे जैसे हम परमाणविक सूर्यकी ओर बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे हमारी उन्नति करनेकी चाल भी बढ़ती जाती है। परन्तु हम अभी वहां तक पहुंच नहीं सके हैं, क्योंकि उस रास्तेमें हमको ऐसी ऐसी चीज़ें मिल जाती हैं जोकि हमारे ध्यानको अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं; जिस प्रकार वरुण नक्षत्रको जो सूर्यकी ओर जा रहा है, उसे बृहस्पति बीचमें ही अपनी ओर आकर्षित करले और उसको सूर्य तक न पहुंचने दे। यह चीज़ें जो हमें रास्तेमें मिलती हैं ऐसे आश्चर्यजनक गुण रखती हैं, जो हमारे मनके हाथोंको पकड़ाई भी नहीं देते हैं। इनको पश्चिमीय विज्ञानवेत्ता इलेक्ट्रोन कहते हैं, जिनसे परमाणु बने हैं और जो परमाणुओंके भीतर अद्भुत शीघ्रतासे घूमा करते हैं और जिनकी चलखुर एक पल (Second) में हज़ारों मीलकी हो जाती है। इनके भीतर ऋण विद्युत Negative electricity भरी रहती है जिसके कारण उनका निराकरण होता है। परन्तु धनात्मक विद्युत Positive electricity की आकर्षण शक्तिके द्वारा वह परमाणुके भीतर अपने अपने स्थानपर बने रहते हैं। जब परमाणुके भीतर यह धनात्मक विद्युत कम होजाती है अथवा वहांसे बिलकुल निकल जाती है तब यह इलेक्ट्रोन छुटकारा पाते हैं और धड़ाकेसे फटने लगते हैं और परमाणुके छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं। परमाणुके भीतरकी शक्ति वैद्युत है और यह उसी विद्युत शक्तिकी जातिकी है जिसे हम लोग जानते हैं। परन्तु इसका परिमाण हमारे विचारके बाहर है।

इन इलेक्ट्रोनोंको भारतवर्षके प्राचीन ऋषियों और मुनियोंने भी मालूम किया था जिनका वर्णन सांख्य शास्त्र तथा अन्य शास्त्रों और पुराणोंमें भी पाया जाता है। इनको वह तन्मात्र कहते थे।* इनके जो गुण प्राचीन भारतवासियों-

*इसका प्रमाण क्या है?—सं०

को मालूम थे वही गुण आजकलके विज्ञानवेत्ताओंने भी निकाले हैं। भारतवर्षकी प्राचीन पुस्तकोंसे मालूम होता है कि एक धातु दूसरी धातुमें परिवर्तित हो जाती है जैसे तांबा सोनेमें, अथवा लोहा चांदीमें। परिवर्तित हो सकता है और इस कार्यके करनेके लिये विधि भी दी हैं। इस बातको पश्चिमीय विज्ञानवेत्ता अभी तक बिलकुल नहीं मानते थे और भारतवासी भी इस परिवर्तनको बड़े सन्देहके साथ देखते थे। परन्तु जबसे पश्चिमीय विज्ञानियोंने रेडियम और उसकी चंचलता पर काम करना आरम्भ किया तबसे यह मालूम होने लगा कि एक तत्व दूसरेमें परिवर्तित हो जा सकता है और रेडियम, हीलियम, यूरेनियम, थोरियम तत्वोंको एक दूसरेमें परिणत होते देखा भी है, जिससे संभव जान पड़ता है कि अन्य धातुओंसे सोना चांदी बन सकते हैं।

पश्चिमीय विज्ञानी कहते हैं कि जब हम इन तन्मात्रोंका निरीक्षण करते हैं तब हमको इनके गुण बिलकुल अ-पदार्थ-मय बोध होते हैं, वह विद्युतके कण हैं और विद्युत स्थूल वस्तु नहीं है। इससे विदित होता है कि पदार्थके परमाणु विद्युतसे बने हैं और विद्युत केवल शक्तिका एक रूप है। अतएव शक्तिही सब चीजोंका मूल है और शक्तिने ही स्वयम् परिवर्तित होकर सब स्थूल रूप धारण करलिये हैं। वह कहते हैं कि जैसे जैसे हम अधिक पदार्थके भीतर घुसते हैं वैसे वैसे अधिक हमको अनन्तका सामना करना पड़ता है। हमारे केवल छूनेसे स्थूल रूप उड़जाते हैं, मूर्ति अमूर्ति हो जाती है, पदार्थ शक्ति हो जाती है और यद्यपि परमाणु बनते हैं किन्तु वह थोड़े समय तक रहते हैं और फिर नष्ट होजाते हैं; परन्तु शक्ति जैसीकी तैसी सदा बनी रहती है। जो चीज दिखलाई देती है वह थोड़े समयके लिये है अर्थात् उसका नाश अवश्य होगा, जैसा श्रुति कहती है—"यद्दृष्टं तन्नष्टं"। और जो दिखलाई नहीं देती वह सदा बनी रहती है अर्थात उसका नाश नहीं होता। चाहे हम बाहरकी ओर देखें अथवा भीतरकी ओर, हमको हर ओर एक अनन्त और अमर शक्ति देख पड़ती है, जिससे सब वस्तुएं निकलती हैं और जिसके कार्य देखकर हम उसे ईश्वर कह सकते हैं।

पश्चिमीय विज्ञानियोंके उपरोक्त अनुभव और कथनका तात्पर्य यह है कि इस सृष्टिकी खोज करनेपर उन्होंने अभी तक दो वस्तुयें पाई हैं—एक तो दृश्य पदार्थ, जो अनित्य है और दूसरी शक्ति, जो दृश्यसे पृथक् है, जिसमें दृश्य लय हो जाता है और जो नित्य है और जिसको वह ईश्वर कहनेको तैयार हैं। इस विचारको भारतवासी नित्यानित्य विवेक कहते हैं।

यद्यपि देखनेमें शरीर अनन्त देख पड़ते हैं, पर यह सब एकही शक्तिसे वर्तते हैं, अतः एक शक्ति ही सर्वकर्ता है। साधारण लोगोंका ध्यान केवल इन नाना प्रकारके शरीरोंकी ओर रहता है, परन्तु विवेकी लोग इन शरीरोंके भीतरकी वस्तु देखते हैं—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

वह लोग प्राणिमात्रको एकही समान इस प्रकार देखते हैं कि ऊपरसे देखनेमें देह तो अलग अलग हैं; पर भीतर सबके एकही वस्तु है। यह शक्ति कानमें रहकर अनेक प्रकारके शब्दका ज्ञान करती है, त्वचामें रहकर शीत और उष्णको जानती है और चक्षुमें रहकर अनेक पदार्थोंके देखनेका ज्ञान करती है तथा रसनामें रहकर रस, घ्राणमें रहकर गन्ध और कर्मेन्द्रियमें रहकर नाना प्रकारके विषय-सुखका अनुभव करती है। इस प्रकार वह सूक्ष्म रूपसे अनन्तमें रहकर स्थूलकी रक्षा करती है।

इस शक्तिका मनुष्यको अनेक रूपमें भास होता है। इस कारण इसके अनन्त नाम हैं जैसे आद्यशक्ति, चेतनाशक्ति, संज्ञाशक्ति, जगज्ज्योति, सत्तारूप, द्रष्टा साक्षी, अन्तरात्मा, प्राण, इत्यादि। यद्यपि पश्चिमीय विज्ञानियोंने अभी तक इसके ऊपर आधिपत्य नहीं पाया है, तथापि भारतवर्षमें प्राचीन कालसे इसके ऊपर आधिपत्य करनेकी विधि प्रचलित है, जिसका वर्णन भगवान पतञ्जलिने अपने योग सूत्रोंमें किया है। प्राणायामका अर्थ यही है कि शक्तिके ऊपर आधिपत्य पाना। प्राण कहते हैं शक्तिको और आयाम कहते हैं आधिपत्यको। बहुतसे लोग इसी शक्तिको ही ईश्वर समझकर पूजते हैं, उसके संग प्रेम करते हैं, उससे प्रार्थना करते और कहते हैं कि यह शक्ति ही भक्तोंके संभालनेके लिये रूप धारण करके अवतीर्ण होती है, जिसको वह अवतार कहते हैं और उनके लिए शक्ति वैसी हो भी जाती है है:—

जिनके रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

इसलिये ऐसे मनुष्य जो शक्तिको ईश्वर मानते हैं, शाक्त कहलाते हैं।

परन्तु शक्ति चंचल है। इस कारण विकारी है और जितनी कुछ चंचलता है वह सब कल्पान्तमें नश्वर है। जैसे सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ शक्तिमें लय होजाते हैं, उसी प्रकार यह शक्ति भी निश्चल परब्रह्ममें लीन हो जाती है, जिसका पता सायंस अब तक नहीं लगा सकी है। और जो निश्चल है वह आदि, मध्य और अन्तमें समान है तथा निर्विकारी, निर्गुण, निरंजन और निष्प्रपञ्च है। सबमें सार वस्तु यही है और निदिध्यासनसे इसका साक्षात्कार होता है। निर्गुणमें अनन्य होनेसे सर्वज्ञता, व्यापकता और धन्यता प्राप्त होती है, यही सायुज्य मुक्ति है और इसीसे सब होनहार बातोंकी कुंजी मनुष्यके हाथ लग जाती है।

कुछ खेल और खिलौने

नित्यके जीवनमें बहुतसी घटनाएं ऐसी देखनेमें आती हैं जो बहुत ही साधारण प्रतीत होती हैं, पर उनका मर्म जान लेना अत्यन्त कठिन होता है। कुछ घटनाएं ऐसी भी देखनेमें आती हैं जो अत्यन्त असाधारण और अद्भुत जान पड़ती हैं, परन्तु वास्तवमें हैं उतनी ही सरल और साधारण जितनी कि पहली श्रेणी की।

पहला श्रेणीकी घटनाओंके कुछ उदाहरण लीजिये। लड़कपनमें प्रायः और बड़े होनेपर जब तब बहुतसे मनुष्य किसी लकड़ीको उंगला-पर खड़ा करनेका प्रयत्न किया करते हैं। कुछ आदमी तो इतने कुशल होते हैं कि पांच या दस मिनट तक इसी प्रकार लकड़ीको साधे रख सकते हैं। आपने देखा होगा कि साधक अपने हाथको थोड़ा इधर उधर हिलाता रहता है और सदा लकड़ीकी ओर ही देखता रहता है।

चित्र १४

बाज़ारमें एक खिलौना बिका करता है, जिसको हम अकडूखांकी उपाधि दिये देते हैं। इस खिलौनेका गुण यह है कि आप चाहे जितना उसे टेढ़ा करदें, यहांतक कि ज़मीन पर लिटा दें, तो भी हाथ हटाते ही उठ खड़ा होता है। आपकी अकड़में बाल बराबर अन्तर नहीं आता। बल्कि देखा यह जाता है कि एकबार जो हाथसे दबा कर उन्हें लिटा दें तो खड़े होनेपर देर तक सिर हिला हिला कर गुस्सा दिखाया करते हैं।
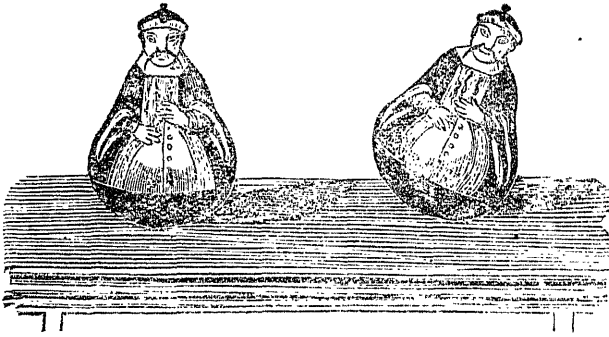
चित्र १५

जादूके तमाशे में आपने शायद देखा हो कि अण्डेको खड़ा कर देते हैं। साधारणतया अण्डा खड़ा नहीं रहता, पड़ा रहता है। जहां आप उसे खड़ा करके हाथ हटा लेते हैं कि वह ज़रासे हलचलसे फिर गिर पड़ता है।

दूसरी श्रेणीके खेलोंमेंसे हैं सरकसके बहुत से खेल, जैसे एक ठेलेमें लड़कीको बिठालकर ठेलातार पर ठेलकर ले जाना, या तारपर बाईसिकिल चलाना इत्यादि।

चित्र १६

इन घटनाओं तथा अन्य ऐसी ही घटनाओंका रहस्य जान लेनेका हम यहां प्रयत्न करेंगे।

किसी वस्तुको आप हाथमें उठाइये। वह भारी प्रतीत होगी। यदि आप हाथसे उसे छोड़ दें तो वह ज़मीन पर गिर पड़ेगी। वस्तुके भारी होने और हाथसे छूटनेपर ज़मीनपर गिरनेका कारण क्या है? भारतके प्राचीन गणितज्ञों और यूरोपके वैज्ञानिकोंने इस प्रश्नका यह उत्तर दिया है कि पृथ्वी प्रत्येक कणको अपनी ओर खींचती रहती है। पृथ्वीकी इसी आकर्षण शक्तिके कारण ही वस्तु भारी प्रतीत होती है और छोड़नेपर पृथ्वीपर गिरती है।

जिस वस्तुपर पृथ्वीकी जितनी आकर्षणशक्ति काम करती है, उतना ही उसका भार वजन या बोझ होता है। पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति पृथ्वीतलके भिन्न भिन्न स्थानोंमें एकसी नहीं है, यही कारण है कि उसी वस्तुका भार जुदे जुदे स्थानोंमें प्रायः जुदा जुदा होता है, परन्तु स्मरण रहे कि जितनी पदार्थकी मात्रा उसमें है वह ज्योंकी त्यों बनी रहती है। अतएव यदि उसे बांटोंसे तोलें तो सब जगह उतना ही भार बैठेगा, क्योंकि बांटोंके और उस वस्तुके भारोंमें समान अन्तर होता रहेगा, परन्तु कमानीदार तराजू (स्प्रिंग बैलंस) से तोलने से अन्तर स्पष्ट हो जायगा।

यह विषय विज्ञानके नवम्बर १९१९ के अंकमें चतुरबैरिस्टरवाले लेखमें बहुत मनोहर रीतिसे समझाया गया है। हम केवल इतना ही बतलाना चाहते हैं कि प्रत्येक वस्तुपर पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति काम करती है और उसीके कारण वह भारी प्रतीत होती है और आधारवञ्चित

होकर पृथ्वीपर गिर पड़ती है।

थोड़ा सा सोचनेपर ज्ञात हो जायगा कि शक्ति सदा निश्चित विन्दुपर और निश्चित दिशामें लगाई जाती है या काम करती है। जैसे आप यदि किसी बोझे को सरकाना चाहें, तो आपकी शक्ति उस स्थानपर लगेगी जहां आपने बोझेपर हाथ रख छोड़ा है और उस दिशामें लगेगी, जिसमें आपने हाथ तान रखा है। अगर आप पूरबकी ओर बोझेको ढकेलना चाहें तो उसी ओर बोझेको हाथोंसे या हाथमें थामे हुए औज़ार या रस्सीको सरकायेंगे। अब यह विषय विचारणीय है कि वस्तुओंपर गुरुत्वाकर्षण कहां काम करता है? वह एक प्रकारकी शक्ति है, तो उसका कार्य-विन्दु और दिशा क्या है? वस्तुतः वस्तुके प्रत्येक कणको पृथ्वी अपनी ओर खींचती है, इसलिए वस्तुके प्रत्येक कणपर एक शक्ति काम कर रही है। इनमेंसे प्रत्येक शक्तिकी दिशा पृथ्वीके केन्द्रकी ओर है, अर्थात् जिस कणपर लगी हुई शक्तिकी दिशा जाननी हो, उसे पृथ्वीके केन्द्रसे जोड़ दें तो उसकी दिशा मालूम हो जायगी। सामान्यतः यह समझ लेना काफी होगा कि यह शक्ति सीधी नीचेकी ओर काम करती है। यह सब शक्तियां, स्पष्ट है कि समानान्तर होंगी। इन सबका जोड़ वस्तुके भारके बराबर होता है।

यदि हम किसी वस्तुको इस प्रकार थामे रहना चाहते हैं कि वह गिरे नहीं तो हमें उसपर उसके भारके बराबर शक्ति लगानी पड़ेगी। मान लीजिये कि आपके हाथमें एक छड़ी है। आप उसका निचला सिरा डोरेमें बांधकर किसी स्प्रिंग बैलेन्सके कुन्देसे लटका दें। छड़ी नीचेकी ओर लटक जायगी। कांटेका स्थान पढ़कर आप उसका वज़न नोट करलें। अब डोरेको सिरेसे कुछ हटाकर बांध दें, छोड़नेपर छड़ी फिर सीधी लटक जायगी। डोरेको इसी भांति आप सरकाते जांय। हरबार बोझ उतना ही मिलेगा, पर सरकाते सरकाते एक स्थान ऐसा आयगा जब लकड़ी पड़ी हुई, पृथ्वीके समानान्तर अर्थात् क्षितिज धरातलमें लटकेगी। उक्त स्थानपर निशान लगा लीजिये। यह प्रयोग उंगलीपर लकड़ीको पड़ी रखकर और इधर उधर सरका कर भी कर सकते हैं, परन्तु पहले प्रयोगमें यह मालूम हो जाता है कि प्रत्येक स्थानपर उतनी ही शक्ति लगानी पड़ती है जितना कि उसका भार है।

अब यदि आप छड़ीमें उक्त स्थानपर छेद करके छड़ीको खड़ी या पड़ी अक्ष या कीलीपर चढ़ा दें तो आप देखेंगे कि प्रत्येक स्थितिमें वह साम्यावस्थामें रहेगी और वह कीलीके चारों ओर स्वतंत्रतासे और समतासे घूम सकेगी, न इधर झुकाव होगा न उधर, न नीचे न ऊपर।

इसी विन्दुको छड़ीका गुरुत्वकेन्द्र कहते हैं।

ऊपरके उदाहरणसे यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि गुरुत्व केन्द्र क्या होता है। परन्तु उसकी सरल परिभाषा देना कठिन है। किसी वस्तुका वह विन्दु, जिस पर उसे इस प्रकार साध सकते हैं कि वह प्रत्येक स्थितिमें साम्यावस्थामें रहे और स्वतंत्रतासे विन्दुके चारों ओर घूम सके, वस्तुका गुरुत्व केन्द्र कहलाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि यह विन्दु वस्तुके शरीरमें हो, जैसा कि एक छल्लेके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। (चित्र १७)

ग

चित्र १७

छल्लेके ऊपर कोई ऐसा विन्दु नहीं है, जिसमें उक्त गुण मौजूद हों। उसका गुरुत्व-केन्द्र उसका केन्द्र है, जैसा कि पहियोंका हुआ करता है। इसी प्रकार खोखली चीज़ोंके गुरुत्वकेन्द्र, उनपर नहीं होते। खोखले गोलेका गुरुत्वकेन्द्र, उसका केन्द्र होता है।
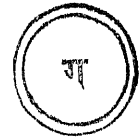
गुरुत्वकेन्द्र निकालनेकी विधि

एक सरल विधि तो हमने ऊपर बतला दी है, परन्तु उक्त विधिसे सब चीजोंका गुरुत्व केन्द्र नहीं निकल सकता। हम यहांपर एक और विधि बतलाते हैं जिससे जिस चीजका आप चाहें गुरुत्वकेन्द्र निकाल सकते हैं।

गुरुत्वकेन्द्रपर शक्ति लगानेसे वस्तुके भारका प्रभाव (पृथ्वीकी तरफ गिरना या विचलित होना) हम मिटा सकते हैं, अतएव यह हम मान सकते हैं कि उसी विन्दुपर वस्तुके सारे भारका प्रभाव पड़ता है। वैसे तो पृथ्वी वस्तुके प्रत्येक कणको अपनी तरफ खींचती है, परन्तु इन सब शक्तियोंका सम्मिलित प्रभाव एक शक्तिके बराबर होता है जो गुरुत्वकेन्द्रपर लगाई जा सकती है और जिसका परिमाण उस वस्तुके भारके बराबर होता है। यही कारण है कि गुरुत्वकेन्द्रपर ऊपरकी ओर शक्ति लगाकर भारका प्रभाव मिटा सकते हैं। अतएव यह हम मान सकते हैं कि प्रत्येक वस्तुका भार गुरुत्वकेन्द्रपर ही काम करता है (पृथ्वी जिस शक्तिसे उसे खींचती है वह शक्ति गुरुत्वकेन्द्रपर ही काम करती है)।

इतना समझ कर इस बातपर विचार कीजिये कि यदि हम किसी वस्तुको उस परके एक विन्दुमें रस्सी बांध कर लटका दें तो क्या होगा ? वस्तु एक स्थिति विशेषमें आकर ठहर जायगी। अब उसे ज़रा दायें बायें ऊपरकी ओर हटा दीजिये, हाथ हटानेपर वह फिर पूर्ववत आकर ठहर जायगी। हटानेसे वह फिर क्यों पूर्ववत् आकर ठहरी ? जो शक्ति उसको हटायी हुई स्थितिसे लौटा कर लाती है वह उसका गुरुत्व या भार है और भार काम करता है गुरुत्वकेन्द्रपर। अतएव स्पष्ट है कि भार वस्तुको हटायेगा, यहां तक कि गुरुत्व केन्द्र जितना नीचे पहुंच सकता है उतना नीचे उतर जायगा। अर्थात् गुरुत्वकेन्द्र लटकानेके विन्दुके बिलकुल नीचे आकर ठहरना चाहिये।

स्मरण रखना चाहिये कि जब कभी कोई वस्तु उसके एक विन्दुमें रस्सी बांधकर लटकायी जाती है तो उसका गुरुत्वकेन्द्र सदा लटकानेवाली रस्सीकी सीधमें आधार विन्दुके ठीक नीचे आकर ठहरता है।

मान लो कि हमने कपखफ एक लकड़ीका या कागजका टुकड़ा लेकर, क में डोरी बांध कर लटकाया है। टुकड़ेका गुरुत्वकेन्द्र ग, वक आधार रज्जुकी दिशामें क के ठीक नीचे क ख रेखा में होगा। यदि इस तख़्ते को प पर हाथ रखकर ऊँचा कर दें तो वह फिर अपनी असली जगह पर आकर ठहरेगा, क्योंकि भार ग विन्दुको जहां तक उतार कर लेजा सकेगा ले जायगा। चित्र १८ में दिखलाये हुये स्थान से
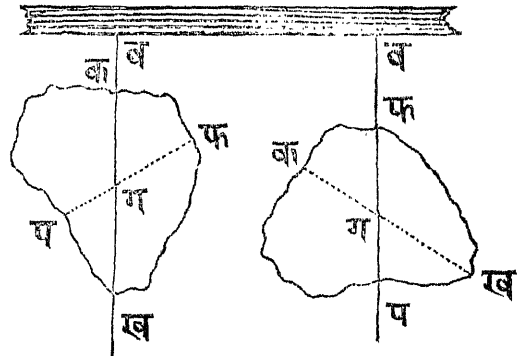
चित्र १८ चित्र १९

अधिक नीचे उतरना उसके लिए सम्भव नहीं। रूल और पेंसिल से क ख रेखा खींच लीजिये।

अब तख्तेको फ विन्दुमें डोरी बांधकर लटका दीजिये, ग अब व फ की सीधमें प फ में कहीं होगा। प फ रेखा भी खींच लीजिये। जहां क ख और प फ कटें, वहीं ग होगा, क्योंकि ग दोनों रेखाओंमें है और कटनेका स्थान ही ऐसा है जो दोनोंमें विद्यमान है। (चित्र १९)

इसी प्रकार कुरसी में दो जगह रस्सी बांध कर और लटका कर उसका गुरुत्वकेन्द्र निका-

ल सकते हैं। [देखिये चित्र २० और २१]
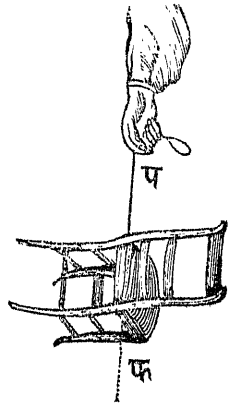
चित्र २० चित्र २१

तख़्तोंके गुरुत्वकेन्द्र और भी सुगमता से निकाल सकते हैं। तख़्त को मेज़ के किनारे पर रख कर साधिये। गुरुत्वकेन्द्र ग घ रेखा में होगा, क्योंकि यदि वह दाएं को होगा तो तख़्ता मेज़ पर गिर पड़ेगा और बाएं को होगा तो नीचे गिर जायगा। [चित्र २२]। अब तख़्ते को घुमा
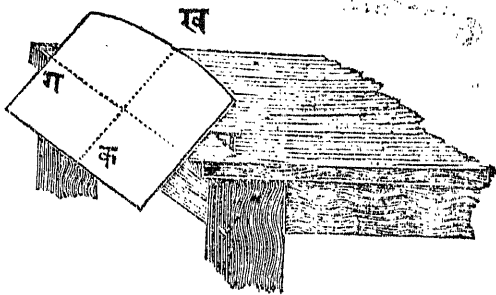
चित्र २२

कर दूसरी तरफ से पूर्ववत साधिये। इसबार गुरुत्वकेन्द्र क ख रेखा में होना चाहिये।

स्पष्ट है कि गुरुत्वकेन्द्र व है जहां क ख और ग घ कटती हैं। [चित्र २३)

इसी प्रकार तिकोने, वर्गाकार, आयताकार टुकड़ोंके गुरुत्वकेन्द्र निकाल लीजिये। आप देखेंगे कि त्रिभुजाकार टुकड़ेका गुरुत्वकेन्द्र ग है, जो कन और प भ रेखाओंके कटनेका स्थान
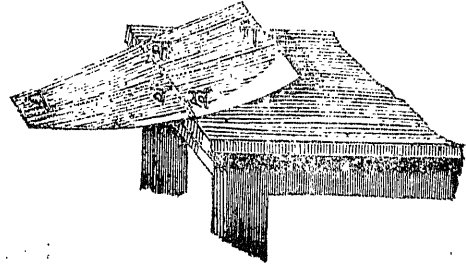
चित्र २३

है। म, क प का और भ, क ब का मध्य विन्दु है। (चित्र २४) शेष दो तख़्तोंका गुरुत्वकेन्द्र करणों-के कटनेके स्थान होंगे। (चित्र २५ और २६)

गुरुत्वकेन्द्रका महत्व
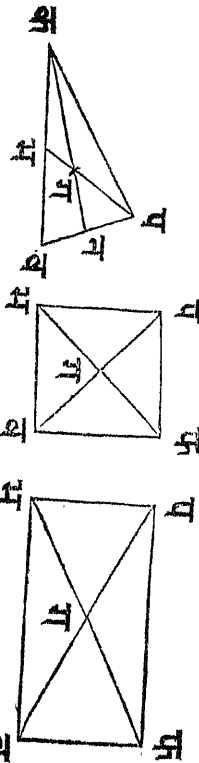
चित्र २४

चित्र २५

चित्र २६

चले थे खेलोंका रहस्य समझने, पर आफंसे गणित और भौतिक विज्ञानके जलमें। आइये अब खेलोंपर फिर थोड़ा सा विचार करें।

चित्र १४ में लड़का उंगलीपर लकड़ी साधनेका प्रयत्न कर रहा है? किस नियम-का वह जाने या अन-जाने प्रतिपालन कर रहा है। नियम यह है कि गुरुत्व केन्द्र आ-धारके ऊपर होना चाहिये। आधार यहां विन्दुमात्र है। अत-एव लड़का हाथको बराबर इधर उधर हिलाकर जिधर लकड़ी गिरने या झुकने लगती है उधर-ही अपना हाथ हटाकर यह प्रयत्न करता है कि लकड़ी सीधी रहे—उसका गुरुत्व केन्द्र आधा-रके ठीक ऊपरसे हटे नहीं।

बहुतसे लड़के बैसाखियों (स्टिल्ट्स) पर खड़े होकर चलते हैं। यहांपर आधार दो विन्दु हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उसका गुरुत्वकेन्द्र इन दो विन्दुओंके जोड़नेवाली रेखा-के ठीक ऊपर रहे। दायें बायें गिरनेका तो यहां डर ही नहीं है। हां, आगे पीछे गिरनेकी आशंका रहती है। इसीसे गुरुत्व केन्द्र आधार-रेखाके ठीक ऊपर रहना चाहिये। (चित्र २७)

इसी प्रकार तीन पायेवाली मेज़के निश्चल रहनेकी शर्त यह है कि उसके गुरुत्व केन्द्रमेंसे खींची हुई ऊर्ध्व रेखा, पायोंके छोरोंद्वारा बने हुए त्रि-भुजके भीतर रहे। चित्र २८
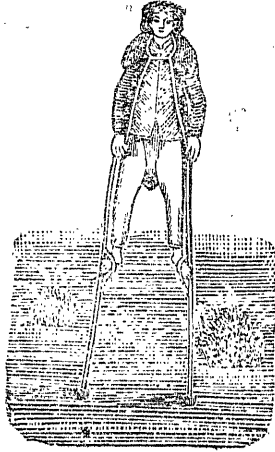
चित्र २७

चित्र २८

यदि मेज़को एक तरफ झुकादें तो मेज़ हाथ हटा लेनेपर फिर अपनी जगहपर जा ठहरेगी, बशर्ते कि उक्त रेखा उक्त त्रिभुजके भीतर है। यदि रेखा त्रिभुजकी सीमाका उल्लंघन कर चुकी है तो हाथ हटाते ही ज़मीनपर गिर पड़ेगी।

तारपर सरकसा में जो लोग चला करते हैं वह भी हाथ में बांस इसी लिए लिये रहते हैं कि जिधर को झुकने लगें, उसकी दूसरी ओरको बांस झुका दें। इस प्रकार अपना और बांसका दोनोंके जुट्टका गुरुत्वकेन्द्र वह सदा तारके ठीक ऊपर ही रखते हैं और अपनेको गिरने से बचाते हैं। (चित्र १६)

मान लीजिये आप खड़े हैं। आपका गुरुत्व केन्द्र ठीक पैरोंके ऊपर, जांघोंके बीचमें नाभिके नीचे है। अब अचानक कोई बीस सेरका बंडल किसी रस्सीमें लटका आपकी गर्दनमें डाल दिया जाय। आप पीछेको गिर जायंगे। क्या कारण है? बंडलका गुरुत्वकेन्द्र उसके अन्दर मान लें तो आपका और बंडलका दोनोंका मिला कर जो गुरुत्वकेन्द्र होगा वह दोनोंका गुरुत्वकेन्द्रोंके बीचमें कहींपर होगा। अतएव इसके पैरोंके ठीक ऊपर न होनेसे आप उसी ओर (पीछेको) गिर पड़ेंगे। हां, यदि आप आगेको झुक जांय तो सम्भव है कि साझेका गुरुत्वकेन्द्र पैरोंके ऊपर आजाय और आप गिरें नहीं।

एक हाथमें आप पानीकी भरी बलटी ले लेते हैं। आप उसी ओर झुक जाते हैं। क्यों? आपका गुरुत्वकेन्द्र आपके शरीरमें है, बालटी-का उसके भीतर है। साझेका गुरुत्वकेन्द्र दोनों-के जोड़नेवाली रेखापर कहां है। जितनी अधिक भारी बालटी होगी, उतना ही अधिक यह बालटी के गुरुत्वकेन्द्रकी तरफ हटा हुआ होगा। अत-एव उतनी ज्यादा सम्भावना आपके गिरनेकी होगी। इस लिए आप स्वभावतः अपना खाली हाथ पसार लेते हैं। ऐसा करनेसे आप अपने

तथा साफेके गुरुत्वकेन्द्रका स्थान बदल कर फिर पैरोंके ऊपर ला सकते हैं। पर बालटी या बोझ भारी हुआ तो आप या तो उसे उठा न सकेंगे या गिर पड़ेंगे।

इसी लिए पीठपर बोझा लादनेवाले आगेको झुकते हैं और बालटी ले जानेवाले हाथ फैलाये रहते हैं।

अण्डेका खेल

अंडेका गुरुत्वकेन्द्र प्रायः बीचों बीच होता है। जब अंडेको खड़ा करनेका प्रयत्न किया जाता है तो बड़ी सावधानीसे काम करना पड़ता है, क्योंकि गुरुत्वकेन्द्रमें होकर खींची गई ऊर्ध्व रेखा उस विन्दुमेंसे निकलनी चाहिये जो आधारसे सम्पर्कमें है। पर ज़राभी इधर उधर अण्डा हिला कि वह लेट जाता है, क्योंकि गुरुत्वाकर्षणके कारण गुरुत्वकेन्द्र सदैव जितना नीचेकी ओर जा सकता है चला जाता है और पड़ी हुई दशामें वह निम्नतम स्थितिमें पहुंच जाता है।

पड़े हुए अण्डेको ज़रा एक तरफसे दबाइये। वह कुछ दूसरी ओरसे उठ आयेगा, दबाव हटाइये वह फिर पूर्ववत गिर जायगा। (चित्र २९ तथा ३०] पर हम देख चुके हैं कि खड़ा

चित्र २९ चित्र ३०

हुआ अंडा ज़रा हिला दिया जाय तो लेट ही जाता है, फिर अपनी आरम्भिक स्थितिको ग्रहण नहीं करता। (चित्र ३१ और ३२) यह दो तरहके साम्यके उदाहरण हुए—पड़े हुए अण्डेका साम्य स्थिर और खड़े हुएका अस्थिर कहा जाता है।

चित्र ३१ चित्र ३२

स्थिर साम्यके लिए जैसा हम बतला चुके हैं यह आवश्यक है कि गुरुत्वकेन्द्र आधारसे निकटतम हो। अंडेका उदाहरण तो देख ही लिया है। अब शकडूखांकी ओर ध्यान दीजिये। इस खिलौनेमें पेंदा या तो ठोस और ऊपरका भाग खोखला और कागज़का रखते हैं या कभी कभी नीचेके भागमें सीसा भर देते हैं। अतएव गुरुत्वकेन्द्र बहुत नीचे रहता है और उसका साम्य स्थिर होता है। इसीसे लिटानेका प्रयत्न करनेपर भी वह खड़ा हो जाता है। लिटानेसे गुरुत्वकेन्द्र ऊपर उठ जाता है, छोड़ते ही वह फिर नीचे उतर आता है और दो चार बार इधर उधर हिलकर—झोंके लेकर—ठहर जाता है।

एक और प्रकारका साम्य होता है जिसे उदासीन साम्य कहते हैं। इस साम्यका यह लक्षण है कि वस्तु जिस स्थितिमें रखी जाय उसमें ही पड़ी रहती है। एक सूची लीजिये। उसको तीन प्रकारसे रखिये। पहिले चित्र ३३ की नाईं रखिये। इस प्रकार रखनेसे उसका साम्य स्थिर है। चित्र ३४ की तरह रखनेसे साम्य अस्थिर होता है। चित्र ३५ की नाईं रखनेसे जिधर ढुलका दीजिये, उधर ही पड़ी रहेगी। अतएव साम्य उदासीन होगा।

प को यदि हम एक ओर झुकाते चले जायं तो किस अवधि तक वह अपनी स्थिति फिरसे ग्रहण करनेका उद्योग करेगी? जब तक कि ग मेंसे खींची गई ऊर्ध्व रेखा उसके टिके हुए
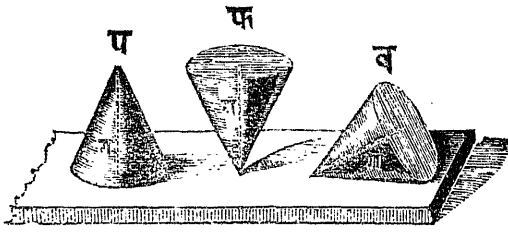
चित्र ३३ चित्र ३४ चित्र ३५

लौट आयगी, परन्तु उसे पार करनेके बाद सूची गिर पड़ेगी।

मामूली लोटेको एक तरफ झुका कर भी परीक्षा कर सकते हैं।

इसीका एक अच्छा उदाहरण पिसाकी गुम्बद है। यह ११५० ई०में बनी थी। जर्मन कारीगर विलहेल्म इन्सब्रुकने इसे बनाया था। यह सफेद संगमरमरकी बनी हुई है। इसमें ८ खन हैं, जो क्रमशः ऊपरकी ओर सकड़े होते गये हैं। उसकी ऊंचाई १८८ फुट है। ऊपरके खनसे जो साहुल लटकाया जाता है वह नीचेकी दीवारसे १५ फुट दूरीपर ज़मीनपर आकर टिकता है। अनुमानसे यही जान पड़ता है कि इसका गु० के० ऐसी जगह है कि उसमेंसे खींची हुई ऊर्ध्व रेखा आधारके बाहर नहीं पड़ती।
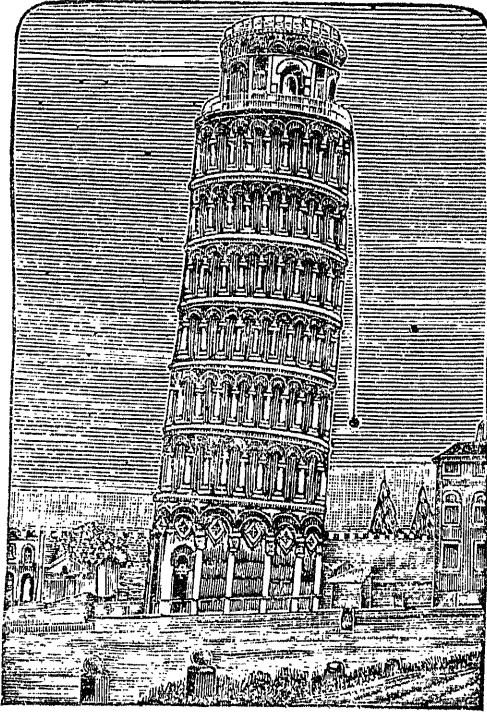
चित्र ३६

अण्डेको खड़ा रखनेकी दो तरकीबें हैं। एक तो यह कि उसका एक सिरा कुछ छील दिया जाय, जिसमें उसे ठहरनेके लिए चौड़ा आधार मिल जाय। दूसरी तरकीब यह है कि झटका देकर उसके अन्दरकी झिल्ली तोड़ दें। ऐसा करनेसे उसके अन्दरका भारी द्रव एक किनारे आकर ठहर जायगा और उसका गु०के० बीचमेंसे हटकर उस किनारेके पास पहुंच जायगा। फिर तो उसकी दशा अकड़ूखांकी सी हो जायगी।

रोशनाई

२—जूतोंकी रोशनाई अथवा बूट पालिश

जूतेकी रोशनाई कई रंगकी होती है—जैसे लाल, पीली, भूरी, काली, सफेद आदि। किन्तु प्रत्येक रङ्गकी रोशनाई प्रायः एक ही क़ायदेसे बनती है। केवल रंग डालनेके समय किसीमें पीला, किसीमें काला और किसीमें कोई रंग नहीं डाला जाता है।

पहले हमें यह देखना चाहिये कि हम जूतोंमें रोशनाई क्यों लगाते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं:—(१) चमड़ेको नर्म और चिकना रखना, (२) चमड़ेको चमकीला बनाना। जिन महाशयोंको जूतेकी रोशनाई बनानी हो उन्हें यह दो बातें सर्वदा ध्यानमें रखनी चाहियें।

किनारेको पार न कर जायगी, तब तक वह फिर

नर्म साबुन (Soft Soap) अर्थात् पोटाशका साबुन, टर्की रेड़ आयल, मोम, चर्बी, आदि चमड़ेको नर्म और चिकना बनाते हैं। किरासिनका तेल भी इस कामके लिए अच्छा है, किन्तु इस तेलके व्यवहारसे जूते जल्दी टूट जाते हैं। क्योंकि इससे तागा जिससे जूता सिला हुआ रहता है बहुत जल्दी सड़ जाता है। बाजारमें एक प्रकारकी रोशनाई बिकती है जो देखनेमें ठीक "कोबरा बूट पालिश" जैसी होती है किन्तु कुछ सस्ती बिकती है। इस रोशनाईसे किरासिन तेलकी बू आती है। आप लोग कदापि उसे व्यवहारमें न लावें, क्योंकि वह हानिकारक होती है और जूतोंके जीवनको कम बना देती है।

टैनिक एसिड, गैलिक एसिड आदि भी चमड़ेको नर्म बनाते हैं। दूसरी बात जो हमें ध्यानमें रखनी चाहिये वह यह है कि तेजाबका चमड़े* पर कोई असर नहीं होता, किन्तु क्षार (alkali) जैसे कास्टिक सोडा या सोडियम कर्बनेत आदि चमड़ेके लिए हानिकारक सिद्ध होचुके हैं। उपर्युक्त सभी पदार्थ चमड़ेको मुलायम और चिकना बनाते हैं, किन्तु उनसे चमक नहीं आ सकती। एक बात मैं यहांपर यह भी बतला देना चाहता हूं कि सोडियम या पोटाशियम कर्बनेतसे, जो चमड़ेके लिये हानिकारक है, कदापि हम सर्वथा छुट्टी नहीं पा सकते। इनकी थोड़ी सी मात्रा रोशनाईमें डालनी ही पड़ती है, जिसमें चमड़ा नर्म रहसके। मात्रा थोड़ी होनेके कारण कोई विशेष हानि भी नहीं होती।

अब हमें एक ऐसी वस्तु चाहिये जो चमड़ेको चमकीला बनावे, किन्तु हानिकर न हो। चमड़ा (shellac) मोम (paraffln) मधुमक्खीका मोम (beeswax) आदिमें चमक देनेका गुण वर्तमान है। चमड़ा या मोमको

*तेज़ाब भी चमड़ेको खराब कर देते हैं। —सं०

गलानेके लिए अलकोहल, तारपीनका तेल या दूसरा कोई घोलक (solvent) व्यवहारमें लाते हैं। रोशनाईमें रंग डालना रोशनाई बनानेवालेपर निर्भर होता है—चाहे रङ्ग डाले या न डाले। जीमें आवे काला रंग डाले या पीला।

काली रोशनाईमें प्रुसियन ब्लू, हड्डीका कोयला (animal charcaol) काजल (lamp black), आइवरी ब्लू (Ivory Blue) आदि डालते हैं।

ब्राउन रोशनाई में बिसमार्क ब्राउन (Bismark brown), मैनचेस्टर ब्राउन (Manchester Brown) टिंकचर आफ एनेटो (Tincture of anotto), हलदी आदि देते हैं।

मधुमक्खीके मोमको बेरंग बनाना

अच्छी रोशनाई बनानेके लिए मधुमक्खीके मोमको बेरंग या उजला (bleach) बना लेना चाहिये। सभी जानते होंगे कि मधुमक्खीका मोम कुछ कुछ पीला होता है। यदि हमें उजली रोशनाई बनानी पड़ी तो बेरंग मोमके बिना काम ही नहीं चल सकता। नीचे मोम बेरंग बनानेकी विधि बतलाता हूँ।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय मोमको धूपमें रख छोड़ना है। मोमके छोटे छोटे टुकड़े कर धूपमें रखते हैं। कभी कभी उसपर ठंडा पानी उसे तर रखनेके लिए छिड़क देते हैं। एक हफ्ता धूपमें रखनेके बाद मोमको गला कर फिर उपर्युक्त क्रिया द्वारा उजला बनाते हैं। इसके लिए प्रायः एक महीना काफी होता है, किन्तु यदि एक महीनेके बाद भी पीलापन न जाय तो फिर मोमको गलाकर धूपमें रखते हैं। किसी (oxidising) पदार्थ जैसे शोरेका तेज़ाब, क्रोमिक एसिड, हाइड्रोजन परोक्साइड आदिके द्वारा भी मोम बेरंग बनाया जा सकता है। यद्यपि पहले तरीकेसे मोमको बेरंग बनानेमें समय अधिक लगता है, किन्तु सस्ता और अच्छा वही तरीका है।

इतना जान लेनेके बाद आप लोग समझ गये होंगे कि जूतेकी रोशनाईके लिए कमसे कम तीन पदार्थ अत्यावश्यक हैं—(१) मोम, (२) तारपीनका तेल या कोई वार्निस और(३) रंग। इनके सिवाय कभी कभी कोई रक्षक (preservative) अर्थात् जिससे रोशनाई खराब न हो ऐसी कोई वस्तु और सुगन्धि भी डालते हैं। रक्षकके लिए फारमेलीन (formalin) और सुगन्धीके लिए मिरबेनके तेलका (oil of mirbane) व्यवहार करते हैं।

नीचे कुछ नुसखे दिये जाते हैं—

(१) तारपीन का तेल १ सेर, ढाई पा बेरंग मोम, एक सेर पानी और २ तोले पोटाश कर्बनेत। मोमको पानीमें डाल कर उबालो और उसमें पोटाश कर्बनेत मिलाकर अच्छी तरहसे चलाओ। फिर आगसे उतार कर चलाते चलाते ठंडा करो और थोड़ा थोड़ा तारपीनका तेल भी मिलाते जाओ। यह रोशनाई उजली होगी। इसे सब रंगके जूतों-में लगा सकते हैं।

(२) मोम आधसेर ग्लीसरीन घटिया (glycerine crude) १४ छटांक, उजला कर्ड सोप६ सेर,बिसमार्क ब्राउन या मैनचेस्टर ब्राउन आधपाव, तारपीन ६ पिन्ट, पानी १ गैलन। मोम और साबुनको तारपीन और पानीमें अलग अलग गलाओ। तारपीन शीघ्र जलनेवाला एक पदार्थ है। इसलिये पानीकी देगचीमें (water bath) बर्तन रखकर इसे गरम करना चाहिये। फिर दोनोंको मिलाकर अच्छी तरह चलाओ।

(३) १ सेर मोमको ४ पिन्ट तारपीनके तेलमें पानीकी देगची (water bath) में गलाओ। एक सेर उजला कर्ड सोप ४ पिन्ट पानीमें अलग गलाओ। फिर दोनों पदार्थोंको गरम रहते ही मिला दो। अन्तमें एक ड्राम ओक्ज़ैलिक एसिड (oxalic acid) और काफी रंग, हलदी या (Tincture of anotto) टिंकचर ओफ़ एनेटो डाल कर खूब मिला दो।

(४) मोम ६ औंस, राल (Rosin) ४ औंस, हड्डी का कोयला १ औंस, प्रुशियन ब्लू ½ औंस, लेईसा बनाने के लिये काफी तारपीनका तेल।

(५) मोम—	१६ हिस्सा
आइवरी ब्लू (Ivory blue)	४ हिस्सा
(Prussian blue) प्रशियन ब्लू	२ "
कोपल वार्निश	½ "
तारपीन का तेल	२ "

मोमसे मेरा अभिप्राय मधुमक्खीके मोम-से है। २, ३ ब्राउन बूट-पालिश का नुसखा है; ४ और ५ से काली रोशनाई तैयार होगी।

अच्छी पालिशके लिए जूतेके चमड़े पर-से धूल आदि झाड़ देनी चाहिये। यदि ब्रुशसे धूल न दूर हो सके तो साबुनके पानीसे धो डालनेसे सब चमड़ा साफ हो जायगा। बा-दामी रंगके जूतेपरके धब्बे नर्म फलालैनको पेट्रोलमें भिगोकर रगड़नेसे दूर हो जाते हैं।

रोशनाई जूतोंपर ब्रुश, फलालैन या किसी मुलायम कपड़ेसे लगानी चाहिये।

—रमेशप्रसाद, बी० एस-सी०

सृष्टि वैचित्र्य

(ले०—श्री० शङ्कर राव जोशी)
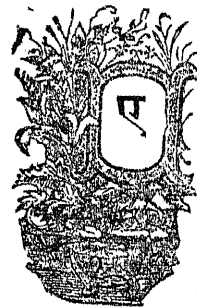
ए क आध बनस्पति या जीव जन्तुको लेकर उसकी जीवन लीला, समाज संगठन, आदिके संबन्धमें अध्ययन करनेसे कई नवीन बातों-का पता लगता है। हम चींटी, दीमक, खटमल, पिस्सू आदि कीड़े एवं गुलाब, आम आदि वनस्पतिको रोज़ देखते हैं। तथापि कई ऐसी बातें हैं जो हम जानते तक

नहीं। इसलिये यह परमावश्यक है कि कीटक विज्ञानका अध्ययन कर ईश्वरके इस अखिल ब्रह्मांडके जीव जन्तुओंकी संबन्धी विचित्रताका पता लगाकर मनोरंजन करें।

ईश्वरने मनुष्यके सुखके लिए अनेक प्रकारके जीव बनाये हैं। रेशम, शहद, लाख आदि पदार्थ कीड़ोंकी ही बदौलत प्राप्त होते हैं। हम विज्ञानके पाठकोंको लाख और शहदकी मक्खीकी कथा सुना ही चुके हैं।

कीटक संसारके सभी प्राणियोंका जीवन-रहस्य मनोरंजक नहीं होता। समाज बनाकर रहनेवाले कीटकोंका विवरण विशेष मनोरम होता है। उनके सुख दुःखादि नाना प्रकारकी मनोवृत्तियोंके दर्शक अनेक व्यापारोंको देखकर आश्चर्यसे चकित होना पड़ता है, एवं यह प्रश्न उठता है कि क्या मानवजातिकी तरह उनमें भी समाज संगठित है?

भिन्न भिन्न प्राणियोंका जीवन भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। कुछ प्राणी ज़मीन पर, कुछ जलमें, (नदी तालाब, पोखरा एवं समुद्रमें) रहते हैं। जलचर प्राणियोंमें से कुछ छिछले जलमें और कुछ गहरे जलमें रहना पसंद करते हैं। स्थलचर प्राणियोंमें भी यह रुचि वैचित्र्य दृष्टिगोचर होता है। कुछ प्राणी ज़मीनके अंदर बिलमें रहते हैं; कुछ आकाशमें विचरण करते हैं। कुछ प्राणियोंको उत्तर ध्रुवका बर्फसे ढका हुआ भूभाग पसंद है; और कुछ प्राणी अफ्रिकाके अत्युष्ण बालुकामय मैदानोंमें रहना पसंद करते हैं! हायड्रोबियस (Hydrobius beetle) नामक एक छोटा सा कीड़ा उसी स्थानमें रहना पसंद करता है जहांकी उष्णता १३०° फा० होती है। आहारके संबन्धमें भी विचित्रता नज़र आती है। कुछ प्राणी मांसाहारी, कुछ निरामिष भोजी और कुछ सर्वभक्षक होते हैं। मांसाहारी प्राणियोंको अपना भोजन प्राप्त करनेके लिये दूसरे प्राणियोंसे घोर संग्राम करना पड़ता है। कुछ मांसाहारी प्राणी युद्ध करनेसे डरते हैं। अतः वह छल कपटसे अपना शिकार पकड़ते हैं। शाकाहारी प्राणियोंमेंसे अधिकांश वनस्पतिके पत्ते मूल फूल वा फल पर निर्वाह करते हैं। पृथ्वीपर एक भी वनस्पति ऐसी न मिलेगी, जिसपर कीड़े न रहते हों; यहां तक कि विषैली वनस्पतियोंपर भी बहुतसे कीड़े अपनी गुज़र करते हैं। इस संसारमें एक भी प्राणी ऐसा नहीं, जिसपर दूसरा कोई प्राणी अपना जीवन निर्वाह न करता हो। अतएव यह सिद्ध होता है कि भिन्न भिन्न प्राणियोंके आहार विहार भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। अतः परिस्थितिके अनुरूप ही उनके शरीरकी बनावट एवं आकार होता है, यहांतक कि एक ही प्राणीकी शरीर-रचनामें उसके वय एवं परिस्थितिके अनुसार बहुत कुछ परिवर्तन होता रहता है।

वृद्धि और परिवर्तन

जन्म होनेपर प्राणी बढ़ता अवश्य है, किन्तु उसके शरीरके वृद्धिके साथ ही साथ शरीरकी रचनामें भी परिवर्तन होता जाता है। कीटक संसारके जीवोंके जीवनमें यह परिवर्तन अधिक दृष्टिगोचर होता है। कीड़ा अपने शरीरके पूर्णतया साङ्गोपाङ्ग बननेके पहिले ही अण्डेमें से बाहर निकल आता है। अण्डेमेंसे बाहर निकलनेपर भी उसके शरीरके कुछ अंगोंका बनना जारी रहता है। दूसरे प्राणी पूर्ण बाढ़ हो जानेपर ही माताके उदरसे बाहर निकलते हैं। यही कारण है कि हम उनके परिवर्तन नहीं देख सकते। परन्तु कीटक पूर्णावस्थामें पहुंचनेके पहले ही अण्डोंमेंसे बाहर निकल आता है। अतः पूर्णावस्थामें पहुंचने तक उसके शरीरमें कई प्रकारके परिवर्तन होते हैं। कोशपक्ष (Coleoptera) वर्गका एक कीड़ा त्वक्पक्ष (Hymenoptera) वर्गकी एक जातिकी मधुमक्खीके शरीरपर रहता है। इल्लीका (Catterpiller Stage) आकार चावलके समान होता

है। इल्लीके छह पांव होते हैं। इस कीड़ेके पांव बहुत मज़बूत होते हैं। मक्खीके शरीरपर चढ़नेके दुष्ट हेतुसे यह कीड़ा फूलोंके परागमें छिपा रहता है। ज्यों ही मक्खी शहदके लिये आती है यह कीड़ा उछलकर उसके शरीरपर जा बैठता है। बेचारी मक्खीको यह बात मालूम भी नहीं होने पाती। वह इस कीड़ेको पीठपर उठाकर इधर उड़ा करती है और मधु लेकर अपने छत्तेमें लौट जाती है। मक्खीकी पीठपर बैठी हुई यह इल्ली छत्तेमें पहुंचते ही मक्खीकी देह छोड़कर अण्डोंपर हमला करती है। अण्डे भक्षण कर लेनेपर यह शहद भी खाने लग जाती है। परन्तु कीड़ेकी इस स्थिति और फूलके परागमें छिपकर बैठनेकी स्थितिमें महदन्तर होता है। इल्लीकी अवस्थामें इसे भोज्य कठिनतासे मिलता है। अतः उस समय वह अधिक चपल होती है। परन्तु एक बार छत्तेमें पहुंच जानेपर उसे अनायास ही खूब भोजन मिलता रहता है। अतएव इस समय उसे चपलताकी आवश्यकता नहीं रह सकती। उत्क्रान्तिवादका सिद्धान्त है कि निरुपयोगी पदार्थ कालान्तरके बाद नष्ट हो जाते हैं। इसी सिद्धान्तके अनुसार धीरे धीरे इसकी चपलता नष्ट हो जाती है। मक्खीकी पीठपर जमकर बैठनेके लिये जिन पांवोंका कीड़ेने उपयोग किया था, उनकी भी अब आवश्यकता नहीं रहती। अतः वह भी धीरे धीरे लुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार फूलके परागमें छिपकर बैठनेवाला चपल एवं पादयुक्त प्राणी छत्तेमें मधु तक पहुंचनेके बाद पादहीन और आलसी बन जाता है।

एक ही वर्गके सभी कीड़ोंकी कीटावस्था एक सी नहीं होती। त्वक्पक्षके कुछ कीड़ोंकी इल्लीके पांव होते हैं और कुछ के नहीं होते। यह अनन्तर उन उन कीड़ोंके भोजन और आयुष्य क्रमके अनुसार ही होता है।

अनुपचित अवयव

हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्राणियोंकी आवश्यकताओंके अनुसार ही उनके अवयवोंमें परिवर्तन होता है। परन्तु कुछ प्राणियोंमें ऐसे भी बहुत से अवयव हैं कि सारे जन्ममें उनकी पूर्ण बाढ़ नहीं होने पाती। ऐसे अनुपचित* (पूर्णबाढ़को न पहुंचे हुए) अवयवोंके सम्बन्धमें पुष्कल विद्वानोंका तर्क है कि भूतकालमें प्राणी इन अवयवोंका अवश्य ही उपयोग करता रहा होगा और तब उनका पूर्ण विकास भी अवश्य ही होता रहा होगा। परन्तु कुछ कालके व्यतीत होनेपर जब किसी कारणवश उस प्राणीका आयुष्य-क्रम बदल गया, तब इसे उन अवयवोंकी आवश्यकता भासित न होने लगी। तबसे इन निरुपयोगी अवयवोंका विकास घटने लगा और कुछ काल व्यतीत हो जानेपर वह उस स्थितिमें पहुंच गये जिसमें कि हम आज उन्हें देख रहे हैं और सम्भवतः और काल व्यतीत होनेपर बिलकुल न रहेंगे। कीड़ेमें जो परिवर्तन नज़र आते हैं वह दूसरे प्राणियोंमें भी अवश्य ही होते हैं। परन्तु कीटकोंका परिवर्तन अण्डेसे बाहर निकल आनेपर होता है और इसीसे हम इन परिवर्तनोंको अपनी आंखोंसे देखते हैं। परन्तु अन्य प्राणियोंमें यह परिवर्तन माताके उदरमें ही होते हैं और यही कारण है कि हम इन परिवर्तनोंको अपनी आंखोंसे नहीं देख सकते। उत्क्रान्ति-मतवादियोंके मतानुसार जीवोंमें पूर्णावस्था तक पहुंचनेके पहले होनेवाले परिवर्तन उन जीवोंका कई युगोंका इतिहास माना जा सकता है। हम यह बात उदाहरणों द्वारा समझानेका यत्न करेंगे। कई स्तन प्राणियोंके पांवके अँगूठे नहीं होते। अंगूठेका चिन्हमात्र अवश्य होता है। पूर्व युगमें इन

*संस्कृतमें उपचितका अर्थ "बढ़ा हुआ" होता है। तदनुसार अनुपचितका अर्थ "जिसकी बाढ़ अभी पूर्ण न हुई हो" है। —ले०

प्राणियोंके पांवके अँगूठेका अवश्य ही पूर्ण विकास होता रहा होगा। परन्तु इधर कई शताब्दियोंसे उनके आयुष्यक्रममें किसी कारण-से, एकाएकी परिवर्तन हो जानेसे यह अवयव निरुपयोगी हो गये और तब उत्क्रान्ति तत्वके अनुसार धीरे धीरे वह लुप्त होने लगे और आज वह दशा होगई जो हम देख रहे हैं। घोड़ेके पाँव, आकाशमें स्वच्छन्द विचरण करने-वाले पक्षीके पंख, एवं मनुष्यके हाथ, यह सब अवयव वाह्यतः भिन्न भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं और इनका उपयोग भी भिन्न भिन्न रीतिसे होता है; तथापि उनकी भीतरी रचना अधि-कांशमें एकसी ही है। जिराफ़की गर्दन लम्बी एवं मछलीकी गर्दन छोटी होती है, तथापि उनकी रचनामें बिलकुल अन्तर नहीं होता।

पूर्णावस्था प्राप्त भिन्न भिन्न जातिके दो प्रा-णियोंका मिलान करनेसे उनका वाह्य स्वरूप बिलकुल भिन्न मालूम होता है। परन्तु बचप-नमें दोनों प्राणी अधिकांशमें एकसे ही मालूम होते हैं। शेर और ब्लेक बर्ड (पक्षी विशेष) के अर्भकोंके शरीरपर एकसे ही काले पट्टे होते हैं। कीटकोंमें भी बहुतसे ऐसे कीड़े हैं, जो कीटावस्थामें बिलकुल एक मालूम होते हैं; यहां तक कि उनके परिवर्तन भी एकसे ही होते हैं। घोड़ेका कपाल एवं उसपर बैठनेवाले मनुष्य-का कपाल प्रायः एकसे होते हैं। इस सम्बन्ध-में फौलर नामक एक लेखकने लिखा है—

"घोड़ा और मनुष्यके सिरमें जो हड्डियां पाई जाती हैं, उनकी संख्या, उनकी रचना और उनके जोड़ बिलकुल एकसे होते हैं। यहां तक कि हड्डीके झुकाव और उसके छेद दोनोंमें एक से ही पाये जाते हैं।......अकसर लोग कहते हैं कि घोड़ेके दांत एकही बार आते हैं, किन्तु मनु-ष्यके दूधके दांत गिर जाते हैं और उनके स्थान-पर दांत दूसरे आते हैं। यह सच है कि घोड़े-के दाँत मनुष्यके दाँतोंकी तरह गिरकर दूसरी बार नहीं आते। तथापि दूधके दाँतोंके बदलेमें घोड़ेके पहले बारीक बारीक दांत आते हैं और उनके गिर जानेपर दूसरे दांत उन्हींकी जगह-पर निकलते हैं। यदि मनुष्य देहकी अन्तर्रचना ध्यानपूर्वक देखी जाय तो यह बात मालूम हो जायगी कि मनुष्यके सिवा अन्य प्राणियोंमें जिन अवयवोंका पूर्ण विकास होगया है वही अवयव मनुष्य देहमें भी मिलेंगे, चाहे फिर उनका अपूर्ण विकास ही क्यों न हुआ हो! उनका थोड़ा बहुत विकास अवश्य दिखाई देगा। मनुष्यके पूंछ नहीं होती तथापि डार्विन साहबका मत है कि उस अवयवका अवशिष्ट अंश अब भी मनुष्य देहमें पाया जाता है।

स्वरूप भेद

पृथ्वीके एक ही भागपर रहनेवाले एकही जातिके प्राणियोंमें स्वरूप-भेद बहुत पाया जाता है। न्यूज़ीलैंडमें "हयूइया" नामक जातिके कौवे पाये जाते हैं। इन कौवोंमें नर और मादाकी चोंचका आकार जुदा जुदा होता है। यह पक्षी उस द्वीपके वृक्षोंकी छालके भीतर रहनेवाले कीड़ोंको खाते हैं। नरकी चोंच मादाकी चोंचसे मज़बूत तो ज़रूर होती है, किन्तु वह नौकीली (pointed) नहीं होती। मादाकी चोंच नौकीली तो अवश्य होती है पर ज़यादा मज़बूत नहीं होती। इसलिये इस दम्पतिको अर्थ शास्त्रके श्रमविभागके तत्वका आश्रय लेना पड़ता है। नर अपनी चोंचसे छालमें छेद करता है और मादा इसके नीचे छिपे हुये कीड़े निकाल लेती है और तब दोनों मिलकर उन्हें खा जाते हैं।

संसारका कोई भी प्राणी ले लीजिये। आज हम उसे जिस अवस्थामें देख रहे हैं, सृष्टिके प्रारंभमें भी वह उसी अवस्थामें रहा होगा, ऐसा सोचना भारी भ्रम है। आज हम उस प्राणीको जिस अवस्थामें देखते हैं वह सृष्टिके प्रारंभकाल में बिलकुल ही भिन्न अवस्थामें रहा होगा।

वर्ण

रंगकी सहायतासे प्राणी शत्रुओंसे अपनी रक्षा कर सकते हैं। बहुत से प्राणियोंमें रंग वैचित्र्य औरही काम आता है। उसकी सहायतासे नर मादाका एवं मादा नरका मन अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। हमारे पाठक जानते ही होंगे कि मोर अपने सुन्दर पर फैलाकर अपनी सहचरीका मन किस प्रकार आकर्षित करता है।

जेफरीसन नामक ग्रंथकारने सृष्टि वैचित्र्यका वर्णन करते हुए लिखा है, "किसी जलाशयके तटवर्ती फूलोंसे लदे हुये पौदोंपर मधु प्राशनार्थ इतस्ततः संचार करनेवाले 'रेड अडमिरल' (एक जीव-विशेष) जातिके पतंगको देखते ही मेरी भूख प्यास नष्ट हो जाती है। उसके पंखेके समान फैले हुए सुंदर पंखोंको देखकर मेरी अजीब हालत हो जाती है। मैं मुग्ध हो घंटों उसकी ओर टकटकी लगाये पागल सा देखता रहता हूं। गरमीके मौसममें जब घास सूख जाती है और वृक्षोंके पत्ते गिर जाते हैं, ऐसे समयमें मेरी दृष्टिका विश्राम स्थल एक मात्र पतंगके सुन्दर पंख ही होते हैं। अपने सौंदर्यसे मनुष्यकी दृष्टिको आनन्दित करनेवाले पतङ्गको देखकर मेरा मन आनन्द सागरमें डुबकियां लगाने लगता है। रंग ही मेरा सच्चा जीवन है; वही मेरी दृष्टिकी अमृतलता है।"

ईश्वरने भांति भांतिके रङ्ग केवल नेत्रोंको आनन्द देनेके लिये ही नहीं बनाये हैं। थोड़ा सा विचार करनेपर यह मालूम हो जायगा कि इन रङ्गोंसे दूसरे भी कई लाभ हैं। सृष्टिके चित्रकारने इस पदार्थको ऐसा रंग क्यों दिया, इसका उत्तर देना सदा संभव नहीं? मोतीकी सीपका भातरी तेजस्वी रंग और मनुष्य आदि प्राणियोंके शरीरके भीतरी अवयवोंके भिन्न भिन्न रङ्गोंका उपयोग बताना संभव नहीं। हीरा, मानिक, सोना चांदी, इत्यादि निर्जीव खनिज पदार्थोंके समान यह रङ्ग भी परिस्थितिके अनुषंगसे ही प्राप्त हुये होंगे।

सब प्राणियोंके रङ्गका हेतु नहीं बताया जासकता; तथापि बहुत से प्राणियोंके रङ्गके संबन्धमें कुछ न कुछ कहा जा सकता है। मछलीकी पीठ काली और पेट सफेद होता है। मछली पानीमें रहती है। अतः ईश्वरने उसकी रक्षाके लिये यह योजना की है। दूरसे देखनेवालेको, मछलीकी पीठका रङ्ग काला होनेसे, सहसा यह नहीं मालूम हो सकता कि अमुक स्थानपर मछली है-। वैसेही पानीके तलेसे देखनेवालेको मछलीका पेट सफेद होनेसे, उसे पकड़नेमें प्रयास पड़ता होगा, रेगिस्तानोंमें रहनेवाले पशुओंका रङ्ग उस मैदानकी रेतके रङ्गके समान होता है। उत्तर ध्रुवके बर्फीले भूभागमें विचरण करनेवाले प्राणियोंका रङ्ग बर्फके समान सफेद होता है। कमसे कम शीतकालमें तो उनको रङ्ग अवश्यही बर्फके समान सफेद हो जाता है। समुद्रके आस पास रहनेवाले प्राणियोंका रङ्ग समुद्रके पानीके रङ्गके समान होता है।

सिंह मैदानमें रहता है, अतः उसका रङ्ग रेतके रङ्गसे मिलता जुलता होता है। चीता घासमें छिपकर रहता है। अतः उसकी पीठपर खड़ेकाले पट्टे होते हैं, जिससे वह घासमें छिपकर रह सकता है। एवं एकदम पहचाना नहीं जा सकता कीटावस्थामें रहनेवाले एक आध पतंगका उदाहरण लेनेसे भी यही बात सिद्ध होती है। पतंग कीटावस्थामें इल्लीके रूपमें बिताता है। यह प्राणी बहुत करके वनस्पतिके पत्ते ही खाते हैं शत्रुसे अपनी रक्षा करनेके लिए उनके पास कुछभी साधन नहीं होता। जब इल्ली बहुतही छोटी होती है तब उसका रङ्ग पत्तेके रङ्गके समान हरा होता है। इससे पत्तोंपर बैठे रहनेपर भी वह एकदम नहीं पहचानी जा सकती और

यही कारण है कि उनपर शत्रुकी नज़र नहीं पड़-पाती। कुछ बड़े होनेपर उनकी देहपर आड़ी या कुछ टेढ़ी काली रोएंकी रेखाएं बनजाती हैं। इन रेखाओंके कारण शत्रुसे उनकी रक्षा होती है, कारण कि वह बिलकुल पत्तेके समान नज़र आती हैं। जिन इल्लियोंका रङ्ग हरा नहीं होता और जो चट पहचानी जासकती हैं उनके शरीर-पर या तो बाल होते हैं या उनका स्वाद खराब होता है। इस तरह शत्रुसे उनकी रक्षा होती है,। "एलिफन्ट हाक माथ" नामक एक पतंग है। यह कीटावस्थामें छोटे सांपके समान दिखाई देता है। उसका भयंकर स्वरूप देखकर शत्रुओंके छक्के छूट जाते हैं। उसके पास जानेकी शत्रुकी हिम्मत नहीं पड़ती। उसके सरपर सांपकी आंखोंके समान दो नकली आंख होती हैं। यह दूरसे बिलकुल आंखोंके समान नज़र आती हैं। इन नकली आंखोंके कारण दूरसे देखनेवाले प्राणियोंको यह कीड़ा क्रोधित सर्पके समान नज़र आता है। अतः वह उससे इतने डर जाते हैं कि दूरसे देखते ही नौ बारह हो जाते हैं। यदि शत्रु साहसकर इस पर आक्रमण करे तो अपनी रक्षाके लिये इस कीड़ेके पास कुछ भी साधन नहीं। वीसमन नामक एक लेखकने अपने अनुभवका वर्णन करते हुये लिखा है, "मैं रोज़ एक मट्टीके पात्रमें चिड़ियोंके लिए अनाज डाला करता था। एक दिन मैंने 'एलिफेन्ट हाक माथ' नामक पतंगकी इल्ली पकड़ कर उस पात्रमें रख दी और मैं कुछ दूर बैठकर मज़ा देखने लगा। रोज़की तरह उस दिन भी पांच सात चिड़िया चुगनेके लिये वहां आईं। एक चिड़िया तो एक दम आकर उस पात्रके किनारे (edge) पर जा बैठी। वह भीतर उतरने ही वाली थी कि एकदम उसकी दृष्टि उस भयङ्कर प्राणीपर जा पड़ी। तब तो वह जहां बैठी थी उसी स्थानपरसे गौरसे उस इल्लीको देखने लगी; किन्तु उसके पास जानेकी हिम्मत न हुई। इतनेमें ही चार पांच चिड़िया और वहां आ पहुँची। वह सब भयभीत हो उस इल्लीकी ओर ताकने लगीं; परन्तु उनमेंसे एकको भी उसके पास जानेका साहस न हुआ। इसके बाद मैंने वह इल्ली वहांसे हटाली। तब कहीं चिड़िया दाना चुगने लगीं।" हमने भी इन्दौर-राज्यके एक ग्राममें एक इल्ली देखी है जो दूर से बिलकुल सांपके समान नज़र आती है। इस इल्लीमें एक विशेषता यह है कि वह सांपकी तरह फुत्कार भी करती है।

पूर्णावस्थामें भी बहुत से कीड़ोंका रङ्ग उसी पदार्थके रंगके समान होता है, जिन पर कि वह रहते हैं। हम अकसर देखते हैं कि कुछ पतंगोंका रंग हरा, कुछका वृक्षकी छालके समान भूरा और कुछका रंग पत्थर का सा होता है।

कुछ प्राणियोंका वर्ण ही केवल आस पासके पदार्थोंके समान नहीं होता, वरन उनका आकार भी उसी पदार्थके आकारके समान होता है। घासपर एक प्रकारका कीड़ा रहता है। उसका रंग और आकार बिलकुल घाससे मिलता जुलता होता है। कई कीड़े ऐसे भी हैं जो अपने वर्गके दूसरे कीड़ोंके वर्ण और आकारका अनुकरण इसलिए करते हैं कि दूसरे कीड़ोंके समान उनकी भी शत्रुसे रक्षा हो। जो कीड़े विषाक्त नहीं होते, वह ऊपरसे विषैले कीड़ोंके समान दीखते हैं, जिससे उनका बचाव हो जाता है।

रेंगनेवाले एवं ज़मीनपर चलनेवाले कीड़ोंका रंग आस पासकी परिस्थितिके अनुसार बदलता रहता है। हमारे पाठक जानते ही होंगे कि गिरगट रंग बदलता है। कुछ जातिकी मक्खियोंके रङ्ग भी परिस्थितिके अनुसार बदलते रहते हैं।

हमसे एक बार हमारे एक मित्रकी पत्नीने प्रश्न किया था कि पहाड़ी भेड़का रंग काला ही

क्यों होता है ? हरा या लाल क्यों नहीं होता ? संभव है हमारे पाठक भी यही प्रश्न करेंगे। अतः इसका स्पष्टीकरण करना अत्यावश्यक है।

पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवाले किसी गड़रियेसे यह प्रश्न कीजिये। वह यही कहेगा कि पहाड़के पत्थर काले होते हैं। भेड़के काले रंगका ही पत्थरके काले रंगसे साम्य जमता है और दूरसे देखनेवाले भेड़िया, शेर आदि हिंस्र जन्तुओंको सहसा यह नहीं मालूम हो सकता कि अमुक स्थानपर भेड़ चर रही है। वुडपेकर (Woodpecker) नामक एक पक्षी होता है। उसका रंग वृक्षके पत्तोंके समान हरा और सिर फूलके समान लाल होता है। इस कारणसे शत्रुसे उसकी रक्षा होती है।

जिन प्राणियोंका रंग उज्वल होता है और जो दूरसे भी एकदम नज़र आ जाते हैं, वह या तो स्वादहीन या विषैले होते हैं। उनका उज्वल रंग ही शत्रुसे उनकी रक्षा करता है। शत्रु दूरसे ही उन्हें देखकर जान जाता है कि उन्हें खानेसे लाभके बदले हानि ही है।

समाज-संगठन

पक्षी पतंग आदि अपने अनुपम सौंदर्यसे हमारे मनको आह्लादित करते हैं। हाथी, मेमाथ आदि प्राणी अपने बड़े आकारसे मनुष्योंका मन अपनी ओर खींच लेते हैं। अणुवीक्षण यंत्रकी सहायतासे जिन कीड़ोंकी शरीर-रचना देखी जा सकती है, ऐसे सूक्ष्माति सूक्ष्म अनेक प्राणी अपने अनुपम सौंदर्यसे देखनेवालेका अन्तःकरण आह्लादित करते हैं। तथापि समाज प्रिय (social) प्राणियोंका जीवन-इतिहास अधिक आश्चर्यजनक होता है। इन कीड़ोंमें कई ऐसे गुण पाये जाते हैं, जिनसे यह अनुमान करना पड़ता है कि यह प्राणी अवश्य ही मनुष्योंके समान बुद्धिमान होते हैं। पाठक जानते ही होंगे कि कौवे* रातको एकही वृक्षपर या पास पासके वृक्षोंपर विश्राम लेते हैं। तोते झुन्ड बनाकर रहते हैं। बन्दर झुंड बना कर रहते हैं। वह अपनेमेंसे हृष्टपुष्ट और बलवान बन्दरको अपना अगुआ चुनते हैं। वही उनका सेनाध्यक्ष होता है। सारी पलटन उसीकी आज्ञामें रहती है। वह अपने दलके आगे आगे चलता है। भयकी आशङ्का होनेपर वह अपने साथियोंको इस बातकी सूचना भी देता है।

अमेरिकामें सोन कुत्ते जङ्गलोंमें बस्ती बना कर रहते हैं। बस्तोकी रक्षाके लिये पहरेदार नियत करते हैं। यह रक्षक बस्तीके पासवाले ऊँचे स्थानपर बैठकर रातभर पहरा दिया करते हैं। शत्रुके आगमनकी बात मालूम होते ही पहरेदार भौंकने लगते हैं। इनकी आवाज़ सुनते ही सब कुत्ते अपने अपने घरोंमें लुक जाते हैं।

एक प्राणि-विद्या-विशारदने लिखा है कि जङ्गली लाल चींटियां समुदाय बनाकर रहती हैं। वह अपनी रक्षाके लिए अपने निवासस्थानके चारों ओर खाइयां बनाती हैं। कभी कभी इन खाइयोंकी लम्बाई २५० फुट तक पाई जाती है।

स्विट्ज़रलैंडके बगीचोंमें एक प्रकारकी चींटियां पाई जाती हैं। उनका रंग भूरा होता है। यह भी खाइयाँ खोदती हैं। धूप और सरदीसे बचनेके लिए यह खाइयोंके ऊपर छत भी बनाती हैं।

---

* कौवे इकट्ठे होकर आक्रमण करते हैं। एक प्राणि शास्त्र वेत्ताका कथन है कि मैंने कौवोंको एकत्र होकर आक्रमण करते देखा है। खेतोंमें रहनेवाले चूहोंपर आक्रमण करनेके विचारसे थोड़ेसे कौवे एकत्र हुए और कई रोज़ तक ज़ोरसे कांव कांव करते रहे। धीरे धीरे कौवोंके कई समुदाय दूर दूरसे उस स्थानपर आकर इकट्ठे हो गये। ज़मीनकी जांच पड़ताल शुरू हुई। पक्षियोंने चूहोंके निकलनेके सभी मार्ग घेर लिये। धावा शुरू हुआ। खेतके एक किनारेपर सभी चूहे भगा दिये गये। और वहां सबके सब पकड़ लिये गये। और सब अपनी अपनी शिकार मुँहमें दबाकर सब कौवें अपने अपने अड्डोंको दौड़ गये। (—सरस्वती)

प्राणि-विद्या-विशारद अभी तक कीटकोंकी समाज रचनाका शोध लगानेमें लगे हुए हैं। कीटकोंमें भी मधु मक्खीकी समाज रचनाका शोध लगानेमें शास्त्रज्ञ अधिक झुके हुए हैं। और *मधु-मक्खियोंकी समाज रचना है भी अधिक मनोरंजक और आश्चर्योत्पादक! परन्तु चींटियोंकी समाज रचना एक निराले ही ढंगकी है। यह एक दूसरेसे कैसा बर्ताव करती हैं, एवं शत्रुके साथ वह कैसा व्यवहार करती हैं, यह बात जाननेपर हमें कबूल करना पड़ेगा कि चींटियोंकी बुद्धिमत्ताके आगे मधु-मक्खियोंकी बुद्धिमत्ता कुछ नहीं।

चींटीकी समाज-रचनाका विषय बहुत विस्तृत है। कारण चींटियोंकी कमसे कम दो हज़ार जातियां पाई जाती हैं और प्रत्येक जाति-की समाज रचनामें कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है। इङ्गलैण्डके लबक नामक विद्वान्ने बड़े परिश्रमसे चींटियों सम्बन्धी बहुत सी बातोंका पता लगाया है। उन्होंने तीस जातिकी चींटियां पालकर उनके बर्तावको बड़ी बारीकीसे देखा है। प्रयोगोंसे यह पता लगा है कि चींटियोंकी उम्र अन्य कीटकोंकी अपेक्षा अधिक होती है। मज़-दूर चींटियां सात वर्ष और रानी चींटी १५ वर्ष तक जीती रहती हैं†।

जाति

पृथ्वीकी सतहपर निवास करनेवाले प्रा-णियोंकी जातियोंकी ठीक संख्या बताना सम्भव नहीं। तथापि अनुमान किया जाता है कि करीब २० लाख जातिके प्राणी इस पृथ्वीपर रहते हैं। हरेक जातिमें कई उपजातियां भी हैं। उक्त २० लाखमें इन उपजातियोंकी संख्या शामिल नहीं। इतनी जातियोंमेंसे बहुत कम जातियोंका ज्ञान मनुष्य प्राप्त कर सकता है और वह भी अधूरा। पूर्वकालमें जो प्राणी हो गये हैं, और जिनका आजकल नामोनिशान भी नहीं मिलता, उन प्राणियोंको तो छोड़ दीजिये, परन्तु इस बीसवीं शताब्दिमें पृथ्वीपर जितने प्राणियोंका अस्तित्व है, उनमेंसे किसी एक प्राणीकी सब प्रकारकी पूर्ण जानकारी भी हमें न मिल पाई है। न्यूटन-के कथनानुसार रेगिस्तानकी रेतके एक कणका भी संपूर्ण ज्ञान हम प्राप्त नहीं कर सके हैं।

क्षुद्र प्राणियोंका महत्व

सृष्टिमें हमेशा असंख्य फेरफार होते रहते हैं। मनुष्योंकी अपेक्षा अन्य क्षुद्र जीव ही इसमें विशेष रूपसे सहायता देते हैं। सृष्टिका स्वरूप बदल डालनेका काम इन्हीं क्षुद्र जीवोंने किया है, वर्तमानमें कर भी रहे हैं और भविष्यतमें करते रहेंगे।

कीटक सृष्टिके असंख्य क्षुद्र जीवोंने आज-तक कितनी ही ज़मीनको, जो खेती करने योग्य न थी, खेती करने योग्य बना दिया है और कितनी ही उर्वरा ज़मीनको ऊसर बना डाला है। जिन बन्दरगाहोंमें जहाज़ सरलता पूर्वक आ जासकते थे वह निरुपयोगी होगये हैं। जो सरोवर अगाध एवं विस्तृत थे, वह इन कीड़ोंके प्रभावसे आज पोखरोंमें परिवर्तित होगये हैं। आज समुद्रमें जिस स्थानपर पानी नज़र आता है, वहीं, संभव है, किसी समय टापू नज़र आने लगे।

फ्लारिडा द्वीपकल्पका विस्तार ७८००० वर्ग मील है, इस द्वीप कल्पके निर्माणकर्त्ता क्षुद्र कीड़े ही हैं। जिस द्वीपकल्पपर जगत्प्रसिद्ध पेरिस नगर बसा हुआ है वह इन्हीं क्षुद्र जीवों-की कृतिका फल है। चाक, या खरिया, कई शताब्दियोंसे समुद्रकी तलीमें मरकर पड़े हुए कीड़ोंके कलेवरोंसे उत्पन्न हुआ है। किसीको यह भी कल्पना न होगी कि एक घन इञ्च ख-रिया मट्टी कितने कीड़ोंके कलेवरोंसे बनी है। अहरनबर्ग नामक शोधकका मत है कि इन्फ्यु-

---

*विज्ञानके किसी गताङ्कमें प्रकाशित हमारा "शहद-की मक्खी" शीर्षक लेख पढ़िये—लेखक।

†चींटियोंपर हम शीघ्र ही विज्ञानमें एक स्वतंत्र लेख लिखेंगे।—ले०

सोरिया जातिके कीड़ोंके कमसे कम एक अरब कलेवरोंसे एक घन इञ्च खड़िया बनती है।

यहां कोई यह प्रश्न करेगा कि "होसकता है कि यह क्षुद्र जीव इस सृष्टिमें असंख्य हैं; इन्होंने समुद्रमें बड़े बड़े द्वीप निर्माण किये हैं; खड़िया भी उन्हींके कलेवरोंसे बनी है; परन्तु इनसे हम मानवोंको क्या लाभ? हमारे सुख दुखमें वह कैसे विघ्न उपस्थित कर सकते हैं! परन्तु ऐसा सोचना भूल है। प्लेग, इन्फ्लूयएंज़ा, महामारी, मलेरिया आदि रोग क्षुद्रजीवाणु* ही पैदा करते हैं। डाक्टरके शस्त्र प्रयोग करते ही ज़खमको इन क्षुद्र जीवोंका बड़ा भय रहता है। वातावरणमें यह प्राणी अदृश्य रूपमें संचार करते रहते हैं। मौक़ा पाते ही यह ज़खममें घुस जाते हैं और तब इतनी फुरतीसे प्रजा वृद्धि करने लग जाते हैं कि रोगीका ज़खम खराब हो जाता है। कभी कभी तो यहांतक नौबत पहुँच जाती है कि रोग ग्रसित अंगको काटकर अलग ही करना पड़ता है।

आकार

सृष्टिके प्राणी भिन्न भिन्न आकारके होते हैं। कुछ तो इतने छोटे होते हैं कि सबसे अधिक शक्तिशाली अनुवीक्षण यंत्रकी सहायतासे भी आलपीनकी नोक इतने बड़े दिखाई देते हैं! तब भला उनके शरीरकी रचना कैसे मालूम हो सकती है! दूसरे कई प्राणी ऐसेभी हैं जिनके शरीरका विस्तार हमें आश्चर्यसे चकित कर देता है। स्केट नामक जातिकी मछली २५ फुट लम्बी, ३० फुट चौड़ी होती है। इसका वज़न २०० पौंड होता है। न्यूफाउण्डलैंडके किनारेपर 'कटल फिश' (cuttle fish) नामक मछली पाई जाती है। इसका शरीर तो बहुत बड़ा नहीं होता, पर उसके (whiskers) गलमुच्छे ३० फुट लम्बे होते हैं। अमेरिकामें अति प्रचीन कालमें "टिटानोसारस" नामक एक प्राणी होता था। कहीं कहीं ज़मीनमें उसके कलेवर (कंकाल) अबभी मिलते हैं। भूपृष्ठपर अब इस प्राणीका अस्तित्व नहीं रहा, किन्तु इसके कंकालको देखकर यही अनुमान करना पड़ता है कि इसकी लम्बाई १०० फुट, ऊँचाई ३० फुट थी। भूपृष्ठपर यही सबसे बड़ा प्राणी हुआ है। इतना बड़ा प्राणी, इसके सिवा दूसरा, इस सृष्टिमें पैदाही नहीं हुआ। आज कल ग्रीनलैंडके पास एक प्रकारकी मछली पाई जाती है जो ७० फुट लम्बी होती है। मेमोथ नामक प्राणी हाथीके वर्गका है। आजकल पृथ्वीपर इसका अस्तित्व नहीं। परन्तु उसके कई कलेवर सैबेरिया आदि रूसके उत्तरी ध्रुवके प्रदेशोंमें मिले हैं। इस प्राणीका एक कंकालपेरिसके अद्भुतालयमें रखा हुआ है। इस कङ्कालपरसे विद्वानोंने कई तर्क बाँधे हैं। वह हाथीसे बहुत ही बड़ा होता था। इसके दाँत हाथीके दाँतसे मोटे और ज़्यादा लम्बे होते थे।

शरीर-रचना

कीड़ोंके शरीरकी अन्तर्रचनापर विचार करनेसे दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। पतंगकी इल्लीके शरीरमें दो हज़ार स्नायु होते हैं। मनुष्य देहमें बीसलाख घर्मग्रंथियां हैं। प्रत्येक ग्रंथिमेंसे एक सूक्ष्म नली निकलकर त्वचाकी ऊपरी सतह तक चली आई है। पसीना इन्हीं नलियोंमेंसे होकर शरीरके बाहर निकल आता है। मनुष्यका रक्त रक्तकणों (कॉरपंसिकल्स) से बना होता है। इन रक्तकणोंकी संख्या जानना संभव नहीं। सारांशमें; हम प्राणियोंके शरीरके घटकावयवोंकी अणुवीक्षण यंत्रकी सहायता बिना कल्पना तक नहीं कर सकते और वह भी बहुत कम!

आयुर्-मर्यादा

प्राणियोंकी आयुर्मर्यादाके बारेमें हमें बहुत थोड़ा ज्ञात है। हमें बहुत ही कम प्राणियोंकी आयुर्मर्यादा मालूम है।

खरगोश २० वर्ष जीता है। कुत्तेकी उम्र १०-१२ वर्ष होती है। बकरा-मनुष्यके हाथसे बच-

गया तो १०-१२ वर्ष तक ज़िन्दा रहता है। घोड़ेकी उम्र २० वर्ष और ऊंट और हाथीकी उम्र १०० वर्षकी होती है। तोता १०० वर्ष तक ज़िन्दा रहता है; परन्तु कौवेकी उम्र तोतेकी उम्रसेभी अधिक होती है। कार्प जातिकी मछली १५० वर्ष तक ज़िन्दा रहती है। सन् १४९७ में स्वाबिया सरोवरमें पाइक जातिकी एक मछली मिली थी। उसके गलेमें धातुका एक कड़ा पड़ा था, जिसपर लिखा था-"सारे संसारके राजा दूसरे फ्रेडरिकने मुझे सन् १२३० के अक्टूबर मासमें इस सरोवरमें छोड़ा।" जिस वर्ष यह मछली देखी गई थी उस वर्ष उसकी उम्र २६७ वर्षकी थी। डा० गुंथरने लिखा है कि कछुआ १५० वर्षसे भी ज़्यादा जीता है। कीटकोंकी आयु अन्य प्राणियोंकी आयुसे कम है। आरिस्टाटलने लिखा है, "रानी मधुमक्षिकाकी उम्र सात वर्षकी होती है।" लबाककी पाली हुई एक रानी चींटी १५ वर्षकी होकर मरी थी।

हमने ऊपर भिन्न भिन्न प्राणियोंकी वयोमर्यादाका दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा अवश्य की है; परन्तु यह भी सूचित करना उचित समझते हैं कि यह वयोमर्यादा बिलकुल निश्चयात्मक नहीं है। पालतू प्राणियोंका आयुःक्रम उनके नैसर्गिक आयुःक्रमसे इतना बदल गया है कि यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह नैसर्गिकस्थितिमें कितने वर्षोंतक ज़िन्दा रहते हैं। मनुष्यके सहवासमें न रहनेवाले वन्यजीव, हवा पानी और शत्रुओंके कारण पूर्ण आयुष्य होनेके पहले ही कालके गालमें चले जाते हैं।

निद्रा

प्राणिमात्रके लिये नींद अत्यावश्यक है। सरव्हांटीस नामक ग्रंथकार लिखता है, "नींद विचारशक्तिको ढांकनेवाला आवरण है; भूखोंके लिये अन्न, प्यासोंके लिये शीतल जल, ठंढसे पीड़ित व्यक्तियोंके लिये आग है। नींद एक अमूल्य रत्न है। यह संसारके प्रत्येक प्राणीको समान दृष्टिसे देखती है। जंगलमें शिलापर सोनेवाले गड़रिये और सुरम्य प्रासादमें एक हाथ मोटे रेशमके गद्देपर सोनेवाले सम्राट्पर उसकी कृपा बराबर है।"

उल्लू चिमगादड़ आदि निशाचर प्राणियोंके सिवा सब प्राणी रातको सोते हैं। कीड़े भी रातको सोते हैं। सोतेमें नेत्रवाले प्राणियोंके नेत्र मुँद जाते हैं। मुँदे नेत्र देखकर हम अनुमान कर लेते हैं कि प्राणी सोया है। परन्तु नेत्रहीन प्राणियों और उन नेत्रयुत प्राणियोंको, जिनके नेत्र सोते समय मुँदते नहीं, नींद लगी है या नहीं, इस बातको जानना कुछ कठिन है। हम उनकी हलचल एवं अन्य व्यापारोंको देखकर ही यह अनुमान करलेते हैं कि वह सोते हैं। इस बातके जाननेका यही एक साधन है।

हमारा आधा जन्म सोनेमें जाता है। नींद हमारा श्रम परिहार करती है। वह हमें काम करनेके लिये उत्साह देती है। रातको न सोनेवाले मनुष्यका तमाम दिन आलसमें जाता है। उससे कुछ भी काम नहीं करते बनता।

नगरमें रातको १०-११ बजेके बाद सब लोग सो जाते हैं। सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य छा जाता है। सब मनुष्य अपने अपने व्यवसाय बंदकर निद्रा-देवीकी गोदमें सुखसे सो जाते हैं। उल्लू, चिमगादड़ और चोर मात्र रातको इधर उधर घूमते नज़र आते हैं। नशेबाज, एवं वेश्याभक्त भी रात रात भर बोतलपर बोतल झाड़ते जागा करते हैं। किन्तु एक आध भयानक जङ्गलका दृश्य इससे बिलकुल भिन्न होता है। हंबोल्ट नामक व्यक्तिने ब्रेज़िलके जङ्गलकी रातका वर्णन करते हुये लिखा है—

"करीब ११ बजे तक सब जगह शान्ति छाई हुई थी। तदनन्तर शीघ्रही चारों ओरसे भयंकर शब्द सुनाई देने लगा। इस कोलाहलके मारे हमारी नींद रफूचकर होगई। हम यह भी निश्चित नहीं कर सके कि किन किन श्वापदोंका

शब्द हम सुन रहे हैं। हमारे साथ उस देशके लोग भी थे। वहभी न पहचान सके। हम बंदर-का शब्द मात्र चीन्ह सके। पक्षी भी भयके मारे चिल्लाने लगे। धीरे धीरे यह कोलाहल हमारे पास आने लगा। हमें शेरकी गरजना स्पष्ट सुनाई देने लगी। मेरी समझसे शेर हिरनके झुण्ड पर झपटा होगा, अतः वह गरीब प्राणी अपना जीव लेकर भाग खड़े हुये होंगे। इस दौड़ धूपसे वृक्षोंपर सोये हुये बन्दर जाग कर भयभीत हो चिल्ला उठे। बन्दरोंकी चिल्लाहटसे बेचारे पक्षियोंकी नींद टूटी और उन्होंने भी डर कर अपनी चिल्लाहटसे सारा जङ्गल जगा डाला।"

विस्तारके भयसे हम लेख यहीं समाप्त करते हैं। यदि होसका तो हम कीटक सृष्टि शीर्षक एक स्वतंत्र लेख माला विज्ञानके पाठकोंके भेंट करेंगे।

कपास और भारतवर्ष

(लेखक—पण्डित तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. एस-सी.)

रोपीय विद्वानोंका मत है कि मनुष्य पहले पहल नंगे रहा करते थे। कुछ दिन पीछे उन्होंने खालोंका पहनना सीखा और अन्तमें बुने हुए वस्त्र पहनने लगे। अगर उनका कथन मान लिया जाय तो भी हमारी सभ्यता हज़ारों वर्षकी पुरानी है। सूतके वस्त्रके प्रयोगका वर्णन मनुस्मृतिमें पाया जाता है। पश्चिमीय देशोंके निवासी कपासका नाम भी नहीं जानते थे। वह कहते थे कि कपास एक वानस्पतिक भेड़का ऊन है, जिसके कि उन्होंने अनेक प्रकारके नाम रखे थे; उदाहरणार्थ-दी सीदियन लैम्ब, दी वेजीटेबुल लैम्ब आफ़ टार्टरी, दी टारटारियन लैम्ब (The Scythian Lamb, The Vegetable lamb of Tartary, The Tartarian lamb)। सन् १३२२ ई० में, तृतीय एडवर्डके राज्यकालमें एक महापुरुष सर जान मांडेवुल रहते थे। देश देशान्तरोंकी यात्रा करके जब वह घर लौटकर आये तो उन्होंने कपासके विषयमें इस प्रकार कथन किया, "यह एक वृक्ष होता है,

चित्र ३७

जिसमें सीताफलके आकारका एक फल लगता है। यह फल पकने पर फट जाता है और इसमें-से एक भेड़का बच्चा निकल आता है। इसका मांस भेड़का सा होता है और बड़ा स्वादिष्ट होता है, और मैंने खाया भी है"। एक और सत्यवादी महाशयने अपनी पुस्तकमें चित्र भी दे दिया, जिसकी कापी यहां भी दिये देते हैं। इन महाशयने लिखा है-"जिस तनेकी चोटीपर यह पुष्परूपी भेड़का बच्चा होता है, वह तना बड़ा लचीला होता है। इस कारण यह भेड़ झुककर चारों ओरकी घास चर लेती है। जब घास नहीं रहती है तब यह वृक्ष सहित मुरझा कर मर जाता है। इसका मांस भेड़ियोंको बड़ा प्रिय है, पर और मांसाहारी जानवर इसको हानि नहीं पहुंचाते"। सन् १७२५ में ब्रेन नामी

एक जर्मनने इनके विरुद्ध खड़े होकर इन महापुरुषोंको झूठा बतलाया और उस समयसे पश्चिमी देशोंमें उचित रीतिसे कपासकी खोज होने लगी। सिकन्दर बादशाहके साथ "अरिस्टोबूलस" नामक एक यूनानी भारतवर्ष आये थे। उन्होंने अपनी पुस्तकमें भारतवर्षके वर्णनमें इस वृक्षको बड़ा आश्चर्य्यजनक बतलाया है, और यहांके सूती कपड़ोंकी बड़ी प्रशंसा की है। उस समय यहांके सूती वस्त्र यूरोपके केवल बड़े बड़े महाराजाओंके प्रयोगमें आते थे। सन् १७५७ ई० में पहली बार कपास "लिवरपूल" पहुंची। सन् १७८५ ई० में पहली दफे पांच गट्ठे कपासके "मरसी" पहुंचे।

सूती वस्त्रोंका प्रयोग बढ़ जानेसे ऊनी वस्त्र बुननेवाले जुलाहोंको बड़ी हानि पहुंची। इस कारण जो जुलाहे इङ्गलिस्तानमें सूती वस्त्र बुनते थे उनको ७५) रु० का दण्ड देना पड़ता था और जो व्यापारी सूती वस्त्र बेचते थे उनको २००) रु० का दण्ड देना पड़ता था। सन् १७८८ ई० में एक बड़ी भारी मीटिंग इस हेतु हुई थी कि पार्लियामेंटसे प्रार्थना की जाय कि इङ्गलिस्तानमें भारतके सूती वस्त्रोंका आना एकदम रोक दिया जाय।

मिश्रमें १८२० ई० में मुहम्मदअली ने सूती वस्त्रके बनानेका प्रबन्ध किया और सन् १८५० ई० में "अब्बास पाशाने" कृषकोंको मिश्रमें कपास बोनेकी सम्मति और सहायता दी।

अब इस तरफ़ निहारिये और आज कलकी दशा देखिये। "मेनचेस्टर रायल एक्सचेंज" में दोपहरके २ बजेसे कपासके दल्लाल एकत्रित होने लगते हैं और इसके मुख्य हाटके कमरेमें, जो १०० गज़ लम्बा और ७० गज़ चौड़ा है, लगभग ३ बजे तक पांच हज़ार मनुष्य एकत्रित हो जाते हैं। प्रतिदिन इस हाटमें जिन कारख़ानोंके दल्लाल सौदा करते हैं उनकी पूंजी लगभग ३७५ करोड़ रुपयेकी है, पर यहाँ रुई नाममात्रको नहीं होती। जब कोई सौदा पक्का हो जाता है तो जहाँ रुई होती है तार द्वारा सूचना भेज दी जाती है कि इतनी रुई फलां कारख़ानेको भेज दो।

यहाँ बयाना दो तरहकी कपासका होता है "एक स्पाट काटन" का (Spot cotton) और दूसरे "फ्यूचर्स"का(Futures)। "स्पाटकाटन" का यह अर्थ है कि कपास किसी स्थानपर, किसी कारख़ानेके निमित्त भेजनेको रखी है। "फ्यूचर्स" लगभग वैसीही होती है जैसे हमारे देशमें 'बदनी'। यह कपास कहीं नहीं होती, पर बद दिया जाता है कि जब कपास आगे बोई जायगी तो उसमेंकी इतनी कपास, इतने भावपर, इतने समय तक कारख़ाने अथवा व्यापारीके हवाले की जायगी। यह एक प्रकारका जुआ होता है। इसमें बहुत धोखा होता है और प्रायः बड़ी बेईमानी होती है। हम वर्णन कर चुके हैं कि इङ्गलिस्तानका कई अरब रुपया रुईके कारख़ानोंमें लगा है। वर्षा अधिक होनेके कारण इङ्गलिस्तानमें नमी अधिक रहती है और सूती कारख़ानोंके लिये यह बड़ी उत्तम परिस्थिति है। पर ऐसी दशामें यहाँ एक बीघा भी कपास नहीं हो सकती। इसलिये इङ्गलिस्तानकी कपास सदा अन्य देशोंसे मँगाना पड़ती है और अधिकांश अमेरिकासे आती है।

सन् १६०२ ई० में "इङ्गलिस्तानमें ब्रिटिश काटन ग्रोइङ्ग ऐसोसिएशन"(British cotton growing Association) स्थापित हुआ। इसका मुख्य कर्तव्य यह है कि इङ्गलिस्तानको कपासके विषयमें अमेरिकाकी अधीनतासे छुड़ावे, क्योंकि अमेरिकाने निश्चय किया है कि उसके यहाँ सूती कारख़ाने बढ़ाये जायं और विदेशोंको कपास न भेजी जाय;अमेरिकाकी सूती वस्तुएं संसारमें प्रचलित हों और जो वस्तुएं अमेरिकामें नहीं बन सकतीं, उनके बनानेके

लिये अन्य देशोंको अमेरिका जिस भावसे चाहे कपास दे। कपासके व्यापारियोंकी राय है कि भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है और इसमें कपासकी उचित रीतिसे कृषिके लिये, कहीं न कहीं, उपयुक्त स्थान अवश्य मिल जायगा और इङ्गलिस्तानकी आवश्यकताको यह पूरा कर देगा।

सन् १६१५ ई०में इङ्गलिस्तानमें कपासका भाव ७। पेंस प्रति पौंड था। पाठक जानते हैं कि आजकल कितना भाव बढ़ गया है। आगेकी संख्याओंसे पाठकगणको भली भांति ज्ञात हो जायगा कि हम कैसी अवनत दशामें हैं।

लिवरपूलमें भारतवर्षकी कपासका भाव तीन श्रेणियोंमें किया जाता है, (१) सूरतकी कपास, (२) बङ्गालकी कपास, (३) मद्रासकी कपास। सूरतकी कपासमें सूरत सिन्ध, भड़ोंच, धुलेरा, भाऊनगर, अमरावती, धारवाड़ कामठी, ख़ानदेश, बांगलाकोट स्थानोंकी कपास सम्मिलत रहती है। पर कुल संसारकी कपास छः श्रेणियोंमें बांटी जा सकती हैः—

(१) "सी आई लैंड" की कपास—इसका रेशा लम्बा, महीन रेशमका सा होता है। समुद्रके तटकी बोई हुई अति उत्तम होती है। इस कपासकी सेर भर रुईसे ३२० मील लम्बा सूत बना सकते हैं। इसके दो प्रकारके वृक्ष होते हैं। एक वह जो हर फसलपर नयें सिरेसे बोया जाता है, और यह तीन चार फुट ऊँचा होता है। दूसरा वह जो एक दफे बोनेके पश्चात् बीस वर्ष तक कपास देता रहता है। यह आठ फुट ऊँचा होता है।

(२) भारतीय कपास—इसकी टहनियां हरी होती हैं। यह एक फसलसे आगे नहीं ठहरता। बोंडी अर्थात् घिमटना पकनेके पश्चात् वृक्ष मर जाता है। इसके बिनौलेमें दो प्रकारका रेशा होता है, (१) लम्बा, (२) छोटा घना लगा हुआ। इसकी जाति कठिनाईसे स्थिर रहती है।

(३) रुएंदार कपास—इसके हर भागमें, अर्थात् पत्तियों, तने, टहनियों, बोंड़ियों और बीजोंमें, एक प्रकारके रुएं होते हैं। इसका बीज हरा होता है। यह मेक्सिकोमें अधिक होती है।

(४) यह भी भारतीय कपास है, यह समुद्रके तटपर अच्छी होती है। हिन्दू इसको बड़ी पवित्र और शुद्ध मानते हैं। इसका वृक्ष बीस फुट ऊँचा होता है। इसका पुष्प बादामी अथवा बैंजनी रङ्गका होता है। "पखुरियोंकी" कलसीके तले एक गहरे रङ्गका धब्बा होता है। इसके बिनौलेमें भी दो प्रकारके रेशे होते हैं, पर रेशे बहुत छोटे होते हैं।

(५) यह उस श्रेणीकी कपास है जिसके रेशेसे किसी समय सारे संसारमें प्रसिद्ध ढाकेकी मलमल बनती थी और यूरोपीय देशोंमें "प्रातःकाल" "ओस-पवन" इत्यादि नामों से इसका आदर किया जाता था। इसकी बोंड़ी छोटी होती है और बीजकी संख्या कम होती है। इसकी बोंड़ीमें भी दो प्रकारका रेशा होता है—(१) छोटा हरियाली लिये, (२) लम्बा कड़ा सफेद। इसका वृक्ष झाड़ी का सा दो फुट का होता है। यह पंजाबमें अधिकांश होती है।

(६) "पीरूकी" कपास—इसका बीज काले रंगका होता है और सब बीज एक एक दूसरेसे सटे चिपके होते हैं।

भारतवर्षमें जिन स्थानोंमें कपास बोई जाती है उनको चार श्रेणियोंमें बांट सकते हैं।

(१) विन्ध्या पर्वत और कृष्णा नदीके बीचका खंड—यहांकी भूमिमें पानी ग्रहण करनेकी शक्ति अच्छी है और इसमें खनिज पदार्थ अधिक मात्रामें हैं। इस भागके तीन स्थान प्रसिद्ध हैं, हींगन घाट, अमरावती और धारवाड़।

(२) बुन्देल खंड-दोआब—यहांकी कपास अच्छी नहीं मानी जाती।

(३) सूरत भड़ौंच सिंध—यहांकी भी कपास अच्छी नहीं मानी जाती।

(४) ट्रावनकोरके पूर्व और मदरासके दक्षिणका खंड—इस भागमें कालीकट है, जहांका एक विशेष प्रकारका बुना हुआ सूती वस्त्र इङ्गलिस्तानमें कालीको कहलाता था और इसका यह नाम अब भी प्रचलित है।

व्यापारमें सुगमताके लिये उपरोक्त श्रेणियोंमें कपास बांट ली जाती है, नहीं तो वनस्पति शास्त्रियोंमें बड़ा मतभेद है और यह अभी पूर्ण रीतिसे निश्चित नहीं हुआ है कि किस कपासको किस घरानेका माना जाय। इसका कारण यह है कि कृषि कर्म और आबहवाके परिवर्तनसे वृक्षमें प्रायः इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि दो ही तीन पीढ़ियोंके पश्चात् अपने पूर्वजोंसे अन्य रूपका हो जाता है।

कपास और भिंडी एक ही जातिके वृक्ष हैं। कपास झाड़ीका सा भी होता है और बीस फुट ऊँचा बड़े वृक्षके आकारका भी होता है। कोई कपास प्रति वर्ष नये सिरेसे बोया जाता है और कोई एक समयका बोया पन्द्रह बीस वर्ष तक फ़सल देता रहता है।

सृष्टिकर्त्ताने बिनौलेमें रुई किस हेतु उत्पन्न की है? वनस्पतिशास्त्री इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं; सृष्टिकर्त्ताने सब वृक्षोंकी सन्तान आगे चलानेके लिये बीजकी रक्षाके निमित्त नाना प्रकारके यत्न किये हैं। यह सब यत्न उन दुर्घटनाओं और हानिकारक दशाओंके अनुसार हैं जिनका कि आगामी बीजोंको सामना करना पड़ेगा। कपासकी किसी बोंडीको खिलनेके पश्चात् न तोड़िये और वृक्षमें लगा रहने दीजिये बराबर देखते रहिये। जब बोंडी बिलकुल पक जायगी बिनौला आप ही आप धरतीपर गिर पड़ेगा। कपासके रेशेके कारण भूमिसे स्पर्श न करेगा और वायुके वेगसे खेतोंमें उड़ा उड़ा फिरेगा। जब बिनौला किसी गीले स्थानपर पहुंचेगा नमीसे रेशा मुलायम हो जायगा और बीज भूमिसे स्पर्श करेगा। बीजके उगनेके लिए नमीकी आवश्यकता होती है। इस कारण सृष्टिकर्त्ताने ऐसा प्रबन्ध किया है कि जब तक उचित नमी नहीं होती बीज भूमिपर गिरकर नष्ट नहीं होता। आक अर्थात् मदारके बीजका भी निरीक्षण कीजिये। इसकी भी ऐसी ही दशा है।

इसकी कृषिके लिए निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिये—भूमि बलुआर दुमट हो। गरमी अच्छी होनी चाहिये और फसल भर एकसार होनी चाहिये। वायुमें पानी अधिक होना चाहिये, पर आकाशमें बादल न होने चाहियें। ओस अच्छी तरह पड़नी चाहिये। अँखुआ फूटनेके पश्चात् दो अथवा एक हलकी वर्षा होनी चाहिये। पाला न पड़ना चाहिये। बोंडी लगनेके समयसे कपास बीनने तक न वर्षा होनी चाहिये, न बादल होने चाहियें। वृक्ष एक दूसरेसे तीन फुटके अन्तरपर होने चाहियें। बीज अच्छी जातिका होना चाहिये। कच्ची कपास न बीननी चाहिये, क्योंकि कच्ची कपासके सूतका कपड़ा भली भाँति रंगा नहीं जा सकता। ऐसे कपड़ेमें रंगनेके पश्चात् प्रायः सफेद चित्तियां सी पड़ जाती हैं। इसके खेतसे पानीका निकास अच्छा होना चाहिये। जब गीली और मटियार भूमिमें कपास बोई जाती है वृक्ष बहुत हरा भरा और सुन्दर दिखाई देता है। पर रुईकी मात्रा बहुत कम निकलती है। इसको नाना प्रकारके कीड़े हानि पहुंचाते हैं। परन्तु वृक्षके पुष्ट होनेपर इनसे अधिक हानि नहीं पहुंचती। अब हम कपासके विषयमें कुछ ऐसी संख्याएं देते हैं कि इस पत्रके पाठकों को ही नहीं बल्कि अंग्रेज़ी पत्रोंके पाठकों को भी कठिनाई से प्राप्त होती हैं। (count) कौंटका क्या अर्थ है? आपने प्रायः सुना होगा कि भारत वर्ष-

की कपाससे साठ सत्तर कौंटका सूत नहीं बन सकता, पर इसके अर्थपर शायद विचार नहीं किया। एक कुकुरी अर्थात् आंड़ी अर्थात् हैङ्क (hank) में आठ सौ चालीस गज़ सूत होता है। जब एक पौंड कपासमें १ आंड़ी सूत बनता है वह सूत एक कौंट का कहलाता है। जितनी आंड़ी सूत एक पौंड कपासमें बनता है वह उतने ही कौंटका सूत कहलाता है। अब देखिये एक पौंड कपासमें ४०-१००-२०० कौंटका सूत कितना लम्बा होता है।

४० का = ४० × ८४० गज़ = ३३६०० गज़
= १९ मील

१०० का = ८४० × १०० गज़ = ८४००० गज़
= ४७$\frac{३}{४}$ मील

२०० का = २०० × ८४० गज़ = १६८००० गज़
= ९५$\frac{१}{२}$ मील

अमेरिकाके सीआईलैंडकी कपाससे २०० कौंट तकका सूत बना सकते हैं। १०० कौंट से अधिकसूत बनानेकी कलें केवल इङ्गलिस्तानमें हैं। भारतवर्षमें बहुत ही नीचे क्रमका सूत बन सकता है।

कपासकी आमद और रफ़्नी प्रायः बेलोंमें बतलाई जाती है। बेल गट्ठेको कहते हैं। इनमें निम्न लिखित मात्रामें कपास होती है। अमेरिकाके बेलमें ५०० पौंड। हिन्दुस्तानके बेलमें ४०० पौंड। मिश्रके बेलमें ७०० पौंड।

यूरोपीय लेखकोंने अन्दाज़ लगाया है कि सब संसारमें एक सौ पचास करोड़ मनुष्य हैं। इनमेंसे पच्चीस करोड़ नग्न रहते हैं। पचहत्तर करोड़ वस्त्र पहनते हैं और पचास करोड़ उचित रीतिसे सम्पूर्ण वस्त्र पहिनते हैं। प्रति वर्ष प्रति मनुष्यको लगभग आठ सेर कपासकी आवश्यकता होती है। इस हिसाबसे ४२० लाख बेल कपासकी प्रतिवर्ष आवश्यकता हुई। पर इस समय सूतके कारख़ाने बहुत कम हैं। इस कारण केवल २३० लाख बेल रुई ख़र्च होती है। इसमेंकी रुई १३६ लाख बेल केवल अमेरिकाकी होती है।

सूत के कारखाने कुल संसार में इङ्गलिस्तान और भारतवर्ष में कितने हैं ?

विषय	संसारमें	हिंदुस्तानमें	इङ्गलिस्तानमें
सूतके कारखाने	६४८३	२७१	२००९
सूत बनानेकी कलें	१५०७३७२६०	६७७८८९५	५९९०००००
कपड़ा बुननेकी कलें	२८१९६०७	१०४१७९	८०८१४५
मज़दूर काममें लगे	२६८०६१८	२६०२७६	६५५०००
प्रतिवर्ष कपासका खर्च बेलोंमें	२२६३३९९६	२१४३१२६	६८८१२३०

प्रतिवर्ष भारतवर्षमें इङ्गलिस्तानसे ४५ करोड़ रुपयेका सूत और सूती माल आता है। निम्न लिखित सारिणीसे पाठकोंको ज्ञात होगा कि किस स्थानकी कपासका रेशा कितना लम्बा होता है और उससे कितने कौंटका सूत बन सकता है।

नाम	लम्बाई रेशा	कौंट सूत
सीआईलैंड	१$\frac{३}{४}$ इंच	२००
मिश्र	१$\frac{१}{४}$ "	१५०
सूरत	$\frac{६}{८}$ "	२०
सिंध	$\frac{५}{८}$ "	१०
बंगाल	$\frac{५}{८}$ "	१०
तिनावली	$\frac{७}{८}$ "	२०

संसारमें और निम्नलिखित स्थानोंमें प्रतिवर्ष लगभग निम्न लिखित मात्रामें कपास होती है।

संसारमें --२८०८५००० बेल
अमेरिकामें-१५६०७००० ,,
भारतवर्षमें-४५०३००० बेल
मिश्रमें— ८१६००० बेल
ग्राज़ोलमें— ६६७३०० बेल

रेशेकी पुष्टई उसकी मोटाईके अनुसार होती है। रेशा जितना अधिक मोटा होता है उतनाही अधिक पुष्ट होता है। कपासका रेशा ३३ रत्तीसे लेकर ६५ रत्ती तकका बोझ बिना टूटे सम्भाल सकता है। सूरतकी कपासका रेशा सबसे अधिक पुष्ट होता है। एक बात और ध्यानमें रखने योग्य है कपासकी कृषिसे भूमि निर्बल कम होती है। इसके वृक्षमें निम्न लिखित पदार्थ इन मात्राओंमें होते है :—

जल १० भाग
जड़ें ८ भाग
टहनियां २३ भाग
पत्तियां २० भाग
बोंडियां १४ भाग
बीज २३ भाग
रुई १०½ भाग

ख़ालिस पक्की रुईको भस्म करनेसे राख कुछ नहीं रहती। रुईका रेशा उन तत्वोंसे बनता है, जिनको वृक्ष केवल वायु और जलसे प्राप्त करता है।

रुईके रेशोंमें एकसे लेकर चार प्रति सैकड़ा तक जल हो सकता है, पर दो प्रति सैकड़ासे अधिक जल हो तो समझना चाहिये कि रुई गीली ऋतुमें बीनी गई थी या बेईमानीसे भिगोदी गई है।

सौ मन कपासमें ६६ से लेकर ७५ मन तक बिनौला निकलता है। भारतवर्षमें अगर अच्छी तरहसे फ़सल हुई हो तो प्रति एकड़ रुईकी पैदावर २ मन तक होती है। सर्कारी फ़ार्मोंमें ५ तक होती है। अमेरिकामें कभी कभी दस मन तक रुई प्रति एकड़ पैदा हुई है।

मिश्रकी कपासके बिनौलोंसे २२ प्रति सैकड़ा तेल निकलता है। बम्बईके बिनौलोंसे १७½ प्रति सैकड़ा तेल निकलता है।

छिले और बिन छिले बिनौलोंकी खली पशुओंको खिलाई जाती है। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि बिना छिले बिनौलोंकी खली हानि कारक होती है। बिनौलोंके ऊपर जो रुईका अंश होता है पशुओंकी आंतोंमें चिपककर बैठ जाता है, पर इसमें अभी बड़ा मत भेद है; लेकिन सब यह स्वीकार करते हैं कि छिले बिनौलोंकी खली अधिक लाभदायक होती है।

खलीमें क्या क्या पदार्थ किस परिमाणमें होते हैं?

१००० भाग बे छिले बिनौलोंकी खलीमें:—

नत्रजन	३५·२ भाग
फास्फोरस	२५·८ ,,
पुटाश	१६·१ ,,

१००० भाग छिले बिनौलोंकी खली में :—

नत्रजन	६२ भाग
फास्फोरस अम्ल	३५·५ ,,
पुटाश	१५·८ ,,

बिनौलोंकी खलीकी ५०) मन खाद उतना ही लाभ पहुंचाती है जितना कि २००) मन गोबर की पांस। बिनौलोंकी खलीमें फास्फोरस अम्ल और पुटाश अधिक मात्रामें होते हैं, पर बिनौलोंकी खलीके स्थानपर बिनौले पशुओंको खिला कर उनका गोबर प्रयोगमें लाना अधिक लाभदायक है।

बिनौलोंका तेल कुछ सालोंसे बहुत काममें आने लगा है। यह बिल्कुल ज़ैतूनके तेलका सा होता है। इससे हर प्रकारका भोजन पका सकते हैं। भारतवर्षमें भी घीके स्थान पर इसका प्रयोग करने लगे हैं। सन् १६१८ ई० में संसार में बिनौलोंका तेल निकालनेकी ८४० मिलें थीं, और इनमें १६,१०,००,००० मन बिनौले ख़र्च हुये थे। इनसे बीस करोड़ गैलन तेल और

पांच करोड़ चालीस लाख मन खली प्राप्त हुई थी।

कपासका वृक्ष बड़ाही उपयोगी है। सूती वस्त्र, तेल और खलीके अतिरिक्त और बहुत सी वस्तुएं इससे प्राप्त होती हैं। इसके तेलसे साबुन बनाते हैं; छालसे चटाई और बोरे बनाते हैं; पत्तियोंसे एक प्रकारका चारा बनाते हैं; जड़ीके काढ़ेका अरगट (Ergot) औषधिके स्थानपर प्रयोग करते हैं (इससे घावोंसे रक्त बहना रुकता है, विशेषकर बालकके जन्मसे २ घंटे उपरान्त गर्भाशयको शांत करनेके लिये प्रयोग करते हैं); सूतके कारखानोंसे जो छीजन निलकती है उससे लैम्पकी बत्तियां बनाते हैं; जो रुई इस कामकी भी नहीं होती उससे उमदा कागज़ बनाते हैं या उसको तीव्रशोरेके तेज़ाब (स्ट्रांग नैट्रिक एसिड) और तीव्र गंधकाम्ल (स्ट्रांग सलफ्यूरिक एसिड) के घोलमें डालकर गनकाटन बनाते हैं। यह बारूदसे कई गुनी अधिक बलवान होती है और युद्धमें इसका बहुत प्रयोग होता है। गन काटनको ईथरमें घोलकर एक प्रकारका भूंठा हाथी दांत बनाते हैं। बिनौलोंके छिलकोंको भस्म करनेसे जो राख प्राप्त होती है वह तमाकूके लिये बड़ी उत्तम खाद है।*

ऐसे उत्तम वृक्षको जिसको हमारे पूर्वजोंने बोना संसारको सिखलाया और जिससे अनेक उपकारी उद्यम निकाले उसको हम अपनी मूर्खतासे इस दुर्दशामें डाले हैं। इस समय हमारे सामने तीन प्रश्न हैं:—

(१) भारतवर्षमें बड़े कौंटके सूत बनानेकी मिलें चलाएं—पर इससे पहिले कि मिलें काममें आवें भारतवर्षमें लम्बे रेशेकी कपास उत्पन्न करनी चाहिये, क्योंकि अन्य देशोंकी कपासके सहारे यह मिलें नहीं चल सकेंगी।

(२) लम्बे रेशेकी कपास उत्पन्न करना और कपासकी खेतीका विस्तृत प्रचार करना—इस समय विलायतमें कपासकी बड़ी मांग है। अतएव हम अपनी कपासको बेचकर लाभ उठासकेंगे और जब लम्बे रेशेकी कपास हमारे यहां काफ़ी मात्रामें होने लगेगी तो बाहर कपासका भेजना बन्द करदेंगे और उस समय इसी देशमें बड़े कौंटका सूत बनाने लगेंगे।

(३) ऐसी कलें ईजाद करना जिनसे छोटे रेशेकी कपाससे बड़े कौंटका सूत बन सके—यह केवल भारतवर्षके ही लाभार्थ होगा, इसलिये यह भारतवासियोंका ही काम है।

(४) ब्रिटिश काटन ग्रोअर्स एसोसियेशने (British cotton growers association) ने यह सिद्ध कर दिया है कि महीन सूत बनानेकी कपास संसार भरको भली भांति भारतवर्ष से प्राप्त हो सकती है, यदि Hon'ble Mr. H.W. Leake की K_{22} कपास जिसका ⅞ इंच लम्बा रेशा है। भारतवर्षमें उचित रीतिसे प्रचलित की जाय। इस समय भारतवर्ष और संसारके लिये इसके समान दूसरी कपास नहीं है।

क्या इस विषयमें उन्नतिकी आशा करना निरर्थक है?

इस लेखके समाप्त करनेके पहले हम धन्यवादके साथ स्वीकार करते हैं कि उपरोक्त संख्याओंका अधिकांश हमको डाइरेक्टर विलकिंसन, सरजार्जवाट, डाक्टर वाकर और डाक्टर विग्वुडके लेखोंसे प्राप्त हुआ है।

*रुईके वृक्षके डंठलों से काग़ज़की लुगदी, नक़ली चमड़ा, नकली हाथी दांत, रेशम आदि पदार्थ भी बनते हैं। देखिये विज्ञान मेष १९७३ (मई १९१६) "कागजकी लुगदी" शीर्षक लेख। —सं०

राधिकेश-राधा-रहस्य

दोहा

अजकी माया है अजा, समझा विश्व विलास।
राधिकेश राधा रमे, शङ्कर यों रच रास ॥ १ ॥

कवित्त घनाक्षरी

शङ्कर अखण्ड एक अक्षरकी एकता ने,
स्वाभाविक साधन अनेकताका साधा है।
तारतम्यताके साथ विश्वकी बनावटमें,
पोल और ठोसका प्रयोग आधा आधा है।
नाम रूप ज्ञानसे क्रियाकी कर्म कल्पनासे,
नित्य निरुपाधि चिदानन्दमें न बाधा है।
सामाधिक धारणामें ऐसा ध्रुव ध्यान है तो,
पुरुष मुकुन्द है प्रकृति प्यारी राधा है ॥ १ ॥

—शङ्कर

हिन्दी कवितामें प्राकृतिक वर्णन

(ले०—प्रो० लाला भगवानदीन)

अँगरेज़ी पढ़े लिखे नवयुवकोंकी धारणा है कि जैसा प्रकृति वर्णन अँगरेज़ी कवितामें है वैसा हिन्दीमें नहीं है। उनका ऐसा कहना हमारी समझमें उचित नहीं। बात केवल इतनी है कि वह अँगरेज़ीकी तो बहुत सी कविता पढ़ डालते हैं और हिन्दीकी उत्तम कविता पढ़ते ही नहीं। स्कूलों और कालेजोंमें थोड़ी सी अंड बंड संग्रहीत कविता पढ़कर ही वह ऐसी राय क़ायम कर लेते हैं। क्या कोई विद्यार्थी दावेके साथ यह बात कह सकता है कि जिस प्रकार मनोयोगसे और जितनी मात्रामें उसने अँगरेज़ीके कवियोंकी कविता पढ़ी है उसी प्रकार और उतनी ही मात्रामें हिन्दीकी कविताका भी अध्ययन किया है? शेक्सपियरके ७२ नाटक, वर्ड्सवर्थ, बाइरन, गोल्डस्मिथ, टेनासन, एडीसन, इत्यादिके लिखे हुए अनेक वाल्यूम्स चाट जानेवाले क्या अपनी आनर (Honour) की कसम खाकर यह बात कह सकते हैं कि उन्होंने तुलसी, सूर और केशवकी कविता भी पढ़ डाली है? और जिस साहित्यिक दृष्टिसे उन्होंने अँगरेज़ीकी कविता गुरुओं द्वारा पढ़ी है, उसी तरह किसी साहित्यदाँ गुरुसे उन्होंने हिन्दीकी भी कविता पढ़ी है? यदि इन प्रश्नोंका जवाब नहींमें है, तो उनकी उपर्युक्त सम्मति भी 'नहीं' की सी कीमत रखती है। अगर हमारे कथनको कोई असत्य समझें तो हमारी सलाह मानकर उन्हें तुलसीदास कृत चार ग्रंथ (रामायण, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली) सूरदासकृत सूरसागर और केशवदासकृत रामचन्द्रिका, केवल छः ग्रंथ पढ़नेके बाद इस विषयमें अपनी राय क़ायम करनी चाहिये। हमें विश्वास है कि इन छः ग्रंथोंके पढ़नेके बाद वह यह न कह सकेंगे कि हिन्दीके कवि प्रकृति निरीक्षणमें वा उसके वर्णनमें अँगरेज़ी कवियोंसे पीछे रह गये हैं। हाँ एक बात मानी जा सकती है कि विभिन्न देश निवासियोंकी रुचि विभिन्न होती है। अँगरेज़ी कवियोंकी वर्णनशैली दूसरी है और हिन्दी कवियोंकी दूसरी। अँगरेज़ी कवि किसी प्राकृतिक स्वभाव, घटना वा छटाका वर्णन सीधा और रूखा उसी वस्तुके संबन्धमें वर्णन करता है और हिन्दी कवि किसी प्राकृतिक छटा, घटना वा स्वभावका वर्णन किसी दूसरे प्रसंगसे सम्बन्ध जोड़कर उचित मौकेसे करता है। उदाहरणमें यों समझिये:—

अँगरेज़ी कवि इन्द्र धनुषका वर्णन केवल इन्द्र धनुष देखता हुआ वर्णन करेगा, हिन्दी कवि इन्द्र धनुषकी प्रकृतिका वर्णन चित्रित बंदनवार रंग बिरंगी पोशाकें पहने हुए जन समूह वा इसी

प्रकारकी अन्य घटनाको देखकर वर्णन करेगा। अँगरेज़ी कवि माताके प्रकृति-स्वभावका वर्णन अपनी माता पर घटित करते हुए वर्णन करेगा, हिन्दी कवि उसी प्रकृतिका वर्णन रामकृष्णके संबन्धमें कौशल्या और यशोदा पर घटित करते हुए कहेगा। अँगरेज़ी कवि डेसी, लिली इत्यादि फूलोंका वर्णन इस तरह करेगा मानों वह उसके सामने खड़ा है; हिन्दी कवि कमल, गुलाब, जुही, कुन्द, गेंदा इत्यादिकी प्रकृतिका वर्णन किसी मृदु कलेवरा नायिकाके अंगोंकी समता देते हुए दर्शावेगा। अँगरेज़ी कवि किसी सुरीले पक्षीका वर्णन इस तरह करेगा, मानो वह पक्षी उसके सामनेवाला किसी झाड़ीमें बैठा हुआ चहक रहा है, हिन्दी कवि उसीका वर्णन किसीके मृदु, मधुर और मनोहर गान वा भाषणकी समतामें करेगा।

प्रत्येक देशके प्राकृतिक दृश्योंमें भी फर्क हुआ करता है। जो दृश्य यूरोपमें हैं वह भारतमें नहीं, जो भारतमें हैं वह इङ्गलैण्डमें नहीं। अतः यदि अंगरेज़ी कवियोंकेसे लार्क पक्षी, बुलडाग, स्पेनकी झबरी कुतिया, रूसके सफेद रीछ, कंजी आँखों, भूरे बालों, ज्वालामुखी पहाड़ों, समुद्रके भयंकर ज्वारभाटों, विकट तूफानों, साइक्लोनों, भूकंपों, अभेद्य कुहिरों, तथा बर्फ परका स्केटिंग और स्लेजिङ्ग इत्यादिका वर्णन हिन्दी कवितामें न पाया जाय तो आश्चर्य क्या? हमारा तो ऐसा ही विचार है, पाठकोंसे निवेदन है कि वह स्वयं अनुभव करें।

आज हम विज्ञानके पाठकोंके सामने 'मातृ-हृदय' का फोटो रखते हैं। विचार करना चाहिये कि तुलसीदास जीने 'मातृहृदय' के प्राकृतिक भावोंका कितना निरीक्षण किया था, कितना समझा था और कैसे मधुर मनोहर और उपयुक्त शब्दोंमें वर्णन किया है। जब हिन्दी कवि हृदयस्था गूढ़ प्राकृतिक भावोंका इतना बारीक निरीक्षण करते थे और उपयुक्त शब्दोंमें वर्णन करते थे, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि वह प्राकृतिक स्थूल दृश्योंका अच्छा वर्णन नहीं कर सके। अच्छा अब 'मातृहृदय' का फोटो देखिये:—माता बच्चेको लिये लेटी है:—

सुभग सेज सोहत कौशल्या
रुचिर राम शिशु गोद लिये।
बार बार बिधु बदन बिलोकति
लोचन चारु चकोर किये।
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति
कबहुँक राखति लाय हिये।
बालकेलि गावति हलरावति
पुलकति प्रेम पियूष पिये।

माताके मनमें कैसे कैसे अरमान होते हैं:-
ह्वै हौ लाल कबहिँ बड़े बलि मैया।
राम लषन भावते भरत
रिपुदवन चारु चारों भैया।
बाल विभूषण बसन मनोहर
अंगन रुचिर बनैहौं।
शोभा निरखि निछावर करि
उरलाय वारने जैहौं।
छगन मगन आँगन खेलि हौ
मिलि ठुमुकि ठुमुकि कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल
कहि माँ मोहिँ बुलैहौ।

पगन कब चलिहौ चारों भैया।
प्रेम पुलकि उरलाय सुवन सब
कहत सुमित्रा मैया।
सुन्दर तन शिशु बसन विभूषण
नख शिख निरखि निकैया।
दलि तृण प्राण निछावरि करि करि
लैहैं मातु बलैया।
किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि,
भजि मिलनि मनोहरतैया।
मणि खंभन प्रतिबिंब झलक छबि
छलकहि भरि अँगनैया।

कहिये पाठक! मातृहृदयके यह भाव, यह अरमान, यह बाललीला, कबिने किस प्रकार वर्णन किये। क्या इसका अनुभव उन माताओंको हो सकता है जो अपने अंग और वस्त्र बिगड़नेके भयसे अपने पुत्रोंको किरायेकी धाइयोंके सिपुर्द कर देती हैं।

बच्चेके बीमार होनेपर माताकी चिंता और तद्बीरोंको देखिये:—

आजु अनरसे हैं भोरके पय पियत न नीके।
रहत न बैठे ठाढ़े पालने झुलावत हूँ,
रोवत राम मेरे सोच सबही के॥
देव पितर ग्रह पूजिये तुला तौलिये घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखि ऐसहिँ
अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के॥
बेगि बोलि कुल गुरु छुयो माथे हाथ अमी के।
सुनत आय ऋषि कुशहरे नृसिंह
मंत्र पढ़ि जो सुमिरत भय भी के॥

अमिय विलोकनि करि कृपा मुनिबर जब जोये।
तबते राम अरु भरत लषण रिपुदवन सुमुखि
सखि सकल तनय सुख सोये।

बच्चेकी सेवा करते हुये माताको कितना आनन्द मिलता है, वह भी माताके ही मुखसे सुन लीजिये:—

पौढ़िये लाल पालने हौं झुलाऊँ।
कर पद मुख चख कमल लसत लखि
लोचन भ्रमर लुभाऊँ।
बाल विनोद मोद मंजुल मणि
किलकनि खानि खोलाऊँ।
तेइ अनुराग ताग गुहिये कहँ
मति मृगनयनि बुलाऊँ।

सोइये लाल लाड़िले रघुराई।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा
बार बार बलि जाई।
हँसे हँसत अनरसे अनरसत
प्रति बिंबनि ज्यों झाँई।
तुम सब के जीवन के जीवन
सकल सुमङ्गल दाई।
मूल मूल सुरबीथि बेलि तम
तोम सुदल अधिकाई।
नखत सुमन नभ बिटप बौंड़ि
मनो छपा छटकि छबि छाई।
होत प्रात अलसात तात
तेरी बानि जानि हौं पाई।
गाय गाय हलराय बोलि हौं
सुख नींदरी साहाई।
बछरु छबीले छगन मगन मेरे
कहत मल्हाय मल्हाई।
सानुज हिय हुलसत तुलसीके
प्रभुकी ललित लरिकाई।

इस ऊपरवाले पदमें सुअवसर पाके तुलसीदासने आकाश गंगाकी छटाका वर्णन करही तो डाला।

सावनका महीना है। सुमित्राजी आंगनमें लेटी हुई बालकोंको सोलानेकी चेष्टा कर रही हैं। आकाशकी ओर नज़र जो गई तो आकाश गंगाके दर्शन हुए। इसी मिससे कविने आकाशगंगाकी छटाको एक फूली हुई सघनलताके समान कह डाला। सावनमासमें संध्याके समय पूर्वकी ओर क्षितिजसे मूल नक्षत्रका उदय होता है। उसी मूल नक्षत्रको उस लताकी जड़ करार दी है। सावनमें आकाशगंगाकी लम्बाई पूर्वसे पच्छिमको स्पष्ट दिखाई देती है। सावनकी रातकी अंधेरीको सघन लताके पत्र समूहका अंधेरा, अन्य तारागणको पुष्प समूह और आकाशको वृक्ष मान कर उत्प्रेक्षा पूरी की है। आकाशगंगाका इससे अधिक सुन्दर वर्णन हमारी सम्मतिमें तो असंभव जंचता है। बस हिन्दी कवियोंका यही स्वभाव है कि वह सुअवसर पाकर किसी प्रसंगमें अपने नेचर

निरीक्षणका अनुभव उत्प्रेक्षा, उपमा वा रूपक द्वारा वर्णन कर डालते हैं। अस्तु

झूलत राम पालने सोहैं।
भूरि भाग्य जननी जन जोहैं॥
इत्यादि
पालने रघुपतिहि झुलावैं।
लैलै नाम सप्रेम सरस स्वर
कौशल्या कल कीरति गावैं।

इन पदोंसे तुलसीदासजीने 'मातृहृदय' का अत्यन्त मृदुल और उच्च प्रेम अनुभव कराया है। कौशल्या, सुमित्रादि राजरानियां हैं, सैकड़ों दास दासियोंके होते भी मातृ प्रेमवश बच्चोंकी सब सेवा निज हाथों करती हैं। मातृहृदयकी यह उच्चता साधारण नहीं है। धिक्कार है आज कलकी उन माताओंको जो अपने सुख और आरामके लिये अपने बच्चोंकी सारी सेवा किरायेकी दासियोंके सिपुर्द कर देती हैं।

और सुनियेः—

ललित सुतहिं लालति सचुपाये।
कौशल्या कल कनक अजिर महं
सिखवत चलन अंगुरियाँ लाये॥

अनेक दास दासियोंके होते हुए भी माता स्वयं शिक्षा देती है। माताओंका यही परमधर्म है। जिस मातृहृदयमें पुत्रोंको शिक्षा देनेका भाव नहीं वह माता काहेको है, डाकिनी है। माताका परमधर्म है कि बच्चोंको आलसी होनेसे रोकनेके लिये बड़े प्रातःकाल जगा दिया करे। प्रातःकाल जगनेवाले लोग सदैव स्वस्थ रहते हैं और अपने सब काम यथा समय कर डालनेके आदी होजाते हैं। इसी कारण माता-कौशल्या रामको प्रातःकाल जगाती हैं। इसी प्रसंगका सुयोग पाके प्रातःकालीन प्राकृतिक छटा और घटनाओंका वर्णन कवि लोग कर डालते हैं। तुलसीदासने भी वैसा ही किया है। सुनिये, और ध्यान देकर विचारिये :—

भोर भयो जागहु रघुनन्दन।
गत व्यलीक भक्तन उर चन्दन॥
शशि करहीन छीनदुति तारे।
तमचुर मुखर सुनहु मेरे प्यारे॥
बिलसत कंज कुमुद बिलखाने।
लै पराग रस मधुप उड़ाने॥
अनुज सखा सब बोलन आये।
बंदिन अति पुनीत गुण गाये।
मनभावतो कलेऊ कीजै।
तुलसिदास कहं जूठनि दीजै।

मातृ हृदयके फोटोमें हम केवल इतनेसे ही काफी रंग चढ़ा सकते हैं। पर प्रातःकालीन प्राकृतिक छटा और घटनाओंका मनोहर वर्णन देखना हो तो गीतावलीमें इसी पदके आगे वाले दो पद और भी पढ़ डालने चाहियें।

सूरदासजीने भी सूरसागरमें यशोदाद्वारा कृष्णको जगवाते हुए प्रातःकालीन छटाका बहुत हा अच्छा वर्णन किया है। हमें आशा नहीं कि अंगरेजी कवि ऐसा कर सके होंगे।

मातृहृदयमें बालक सदा बालक ही रूप रहता है। चाहे वह कितना ही सयाना वा सामर्थ्यवान क्यों न हो जाय जननीकी दृष्टिमें वह निरा दुधमुहाँ बच्चाही जँचता है। रामचन्द्रजी अनेक असुरोंको मार, शंभु शरासन तोड़ सीता सहित अवध आये हैं। माता कौशल्याके आश्चर्यका ठिकाना नहीं। वह विचार करती हैं कि मेरे बालकने इतने बड़े बड़े काम कैसे कर-डाले। अंतमें निश्चय करती हैं कि विश्वामित्र-की कृपाकी करामात है, मेरा पुत्र तो अभी बहुत छोटा बालक है। सुनिये :—

भुजन पर जननी बारि फेरि डारी।
क्यों तोरयो कोमल कर कमलन
शंभुशरासन भारी।
क्यों मारीच सुबाहु महाखल
प्रबल ताड़का भारी।
मुनि प्रसाद मेरे राम लषण की
बिधि बड़ि करिवर दारी।

चरणरेणु लै नैन लगावति
क्यों मुनिबधू उधारी।
कहौ धौं तात किमि जीति सकल नृप
बरी विदेह कुमारी।
दुसह रोष मूरति भृगुपति अति
नृपति निकर खैकारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय
करी है बहुत मनुहारी।

इसके अनन्तर तुरंत ही सुचतुर तुलसीदासने मातृहृदयकी वह रंगत दिखलाई है जो पुत्र विवाह और नवल बधूटीके दर्शनसे चढ़ती हैः-

मुदित मन आरति करै माता।
कनक बसन मणि वारि बारि करि
पुलकि प्रफुल्लित गाता।
पालागन दुलहियन सिखावत
सरिस सासु शत साता।
देहिँ असीस ते बरष कोटि लगि
अचल होउ अहिवाता।

पुत्र वियोगमें मातृहृदयकी क्या दशा होती है उसकी भी रंगत देख लीजिये :—

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब बिकल होत कौशल्या
दिन दिन अति दुख दूनो।
सुमिरत बाल विनोद राम के
सुन्दर मुनि-मनहारी।
होत हृदय अति शूल समुझि पद-
पंकज अजिर विहारी।
को अब प्रात कलेऊ मांगत
रूठि चलैगो माई।
श्याम तामरस नैन श्रवत जल
काहि लेउ उरलाई।

माताका हृदय अपने प्रवासी पुत्रका स्मरण कैसे करता है:—

राघव एक बार फिरि आओ।
ये बर बाजि बिलोकि आपने
बहुरा बनहि सिधाओ॥
जे पय प्याय पोखि कर पंकज
बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिँ मेरे राम लाड़िले
ते अब निपट बिसारे॥
भरत सौगुनी सार करत हैं
अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिँ दिन होत झाँवरे
मनहु कमल हिम मारे॥
सुनहु पथिक जो मिलहिँ राम बन
कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी और मोहि सबहिन ते
इनको बड़ो अँदेसो॥

आली अब राम लषन कित ह्वै हैं।
चित्रकूट तजो तबते न लही सुधि
बधू समेत कुशल सुत द्वै हैं॥
बारि बयारि विषम हिम आतप
सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं।
कंद मूल फल फूल असन बन
भोजन समय मिलत कैसे ह्वैहैं।
जिनहिँ निरखि सोचिहैं लताद्रुम
खग मृग मुनि लोचन जल च्वैहैं।
तुलसीदास तिनकी जननी हौं
मौसो निठुर चित औरो कहुँ ह्वैहैं।

पाठक! विचार कीजिये; इन दोनों पदोंमें माताके हृदयकी कैसी कोमल वृत्तियोंका चित्रांकन तुलसीने किया है कि सहृदय पाठकोंके आँसू बिना बहे नहीं रह सकते। सोचिये विचारिये और माताके हृदयको देखिये।

प्रवाससे पुत्रोंके लौटनेका समय निकट आगया है। माता दिन गिन रही है। सगुन निकलवाती है, मन्नतें मनाती है, ज्योतिषीको

बुलाकर आगमन विषयमें प्रश्न करती है। ज़रा देखिये तो कैसा चित्र है, कैसी तन्मयता है:—

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुशल घर
कहहु काग फुरि बाता।
दूधभातकी दोनी देहौं
सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नैन भरि
राम लषण उर लैहौं।
अवधि समीप जानि जननी मन
अति आतुर अकुलानी।
गनक बुलाय पाँय परि पूछत
प्रेम मगन मृदु बानी।
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते
समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी
मानो मीन मरत जल पायो।

पाठक प्रवर! देखिये, इस मौकेपर सुयोग पाके तुलसीदास जी हिन्दू विश्वासके अनुसार 'क्षेमकरी' नामक पक्षीका स्वभाव वर्णन करते हैं। उसका रूप रंग, उसका बोलना और मँड़राना, तथा उसके विषयमें हिन्दू विश्वास सब कुछ वर्णित है।

क्षेमकरी बलि बोलि सुबानी।
कुशल क्षेम सियराम लषन कब,
ऐहैं अवधि अवध रजधानी।
शशिमुखि कुंकुमवरणि सुलोचनि,
मोचनि सोचनि वेद बखानी।
देवि दया करि देहि दरस फल,
जोरि पाणि बिनवहिं सब रानी।
सुनि सनेहमय बचन विकट ह्वै,
मंजल मंडल कै मँड़रानी।
शुभ मंगल आनन्द गगन धुनि,
अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी।
फरकन लगे सुअँग बिदिस दिसि,
मन प्रसन्न दुख दसा सिरानी।
करहि प्रणाम सप्रेम पुलकि तन,
मानि विविध बलि सगुन सयानी।

हिन्दी कवि मौका पाकर इसी प्रकार प्राकृतिक स्थूल घटनाओं वा वस्तुओंका वर्णन करते हैं। यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि उनका नेचर निरीक्षण कमज़ोर और वर्णन शिथिल होता था।

प्रवाससे पुत्र आता है। माता उससे मिलनेको कितनी उत्सुक होती है। इस भावको तुलसीने इतनी उत्कृष्टतासे वर्णन किया है कि उससे अधिक उत्कृष्टता प्रकृतिमें दिखाई ही नहीं पड़ती। सुनिये—

कौशल्यादि मातु सब धाई।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह,
चरन बन परबस गई।
दिन अन्त पुररुख स्रवत थन,
हुंकार करि धावत भई॥

यदि आपने लवाई गायको कभी संध्या समय बनसे चर कर घर आते हुए देखा होगा, तो आप समझ सकेंगे कि तुलसीने क्या कहा, क्यों कहा और कैसा कहा। माताके प्रेमके मिस लवाई गायकी प्राकृतिक अधीरताका वर्णन और इस घटनाकी तुलनाके मिस माताके प्रेमका वर्णन ऐसी पुष्टतासे हुआ है कि इससे अधिक उत्तम रीति भारतमें तो कोई दूसरी नहीं दिखाई पड़ती, अन्य किसी देशमें कुछ हो तो हो। हमारे हिन्दी कवि इसी प्रकार प्राकृतिक गुणों, दृश्यों और घटनाओंका वर्णन करते हैं।

बस पाठक! आज इतना ही। यदि 'विज्ञान' के पाठक ऐसे लेख पढ़नेकी रुचि दिखावेंगे तो कभी फिर सेवामें उपस्थित हूंगा। हमारी

सम्मति है कि सम्मेलन परीक्षाओंमें तुलसीकृत गीतावली पढ़ाई जावे तो हमारे नवयुवकों के हृदय अत्यन्त पवित्र उच्च और सरस हो सकते हैं।

—भगवानदीन

वैज्ञानिकीय

१—भोजन करते समय पानी पीजिये

कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि भोजन करते समय ज़रा भी पानी नहीं पीना चाहिये, क्योंकि पाचक रसके हल्का हो जानेसे पाचक शक्ति मंद पड़ जाती है। यह नियम शीत प्रधान देशोंमें चाहे जैसा अच्छा जान पड़ता हो, भारतवर्ष जैसे गरम देशोंमें बड़ा ही कष्टप्रद हो जाता है, परन्तु तोभी मन्दाग्निसे पीड़ित पढ़े लिखे सज्जनोंको इसका पालन करना ही पड़ता है। इसी सम्बन्धमें न्यूयार्क के विश्वविद्यालयके सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित किया गया था कि भोजन करते समय पानी पीना हितकर है वा अहितकर। इसका उत्तर जो कुछ दिया गया वह नीचे लिखा जाता है—

लोगोंका यह विचार था कि भोजन करते समय पानी नहीं पीना चाहिये, क्योंकि इससे पाचक रस हल्का पड़ जाता है और भोजनका पाचन देरमें होता है; परन्तु अब अनुभवसे सिद्ध हो गया है कि भोजनके साथ पानी पीनेसे पाचक रसके बननेमें सहायता मिलती है। अँतड़ियोंके कीटाणुओंकी बाढ़ भी रुक जाती है, यकृतकी क्रिया उत्तम रीतिसे होती रहती है, अँतड़ियोंके भीतरका सड़ना कम पड़ जाता है और भोजनका सार अच्छी तरह शरीरके काममें आता है। इतना ही नहीं लार पानीसे मिलकर अधिक अच्छा काम करती है। इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि भोजनके साथ पानी पीनेसे लाभ होता है।*

२—सच झूठ परखनेका यंत्र

लण्डन विश्वविद्यालयके डाक्टर अगस्टस डी वालर, एफ़० आर० एस० ने एक यन्त्र बनाया है जिससे सच झूठकी जांच की जा सकती है।

जिस समय झूठे आदमीसे जिरह की जाती है उसके वात संस्थान (nervous system) पर एक विचित्र प्रभाव पड़ता है, जिसका चित्र बिजली की शक्ति द्वारा खींच लिया जाता है। सच्चे आदमीके हृदयपर जिरहका जो प्रभाव पड़ता है उससे भिन्न प्रभाव झूठे आदमीके हृदयपर पड़ता है और इन भिन्न प्रभावोंके चित्र भी भिन्न होते हैं। डाक्टर साहबका अनुभव है कि मनोवृत्तिके अनुसार त्वचाकी विद्युत् बाधकशक्ति (बाधा) घटती बढ़ती है। इस यंत्रसे कितनी सूक्ष्मता पूर्वक जांच की जा सकती है इसका अनुमान इस बातसे हो सकता है कि साधारण खटके (apprehension) का चित्र भी प्रकाशके आन्दोलन द्वारा उतारा जा सकता है।

अपराधीकी जांच इस प्रकार की जाती है—मान लीजिये कि उसको सिद्ध करना है कि जिस समय और जिस स्थानपर उसको निन्दित कर्म करनेका दोष दिया जा रहा है उस स्थानपर उस समय वह था ही नहीं। जिस समय न्यायाधीश उससे स्थान विशेषके सम्बन्धमें कुछ पूछना चाहता है उत्तर पाता है कि दोषी वहां कभी गया ही नहीं। इसकी परीक्षा डाक्टर साहब अपने यंत्र द्वारा इस प्रकार लेंगे—बिजलीके तार इसके दोनों हाथोंमें थमा दिये जायंगे; इसको कुछ चित्र दिखाये जायंगे, जिनमें एक उस स्थानका भी चित्र होगा जहां वह कहता है कि कभी गया ही नहीं है। अन्य चित्रोंका प्रभाव ऋणात्मक होगा, परन्तु इस विशेष चित्र-

के दिखाते ही प्रकाश चिन्ह उछल पड़ेगा जिसको रोकनेकी शक्ति किसी भी मनुष्यमें नहीं है।

३—उबालकर तरकारी बनानेवालोंकी गलती

उबालकर जो लोग आलू, अरवी आदि तरकारी बनानेवाले बड़ा गलती करते हैं। उबालनेसे बहुत से घुलनशील पदार्थ पानीमें घुलकर निकल जाते हैं। अतएव उबालकर तरकारी बनानेसे तरकारी न स्वादिष्ट रहती है न बलकारक। स्त्रियां प्रायः छीलनेके आलस्यसे पहले उबाल लिया करती हैं, तब छीलकर तरकारी बनाती हैं। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि असली सार तो उबालनेके पानीके साथ ही चला जाता है।

४—एक सेर शहदका मूल्य

पाठक वृन्द! शहद खानेमें कितना स्वादिष्ट और गुणकारी होता है। पर क्या शहद खाते समय आपको कभी यह ख्याल भी आता है कि यह कितने परिश्रमसे बनाया जाता है। "एनीमेल गारजियन" नामके सामयिक पत्रमें एक लेखकने अनुमान लगाया है कि क्लोवरके फूलोंसे एकसेर शहद बनानेके लिए लगभग सवालाख फूलों का मक्खियोंको रसपान करना पड़ता है। इस कामकेलिए मक्खियोंको ५५ लाख बार फूलों तक जाना पड़ता है। यदि एक ही मक्खी इस कामका बीड़ा उठाये तो इसे ५५ लाख बार छत्तेसे पुष्पोद्यान तक और पुष्पोद्यानसे छत्ते तक जाना पड़ेगा। अब ज़रा सोचिये कि पुष्पोद्यान सदा छत्तोंके पास तो होते नहीं हैं। इसलिये मक्खीको प्रायः छत्तेसे कोसकोस भर तक इधर उधर जाना पड़ता है। अतएव ५५ लाख बार आने जानेमें उसे इतनी दूर चलना पड़ता है, जितना कि पृथ्वीकी ८८० बार परिक्रमा देनेमें चलना पड़ता है।

(५) रहनेके अच्छे घर

शहरोंमें जो किरायेदारोंके रहनेके लिए मकान बनाये जाते हैं, उनमें स्वास्थ्यके नियमोंका विचार नहीं किया जाता। मकान बनानेवाले किसी प्रकार कमरोंकी संख्या अधिक दिखाना चाहते हैं। उनमें प्रकाश पर्याप्त मात्रामें आता है या नहीं, उनमें हवा आनेजानेके लिए रुकावट तो नहीं है, इत्यादि बातोंकी उन्हें फिकर नहीं होती। प्रयागमें ही देखिये। प्रायः सभी घरोंमें पैखाने या तो ज़ीनों या दर्वाज़ोंके पास होते हैं। इस कारण घरमें घुसना या ज़ीना चढ़ना एक प्रकारकी सज़ा हो जाती है। म्युनिस्पिलटी सफ़ाई रखती है; सिविललैन्समें गलियोंकी उसे फिक्र ही नहीं होती। मकान बनानेकी आज्ञा देते समय भी स्वास्थ्य रक्षा के नियमोंपर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता।

इन सब बातोंपर ध्यान देते हुए धनवानोंका कर्तव्य है कि अच्छी जगहमें अच्छा स्वस्थ घर बनवाएं और उचित किरायेपर उठादें, जिसमें कम आमदनीवाले आदमी भी फायदा उठा सकें।

हालमें सुना है कि एन० एन० वादिया तथा सी० एन वादिया की माता श्रीमती बाई जरबाई नवरोजी वादियाने पारसी जातिके उपकारके निमित्त ५० लाखका दान दिया है। उन्होंने अच्छे स्वस्थ भवनोंका निर्माण कराने और थोड़े किरायेपर उठादेनेपर विशेष ज़ोर दिया है। इस उद्देश्यसे उन्होंने १५ लाखमें सर जैकब-सेसूनकी ब्रेगनेज़ा हाल नामी जायदाद खरीद ली है और गृहनिर्माणका काम जारी कर दिया है।

यह दान अनुकरणीय है। उदार हृदया महिलाका पारसियोंको विशेषतः कृतज्ञ होना चाहिये।

प्राप्ति स्वीकार

जून १९२०

श्री० श्रीप्रकाश जी, एम० ए०, बार-एट-ला, बनारस ... ... १२)
प्रो० वृजराज, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल.एल० बी० १५०)

१६२)

जुलाई १९२०

श्री० राय बहादुर जी० एन० चक्रवर्ती १२)
श्री० शारदा प्रसाद, सतना ... १२)
श्री० सी० नार्डलिंगर, कलकत्ता ... १२)
पं० श्री कृष्णजोषी, नाभा ... १२)
श्री० फ्रीमेन्टल, मेरठ ... ... १२)
श्री० एस० आर० डेनियल्स, लखनऊ ३६)
श्रीमान् राजा रामपाल सिंह, ... १२)
श्री० महाराजा छत्तरपूर ... १२)
राजा सय्यद आबूजाफर, पीरपुर ... १२)
श्री० महाराजा, भालावाड़ ... १२)
पं० श्रीनाथ मिश्र, दर्भंगा ... १२)

१५६)

हिसाब

जून १९२०

आय		व्यय	
रोकड़ बाक़ी	८८७॥≡)२	किराया मकान	८)
चंदा (सभ्योंका) ...	१२)	चपरासी और क्लर्ककी तनख़ाह ...	२२)
चंदा (आजन्म सभ्य बननेके लिये)	१५०)	मुत्तफर्रिक	२≡)
		योग ...	३२≡)
		रोकड़ बाक़ी	१०१६॥)२
योग ...	१०४९॥≡)२	महायोग ...	१०४९॥=)२

जुलाई १९२०

आय		व्यय	
रोकड़ बाक़ी	१०१६॥)२	क्लर्क, चपरासीकी तनख्वाह ...	२२)
सभ्योंका चन्दा... ...	१५६)	मुत्तफर्रिक	१-)९
पुस्तकों की बिक्री ...	५९०॥।=)९	कागज पुस्तकें छपवानेके लिये ...	१९५)
		कागज चिट्ठियोंके लिये ...	४॥)
		पुस्तकोंकी छपवाई ...	८२)॥
		विज्ञान खाते जमा सभ्योंके चन्देके लिये	२६१)
		टिकट...	२)
		साहित्य भवनसे पुस्तकें मंगाई ...	३६।)
		योग ...	६०४=)।
		रोकड़ बाक़ी ...	११५९।)८
योग ...	१७६३।=)११	महायोग ...	१७६३।=)११

समालोचना

प्रभाकर पंचांगम् (१६७७)—संपादक विद्याभूषण पंडित दीनानाथ शास्त्री, प्रकाशक 'प्रभाकर पंचांग कचेरी' लाल बाग पो० नं० १२ बम्बई ; मूल्य १) ; आकार बड़ा, पुस्तकके रूपमें, पृष्ठ संख्या ८+६४।

भारतवर्ष इतना बड़ा देश है कि एक स्थानका बना हुआ पंचांग ऐसा नहीं होता कि उससे तिथि नक्षत्रादिका ज्ञान सारे देशमें ठीक ठीक होसके। इसी कारण प्रत्येक प्रान्तके लिये उसी प्रान्तका पंचांग काममें लाया जाता है। एक केन्द्रके बने हुए पंचांगोंमें भी भिन्नता होती है। इसका कारण यह है कि पञ्चांग बनानेवाली संस्थाएं भिन्न भिन्न ज्योतिषग्रन्थोंको प्रमाण मानकर अपना पञ्चांग तैयार करती हैं। फिर भी प्राचीन मतानुसार गणना करनेसे ग्रहोंकी जो स्थितियां निकलती हैं वह वेधद्वारा गणना करनेसे कुछ भिन्न होती हैं। इसी भिन्नताको दूरकरने के लिए महाराष्ट्र प्रान्तमें बहुत दिनोंसे प्रयत्न हो रहा है ; पञ्चांग संशोधक परिषदें भी बन गयी हैं और इनके प्रवर्तक लोकमान्य तिलक जैसे बड़े बड़े नेता हैं। ज्योतिर्गणितम् नामक ग्रन्थ भी इसी उद्देश्यसे श्रीयुत केतकरने तैयार किया है।

प्रस्तुत पञ्चांगमें कई बातोंकी विशेषता है। यह ऐसे ढंगसे बनाया गया है कि भारतवर्षके सभी स्थानोंमें काम देसकता है। बाएं पृष्ठपर पहले एक एक पक्षके तिथि, वार, नक्षत्र, योग, दोनों करण, दिनमान सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय, चर, उदयान्तर हिन्दी (सौर) मुसलमानी और अंगरेज़ी तिथियां और चन्द्रस्थान दिये गये हैं। इनके नीचे फिरसे तिथियोंकी संख्या देकर प्रत्येकके सामने अहर्गण देनेके बाद मद्रास, रंगून, हैदराबाद, बम्बई, बड़ौदा, कलकत्ता, उज्जैन, प्रयाग, कानपुर, जयपुर, दिल्ली, लाहौर और नागपूर के दिनमान, सूर्योदय, और सूर्यास्तके समय और चर दिये गये हैं ; जिनकी सहायतासे प्रत्येक स्थानके तिथिमान तथा नक्षत्रमानोंका संशोधन सुगमता पूर्वक किया जा सकता है। यहां यह नहीं जान पड़ता कि अहर्गण देनेसे क्या लाभ सोचा गया है ; क्योंकि इनकी गणनाका आरम्भ केवल चार-वर्ष पहलेसे माना गया है। शायद यह समय प्रभाकर मँडलके स्थापित होनेकी तिथि है ! दूसरी कमी यह है कि जहां प्रधान प्रधान नगरोंके चर और उदयास्तके समय दिये गये हैं वहां यह रीति भी स्थूल रूपसे बतला देनी चाहिये कि इनकी क्या उपयोगिता है ; क्योंकि यह पञ्चांग जनताके लाभके लिये बनाया गया है ; परन्तु जनता ही नहीं साधारण ज्योतिषी भी यह नहीं जानते कि इनका क्या प्रयोजन है। आशा है कि अगले संस्करणोंमें इस बातका समावेश किया जायगा। यह तो हुई प्रधान पञ्चांगके प्रति बाएं पृष्ठकी बात।

दाहिने पृष्ठ पर पक्षका नाम अमान्त मास गणनाके क्रमसे दिया हुआ है जिसका प्रचार महाराष्ट्र प्रान्तमें विशेष है। जिस तिथिमें जो पर्व पड़ा है अथवा जिस ग्रहका उदयास्त है उनका विवरण भी दिया हुआ है जैसा कि साधारण पंचांगोंमें होता है। इस पृष्ठपर भी यह विशेषता है कि प्रति दिनके सूर्योदय समयकी सूर्यक्रान्ति, सूर्यसिद्धान्तानुसार सूर्यकी स्थिति, ग्रह गणित द्वारा सूर्यकी स्थिति, सूर्यकी दैनिक गति तथा चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र शनिश्चर और राहुके प्रतिदिनके सूर्योदय समयकी स्थितियां दी हुई हैं। उज्जैन केन्द्र माना गया है। सबसे नीचे प्रति सप्ताहके ग्रह स्पष्ट, व्यापारकी तेजी मन्दी तथा राशिफल हिन्दी भाषामें बतलाये गये हैं। इस प्रकार १३ मासोंका विवरण ५२ पृष्ठोंमें दिया गया है। पंचांगके बनानेमें, जैसा कि प्रकाशकका वक्तव्य है, सचमुच परिश्रम किया गया है।

इनके सिवा ज्योतिष तथा मुहूर्तसम्बन्धी साधारण बातें भी दी गई हैं। विषयानुक्रमणिका भी दीगई है। चौथे पृष्ठपर लो० तिलक, माननीय मालवीयजी, जगद्गुरु शंकराचार्यजी, मि० खापर्डे तथा तीन ज्योतिषियोंके चित्र हैं। मुख पृष्ठ पर भी कुछ महानुभावोंके चित्र हैं जिसमें यह सब खड़े दिखाये गये हैं। शायद इसका भाव यह है कि सारे भारतवर्षके लोग चाहते हैं कि एकही पंचांगका प्रचार हो। इसमें आकृतियां बड़ी भद्दी छपी हैं।

एकजगह ८ अक्षांशसे लेकर ३६ अक्षांश तकके भारतवर्षके प्रधान नगरोंके पल भी, चरखण्ड तथा प्रत्येक लग्नका उदयमान दिया हुआ है और यह भी दिखलाया गया है इन स्थानोंमें शुक्र, गुरु तथा अगस्त्यके उदयास्तकाल कब कब होंगे। हिन्दी भाषामें वर्षका फलादेश और एलिचपुरके अनुसार लग्नसारिणी भी दी हुई हैं। दो पृष्ठोंपर यह दिखलाया गया है कि उज्जैन से किस देशान्तरपर संसारके मुख्य मुख्य नगर हैं और उनके अक्षांश तथा पलभी क्या हैं। एक एक पृष्ठ पर ग्रहकोष्टक, मुहूर्त, वर्षभरकी मास दशा देखनेकी सारिणी, होराचक्र इत्यादि भी दिये हुए हैं।

पंचांग अच्छे ढंगसे बनाया गया है। संपादक तथा प्रकाशकके निवेदनमें बेमहाविरेदार हिन्दी कानोंको खटकती है। फिरभी पंचांगके सब उपयोगी विषय को हिन्दीमें बतलानेका उद्योग महाराष्ट्र प्रान्तके लिए सराहनीय है। हिन्दी भाषी प्रान्तके लिए इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

—महावीर प्रसाद

गन्ना और शक्कर—ले० एस-सी० बनर्जी, एफ० सी० एस० सहकारी रसायनज्ञ, सरकारी कृषि विभाग, संयुक्त प्रान्त, कानपुर। लेखकसे प्राप्य। मूल्य १)

इस पुस्तकके तीन भाग हैं, जिनमें १५ अध्याय हैं। पहले भागमें गन्नेका ऐतिहासिक वृत्तान्त, गन्नेके अंग और उनके गुण, इक्षु प्रभेद, गन्नेकी खेती और उसकी लागत पर विचार किया गया है। दूसरे भागमें गन्नेकी पेराई, गुड़ और राब बनाना, राबसे शक्कर बनाना और शक्करके खानेका वृत्तान्त दिया है। तीसरे भागमें गन्ना और शक्कर सम्बन्धी रासायनिक बातें दी हैं जो खेतीहरों तथा शक्करके कारखानोंके मालिकोंके बड़े काम की हैं।

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और जितना ज्ञातव्य विषय इसमें दिया है, उतना सुगमतासे अंग्रेज़ी जाननेवालों को अप्राप्य है। इस पुस्तकको देखकर यह कहे बिना नहीं रहा जासकता कि हिंदी और हिन्दी जाननेवालोंकी उन्नतिका युग वस्तुतः आगया है। पारिभाषिक शब्द कुछ तो अंग्रेज़ीके ज्योंके त्यों ले लिये गये हैं, पर अधिकांश हिन्दीके ही प्रयुक्त हैं। रासायनिक द्रव्योंके नामकरणमें गुरुकुलकी पद्धतिका प्रयोग किया गया है। हमारी सम्मतिमें (ate) के लिए एत, (ite) केलिए इत, और (ide) के लिए इद अधिक उपयुक्त हैं, क्योंकि इत, आइत आदिकी अपेक्षा अधिक सरल हैं और अंग्रेज़ीसे मिलते जुलते हैं।

पुस्तक प्रत्येक साहित्य-प्रेमी और कृषिहितैषीको पढ़नी चाहिये। कृषिसम्बन्धी व्यवसायोंका प्रचार करने और तद्विषयक ज्ञान फैलानेसे भारत जैसे कृषिप्रधान देशका बड़ा उपकार हो सकता है। लेखक महोदयने जो महत्व पूर्ण कार्य किया उसके लिये उन्हें धन्यवाद देना चाहिये।

मद्रासमें हिन्दी प्रचारका विवरण—प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। मूल्य -)

महात्मा गांधीके आदेशानुसार सम्मेलनने मद्रास प्रांतमें हिन्दी प्रचारका बीड़ा उठाया है, उसी महत्वपूर्ण कामका कुछ ब्यौरा इस पुस्तकके पढ़नेसे मालूम हो सकता है। यद्यपि कुछ सज्जन प्रचारकी वर्तमान प्रगतिसे

सन्तुष्ट न होंगे, तथापि धनकी और काम करने- वाले निस्वार्थ सेवकोंकी कमीका विचार करते हुए, जो कुछ अबतक हुआ है, संतोषप्रद है। हिन्दी हितैषियोंको उचित है कि सम्मेलनको धन देकर इस कार्यमें सहायक बनें।

हिन्दी भाषासार (गद्य पहला भाग)-प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। दाम ॥=)

यह अत्यन्त उपयोगी और भाषा-विकाश प्रदर्शक संग्रह लाला भगवानदीन तथा प्रो० रामदास गौड़ने किया है। इसका प्रकाशन सम्मेलनके योग्य ही था।

इस पुस्तकमें जितने अंश चुने गये हैं, उनमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है "कि (१) हिन्दी भाषामें संगठित गद्य लेख लिखनेकी प्रणालीका पता कबसे चलता है, (२) गद्य लिखनेकी प्रणाली क्रमशः कैसे पुष्ट होती गई और (३) कितने प्रकारकी हो सकती है।" संग्रहकर्ता सज्जन इस उद्देश्यमें सफल हुए हैं। पहिले गद्य लेखक होने तथा वर्तमान कालके प्रमाणिक लेखक होनेका सहरा कायस्थ सज्जनों-के सर ही बंधा है। संग्रहकर्ता भी कायस्थ हैं। जो लोग कायस्थोंको हिन्दीसे विरक्त होनेके दोषी ठहराते हैं उन्हें इससे उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

इस पुस्तकमें पं० रतननाथ और डा० नज़ीर अहमदके लेख सम्मिलित हैं। शायद कुछ सज्जन यह देखकर चौंकें पर हम संग्रहकर्ताओंसे पूर्ण सहमत हैं कि उर्दू हिन्दीका रूपान्तर विशेष है।

नकली और असली धर्मात्मा—ले० सूरजभान वकील। प्रकाशक, चन्द्रसेन जैन वैद्य इटावा निवासी पृष्ठ संख्या २०० । मूल्य ॥)

पुस्तक बहुत सस्ती है। कहानी रोचक है, पुराने कहानी कहने वालोंके ढंगसे लिखी गई है। उसमें झूठे या नकली धर्मात्माका अच्छा चरित्र-चित्रण किया है। जबसे नकली धर्म भारतमें चला है, तभीसे इसका अधःपतन आरम्भ हुआ है। यहाँ "हाथ सुमरनी पेट कतरनी" वाले बहुत सेठ 'साहूकार' अफसर मिलेंगे। असली धर्मात्मा कितना धर्म निष्ठ और कर्तव्य परायण रहता है और संसार और समाजके दिखानेके लिए, उन्हें धोखा देनेके लिये कितना कम काम करता है—यह सब बातें मथुरादासके चरित्रमें भलीभाँति प्रदर्शित की हैं। मथुरा-दाससे लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिलवाना अस्वा-भाविक है। पुस्तककी भाषा जैनियोंकी बोल चालकी भाषा है। शुद्ध हिन्दी नहीं है। पुस्तक-की छपाईमें भी दोष है। हर जगह स्वल्प विरामोंसे ही काम लिया है। पूर्ण विराम शायद ही कहीं दिखाई पड़ते हों। तो भी जैनि-योंमें प्रचार करनेके लिये बहुत उपयुक्त है।

नवम हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी लेख माला तथा (२) कार्य विवरण—प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

लेख मालाके दाम १॥) हैं। इसमें २५ लेख हैं, जो अच्छी भाषामें लिखे हुए हैं और बड़े महत्वके विषयोंसे सम्बन्ध रखते हैं। हिन्दी हितैषियोंको अवश्य पढ़ने चाहियें।

कार्य विवरणका मूल्य ।=) है। सम्मेलन जैसी संस्थाके सम्बन्धमें सब बातें जानना प्रत्येक मातृभाषा भक्तका काम है।

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से पृष्ठ ९७ से १५४ तक स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद में छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्णसंख्या ६४ Reg. No. A 708

भाग ११ कर्क संवत् १९७७। जुलाई १९२० संख्या ४

Vol XI. No 4

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञ हिन्दी हितैषियो !

विज्ञानने आपकी और आपके साहित्य की पाँच वर्ष सेवा की और घाटा उठाया। इस पर भी आपके मित्रोंने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। क्या अब आप इस ओर उनका ध्यान दिला सकते हैं और उसकी ग्राहक संख्या बढ़ा सकते हैं ? यदि ग्राहक संख्या न बढ़ायी गयी तो कागज और अन्य चीजोंकी महँगाईसे तंग आकर या तो विज्ञान का चंदा बढ़ा दिया जायगा या उसको पृष्ठ संख्या कम कर दी जायगी। इसलिये आपसे सविनय प्रार्थना है कि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने का यत्न कीजिये।

उन रोचक लेखोंकी सूची जो पिछले अंकों में निकल चुके हैं नीचे दी जाती है।

१—बहीखाते का सैद्धान्तिक विवेचन।
२—विज्ञान और ईश्वर।
३—कुछ खेल और खिलौने।
४—रोशनाई।
५—सृष्टि वैचित्र्य।
६—कपास।
७—राधिकेश राधारहस्य।
८—हिन्दी कवितामें प्रकृति वर्णन।
९—भोजन करते समय पानी पीजिये।
१०—सच झूठ परखने का यंत्र।
११—एक सेर शहदका मूल्य इत्यादि।

विज्ञानके पिछले अङ्क भी मिल सकते हैं। उन अङ्कोंकी पूरी पूरी विषय सूची देना असम्भव है, परन्तु कुछ लेखोंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

१—तारपीन और विरोजा। २—वायु-मंडलपर विजय। ३—बिजली कैसे बनायी जाती है ? ४—भोजनकी पुकार। ५—तारों भरी रात। ६—स्वास्थ्य-रक्षा। ७—फूलोंके संसारमें एक पागलका प्रवेश। ८—फिटकरी। ९—बिजलीकी रोशनी। १०—चतुर बैरिस्टर। ११—आकाशी दूत। १२—भूल भूलैयां। १३—बीजोंका प्रवास। १४—बीज परम्पराको नियम। १५—खाद्यें। १६—नमक और नमककी खानें। १७—गरम देशोंके योग्य वस्त्र। १८—मदन-दहन। १९—स्कूल जानेवाले विद्यार्थियोंके दांतों की कुदशा। २०—मनुष्यका नया नौकर इत्यादि इत्यादि।

विज्ञानका पुराना अंक नमूनेके लिए भी मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागसे मुफ्त मिल सकता है। नये अंकके लिए।-) के टिकट भेजिये।

दैनिक 'प्रताप'

उसमें—

१—लीडर या अभ्युदय साइज के ८ पेज होंगे।

२—एसोशिएटेड प्रेस से सीधे तार मँगाये जायंगे।

३—रूटर की विदेशी खबरें भी ताज़ी रहा करेंगी। इसका विशेष प्रबन्ध हो रहा है।

४—ताज़े समाचारों के लिए विशेष प्रबन्ध किया जायगा।

५—देश के मुख्य मुख्य शहरों में विशेष सम्वाद-दाता रहेंगे।

६—व्यापारिक समाचारों का विशेष प्रबन्ध किया जायगा। उसके लिए एक सम्पादक विशेष रूप से नियत किया जायगा।

७—अभी तक हिन्दी में जितने दैनिक निकल रहे हैं उनमें किसीमें भी यह सब बातें नहीं हैं।

८—दैनिक प्रताप की नीति उतनी ही निर्भीक और वैसी ही स्पष्ट रहेगी जैसी कि साप्ताहिक प्रताप और प्रभा की है।

स्वयं ग्राहक बनकर और दूसरोंको ग्राहक बनाकर हमारा हाथ बटाइये

वार्षिक मूल्य १८)

—मैनेजर प्रताप प्रेस, कानपुर

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ११ { कर्क, संवत् १९७७ । जुलाई, सन् १९२० । } संख्या ४

टाइफोइड ज्वर और उसके जीवाणु

टाइफोइड ज्वरको हमारे देशमें मोतीझिरा कहते हैं, जिसको कि अनजान लोग शीतला या माताका एक रूप मानते हैं और रोगीको किसी मूर्ख माँलीकी अज्ञानताको श्रद्धा पूर्वक सौंपकर उसकी अकाल मृत्युका सब सामान ठीक कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ मुख्य भयंकर रोगोंको छोड़ देशमें सबसे अधिक मृत्यु इसी रोगसे होती हैं। यह रोग कुछ यहांकी विशेषता नहीं है, परंतु हर जगह, सब देशोंमें और सब प्रकारके जलवायुमें जहां मनुष्यका निवास है कम या ज़्यादा पाया जाता है। यह एक बड़ा भयंकर रोग है, परन्तु कुछ दशाओंमें रोगी इतना बीमार नहीं होता कि खटियामें पड़ जाय। इसका आक्रमण धीरे धीरे होता है यहां तक कि प्रारम्भिक दशामें रोगी समझता है कि उसे ऐसी कोई विशेष बात नहीं मालूम पड़ती जिससे वह खटियामें पड़ जाय। इसका आक्रमणकाल (incubation period) सातसे इक्कीस दिन तक होता है।

टाइफोइड ज्वर एक प्रधान रोग (important disease) है

टाइफोइड ज्वरकी प्रधानता उसके रोगियोंकी मृत्युसंख्यापर निर्भर नहीं है। हरएक मृत्युके पीछे छः सात रोगी ऐसे भी होते हैं जिनको रुग्नावस्थाके चिन्ता और परेशानीके दिन बहुत सावधानता पूर्वक काटने पड़ते हैं, और इनमें से बहुतसे तो ऐसे होते हैं कि जब वह बीमारीसे उठते हैं तो दुर्बल मूत्रयंत्र (weakened kidneys) टूटी कमर (lame back) लूले हाथ पांव अथवा अन्य ऐसे शारीरिक संकट लेकर उठते हैं जो अन्तकाल तक साथ देते हैं।

टाइफोइडके जीवाणु

टाइफोइडका जीवाणु एक मोटा शलाकाकार (बैसिलस) होता है (चित्र ३८)। यह द्रव पदार्थमें रहनेके उपयुक्त होता (fitted) है, जिसमें वह स्वाधीनतासे तैरता रहता है। यह हमारे शरीरमें मुंह द्वारा प्रवेश करता है और विशेषतः (small intestines) छोटी आंत (क्षुद्रअंत्र)की दीवारोंपर आक्रमण करता है। परन्तु टाइफोइड ज्वरके रोगियोंके रक्त और कुल शरीरमें यह पाया जाता है। मस्तिष्कावरण प्रदाह (meningitis), निमोनिया और हड्डीका क्षत (ulcers in the bone) इसी जीवाणुसे होते हैं। गुलाबी रंगके चकत्ते अथवा दाने (spot) जोकि टाइफोइड ज्वरके अधिकांश रोगियोंके पेटपर दिखाई देते हैं इसी जीवाणुके खाल (skin) में वृद्धि पानेसे हो जाते हैं। यह जीवाणु मल मूत्र द्वारा शरीरके बाहर निकलते हैं। यह पसीनेमें भी पाये जा सकते हैं और यदि यह फेफड़ोंमें पहुंच गये हैं तो थूकमें भी मिल सकते हैं। यह जीवाणु २५% टाइफोइडके रोगियोंके पेशाबमें पाये जाते हैं और कभी कभी इनकी संख्या बहुत अधिक होती है। एक एक घन शतांश मीटर (cubic centimeter) में १००,०००,००० से ५००,०००,००० जीवाणु तक अथवा एक बूंदमें ५,०००,००० से २५,०००,००० जीवाणु तक पाये जाते हैं। बहुत सावधानीसे इनका नाश कर देना चाहिये, नहीं तो इनके द्वारा रोग फैल सकता है।
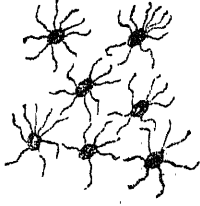
चित्र ३८

शरीरके बाहर टाइफोइड जीवाणु

टाइफोइडके जीवाणु पशुओंपर आक्रमण करते नहीं पाये गये हैं। यह पानीमें कई हफ़्तों तक रह सकते हैं और यह विश्वास किया जाता है कि ज़मीनमें यह कई महीने तक रहते हैं। यह दूधमें बहुत जल्दी वृद्धि करते हैं। सुखानेसे जल्दी मर जाते हैं। साधारणतया टाइफोइडके जीवाणु मनुष्यके शरीरको छोड़ते ही मर जाते हैं।

टाइफोइड ज्वर होनेका कारण

जिस मकानमें टाइफोइडका रोगी हो उस मकानके रहनेवालों और अन्य लोगोंके हाथोंपर यह जीवाणु रोगीके बिस्तरेको छूने छानेसे और अन्य सैकड़ों प्रकारसे पहुंचते हैं। इसके अतिरिक्त नालियों व मोरियोंकी गंदी हवायें (gases) खुली नालियां, पीनेका पानी जो चहबच्चों (cesspools) नालियों और पाखानोंके गंदे पानीके मिलनेसे ख़राब हो गया हो (अक्सर कच्चे कुओंके पानीमें आस पासकी नालियोंका पानी रिस रिस कर जा मिलता है और पीनेके पानीको ख़राब करता है। हम आगेके एक लेखमें यह बतायेंगे कि यह किस प्रकार होता है और कुएं कैसे बनाने चाहियें)—यह सब इस रोगके फैलनेके कारण हैं। मक्खियां भी बहुतसे जीवाणुओंको लिये लिये फिरती हैं, विशेषतः उस जगह जहां टाइफोइडके रोगीका मल मूत्र इत्यादि सावधानीसे नाश न किया जाता हो।

यह जीवाणु उन घोंघोंमें भी (जिनको पश्चिमीय तथा अमेरिकन लोग बहुत ज़ायक़ेसे खाते हैं) होते हैं, जो गंदे पानीमें मिलते हैं। इसीलिए जो लोग घोंघे खाते हैं उन्हें यह जानना चाहिये कि पकाये हुए घोंघे कच्चे घोंघोंसे अच्छे होते हैं। बहुत जगह यह देखा गया है कि जहां किसी रोगीने दूधको छुआ है या जहां दूधके बर्तन ऐसे पानीमें धोये गये हैं जिसमें टाइफोइड जीवाणु हों तो उस दूधके द्वारा भी टाइफोइड रोग फैला है। इसकी पुष्टिमें कुछ अमेरिकन उदाहरण तथा अनुभव दिये जाते हैं। सन् १८०७ में पेलो एलटो केली फोरनिया (Palo Alto California) के एक पहाड़के ऊपर बसे हुए एक घरमें एक मनुष्य-

को टाइफोइड हुआ। उस रोगीका मल मूत्र एक चश्मेमें फेंका जाता था जिसके किनारे कुछ दूरपर नीचे चलकर एक गोशाला (dairy) थी। उस गोशालाके दूधके डिब्बे तथा बोतलें उस चश्मेमें धोई जाती थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि टाइफोइड उन लोगोंमें फैल गया, जो इस गोशाला से दूध लिया करते थे और लगभग २३६ मनुष्य मर गये। सन् १९०८ में बोस्टन (Boston) नगरके एक दूधवालेको टाइफोइड ज्वर हुआ। उसके द्वारा उसके ग्राहकोंमें भी यह ज्वर फैल गया और लगभग ४०० आदमियोंने दुख उठाया।

अक्सर जगह टाइफोइड पानी द्वारा भी फैलता है। पीनेके पानीमें होनेवाले जीवाणुओंका हाल हम आगे चलकर एक स्वतंत्र लेखमें बतायेंगे। सन् १८९५ में शिकागो (Chicago) शहरका मैला पानी मिचीगन झील (Lake Michigan) में फेंका जाता था और इसी झीलका पानी शहर भरमें पीनेके लिये जाता था। अब एक नई नहर खोल दी गई है जो कि गंदा पानी अलग ले जाती है। चित्र ३९ से मालूम होगा कि इस प्रबन्धसे मृत्यु संख्या कितनी कम हो गई है।

१८९४
१९०७
८२
१८
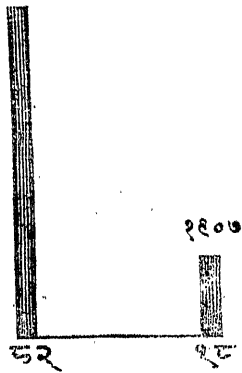
चित्र ३९—शिकागोमें पानी के सुप्रबन्धका प्रभाव।

शहरके पानी (Water Supply) की स्वच्छता (Purity) में उन्नति (improvement) होनेका असर जो उस शहरकी मृत्यु संख्यापर हुआ वह चित्र ३९ से स्पष्ट है।

चित्र ४० में सन् १९०७ में पिट्सबर्ग, न्यूयार्क (Pittsburg, New York) और वीना (Vienna) शहरमें टाइफ़ोइड ज्वरकी १००,००० निवासी पीछे मृत्यु संख्या दी गई है। उस समय पिट्सबर्ग (Pittsburg) के निवासी ओहिओ (Ohio) नदीका गंदा पानी पीते थे। न्यू यार्क (New York) में शहरके पानी (Water supply) का अच्छा इन्तज़ाम था और वीना (Vienna) नगरमें पानी पहाड़ोंकी पिघली हुई बर्फ़से आता था।
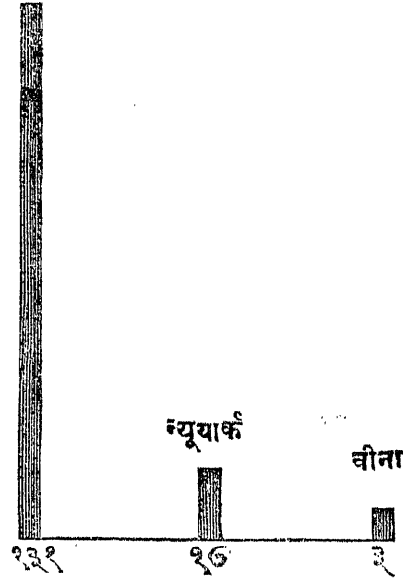
चित्र ४०—सं० १९०७ में १००,००० निवासी पीछे कितनी मृत्यु हुई।

(Germ Carriers) जीवाणु वाहक

यह मालूम हुआ है कि बहुत से लोग जिनको टाइफ़ोइड हुआ है, अच्छे होनेके बहुत दिनों तक जीवाणु लिये फिरते हैं। जीवाणु प्रायः गाल ब्लेडर (Gall bladder) में रहते हैं और वहांसे आंतों (intestines) में जाते रहते हैं। न्यू यार्कमें एक बावर्चीने पांच सालमें २७ आदमियोंको रोगी बनाया। Richmond, Virginia में एक बावर्चीने चार अलग अलग मकानोंमें

रहनेवाले दस आदमियोंको रोगी कर दिया। एक मनुष्यके मलमूत्रमें उसके रोगसे अच्छे होनेके ४२ वर्षके बाद भी यह जीवाणु पाये गये। अभी तक ऐसे लोगोंको इन जीवाणुओंसे मुक्त कर देनेका उपाय नहीं मालूम हुआ है और इसलिये यह आस पासके लोगोंको बराबर जोखिममें डालते रहते हैं।

—मुकुट बिहारीलाल दर, बी० एस-सी०

मधुमेह

[ले०—अध्यापक विश्वेश्वर प्रसाद, बी० ए०]

प्राचीनकालसे ही मधुमेह (Diabetes) रोग हमारे वैद्योंको मालूम है। सुश्रुत संहितामें इसका उल्लेख पाया जाता है और चिकित्सा भी बताई गई है। यूरोपमें ईसासे १५० वर्ष बादकी पुस्तकोंमें इसका हाल लिखा मिलता है, परंतु सत्रहवीं शताब्दीके अन्तसे पहले चिकित्साका पता नहीं लगता।

सन् १६८४ ई० में पहलेपहल टामस विलिसने मूत्रमें चीनीका पता लगाया। सौ बरस पीछे डाबसनने मूत्रको जलाकर चीनी दिखाई। सन् १८४८ ई० में बर्नर्डने यह सिद्ध किया कि मूत्रमें चीनी क्यों आने लगती है। सन् १८५७ ई० में बर्नर्डने ही यह सिद्ध किया कि यकृत चीनी का कोष है। सन् १८८९ ई० में यह सिद्ध किया गया कि यदि क्लोम (pancreas) निकाल दिया जाय तो मधुमेह हो जायगा। सन् १९०० ई० में ओपाइ नामक महाशयने यह बतलाया कि क्लोम के एक विशेष अंगमें जब कुछ दोष आजाता है तब मधुमेह होता है।

आजकलके डाकृरोंका भी कोई एक मत नहीं है। कुछका तो यह विचार है कि छोटी आंतमें जब पाचन विकार बहुत बढ़ जाता है तब मधुमेहका रोग उत्पन्न होता है। इस विचारके अनुसार मधुमेह केवल पाचन शक्तिका एक विकार मात्र है और अच्छा हो सकता है। इसके विरुद्ध कुछ डाकृरोंकी यह धारणा है कि यह रोग शरीरके भीतरी अंगोंके स्वाभाविक कार्यमें दोष आजानेसे होता है और अच्छा नहीं हो सकता। संयमसे रहनेसे रोगीका अधिक दिन जीना संभव हो जाता है।

यह रोग साधारणतया पचास और सत्तर वर्षकी अवस्थामें होता है। स्त्रियोंको यह रोग नहीं होता। पुरुषोंको ही होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि स्त्रियोंको कभी नहीं होता। यद्यपि स्त्रियां, भारतवर्षमें तो अवश्य ही मीठा अधिक खाती हैं और मांस मद्य बहुत कम तब भी इनको यह रोग नहीं होता। कारण यही ज्ञात होता है कि इनको मस्तिष्कसे परिश्रम नहीं करना पड़ता, घरके काम काजमें लगी रहती हैं और इस प्रकार शारीरिक व्यायाम होता रहता है। वह उपासी भी अधिक रहती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि इनको मनुष्योंकी अपेक्षा पाचन विकार कम होता है।

यह रोग अधिकांश पैतृक पाया जाता है। यदि मधुमेही के कुलका रोग-इतिहास भली प्रकार ज्ञात हो तो यही देखा जायगा कि यह रोग पैतृक है। यह भी देखा जाता है कि गठिया-के साथ साथ मधुमेह होता है। जिसे गठिया-का रोग हो उसे अपने मूत्रकी भी परीक्षा कराना चाहिये। चकाचक भोजन और व्यायाम रहित जीवनसे मोटाई तो बढ़ ही जाती है। ऐसी अवस्थामें चीनी मूत्रमें आने लगती है। यदि यह दशा किसीकी युवावस्थामें होजाय तो अधिकांश मृत्युजनक होती है। कुछ डाक्टरों-की यह भी राय है कि जिसको कभी गर्मीका

रोग होजाता है उसे मधुमेहके होनेकी संभावना रहती है। इन सब बातोंके साथ साथ यह भी याद रखना चाहिये कि सिरमें यदि किसी प्रकार चोट आजावे तो भी मधुमेह हो जाता है। सिरकी चोटसे तात्पर्य ऐसी चोटसे है जिसका प्रभाव हड्डीके भीतरके गूदेपर पड़े।

'विज्ञान' के पाठकोंको यह तो ज्ञात है ही कि आधुनिक वैज्ञानिक विचारसे भोज्यपदार्थ प्रोटीड प्रधान (proteids) कर्बोज प्रधान (carbohydrates), चर्बी प्रधान (fats) खनिज प्रधान (minerals) और जल प्रधान (water) वस्तुओंमें विभक्त हैं। मधुमेही शर्करा प्रधान वस्तुओं को पचा नहीं सकता। इतना ही नहीं, प्रोटीड और चर्बी प्रधान पदार्थ भी चीनीमें परिणत हो जाते हैं और रोगी धीरे धीरे दुबला होने लगता है और कमरमें पीड़ा, आंखोंका दुःख, स्मृतिकी कमी, शौच न आना इत्यादि अनेक दुःख शीघ्र ही उसे घेर लेते हैं। चीनी अंतड़ीमें पचती है, अतएव कुछ लोगोंका यही मत है कि मधुमेह केवल चीनीका अपच मात्र साधारण दोष है और शीघ्र अच्छा हो सकता है; परन्तु अभी मधुमेही अच्छे होते दिखाई नहीं देते।

साधारणतया मनुष्यके यकृतमें २½ या ३ छटांक चीनीके रहनेका स्थान है। कुछ लोग तो एक बारमें एक छटांक या डेढ़ छटांक चीनी खाकर पचा सकते हैं और कुछ लोग इससे अधिक भी। छोटे बच्चों और बूढ़ोंको अधेड़ोंकी अपेक्षा चीनी अधिक पचती है। शराब पीनेवालोंकी अपेक्षा चीनीकी पाचनशक्ति घट जाती है। कदाचित यही कारण है कि शराबीको नमकीन वस्तु अधिक रुचिकर होती है।

इस रोगकी चिकित्साने अब तक कई रूप धारण किये हैं। पहले तो केवल औषधि दी जाती थी। फिर औषधिको प्रधान न मानकर पथ्यका विचार अधिक होने लगा और (carbohydrates) कर्बोज की कमी करने लगे। इसके उपरान्त नूर्डन नामक महाशयके विचारानुसार औषधि हटा ही दी गई। भोजन भी केवल शाक, चोकर और ऐसी ही एकाध वस्तुओंसे परिमित किया गया और अब एलन नामक महाशयकी चलाई हुई अत्यन्त आधुनिक व्रत-चिकित्सा सर्वत्र मानी जाती है।

इस व्रत-चिकित्सा अर्थात् शर्करा-सहन-अभ्यास चिकित्साका सूक्ष्म तत्व यह है कि (carbohydrates) कर्बोजके पचानेकी शक्तिको धीरे धीरे बढ़ानेका प्रयत्न किया जाय। चिकित्सा व्रतसे आरंभ होती है। १० दिन कुछ न खानेसे मूत्रमें शर्करा न रहेगी। जब शर्करा २४ या ४८ घण्टे तक न रहे तो धीरे धीरे खाना बढ़ाया जाय। केवल इतना ध्यान रहना चाहिये कि प्रत्येक दिन यह देखा जाय कि अमुक वस्तुके खानेसे शर्करा नहीं आई और डकार भी नहीं आई। जिस दिन शर्करा मालूम हो तुरन्त भोजन बंद हो जाना चाहिये और फिर व्रत आरंभ होजाय। एक दिनके व्रतसे अब काम चल जायगा। यदि एक दिन व्रत करनेसे भी शर्करा सहित मूत्र आवे तो तब तक व्रत करना चाहिये जब तक मूत्र शर्करा-रहित न हो जाय। ठंढे देशोंमें तो व्रतमें अलकोहल देते हैं, पर इस देशमें केवल पानी दिया जाना चाहिये; दूध भी नहीं देना चाहिये भोजन देते समय चार बातोंका विचार करना चाहिये। व्रतके उपरान्त सबसे पहले (carbohydrate) कर्बोज देना चाहिये। जब (carbohydrate) कर्बोज पचने लगे अर्थात् ऐसी वस्तुएं भी जब पचने लगें जिनमें शर्कराका अंश बहुत अधिक है तब प्रोटीड मय पदार्थ देने चाहियें। जब यह भी पच जायं तो चर्बी प्रधान (fats) पदार्थ दिये जायं, कर्बोज (carbohydrate) कई प्रकारके होते हैं। इस सम्बन्धमें शाकसे काम लिया जाय तो अच्छा है। व्रतके बाद पहिले दिन तीन या चार

छटांक ऐसी भाजी दी जाय जिसमें पांच शतांश शर्करा हो। [किस भाजीमें क्या शतांश शर्करा है फिर लिखा जायगा]। धीरे धीरे शर्करा-शतांश बढ़ाया जाय। यदि मूत्र शर्करासहित आजाय तो एक दिन व्रत रखा जाय। कर्बोज (carbohydrate) चाहे किसी भी शर्करा शतांशका क्यों न हो, पचने लगे तो प्रोटीडके सहनेका अभ्यास आरंभ होना चाहिये। पहले दिन केवल एकाध अंडे दिये जाते हैं, हिन्दुओंके लिए दूसरी वस्तु भी संभव है। धीरे धीरे अंडा और मांस [इन्हीं वस्तुओंमें अधिक शुद्ध प्रोटीड मिलता है] अधिक दिया जाता है। इसी प्रकार धीरे धीरे कर्बोज (carbohydrate), प्रोटीड और चर्बी प्रधान भोज्य पदार्थ जब पचने लगें तो चिकित्सा सफल समझनी चाहिये।

इस चिकित्साकी परीक्षा कमसे कम एक महीने अवश्य होनी चाहिये। सबसे अच्छा तो यही होगा कि किसी अस्पतालमें रहकर एक अच्छे डाक्टरकी सम्मतिसे व्रत किया जाय। घरपर बहुत सी असुविधाएँ होती हैं और पथ्य ठीक न रहनेका भय रहता है। यदि कोई घर-पर ही कर सके तो कोई हानि नहीं। हिन्दुओंको जिनका पेट शाक भाजी खानेसे बढ़ा है यह कष्ट होगा कि जब बहुत थोड़ा भोजन दिया जायगा तो संतोष नहीं होगा। आवश्यकता न होनेपर भी भूख बनी ही रहेगी।

अब तक यह देखा गया है कि केवल एक महीनेकी चिकित्सासे पूर्णलाभ नहीं होता। यदि इस चिकित्साका पथ्य मधुमेही कमसे कम पांच छः वर्ष चलावे तो रोगसे उसे फिर कष्ट न हो।

[शेष फिर]

भारतीय भाषाओंमें समान वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंकी आवश्यकता और उनके बनानेके साधन

[ले०—श्रीयुत गुलाबरायजी, एम० ए० और श्री० सूर्यनारायणजी, बी० ए०]

वर्तमान समयमें जातियोंके भेद, प्रतिद्वंद्विता और संघर्षणके होते हुए भी एक यह बात स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है कि पूर्व कालकी अपेक्षा आजकलका संसार अधिक संगठित है। हम लोग एक देशमें बैठकर सारे संसारकी घटनाएँ समाचार-पत्र-द्वारा दृष्टिगोचर करनेकी योग सिद्धि सहजमें ही प्राप्त कर लेते हैं। एक देशकी बनी हुई वस्तुसे समस्त संसार लाभ उठाता है। यान्त्रिक बलसे स्थानान्तर-गमनमें अधिक कठिनाई नहीं होती। आजकल समुद्र और पहाड़ोंके भौतिक प्रतिबन्ध टूटते जा रहे हैं और सारा संसार एक विशाल नगरमें परिणत हो रहा है।

यह संगठन मनुष्य-जातिके ज्ञान क्षेत्रमें और भी दृढ दिखाई पड़ता है। हमारे स्कूल और कालेजोंके विद्यार्थी सारे संसार भरके ज्ञानसे लाभ उठा रहे हैं। एक देशके लोग जिस बातका विचार करते हैं वह शीघ्र ही संसारमें, अग्निकी ज्वालाकी भाँति, व्याप्त हो जाती है। वायरलेस टेलीग्राफी (wireless telegraphy)-बेतारका तार—इटलीका आविष्कार है। किन्तु वर्तमान महायुद्धमें दोनों ही दलके लोग इसको काममें लाते हैं। वास्तवमें ज्ञान, देश और कालके बन्धनको नहीं मानता। इस संगठन और सहकारिताके कारण ज्ञानकी सीमा भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। एक एक

विषयकी इतनी शाखा-प्रशाखायें होती जा रही हैं कि एक एक शाखाके पूर्ण अध्ययन एवं विचारके लिए साधारणतया एक जीवन भरका परिश्रम पर्याप्त नहीं होता। ज्ञानकी सृष्टिमें भौतिक विज्ञानवादियों द्वारा प्रतिपादित शक्ति स्थिति (Conservation of Energy) का नियम नहीं घटता। ज्ञानका प्रवाह अनवरुद्ध गतिसे बढ़ता हुआ सारे संसारको अपने प्रवाहसे प्लावित करता जा रहा है।

इस संसारकी ज्ञानवृद्धिमें हम भारतवासियोंका इस समय क्या कर्तव्य है? हमने इस ज्ञानसे थोड़ा बहुत लाभ उठाना तो आरम्भ कर दिया है, किन्तु अर्वाचीन ज्ञानके विस्तारमें हमने बहुत कम योग दिया है। पूर्व कालमें भारतवर्ष संसारभरका शिक्षक रहा है। किन्तु आजकल बहुत से विषयोंके ज्ञानके लिए हम अन्य देशोंके भिखारी बन रहे हैं। डाक्टर बोस, डाक्टर राय, डाक्टर टागोर, डाक्टर भाण्डारकर आदि महानुभावोंने भारतवासियोंका मुख किञ्चित् उज्वल किया है; किन्तु जब तक हमारे देशमें ऐसे मौलिक विचारवाले सैकड़ों और हज़ारों महानुभाव उत्पन्न न हो जायं तब तक हम भिखारी पनका कलंक न धो सकेंगे। जिसके पास दूसरोंको देनेके लिए कुछ होता है वह भिखारी नहीं कहला सकता। हमारे विचारोंमें मौलिकता तभी आ सकती है जब कि हम अपनी मातृभाषामें भिन्न भिन्न विषयोंपर विचार कर सकें। ज्ञानकी स्फूर्ति प्रायः मातृभाषाके ही द्वारा होती है। इसलिए हमको अपनी देशी भाषाओंमें भी वैज्ञानिक साहित्यके बनानेकी आवश्यकता है।

देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य बनानेकी आवश्यकता केवल और देशोंका ज्ञान सम्बन्धी ऋण चुकानेके लिए ही नहीं है, वरन् इसलिए भी है कि जनतामें वैज्ञानिक विचारोंका प्रचार भली भाँति हो सके और हमारे मामूली कारीगर भी वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको समझ कर उनके प्रयोग द्वारा अपने अपने कार्यमें विशेष कुशलता प्राप्त कर सकें।

अन्य देशोंसे प्राप्त किये हुए ज्ञानसे हमारी जातिको लाभ तो अवश्य हुआ है; किन्तु ज्ञानसे जैसा लाभ होना चाहिये वैसा नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि जिस ज्ञानकी वृद्धि हमारे मानसिक एवं सामाजिक संगठनके साथ साथ नहीं होती वह ज्ञान हमारे लिए बाहिरी सा रहता है। अतः वह पूर्णतया लाभदायक नहीं हो सकता। ज्ञान वही फलवान होता है जिसके मौलिक तन्तुओंका तारतम्य हमारे समस्त जातीय जीवनमें फैला हुआ है। हमारी भाषा हमारे जीवनका एक मुख्य अंग है और जो ज्ञान हमको हमारी भाषा द्वारा मिलेगा वह हमारे अनुकूल होगा और जनसमुदायमें फैलकर वृद्धिको प्राप्त होगा।

संसारकी जातियोंमें अपनी स्थिति रखनेके लिए हमको अपनी प्रान्तिक भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यके निर्माण करनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि संसारमें भारतवर्ष और सब देशोंसे अलग होता तो शायद केवल आध्यात्मिक ज्ञानसे हमारा काम चल जाता। पर हम संसारमें अकेले नहीं रह सकते। इस कारण हमको अपनी रुचि सांसारिक विद्याओंकी ओर भी झुकाना परमावश्यक है। आजकलके समयमें सांसारिक वस्तुओंके तिरस्कार करनेसे संसारमें हमारा ही तिरस्कार होता जा रहा है। हमको इस उद्योगमें केवल इतना ही ध्यान रखना पड़ेगा कि हम अपनी आध्यात्मिकताको न भूल जायं, क्योंकि यूरोपके आध्यात्मिकता-रहित शुष्क विज्ञानका फल हमको वर्तमान महायुद्धके रूपमें दुःखके साथ देखना पड़ता है। हमको पूर्ण आशा है कि हमारे देशका विज्ञान आध्यात्मिकतासे शून्य न रहेगा; क्योंकि हमारे जातीय जीवनमें आध्यात्मिकता भरी हुई

है और वह हमारा सब बातोंपर अपना रंग जमा देगी। भौतिक विज्ञानको अध्यात्मिक बनानेका संसारके इतिहासमें भारतवर्षको ही सौभाग्य मिलेगा। इस सौभाग्यको प्राप्त करनेके लिए हमको अपनी प्रान्तिक भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य निर्माण करनेकी आवश्यकता है। विविध प्रान्तोंकी सहकारिताके बिना जातीय विज्ञानका आदर्श स्थापित और पूर्ण होना कठिन है। संसारके सब देशोंमें सहकारितासे ही ज्ञानकी वृद्धि हुई है और हमारे देशमें भी इसके बिना काम न चलेगा।

सहकारिताके लिए सब प्रान्तोंकी एक भाषा होना आवश्यक है, किन्तु यह बात सम्भावनाकी सीमाके बाहर है। इस विरोधका सामंजस्य एक ही रीतिसे हो सकता है और वह यह है कि विविध प्रान्तीय भाषाओंके वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द एकसे हों। वैज्ञानिक भाषाका मुख्य भाग पारिभाषिक शब्दोंका ही होता है। पारिभाषिक शब्दोंकी एकताके कारण प्रान्तिक भाषाओंमें वैज्ञानिक पुस्तकोंका समझना और अनुवाद करना बड़ा सरल कार्य हो जायगा। यदि इसके साथ ही लिपि भी एक हो जाय तो विविध प्रान्तिक भाषाओंसे वैज्ञानिक विचार विनिमयमें बड़ी सरलता होगी और जातीय वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण सम्भावनाकी कोटिसे बाहर न रहेगा। अभी तक किसी भी प्रान्तिक भाषाका वैज्ञानिक साहित्य प्रौढ़ताको प्राप्त नहीं हुआ है और इसलिए ऐसी ढलती हुई अवस्थामें पारिभाषिक शब्दोंकी एकरूपताका प्रयत्न अयुक्त न होगा।

यह कार्य इतना महान् है कि एक या दो मनुष्य इसे नहीं कर सकते। यह सहकारिताकी अपेक्षा रखता है। इसलिए भारतकी समस्त प्रान्तिक भाषाओंके विविध विज्ञानवेत्ता प्रतिनिधि वर्गकी एक संस्था बनाई जाय जिसका नाम "निखिल भारतवर्षीय भाषा-वैज्ञानिक परिषद्" या इसी प्रकार और कोई नाम हो। यह परिषद् 'आल इण्डिया सायंटिफिक सोसाइटी' से स्वतन्त्र होकर अथवा उसकी सहकारितासे यह कार्य करे। इस समितिके द्वारा एकसे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण हो।

सबसे प्रथम इसे अंगरेजी, जर्मन और फ्रेंच भाषाओंके विविध वैज्ञानिक शब्दोंकी एक सूची तैयार करनी चाहिये और इसके साथही साथ संस्कृत, फारसी और अरबी तथा भारतमें प्रचलित मुख्य मुख्य प्रांतिक भाषाओंके साहित्यमें पाये जानेवाले समस्त वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द एकत्रितकर उनकी सूची भी बना लेनी चाहिए। जिन अंगरेजी, फ्रेंच और जर्मन वैज्ञानिक शब्दोंके अर्थ सूचक शब्द इस समितिको भारतीय भाषाओंके वैज्ञानिक शब्दोंकी बनाई गई सूचीमें मिल उनको तथा उनके पर्य्यायवाची भारतीय शब्दोंको क्रमशः दोनों सूचियोंसे निकालकर बचे हुए अंगरेजी, फ्रेंच, और जर्मन भाषाओंके शब्दोंके अर्थ बोधक भारतीय शब्द निम्न लिखित रीतिसे बनाये जा सकते हैं।

यह नवीन शब्द साधारणतया तीन प्रकारसे बनाये जा सकते हैं:—

१—प्रथम यह कि जिस भावके प्रकट करने की आवश्यकता है उस भावके निकटवर्ती भावको प्रकट करनेवाले शब्दका अर्थ बढ़ाकर अपना अभीष्ट भाव भी उसी शब्दके द्वारा व्यक्त करने लगें। किन्तु यह प्रथा दूषित सिद्ध हुई है, क्योंकि एक शब्दके साधारण और पारिभाषिक अर्थोंमें भेद होनेके कारण जनताको पुस्तकके लेखकका यथार्थ भाव समझना कठिन हो जाता है। आजकल कुछ भाषाओंमें शब्दोंके अर्थके सम्बन्धमें जो वृथा विवाद हम देखते हैं वह इसी दूषित रीतिके प्रयोगका फल है। हमको दूसरोंकी भूलसे लाभ उठाकर इस प्रथासे नवीन शब्द-निर्माण नहीं करना चाहिये।

२—दूसरी रीति यह हो सकती है कि विदेशी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका किसी प्रकारसे भी रूपान्तर न करके उनका अपने असली रूपमें ही भारतीय भाषाओंमें व्यवहार किया जाय। लेकिन इस प्रथाका अनुयायी होना उपयुक्त नहीं मालूम होता ; क्योंकि इसमें दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि शब्दोंका उच्चारण देशके जलवायु, प्राकृतिक अवस्था एवं मनुष्योंके शरीर-संगठनपर अवलम्बित होता है। इसलिए विदेशी शब्द भारतीय भाषाओंके शब्दोंके उच्चारणके साथ मेल न खायेंगे। दूसरे संसारकी मुख्य मुख्य समस्त भाषाओंके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि किसी भी भाषाने विदेशी शब्दोंको किंचित् भी अपने स्वभावके अनुकूल रूपान्तर किये बिना स्वीकार नहीं किया है। जातीयताको स्थिर रखनेके लिए यह परिवर्तन आवश्यक है। हरएक शब्दको अपना स्वरूप दे देनेसे उसपर जातिका प्रेम बढ़ जाता है। इस कारण उसके द्वारा अधिक बोध होने लगता है। यदि हम विदेशी शब्दोंका भारतीय भाषाओंमें व्यवहार करें तो उनपर अपने स्वभाव और सुभीतेके अनुकूल जातीय छाप अवश्य लगा दें।

३—तीसरा साधन यह है कि देशमें प्रचलित भाषाओंपर जिस किसी एक भाषाका प्रभाव विशेष हो उसकी धातुओंसे उसीके व्याकरणकी रीतिके अनुसार नये यौगिक शब्द बना लिए जायँ। यूरोपीय भाषाओंमें इस नियमके अनुकूल लैटिन भाषाकी धातुओंसे बहुत से शब्द बनाये गये हैं। जिस प्रकार लैटिन यूरोपके माध्यमिककालमें धार्मिक भाषा होनेके कारण उस देशकी भाषाओंपर अपना प्रभाव रखती थी और अब भी उन भाषाओंपर उसकी छाप पाई जाती है उसी प्रकार भारतमें संस्कृतका प्रभाव है। यह भाषा पूर्णरूपसे वैज्ञानिक होनेके साथ ही साथ भारतके अधिकांश भागकी धार्मिक भाषा है। इसी कारण भारतवर्षकी प्रधान प्रधान प्रान्तिक भाषाएं इसकी आश्रित हैं। इसलिए भारतीय भाषाओंके लिए नवीन शब्दोंके बनानेमें इस तीसरे नियमका प्रयोग विशेष रूपसे करते हुए संस्कृत भाषाकी धातुओंसे नये यौगिक शब्द गढ़े जाना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

इस विवेचनमें दो एक बातोंपर विचार करना और बाकी है। उनपर भी किंचित् विचार कर लेना आवश्यक है। जहाँ हमने यह लिखा है कि भारतीय भाषाओंके लिए नवीन वैज्ञानिक शब्द संस्कृत धातुओंकी सहायतासे बनाये जायं वहां फारसी और अरबी के प्रेमी यह आक्षेप कर सकते हैं कि इन भाषाओंसे नये शब्द गढ़े जानेका प्रयत्न क्यों न किया जाय। हम यह अवश्य मानेंगे कि हमारे जातीय जीवनमें अरबी और फारसी भाषाओंने भारी प्रभाव डाला है और हम यह भी माननेके लिए तैयार हैं कि अरबी भाषा द्वारा अरब एवं भारतके बहुत से वैज्ञानिक विचारोंका प्रचार यूरोपके भिन्न भिन्न देशोंमें हुआ है; लेकिन इसको मानते हुए भी हमको यह अवश्य कहना पड़ेगा कि भारतीय सभ्यताका प्रधान उद्गम स्थान संस्कृत भाषा है और अब भी भारतकी भाषाओं तथा इस देशकी चाल ढालपर, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, जितना संस्कृतका प्रभाव पड़ता है उतना और किसी भाषाका नहीं पड़ता। इसके सम्बन्धमें यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भारतवर्षके निवासी हमारे मुसलमान भाइयोंपर भारतकी प्राचीन संस्कृत सभ्यताका ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उनकी बहुत सी चालढाल तथा विचार-परम्परा संसारके अन्य देशस्थ मुसलमानोंसे बिलकुल निराली हो गई है। भारतके प्राचीन आदर्शोंने उनके ऊपर चिरस्थायी प्रभाव डाल दिया है। भारतीय समाजमें बहुत सी ऐसी शक्तियां कार्य कर रही

हैं जिनका उदयस्थल भारत नहीं है; तथापि उन शक्तियोंका झुकाव भारतकी प्राचीन सभ्यताकी ओर आकर्षित हो उन शक्तियोंको एक विशेष रूप दे रहा है। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए नवीन वैज्ञानिक शब्द रचनाके लिए संस्कृत भाषाका ही प्रधान आश्रय लेना उपयुक्त मालूम होता है।

यह बात भी विचारणीय है कि अंग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओंके कुछ वैज्ञानिक शब्दोंके समान अर्थवाची जो शब्द भारतकी प्रांतिक भाषाओं तथा संस्कृत, अरबी और फारसीमें पाये जाते हैं उनकी क्या व्यवस्था की जाय। यदि किसी वैज्ञानिक भावका प्रदर्शक एक ही शब्द भारतकी सब प्रान्तिक भाषाओंमें प्रचलित हो तो उसको उसी स्वरूपमें अङ्गीकार करलेना चाहिये अथवा केवल एक ही भाषामें किसी वैज्ञानिक भावके लिए कोई शब्द पाया जाय तो उसको भी उसी रूपसे आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन कर स्वीकार करना उचित मालूम होता है। इसमें तो विशेष कठिनता न पड़ेगी। लेकिन जब एक ही भावके सूचक भिन्न भिन्न प्रान्तिक भाषाओं एवं फारसी और अरबीमें पृथक् पृथक् शब्द पाये जाएँ तब हमको अपना कर्तव्य निश्चित करना कठिन होगा। ऐसी अवस्थामें कोई प्रणाली-विशेष निश्चित नहीं की जा सकती, किन्तु चुनावके कुछ साधारण नियम दिये जा सकते हैं, जिनकी सहायतासे एक पद्धति स्थापित करना सहज होगा। यह बात तो मानी ही जायगी कि सब शब्दोंकी अर्थबोधनी शक्ति एकसी नहीं होती। फिर ऐसा शब्द क्यों न चुना जाय जिसकी व्यंजकता और सबसे अधिक हो। इसके साथ ही इन बातोंका भी ध्यान रखना आवश्यक है कि उस भाषाका जिसमें कि वह शब्द विशेष पाया जाय, हमारे देशमें कितना प्रचार है; तथा वह शब्द अन्य प्रान्तिक भाषाओंसे कहांतक मेल खा सकेगा। कुछ वैज्ञानिक शब्द ऐसे होंगे जो भारतकी किसी भी प्रचलित प्रांतिक भाषामें न मिलकर केवल अरबी और फारसीमें ही मिलेंगे। उनका प्रांतिक भाषाओंसे मेल मिलानेके लिए, थोड़ा बहुत परिवर्तन करना पड़ेगा, किन्तु हमको इसका बड़ा ध्यान रखना पड़ेगा कि शब्दोंका परिवर्तन उचित सीमासे बाहर न हो जाय। भारतकी प्रांतिक भाषाओंके लिए अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच और जर्मन और यदि आवश्यकता हो तो संस्कृतके भी शब्दोंका परिवर्तन इस प्रकारसे किया जाय कि उसके नये स्वरूपमें उसका असली स्वरूप नष्ट न हो जाय। यह विषय बहुत समस्यापूर्ण है और इसलिए इसमें बहुत सावधानी और विचारसे काम लेना पड़ेगा, जिसके लिए कोई नियम-विशेष निर्दिष्ट नहीं किये जा सकते। संसारकी अन्य उन्नत भाषाओंके वैज्ञानिक शब्दोंकी उन्नति प्राकृतिक नियमोंसे हुई है। हमारे उद्योगमें भी इन प्राकृतिक नियमोंके अध्ययन और मननसे विशेष सहायता मिलेगी। तथापि हमको भाषाकी वृद्धिका बहुत कुछ कार्य प्रकृतिपर छोड़ना पड़ेगा। हम अपने प्रयत्नसे प्राकृतिक नियमोंकी गतिको बढ़ा सकते हैं। अतएव भारतमें ज्ञानके विस्तारार्थ हमको इस विषयके लिए पूर्णरूपसे प्रयत्न करना चाहिये और हम आशा करते हैं कि हमारे इस प्रयत्नके द्वारा हमारा प्राचीन भारत फिर वैज्ञानिक संसारमें सिर ऊंचा कर सकेगा।*

—:०:—

* सम्मेलन कार्य्य विवरणसे।

व्यापारिक पत्र व्यवहार

व्यापारमें पत्र व्यवहारका बड़ा महत्व है। इसके बिना छोटेसे छोटे व्यापारीका भी काम नहीं चल सकता। बम्बई, कलकत्ता आदि जैसे बड़े शहरोंमें तो व्यापारी लोग डाककी चिट्ठियोंके लिए डाकियेकी बड़ी उत्सुकतासे बाट देखा करते हैं। डाकके पाये बिना उन्हें कुछ भी काम करना अच्छा नहीं लगता। सच पूछिये तो इन्हीं डाककी चिट्ठियोंपर उनका सारा काम टिका होता है। यही चिट्ठियां उनकी सच्ची कमाई हैं। इतना होते हुए भी हमें कहना पड़ता है कि हमारे देशी व्यापारी उनके व्यापारके जीवन-विषय अर्थात् पत्र व्यवहारकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

पत्र दो तरहके होते हैं। एक तो वह जो कि हम लिखें। दूसरे वह जो हमारे आढ़तियों द्वारा हमें लिखे जायं। पहलेको व्यापारी लोग आउटवर्ड अथवा भेजी हुई और दूसरीको इनवर्ड अर्थात् आई हुई चिट्ठियां कहते हैं। इनमेंसे प्रथम आई हुई चिट्ठियोंका हम विचार करेंगे।

चिट्ठियां इसलिए उपयोगी होती हैं कि:—

१—उनमें आये हुये पत्रादिकोंमें सौदे सूत आदिकी दस्तावेज़ें होती हैं।

२—ज़बानी किये हुये इकरारोंमें गैर समझौती हो सकती है। इस गैर समझौतीको रोकनेके लिए और ऐसे इकरारोंके ठीक ठीक व स्पष्ट पुरावा देनेके लिए इनका पत्र द्वारा समर्थन किया जाता है।

३—कबाले जो दो व्यापारियोंके परस्परमें किये गये हों उन्हें कोर्ट आदिकी मारफत पूरा करा सकनेके लिये लिखा हुआ सबूत पेश करनेमें यह पत्र काम आते हैं।

४—अपने ग्राहकोंको टिकाये रखनेके लिये प्रत्येक व्यापारीको उनके साथ बड़ी सौजन्यके साथ बर्ताव करना पड़ता है। ऐसा बर्ताव केवल मिलनेके समय ही नहीं रहना चाहिये। परन्तु इसका पत्रोंमें भी प्रतिपालन होना चाहिये। इन्हीं पत्रोंसे हमें अपने दूर देशस्थ आढ़तियेकी भली बुरी प्रकृतिका पता लगता है। और तब हम अपने पत्र उसी प्रकार लिख सकते हैं कि जिससे वह अप्रसन्न न हो।

इन कारणोंसे प्रत्येक व्यापारीको अपनी आई हुई चिट्ठियोंको बड़ी सावधानीसे इकट्ठा कर रखना चाहिये। इकट्ठी करनेके विषयमें हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि उनमेंसे हम जब चाहें तब कोई सी भी चिट्ठी शीघ्र ही निकाल सकें। ऐसा कर सकनेके लिये इन चिट्ठियोंके फाइल करनेकी आवश्यकता होती है।

आई हुई चिट्ठियोंका फाइल करना

आई हुई चिट्ठियां मुख्यतः चार प्रकारसे सुरक्षित रखी जाती हैं।

१—वह मितीवार फाइल कर दी जायं और सालके अन्तमें एक फर्द यानी फेहरिस्तके साथ बांधकर रख दी जायं।

२—वह रोज़ाना कबूतर खानेमें रख दी जायं और अन्तमें अक्षरानुक्रमसे जमाई जाकर बंडल बांधकर संदूक़में रख दी जायं।

३—एक चिट्ठी नूंध रखी जाय और इसमें इन आई हुई चिट्ठियोंके समाचार संक्षेपमें नोट कर लिये जायं और चिट्ठियां मिती वार बंडल बांधकर रख दी जायं।

४—अथवा यह सब फाइल करनेकी अनेक पद्धतियोंमेंसे किसी एक तरहसे फाइल कर-दी जायं।

फाइल करनेके भिन्न भिन्न तरीके

१—सिम्पिल फाइल

सिम्पिल फाइल नामका तरीका सबसे आसान और आम तौरसे काम आनेवाला है। इस तरीकेसे फाइल करनेके लिये कई तरहकी फाइलें आविष्कृत हो चुकी हैं। परन्तु उन सबका तत्व एक ही है। पत्र जैसे आते हैं वैसे ही उनपर नम्बर डाल दिया जाता है। यह नम्बर अनुक्रमसे इन पत्रोंपर लगाया जाता है। अनुक्रमसे नम्बर लगादेनेके पश्चात् यह सारे पत्र उस फाइलमें कि जिसे हमने अपने कामके लिये चुन लिया है पिरो दिये जाते हैं। यह फाइल इन पत्रोंको उस समयतक एकत्रित रखती है जब तक कि वह इतनी ज्यादा संख्यामें वहां जमा न हो जायं कि उन्हें वहांसे निकाल कर दूसरी जगह रखनेकी हमें फिकर करनी पड़े। जब ऐसा मौक़ा आ पहुंचता है तो यह सारे पत्र निकाल कर एक पुलंदेमें बांध दिये जाते हैं और इन सबकी एक फर्द यानी फेहरिस्त बना ली जाती है। प्रत्येक पत्र पर ठीक उसके पहले अथवा पीछे आये हुये पत्रका हवाला आगे बताये मुताबिक दे दिया जाता है और यह पुलंदा तब अलहदा रख दिया जाता है।

चित्र ४१—हुक फाइल

इस कामके लिए जिस चीज़का पहले पहल उपयोग किया जाता था उसको हम अब भी मामूली कागजातोंके फाइल करनेके लिए काममें लाते हैं। इसफाइलमें केवल मामूली काग़ज़ात ही अब फाइल किये जाते हैं। इस फाइलका नाम हुक फाइल है। यह एक लोहेका मुड़ा हुआ तार होता है। इसके एक सिरेपर लकड़ीका अथवा अन्य किसी भी मजबूत चीज़का दो इञ्च व्यासका एक टुकड़ा पत्रादिकोंके अटके रहनेके लिये लगा होता है और दूसरा सिरा तीखा किया जाकर मोड़ दिया जाता है। इसी तीखे सिरेसे पत्रोंमें छेद कर लिया जाता है और वह फाइलमें पिरो दिये जाते हैं। इस तरीक़ेसे फाइल किये गये कागजोंके कोने आदि बड़ी बुरी तरहसे मुड़ जाते हैं। और नीचे ही नीचेके कागज तो सारे कागजोंके भारसे बिलकुल नष्ट हो जाते हैं। अस्तु अब इस फाइलका उपयोग डाकखानेकी रसीदों तथा अन्य ऐसे ही कागजोंके लिये किया जाता है।

एप्रोन फाइल

इस फाइलसे दूसरे नम्बरकी फाइल एप्रोन फाइल है। इससे पत्रोंके सुरक्षित रखनेमें कुछ विशेष सहूलियत नहीं होती। इस फाइलमें पत्र हुक फाइलकी तरहसे बीचमें छेद करके पिरोये नहीं जाते। परन्तु इसमें पत्रके सिरे अथवा बगलमें दो छेद करके पत्र फाइल किये जाते हैं। ऊपरका कवरका कागज बार बार छेड़ा जानेसे बहुत जल्दी खराब और अन्तको नष्ट हो जाता है। इसके नष्ट होजानेपर अन्दर फाइल किये हुये पत्रोंका रक्षक काग़ज़ कोई भी नहीं रहता। इससे वह भी धीरे धीरे मुड़ते टूटते और नष्ट होते जाते हैं।
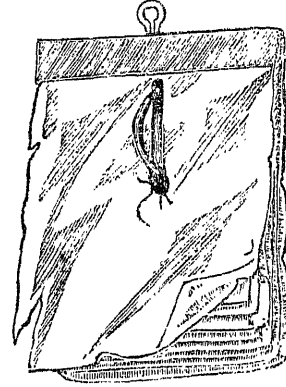
चित्र ४२—एप्रोन फाइल

कबूतर खाना

पत्रोंके फाइल करनेका तीसरा तरीक़ा कबूतरख़ानेका है। इसका नाम क़बूतरख़ाना इसी

लिए पड़ा है कि इसमें पत्रोंकी रक्षाके लिए उसी प्रकारके छोटे छोटे घर बनाये जाते हैं जैसे कि कबूतर पालनेवाले अपने कबूतरोंकी रक्षाके लिए बनाते हैं। पत्रोंका यह कबूतरख़ाना ल-

चित्र ४३–कबूतरखाना
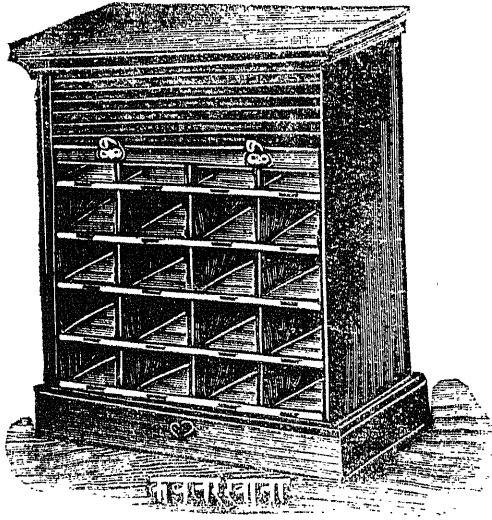
कड़ीका बनाया जाता है। एक एक कबूतरख़ानेमें जितने चाहियें उतने घोंसले बनाये जा सकते हैं। ऐसे प्रत्येक घोंसलेपर एक अथवा एकसे ज्यादा अक्षर जड़ दिये जाते हैं और तब वह उसी अक्षरका घोंसला कहलाता है। इन घोंसलों पर अक्षर अकारादिक्रमसे लिखे जाते हैं। अस्तु जब किसीका कोई पत्र आता है तो पहले पत्र लिखनेवालेका नाम देखा जाता है और इस बातका पता चलाया जाता है कि उसका नाम किस अक्षरसे शुरू होता है। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि आज श्रीयुत रामचंद्रका आपको पत्र मिला। अब चूंकि यह नाम र अक्षरसे शुरू होता है इसलिए हम पत्रको सुरक्षित रखनेके लिये कबूतरख़ानेका र वाला घोंसला चुनते हैं और जब जब श्रीयुत रामचंद्रसे हमको पत्र मिलता है तभी हम उसे इस घोंसलेमें रख देते हैं। भिन्न भिन्न अक्षरोंके नामवाले पत्र लेखकोंके पत्र इस युक्तिसे सुरक्षित रहनेके साथ साथ पृथक् पृथक् भी रह जाते हैं। परन्तु जब एक ही अक्षरके नामवाले पत्र लेखकोंकी संख्या एकसे अधिक हो जाती है तब हमारे लिए यह आवश्यक होता है कि एक घोंसलेमें रखे हुए अनेक पत्र लेखकोंके पत्र एक दूसरेसे न मिलें।
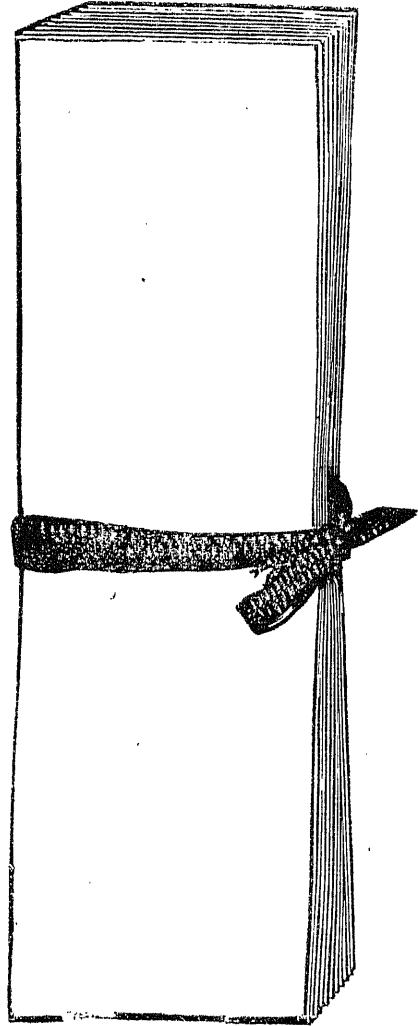
चित्र ४४–डाकेट

इसके लिए भिन्न भिन्न पत्रलेखकोंके पत्र एक मोटे कागजमें बांधकर रखे जाते हैं। इस मोटे कागजको अंगरेज़ीमें डाकेट (docket) कहते

हैं। ऐसे प्रत्येक डाकेटपर पत्रलेखकका नाम व पूरा पता पत्रोंके आनेकी मिती व उनका संक्षेपमें ब्यौरा लिखा होता है। इन डाकेटोंसे एकही अक्षर के नामवाले अथवा एक ही नामवाले पत्र-लेखकोंका बराबर पता लग जाता है। जो लोग जवाबके पत्रोंकी नकल अपने पास रखते हैं वह उसे इसी फाइलमें जिस पत्रका वह जवाब है उसके साथ नत्थी करके रख देते हैं। फाइलमें पत्र रख देनेके बाद वह फाइल दोहरी करके एक फीतेके अथवा रस्सीके टुकड़ेसे बांध दी जाती है और मुनासिब घोंसलेमें रख दी जाती है। जब यह घोंसले भर जाते हैं तब इन पत्रोंको उनमेंसे निकाल लिया जाता है और किसी एक संदूकमें उन्हीं डाकेटों सहित रख दिया जाता है और संदूकके ऊपर इस बातका इशारा कर दिया जाता है कि इसमें अमुक अक्षरसे अमुक अक्षर तकके पत्र बन्द हैं। यह कबूतरखाने २४ घोंसलोंके बने हुये स्टेशनरीके व्यापारियोंके यहांसे तैयार मिल सकते हैं। यदि हमारे पत्रलेखक थोड़ी संख्यामें हैं तो ऐसे एक कबूतरखानेसे हमारा काम बखूबी चल सकता है। परन्तु यदि हमारा व्यापार बहुत फैला हुआ है तो इस तरीक़ेसे अपने पत्रोंको फाइल करनेमें हमको बड़ी दिक़त पेश आती है। बीजक आदिके लिए और पत्रोंके लिए पृथक् पृथक् कबूतरखाने रखकर यदि काम चलाया जा सकता है तो ठीक, नहीं तो फिर हमको मकानोंकी छतसे बात करनेवाले कबूतरखाने बनाने पड़ते हैं और तब हमें अपने पत्रोंके फाइल करने एवम् आवश्यकता पड़नेपर वापिस निकालनेमें बड़ी ही दिक़त होती है। यह तरीका सरकारी दफ़्तरोंमें अभी तक काममें आता है।

चिट्ठियोंको आगत चिट्ठीनूंधमें दर्ज करना

फाइल करनेके सिवा चिट्ठियोंके सुरक्षित रखनेका जो एक और तरीका उपयोगमें है वह चिट्ठीनूंधका है। इस तरीक़ेमें चिट्ठियोंके लिए हिसाब, किताबकी भाँति एक पृथक् बही रखली जाती है। हमारे अंगरेज़ीदाँ भाई ऐसी बही न रख कर इनकी नोंधके लिए एक रजिस्टर रखते हैं। रजिस्टरमें इन चिट्ठियोंकी नोंध कैसे की जाती है इसपर अभी न विचार करके हमें अपने देशी तरीकेका परिचय पा लेना चाहिये। अस्तु, यह बही भी अन्य बहियोंकी भांति जमा और नांवेंके लिए दो सम भागोंमें विभक्त करली जाती है। जमाका भाग सदा आई हुई चिट्ठियोंकी नोंध करनेके लिये काममें आता है और नांवेंका भाग दी गई चिट्ठियोंके लिए रखाजाता है। व्यापारिक बहियोंकी भांति इस बही में भी सल डाले हुए होते हैं। अस्तु जमा और नांवेंका पहला सल पत्रकी तादादके लिए खाली छोड़ दिया जाता है। समाचारोंका ब्यौरा सदा इस सलको छोड़ कर बाकीके पेटेके सलोंमें दिया जाता है। चिट्ठीनूंधमें नोंध करनेकी बातें यह हैं:—

१—पत्र पोस्टकार्ड है अथवा बंद लिफाफा, यह ब्यौरा सिरेके सलमें ही सदा लिखा जाता है।

२—पत्रके आनेकी मिती नोंधी जाती है। ज्योंही कि डाक आती है डाक खोलनेवाला प्रत्येक पत्रपर उस दिनकी मिती अथवा तारीख लिख देता है। इससे नोंध करनेवालेको पत्रके आनेकी मिती तारीख मालूम हो सकती है।

३—पत्र लेखकका नाम व पता नोंधा जाता है।

४—और तब पत्रका आशय संक्षेपमें नोंध दिया जाता है। पत्रकी नोंधमें ख़ास ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि नोंधबहीमें न तो कोई फालतू बात नोंधी जानी चाहिये और न कोई कामकी बात छूटनी ही चाहिये। इसके अलावा नोंधकी इबारत जहां तक हो बराबर सिलसिलेवार होनी चाहिये। प्रत्येक

नई बात नये पैरेसे अथवा सीगा खींचकर लिखी जानी चहिये।

५– अन्तमें पत्र कब लिखा गया है उस मिती की नोंध की जाती है।

दी जानेवाली चिट्ठियोंकी नोंधमें सबसे पहले चिट्ठी लिखनेकी मिती नोंधी जाती है और तब अन्य बातें नोंधी जाती हैं। हमारे देशी व्यापारी इस चिट्ठीनूंध बहीमें खाता बहीकी भाँति अपने आढ़तियोंके नामके जहां तहां खाते लगा लेते हैं और इसके अलावा एक परचून चिट्ठी खाता भी खोल लेते हैं कि जिसमें खातेवालोंके अलावा अन्य लोगोंको दी गई चिट्ठियोंकी नोंध कर ली जाती है। इस बहीमें भी खाते उसी सिलसिलेसे लगाये जाते हैं कि जैसे खाता बहीमें लगाये जाते हैं। यह खाते यदि घने हों तो अकारानुक्रम से अन्यथा प्रान्तवार

चित्र ४५–बींटे या डाकेट

मिसलोंमें लगा लिये जाते हैं। जब चिट्ठी नोंध ली जाती है तो उसपर नोंध करनेका पृष्ठ (नोंध की पृ० ३१) की तरहसे लिख दिया जाता है और उस रोजकी तमाम चिट्ठियां एकत्रित करके एक बंडलमें चिपका कर रखदी जाती है और उस पर उस रोजकी मिती लिख दी जाती है। इस प्रकार चिट्ठियोंके रखनेको बींटा बांधना अथवा लंगोट लगाना कहते हैं। जब पंद्रह दिनके बींटे इकट्ठे हो जाते हैं तब उन सबका एक बंडल बांध दिया जाता है और फिर वह एक संदूकमें रख दिया जाता है। न तो हमारे यहां आई हुई चिट्ठियोंको कोई नंबर दिया जाता है और न दी हुई चिट्ठियोंको; क्योंकि भिन्न भिन्न खातोंमें नोंधी जानेके कारण यह बात बन ही नहीं सकती। दूसरे हम इस चिट्ठीनूंधके अलावा अंगरेज़ीकी डिसपेच बुककी तरह कोई चिट्ठी-चलान बही भी नहीं रखते कि जिसका सिलसिलेवार नंबर इन चिट्ठियोंमें दिया जाय। अंगरेज़ीमें जहाँ चिट्ठीकी एक खास इसीलिए बनाई हुई किताबमें छापकर नकल की जाती है वहां इस बहीकी तरह इनवर्ड और आउटवर्डके लिये दो रजिस्टर रखे जाते हैं और उनमें इनकी नोंध करके इसी सिलसिलेका उन पर नंबर डाल दिया जाता है।

इनवर्ड और आउटवर्ड रजिस्टरकी खानाबंदी

१–इनवर्ड रजिस्टरकी खानाबंदी

१—संख्या। अनुक्रम संख्या। इस संख्याके साथ जिस महकमेका वह पत्र हो उसका प्रथमाक्षर और नंबर भी इसी खानेमें दियाजाता है। जैसे मान लीजिये कि एक व्यापारीकी दूकानमें १५ महकमे हैं और जिनमेंसे ११वाँ महकमा टेलरिङ्ग यानी सिलाईखानेका है। अब यदि इसको सिलाईका एक आर्डर इलाहबादके श्रीयुत लक्ष्मीचंद्र धाड़ीवाल, बी० ए०, एल-एल०, बी० नं० ६ कचहरी रोडवालेका चिट्ठी द्वारा मिले तो इस चिट्ठीको इस रजिस्टरमें दर्ज करते समय वह सि० ११ नं० २६४ देगा यदि इसके पहले २६३ पत्र इसी प्रकार दर्ज हो चुके हैं तो।

२—पत्र पानेकी मिती अथवा तारीख।

३—पत्र लेखकका नाम।

४—पत्रलेखकका पूरा पता।

५—पत्रकी मिती अथवा तारीख। यदि इस पत्रपर किसी तरहका नंबर भी लिखा हो तो

वह भी एक पृथक् खाना बनाकर इसीके पास नोंध लिया जाता है।

६—पत्रका सारांश।

७—पत्रके साथ क्या सुलूक किया गया है, उसका दाखला। यदि पत्र महमकमेके प्रबन्धकर्ताको योग्य कार्यवाहीके लिये सौंप दिया गया है अथवा फाइल करनेके लिये रेकर्ड क्लर्कको दे दिया गया है तो इस बातका इस खानेमें उल्लेख किया जाता है।

८—विशेष विवरण। इस खानेमें पत्रमें लिखी बात की जा चुकी है अथवा नहीं इसका खुलासा रहता है।

९—आवक रजिस्टरका पृष्ठ। इस खानेमें इस आवक चिट्ठी नोंधका वह पृष्ठका नंबर नोंधा जाता है कि जहां खाने नंबर ८ में लिखे हुए पत्रकी नोंध की गई है।

आउटवर्ड अथवा जावक रजिस्टरकी खाना बंदी :-

१—अनुक्रम संख्या। यहां भी ऊपर बताये मुताबिक भिन्न भिन्न महकमोंके पत्रोंकी ंख्या भिन्न भिन्न दी जा सकती है।

२—पत्र लिखनेकी मिती अथवा तारीख।

३—पत्र जिसको लिखा जाय उसका नाम।

४—पत्र पानेवालेका पूरा पता।

५—पत्रका सारांश।

६—विशेष विवरण—इसमें गत पत्रका नम्बर और इसके,बाद दिये गये पत्रका नंबर पीछे नोंध दिया जाता है।

हमारे अंगरेज़ीदां भाई इन दो रजिस्टरोंके सिवा एक और रजिस्टर रखते हैं जिसे वह पोस्टेज अथवा डिसपेच रजिस्टर कहते हैं। इसकी खानाबन्दी इस प्रकार होती है :—

१—टिकट पोते और नये खरीदे, उसकी कीमतका खाना।

२—मिती अथवा तारीखका खाना।

३—विगत अथवा व्यौरेका खाना। इसमें टिकट आदि यदि आज और खरीदे गये हैं तो उसकी भी विगत लिखी जाती है और जिसकी चिट्ठी देनेमें स्टाम्प खर्च हुआ है उसका नाम भी इसी खानेमें लिखा जाता है।

४—पता जहां कि चिट्ठी दी जाय।

५—चिट्ठीका व्यौरा—यानी चिट्ठी है तो रजिस्ट्री है अथवा सादी। इसी तरह क्या वह पोस्टकार्ड है अथवा पारसल वा पैकेट है। यह सब बातें इशारेमें लिखदी जाती है।

६—पत्र डाकमें किस समय छोड़े गये हैं उसका समय। इसका लिखा जाना इसलिए आवश्यक होता है कि पत्रों द्वारा मालके लिये बेचीके झगड़े निपटानेमें इससे बड़ी सहायता मिलती है। इसकी उपयोगिता हमको व्यापारी आईनके पढ़ने पर भली भांति विदित हो सकती है।

७—डाकमें छोड़नेवालेका नाम।

८—डाकमें छोड़नेका पता यानी किस जगहके डिब्बेमें चिट्ठी छोड़ी गई है उसका व्यौरा।

९—डाक महसूलका आकार।

ऊपर चिट्ठियोंके सुरक्षित रखनेके चार तरीक़ोंमेंसे तीनका विवेचन किया जा चुका है। इसलिये अब चौथे तरीक़ेका ही सिर्फ बयान किया जायगा :—

पत्रोंके फाइल करनेके कई तरीक़े हैं। परन्तु उन सबका तत्व एकसा ही है। इन तरीक़ोंमेंसे किसी भी तरीक़ेसे पत्र फाइल क्यों न किये जायं परन्तु सबसे पहले उनमें दो छेद इसलिये कर लिये जाते हैं कि पत्र फाइलोंके दो खास मोटे तारोंमें पिरोये जाकर अच्छी तरह जम जायं और इधर उधर न हिलें ; चूंकि इन फाइलोंके यह तार सबमें एक ही दूरीसे लगे होते हैं इसलिए इनकी बनानेवाली कम्पनियोंने छेद करनेकेलिए भी एक मशीन बना ली है। इस मशीनमें कागजको रखकर जब इसका हत्था दबाया जाता है तो खटसे दबाये हुये कागजमें

दो गोल छेद दो सूत मोटे तारमें आ सकने लायक हो जाते हैं। इस मशीनको फाइल परफो-

चित्र ४६—फाइलपर फोरेटर
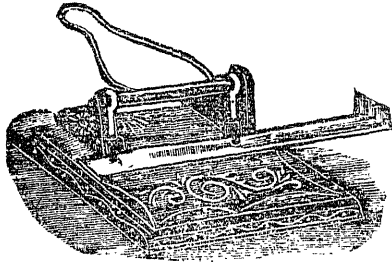
रेटर कहते हैं और यह हरएक स्टेशनरी सामान बेचनेवालेके यहांसे मिल सकती है। इन तरीकोंसे पत्रोंके फाइल करनेमें जो खास सुभीता रहता है वह यह है कि जब कभी जिस पत्रको फाइलमेंसे निकालना चाहें तब ही बिना दूसरे कागजातोंको तकलीफ दिये हम उसे बड़ी आसानीसे निकाल सकते हैं। अथवा वहांका वहीं उसे इस प्रकार पढ़ सकते हैं कि मानों हमारे हाथमें केवल वही एक पत्र है। यह बात हमें आगे इन फाइलोंका खुलासा हाल जान लेनेपर आप ही विदित हो जायगी। इनके अलावा कई फाइलें ऐसी भी बनाई गई हैं कि जिनमें कागजोंको अपनी जगहपर दबाये रखनेके लिये एक स्प्रिङ्ग लगी रहती है। इस स्प्रिङ्गको उठाकर जैसा चाहिये वैसा कागज हम उसी क्षण निकाल सकते हैं। इस तरीक़ेसे कागजोंके फाइल करनेमें उनमें छेद करनेकी जरूरत नहीं होती। परन्तु इसमें जो एक बड़ी असुविधा रहती है वह स्प्रिङ्गको हटा देने पर कागजोंके गिर पड़नेकी अथवा तितर बितर हो जानेकी है।

यह फाइलें कितनी ही कम्पनियोंकी बनी हुई बाज़ारोंमें मिलती हैं। परन्तु उन सबमें पाइलट और शैनन फाइल मशहूर है। इन नामोंके दो अमेरिकनों ने इनका आविष्कार किया था। इसलिए इनका परिचय भी इन्हींके नामसे दिया जाता है। इन दोनों तरहकी फाइलोंमें भेद केवल इतना ही है कि पहली में फाइल किये हुये पत्र खड़े रखे जाते हैं और दूसरीमें वह सोते यानी आड़े रखे जाते हैं। इसीसे इस तरीकेसे फाइल करनेको फ्लैट फाइल सिस्टम अंगरेज़ीमें कहते हैं। इन फाइलोंमें पत्रोंके फाइल करनेका यंत्र इस प्रकार लगा होता है:—

प्रत्येक फाइलके सिरे पर अथवा बगलमें एक दूसरेसे लगभग दो इञ्चकी दूरीपर सूत भर मोटे दो लोहेके तार फाइल किये हुये पत्रोंको अपने अपने स्थानमें कायम रखनेके लिए जड़े होते हैं। प्रत्येक फाइल किया जानेवाला पत्र परफोरेटरसे छेद किया जानेपर इन तारोंमें पिरो दिया जाता है। इस प्रकार पिरोये हुये पत्र ऊपर नीचे भी न हिलें इसके लिए एक अंगुल चौड़ी लोहेकी पत्ती दो छेद करके इन खड़े तारोंमें फंसी हुई रहती है। इस पत्तीके दोनों छेदोंके पास पतले तारका एक स्प्रिंग इस प्रकार लगा
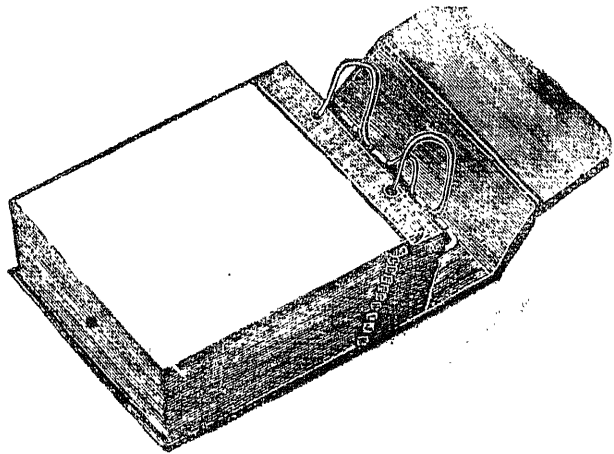
चित्र ४७—फाइलमें पत्रोंके पढ़नेकी विधि

होता है कि जो पत्तीको दबाकर नीचेकी ओर खींच लेनेसे खड़े तारोंको इस तरह जकड़ लेते हैं कि फिर उसके नीचेके पत्रादि तनिक भी इधर उधर नहीं हिल सकते। यह तो पत्रोंके फाइल करनेका यन्त्र हुआ। परन्तु इतनेसे यन्त्रसे मन चाहे पत्रको दूसरे किसी भी पत्रको बिना हटाये निकाला जाना नहीं बन सकता। अस्तु इसके लिए हुककी तरह दो मुड़े हुए तार स्प्रिंग और लिवरके साथ इस प्रकार लगे हुए रहते हैं कि जब लिवर नीचे गिरा दिया जाय तब यह दोनों हुक फाइलके दोनों खड़े तारोंसे सटकर अंगरेज़ी वर्णमालाके यू अक्षरका उलटा किया हुआ स्वरूप बना देते हैं। और तब यह हुकवाला तार और खड़ा तार दोनों मानिन्द
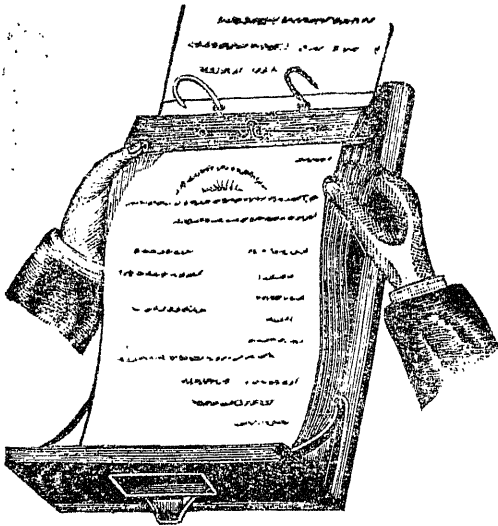
चित्र ४८—फाइलमेंसे पत्र निकालनेकी तरकीब

एक तारके हो जाते हैं। इसलिए जब हमें फाइल किये हुये पत्रोंमें से कोई पत्र निकालना होता है तो ऊपर बताई हुई पत्तीको ऊपर खिसका कर सब पत्रोंके ढ़ीले करनेके पश्चात् पत्ती सहित ऊपरके सारे पत्र हुकवाले तारके सहारे दूसरी ओर पलट दिये जाते हैं। और फिर लिवरको उठाकर इन दोनों तारोंका संयोग तोड़ दिया जाता है और इच्छित पत्र निकाल लिया जाता है। जब काम हो चुकता है तो लिवर गिरा दिया जाता है और फिर सारे कागज़ात जहाँके तहां रखकर फाइल वापस अपने स्थान पर रख दी जाती है।

ऐसी फाइलोंमें एकमें ही हमारे सारे पत्र लेखकोंके पत्र पृथक् पृथक् फाइल किये जासकें इसके लिए अंगरेजीके ए, से ज़ेड तकके निदर्शन पत्र लगे होते हैं। पत्र लेखकका नाम जिस अक्षरसे प्रारम्भ होता है, उसी निदर्शन अंकके नीचे उस शख्सके सारे पत्र फाइल किये जाते हैं। यदि एक अक्षरवाले पत्र लेखक एकसे ज्यादा हों तो उन्हें पृथक् पृथक् रखनेके लिए उनके बीचमें ब्राउन कागज़का विश्लेषक पिरो दिया जाता है और प्रत्येक पत्रलेखकके पत्र इस प्रकार अलग अलग रखे जा सकते हैं। जिन व्यापारियोंका पत्र व्यवहार बहुत घना होता है वह पत्रोंके लिए और मालके इनवाइस यानी बीजक आदिके लिए पृथक् पृथक् फाइल रखते हैं। इतना ही नहीं परन्तु जिन आढ़तियोंके पत्रोंको उन्हें सबसे अलग रखना होता है वह उसके लिए एक पृथक् फाइल खोल देते हैं और इस प्रकार उसके पत्र बाकीके भी सारे आढ़तियोंके पत्रोंसे अलग रखे जासकते हैं। इस तरीक़ेसे पत्रोंका फाइल करना तभीतक सुभीतेका रहता है जब तक कि पत्र लेखकोंकी और पत्रोंकी संख्या थोड़ी रहती है। परन्तु जब यह सैकड़ों और हजारों तक पहुँच जाती है तो यह तरीक़ा भी बड़ा झंझटका हो जाता है। अंगरेज़ीमें घने पत्र व्यवहारमें पत्रोंका फाइल करनेका जो तरीका प्रचलित है उसे वरटिकल फाइलिंग और कार्ड इंडेक्स सिस्टम कहते हैं। अब हम इसीका विवेचन कर इस भागको समाप्त करेंगे।

वरटिकल फाइलिङ्ग और कार्ड इंडेक्स

फाइल करनेका यह तरीक़ा ऊपर बताये हुए तरीकेसे किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है।

इस तरीकेमें प्रत्येक पत्र लेखकको एक एक फाइल दे दी जाती है और उसके सब पत्र तब इसी फाइलमें फाइल किये जाते हैं। ऐसी अनेक फाइलोंके रखनेके लिए इस तरीकेमें दराजवाली अलमारी रखी जाती हैं। इस अलमारीकी प्रत्येक दराज़ केवल इतनी ही चौड़ी होता है कि उनमें यह फाइलें जिनका कि साइज़ होता है बराबर बैठ जायं। इन दराजोंमें यह फाइलें नीचेकी तरफ मुँह करके खड़ी रखी जाती हैं। इस प्रकार रखते समय उनमें रखे हुए कागज़ वगैरह नीचे न गिर जायं इसके लिए हर एक फाइलमें दो पिन और एक लंबी लोहेकी पत्ती जो इन पिनोंमें पिरोई जाकर अन्दरके सब कागज़ातोंको अपने स्थानमें रखती है लगी रहती है। इस फाइलके पुट्ठे पर पत्र लेखकका नाम, पूरा पता और तारीख आदि बातें लिखी रहती हैं। यह फाइलें अकारानुक्रमसे जमाई जाकर अलमारीके प्रत्येक दराजमें खड़ी रख दी जाती हैं। प्रत्येक दराजमें किस अक्षरसे किस अक्षर तककी फाइलें रखी हुई हैं यह बाहरसे ही मालूम हो जाय इसलिए इनके मुँहपर एक कागज़की छोटीसी चुक्ती लगा दीजाती है और उस पर जिस अक्षरसे जिस अक्षर तककी फाइलें उस दराजमें हों वहदोनों अक्षर लिख दिये जाते हैं जैसे अ से औ तक।

इन फाइलोंमें पत्र जैसे आते हैं वैसेही फाइल करते चले जाते हैं। फलतः प्रत्येक नया आया हुआ पत्र बाक़ीके सब पत्रोंके ऊपर रहता है।

इस तरीकेके अलावा जो बड़े बड़े व्यापारालयोंमें एक और तरीक़ा पत्रोंके फाइल करने का प्रचलित है वह यह है कि प्रत्येक लेखकको एक नंबर दे दिया जाता है और उस नंबरकी एक फाइल भी खोल दी जाती है। जब कभी कोई पत्र आता है
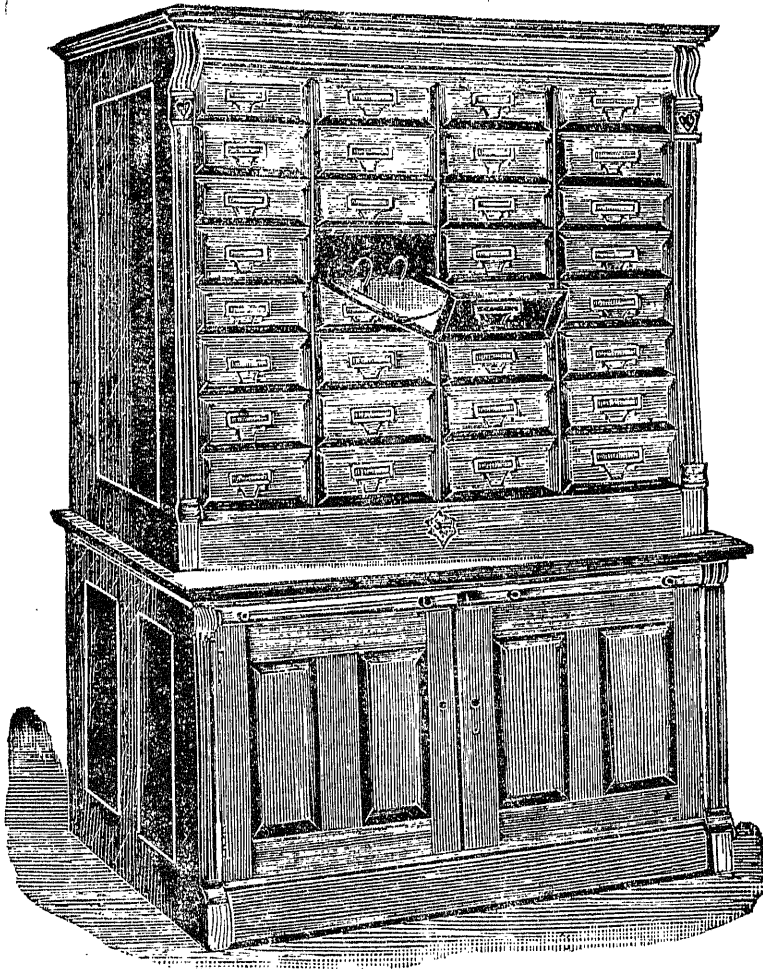
चित्र ४९—वर्टिकल फाइल

तो उसके आते ही लेखकका फाइल नंबर तलाश किया जाता है। फाइल नंबरोंके लिए एक जनरल रजिस्टर रखा जाता है और जब किसी नये आदमीसे पत्र व्यवहार शुरू किया जाता है तो पहले उसका नाम इस रजिस्टरमें लिख लिया जाता है। इस रजिस्टरमें सब नाम अनुक्रम नंबरसे लिखे होते हैं। अतः जब जिस लेखकका जो अनुक्रम नम्बर इस रजिस्टरमें होता है वही उसका फाइल नंबर भी माना जाता है। फाइल नंबर शीघ्र मालूम हो जायं इसके लिए इस रजिस्टरकी सूचीके अलावा अक्षरानुक्रमकी भी एक और सूची तैयार की जाती है। इस सूचीको अंगरेजीमें कार्ड इन्डेक्सिङ्ग कहते हैं। कार्ड इण्डेक्सिङ्गमें प्रत्येक पत्रदाताके लिए एक एक अलाहदा कार्ड तैयार किया जाता है। इस कार्डमें उस लेखकका नाम पता व स्थान आदि लिख कर दाहिनी ओरके ऊपरके कोनेमें लाल स्याहीसे उसका फाइल नंबर लिख दिया जाता है। यह कार्ड अकारानुक्रमसे जमाये जाकर इनकी साइज़की बनी हुई लोहेकी दराजोंमें जिन्हें व्यापारी लोग केबीनेट कहते हैं रखे जाते हैं। एक अक्षरके समस्त कार्ड दूसरे अक्षरके कार्डों से न मिलें और जल्दीसे पहचान लिये जायं इसलिए उनके बीचमें एक एक निदर्शन कार्ड रख दिया जाता है। यह निदर्शक कार्ड अन्य कार्डोंसे भिन्न रंगके तो होते ही हैं परन्तु इनके देखते ही इस बातका पता चल जाय कि इनके आगे अथवा पीछे अमुक अक्षरके नामवाले लेखकोंके कार्ड संग्रहीत हैं इसलिए सिरे नाम लिखनेके कार्डकी अपेक्षा कुछ ऊँचे और एक तरफसे किञ्चित् निकले हुए होते हैं। यह निकला हुआ

चित्र ५०—इंडेक्स

हिस्सा इस प्रकारका बना होता है कि यदि तीन कार्ड एक साथ एकके पीछे एक रखे जायं तो भी वह एक दूसरेको न ढांक सकें। निदर्शकका पूर्ण काम देनेके लिए ऐसे कार्डके इस निकले हुए हिस्से पर वर्णमालाका एक एक अक्षर छपा होता है। यह सारे कार्ड कैबिनेटमें रखने पर उसके पूर्ण न भरे होने पर भी उसकी तहमें न बैठ जायँ इसके लिए प्रत्येक दराजकी लंबाईका एक लोहेका मोटा सरिया हरएक दराजके पेंदेमें लगा रहता है। और जब कार्ड तरतीबवार जमा कर रख दिये जाते हैं तो यह सरिया इसके लिए बने हुये खास छेदमें होकर उन सब कार्डोंमें पिरो दिया जाता है। इससे कार्ड थोड़े होने पर भी नीचे नहीं फिसलते। अपने विषयको अच्छी तरह समझानेके लिए हम यहां पर ऐसे एक कार्डका नमूना देते हैं।

विनोदीराम बालचंद ५२३
इन्दौर
मुनीमः
तारका पताः—

अस्तु जिन दराज़ोंमें फाइलें रखी होती हैं उन पर अक्षरोंका चिन्ह देनेके अतिरिक्त अब अमुक नंबरसे अमुक नंबर तक ऐसा चिन्ह दिया जाता है और सूची वा कैबीनेट पर अक्षरोंका चिन्ह दिया जाता है। छोटे और बड़े सारी तरहके कैबीनेट कार्ड व फाइल आदि स्टेशनरी के सौदागरोंके यहां लकड़ी व लोहे दोनोंके ही, विलायती बने हुए मिलते हैं, परन्तु हमारे देशी व्यापारी यदि चाहें तो उन्हें यहाँ पर भी बनवा सकते हैं।

स्थिर विद्युत (घर्षण विद्युत्)

[लेखक—पं० सालिग्राम भार्गव, M. Sc.]

यह कहा जाता है कि यूनानी वैज्ञानिक टेलसने पहले पहल, आजसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व, यह बात देखकर लिखी कि जब कभी 'कहरुबा' का कोई टुकड़ा किसी वस्तुके साथ घिसा जाता है उसमें हल्की हल्की चीज़ें जैसे घासकी पत्तियाँ अपनी ओर खेंच लेनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। वास्तवमें कहरुबाके नामकी उत्पत्ति भी इसी गुण के कारण हुई। फारसीमें घासको 'कह' कहते हैं और 'रुबा' के माने ले जाने (उठाने) वालेके हैं। इस शक्तिके कारण का नाम विद्युत् या बिजली है और कहरुबाके टुकड़ेकी अवस्थाको विद्युन्मय अवस्था कहते हैं।

सोलहवीं शताब्दी तक विद्युत्के सम्बन्धकी और बातें नहीं मालूम हुईं। इस शताब्दीमें उसी डा०गिलबर्टने जिसने चुम्बकत्वकी नींव डाली यह भी जान लिया कि केवल कहरुबा ही नहीं बल्कि और पदार्थ (शीशा, गंधक, चपड़ा इत्यादि) भी अन्य किसी पदार्थसे घिसकर विद्युन्मय किये जा सकते हैं। इसी समयसे बिजलीके सम्बन्धका ज्ञान संचय करना लोगोंने आरंभ कर दिया। जिस उच्च कोटिको आज यह ज्ञान पहुँचा हुआ है उसके जतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि बहुत कुछ पाठक जानते ही हैं और उनको मालूम होता ही जावेगा।

डा० गिलबर्टने यह भी मालूम किया कि धातु (तांबा, पीतल, लोहा) ऐसे पदार्थ हैं कि जो विद्युन्मय नहीं होते हैं। वास्तवमें धातु भी विद्युन्मय हो जाती हैं और ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है कि जो उचित रीतिसे घिसा जावे और विद्युन्मय न हो। उनको किसी विशेष कारणसे पता नहीं चला। बात यह है कि कोई पदार्थ तो ऐसे हैं कि जिनमें, जिस स्थान पर बिजली उत्पन्न होती है वहीं ठहरी रहती है, जैसे कहरुबा या शीशेकी छड़के एक सिरे पर बिजली उत्पन्न की जावे तो वह उसी सिरे पर ठहरी रहेगी, कुल छड़ पर नहीं फैलेगी। ऐसे पदार्थोंको रोधक कहते हैं। दूसरे पदार्थ ऐसे होते हैं कि उनपर बिजली तुरन्त फैल जाती है। उनको चालक कहते हैं। धातु, पृथ्वी, मनुष्यका शरीर चालक पदार्थोंमें से हैं। इसी कारण जब कभी धातुकी छड़ हाथमें पकड़ कर पृथ्वीपर खड़े होकर किसी चीजसे घिसी जावे तो जैसे जैसे बिजली उत्पन्न होती जावेगी छड़ शरीर और पृथ्वीपर फैलती जावेगी। पृथ्वी इतनी बड़ी चीज़ है कि इसका विद्युन्मय करना मनुष्यकी ताकतके बाहर है। इस लिए छड़ विद्युत् शून्य ही जान पड़ेगी। यह अवश्य है कि यदि हम पृथ्वीपर कोई रोधक पदार्थ अपने पैरोंके तले रखकर खड़े हो जावें तो छड़ और शरीर विद्युन्मय जान पड़ेंगे। यदि छड़को हम हाथमें किसी रोधक पदार्थके सहारे थामें तो छड़में उत्पन्न हुई बिजलीका भी पता चल सकता है। नीचे रोधक और चालकोंकी सूची दी जाती है।
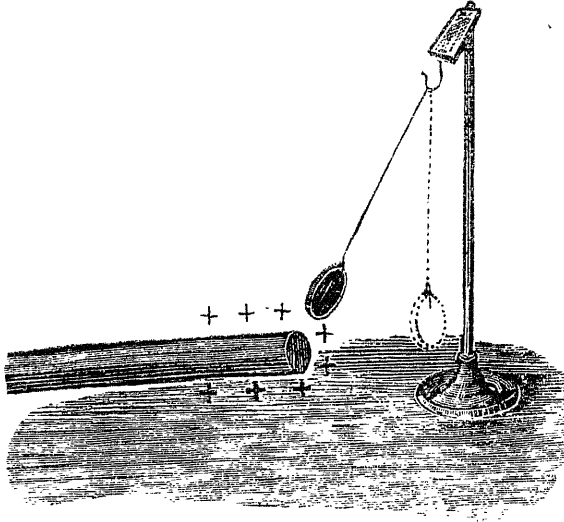
चित्र ४१—कांचकी विद्युन्मय छड़ गूदेके लटकनको खींच रही है।

रोधक	चालक
चूना	ताम्बा
रबड़	लोहा
हवा और अन्य गैस (भापशून्य)	इत्यादि
सूखा कागज	
रेशम	
हीरे और पन्ने	
शीशा, मोम, गंधक, चपड़ा	
चकमक पत्थर, इत्यादि	

कुछ पदार्थ ऐसे भी मिलेंगे कि जिनको न रोधक ही कहा जा सकता है और न चालक ही, जैसे कागज़ लकड़ी अलकोहल, ईथर इत्यादि। इनमें बिजली एक स्थानपर ठहरी भी नहीं रहती है। परन्तु जिस शीघ्रतासे धातुओंमें फैल जाती है उस शीघ्रतासे फैलती भी नहीं है। ऐसे पदार्थोंको अर्ध चालक कहना चाहिए।

चीज़ोंकी विद्युन्मय अवस्थाकी जाँचके लिए उनसे कागज़ या घासके छोटे छोटे टुकड़े उठवाना बड़ी पुरानी रीति है और सरल भी है। इसमें कोई भी चीज ऐसी नहीं है कि जो हर जगह और हर मनुष्यको न मिल सकती हो। परन्तु बहुत उम्दा रीति नहीं कही जा सकती है। आजकल तो इस जांचके लिए विद्युत् दर्शक नामका एक यंत्र काममें आता है जिसकी बनावट बिजलीके उन गुणोंके वर्णन करनेके पश्चात् जिनपर उसका कर्तव्य निर्भर है बतलावेंगे। बिजलीके मुख्य गुणोंकी जांच तो चित्र ४१में दिये हुए सीधे सादे यंत्रसे हो सकती है। एक छोटे गोल और सुन्दर लकड़ीके तख़तेके बीचमें छेद करके चित्रमें दिये हुए आकारकी एक पीतलकी छड़ उस छेदमें बैठा दी जाती है। इस छड़के झुके हुए सिरे पर एक सरकंडेके गूदेकी गोली जिस पर चांदी या सोना या टीनका वरक गोंदसे चिपका दिया जाता है रेशमके धागेसे लटका दी जाती है। यह एक बहुत हलका लटकन सा बन जाता है और यदि इसको विद्युत् लटकन भी कहा जावे तो अनुचित न होगा।
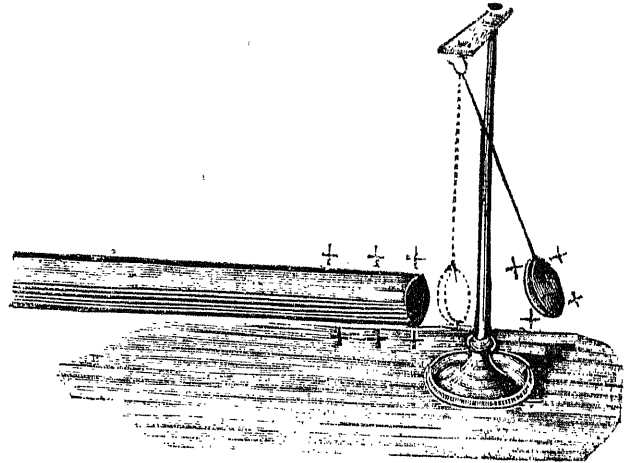
चित्र ४२—लटकन छड़से स्पर्श करके स्वयम् विद्युन्मय हो जाता है और पीछे हटने लगता है।

जब विद्युन्मय चीज इस लटकनकी गोलीके पास लायी जावेगी यह गोली उस चीज़की ओर खिँच आवेगी और उससे चिपट जावेगी। चिपटते ही गोली उस चीज़से हटने लगेगी और फिर उसके पास कभी नहीं आवेगी। इसका कारण यह है कि पहिले तो गोलीमें बिजली नहीं होती। इसलिए उस विद्युन्मय चीज़से स्पर्श होता है। चीज़की थोड़ीसी बिजली गोलीमें चली जाती है और अब गोली भी विद्युन्मय हो जाती है, और उससे हटने लगती है। समान विद्युत्से विद्युन्मय चीज़ें आपसमें एक दूसरेसे हटती हैं। इसकी जांच और भी सीधी रीतिसे इस प्रकार की जा सकती है। एक शीशेकी छड़को विद्युन्मय करके एक कागजकी रकाबमें रेशमके धागेसे लटका दीजिये। अब यदि दूसरी
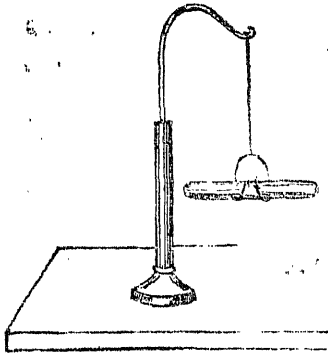
चित्र ४३—कांचकी विद्युन्मय छड़। इसके पास दूसरी कांचकी विद्युन्मय छड़ लानेसे यह भी पीछे हटेगी।

शीशेकी विद्युन्मय छड़ इसके पास लायी जावेगी तो यह लटकी हुई छड़ हटने लगेगी। इस प्रयोगमें इस बातका ध्यान रखा जावे कि शीशेकी दोनों छड़ें एकही रीतिसे विद्युन्मय की जावें। यदि एक छड़को रेशमी कपड़ेसे घिसा है तो दूसरी छड़को भी रेशमी कपड़ेसे ही घिसना चाहिये। इसी प्रकार यदि फलालेनसे घिसी हुई एबोनाइटकी छड़ें शीशेकी छड़ोंके बदले इस्तेमाल करें तो भी यही बात देखनेमें आवेगी। इसी तरह ऊपर कहे हुए नियमकी सत्यताकी पूरी पूरी जांच करली गई है।

यदि रेशमी कपड़ेसे घिसकर विद्युन्मय की हुई शीशेकी छड़को रकाबमें लटका दें और फलालेनसे घिसकर विद्युन्मय की हुई एबोनाइटकी छड़को उसके पास लावें तो देखेंगे कि इन दोनों विद्युन्मय छड़ोंमें बजाय निराकरणके आकर्षण होता है, जिससे यह फल निकाला गया है कि बिजलियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकारकी बिजली तो शीशेको रेशमसे घिसनेसे उत्पन्न होती है; इसको धनात्मक बिजली कहते हैं। दूसरी एबोनाइटको फलालेनसे घिसनेसे उत्पन्न होती है; इसको ऋणात्मक बिजली कहते हैं। धनात्मक विद्युत्से विद्युन्मय चीज़ ऋणात्मक विद्युत्से विद्युन्मय चीजको या तो अपनी ओर खेंच लेगी या उसकी ओर खिँच जावेगी। कौनसी चीज़ किसकी ओर खिँचेगी यह चीज़की स्थिति पर निर्भर है।

यह हम ऊपर बतला चुके हैं कि साधारण (विद्युत् शून्य) चीज़ें विद्युन्मय चीज़की ओर खिँच आती हैं। इसलिए दो चीज़ोंमें खिँचाव ही देखकर यह कहना ठीक नहीं कि जो चीज खिँच आयी है वह असमान विद्युत्से विद्युन्मय है। वह विद्युत् शून्य भी हो सकती है, परन्तु जब दो चीज़ें आपसमें एक दूसरेसे हटती हैं तो उस समय यह कहा जा सकता है कि दोनों चीज़ें समान विद्युतसे विद्युन्मय हैं।

सभी पदार्थोंकी वस्तुएँ दोनों प्रकारकी बिजलियोंसे विद्युन्मय की जा सकती हैं। इसलिए बहुत दिनोंसे वैज्ञानिकोंका यह मत चला आता है कि प्रत्येक पदार्थमें दोनों प्रकारकी बिजलियाँ मौजूद हैं। इस मतको आधुनिक गवेषणाओंने पुष्ट ही किया है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पुराने ज़मानेमें वैज्ञानिक अपनी बुद्धीको ही दौड़ाया करते थे और आज-

कल यह प्रयोगों द्वारा साबित हो गया है कि दोनों प्रकारकी बिजलियाँ प्रत्येक पदार्थमें मौजूद हैं।

पुराने समयके वैज्ञानिक यह नहीं कह सकते थे कि बिजली क्या है। कुछ दिनों तक तो यह मत रहा कि बिजली ऐसा तरल पदार्थ है कि सब चीज़ोंमें रमा हुआ है। बिजलीको पुराने वैज्ञानिक बिना बोझका पदार्थ ही मानते थे, क्योंकि उनको विद्युत् शून्य और विद्युन्मय चीज़के बोझमें कोई भेद कभी नहीं मालूम हुआ।

फ्रेङ्कलिन एक अमेरिकाका वैज्ञानिक था, जिसने पतंग उड़ाकर बादलोंकी बिजलीको पृथ्वी पर उतारा और यह साबित किया कि जो बिजली पृथ्वी पर भिन्न भिन्न पदार्थों को घिसनेसे उत्पन्न की जाती है और जो बिजली कि आसमानमें चमकती है एकही है। वह ऐसा मानता था कि बिजली बिना बोझका सूक्ष्म तरल पदार्थ है जो प्रत्येक पदार्थमें रमा हुआ है। इसका प्रत्येक अणु एक दूसरेको हटाता है और इस निराकरणके कारण एक दूसरेसे अलग ही रहते हैं। जिस पदार्थमें इस तरल पदार्थकी अधिकता हो जाती है वह धनात्मक विद्युन्मय कहलाता है और जिसमें कमी आजाती है वह ऋणात्मक विद्युन्मय कहलाता है। दो चीज़ोंको आपसमें घिसनेसे एकमें अधिकता और दूसरीमें न्यूनता हो जाती है, जिसके कारण एक धनात्मक विद्युत्से विद्युन्मय होजाती है और दूसरी ऋणात्मक विद्युत्से। इस बातकी सत्यताके सबूतमें कि दोनों बिजलियां एक साथ ही उत्पन्न होती हैं बहुत से उदाहरण आगे मिलेंगे।

दूसरे वैज्ञानिक सिमरका मत था कि धनात्मक विद्युत् एक प्रकारका तरल पदार्थ है और ऋणात्मक विद्युत् दूसरे प्रकारका और यह दोनों,तरल पदार्थ समान मात्राओंमें प्रत्येक पदार्थमें मौजूद हैं। जबतक इनकी मात्रामें भेद नहीं पड़ता है। तबतक वस्तु साधारण अवस्थामें रहती है। परन्तु जैसेही दो वस्तुएं घिसी जाती हैं एक वस्तुमें से एक प्रकारकी बिजली निकलकर दूसरीमें चली जाती है। इसलिए एकमें एक प्रकारकी बिजलीकी अधिकता और दूसरीमें दूसरी प्रकारकी बिजलीकी अधिकता हो जाती है। दोनों चीज़ें विद्युन्मय जान पड़ती हैं।

आधुनिक मतके अनुसार ऋणात्मक बिजलीके बड़े सूक्ष्म कण होते हैं जिनको इलेक्ट्रोन (विद्युत्कण) कहते हैं। यह किसी प्रकार दिखलाई नहीं पड़ते हैं। कुछ चीजें ऐसी हैं कि जो इन-कणोंके पड़नेसे चमकने लगती हैं। उसी चमकसे उनके पड़नेका पता लगता है। इनकी मात्रा ८.९×१०^{-२८} ग्रामके लगभग मानी जाती है। यह सभी ठोस पदार्थों में बड़ी सुगमतासे दौड़ सकते हैं। यहांतक कि जब किसी तारमें होकर बिजलीका प्रवाह होता है तो उस प्रवाहको बाटरीकी विद्युत् प्रवाह शक्ति द्वारा केवल इन्हीं इलेक्ट्रोनोंकी दौड़ समझना चाहिये। कुछ पाठकोंके दिलमें ऐसी शंका पैदा होगी कि यदि बिजलीकी धाराका प्रवाह इन ऋणात्मक बिजलीके कणोंकी दौड़ ही है तो यों समझना चाहिये कि धारा बाटरीके ऋणात्मक सिरेसे चलती है न कि धनात्मक सिरेसे जैसा कि अभीतक माना जाता है। यह तो सत्य ही है कि धारा इन इलेक्ट्रोनोंकी दौड़ है, परन्तु प्रवाहका चलना बाटरीके धनात्मक सिरेसे ही माना जाता है। ऐसा रिवाज बहुत दिनोंसे चला आता है और हम लकीरके फकीरोंको ऐसा ही कहना पड़ता है।

इस आधुनिक मतके अनुसार चालक और रोधकोंमें केवल इतना ही भेद है कि चालकोंके अणुओंमें जो इलेक्ट्रोन हैं वह एक अणुसे दूसरे अणुमें आसानीसे चले जाते हैं, परन्तु रोधकोंके अणुओंमें जो इलेक्ट्रोन वह हैं एक अणुको छोड़कर दूसरे अणुमें नहीं जा सकते

हैं। बिजली प्रवाहकशक्तिके असरसे केवल अपने स्थितिके स्थानसे थोड़ा सा हट जाते हैं।

धनात्मक विद्युत्की असलियतका अभी पता नहीं चला है। जैसे ऋणात्मक विद्युत्के कण बिलकुल अलग मिलते हैं ऐसे धनात्मक विद्युत्के कण अलग नहीं मिलते। धनात्मक विद्युत् पदार्थोंके अणुओंके साथ ही मिली है। वास्तवमें जब किसी पदार्थके अणुमेंसे इलेक्ट्रोन निकल जाता है तो वह धनात्मक विद्युत्से विद्युन्मय रह जाता है।

हैनरी केवेण्डिश

सारमें लखपती होना साधारण बात नहीं है। लक्ष्मी देवीके हज़ारों क्या लाखों और करोड़ों उपासक जीवन भर इसी आशामें लीन रहते हैं; दिनरात इसी उधेड़बुनमें लगे रहते हैं। इसी सुख-स्वप्नमें दुनियामें सचेत होनेपर भी वह अचेत रहते हैं। उन्मत्तकी तरह सदा इस लक्ष्मीकी प्राप्तिको ही वह अपने जीवनका मुख्य कर्तव्य जानकर, इसीको अपना लक्ष्य मानकर, तथा इसीको आदर्श समझकर, उठते बैठते, खाते पीते, सोते जागते, हर हालतमें ध्येय समझते हैं। भला इस जगतमें कौन ऐसा मनुष्य जन्मा है जिसे धनी होनेकी धुन न लगी हो, जिसने लखपती और करोड़पती होनेके लिए अपने जी जानसे चेष्टा नहीं की हो? धनी होनेसे क्या लाभ है, तथा ऐसी अवस्थामें मनुष्यको क्या करना चाहिये? यह प्रश्न भी बहुतसे लोगोंके हृदयमें कभी कभी मौज मारने लगते हैं। जब मनुष्य यह सोचने लगता है कि धनी होकर वह कितने अधिक काम कर सकता है, अपने मित्रों और संबन्धियोंके सिरका कितना बोझा हलका कर सकता है, उनके जीवनमें वह कितनी प्रसन्नता और आनन्दकी ज्योति जगा सकता है, कितने कुटुम्बोंपर छाई हुई दुखकी घटाको सुख और आनन्द रूपी सूर्यकी तिमिरभेदी किरणोंके प्रकाशसे आभापूर्ण बना सकता है, कितने दीन दुखियोंको अदृश्य रूपमें उनकी दीन हीन अवस्थासे उठाकर, उनके बिना जाने, अज्ञातरूपसे, उनकी सहायता कर उन्हें यह बतला सकता है कि उस जगन्नियन्ताकी असीम सृष्टिमें उनका स्थान कहां है तथा कितना ऊंचा है और उनके जीवनका क्या उद्देश्य हो सकता है। धनी होकर स्वर्गीय-संगीत उसका चित्त कितना प्रसन्न कर सकेगा, संसारकी उच्च कलाओंके चमत्कार देखनेसे उसको कैसा अपूर्व आनन्द मिलेगा। दुनियाके अनोखे और परम रमणीक स्थानोंको देखकर वह किस प्रकार उस अद्वितीय-कौशल-पूर्ण जग-निर्माणकर्त्ताकी अनुपम कारीगरी पर मुग्ध हो सकेगा। अपने सजातियोंकी सेवा सुश्रूषा तथा उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नतिके लिए वह क्या क्या उपाय सोचेगा, किन नई तरकीबोंको सोच निकालेगा तथा कौन सी नई और चमत्कारपूर्ण संस्थाओं द्वारा वह इस उन्नतिको यथार्थ मार्गपर लेजा सकेगा, इस दुखमय संसारसे कितने दुखों और कुरीतियों और अत्याचारोंको दूर कर सकेगा—इन सब बातोंका सोचना कैसा सुन्दर और मनोहारी स्वप्न प्रतीत होता है। फिर भला इन आकांक्षाओंके साथ धन कुबेर होनेकी लालसा होना किसके लिये असंगत और भ्रममूलक हो सकता है।

हैनरी केवेण्डिश (Henry Cavendish) डेवनशायरके दूसरे ड्यूकका पोता अपने समयका बड़ा अमीर करोड़पती था। वह स्वभावसे बड़ा शरमीला और चुप्पा मनुष्य था जो स्त्रियों और अपरिचित पुरुषोंकी संगतसे ऐसा घबड़ा कर भागता था कि जैसे अचानक बनमें सूखे हुये पत्तोंकी खड़खड़ाहटसे खरगोश डर कर

भागता है। विद्वान तो वह था ही परन्तु उसकी चाल ढाल, रहन सहन और पोशाक ऐसी बेढंगी थी कि लोग उसे सनकी और सिड़ीके नामसे पुकारा करते थे। जहाँ कहीं उसकी किसी नये आदमीसे मुठभेड़ हो जाती थी वह उस जगहसे जान बचाकर ऐसा भागता था कि उससे फिर बात करना तो दूर रहा उसे एक मिनटके लिये रोक लेना भी असंभव था। ऐसे शर्मीले आदमीसे यह आशा करना कि वह किसी साधारणसे साधारण काममें लोगोंका साथ देगा, कोरी दुराशा ही थी।

केवेण्डिश इतना ज्यादा शरमीला और मनुष्य समाजसे दूर भागनेवाला मनुष्य था कि वह यह भी गवारा नहीं कर सकता था कि लोग उ का चित्र देखकर ही अपनी उत्सुकता दूर कर सकें। धन-कुबेर होनेपर भी रुपये पैसेसे उसे घृणा सी थी और वह उस चिरस्थायी और कभी न घटनेवाली, अनमोल सम्पत्ति—विद्या—का इतना प्रेमी था कि उसके प्राप्त करनेमें उसने अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया और सारे सभ्य संसारके हितके लिए अपनी यह सम्पत्ति चिरकालके लिए सौंप गया। उसका जीवन, उसका विचार और उसका प्रत्येक कार्य विज्ञानके लिए ही होता था; उसका जीवनोद्देश्य विज्ञान ही था। विज्ञानको ही उसने अपने सारे जीवनका लक्ष्य मानकर उसीकी खोज, प्रयोग और वृद्धिमें अपना तन मन धन सब समर्पण कर दिया। जीवन भर विज्ञानकी जुदे जुदे अंगोंकी वृद्धिकी चेष्टामें लगे रहकर उसने अपनी खोज विषयक कुल काग़ज़ इस प्रकार छिपाकर रख छोड़े कि जैसे कोई स्कूलका साधारण विद्यार्थी आवेगमें आकर पहिली बार लिखकर छिपाये रखता है। स्त्री और पुरुष दोनोंसे ही शरमके कारण दूर रहता हुआ केवेण्डिश निर्जन स्थानके एकान्तवासी योगीकी तरह अपना जीवन व्यतीत करता था। परन्तु इतनी अधिक चेष्टा करनेपर भी आज दिन उसकी उज्ज्वल कीर्ति सारे वैज्ञानिक संसारमें फैली हुई है।

केवेण्डिशका सारा चरित्र रहस्य पूर्ण है, उसका रहस्य बड़ा ही गुप्त और आकर्षक है। प्रायः सभी लोगों पर उसका रुआब जमा हुआ था, सभी लोग उससे डरते थे, पर सब उसका मज़ाक उड़ाया करते थे, उसे गलियोंमें निकलते समय सभी छेड़ा करते थे। यह सब होते हुये भी (Sir Humphry Davy) सर हम्फ़री डेवी केवेण्डिशको 'उस समयका सर्वोच्च विद्वान और तत्वज्ञानी' कहा करते थे। जो गिने चुने लोग उसको कुछ जानते थे उनका कहना है कि वह बड़ा कुशाग्र बुद्धिवाला मनुष्य था, न उसे अन्य मनुष्योंकी भांति किसीसे वैमनस्य था और न मैत्री थी; उसे न किसी पर खीझ थी और न दया ही; न किसी पर प्रेम था और न घृणा ही; गोया उसका हृदय इन सब मानवी विकारोंसे शून्य था, उसके छोटेसे दिमागमें न मालूम कितनी बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता भरी हुई थी। इस अद्भुत व्यक्तिके विषयमें इतना जान कर भी यही शंका रह जाती है कि संभवतः उसके मित्र उसके अथाह चरित्र सागरकी यथावत् थाह लेनेमें असमर्थ रहे और केवल एक ही ऐसा दूरदर्शी और उदार पुरुष है जिसने इसके चरित्रको वास्तवमें समझ पाया। इस विद्वानने केवेण्डिशके गुप्त लेखोंकी भाँति उसके चरित्रके गुप्त रहस्यका भी पता लगाया है, पर वह अपनी इस चेष्टामें कहाँ तक कृतकार्य हो सका यह बात हमें आगे चल कर मालूम हो सकेगी।

जब ८० बरसका बुड्ढा, शरमीला और एकान्तवासी करोड़पतीका लण्डनमें १८१० में स्वर्गवास हुआ, जब उसकी करोड़ों रुपयोंकी जायदाद और धन दौलत उसके सम्बन्धियोंने उसकी मौतपर एक आँसू गिराये बिना ही आ-

पसमें बाँट डाली और जब उसकी वैज्ञानिक खोज सम्बन्धी सारे कागज़ात बाँधकर ऐसी जगह रख दिये गये जहाँसे वह किसीको कोई हानि या कष्ट नहीं पहुंचा सकते थे, उस समय केवल (Sir John Barrow) सरजान बारो ही एक ऐसा पुरुष था जिसने इस विचित्र मनुष्य-की अनौखी चीज़ोंको बड़ी विचार पूर्ण दृष्टिसे देखना भालना प्रारम्भ किया और उसे एक अ-नौखी परन्तु दुख पूर्ण और हृदय विदारक घटनाको सूचित करनेवाली एक वस्तु मिली। एक अलमारीके ख़ानेमें बहुत गुप्त रीति से किसी स्त्रीके कुछ वस्त्र बड़ी होशयारी से सहेज कर रखे हुये थे इन वस्त्रोंमेंसे कईपर बड़े सुन्दर बेल बूटोंकी कामदार बेलों और कई एक के जवाहरातके सजावसे उस नारी रत्नकी उच्च स्थितिका पता चलता था; परन्तु इन व-स्त्रोंके देखनेसे ही मालूम हो जाता था कि न मालूम किस आनन्दपूर्ण और हृदयोल्लासके अवसरके वह स्मृतिचिन्ह थे, किस हृदयविदा-रक घटनाके समय किये हुये आत्मबलिदानकी वह सूचना दे रहे थे। तो क्या इस शरमीले करोड़-पतीके हृदयमें भी कभी प्रेमका अंकुर निकला था? क्या कभी तरुणावस्थाके प्रफुल्लित और आशा-पूर्ण हृदयमें प्रेम, आशा तथा आनन्दकी समीरने प्रवाहित होकर हृदय कुसुमको खिलाया था? क्या, मालूम होता है कि, दुर्दैवके निर्दयी हाथों द्वारा शीघ्र ही उसका हृदयकमल अर्धविकसित ही रहकर सदाके लिए मुर्झा कर सूख गया? यह बातें कहाँ तक सत्य हैं इसका पूरा रहस्य जानना कठिन-ही नहीं वरन् असंभव है; क्योंकि केवेण्डिशने कभी किसीको अपने हृदयका गुप्त भेद नहीं बतलाया। जिन थोड़ेसे लोगोंके साथ वह निर्भीक होकर उठता बैठता और मिलता जुलता था वह सब विद्याव्यसनी थे; इसलिए उनके साथ उसकी बात चीत सदा वैज्ञानिक विषयोंपर ही हुआ करती थी; परन्तु उस अलमारीमें मरतेदम तक इस प्रकार उस पवित्र स्मारकके गुप्त रखे हुये पाये जानेसे ही इस उदार पुरुषके हृदयकी सारी व्यथापूर्ण कहानी आप ही आप ज़ाहिर हो जाती है!

इसकी माता प्रायः रोगी रहा करती थीं, इसलिये वह अक्सर गरमियोंमें (Nice) नाइसमें रहकर अपने स्वास्थ्यकी रक्षा किया करती थीं, उन्हीं दिनों केवेण्डिशका जन्म हुआ। अपनी माताके इस दुलारे पुत्रको दो ही वर्षकी अवस्थामें मातृ प्रेमसे वञ्चित होना पड़ा। अस्तु पिताकी देख रेखमें ही इनका सारा बचपन गुज़रा। बालक केवेण्डिश पिताका दुलारा तो था ही, परन्तु फिर भी छोटी ही अवस्था से बड़ी गंभीर प्रकृति-का था। हर नई बातको देखकर उसका मर्म जाननेकी उत्सुकता उसे सदासे ही रही। 'क्यों' और 'कैसे' तो वह हर बातके साथ कहा करता था। ग्यारह वर्षकी अवस्था होनेपर उसे (Hackney) हेकनीके स्कूलमें भेज दिया गया। स्कूलमें अन्य बालकोंकी तरह केवेण्डिश भी विद्याध्ययन करता रहा, हाँ उसकी संकोचशीलताने यहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। १८ वर्षकी अवस्था होनेपर वह हाईस्कूलकी शिक्षा समाप्त कर चुका था और (Cambridge University) केम्ब्रिज विश्व-विद्यालयमें दाख़िल हो गया था। यहां पर वह तीन बरस तक बराबर पढ़ता रहा परन्तु उसे डिग्री नहीं मिली! कहा जाता है कि वह अपना समय विज्ञान और दर्शन शास्त्रों-के अध्ययनमें अधिक व्यतीत करता था, विश्व-विद्यालयकी शिक्षा संबन्धी अन्य विषयोंपर उसकी तबियत नहीं लगती थी, यही कारण था कि उसे डिग्री न मिल सकी। इस अवस्थापर केवेण्डिश न तो इतना शरमीला था और न इतना अमीर जितना कि वह आगे चलकर हो गया। इसका पिता बड़ा कंजूस था। जब यह अपने भाईके साथ पेरिसकी सैरको जाया करता

था तो बेचारेको बहुत कम ख़र्च मिलता था। सच बात तो यह है कि स्कूल और कालिजमें केवेण्डिश और दूसरे साधारण आदमियोंके लड़कोंमें ख़र्च करनेके हिसाबसे कोई भेद नहीं था। इसका पिता रोयल सोसाइटी (Royal Society) का मेम्बर था और उसीके कारण यह २२ या २३ वर्षकी अवस्थामें ही रोयल सोसाइटीके व्याख्यान और सभाओंमें शामिल होने लगा। इन सभाओंमें सम्मिलित होनेके लिये जब केवेण्डिश जाया करता था तो उसके पिता उसे सिर्फ़ उतना ही रुपया दिया करते थे जिससे वह होटलमें साधारण खाना खा सके। ऐसे अवसरपर भी उन्हे उसकी फ़िज़ूल ख़र्चोंका बड़ा ख़याल रहता था। इनके पिताकी इस कंजूसीका नतीजा यह हुआ कि केवेण्डिशको इस बातका अपने जीवनमें कभी ठीक विचार ही नहीं हुआ कि रुपयेकी क्या क़दर होनी चाहिये। वह यह जानता ही न था कि किस समय कितना रुपया ख़र्च किया जाता है, अपने ख़र्चका हिसाब रखना या करना उसे बड़ा तुच्छ और घृणित काम मालुम होता था। कभी कभी जब वह अपने संबन्धियोंके बच्चोंके नाम करण संस्कारके समय गिरजेमें मौजूद होता था और उस समय उसे बतलाया जाता था कि इस अवसरपर बच्चेकी दाई को पारितोषिक या इनाम देना आवश्यक होता है तो वह अपनी जेबमें हाथ डालकर मुट्ठी भर भर कर उन लोगोंको अशर्फ़ियां बांट दिया करता था। इच्छा होनेपर बिना गिने हुये ही वह मुट्ठी भर लोगोंको अशर्फ़ियां वग़ैरा दे दिया करता था, ऐसे अवसरों पर उसे यह विचार कभी न हुआ कि उसे गिनकर रुपया ख़र्च करना चाहिये। रुपये पैसेके लिये इतनी ? श्रद्धा उसी समयसे हो गई थी जब उसके पिताकी मृत्युके बाद वह उसकी सम्पत्तिका मालिक हुआ अथवा जब उसके एक चाचाकी सारी जायदाद उसे मिल गई थी। उसका रुपया बराबर बेङ्कमें जमा होता रहता था, पर उसका कितना और किस हिसाबसे सूद आता है तथा कितना रुपया किस बेङ्कमें जमा है, इन सब बातोंसे उसे कुछ भी मतलब न था। एक बार यह जानकर बेङ्कका एक साझेदार उसके पास मिलने गया, परन्तु जब उसने अपने जानेका कारण केवेण्डिशको बतलाया तो वह इतना अधिक सिटपिटाया कि उसे यही पूंछते बन पड़ा कि तुम्हें (बेङ्कके साझेदारको) इससे क्या मतलब है। इस पर उसने समझाकर कहा कि बेङ्कमें आपका बहुत सा रुपया जमा है और मैं उसके विषयमें आपके विचार जानने आया हूं। इस पर हमारे चरित्रनायकने उत्तर दिया कि अगर आपको रुपया रखनेसे तकलीफ़ होती है तो मैं उसका दूसरा प्रबन्ध कर दूंगा, पर आप मुझे रुपये के विषयमें कष्ट न दिया करें। इसपर साहूकारने सिटपिटाकर कहा कि हमें रुपया रखनेमें कोई कष्ट नहीं है, मैं केवल इसलिये आपको कष्ट देने केलिए आया हूं कि आप चाहें तो कुछ रुपया किसी उपयोगी काममें लगाकर उससे धन पैदा किया जा सकता है"।

केवेण्डिशने कहा, "अच्छा तो आप क्या करना चाहते हैं"।

साहूकारने उत्तर दिया कि मैं कमसे कम आधा रुपया व्यापारमें लगा देना चाहता हूं। केवेण्डिशने कहा, "अच्छा ! आपकी जैसी मर्जी हो, मुझे मंज़ूर है; पर अब आप मुझे इस बारेमें कष्ट देनेके लिये उपस्थित न हों, अन्यथा मुझे बाक़ी सब रुपया आपके पाससे मंगा लेना पड़ेगा।"

पाठकोंको इस साधारण घटनाके उल्लेखसे मालूम हो गया होगा कि केवेण्डिश रुपये पैसेकी कितनी कदर करता था, वह दिन प्रतिदिन धनी होता जाता था, परन्तु उसने कभी अपनी धन दौलतको काममें लाने तथा अपने

आराम और ठाट बाटके लिए उसका उपयोग करनेकी चेष्टा नहीं की। उसकी रहन सहन, भोजन और पहरावा इतना साधारण था कि उसे यदि विरक्त सन्यासी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। वह न केवल एकान्तवास ही पसन्द करता था वरन् अपनी इस अभिरुचिको पूरा करनेके लिए उसने आजन्म निर्विवाहित रहना पसन्द किया। उसके हृदयकी बातोंको जान लेना असम्भव था। वह इतना गंभीर रहता था कि उसके मरते दम तक कभी किसीको उसके हृदयका कोई भेद मालूम न हो पाया। उसने अपना सारा जीवन विद्याध्ययन और सत्यकी खोजमें लगा दिया। उसका मुख उदास रहता था और उसकी चाल ढालसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह कुछ सनकी भी अवश्य है। वह रोयल सोसाइटीको छोड़ और किसी सभा या संस्थामें नहीं जाता था। रोयल सोसाइटीमें पहुंच कर भी उसकी गम्भीरता और शरम उसका साथ नहीं छोड़ती थीं और वह सदा अपने परिचित साथियोंसे ही बात चीत किया करता था या कभी कभी सोसाइटीके सभापति सरजोसेफ़ बेंक्स Sir Joseph Banks के घर पर भी जाया करता था। हम अपने पाठकोंके मनोरंजनार्थ इस अद्भुत् महा-पुरुष के जीवनकी कुछ विचित्र घटनायें लिखना चाहते हैं जिनके पढ़नेसे पाठकों को विदित हो जायगा कि कुशाग्रबुद्धि होनेके साथ ही साथ केवेण्डिशके दिमाग़में सनक कहां तक असर कर गई थी।

कुछ बरसोंके उद्योगसे इन्हें मालूम हुआ कि इस भौतिक संसारमें बहुतसी शक्तियां निरन्तर और अपरिवर्तनशील होकर काम करती रहती हैं। इस सिद्धान्तके मालूम होते ही इन्होंने सारी भौतिक घटनाओं को कुछ थोड़ेसे साधारण नियमों पर अवलंबित कर डाला जिन्हें उन्होंने (Natural laws) प्राकृतिक सिद्धान्तोंके नामसे व्यक्त किया। कुछ लोगोंका कहना है कि इन सिद्धान्तोंकी सरलता और अटलता पर उसका विश्वास इतना बढ़ गया कि उसने अपने जीवन सम्बन्धी कार्य्योंमें इनका उपयोग करना प्रारंभ कर दिया। उसका भोजन इतना साधारण होता था कि उसमें उबाली हुई बकरीकी टांग और पीनेके लिये पानी ही पर्याप्त था। कुछ दिनों तक तो उसके भोजन आदि गृहकार्य्योंकी देख भाल जो नौकरानी किया करती थी, उसे वह अपने सामने बुला लिया करता था; परन्तु शीघ्र ही उसने इस स्त्रीसे भी बात चीत करना और उसे अपने सामने बुलाना छोड़ दिया। वह एक नियमित समय पर अपने भोजन आदिके विषयमें एक काग़ज़ पर अपनी आवश्यकतायें लिख दिया करता था और नियत समय पर उसे सब काम ठीक मिलता था। अब किसी नौकर या नौकरानीकी ज़रूरत नहीं होती थी। स्त्री जातिसे अलग रहनेकी उसकी सनक इतनी बढ़ गयी थी कि अगर ग़लतीसे कोई नौकरनी उसके सामने पड़ जाती तो वह तुरन्त पदच्युत कर दी जाती थी। केवेण्डिश जैसे जैसे बुड्ढा होता गया वैसे ही वैसे उसकी यह स्त्री जातिसे अलग रहनेकी आदत तथा उसकी गंभीरता और उदासी बढ़ती चली गई। जब वह रोयल सोसाइटीके प्रधान Sir Joseph Bunks के घर जाता था तो चोरकी तरह इधर उधर देखता हुआ बड़े चुपके चुपके कमरेमें घुसता था। ज़रासी आहट पाते ही वह सहम कर छिपनेके लिए इधर उधर कोनोंकी शरण लेता था। वैज्ञानिक और साहित्य विषयोंपर बात चीत करनेके सिवाय और कभी किसीसे वह किसी दूसरे विषयपर बात ही न करता था। एक बार वह अपने कुछ मित्रोंकी टोलीमें किसी वैज्ञानिक विषयपर बड़ी लालित्यके साथ भाषण कर रहा था कि इतनेमें ही एक अपरिचित वैज्ञानिक वहाँ आ पहुँचा। बस फिर

क्या था । केवेण्डिश आँख मिलते ही सुन्न पड़ गया और बिना एक भी शब्द बोले हुये बड़ी देर तक सिर झुकाये चुपचाप मूर्तिकी तरह खड़ा रहा। इसी प्रकार एक बार उसके मित्रोंने एक दिन उसे धोखा देकर एक आस्ट्रियन वैज्ञानिकसे उसका परिचय कराना चाहा। परिचय-सूचक शब्दोंके समाप्त होते ही केवेण्डिशको देखनेसे मालूम पड़ता था मानों वह जालमें फँसे हुये हिरनकी भाँति भाग निकलनेका अवसर ताक रहा हो और अन्तमें उसने ऐसा किया भी। लोगोंकी निगाह बचते ही वह चुपकेसे वहाँसे निकल भागा और फिर उसने घर पहुँच कर ही दम ली।

अब हम अपने पाठकोंको यह बतलाना चाहते हैं कि इस अद्भुत मनुष्यके इस विचित्र व्यवहार और शिष्टता पर भी अच्छे अच्छे वैज्ञानिक क्यों इसके पीछे पड़े रहते थे। ज़रा (Clapham Common) 'क्रैफ़मकामन' नामक इनके घरकी तरफ़ चलिये। यह बड़ा रमणीक परन्तु पुराना स्थान है, जिसमें तोड़ फोड़ कराके केवेण्डिशने अपनी प्रयोगशाला बना रखी थी। चारों तरफ़ काँचका सामान नये, नये औज़ार और रासायनिक पदार्थ मौजूद थे। घरके बाहर एक बड़ा तापमापक केवेण्डिशके हाथका बनाया हुआ लगा था। हर कमरेमें इसी तरह छोटे छोटे तापमापक मौजूद थे और छतों और अन्य खुले स्थानोंमें जहाँ तहाँ वर्षामापक (Raiu-ganuges) बने हुये थे। ड्राइङ्ग रूमको इन्होंने प्रयोगशाला बना रखा था। ऊपरके कमरोंमें वेधशाला (Observatory) थी तथा रसोई घरमें भट्टे बने हुये थे। मकानके पीछे बगीचेमें एक बड़े वृक्षके चारों तरफ़ मचान बना हुआ था जिस पर चढ़कर रातको यह आकाशके नक्षत्रोंकी सैर किया करता था।

केवेण्डिशकी खोज महत्ता जाननेके लिए यह आवश्यक है कि उस समयकी वैज्ञानिक स्थितिका पूरा पूरा हाल पहले पाठकोंको बतला दिया जाय। उस समय तक वैज्ञानिक खोजमें किसी प्रकारकी प्रभावशाली शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाई थी। कुछ लोगोंने बड़े ही अद्भुत और निर्मूल विचार फैला कर लोगोंको मोहमें डाल रखा था। इन लोगोंने जल, वायु पृथ्वी और अग्निको मूल पदार्थ मान रखा था। उन्होंने लोगोंको विश्वास दिला रखा था कि ग्रह और नक्षत्र न केवल मनुष्योंके समस्त जीवन पर प्रभाव डालते हैं बल्कि मनुष्यके शरीरके प्रत्येक अवयव पर उनका प्रभुत्व है। इनके विचारोंके अनुसार हृदयपर सूर्यका, मस्तिष्कपर चन्द्रमाका, यकृत पर बृहस्पतिका तिल्लीपर शनि तथा फेफड़ेपर बुधका अधिपत्य है। लोगोंके विचारमें सारे रोगोंकी ओषधि भी इन्हीं नक्षत्रोंके योग पर अवलंबित थी। इनके विचारानुसार जब तक ग्रह शुभ नहीं ओषधि या अन्य किसी उपचारसे कोई लाभ नहीं। केवेण्डिशने इन निर्मूल बातोंको इस प्रकार रद्द कर डाला जैसे घास खोदनेवाले घासके घने जंगलको काट कर साफ कर डालते हैं। इसी समय कुछ मछलियोंकी वैद्युतिक शक्तिके कौतूहल पूर्ण समाचार प्रकाशित हुए। केवेण्डिशने जो सदा जाँच पड़ताल करनेकी चेष्टामें लगा रहता था साधारण तथा पशु सम्बन्धी विद्युत्की विवेचना कर डाली, जिससे गैलवेनी और वोल्टाका* मार्ग सुगम होगया। विद्युत सम्बन्धी अनेक प्रयोग करनेपर केवेण्डिशने ही हमें पहले पहल यह बतलाया कि पानीके मुक़ाबिलेमें लोहेके तारकी विद्युत्-संचालन शक्ति ४० करोड़ गुनी अधिक है। जल और वायु संबन्धी जितने प्रयोग इन्होंने किये वह सब इनके समयके प्रचलित विचारोंको निर्मूल प्रमाणित करते हैं। उस समय हवाको तत्व माना जाता था।

* यह दो वैज्ञानिक थे, जिन्होंने बाटरीका आविष्कार किया।

परन्तु विज्ञानके चमत्कार द्वारा उस समय यह प्रमाणित हो चुका था कि वायुके कई भाग हैं जिनके जुदे जुदे गुण हैं। एक भागमें जलती हुई चीज़ बुझ जाती है। दूसरे भागमें जलती हुई चीज़ें अधिक वेग और प्रकाशसे जलती हैं। उस समय लोग जलनेका रासायनिक मर्म नहीं जानते थे। उनकी धारणा थी कि phlogiston नामक एक ऐसा पदार्थ है जो हर वस्तुमें मौजूद है। जब कोई चीज़ जलाई जाती है तो यह फ्लाजिस्टन स्फुरित होकर निकल जाता है।

केवेण्डिशने यद्यपि बहुत नीचे तथा ऊँचे तापक्रमोंकी काफ़ी जाँच की परन्तु वह इस फ्लाजिस्टन-वादका अनुयायी बना रहा। परन्तु इस एक भूलके कारण उसे कई भूलें करनी पड़ीं। पौधोंके उगनेके लिए प्रकाशकी आवश्यकता बतलानेवाला केवेण्डिश ही था, परन्तु इस सम्बन्धमें इनके सारे विचार निष्फल हुए, क्योंकि फ्लाजिस्टनके भूतने इन्हें इस विषयमें भी धोखा दिया। जब इन्होंने एक ऐसी गैस निकाली जो स्वयम् जल जाती थी तब उसको फ्लाजिस्टन-युक्त वायुका नाम दिया। इस समय और भी कई रासायनिकोंने इस गैसको ढूंढ लिया था, परन्तु उन्हें इसके गुण विशेष रूपसे मालूम नहीं थे। इन्होंने इस-को तोलकर मालूम कर लिया कि हवासे यह गैस दस हिस्से हलकी है। इसे भरकर हलकी वस्तुएँ हवामें उड़ायी जा सकती थीं। बस फिर क्या था, थोड़े ही दिनोंमें इनके मित्र डा० ब्लेक-ने गुब्बारा बना डाला। यह गुब्बारा बछड़ेकी झिल्लीका बना हुआ था और इसमें यही गैस जिसे अब हम उज्जन (Hydrogen) कहते हैं भरी हुई थी। पहिले प्रयोगमें इस गैससे भर कर केवेण्डिशकी खानेकी मेज पर उड़ाया गया तो वह आसानीसे छत तक जा पहुँचा। इस प्रयोगके १२ बरस बाद पैरिसमें पहिली बार गुब्बारा बना कर उड़ाया गया। अस्तु आजकलके विमानोंके जन्मदाता तथा विमानों-की गति सम्बन्धी वायुके अनेकों अवस्थाओं-का ज्ञान प्राप्त करनेवाले पथ प्रदर्शक हैनरी केवेण्डिश ही थे। परन्तु इन्होंने इस विषयके अपने प्रयोग प्रकाशित नहीं किये, क्योंकि इन्हें मालूम था कि इनके मित्र डाक्टर ब्लैक भी इसी विषयके प्रयोग कर रहे थे।

Black ने कर्बन द्विओषिद गैसका पता लगाया, पर केवेण्डिशने इसे तौल कर इसके अन्य गुणोंकी जाँच की। इन्होंने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि इस गैसमें न तो कोई जलती हुई चीज़ रह सकती है और न कोई जीव जन्तु रह सकता है। हमारी प्रत्येक निश्वास-के साथ हमारे फेफड़ोंमेंसे यही गैस निकलती है। तथा यह गैस हानिकारक है और जीवनके लिए ताज़ा हवाकी बड़ी आवश्यकता है। अस्तु ताज़ा हवाके परमावश्यक प्रयोगका पहला प्रचार करनेवाला हैनरी केवेण्डिश था।

वायु सम्बन्धी प्रयोगोंके साथ ही साथ इन्होंने भिन्न भिन्न स्थानोंकी वायु इकट्ठी कर उसकी जाँच कर डाली और लोगोंको बतलाया कि किस स्थानकी वायु स्वास्थ्यके लिए उप-योगी तथा कहाँकी वायु हानिप्रद है। इसके बाद इन्होंने हाइड्रोजन और ओषजनको मिलाकर विद्युत् द्वारा इस मिश्रणमें आग लगा दी। छह बार प्रयोग करनेके बाद इन्होंने देखा कि काँचके बरतनकी दीवारोंपर जिसमें यह गैसें बन्द थीं जल कणसे प्रतीत होते हैं और बरतन जलीयवाष्पसे भरा हुआ है। इसकी जाँच करने-पर यह द्रव पानी निकला। संसारके इतिहास-में यह पहिला ही अवसर था कि कृत्रिम रीति-से इस प्रकार पानी बनाया गया हो। इस काँचके बरतनमें पानीके अतिरिक्त कुछ नत्रि-काम्ल भी मिला। यह अम्ल विद्युत द्वारा वायुमें से बना था। आजकल वायुमेंसे इस अम्लको

इसी प्रकार प्राप्त कर खेतोंमें उपज बढ़ाने के लिये कृत्रिम खाद तैयार की जाती है।

इन प्रयोगोंके अतिरिक्त सबसे अधिक प्रभावशाली इनका वह प्रयोग था जिसके द्वारा इन्होंने पृथ्वीका घनत्व निकाल लिया। इस बार भी इस प्रयोगके लिये इन्होंने सारे यंत्र अपने ही हाथसे बनाये थे। इस प्रयोगका विस्तृत वर्णन न कर हम पाठकोंको इसका सिद्धान्त समझानेकी चेष्टा करेंगे। "विज्ञान"के पाठक जानते ही हैं कि इस पृथ्वीपरकी प्रत्येक वस्तु दूसरीको आकर्षित करती है। इस आकर्षणकी शक्ति आकर्षित पदार्थोंके परिमाण तथा उनके अन्तर-स्थान पर निर्भर होती है। जिस प्रकार चुम्बक और लोहेकी कीलका आकर्षण होता है उसी प्रकार जो वस्तु पृथ्वीके केन्द्रके पास होती है उसपर वह आकर्षण शक्ति अधिक और जो केन्द्रसे परे होती है, उस पर कम प्रभाव डाल सकती है। यदि हम एक तराजूके दो पलड़े ठीक बराबर आकार और भारके लें और उन्हें डंडीसे लटका कर उठावें तो हम देखते हैं कि वह पृथ्वीसे बराबर दूरी पर तुल रहेंगे। यदि इस तराजूके एक पलड़ेके नीचे एक सीसेकी गोली जमीन पर रख दी जावे तो हम देखेंगे कि वह पलड़ा लटक पड़ेगा। बस संक्षेपमें इस प्रसिद्ध प्रयोगका यही सिद्धान्त है। इस तराजूके पलड़ेके लटक जानेसे तराजूकी डंडी कितने कोण पर घूम जावेगी इसीका हिसाब लगाकर केवेण्डिशने पृथ्वीका घनत्व नाप डाला। इस प्रयोगसे उसने यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी उसके आकारके पानीके पिण्डसे ५½ गुनी अधिक भारी है।

लण्डनकी डीनस्ट्रीटमें केवेण्डिशने एक बहुत उत्तम वैज्ञानिक पुस्तकालय स्थापित किया, जिसमें सब लोग जाकर पुस्तकाध्ययन कर सकते थे। इस पुस्तकालयसे पुस्तकें लेते समय केवेण्डिश साधारण पाठकोंकी भाँति रसीद लिख दिया करता था, वह यह कभी नहीं प्रकट करना चाहता था कि वही उस पुस्तकालयका मालिक था। केवेण्डिश प्रायः बहुत ही कम अपने उत्तराधिकारीको अपने संमुख आने देता था। अन्त समय भी उसने अपने नौकरको आज्ञा दी कि उनके मरनेके पश्चात् उसे बुलाया जाय। अस्तु नौकरको भी बाहर भेजकर यह ८० बरसका सनकी बूढ़ा अकेला अपने अन्त समयकी प्रतीक्षा करने लगा। जब नौकर कमरेमें वापिस आया तो उसने अपने स्वामीको काल-निद्रामें अचेत पाया।

यह शरमीला करोड़पती आधुनिक रसायन शास्त्रका जन्मदाता कहा जाता है। इसने वायुके अवयवोंका परिमाण ढूँढ निकाला, जलके गुण तथा उसकी प्रकृतिका पता लगाया और उसके अवयवोंको मिलाकर उसे रासायनिक रीतिसे बना डाला, अथवा संक्षेपतः जल वायु अग्नि तथा पृथ्वीके रासायनिक ज्ञानका पथ प्रदर्शित किया। विज्ञानकी इस उन्नतिके लिए संसार सदा सर्वदा इस महा पुरुषका ऋणी रहेगा।

— शालग्राम वर्मा, B. Sc.

चायका प्याला

क्या क़हवा और कोको इसका मुक़ाबला कर सकते हैं?

[ले०—प्रो० मनोहरलाल भार्गव, एम० ए०]

चायका प्रचार भारतवर्षमें गत ५० वर्षोंमें बहुत फैल गया है और बड़ी तेज़ीसे फैलता चला जा रहा है। बम्बई प्रान्तमें तो चाय ख़ातिर तवाज़ाकी एक मामूली चीज़ समझी जाती है। आप दिनमें दस मित्रोंसे

उनके घरपर मिलने जायं तो दसों जगह आपको

चाय भेट की जायगी। कुछ अंग्रेज़ी पढ़े नकलची भी यूरोपियनोंकी नाईं मित्रोंको टी-पारटी देना सौजन्य और सभ्यताका मुख्य अंग समझने लगे हैं। जहां दरिद्र भारतको शादी विवाह आदि उत्सवोंपर व्यर्थ व्यय न करनेका अङ्गरेज़ीदां उपदेश दिया करते हैं, तहां यह कभी सुनाई न पड़ा कि चाय आदि फिजूलियातमें, अपव्यय रोकनेकी चेष्टा की जाती है। दस पांच बरसमें समस्त सम्बन्धियोंको बुला कर एक भोज दे देना मेरी समझमें तो इससे अच्छा है कि आये दिन चाय पानीमें केवल फैशनकी धुनमें रुपया ख़राब किया जाय। इस विषयकी चर्चा हम समाज-सुधारकोंके लिए छोड़ते हैं, हम तो अपना वैज्ञानिक वीणा छेड़ते हैं और निष्पक्ष भावसे उसके सुरका ठीक ठीक पता चलानेका प्रयत्न करते हैं।

चायके अवयव

चायमें मुख्य दो पदार्थ पाये जाते हैं और वह हैं टेनिन अथवा टैनिक एसिड और केफिइन अथवा थीइन (कहवाइन)।

केफिइन एक सफेद रवेदार पदार्थ होता है। इसके रवे लम्बे सुईके आकारके होते हैं जो २२५° श पर पिघलते हैं। इससे अधिक गर्मी पाकर यह पदार्थ उड़ जाता है। इसका स्वाद कड़वा होता है। यह ठंडे पानी और मद्यसार (अलकोहल) में कम घुलता है। यह एक प्रकारका क्षार है।

टैनिक एसिड बेरवा सफेद बुकनी होती है, जो पानीमें सुगमतासे घुल जाती है। उसका स्वाद कसैला होता है।

टेनिकाम्लसे पाचक यंत्रको हानि

जो खाना हम खाते हैं वह आमाशय (पेट) और आंतोंमें पचता है। उसका कुछ सार तो आमाशयकी त्वचा शोषण कर लेती है और कुछ आंतोंमें पहुंचकर उसकी दीवारों (खाल) में होकर शरीरका पोषण और पुष्टि करता है। टेनिन अथवा टेनिकाम्ल आमाशय और आंतोंकी दीवालोंमें होकर शरीरमें प्रवेश नहीं करती। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि शरीर उसे अङ्गीकार नहीं करता। इसीसे वातसंस्थान पर उसका प्रभाव भी नहीं पड़ता। जो कुछ उसका प्रभाव होता है वह केवल स्थान विशेषपर स्पर्शके कारण होता है। थोड़ी सी फिटकरी पानीमें घोलकर कुल्ली कीजिये। मुंहकी क्या दशा हो जाती है? मुंह जकड़ा सा प्रतीत होता है, कुछ खुश्की भी मालूम पड़ती है। यही सब कसैले पदार्थोंका गुण है, यही कसैले शब्दका अर्थ है। टेनिन एक कसैला पदार्थ है, इसके मुंहमें अथवा शरीरके अन्य भागोंमें प्रवेश करनेसे उस भाग विशेषकी त्वक्‌पर ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। पेटकी झिल्लीपर तो मार्केका असर पड़ता है। इसी कारण वह पाचन क्रिया (रसोंके शोषण) में बाधा डालती है। टेनिक एसिड चमड़ेके कमानेके काम आती है, इसके प्रभावसे चमड़ा कड़ा और देरपा हो जाता है। पेटमें पहुंचकर टेनिक एसिड पेटकी झिल्ली और खाये हुए पदार्थोंको चिमड़ा बनाने लग जाती है। इस कारण न तो खाये हुए पदार्थ सहजमें ही पचते हैं और न पेटकी झिल्ली उनके रसोंको सहजमें ही ग्रहण करने योग्य रहती है। जो टेनिन पेटमें से निकलकर आंत में पहुंच जाती है वह वहां भी ऐसीही क्रिया कर झिल्लीको निष्क्रय कर देती है। टेनिन खानेके बाद शरीरको झिल्लियोंको पुनः चेतन करनेमें प्रयास करना पड़ता है। और कुछ समय पीछे वह फिर साधारण अवस्थामें आ जाती है।

सारांश यह है कि टेनिनका पाचन क्रियापर बुरा प्रभाव पड़ता है।

केफिइन (कहवाइन) का गुण

कहवाइन एक प्रकारका उत्तेजक है। यह केवल उत्तेजक ही है, मादक नहीं है। स्मरण

रखना चाहिये कि जितने मादक हैं, वह सब थोड़ी मात्रामें उत्तेजकका काम देते हैं, पर उनका प्रभाव घटनेपर बड़ी दुर्बलता और ग्लानिका अनुभव होता है। अधिक मात्रामें वह चैतन्यताको हर लेते हैं और बहुत अधिक मात्रामें संघातक होते हैं। कहवाइनकी क्रिया इन मादकोंसे बिलकुल भिन्न होती है। वह उत्तेजक तो है, परन्तु उसका प्रभाव कम होनेपर ग्लानि और दुर्बलताका अनुभव नहीं होता। आज तक किसी प्रयोगकर्ताने यह सिद्ध नहीं कर पाया है कि मादकोंकी नाईं कहवाइन भी अत्यधिक मात्रामें देनेसे संघातक होती है। इसी कारण कहवाइनको शुद्ध उत्तेजक कहते हैं। वास्तवमें अब वह समय आगया है कि हमें उत्तेजक शब्दका बड़ी सावधानीसे प्रयोग करना चाहिये।

कुछ औषधोंके ज्ञाता अब भी ऐसे मिलते हैं जो केफिइन और मद्यसारको एकही श्रेणीमें रखते हैं, परन्तु यह उनकी हठधर्मी है। मान भी लिया जाय कि दोनों उत्तेजक हैं, तथापि जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, दोनोंके प्रभावोंमें महदन्तर है। इन हठ धर्मियोंसे यदि यह पूछा जाय कि कहवाइनकी घातकमात्रा कितनी है,* उसका प्रयोग अफीम अथवा अफीम-सार (morphine) द्वारा शरीरके विषाक्त होजानेपर क्यों किया जाता है तो वह चुप रह जाते हैं। वास्तवमें इन दोनों विषोंसे बिलकुल उलटा प्रभाव कहवाइनका शरीरपर होता है और इसीलिए इनके खाजानेपर उसका प्रयोग करते हैं।

आठ दस वर्ष हुए मदिराके मतवालोंने यह प्रसिद्ध करना आरम्भ कर दिया था कि चाय और कहवा बड़ी हानिकारक चीज़ें हैं और जो इनका सेवन करता है, उसे मद्यके विरोधमें कुछ कहनेका अधिकार नहीं है। इन्हीं महापुरुषोंके मस्तिष्ककी उपज थीइस्म और केफिइस्म शब्द थे, जो उन रोगोंके द्योतक थे जो चाय और कहवाके निरन्तर सेवनसे उत्पन्न हो जाते हैं। नाममें एक अद्भुत जादू होता है, नाम ले देना व्याख्या करनेके तुल्य समझा जाता है। नाम लेदेना इस बातका प्रमाण समझा जाता है कि नामी वास्तवमें पाया जाता है, वह केवल कल्पनाजन्य नहीं है। यही नामका जादू है, जिसका महात्म्य तुलसीने खूब गाया है।

प्रमाणका अभाव

उपर्युक्त श्रेणीके विद्वानोंको अपने कथनकी पुष्टिमें यह दिखलाना उचित था कि "(१) कहवाइनकी घातकमात्रा इतनी होती है, (२) इसके प्रभावसे तन्तुओंपर अमुक रीतिसे बुरा प्रभाव पड़ता है, (३) इसके सेवनसे अमुक अमुक कुलक्षण उत्पन्न होते हैं, (४) इसका सेवन करनेसे अमुक अमुक मनुष्योंकी मृत्यु हुई अथवा अमुक मनुष्यने उसके नशेमें अमुक पाप किया ; इत्यादि। और कुछ न होता तो इतना ही बतलाते कि सूक्ष्मदर्शकयंत्र द्वारा तन्तुओंपर इसकी क्रियाकी जांच की और इतनी देर तक निरीक्षण करनेसे इतना परिवर्तन दिखाई पड़ा।

इन सब प्रमाणोंके अभावमें हम कदापि उनके कथनको नहीं मान सकते। शोक इतना ही है कि बाज़ बाज़ वैज्ञानिक इस अवैज्ञानिक रीतिका अवलम्बन कर मनमाने सिद्धान्त रच डालते हैं और वैज्ञानिक पद्धतिको कलंकित करते हैं। कुछ दिन हुए ब्रिटिश भिषक् परिषद् (British Medical Association) के सभापतिने अपने जीवनके महामहत्वपूर्ण अवसरपर भी यह कह डाला कि चाय (कहवाइनका अंश जिसमें रहता है) हानिकारक और मद्यसार लाभप्रद होता है।

कहवाइनकी श्रेष्ठता

हम ऊपर बतला चुके हैं कि कहवाइन

---

* जितनी मात्राके खानेसे आदमी मर जाता है, वह घातकमात्रा कही जाती है।

अत्यन्त शुद्ध उत्तेजक है और वह अफीम और शराब जैसे मादकोंके बहुत अधिक पी जानेसे जो भयानक अवस्था आदमीकी हो जाती है और जिसमें मरनेका भय रहता उसमें प्रतिविषका काम देती है अर्थात् इलाजमें काम आती है। इसकी क्रिया स्ट्रिकनीन जैसे उत्तेजकसे भी बिलकुल भिन्न है। वातसंस्थानके निचले भागमेंके गतिकेन्द्रों (जिनके द्वारा गति उत्पन्न होती है) और विशेषतः रीढ़के गतिकेन्द्रों पर स्ट्रिकनीनका आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ता है। श्वासोच्छ्वास, सांसके आने जाने, पर इसका बड़ा गहरा असर पड़ता है। श्वासकी गति बढ़ा देनेसे, मस्तिष्कको पर्याप्त ओषजन पहुंचा कर, उसके कार्यमें स्ट्रिकनीन सहायक हो सकती है, परन्तु कहवाइनका प्रभाव स्वयम् मस्तिष्कपर ही पड़ता है। वह मस्तिष्कके सर्वोच्च क्षेत्रको उत्तेजित कर देती है और रीढ़पर किसी प्रकारका असर नहीं डालती। यही कहवाइनका सबसे बड़ा गुण है। इसके साथ ही साथ पीछेसे इसका कोई बुरा असर किसी अंगपर नहीं पड़ता।

कहवाइन और नींद

जो द्रव्य मस्तिष्कके सर्वोच्च भाग को प्रभावित करता है, वह स्वभावतः जागने और सोनेसे सम्बन्ध रखता है। कहवाइनके विषयमें भी यह सत्य है। स्ट्रिकनीनको सोते समय देनेमें कोई डाक्टर नहीं हिचकता। पर कहवाइनकी बात ही निराली है। यह तो तभी दी जाती है जब मरीज़को सोने न देना उचित समझा जाता है। जब कोई मनुष्य अफीम मोरफीन या लौडेनम खा जाता है और विष उसके दिमाग़ पर असर पैदा करके बेहोशी लाता है, तब चाय अथवा कहवाइन खिलाई जाती है। यह एक दम मस्तिष्कको उत्तेजित कर विषका रंग नहीं जमने देती।

जागरणमें कहवाइनका प्रयोग

मनुष्यको वैसे भी बहुत से मौके आ जाते हैं, जब जागरण करनेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसे मौकोंपर कहवाइनका प्रयोग करना उचित है, क्योंकि इसके बलसे आदमी जागता रह सकता है और बादमें उसे कुछ हानि भी नहीं उठानी पड़ती।

एक डाक्टर महोदयने लगातार कई हफ़्ते १५, १५ ग्रेन कहवाइन सिटरेट खाकर रातको सोना बहुत कम कर दिया, पर कहवाइनका प्रयोग बन्द करनेके बाद उनको किसी प्रकारका कष्ट उठाना नहीं पड़ा। आशा तो यही की जाती थी कि बादमें बदनका टूटना, मस्तिष्कका ठीक काम न करना आदि कष्ट झेलने पड़ेंगे, परन्तु वह उतने ही स्वस्थ और सुखी रहे जितने पहले थे। इससे यह ज्ञान पड़ता है कि सम्भवतः कहवाइन श्रमजनित-पदार्थों (श्रम करनेसे जो शरीरमें मल उत्पन्न हो जाता है) का नाश करने अथवा उनको बाहर निकाल देनेमें अत्यन्त उपयोगी है और यही कारण है कि इसका सेवन करनेसे नींदकी कम आवश्यकता रहती है। [स्मरण रहे कि नींदका कारण यही श्रमजनित पदार्थ हैं, इनके बाहर निकाल देनेके लिए और श्रमोत्पन्न क्षतिको पूरा करनेके लिए ही शरीर सोता है।]

चाय क्यों पीते हैं ?

चायके दो मुख्य घटकोंके गुण दोष जान लेनेके बाद यह स्पष्ट हो जायगा कि तम्बाकूको छोड़ इस ओषधिका ही संसारमें सबसे अधिक सेवन क्यों होता है ? चाय पीनेवालेको केवल कहवाइनसे काम है, नकि टेनिन से।

चाय किस प्रकार बनानी चाहिये ?

चाय बनानेमें यदि किसी युक्तिसे हम उसमें की कहवाइनको निकाल सकें और टेनिनको पत्तियोंकी पत्तियोंमें ही छोड़ सकें तो चाय पीनेसे बहुत फायदा उठा सकते हैं।

पानी—चाय बनानेके लिए बहता हुआ पानी, नदी या चश्मेका, अच्छा होता है। कुएंका पानी, चीनवालोंका कहना है कि सबसे खराब होता है। आशय यह है कि पानीमें हवाकी अच्छी मात्रा घुली हुई होनी चाहिये। इसी कारण चायका पानी इतना गरम करना चाहिये कि उबलना आरम्भ ही होने पाये, नहीं तो घुली हुई हवा सब निकल जायगी और फिर वैसी ही चाय बनेगी जैसी कुएके पानीसे बनती।

दूसरी बात इस सम्बन्ध में याद रखनेकी यह है कि पानी पथरीला न हो। जिस पानीमें स्रवन (टपके हुए) पानीकी अपेक्षा झाग पैदा कर देनेके लिए अधिक साबुन चाहिये, उसे पथरीला पानी कहते हैं; क्योंकि चूना और मग्नीसियमके यौगिक जो पत्थरों, बालू और कंकड़ोंमें रहते हैं उनके घुलनेसे यह गुण पैदा होता है। यदि पथरीला पानी ही मिले तो उसमें एक चुटकी सोडा छोड़ देना चाहिये।

बर्तन—चाय बनानेके बर्तनको पहले गरम पानीसे धो लेना चाहिये। ऐसा न करनेसे पानी डालते ही, कुछ ठंडा हो जायगा और खुशबूदार चाय न बनेगी। बात यह है कि लगभग पानीके खौलनेके तापक्रमपर पत्तीके वह उड़नशील घटक निकलते हैं, जिनकी बदौलत चायमें महक या सुगन्ध रहती है।

समय—पत्तियां पानीमें ४ मिनटसे अधिक न रहने देनी चाहियें। इससे अधिक समय तक पत्तियां यदि पानीमें पड़ी रहें तो टैनिक एसिड अधिक मात्रामें खिंच आयगी और उसके साथ साथ अन्य कड़वे घटक भी पानीमें उतर आयंगे और चायका मज़ा बिगाड़ देंगे। दूसरे यदि अधिक देर लगेगी तो चायकी महक भी कम हो जायगी, क्योंकि उड़नशील पदार्थ उड़ जायंगे। पांच मिनटमें ही चाय छानकर दूसरे गरम बर्तनमें डाल देनी चाहिये।

दूध—चायके साथ दूधका अवश्य सेवन करना चाहिये। ऐसा करनेसे टैनिक एसिडका बहुत कुछ अंश ऐसे रूपमें परिणत हो जाता है कि हानि नहीं पहुंचाता। दूसरे दूध पुष्टिकारक पदार्थ है।

दूसरी बार पानी डालकर चाय न बनानी चाहिये, क्योंकि असली तत्व एक बारमें ही खिंच आता है।

चाय पीनेसे क्यों लाभ होता है?

किसी भी गरम द्रव्यकी गरमीसे बाहरसे सेक करनेसे शरीरको सुख मिलता है और दुख दूर होता है। कई मरज़ोंमें पानी आदि द्रव्योंसे सिकाई की जाती है। जब गरम द्रव्यका सेवन किया जाता है तो भीतरके अंगोंकी सिकाई होती है और उससे बहुत फायदा होता है। सच पूछिये तो प्रायः चाय पीनेसे जो लाभ होता है वह निरे गरम पानीके पीनेसे भी हो सकता है। यह भी संभव है कि चाय पीनेकी लत इस कारणसे नहीं पड़ती कि बहुत कुछ लाभ तो गरम पानीसे ही होता है और प्रायः इसीलिये चायकी मात्रा उसका प्रभाव पैदा करते रहनेके लिये, लगातार बढ़ानी नहीं पड़ती। पानीमें अन्य द्रवोंकी अपेक्षा गरमी ज्यादा रहती है। यह जब हृत्पिण्ड और वात-गंड (nerve ganglia) के पास पहुंचकर गरमी निकालता है तो वास्तविक लाभ होता है। बहुत से आदमियोंने निरा गरम पानी भी पीना सीख लिया है और उनका अनुभव है कि यह बहुत गुणकारी अभ्यास है, परन्तु अधिकांश मनुष्य गरम पानी नहीं पी सकते। यहीं चाय और कौफीकी महक अपनी उपयोगिता दिखलाती है। उनका प्रभाव स्वाद और गंधकी नाड़ियोंपर पड़ता है, जिनका आमाशयकी क्रियासे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार चाय और कौफीकी महककी कृपासे गरम पानीका प्रयोग करना संभव हो जाता है।

गरमी और पानीका प्रयोग वातसंस्थान-

तथा पाचन संबन्धी अनेक अवस्थाओंमें किया जाता है। इस बातका ध्यान रखते हुए हमें साधारण खाने पीने इत्यादिके नियमोंका विचार बड़ी सावधानीसे करना चाहिये।

पानी और उसकी गरमीके अलावा चाय और कौफीमेंकी कह्वाइन* भी फायदा करती है इसके गुणों की विवेचना हम पहले ही कर चुके हैं। यहां हम पाठकोंको दुबारा समझाये देते हैं कि चायकी केवल कहवाइनसे हमें काम है, टेनिनसे नहीं। इसीलिए चाय बड़ी सावधानीसे बनानी चाहिये। काढ़ा दो या तीन मिनटमें ही तय्यार हो जाय, नहीं तो टेनिन भी उतर आयगी और जितनी देर तक पत्तियां पानीमें रहेंगी उतनी ही अधिक मात्रा टेनिनकी उतरेगी।

यदि चायकी कहवाइन निकालनेके लिए यह आवश्यक होता कि उसमें की सब टेनिन निकल आवे तब तो दूसरी बात थी, पर प्रकृतिने ऐसा सुप्रबन्ध किया है कि अधिकांश कहवाइन फौरन दो तीन मिनटमें ही निकल आती है, फिर घंटों पत्तियोंको गरम पानीमें डाले रखना या दिन भर चायदानको चूल्हेपर चढ़ाये रखना निरी मूर्खता है।

चायके शौकीन सावधान

आज कल चायके शौकीन निरे चायके नाम पर मरते हैं, वह इस लेखको पढ़कर जान गये होंगे कि वास्तवमें वह चमारिन (टेनिन) का चरणामृत पी पीकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। वह असली गङ्गाजलके धोखे नरकका रसास्वादन करते हैं। उन्हें उचित है कि बाज़ारमें जो हण्डे लिए फिरते हैं उनसे चाय लेकर पीनेकी आज कसम खायें और जब पियें तो इस लेखमें बतलाई हुई विधिसे तय्यार करके पियें।

वैसे तो चीनी चाय जहां तक हो सके काममें लानी चाहिये क्योंकि उसमें टेनिनका कम अंश रहता है, पर चाय बनानेमें सावधानी की जाय तो कैसी भी पत्ती ले सकते हैं, क्योंकि विचार तो काढ़ेका है न कि पत्तीके घटकोंका। प्रायः चायके एक प्यालेमें कहवाइनका एक ग्रेन रहता है।

चाय किसे न पीनी चाहिये

ऊपर बतलाई हुई विधिसे बनायी गई चाय स्वादिष्ट होती है। उसका गरम पानी और घुली हुई कहवाइन अत्यन्त शुद्ध उत्तेजक हैं, इसी कारण चाय फरहतबख़्श चीज़ है। वह पाचनशक्तिको बिगाड़ नहीं सकती पर कभी कभी शकर डालनेसे वह नुक़सान कर जाती है। इसलिए सिवाय उन लोगोंके जिन्हें नींद नहीं आती, किसीको चाय न पीनेका उपदेश देना अनावश्यक और अनुचित प्रतीत होता है। यदि हानि होती है तो टेनिनसे, जो केवल फूहड़पनेसे बनाई हुई चायमें रहती है। अतएव निष्पक्ष और धर्म-संगत रीतिसे यह कह सकते हैं कि यह "वह प्याला है जो सुख देता है पर हानि नहीं करता"

चाय और कहवा

कहवाकी महक चायसे भी अधिक सुहावनी और सौंधी होती है। यह सुगन्ध एक उड़न शील तेलके कारण होती है जिसे कैफिओल कहते हैं। यह इतना स्वादिष्ट नहीं होता, वरन् उत्तेजक होता है। पर कुछ मनुष्योंके वातमंडलपर यह बुरा असर डालता है और उन्हें कब्ज़ करने लगता है। इस तेलकी क्रिया टेनिनसे बहुत भिन्न है। टेनिन सभीको नुकसान पहुंचाती है, पर (कौफी) कहवा इने गिने आदमियोंको ही।

कितने ही बुरे तरीकेसे कहवा क्यों न बनाई जाय उसमें टेनिन तो बिलकुल नहीं रहती, पर चायकी अपेक्षा कहवाइन अधिक रहती है। एक प्यालेमें प्रायः ३ ग्रेन कहवाइन रहती है।

---

*यह पदार्थ दोनोंमें पाया जाता है, इस लिए इसके दो नाम हैं—थीइन और केफिइन।

अभी तक यह प्रश्न हल नहीं हुआ है कि इतनी अधिक मात्रामें मुद्दतों कहवाइनका प्रयोग करते रहनेसे अन्तमें शरीरपर क्या प्रभाव होगा। अतएव यह कहना कठिन है कि कहवाके प्रयोग-से बिल्कुल नुकसान नहीं होता। हां यदि तीन बट दूध और एक बट कहवाका प्रयोग किया जाय तो एक प्यालेमें एक ग्रेन कहवाइन जायगी, जो उसी मात्रामें होगी जितनी चाय-में रहती है।

कहवा बनानेकी विधि

अच्छी कहवा बनानेके लिए उसकी काफी मिक़दार लेनी चाहिये। उसे उसी दिन भूनना चाहिये जिस दिन कि काममें लाना हो। काढ़ा बनानेकी वही विधि है जो चायके सम्बन्धमें बतला चुके हैं। काढ़ा मिट्टीके बर्तनमें बनाना चाहिये। छानना इसलिये अनावश्यक है कि थोड़ी देरमें ही कहवा नीचे बैठ जाती है। कहवा यदि कम पी जाय और उसमें दूध मिलाया जाय तो कहवाइन तो उतनी ही पीनेमें आती है जितनी चायमें, परन्तु इसमें कैफि-ओल एक ऐसी चीज़ रहती है जिसे उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखना चाहिये। जितने उड़न शील अर्क, तेल या रूह हैं वह वृक्क (गुरदे) को हानि पहुंचाते हैं; यदि उनका बहुत दिनों तक निरन्तर सेवन होता रहे। क्योंकि गुरदे पर ही उनको शरीर के बाहर निकालनेका भार पड़ता है।

यहां भी हमें अपनी अक़ल और तजुर्बेसे काम लेना चाहिये। जहां हाज़मे या सोनेमें किसी तरहकी गड़बड़ मालूम हो, वहां फौरन चाय या कहवाका सेवन बन्द करदेना चाहिये। स्मरण रखना चाहिये कि चाय और कहवा निरी औषध हैं, उनका खाद्य-मूल्य (खाद्यके नाते उपयोगिता अर्थात् शरीर निर्माण शक्ति) कुछ भी नहीं है। चाहें जितनी वह स्वादिष्ट हों, चाहें जितनी वह निर्दोष हों, वास्तवमें हैं औषध और अनावश्यक। अतएव यदि उनका शौक़ किया जाय तो बहुत समझ बूझकर। लेखकका तो यह विचार है कि ऐसे अनावश्यक पदार्थोंके सेवनका अभ्यास डालना बुद्धिमत्ता-के विरुद्ध है। मनुष्यको स्वतंत्र रहना चाहिये। और जहां तक हो सके इल्लतोंसे—अनावश्यक अभ्यासोंसे—बचना चाहिये।

चायकी टैनिनसे और कहवाकी कैफिओलसे डरते रहना चाहिये दोनों कहवाइनसे भी डरते रहना चाहिये, विशेषतः जब सोनेमें उसके से-वनसे कोई उपद्रव खड़ा होजाय। बाज़े लोग तो इतनी मूर्खता करते हैं कि उधर तो निद्रा-वहों (नींद लानेवाले पदार्थ) का सेवन करते जाते हैं और इधर चाय या कहवाके प्याले पर प्याले चढ़ाते जाते हैं। वस्तुतः उनकी बुद्धिकी बलिहारी है। ऐसे मनुष्य यूरोपमें बहुतसे मिलते हैं, पर भारतमें भी अब कुछ नमूने दि-खाई देने लगे हैं। यदि उन्हें चाय या कहवाकी चाट पड़ गयी है तो दोपहरके पहले पहले पी लिया करें। दोपहरके बाद पीनेसे उनकी नींदमें बाधा पड़ेगी।

देवताओं का भोजन

यहां पर हम कोकोके विषयमें भी कुछ चर्चा करेंगे, क्योंकि इसमें कहवाइनका एक निकट संबन्धी क्षार—थियोब्रोमीन रहता है और इसका प्रचार भी कई रूपमें बढ़ता चला जाता है। थियोब्रोमीनका प्रभाव केवल गुरदेपर पड़ता है, वह गुरदेका कोमल उत्तेजक है, अतएव कोको का सेवन वह लोग निर्भय होकर कर स-कते हैं जिन्हें नींद कठिनाईसे आती है।

पर यहां भी वही पुरानी हिन्दुस्तानी आ-शीर्वाद "दाल रोटीसे खुश रहो" याद आती है। सिवा दाल रोटीके कोई उत्तम भोजन है ही नहीं। यदि कोकोमें टेनिन, कैफिओल और कैफिइनका डर नहीं, तो उसमें चिकनाई भय-का कारण उपस्थित है। इसकी चिकनाईसे भी

बहुतोंका हाज़मा खराब हो जाता है। यदि चिकनाई निकाल दें तो हाज़मेमें गड़बड़ तो पैदा न कर सकेगा पर उसका खाद्य-मूल्य कम हो जायगा। वस्तुतः उसकी पौष्टिकता तभी गिनतीमें आती है जब उसमें शकर और दूध मिला देते हैं। बिना दूध और शकर मिलाये उसकी गणना खाद्योंमें करना भ्रममूलक है। कोको के पेड़का नाम थियोब्रामा अर्थात् देवताओंका भोजन है। कोकोके भक्तोंको इससे भ्रममें न पड़ जाना चाहिये, क्योंकि जितनी पुष्टि ७५ प्याले पीनेसे होती है, उतनी मनुष्यके दिन भरके लिए काफी होती है। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि उसमें पौष्टिकता कितनी कम है। यदि यही ऋतुभुजोंका भोज्य है तो वह न जाने कबके भूखों मर जाते।

वास्तवमें कोको ही एक ऐसी पीने की चीज़ है जो पुष्टिकारक है, स्वादिष्ट है, दूध और शकरका अच्छा अनुपान है और जिसमें ऐसा क्षार है जो फायदा ही करता है, किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाता। फिर कोई आश्चर्य नहीं है कि पाश्चात्योंने उसे अपनाया है और उसका कोई बदल नहीं है। पर स्मरण रहे कि खाद्यकी दृष्टिसे उसका कुछ मूल्य नहीं है। हां, दूध मिलाकर खानेसे अथवा चौकोलेट और मिल्क चौकोलेट के रूपमें उसका खाद्य-मूल्य बढ़ जाता है, परन्तु वह बात और कुछ हो जाती है—"घीव सुधारे चीज़कों नाम बहू को होय।" बच्चोंको चौकोलेट दे सकते हैं पर इतना कि कब्ज़ न करे।

मेरा स्वप्न

(रेडियमकी आत्म कहानी)

हा स्वप्न भी क्या ही एक अच्छी चीज़ है। जिन्हें स्वप्न देखनेका कभी मौका नहीं मिला वह अवश्य बड़े अभागे हैं। वैज्ञानिकोंका कहना है कि दिनमें मनुष्य जो कुछ देखता है, सुनता है या पढ़ता है वही रातको उसे स्वप्नमें दिखाई दे सकता है। किन्तु मैंने रातमें कई बार ऐसे स्वप्न देखे हैं, जिनके सम्बन्धमें दिनमें किसी प्रकारकी चर्चा नहीं हुई थी। इसका वैज्ञानिक क्या उत्तर देते हैं। हां, स्वप्न स्वप्नावस्थाका एक खिलौना मात्र है। जब स्वप्नावस्थामें मनुष्य सोता रहता है, किन्तु उसका दिमाग़ काम करता रहता है, तब हम स्वप्न देखते हैं। कभी संसारके महाभयंकर जंगलमें पहुंचकर हम बाघ शेर आदिको देख कर डरते हैं, कभी अति स्वच्छ जलाशयके किनारे चान्दनी रातकी छटा देखते हैं, कभी अपने प्रिय सम्बन्धियोंके मिलनेसे आनन्दित होते हैं। किन्तु यह कितनी देरके लिए? जब नीन्द टूट जाती है तब सारा हवाई महल हवामें विलीन हो जाता है।

कल सम्पादक महाशयका पत्र आया—"कोई लेख भेजिये।" चिट्ठी डेस्कके हवाले कर मैं अपने और कामोंमें लग गया। कामका झंझट सिरपर इतना था कि रातको ११ बजे तक उनसे फुर्सत न पा सका। कुछ काम अधूरा छोड़ सोने गया। दिनमें या सोनेके पहिले एक बार भी ध्यान लेख लिखनेकी ओर नहीं गया। न मालूम रातमें अच्छी नीन्द क्यों नहीं आई। ख़ैर, यह भी अच्छा ही हुआ। मैं पड़ा पड़ा स्वप्न देखने लगा—स्वप्न क्या था लेख लिखनेका मसाला था। क्या देखता हूं कि मेरे तख़्तके पास

एक मनुष्याकृति खड़ी है, ठीक नहीं कह सकता कि वह पुरुष था या स्त्री। उसके अंग प्रत्यंगसे तेजोमय किरणें निकल रही थीं; उसका सारा शरीर ज्योतिर्मय था, आंखें उसपर ठहरती नहीं थीं। मैं उस आकृतिको देख पहले तो डरा किन्तु पीछे साहस कर पूछा—"तुम कौन हो?" उसने कहा "मैं रेडियम हूं, मैं अपनी आत्म-कहानी सुनाना चाहता हूँ, क्या सुनोगे?" इच्छा न होने-पर भी कहानी सुननी पड़ी। आपके विनोदार्थ आपको भी सुनाये देता हूं, कृपा पूर्वक सुनिये।

"मैं भूमण्डलकी उदर-दरीमें कई करोड़ कई पद्म वर्षोंसे विद्यमान हूं, किन्तु कुछ दिन पहले तक मेरा कोई कुछ पता न पा सका था। धरतीका ऊपरी भाग आंधी पानीसे कट कट कर समुद्रमें डूबता जाता था और मैं प्रबल शक्तियों द्वारा हज़ारों वर्षमें ऊपरकी ओर भेजा गया। बहुतसे खनिज पदार्थोंके साथ मेरी गाढ़ी मित्रता हो गई थी। मैं बारबार उनके साथ रहता था और उनके सुख दुखमें सहानुभूति रखता था। अन्तमें, निष्ठुर वैज्ञानिकोंने मुझे मेरे चिर-साथियोंसे अलग कर मनुष्योंके सामने उपस्थित किया। वियोगका फल कडुआ होता है। यदि मैं चाहता तो इस वियोगका फल वैज्ञानिकोंको चखा देता, किन्तु ऐसा करना मुझे मंजूर न था क्योंकि मनुष्योंने मेरी इज्जत की, मुझे आदरकी दृष्टिसे देखा। सिंह पशुओंमें, इन्द्र देवताओंमें, रत्न कंकड़ोंमें जैसा सम्मानित होता है उसी प्रकार मैं मौलिकोंमें सम्मानित होता हूं और होता रहूंगा।

"मेरी उत्पत्ति "पिचब्लेन्डी" (Pitch Blende) नामक खनिजसे हुई है। यूरेनियम मेरा पितामह और आयोनियम मेरा पिता है। अर्थात् यदि आप यूरेनियमको छोड़ दें तो वह स्वयं आयोनियमका रूपान्तर ग्रहण करेगा और आयोनियम मेरे आकारमें परिवर्तित हो जायगा। कुछ लोगोंने पहले कहा था कि मैं थोरियमका वंशज हूं किन्तु जांच पड़तालके बाद लोगोंने मेरी वंशावली ठीक ठीक जान ली है। थोरियम-के साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं, यदि कुछ सम्बन्ध है तो वह यह है कि वह (थोरियम) भी मेरी जातिका एक व्यक्ति विशेष है। जो मुख्य गुण मुझमें हैं वह गुण प्रायः उसमें भी पाये जाते हैं। इसीसे मैं कहता हूं कि वह मेरी जातिका एक व्यक्ति है। मेरी जातिके और भी कई पदार्थ हैं जैसे ऐकटिनियम, पोलोनियम रूबीडियम, पोटासियम, लेड (शीशा) इत्यादि।

"मैं अपने पुत्र पौत्रके विषयमें भी कुछ बतला देना चाहता हूं। मेरा एक पुत्र है और वह एक वायव्य पदार्थ है। उसका नाम ज्योतिषियोंने "निटन" (niton) रखा है। वायव्य पदार्थ होनेके कारण वह गैसके नियमोंका भी पालन करता है। उसका व्यवहार गैस ही जैसा है। दुनियाका रंग खराब देखकर मैंने उसे ऐसी शिक्षा दी कि वह किसी पदार्थके साथ नहीं मिलता। वह बड़ा निमाही (Inest) है। आप उसे किसी पदार्थके साथ मिलानेकी जितनी चेष्टा करेंगे सब बिफल होगी। किन्तु उसमें एक बड़ा गुण है, वह जिन पदार्थोंको टुकड़ा टुकड़ा कर देगा उन्हें फिरसे मिला भी दे सकता है। पानीको वह उज्जन और ओषजन में विभक्त कर देगा किन्तु दूसरे क्षण देखिये वह इन दोनों गैसोंको मिला-कर पानी तैयार कर देता है। मेरे पुत्र निटन का भी एक पुत्र हीलियम है।

"मेरे आविष्कारसे पश्चिमके वैज्ञानिकोंमें बड़ा हलचल मच गयी है। अब तक वह पारस पत्थरको झूठ समझते थे। उनका कहना था कि पारस-पत्थर हिन्दुस्तानियोंकी गप्प मात्र है, किन्तु यह देख कर कि यूरेनियमसे मैं और मुझसे हीलियम बन जाता है उनकी आंखें खुली हैं। यह अब समझने लगे हैं कि एक धातु दूसरे धातुका रूपान्तर ग्रहण कर सकती है। किन्तु ऐसा क्यों होता है, यह बतलाना उनकी

शक्तिसे परे हैं। कितने व्यक्ति यह समझने लगे हैं कि जब एक मौलिकसे दूसरा मौलिक बन जाता है, अर्थात् यूरेनियमसे मैं (रेडियम) और मुझसे हीलियम, तब पारस-पत्थरकी समस्या हल हो गई, किन्तु इस समय ऐसा समझना बड़ी भूल तथा मूर्खता है; क्योंकि हम तीनों तो एक ही श्रेणीके ठहरे। पुराना कपड़ा उतार नया कपड़ा पहना और एक नये नामसे पुकारे जाने लगे—इतनेसे ही पारस पत्थरकी समस्या हल नहीं हो सकती। ज़रा पश्चिमीय वैज्ञानिक लोहे को सोना, जस्तेको चाँदी तो बना दें। तब उनकी बुद्धिकी प्रशंसा करूं। खैर, इस विषयमें मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, केवल यही कहता हूं कि भारतवासियोंका पारस पत्थर जो भूठा समझा जाता था अब उसकी सत्यता प्रमाणित हो गई।

"मेरे आविष्कारके कारण मेरे आविष्कर्ताकी इतनी प्रसिद्ध हो गई कि सारा संसार उन्हें पूजनेके लिये तैयार है। वैज्ञानिकोंके नामोंकी सूचीमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है और आज दिन सारा संसार उनकी पूजा करने के लिए तैयार है। मेरा मूल्य इतना अधिक है कि संसारमें और किसी पदार्थका उतना मूल्य नहीं है—मैं संसारकी सभी वस्तुओंमें बहुमूल्य हूं। मेरे एक कणकी इतनी कीमत है कि उतनेमें सोना और प्लैटिनम ढेरके ढेर मिल सकते हैं। मेरी बहुमूल्यताका अन्दाज़ा तुम इतनेसे ही लगा सकते हो कि आलपीनके सिरेके बराबर एक छोटेसे टुकड़ेका दाम ७५,०००) रुपये होता है। लन्डनके मिडिलसेक्स हास्पिटेलमें मेरे दो कण हैं जो इतने छोटे हैं कि बिना खुर्दबीनके वह देखे नहीं जा सकते। पर इतने छोटे कणोंकी कीमत ३०,०००) रु० है। वह काँचकी नलीमें भलीभाँति सुरक्षित रखे जाते हैं।

"मेरी किरणोंको आप देख नहीं सकते, किन्तु मैं बराबर किरण-विकीरण करता रहता हूं। वह X-किरणसे बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। आप फोटोके प्लेटको काले कागजमें लपेट कर मेरे पास लाइये। मैं अपनी किरणोंका छींटा उस पर अवश्य डाल दूंगा। मेरी किरण सीसा (Lead) अलूमिनियम आदि धातुके पतले पत्तरोंको बड़ी आसानीसे पार कर जाती हैं। आप इलेक्ट्रोस्कोपके सोनेके पत्रोंको (Leaves) अलग कर रख दीजिये। मैं उनके पास पहुँच एक दूसरेसे मिला दूंगा। यदि आप मेरे किसी यौगिक (Compound) को पानीमें डालकर छोड़ दें तो आप देखेंगे कि मैं अपना रंग बदलनेमें गिरगटसे किसी प्रकार कम नहीं हूं। पहले तो मैं पीला रूप धारण करूंगा, किन्तु धीरे धीरे पीछे गुलाबी रंगका हो जाऊँगा। मुझे पानीमें थोड़ी देर रखदें। उसमेंसे आप जितनी चाहें उतनी ओषजन और उज्जन इकट्ठा कर लें। बराबर यह दोनों गैस निकलती रहती हैं। एक और आश्चर्यजनक बात देखिये मेरे आस पासका तापक्रम (Temperature) और स्थानोंके तापक्रमसे अधिक रहता है। मेरा शुद्ध एक ग्राम एक घंटेमें आपको १०० कलारी ताप दे सकता है। हीरेको आप मेरे पास लाइये। वह चमकने लगेगा, किन्तु X-किरणमें क्या शक्ति कि वह मेरी समानता करे? X-किरणके पास ले जानेसे हीरा जैसेका तैसा बना रहेगा, उसमें चमक नहीं आवेगी। मैं "ओज़ोन" (Ozone) से आक्सीजन बना देता हूं। पीले फासफोरसको लालके रूपमें देख लीजिये। क्लोरोफार्म और आइडोफार्म मिलाकर मेरे पास लाइये। मैं इनसे आयोडीन निकाल दूंगा।

"अब मेरी कुछ उपयोगिताओंका हाल सुनिये। नासूरके रोगियोंकी चिकित्सा मेरे द्वारा की जाती है और अब तक मेरे पास जितने रोगी आये हैं कोई मेरे यहाँसे निराश नहीं लौटा। मैं इस बीमारीके लिये राम-बाण या अकसीर महौषध, हूं। विषाक्त घावों और फोड़ोंकी चि-

कित्सा बिना मेरी मददके हो ही नहीं सकती। यदि हो भी तो रोगीको अपने प्राणसे हाथ धोना पड़े। विषाक्त क्षतके विषैलेपनको मैं ही दूर करता हूँ जो घाव चीर फाड़के योग्य नहीं होते वह मेरे कणों द्वारा अच्छी हालतमें लाये जाते हैं और तब उन पर सर्जनोंकी छुरी चलती है। हज़ारों रोगियोंकी जान मेरी बदौलत बच गयी है। मैं हजारों लाखों वर्ष तक अपना प्रकाश नहीं खोता। मैं एक धातुकी छड़के सिरे पर बैठकर प्रतिदिन किसी रोगीके घावको कुछ देर देखता हूँ और अपने कणोंको उस पर डालता हूँ और घावके विषको दूर कर देता हूं। मेरा यह किरण-विकीर्ण एक अद्भुत दृश्य है। एक विशेष प्रकारके पर्दे पर डालकर लोग उसे दिखाते हैं; मेरी किरण तथा कण जिस समय उस पर्दे पर पड़ते हैं उस समय ऐसा मालूम होता है जैसे अँधेरी रातमें करोड़ों तारे आसमानमें चमक रहे हैं। इस किरण तथा कण विकीरणसे मैं कम अवश्य होता हूँ पर यह कमी इतनी थोड़ी होती है कि मेरे किसी कणसे लाखों वर्ष काम लेने पर भी मेरा वज़न कम नहीं होता।

"एक बात अब तक मैंने तुमसे छिपा रखी थी। देख रहा था कि तुम मुझे हाथसे छूते हो या नहीं। खूब बचे, यदि एक बार तुम मुझे हाथसे छूओ तो मैं उसका मज़ा चखा दूं। तुम्हारे शरीरका जो हिस्सा मुझसे छूजाता वहां बड़े बड़े घाव हो जाते। फोड़े निकल आते और तुम्हें इतना कष्ट भोगना पड़ता कि नाकोंमें दम आ जाता। सदा मुझसे बचे रहनेकी चेष्टा करना।

"मेरे गुणोंकी खोजने विद्युत्-शास्त्रमें एक नया युग उपस्थित कर दिया है। मुझसे तीन प्रकारकी किरणें निकलती हैं। उन्हें एल्फा, बीटा और गामा किरण कहते हैं।

"तुम इतनेसे यह न समझ लेना कि मेरी उपयोगिताओंका अन्त हो गया। भविष्यमें मैं बड़ी बड़ी करामातोंको कर दिखाऊँगा, मेरी विलक्षण चालोंको सुन तुम्हें दातों तले अँगुली दबानी पड़ेगी और मैं अधिकाधिक प्रतिष्ठित होता जाऊँगा। कहां तक कहूँ? मेरी पूरी कहानी सुनते सुनते तुम थक जाओगे। कोई कोई अवैज्ञानिक मनुष्य मेरी उत्पत्ति एक पिल्लूसे बताते हैं। वह कहते हैं कि भूमण्डलके अनेक स्थानोंपर ऐसे पिल्लू हैं जो मेरे कणोंको खा जाते हैं और उन्हींसे वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा मेरी उत्पत्ति होती है। किन्तु मैं तुम्हें सावधान किये देता हूं कि ऐसे अवैज्ञानिकोंके कहनेमें न आना। वह धूर्त हैं और बातें बनाकर ठगना चाहते हैं। किसी पिल्लूकी क्या मजाल कि मेरे पास फटके।

"एक बात और सुनो—मैं भारतवासियों पर खुश नहीं हूँ, क्योंकि वह मेरी कद्र करना नहीं जानते। देखो तुम्हारे देशमें कितनी खान हैं, जहाँ मैं वास करता हूँ, किन्तु तुम परतन्त्र-भारतवासी हो। तुममें इतनी शक्ति नहीं, इतना अख़्तियार नहीं कि मुझे खोदकर निकालो। इसीसे मैं कहता हूँ कि मैं तुमसे प्रसन्न नहीं हूँ। तुम मुझे आदरकी दृष्टिसे देखो तुम मेरी उपयोगिताओंको समझो; फिर देखो मैं तुम्हारा दास बननेको तैयार हूँ।

"तुमने बड़ी श्रद्धासे मेरी बातें सुनी हैं, इसलिए मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। सावधान होकर सुनो आज मैं तुम्हें बड़े रहस्यकी बात बतलाये देता हूँ पर वह किसीसे कहना मत—"गोपनीयं गोपनीयं, गोपनीयं प्रयत्नतः"। जिस शक्तिकी तुम भारतवासी अनादि कालसे अनन्य भावसे उपासना करते आये हो, जिस कालिका करालाको तुम मातृवत पूजते आये हो, उसीका मैं पुत्र हूँ। जो लाभ तुमको मेरी माताकी पूजासे सहस्रों वर्ष तक घोर तप करनेके बाद होता है, वह उसके प्यारे पुत्रके पूजनेसे सहजमें ही

मिल सकता है। अभी मैंने अपने दिव्य चरित्र-का वर्णन नहीं सुनाया है, जब उसे सुन पाओगे तो सब देवोंको छोड़ मेरी उपासना करने लग जाओगे। पर विषय बड़ा गूढ़ है। पृथ्वी ठन्ढी होती जाती है और पृथ्वीका पिता सूर्य भी दिन प्रति दिन ठन्ढा हो रहा है। इसी हिसाबसे यदि सूर्य ठंडा होता रहे तो अधिकसे अधिक १७,०००,००० वर्ष तक पृथ्वीको आवश्यक जीवन और शक्ति प्रदान करता रहेगा। यह जानकर मेरे भक्त कुछ वैज्ञानिकोंको बड़ी आदेशा होने लगा था। तब उन्होंने मेरी प्रार्थना की। मैंने उन्हें दर्शन दिया और अश्वासन दिलाया कि मैं स्वयम् सूर्यके गर्भमें प्रवेश किये बैठा हूं। तुमने मुझे सूर्यकी पुत्री पृथ्वीके गर्भमेंसे खोज निकाला है, उसको मेरा अंश सूर्यसे ही मिला है। जब तक मैं सूर्यमें विद्यमान हूँ तब तक तुम्हें किसी प्रकारका भय न करना चाहिये। सो, जानो कि मेरे ही पराक्रमसे वस्तुतः सूर्य जगमगा रहा है और पृथ्वीका उत्ताप बना हुआ है, नहीं तो न जाने कबकी पृथ्वी ठंडी हो जाती और सूर्य ज्योतिहीन हो नष्ट भ्रष्ट हो जाता।

"सूर्यके जितने किरिशमें हैं वह मेरे बाएँ हाथके खेल हैं। उनका हाल मेरा कोई भक्त कभी तुम्हें सुना देगा। यहां केवल एक बात और मैं तुम्हें बताये देता हूँ। तुम लोगोंके कारखानों, इञ्जनों और अन्य यंत्रोंको चलानेकी शक्ति सूर्यसे प्राप्त होती है। जो कोयले और तेलकी खाने हैं वह भी वास्तवमें प्रकृतिके संदूक हैं, जिनमें पुरातन समयकी सूर्यकी शक्ति बन्द पड़ी है। पर यह खान कब तक काम देंगी। एक दिन आयगा और वह ३०० वर्षमें आजायगा—जब कोयले और तेलकी खान खाली हो जायँगी। यह चिन्ता मेरे भक्त वैज्ञानिकोंको बहुत सता रही थी। मैं शिवके समान आसुतोष हूँ, मुझे दया आई, मैंने उन्हें एक युक्ति बता दी है। मेरी कृपसे वह इसमुह समेको हल कर लेंगे।

"जिसे वह अब तक मृत् पदार्थ मानते थे मैंने अपना दिव्य रूप दिखला कर यह सिद्धकर दिया है कि वस्तुतः वह असीम शक्तिका घनीभूत रूप है। डबल पैसेमें इतनी शक्ति मौजूद है कि वह एक बड़े भारी जंगी जहाज़ (ड्रेडनाट) को यहांसे अमेरिका ले जा सकती है। एक गिलास पानीमें इतनी शक्ति है कि ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा और लण्डन नगर उसके बलसे स्वर्ग लोक तक पहुँच सकता है। पदार्थकी इस असीम शक्तिकी कुञ्जी मैंने उन्हें प्रदान कर दी है। मेरे तेजका उपयोग कर वह पदार्थको छिन्न भिन्न करके उसमेंकी शक्तिका उपयोग करने लग जायँगे। परन्तु मैंने अभी तक उन्हें इशारेसे बतलाया है, उन्हें उचित है कि वह मेरी अनन्य भावसे भक्ति करें, अभीष्ट सिद्ध हो जायगा।

"पुराने ज़मानेमें राम, कृष्ण आदि महान् पुरुष हो गये हैं। लोकमें उनकी पूजा ईश्वर समान हुई है, वह भी मेरे सच्चे भक्त थे। उनके जितने आश्चर्य जनक काम थे वह मेरी कृपा कटाक्षसे हो जाते थे। हनुमान भी मेरा भक्त था, वह हिमालयको उठा सकता था। जामवन्त एक निमेषमें पृथ्वीकी सात परिक्रमा कर सकता था। कहाँ तक गिनाऊँ। बाइबिल, कुरान, वेद, शास्त्र और पुराण मेरे भक्तोंके गुण गाथा गाते गाते थक जाते हैं। कलियुगमें मैंने अपना दिव्य रूप फिर दिखलाया। यदि अपना लोक और परलोक सुधारना और अनन्त सुखका अनुभव करना चाहते हो तो मेरी भक्ति करो। यह मेरा दिव्य रूप है। जो इसकी उपासना करेगा वह दिव्य हो जायगा और दिव्य लोकोंको पायेगा।"

एकाएक ज्योतिर्मय आकृति अन्तर्ध्यान हो गई। मेरी नींद टूटी और कुछ नहीं दिखाई पड़ा।

—रमेश प्रसाद बी० एस-सी०

अकबर की क्षमता ।

[ले०—श्री० शेषमणि त्रिपाठी]

मनुष्यके व्यक्तिगत चरित्रका उसके सार्वजनिक जीवन-पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। समाज भले बुरेको पह-चानता है और उसीका सम्मान करता है जिसमें कुछ योग्यता होती है। समाजने वास्तविक गुणको पहचाननेमें कभी कभी भूलें भी की हैं, किन्तु अन्तमें हीरे और काँचकी परख हो ही जाती है। अकबर अपने समयका अद्वितीय हीरा था। यद्यपि उसके कुछ कार्य घृणित और निन्दनीय थे तथापि उसके उत्कृष्ट चरित्र बल पर आश्चर्य होता है। जिस प्रकार लार्ड क्लाइव जन्म सिद्ध सेनापति कहा जाता है उसी प्रकार अकबर मनुष्योंका जन्म सिद्ध शासक था। वह संसारके सर्वोत्कृष्ट सम्राटोंमें गिना जाता है, किन्तु अबुलफ़ज़ल तथा अन्य बहुतसे पूर्वीय और पश्चिमीय विद्वानोंने अकबरकी असीम प्रशंसा की है। इस अतिशयोक्तिसे सम्राट्की महिमा कुछ बढ़ी नहीं वरन् इस अनुपयुक्त उपासनासे उसके गुणोंका प्रकाश भी धीमा पड़ गया है। यह सच है कि उसने भारतमें मुग़ल शासनकी नींव डाली और यह भी सच है कि उसीने—दूसरोंकी थोड़ी ही सहायतासे—इस शासनको वास्तविक, प्रबल और प्रभावशाली बनाया। सच है कि उसने अपने जीते हुए प्रदेशोंको केवल लूट और कर-संग्रहकी सामग्री न बना कर जनताकी भलाई पर भी विशेष ध्यान दिया; तथापि यह कहना कि वह मनुष्य नहीं, देवता था ठीक नहीं है। अकबर अपने युगका केवल एक नर-रत्न था। वास्तविक घटनाओंसे यह सिद्ध नहीं होता कि वह अपने समकालीनोंसे मानसिक और आत्मिक अभ्यासमें नितान्त भिन्न था। हाँ, वह अपने पिता और पितामहके समान उदार था। उसमें क्षमा करनेका भी गुण वर्तमान था। परन्तु अन्तोगत्वा वह था तो तैमूर और चङ्गेज़ खाँके ही वंशका! उसने भी कभी कभी ऐसी निर्दय और क्रूर हत्याएँ की जिन्हें देखकर आजकलका मनुष्य भयभीत और चकित हो जाता है। उसकी भी सेनाएँ रुण्ड-मुण्डके खम्भ खड़ कर देती थीं। यही नहीं; वह स्वयम् भी अपने क्रोध भाजनोंका गुप्त रीतिसे मारनेके लिये विष लिये रहता था। पर इतना अवश्य था कि वह कैरो और कुस्तुंतुनियाँसे बङ्गाल तकके मुसलमान शासकोंमें सबसे अधिक दयावान था। पेरूसी कहता है कि "बादशाह आपेसे बाहर बहुत कम होता है। परन्तु जब क्रोध आता है तो बहुत अधिक। तौभी यह अच्छा है कि उसका क्रोध शीघ्रही शान्त हो जाता है; क्योंकि उसमें मनुष्त्व, शिष्टता और दयालुता है।"

मुहम्मद कासिम फ़रिश्ता लिखता है कि जब हेमू अकबरके सामने लाया गया, उस समय बैरामखाँने बादशाहसे उस काफ़िरको अपने हाथसे मारनेको कहा। अकबरने अतालीककी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हेमूका सिर छूकर गाज़ीकी उपाधि प्राप्त की। तब बैरामखाँने तलवार खींचकर उसके धड़से सिरको अलग कर दिया।" फ़रिश्ताका लिखना सच मालूम होता है। अहमद यादगार और ब्रोयेकके अनुसार भूत पूर्व डाक्टर स्मिथ लिखते हैं कि किशोर सम्राट्ने ही उसे मारा। वह यह भी कहते हैं कि चौदह वर्षके अकबरके लिए बैरामकी आज्ञा पालन करना स्वाभाविक ही था पर इसका समाधान फ़रिश्ताके विवरणसे स्पष्ट रीतिसे हो जाता है। बैरामकी ही इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसने तलवार खींचकर बन्दीके सिर पर रखी थी। अकबरकी चलती तो हेमू मारा ही

नहीं जाता। उसे गाज़ी बननेकी इतनी प्रबल इच्छा न थी, पर वह उस समय बैरामकी बात टाल नहीं सकता था; क्योंकि सिंहासनकी रक्षाके लिये उसे प्रसन्न रखना आवश्यक था। यही कारण था कि अकबरने निषेध न करके उसे मारनेकी अनुमति दी। इस घटनासे विदित होता है कि छोटी अवस्था में भी सम्राट राजनीतिके मर्म्मसे परिचित था। रानीतिक दृष्टिसे ही उसने बैरामकी इच्छा पूर्ण होने दी।

बैरामखाँको मालूम था कि बादशाहमें दयालुताकी मात्रा अधिक है। तभी तो उसने तार्दीबेगके विषयमें पहलेसे नहीं पूछा! फ़रिश्ता लिखता है कि बैरामखाँको बादशाहकी सम्मति न लेने का "कोई पश्चात्ताप नहीं था, क्योंकि वह जानता था कि बादशाह तार्दीबेगकीत्रुटियों-को ध्यान न करके उसे क्षमा कर देगा। शेख-अबुल मालीको वह सम्राट्के ही कारण न मार सका। अस्तु, अकबरकी दयालुतामें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। जिस समय वह स्वा-धीन सम्राट् नहीं कहा जासकता था उस समय भी वह यथासाध्य निर्दय कार्यों को करनेकी अनुमति नहीं देता था। परन्तु वह राजनीतिसे परिचित था। यही उसके दयालुतासे कभीकभी विचलित होकर घोर निर्दय कार्य करनेका कारण था। वह दयालुताके लिए अपने राज्यको नहीं गंवा सकता था। वह दयालु शासक था, न कि दयालु ऋषि। उसके आचरण में यदि क्रोध और निर्दयताका आकस्मिक दोष था तो उसके लिए अकबरकी निन्दा नहीं की जा सकती। उसकी दयालुताकी नींव छोटी व्यवस्थामें ही जम चुकी थी। कविने सच कहा है कि "होन हार बिरवानके, होत चीकने पात।"

कुछ लोगोंका कहना है कि सम्राट्ने बैराम खाँको पदच्युत करके उसके प्रतिकृतघ्नता प्रकट की। यह ठीक नहीं है। यह सच है कि बैराम-खाँके ही कारण अकबर दिल्लीका सम्राट् बन-सका, पर उसमें कुछ दोष भी थे। इन्हीं दोषोंके कारण उसे अपने उच्च पदसे अलग होना पड़ा। वस्तुतः उसके शासन और पतन की गाथासे सम्राट्की क्षमताका बहुत कुछ पता चलता है; सम्राट् और बैरामखाँमें जो सम्बन्ध था उस-पर ध्यान देनेसे अकबरके चरित्रकी दो तीन गूढ़ और विशाल बातोंका ज्ञान होता है। प्रथम तो यह कि उस समय भी अकबर राजनीतिको भलीभाँति समझता था। यदि उस समय उसके स्थानपर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो ख़ानख़ाना उसको सिंहासनपर रखकर बलवानकी तरह आप शासन करता। किन्तु अकबर नासिरुद्दीन नहीं था इसमें गुलाम सुलतानके गुण वर्तमान थे, पर उसके दोष इसमें नहीं थे। फ़रिश्ता लिखता है कि कुछ लोग कहते हैं कि बैराम-ख़ाँ सम्राट्को बन्दी करनेका जाल सोच रहा था और इसी कारण अकबरने आगरा छोड़ा था। यद्यपि इसमें विश्वास नहीं जमता और फ़रिश्ता भी इस विषयमें कोई निश्चयात्मक बात नहीं लिखता है तो भी इतना तो अवश्य ही सत्य है कि ख़ानख़ाना सम्पूर्ण शक्ति अपने ही हाथमें रखना चाहता था। अपरञ्च, उससे प्रायः सभी लोग अप्रसन्न थे। सम्राट् ने उसे पदच्युत करनेमें योग्यता दिखलाई। यदि वह निकाला न जाता, तो बहुत कुछ सम्भव है कि असन्तुष्ट दरबारियोंके षड्यन्त्रसे सम्राट् और अतालीक दोनों को हानि पहुंचती। किन्तु अकबर जानता था कि कहाँ पर त्रुटि है और उसे दूर करनेमें लग जाता था। वह स्थितिको समझ गया। ख़ानख़ानाको मक्का जानेकी आज्ञा मिली। कुछ लोगोंके बहकानेसे वह अकबरके विरुद्ध लड़नेको तैय्यार हुआ हारने-पर जब उसको अपने किये का पश्चात्ताप हुआ तब वह दरबारमें आया अपनी पगड़ी गलेमें लटकाकर बेग से आगे बढ़ा और सम्राट् के पैरों पड़कर आंसू बहाने लगा। सम्राट्ने कहा

कि "यदि बैरामखाँको पसन्द हो, तो तुम कालपी और चन्देरीका शासन करो अथवा दरबारमें रहकर सम्राट्की कृपाको प्राप्त करो। अथवा यदि मन ईश्वरकी ओर झुका हो तो मक्काको जा सकते हो, तुम्हारे वहाँ पहुँचानेके लिये उचित प्रबन्ध किया जायगा।" इसे कृतघ्नता नहीं, प्रत्युत कृतज्ञता कहते हैं। अकबर एक कृतज्ञ जीव था। उसे कृतघ्नताका दोष नहीं लग सकता। इस प्रकार खानखानाँके पतनसे सम्राट्की राजनीतिज्ञता, क्षमाशीलता और कृतज्ञताका स्पष्ट पता चलता है। बैरामखाँ तथा महामाङ्गनके सम्बन्धमें सम्राट्ने अपने उत्कृष्ट चरित्र बलका परिचय दिया अपनी अपरिपक्व अवस्थामें भी उसने दिखला दिया कि उसमें व्यक्तित्वका प्राबल्य था। संसारके सामने उसने उसी समय प्रकट कर दिया कि वह अपने कठिनसे कठिन बन्धनों को तोड़नेमें समर्थ था। उसमें बुद्धि और शक्ति दोनों थी। यही वक्तव्य उसके भविष्य जीवन पर भी लक्षित होता है। वह कट्टर मुसलमानी नियमोंको लाँघ कर जीवन पर्यन्त सहिष्णुताकी नीति पर चला। कट्टर सुन्नी जमातके लोग उसके कार्योंको घृणित समझते थे तो भी अकबरके व्यक्तिगत गुण इतने विषद और विशाल थे कि १५८२ में माँसरेट आश्चर्यके साथ लिखता है कि अकबरकी हत्या मुसलमानोंने नहीं की! यह सच है कि राजद्रोह होते रहे परन्तु उसकी हत्याका उद्योग प्रायः नहीं होता था। उसके गुणोंने घातककी धृष्टतासे भी उसकी रक्षा की! अन्तिम दिनोंमें जब उसके मित्रगण स्वर्गधामको चले गये थे, तब सम्भव है कि कोई उससे प्रेम न करता रहा हो; पर डरता तो सब कोई था! वास्तवमें (जैसा कि एक यूरोपीय ग्रन्थकारने लिखा है) वह "पूर्वका भय" ("Terror of the East") था!

अकबरमें महत्वाकांक्षायें अधिक थीं। उसका सारा जीवन युद्ध और विजयमें बीता। लोग कहते हैं कि वह विजित प्रदेशमें सुख और शान्ति फैलानेके ही लिए उसे जीतता था; किन्तु वास्तविक घटनाओंसे दूसरी ही गाथा प्रकट होती है। रानी दुर्गावतीके समयमें गोंड़वाना की प्रजा आसफ़ खाँके समयसे अधिक सुखी थी! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह गोंड़वाना, काश्मीर, सिन्ध और दक्षिणके राज्योंको अपनी सीमा बढ़ानेके ही लिए जीतनेका यत्न करता था। अपने राज्यको बढ़ानेकी उसकी इच्छा थी और इसमें बहुत कुछ सफलता भी हुई। उसकी सफलताका मूल कारण उसकी व्यक्तिगत योग्यता ही थी। उसका शरीर स्वस्थ और फुर्तीला था। उसमें वीरता भरी थी। "अफ़ीम विरोधियोंको हरानेके लिये अकबरका दृष्टान्त सुलभ देख पड़ता है!" वह अफ़ीम तो बहुत खाता था, पर उसे मांस खाना नहीं पसंद था। वह प्रायः बहुत दूर तक पैदल चला जाता था। विशेषतः जब किसी पवित्र स्थानको जाता तब तो अवश्य कुछ दूर पैदल जाता था। तैराक और घुड़सवार तो पहले दर्जेका था। चौगानमें वह निपुण था तथा शिकारमें दक्ष था चीतोंके मारनेमें उसकी चतुराई और वीरताकी कहानियां इसके प्रमाण हैं। जहाँगीर अपने पिताके विषयमें यों लिखता है—

"वह कुछ लम्बाई लिये हुये डीलडौलमें मध्यम दर्जेका था। उसका वर्ण गेहुँआँ था! आँखें और भौंहें काली थीं। उसका शरीर सुन्दर था तथा उसकी चौड़ी छाती और लम्बी भुजाओंसे उसकी सिंहकी सी शक्तिका परिचय मिलता था। नाकके बाईं ओर एक सुन्दर तिल था जिसे लोग धन और भाग्यका चिन्ह समझते हैं। उसकी ध्वनि उच्च और बोली हर्षजनक थी। उसका आचरण और स्वभाव औरोंसे भिन्न था तथा बदनसे दिव्य प्रतापकी झलक देख पड़ती थी"

जो कुछ हो, पर अकबरके साहस और वीरता पर आश्चर्य्य होता है। सन् १५६६ में जब सम्राट् खान ज़मानका पीछा करते करते रायबरेली पहुँचा, तब उसे ज्ञात हुआ कि खान ज़मान गंगा पार करके मालवा या दक्षिणको जा रहा है। इस समाचारको पाकर उसने खान ज़मानको पकड़नेका निश्चय कर लिया। वह मानकपुरके घाटपर सन्ध्या समय पहुँचा। कोई नाव न मिली। पर वह अपने अफसरोंकी इच्छाके प्रतिकूल हाथी पर चढ़कर गहरी नदी में चल पड़ा। हाथीको तैरना भी न पड़ा और वह सकुशल दूसरी पार पहुँचा। परन्तु उसकी शरीर-रक्षक सेनामेंसे सौ व्यक्ति, जो नदीमें चल पड़े, बड़ी कठिनाईसे पार तक आये। इन्हीं थोड़ेसे सैनिकोंको लेकर वह प्रातःकाल होते, होते शत्रुके खेमेके पास पहुँच गया। वहीं आसफ़खाँ हिर्वी और मजनूँ ख़ाँ कड़ाकी सेना लेकर सम्राट्से मिले। शत्रुके ध्यानमें भी नहीं आया था कि अकबर सेनाको पीछे छोड़कर नदी को पार करनेका यत्न करेगा! उसकी रात्रि आनन्द मनानेमें बीती! परन्तु प्रातःकाल होते ही शाही नक्कारा सुनकर उसे अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ! ऐसी ही अद्भुत और साहस पूर्ण घटनाओंसे सम्राट्का जीवन भरा है। अनेक स्थानोंपर तो उसने इससे भी बढ़कर क्षमता दिखलाई थी। जिस समय १५७२ में सम्राट् भरोचकी ओर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ाके विरुद्ध चला, उस समय मिर्ज़ा मुग़ल सेनासे बचनेके लिये पञ्जाबकी ओर राजद्रोह पैदा करनेके निमित्त बढ़ा। सम्राट्को रातके नौ बजे इसका समाचार मिला। खेमेमें कुमार हलीमको नियत करके उसने थोड़ेसे घुड़सवारोंको लिया और मिर्ज़ाको रोकनेके लिए चल पड़ा। दूसरे दिन जब सम्राट् महेन्द्री नदीके किनारे पहुंचा उस समय उसके साथ केवल चालीस सैनिक बच रहे थे। उसने नदीके दूसरे किनारे पर मिर्ज़ाको एक सहस्र मनुष्योंके साथ ठहरे हुए देखा। इस कठिन समय पर सय्यद मुहम्मद ख़ाँ बाढ़ा, राजा भगवान दास, राजा मानसिंह शाह कुलीखाँ, सुर्जुन राय, रन्थम्भोरके राजा और अन्य सामन्त गण सत्तर घुड़सवारोंके साथ पहुँचे। फ़रिश्ता कहता है कि अकबरके साथ उस समय १५६ से अधिक मनुष्य नहीं थे। अधिक सेना आनेवाली ही थी पर सम्राट्ने ठहरना उचित नहीं समझा। शत्रुकी सेना पर आक्रमण कर ही दिया। जिस समय अकबर अपने राजपूतोंके साथ एक गली-में जिसमें तीन सवारोंके ही लिये स्थान था रुका था, उस समय शत्रुके तीन सैनिकोंने अकबरपर आक्रमण किया। इस समय सम्राट् की रक्षा करने के लिये राजा भगवान दासने अपूर्व वीरता दिखला कर अपने प्राण खोये। अस्तु, सम्राट्ने शत्रुके सैनिकोंका पीछा किया। जब मिर्ज़ा दृष्टिगोचर हुआ तब उसपर वार किया गया, किन्तु वह अपने तेज़ घोड़े पर भाग निकला। फ़रिश्ता कहता है कि जैसा व्यक्तिगत सहस और निर्भीकता अकबरने इस समय दिखलायी वैसा कदाचित् ही किसी बादशाहने दिखलाई हो। वह यह भी स्वीकार करता है कि सम्राट्ने अनावश्यक ही अपने शरीरको ऐसे भयके स्थान में डालता था अस्तु, सम्राटकी निर्भीकता अद्भुत थी। ऊपरके दो उदाहरणों-से उसकी शीघ्रगामिता और कार्य्यकुशलताका भी पता चलता है। शत्रुके सामने वह इतना शीघ्र पहुँच जाता था कि सब लोग दङ्ग रह जाते थे। १५७३ में जब इख़्यारुलमुल्क और मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा अहमदाबादको घेर रहे थे, उस समय भी अकबरने अपनी अद्भुत शक्ति और क्षमताका परिचय दिया। अहमदाबादके समीप पहुँचकर उसने शत्रुके पास अपने आगमनका समाचार भेजा और जब नगर चार मील रह गया तब नौबत बजानेकी आज्ञा दे दी। शत्रु

हक्का बक्का हो गया, पर तुरन्त युद्धकी तैय्यारीमें लग गया। मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा थोड़ेसे घोड़ोंके साथ नदीके किनारे गया और सुभान-कुलीखाँ को देखकर पूछा कि यह किसकी सेना है? उत्तर मिला कि "सम्राट् स्वयं इस सेनाके साथ आये हैं"। मिर्ज़ाने कहा कि "यह असम्भव है क्योंकि केवल चौदह दिन हुए जब कि मेरे गुप्तचरोंने उसको आगरे में देखा था; अपरञ्च इस सेनामें शाही हाथी भी कोई नहीं देख पड़ते मैं"। सुभानकुलीखाँने उत्तर दिया कि "सम्राट्को आगरेसे चले केवल नौ दिन हुए और यह स्पष्ट है कि कोई भी हाथी इतनी जल्दी उसके साथ नहीं आ सकते।" तात्पर्य्य यह है कि सम्राट्में शीघ्रगामिता और कार्य्य कुशलताका गुण अद्वितीय था।

अकबरकी प्रकृति न्यायकी ओर अधिक थी। वह कहता था कि यदि मैं स्वयं कोई दोष करूंगा तो मैं अपने विरुद्ध भी न्याय करूँगा। यह कहना केवल कहना मात्र न था। वह अपने समयके अनुसार न्याय करता था। उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी मनुष्योंके स्वभावका उसे गहरा ज्ञान था। अतएव जब वह स्वयम् न्याय करता था तब उसको बड़ी सफलता होती थी। फ़रिश्ताने अकबरके आचरणके सम्बन्धमें एक बहुत अच्छा दृष्टान्त दिया है। वह लिखता है कि लड़ाईमें पकड़े हुए हाथी नियमानुसार सम्राट्को मिलने चाहिये थे। पर खानज़मान और बहादुरखां सीस्तानीमें एक बार सब अपने पास रख लिये। नियम भङ्गका समाचार पाकर जब अकबर इनके विरुद्ध चला तह वह लूटका समस्त माल लेकर अकबरको समर्पित करने चले। किन्तु सम्राट् बड़ा ही उदार और दयालु था। उसने सब कुछ लौटा दिया। उसने लिया केवल उतना ही जितना नियम पूर्वक उसे मिलना चाहिये था।' उस समयका दूसरा कोई बादशाह होता तो सब कुछ ले लेता पर अकबर न्याय पूर्ण भागसे अधिक नहीं लेना चाहता था। डाक्टर स्मिथका कहना है कि "सम्भवतः अकबर दयालुता स्वाभाविक नहीं होती थी, प्रत्युत उसका भी राजनीतिक कारण रहता था।" इसके प्रमाणमें वह सम्राट्के दो तीन क्रोध और निर्दयताके कार्यों का उदाहरण देते हैं। स्मिथका कहना सच हो सकता है पर इसमें कोई वास्तविक सार नहीं है। अकबरकी दयालुतासे राजनीतिक लाभ हुए हैं, किन्तु इसका कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वह राजनीतिक दृष्टिसे ही दयालुता दिखलाता था। यों तो मनुष्यके आचरणमें अपूर्णता होती ही है। अतएव दयालु मनुष्यके लिये भी कभी कभी निर्दयता और क्रोध करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

(असमाप्त)

—शेषमणि त्रिपाठी।

सूचना

हालमें डाकखानेने नियम बना दिया है कि केवल रजिस्टर्ड वी० पी० पेकेट ही लिये जायंगे। इस नियमके कारण भविष्यमें "विज्ञान" वी० पी० पेकेटसे भेजनेपर ग्राहकोंको ३≡) देने पड़ेंगे। इसी लिए हम अपने ग्राहकोंसे निवेदन करते हैं कि बजाय वी० पी० मंगानेके वार्षिक मूल्य मनिआर्डर द्वारा भेज दिया करें। इसमें उनका =) का लाभ होगा और हमें भी सुविधा होगी।

आशा है कि जिन सज्जनोंका चन्दा पूरा होगया है अथवा जो नये ग्राहक बनना चाहते है, वह मनीआर्डर द्वारा ३) भेजनेकी कृपा करेंगे।

निवेदक
अवैतनिक मैनेजर

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैन्डर्ड प्रेस, (रामनाथ भवन) इलाहाबाद में १४५ पेज से १९२ तक छपा।

उपयोगी पुस्तकें

१. दुग्ध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २—ईख औरखांड-गन्नेकी खेती और उत्तम पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-) ३—करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ।॥) ४—संकरी करण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके या पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५—सनातन धर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीनअंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६—कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-)७-केला-मूल्य -) ८—सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ।॥) १०-नींबूनारंगी, ११—काल समीकरण मध्यम स्पष्ट काल ज्ञान, १२—निज उपाय औषधोंके चुटकुले, १३—मूंगफली =)॥

इनके सिवाय, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिम काठ, दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आलू की खेती, नामक ग्रन्थ छप रहे हैं।

मिलनेका पता:—पं० गंगाशंकर पचौली—भरतपुर वा बूंदी

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेसमें मुद्रित तथा विज्ञान परिषद, प्रयाग से प्रकाशित।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्णसंख्या ६५ Reg. No. A 708

भाग ११ सिंह, संवत् १९७७ । अगस्त, १९२० संख्या ५

Vol XI. No 5

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ११ } सिंह, संवत् १९७७। अगस्त सन् १९२०। { संख्या ५

गरमी और बरसात

कविताकी उमंग थी हृदय था,
लिखनेको कलम था, कुछ न भय था,
गरमीसे हुई कहीं जो दो चार,
भागे घर छोड़ प्रेम शृंगार ॥ १ ॥
सूखे रस, भाव खागया ताव,
टूटी तंत्री, लगा कहीं घाव।
लिखने को ज़रा कलम उठाया,
स्याही सूखी पसीना आया ॥ २ ॥
थी पानीकी खींच पड़गया काल,
रुख़सत किया जाज़िबोंको फिलहाल।
दुनिया गरमी से तच गयी थी,
यह भूमि चिता सी रच गयी थी ॥ ३ ॥
ठंढक भी पनाह ढूंढ़ती थी,
याँ छाँह भी छाँह ढूंढ़ती थी।
पर्वतके खोह में, दरों में,
तहखानों पटाव के घरों में ॥ ४ ॥
गहरावमें, बावड़ी कुओंमें,
जाकर छिपी मांदों, खोबदों में।
गरमी कि दुहाई फिर गयी थी;
ठंडक चहुँ ओर घिर गयी थी ॥ ५ ॥
छाया प' धूप की पड़ी छाँह,
तपती तहखानोंमें सड़ी छाँह।
रातोंमें असह्य चाँदनी थी,
अपनी असलियत उसने पकड़ी ॥ ६ ॥
थी रात न नींद, दिन न आराम,
ऐसी गरमी से पड़गया काम।
सोना बद्‌ख़्वाब हो रहा था,
जी जलके कबाब हो रहा था ॥ ७ ॥
नख सिख तक आग लगरही थी,
शिद्दतकी प्यास लग रही थी।
रीती कर दीं कई सुराही,
पानी ने न आग वह बुझायी ॥ ८ ॥
ककड़ी, खरबूज़े हिन्दवाने,
खिरनी औ' फ़ालसे, बिदाने।
निबटे तर औ' रसीले मेवे,
बुझती भी प्यास कोई ढबसे ॥ ९ ॥
कुछ देर प' आम भी जो आये,
गरमीका पयाम ख़ास लाये।

हुए फोड़े औ फुन्सियों के उत्पात,
सरकार के गुप्त चरने की घात ॥ १० ॥
नहीं अन्नमें स्वाद! कर्म्म फूटे !
छक्के थे रसोइयों के छूटे।
रससे और अन्नसे न थी भेंट,
पानी पी पी के भर लिये पेट ॥ ११ ॥
भोजन का स्वाद और आनन्द,
जलपान नहान में हुआ बन्द।
थी धूप में बढ़गई व' ज्वाला,
आंखें नहीं सहती थी उजाला। ॥ १२ ॥
जो था जहां वां ही तपरहा था,
हांफै था पड़ा तड़प रहा था।
पंखों से आग थी बरसती,
बहने को वायु थी तरसती। १३
कपड़ा काटै था यों बदन पर,
था ग्राम ही का लिबास तनपर।
दरवाजे झरोखे बन्द करकर,
ख़सख़ाने कितनेही किये तर ॥ १४ ॥
पंखों से, भीगी चादरों से,
हिम से, ठंढाई शर्बतों से।
किये ठंडके थे उपाय जितने,
गरमी से न पाये तबभी बचने ॥१५॥
कुछ बर्फ भी क्या दहल गयी थी,
डूबी थी पसीने से छिपी थी।
पाले की जानके थे लाले,
पड़कर गरमी के आज पाले ॥१६॥
कितना ही झल रहे थे पंखा,
पर धार न तोड़ता पसीना।
ठंडक की रूह खिँच रही थी,
या जड़ गरमी की सिँच रही थी ॥१७॥
सुनते थे हवा जो पहले ठंडी,
ठंडी य हवा व' हो गयी थी।
मार्त्तंड प्रचंड तप रहे थे,
मारण का मंत्र जप रहे थे ॥१८॥
धरतीको तपा तवा बनाया,
जड़ चेतन चाहते जलाया।
भुन भुन के लुओं से रेत उड़ती,
धरती की दशा भी भाड़ सी थी ॥१९॥
मैदान के झुलस गये थे रोएँ,
आँसू गये सूख, कैसे रोएँ?
उत्पात य' देखकर लुओं के,
पत्थर के भी कलेजे सूखे ॥२०॥
पृथ्वी पंचाग्नि तापती थी,
सूरज को निहार कांपती थी।
पानी नहीं रहा कहीं आप,
'जल' पर पड़ा उसके नाम का शाप ॥२१॥
तालाब कुएं थे जलके भूखे,
प्यासों नदियों के होंठ सूखे।
दुबले हुए जितने थे जलाशय,
इक बच गये सिंधु जी महाशय ॥२२॥
दिनकरने किया था काल को मात,
भयसे सहमी सुकड़ रही रात।
दिनमें सूरज का राज ठहरा,
हुआ रात में भी तपनका पहरा ॥२३॥
जलसे थलसे अचरसे चरसे,
खिँच जाता था नीर विश्वभरसे।
धन खींचे था भानु यों धरासे,
परदेसी राज ज्यों प्रजासे ॥२४॥
थे पेट भरे, मगर थे भूखे,
दुबली हुई देह, होठ सूखे।
आहों से कंठ भर रहे थे,
थे शब्द प' ताप से दबे थे ॥२५॥
कुछ बोलने का नहीं था यारा,
गरमी से नहीं था कोई चारा।
यह तेज प्रताप देख इनका,
जलने लगा ईरषा से मघवा ॥२६॥
डौंडी पिटी स्वर्ग में कि सेना,
सज जाय, है इन*को बांध लेना।
बेतार का तार भूमि पर भी
पहुँचा, चरचा तुरन्त फैली ॥२७॥
लगीं मक्खियां घर में आके भरने,

*इन = सूर्य

तंगी पर और तंग करने।
भीतों प' मकड़ियाँ रेंगती थीं,
और चींटे चींटियों की पाँती ॥२८॥
रखने लगी बिल में ढांके चार,
सब मिल बरसात का सहारा।
फैलाकर पूँछ वायुकी ओर
इक कोने इकट्ठे होरहे ढोर।२६॥
थूथन को उठाके सूँघते पौन,
खेतों में खड़े निहारते मौन।
गदहे के सिवा थे जन्तु जितने,
बेचारे थे मर रहे विचारे ॥३०॥
छप्पू ही इक प्रसन्न मन था,
"चरली सब घास" यों मगन था।
हां, और, मियाँ मदार फूले,
थे "अर्क" के नामपर जो भूले ॥३१॥
सब प्राणियों में वरिष्ठ हम हैं,
प्रत्युत, नहीं देवों से भी कम हैं।
यह गर्व के वाक्य कहनेवाले,
सब सर्द व गर्म सहने वाले ॥३२॥
धीरज से हाथ धोके बैठे,
सब होश हवास खोके बैठे।
हुआ दर्प इधर जो चूर इनका,
तय्यार उधर हुआ था मघवा ॥३३॥
पहले घन घेर घार लाया,
कर फेर दो एक भय दिखाया।
तरकश से हजारों तीर छूटे,
बन्दी करने को वीर छूटे ॥३४॥
दिननाथ को नाथ रखना चाहा,
पर इन ने भी ऐसा उनको वाहा।
भागे घन त्राहि त्राहि करते,
धमकाते, गरजते और बिखरते ॥३५॥
घबराये, घनों प' अग्नि के बान
जब छूटे रही न जान में जान।
अब चादर ओढ़ बादलों की,
लगे तपने दिनेश, वायु रोकी ॥३६॥
याँ छाँह नहीं, न धूपही है,
ऊमस की दुहाई फिर रही है।
इससे भला ईश मौत देते,
दममें भी न दम रहा कि निकले ॥ ३७ ॥
घबरा गये इतने सारे प्रानी,
लगे मांगने लोट लोट पानी।
इक स्वरसे दुहाई दी सबोंने,
बिनती अरदास की सबोंने ॥ ३८ ॥
वज्रायुध का हृदय पसीजा,
करुणाके जलसे नेत्र भीजा।
पर-पोर प' रोदिये सहसनैन,
मेघोंको प्रलयके होगयी सैन ॥ ३९ ॥
बल त्रीसमें वह भला कहां है,
करुणामें जो उबल रहा है।
परवाने हुए समर प' जारी,
बिजली की हरेक पर सही थी ॥ ४० ॥
सेना लगी मोरचे प' जाने,
लेकर मघवाके तोप खाने।
आकाशमें होगया अँधेरा,
नहीं हाथको हाथ सूझता था ॥ ४१ ॥
सूरजको न इन्द्रकी थी परवा,
हरबोंसेवि' सर्वदा सजा था।
हुआ कोप य' देख बेहयाई,
बढ़कर रण दुन्दभी बजायी ॥ ४२ ॥
इतनेमें हुआ व' घोर घमसान,
छूटे जो असंख आपके बान।
धरती सारी उसोसे पाटी,
गरमी की ऋतु समस्त काटी ॥ ४३ ॥
दिननाथको करलिया नजरबन्द,
सेनाको हुआ असीम आनन्द।
पावसने जो इन प' जय है पायी,
बजने लगी व्योममें बधाई ॥ ४४ ॥

× × × ×

क्या धूमसे अबके आयी बरसात,
सुखके संदेश लायी बरसात।
उमड़ी हैं घटायें काली काली,
ठंडक धरती प' लानेवाली ॥ ४५ ॥

पाकरके बड़ोंकी छत्र छाया,
अब भूमिको तापकी न चिन्ता।
कम होगया इस तरह उजाला,
अब आखोंकी मिट गयी है ज्वाला ॥ ४६ ॥
सच है, विषयोपभोग अत्यन्त,
लाता है तीव्र ताप ही अन्त।
उपरत' विषयोंसे जी में आयी,
ठंडक तब तप्त मनने पायी ॥ ४७ ॥
आने लगे ठंडे ठंडे झोंके,
हिलमिलके फुहारे बादलोंके।
बूंदे छोड़ीं झड़ी लगायी,
घनने सुखकी घड़ी दिखायी ॥ ४८ ॥
रिमझिम रिमझिमके स्वर सुहाने,
कानोंको लगे अतीव भाने।
पानी नहीं, है अमी बरसता,
जिसके लिये था जगत तरसता ॥ ४९ ॥
भरभर टंकी में काली काली
इसे स्वर्गसे लाई माल गाड़ी।
धरती तक रास्ता न पाकर,
जाती है वहीं गिरा गिराकर ॥ ५० ॥
छोटेसे बड़े थे जितने प्रानी,
सब जी गये ज्योंही बरसा पानी।
भरपेट पियूष जो किये पान,
अंगारोंमें पहन गये प्रान ॥ ५१ ॥
या शंका शत्रुओंकी छूटी,
लगी घूमने इन्द्रकी बधूटी।
लगे कीड़े मकोड़े रेंगने सब,
उड़ने खाने औ' बोलने सब ॥ ५२ ॥
टरटर फैली जो दादुरोंकी,
गूंजी झनकार झिल्लियों की।
डैने सुखसे बजा रहा है,
मच्छर का व्यूह आरहा है ॥ ५३ ॥
पर लेकर आगयी जवानी,
मिटगयी चींटी की जिन्दगानी।
अभी वैस बहुत नहीं गुजारी,
पर होगयी क्यों य' जान भारी ॥ ५४ ॥

मरता है पतंग क्यों दिये पर,
पछतायेगा अंत निज किये पर।
या नाम प' अपने मर रहा है,
सच आत्म-प्रेम कर रहा है ॥ ५५ ॥
मरते हैं प' टूटता नहीं तार,
खुला जीवोंका क्या अटूट भंडार।
निर्जीव जगत जो हो रहा था,
अणु अणु अब जीवोंसे है पूरा ॥ ५६ ॥
उमड़ी नदी सोते नाले फूटे,
महिके गरमीके छाले फूटे।
बापी, कुएं, ताल, सर, तलैया,
बहे घाट औ' बाट औ' अथैया।
धरती की प्यास बुझ गयी है,
चारों आशा जलामयी है।
गलियों कूचों में औ' सड़कपर,
धारा जो बही कमर कमर भर ॥ ५८ ॥
लड़के लगे शौकसे मँझाने,
और मद्रसे भीगते ही जाने।
छुट्टी हुई भागे शोर करते,
भौंरे चकरीके भाग लौटे ॥ ५९ ॥
मंडलियां गा बजा रहीं हैं,
सावन है मलार भी कहीं है।
जुट गये व्यायाम करने वाले,
खुदवाये जहां तहां अखाड़े ॥ ६० ॥
लंगोट कसे धसे पहलवान,
होने लगीं कुश्तियां पटे वान।
अनुकूल जल और वायु पाके,
हैं स्वास्थ्यके बीज आज बोते ॥ ६१ ॥
जैसे हुए बस्तियोंमें दंगल,
जंगल में भी होरहा है मंगल।
चशमे फूटे पहाड़ियों से,
धारा बह निकली झाड़ियों से ॥ ६२ ॥
गिरिवरसे जलप्रपात की धूम,
जंगलमें सवेग वातकी धूम।
निखरी हरियाली वह छबीली,
नखसिखसे सजी बजी रसीली ॥ ६३ ॥

ब्रज की बरसात याद करके,
निकली है हरीतिमा पहरके ।
या श्याम ने था कभी हरा चीर,
खींची है विचित्र उसकी तसवीर ॥ ६४ ॥
ऋतुने बदली है अपनी पोशाक,
या ग़मसे इमामके है ग़मनाक ।
प्यासे दिये प्राण धर्म्मपर वार,
डाली उनपर पियूष की धार ॥ ६५ ॥
हरियाली की पत्तियों की है धार,
दुर्भिक्षके काटने को तलवार ।
यदुवंशका कर दिया जो संहार,
दुर्भिक्ष नृशंस क्या है व्यापार ॥ ६६ ॥
लिये मोरछलों को मोर माते,
हैं नाचते गाते पेंच खाते ।
तरुवर तर हो रहे हैं जलसे,
पर ऋतुके देखते हैं जलसे ॥ ६७ ॥
क्या बचने को धूप और जलसे
जंगलने लगा रखे हैं छाते,
बरगद छतनारे क्या खड़े हैं,
खेमे सुरराजके गड़े हैं ॥ ६८ ॥
कादम्बिनीके लिये प' उपहार,
कलियां ले, कदम्बपर हैं असवार ।
या गोलियां युद्धसे बची हैं,
शोभार्थ कदम्बपर रची हैं ॥ ६६ ॥
प्यारा व' कहीं बगलमें आये;
शायद कि खिलत हमें पिन्हाये ।
घनश्यामके नाम पर है भूला,
इस ख्याल प' है कदम्ब फूला ॥ ७० ॥
खेतोंमें हरे भरे जो निकले,
अंकुर मका ज्वार बाजरे के
दिल आज किसानों का हरा है,
भंडार आनन्द का भरा है ॥ ७१ ॥
वह गरमी की धूप और मैदान,
दिन दिन रहे जिसमें वह परीशान ।
जितना था पसीना तब गिराया,
उतना ही फल अब अमी सा पाया ॥ ७२॥

क्या सब्ज़ परी की इन प' है शान,
लहरा रहे हैं अनन्द से धान ।
यह देखिये वायुके भी धन्धे,
कंधोंसे छिल रहे हैं कंधे ॥ ७३ ॥
दुर्भिक्ष दमन की या कमाँ ले,
हरी-कुर्तीके ये खड़े रिसाले ।
या श्यामके प्रेममें अड़ीं हैं,
इक पांव प' गोपियां खड़ी हैं ॥ ७४ ॥
गैरों प' निसार होने वाले,
अपने आपे को खोनेवाले,
दाना हुए कौल के व' पक्के,
भुट्टे हुए भुनके जाके मक्के ॥७५॥
वह जाती नहीं गड़ी गिरानी,
कितना हीं बरस रहा है पानी,
बजरे प' है अब तो आस असवार,
बेड़ा लगेगा गरीबों का पार ॥७६॥
बरसात थकी पड़ी जो झीसी,
बूढ़े मक्के की खिली बतीसी ।
बचने में हुई ज़रा जो देरी,
ऐनक हुई आबदीदा मेरी ॥७७॥
आयसथा पहले आबपाशी,
स्वागत है अब गुलाबपाशी ।
या विश्व में जान कुछ न दूजा,
बरसात ने की विराट् पूजा ॥ ७८ ॥
सरसूखे पियूष से गये भर,
दिये पाद्य मनो चरन कमल पर,
थी ओलती, अर्घ्य वाह था स्नान, ?
हरियाली स्वच्छ वस्त्र का दान ॥ ७९ ॥
रंगीन था इन्द्र चाप उपवीत,
मोथा औ' उशीर गंध थे शीत ।
अरबिन्द कदम्ब की थी माला,
खद्योत का दीप था उजाला ॥ ८० ॥
सारी कृषि अँजलियों में भर भर,
नैवेद्य धरा विनीत होकर,
तुलसी की पत्तियां थीं औ' फूल,
पुंगी फल थे, नवीन ताम्बूल ॥ ८१ ॥

जल गिरता था भीगता चमन था,
य' विराट का मानों आचमन था।
पाया है राज, मान उपकार,
पावस पूजें हैं कर सदुपचार ॥ ८२ ॥
भिंडी घिया तोरई चचिंडे,
बंडे अरवी अलाबु टिंडे,
कुम्हड़े खीरे भटे करेले,
जलसे हैं भरे धरे य' कलसे ॥ ८३ ॥
मानों मिल जुलके आज सानन्द,
पावस की प्रजा के लोग स्वच्छन्द,
स्वागत में शरद के सब खड़े हैं,
हाथों में पियूष के घड़े हैं ॥ ८४ ॥
पल्लव शाखा लता द्रुमाली,
हिलमिल के सप्रेम डाली डाली।
फलते हैं फिर भी फूलते हैं,
आनन्द में मिलके झूलते हैं ॥ ८५ ॥
बरसात य' दे रही है शिक्षा,
है मेल का फल सदैव मीठा।
नहीं पकता जिनको है सुहाती,
फटै फूट की भांत उनकी छाती ॥ ८६ ॥
छोनी की छटा बढ़ी थी अविराम,
थे रीझते देख राधा घन श्याम।
अम्बर से उतर के अन्त आये,
भूमंडल बीच दोनों छाये ॥ ८७ ॥
ऋतु लड़कियों को भी ऐसी भायी,
गुड़ियां जलधार में बहायी।
बागों में ठौर ठौर झूले,
पड़ गये गरमी के दुःख भूले ॥ ८८ ॥
गाती हैं ऊँचे पेंग लेतीं,
त्रय लोक को हैं चुनौती देतीं।
कहीं कज्जली खेलतीं हैं ढुरतीं,
कहीं नाचती गाती औ निहुरतीं ॥ ८९ ॥
अहि-पंचमी, कज्जली, सलोनों,
जन्माष्टमी और दही कंदो।
तिहवार अनेक आरहे हैं,
सुख के निसि दिन दिखा रहे हैं ॥ ९० ॥

बरसी मघा मक्खियों की दुश्मन,
लगे शौक़ से भीगने सभी जन।
कीचड़ गलियों में और सड़क पर,
दुःखद होते हुए है प्रियतर ॥ ९१ ॥
छप्पर हलवाहे का टपकता,
आनन्द से है य' दुःख सहता।
इक खाट प' बूढ़े बाल बच्चे,
बचने के लिये हैं जाते सिमटे ॥ ९२ ॥
इक छोटा जो उनमें सब से भोला,
घिसघिस के बजा रहा अमोला।
जिस साल न मेघ था बरसता,
उस साल मुहर्रम आके पड़ता ॥ ९३ ॥
बरसात में मुसलिमों की भी ईद,
आयी खुशियों की गोया तमहीद।
आनन्द में थे निदान सब लोग,
निस दिन संझा बिहान सब लोग ॥ ९४ ॥
बिरही ईर्षालु को उदासी,
थी जैसे कि जल में मीन प्यासी।
कादम्बिनी जोहीं व्योम छायी,
बिरही के हिये में पीर आयी। ॥९५॥
बिजली से पडी चमक कमर में,
टीस उठी गरज को सुन जिगर में।
बूंदें चिनगारियों सी लगतीं,
सूखी ठठरी को पा सुलगतीं ॥९६॥
ठंडक आकर लगी जो कौरे,
आने लगे बेसुधी के दौरे।
पीपी जो पुकारता पपीहा,
बढ़ती सुन सुन दास की तीहा ॥९७॥
गरमी ने बढ़ायी थी जो ज्वाला,
बरसात ने उसप' तेलडाला।
जितने ऋतु के थे सुख के सामान,
हुई इन्द्रियाँ उनसे ही परीशान ॥९८॥
चातक स्वाती प' मर रहा था,
जलथल था तमाम वह था प्यासा।
पावसने न उसकी हठ निभायी,
स्वाती की शरद में बारी आयी ॥९९॥

भागों में सुख नहीं है जिसके;
दुख पावे है कल्प तरु के नीचे।
सुख औरों का देख जल रहे हैं,
आक और जवासे मर रहे हैं। ॥१००॥
संझा का सुहाना क्या समा है;
आकाश जहाँ तहाँ खुला है।
हैं रंग बिरंग बादलों के,
गिरगट से रूप जो बदलते ॥१०१॥
पावस की प्रजा के हेतु उपहार,
कपड़ों का सजा अनूप शृंगार।
या गरमी को इन्द्रने पछाड़ा,
इस मोदमें यह सजा अखाड़ा ॥१०२॥
वह देखिये आज पा के शासन,
लेकर आये हैं दो शरासन।
पूरब में देखकर लगा आग,
सूरज पच्छिम से क्या चला भाग ॥१०३॥
एक आंख की या य' दो भवें हैं,
उत्तर दक्खिन की या हैं मांगें।
या व्योम के माथे के तिलक हैं,
या नाभि के पद्म के फलक हैं ॥१०४॥
या व्योम की तेवरी चढ़ी हैं,
रेखाएं याकि कर्म की हैं।
माथे पर कालके पड़े बल,
या मृत्यु के हँसियेके हैं दो फल ॥१०५॥
या बलितासुरकी* भीत की रेख,
हरिहरको भ्रम हुआ इन्हें देखं।
या सूर्य्य ने मानली है अब अहार,
विनयी हो रखदिये हैं हथियार ॥१०६॥
या रंगकी धारें रेलते हैं,
जयमोद में फाग खेलते हैं।
उड़ती है गुलाल की फुहारें,
पिचकारी दीहैं य' दोनो धारें ॥१०७॥

या रक्तकी जा बही थी धारा,
जब घोर समर यहां हुआ था।
अम्बरपर खींची उसकी तस्वीर,
हम को दिखलाने की है तदबीर ॥१०८॥
लूटा था याकि तोशा खाना,
रविका; यहां खोल कर खज़ाना।
जिन जिन अस्त्रों से जय थी पायी;
खुश होके खिलत उन्हें पिन्हायी। ॥१०९॥
या किरणों को पाके आज दुर्बल,
अपने नन्हें कणोंसे भी जल।
करता है लाख लाख टुकड़े;
रचता है नराचों के नमूने ॥११०॥
रवितापसे भाफ हो उड़ा जल,
अम्बर में बना'व' जाके बादल।
घनश्याम से मिलगयी जो राधा,
हुई लौटने में कुछ उसके बाधा ॥१११॥
परथा निश्चय वियोग तपना;
घनश्याम का भी पड़े तड़पना।
फिर खोज में उसके आप आना,
धरती माता के पास पाना ॥११२॥
खुशहो चादर हरी उढ़ाना,
कर शान्त फिर आप शान्ति पाना।
वह सब पावसका हो गया ब्याज,
कहते हैं एक पंथ दो काज ॥११३॥

× × × ×

हे सुखकी बढ़ाने वाली बरसात,
अमरित बरसाने वाली बरसात।
शीतलता लानेवाली बरसात,
मुरदों को जिलानेवाली बरसात ॥११४॥
खेती की प्राण, वर्ष की जान;
अनपूर्णा देवी अन्न कीखान।
आनन्द की जो बहायी धारा,
उसमें है मगन जगत् य' सारा ॥११५॥
तु संखों साधुवाक के योग्य,
औ' कोटि गुणानुवाद के योग्य।
रक्खे तुझे ईश जलसे भर पू;

---

* असीरिया के राजा बलिता सुरने विजयके आनन्दमें भोज किया। उसीसमय भीतपर अदृश्य हाथोंने बड़े बड़े अक्षरों में अंकित किया" तुम तौले गये और हलके ठहरे।"

दुर्दैव दुकाल दुखरहे दूर ॥११६॥
ऋतुमें तेरा इष्ट आगमन हो;
दुर्भिक्ष दरिद्र का दमन हो।
पूरी ऋतु हर बरस हो तेरी,
उत्पत्ति हो अन्नकी घनेरी ॥११७॥
दिन श्रावणी कृष्ण जन्मकी रात,
दिन दिन हो ईद, रात शबरात।
इसढब से सदैव आये बरसात,
सुख के संदेस लाये बरसात ॥ ११८ ॥

—रामदास गौड़

मंगल-ग्रह

पृथ्वीके पुत्रकी कथा

बुद्धिकी चक्षुकी सहायताको न लेकर रात दिन केवल चार्म चक्षुओंसे देखनेसे यही प्रतीत होता है कि हमारा भूमण्डल सम्पूर्ण संसारका केन्द्र है। सब पदार्थ यहांसे ही पैदा होते हैं और यहां ही अन्त होजाते हैं। दिनके समय बड़ा प्रकाशमान पिण्ड प्रकाश देता रहता है; तो रात्रिके समय छोटे छोटे गौण दीपक चमका करते हैं। यह सब कदाचित् हमारी अति महती भूमिके सेवक हैं जो उसकी प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं। इस पृथिवीकी तुलनाका संसारमें दूसरा पिण्ड नहीं। शेष सब इसीकी सेवामें लगे हैं। मानो महाराज्ञी पृथ्वी के आदरके लिये नित्य उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रकार अनन्त जगत्का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

सृष्टिके आदिसे ऐसे विचारक बहुत इनेगिने हुए हैं, कदाचित् उनकी संख्या आधी दर्जन भी नहीं है, जिन्होंने ऊपरवाली साधारण धारणा पर आशंका उठाई हो। आखिरकार यूरोपमें कोपरनिकस उत्पन्न हुआ। यह एक ईसाई धर्म प्रचारक था। इसने यह सिद्धान्त निश्चय किया कि यद्यपि आंखोंसे स्पष्ट यह दीखता है कि सूर्य चन्द्र तारे आदि निस्तब्ध पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं, परन्तु यह सब दृश्य एक प्रकारका धोखा है। यह पृथ्वी ही स्वतः घूम रही है। पृथ्वी सब जगत्का केन्द्र नहीं है।

इसके कुछ दिन बाद ही १६ वीं शताब्दीमें गियार्डोनो ब्रूनो (Giordono Bruno) रोम नगरमें केवल इसलिये जीते जी जला दिया गया कि उसने यह तर्क किया था कि पृथ्वी जगत्का केन्द्र नहीं है, किन्तु अन्य लोकोंका एक साथी है। सम्भवतः उनमेंसे पृथ्वी सबसे बड़ी नहो और सूर्य भी जिसको कोपरनिकस संसारका केन्द्र मानता है संसारका केन्द्र न हो; प्रत्युत अन्य सूर्योंका एक साथी मात्र हो। अन्य सूर्य वह पिण्ड हैं जिनको लोग तारोंके नामसे पुकारते हैं।

इस प्रकार महान् विस्तृत भौतिक संसारका विचार उत्पन्न हो गया और मानव समाजके सामने आघोषित किया गया। उस समय यह विचार महापातक तथा नीच दुष्कर्मकी तरह घृणित तथा दण्डनीय समझा जाता था। इसको उपस्थित करनेवाला विज्ञानका संदेशहर ऐसा महापापी समझा गया कि उसको जीते जी जलादेना इस दुष्कर्मका उचित प्रायश्चित समझा गया। उसके घातकोंमेंसे एकने स्वयं यह लिखा है—"और इस इस प्रकार वह बड़े कष्टसे लपटोंमें जलकर भस्म होगया और उन लोकोंमें जिनकी वह कल्पना किया करता था अवश्य ही जाकर कहा करेगा कि रोमनलोग पापियों और नीचोंके साथ इस प्रकार व्यवहार किया करते हैं जैसा उन्होंने मेरे साथ किया।" इस घटनाके तीन शताब्दी पश्चात् ही महाशय ब्रूनोके विचार सर्वसाधारणमें फैल गये। अब इस सिद्धान्तमें किसीको सन्देह नहीं रहा है। यह विचार न केवल सत्य ही समझे जाते हैं प्रत्युत् कुछ लोगोंमें तो बड़े ही भव्य प्रभावजनक और मानव मस्तिष्क द्वारा आविष्कृत सच्चाई को उत्कृष्टता देनेवाले माने जाते हैं। जिस स्थानपर ब्रूनोको जीते जी जलाया गया था, वहांपर सरकारकी

ओर से उसकी मूर्त्तिकी स्थापना की गई है। इस अनन्त जगत्की कल्पनाके आधारपर अपनी और अपने भूमण्डलकी अवस्थिति, प्रधानता और भाग्य-पर पुनर्विचार करनेके लिए प्रयत्न किया जा रहा है। जब हम यह जान पाते हैं कि गगन-मण्डलमें चमकनेवाले तारोंमेंसे बहुत से सूर्य हैं और बहुत से हमारे भूमण्डलकी श्रेणीके हैं तो बहुत से प्रश्न स्वभावतः हमारे चित्तमें बड़े विस्मयजनक रूपमें उत्पन्न होते हैं। हम अपना उद्देश्य बिना उन प्रश्नों-के हल किये पूरा नहीं कर सकते।

मनुष्य इस विशाल अनन्त संसार-समुद्रमें स्वतः यात्रा कर रहा है और पता नहीं कहांसे चला था और कहांको जायगा। कदाचित् वह इस यात्रामें अकेला नहीं होगा। यदि अन्य लोक भी विद्यमान हैं तो अन्य पथिक भी क्यों न होंगे? यदि वह स्वयं अन्य यात्रियोंको प्रसन्नतासे पुकारता है तो और भी सामुद्रिक यात्री उसको क्यों न पुकारते होंगे? ब्रूनोने इन प्रश्नोंको उठाया था और उनके पास इनके उत्तर भी निस्सन्देह थे। बहुत से लोग उनको इन विचारोंके लिए कोसते थे कि यह महापापी कम्बख्त मरे तो भला हो।

गगनमण्डलके इतिहासमें या मानव-जाति-के इतिहासमें बल्कि वर्तमान सभ्यताके इति-हासमें भी ब्रूनोकी जन्म लीला अभी कलकी बात है। आज भी तो हम सब वही प्रश्न करते हैं। और इस भूमण्डलके बहुत से स्थानोंपर अपने जीवन और प्रचुर धनका व्यय केवल इन प्रश्नों-का उत्तर देनेके लिए कर रहे हैं।

अब इस बातका भय किसीको भी नहीं है कि ज्योतिषियोंके नवीन नवीन आविष्कार तथा कल्पनाएँ किसीके धर्मपर कोई आघात करेंगी। तोभी कदाचित् यह युक्ति विशेष ध्यान देने योग्य हो कि मनुष्य इतने महान संसारको देख-कर अपने जीवनको तुच्छ, छोटा और निःसार जाने या महान जगतमें अपनेको निःसहाय सम-झे या महान जगत्के विचार तरङ्गमें ही निमग्न हो जाय।

परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं समझना चाहिये। तुम्हारा आत्मा लाखों लोकोंके सामने भी शान्त और स्थिर है। मनुष्यके विचारों से उसके विचार ही केवल मेल नहीं खाते प्रत्युत् वह विद्वान् जो रात्रिभर तारोंके साथ काटते हैं; जो सदा गगन-मण्डल में स्थित ज्योतियोंकी गवेषणा, कल्पना तथा अनुशीलनमें निमग्न हैं वहभी यही स्वी-कार करते हैं कि संसारमें मनुष्यसे ऊंचा कोई नहीं और मनुष्यमें सबसे ऊंचा मनुष्य का मस्तिष्क है। मनुष्यका मस्तिष्क काल, देश और संख्यासे चाहे वह अनन्त ही क्यों न हो, जैसा कि ज्योतिषियों की गणना है, भय नहीं खाता। होरेस (Horace) कहता था कि यदि सारा गगन मण्डल किसी न्यायशील पुरुषके सिरपर भी आ टूटे तोभी वह न घबरायेगा। स्वल्प दृष्टिकी बुद्धिसे हम यह भी युक्ति कर सकते हैं कि जीवन और मृत्यु और प्रेम तारोंकी अपेक्षा उसके दैनिक कार्य और हृदयके अधिक समीप हैं। और यह कल्पना भी अन्धापन है कि आकाशमें अनन्त वस्तुओंकी सत्ता है।

हमें यह ज्ञान है कि सूर्य एक तारा है और तारे सूर्य हैं और पृथ्वी भी मङ्गल आदि ग्रहोंका एक सहयोगी पिण्ड है, जो सूर्यसे कुछकी अपेक्षा पास और दूसरों की अपेक्षा दूर है। हम यह भी जानते हैं कि यह सब ग्रह स्वयं प्रकाशमान नहीं हैं; प्रत्युत् सूर्यके प्रकाशके प्रतिफलन (परावर्तन) होनेसे चमकते दिखाई देते हैं। इतनी दूर तकभी बिना प्रश्न करते हुए कोई नहीं पहुंचा, जिसका कि विज्ञानने समाधान न किया हो।

अन्य लोकोंमें भी जीवन और मस्तिष्क है, इस बातको न तो कहा ही जा सकता है और न इसका निषेध ही किया जा सकता है; तो भी पर्याप्त आधार और परिणाम हमारी अगली सन्ततिको प्राप्त होगा जिनसे वह इन प्रश्नोंका

निरूपण कर सकेगी। हम यहां तक पहुंच गये हैं कि यह सब लोक एक संघ बनाते हैं तो अब यह निर्धारण करना है कि क्या यह जीवन और मस्तिष्क धारण करनेमें भी सहयोगी हैं ?

बहुतसे विचारक इसका विरोध करेंगे, करते रहे हैं और अब भी करते हैं। क्योंकि उनके चित्तमें एक बड़ा भारी भ्रम बैठ गया है। वह यह कि हम आकाशमें जो भी कुछ खोजते या ताकते हैं उसमें कुछ मनुष्यका भी पता चलता है या नहीं। परन्तु अभी यह केवल विचार और सम्भावना ही है कि हम अपने पृथ्वीसे अतिरिक्त भी मनुष्य की सत्ता मानें। यह सिद्ध करना बहुत ही सरल है कि मङ्गलमें मनुष्यकी स्थिति नहीं है; विशेषतः उनके लिए जिनके विचार अपनेसे परे नहीं जाते। कह दिया कि मङ्गलमें मनुष्य नहीं हैं। बस। विवाद समाप्त। बहुत से ज्योतिषियोंने भी ऐसा ही माना है।

परन्तु जीव-विद्या-विशारदको विवाद करनेका इस में कोई आधार नहीं है। वह मनुष्यकी खोज नहीं कर रहा है। प्रत्युत् यदि ज्योतिषी लोग उसको निश्चय करा दें कि किसी अन्य ग्रह या उपग्रहमें भूमि और जलकी स्थिति इसी पृथ्वीके समान है; वायुमण्डल और उसका दबाव ऐसा ही है, समुद्र समान रूपसे खारी है। वहां मनुष्यादि जीवोंकी आवश्यकताओं के लिये सभी उपयोगी वस्तुएं यथा तथा विद्यमान हैं। तो फिर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि उस पिण्डमें जीवनकी सम्भावना है।

कल्पना करनेके लिए तो यह भी कल्पना की जा सकती है कि अन्य आकाशीय पिण्डोंमें भी, कदाचित् सूर्य चन्द्र ताराओंमें भी, जीव सृष्टि हो। कदाचित् ओषजन, कर्बन आदि द्रव्य केवल इस भूमिके साथही सम्बद्ध है। वहाँ इनकी चर्चा ही नहीं होती हो। यहाँके जीवनोपयोगी द्रव्य वहाँ से सर्वथा भिन्न होते हों। गुरुताके नियम कदाचित् वहांकी जीव-सृष्टिपर न लगते हों, इत्यादि। परन्तु यह कल्पनाएं केवल कल्पना मात्र हैं, क्योंकि सार्वभौम नियम एक देशीय नहीं होते। वह समस्त जगत्में समान भावसे काम करते हैं। ओषजन कर्बन, आदि द्रव्य जैसे पृथ्वी में हैं अन्य स्थान पर भी वह ऐसे ही रहेंगे। गुरुताका प्रभाव जैसा यहां है वैसा ही सारे ब्रह्माण्डमें कार्य करेगा। इस लिए जो जीवनके मुख्य कारण और आधार यहां आवश्यक हैं वही अन्यत्र भी जीवनके कारण बनेंगे। इसलिए हम वैज्ञानिक आधारोंपर भी अन्यथा कल्पना नहीं कर सकते। इसलिए अब जीवनके आधारोंकी गवेषणा करना ही उचित है। वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि बिना जलके जीवसृष्टिका प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। जलमें ही प्रथम जीवसृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ है।

अन्य गगनपिण्डोंके विषयमें यह कल्पना करना कि कदाचित् वहां बिना जलके ही किसी अज्ञात वा अविज्ञेय प्रकारसे जीव सृष्टिका प्रादुर्भाव हुवा हो ऐसी ही कल्पना है जैसे कोई कहे कि आकाशके टूट पड़नेसे उड़ता पक्षी गिर पड़ेगा; यदि सूकरके पंख होते तो उड़ जाता; इत्यादि। पर वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके आधारपर कार्य कारण रूपमें सम्बद्ध कल्पनाका उद्भावन करना समुचित है।

ज्योतिषीके लिए यह सिद्ध कर देना ही शेष है कि अमुक पिण्डमें जल और भूमिकी सत्ता है। इसके साथ ही ओषजन (oxygen) की सत्ता स्वतः सिद्ध हो गयी।

महाशय गीयार्डानो ब्रूनोने इस विषयमें बहुतसे प्रश्नोंका समाधान किया है।

सबसे पहले विचार हमारे समीपतम यात्रीके विषयमें होता है। समीपतम यात्री अपना चान्द ही है। वर्तमानके ज्योतिषियोंके पास दूरबीन ऐसा विश्वास्य है जिनसे वह पूरा पूरा निश्चय कर सकते हैं। कदाचित् चन्द्रमें जल हो और जीवोंकी सत्ता उसमें भी हो। परन्तु निरीक्षणने

सिद्ध कर दिया है कि चन्द्रमें वायुमण्डल नहीं है। इससे जीवनकी संभावना दूर हो जाती है।

अब मंगलके विषयमें विचार करते हैं। इसके विषयमें चतुर वैज्ञानिक न केवल जीवन की सत्ता प्रमाणित करते हैं, प्रत्युत् यहांतक कहते हैं कि मंगलके निवासी बड़ी बड़ी संगठित संस्थाएं बनाकर जीवन बिता रहे हैं।

सौर कुलका मंगल एक ग्रह है। और सूर्य स्वतः एक तारा है। जिस समय सूर्य और मंगलके मध्यमें हमारी पृथ्वी आती है, वह सबसे अच्छा समय होता है कि मंगलके पृष्ठका निरीक्षण किया जावे। उस समय उसके पृष्ठपर जल और स्थल, समुद्र और भूमिका भाग पृथक् पृथक् दीख पड़ता है। इस बातकी खोज निकालनेवाला सबसे प्रथम इटालियन विद्वान् शिपरेली (Schiaparelli) था। यदि अन्तमें भी मंगलकी वर्णनाकी पूरी सिद्धि हो गयी तो निश्चयसे यही कहा जायगा कि १९ वीं शताब्दीमें इटालियन ज्योतिषीने १६ वीं शताब्दीके इटालियन तत्त्ववेत्ताके पक्षका पूरा समर्थन किया है। शिपरेलीने मंगलके पृष्ठपर कुछ ऐसे चिन्ह देखे, जिनसे उसने मंगलमें जलकी नहरोंका अनुमान किया। नहर शब्दसे यही अनुमान सहजमें निकलता है कि उनको बनानेवाले कदाचित् मानव जीव हों। और वह भी बहुत सी संख्यामें संगठन बनाकर जलकी आवश्यकतासे प्रेरित होकर बनाते हों। परन्तु यह कल्पना शङ्काग्रस्त हुई। वह नहरें न होकर कदाचित् स्वाभाविक नाले ही हों। या मंगल ग्रहके ठण्डे होनेपर उसके पृष्ठपर दरारें या चीरें फट गयी हों।

विवाद अब दो रूपमें उपस्थित हो गया कि नहरें हैं या नाले; या नाले हैं या चीरें, दरारें?

उसके बहुत से आलोचक तो यह कह उठे कि मंगलग्रहपर कालीरेखाएं भी हैं, यही असत्य है। वास्तवमें काली रेखाएं कुछ नहीं हैं। यह केवल देखनेवालेकी निजकी कल्पना है, या निरन्तर देखते हुये आंख फैलजानेसे आंखका दोष है। आंखकी नसोंमें खून उतर आनेसे रेखा रूपमें मंगलपर नहरोंका भ्रम हो जाता है; इत्यादि।

इसी बातकी परीक्षाके लिये प्रोफेसर पर्सिविल लोवेलने फ्लेग स्टाफकी वेधशालामें अनुकूल स्वच्छ रात्रिमें मंगलके बिम्बका स्पष्ट निरीक्षण किया। वह निम्न लिखित परिणामों पर पहुँचे।

मंगल एक ऐसा ग्रह है, जिस पर बड़ी भारी सभ्यतावाली प्रजा बस रही है। वह अब प्यासके मारे मृत्युका ग्रास हुआ चाहती है। पानीका अभाव सब से अधिक घातक होता है। मंगल अपेक्षतः छोटा होनेसे अपने वायुमण्डलमें जलीय वाष्प को बड़े ग्रहों की तरह बहुत अधिक नहीं रख सकता। क्योंकि छोटा होनेसे उसकी गुरुत्व-शक्ति न्यून है। जलकी न्यूनताके समान कष्टमें वहांके सभी निवासी एक मत होकर मिल गये। उन्होंने ध्रुवों पर विद्यमान जल राशिको अपने निवास भूमियों तक पर्याप्त मात्रामें पहुंचाने के लिए नहरोंका बड़ा भारी प्रबन्ध किया है।

इन नहरोंके अतिरिक्त नाना प्रकारके निम्न स्थलोंपर सब्जी, हरयाली, लहराती है और कालान्तर में सूख कर पीली पड़ जाती है; जो मंगलके लाल बिम्ब पर रंगमें कुछ भेद लिये हुये दीखती है। मंगलके ध्रुवोंपर हिम विद्यमानहै जो प्रत्येक मंगलके वर्ष की वसन्त ऋतुमें पिघल कर थोड़े क्षेत्रमें रहजाता है। नहरें बहुल संख्यामें बहने लग जाती हैं और किनारों पर हरियाली लहलहाने लगती है। इस प्रकारसे इन नहरोंके बनानेवाले मंगलके मूलनिवासी पृथ्वीके वासी हम लोगोंको शिक्षा दे रहे हैं और हमारा भविष्य भी हमको जता रहे हैं और खबरदार कर रहे हैं। साथ ही उपदेश भी देते हैं। शिक्षा यह है कि संघमें मिलकर कार्य करनेसे बड़े असम्भव कठिन कार्यभी सहज ही हो सकते हैं। भविष्य की सूचना यह है कि जलके अभावसे जो आपत्ति हमपर आ-पड़ी है कदाचित् भूलोकके वासियों पर भी आवे

गी; क्योंकि अन्तमें सब ग्रहों की यही अवस्था आगे वा पीछे होनेवाली ही है और उपदेश यह है कि उत्साह पूर्वक सदा निर्भय रह कर जीवनकी रक्षा करो और कभी मरने का नाम मत लो।

तीन बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। १—फलैग स्टाफमें लिये गये मंगलके फोटोग्राफ़। २—विज्ञानके परीक्षणों द्वारा मङ्गल में ओषजन की सिद्धि। ३—मङ्गलके वायुमण्डलमें जलीय वाष्पकी सत्ता। यह तीनों अन्वेषण सर्वथा नवीन हैं। परन्तु भविष्यमें अभी और भी पुष्टिकी आवश्यकता है। यही अन्वेषण लोवेल और उसके सहायकोंके श्रमकी सफलता स्वरूप हैं। फोटोग्राफ़ीसे चित्रपर रेखाएं अंकित हुई हैं। इससे आक्षेपक लोगोंका चित्त ठण्डा होगया। यह कहनेका अवसर न रहा कि यह केवल थकी आंखोंका भ्रम था। ओषजनकी सत्तासे यह वैज्ञानिक सत्य पुष्ट हो गयी कि जीवनके लिए ओषजनकी आवश्यकता है। इससे यह पक्ष कि कदाचित् बिना ओषजनके भी जीवन किसी ग्रहमें सम्भव हो सर्वथा गिर गया। तीसरे जलीय वाष्पकी सिद्धिसे यह भी दृढ होगया कि मंगलके ध्रुवोंपर जमी कर्बनद्वयोषिद् गैस नहीं, प्रत्युत् जलकी हिम ही है जो ऋतुके अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

इस प्रकार हमारी मूलयुक्ति अत्यन्त अधिक पुष्ट हो गयी। जलके आधारपर वहां सृष्टिकी कल्पना स्वतःसिद्ध है; तो ध्रुवीय हिमके अपने ऋतु अनुसार घटने और बढ़ने और वाष्पके होनेसे हम यहां तक कह सकते हैं कि मंगलमें विद्यमान प्राणीसंसार बहुत ही संकटमें है। क्योंकि जलकी मात्रा बहुत ही न्यून है। वहांके समुद्र पहले चाहे कितने भी जलसे पूर्ण हों, परन्तु वर्त्तमानमें अधिकतर सूखे हुये हैं। ग्रहके बिम्बका लाल रंग कदाचित् वहांके मरुस्थलोंके कारण है, क्योंकि मरुस्थल बहुत ऊंचेसे देखनेसे लाल रंगके ही चमकते प्रतीत होते हैं।

संक्षेपतः मंगल सूखता ही जा रहा है, कदाचित् यह घटना हमारी पृथ्वीके साथ भी घटेगी। मंगल हमारी पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक बूढ़ा जान पड़ता* है। उसने कदाचित् यहांसे अधिक अनुभवी तथा बड़े और उच्चकोटिके जीवोंका आविष्कार कियाहो। और उच्चकोटिकी सभ्यताको उत्पन्न किया हो। ऐसा प्रतीत होता है कि वहां पारस्परिक जातियोंके युद्ध सर्वथा बन्द हो गये होंगे और देशोंकी सीमा नष्ट हो गयी होगी और सभीपर आनेवाली भयंकर आपत्ति का (जलके अभावका) सामना करनेके निमित्त सब एकमत होकर अपने जीवनके अन्तिम क्षण तक समुद्रोंसे जल लानेके निमित्त नहरें बनानेमें लग गये होंगे।

इन आधारोंपर लोवेल और इसी ग्रहके विषयमें लगे हुए अन्य परिश्रमी विचारकोंने यह सिद्धान्त निश्चय किया है कि वह नहरें ही हैं, जिनको बड़े बुद्धिमान जीवोंने बनाया है, और इतने बड़े रूपमें बनाया है कि पृथ्वी मण्डलके वासियोंको भी उनकी वास्तविकताका ज्ञान देखनेसे ही हो गया। मंगलके गोलार्धका निरीक्षण करनेपर ज्ञात हुआ है कि ग्रहके वसन्तकालमें हिम पिघलना प्रारम्भ होता है और नहरें अधिक स्पष्ट तथा चौड़ी हो जाती हैं, अर्थात् हिमके पिघलनेसे जल अधिक बहके जाता है। नहरोंके तीरों पर हरयाली झलकने लगती है। और जगह जगह पर भी हरे स्थल दिखाई देते हैं, जो वहांकी फसलोंके सूचक हैं। इनका रंग ऋतु ऋतु में परिवर्तन होता है। कतिपय स्थल बहुत उपजाऊ हैं। बहुत से स्थानोंपर दो तीन और अधिक भी नहरें मिलती हैं। उन स्थानोंपर उपजाऊ स्थलोंकी सत्ता दीखती है। वह उपजाऊ क्षेत्र समय समय पर रङ्ग बदलते हैं। इन

* मंगलका पिण्ड छोटा है। अतः पृथ्वीकी अपेक्षा उस का विकास और परिणाम बहुत कम समयमें होना चाहिये। अतः वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि युगक्रमसे पृथ्वी मंगलकी अपेक्षा नयी नहीं है। (रा० गौ०)

स्थलोंको प्रोफ़ेसर लोवेल समयज्ञ स्थान (Vital places) कहता है।

यह नहरें दोनों गोलार्द्धोंमें सीधी सरल रेखाओं-में हैं। उनमें कतिपय हज़ारों मील लम्बी हैं। इनके बनानेके लिए मंगलके सारे ग्रहको नापा गया होगा और एक विभागका विभाग इस कार्यपर लगा होगा। यह वस्तुतः बहुत बड़ा कार्य है। विशेषतः जब हम वहांकी जन संख्या बहुत कम देखते हैं। यद्यपि जल थोड़ा है तोभी यह महान् कार्य आगामीसन्ततिके लिए किया जा रहा है।

यदि पृथ्वीके ऊपरके कार्योंसे तुलना करें तो यह कार्य निःसंदेह इतने महान् हैं कि यहां के वासियोंके खयालमें स्वप्नमें भी नहीं आ सकते।

प्रो० लोवेलकी गणनाके अनुसार यह सारी नहरें मिलकर लगभग सात या आठ लाख मील लम्बी होंगी अर्थात् हमारी पृथ्वीकी परिधिके लगभग ३० गुनी।

वैज्ञानिकोंमें सभी इस बातमें निःसन्देह हैं कि मंगलपर गुरुत्वका बल पृथ्वी जितना नहीं है; प्रत्युत् बहुत न्यून है, क्योंकि मंगल पृथ्वीकी अपेक्षा बहुत छोटा है। इसलिए उसका गुरुत्वाकर्षण बल भी न्यून ही होना चाहिये। इसलिए वह नहरें जिनको पृथ्वीपर खोदनेके लिये दैत्योंका बल चाहिये, मंगलपर बहुत आसानीसे खुद सकती हैं। मंगलपर पनामाकी खाड़ीका खोदना वृहस्पतिपर खोदनेकी अपेक्षा बहुत ही सरल है।

इस समय तो मंगलके परिश्रमी वासियोंके लिए जीवन मरणका प्रश्न है। वर्तमानके लिए तो उन्होंने नहरें बनालीं। परन्तु जब यह थोड़ी जल राशि भी समाप्त हो जायगी तो सभी प्राणी संसार अपनी मातृभूमिको कबरोंके सदृश छोड़ कर मर जायँगे।

अकबरके शासनका उद्देश्य

[ले०—पं० शेषमणि त्रिपाठी]

सम्राट् अकबरमें अद्भुत क्षमता थी। उसके पहिलेकी साढ़े तीन शताब्दियोंवाली राज्य-व्यवस्थाको आधार मानकर योग्य व्यक्ति बहुत कुछ सुधार कर सकता था। अकबरने देख लिया था कि हिन्दुस्तानकी प्रजापर मुसल्मानी शासनका क्या प्रभाव पड़ता है। पठानोंके शासनका इतिहास एक बुद्धिमान् मुसल्मान बादशाहको स्पष्ट सिखला सकता था कि भारतवर्षमें मुसल्मान शासकको कैसीनीतिका अनुसरण करना चाहिये। पठान शासनमें एक निश्चित राज्यव्यवस्था देख पड़ती थी। गताङ्कमें यह दिखलाया जा चुका है कि अकबर कैसा व्यक्ति था; उसकी योग्यता और शक्ति कितनी थी। अस्तु, आधार मालूम है और उस आधार पर कार्य्य करनेवाली अद्भुत शक्तिका भी पता चलगया है। अब यह देखना है कि इस आधार और क्षमताके एकत्र होनेका उद्देश्य क्या है, अथवा सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें अकबरके शासनका अभिप्राय क्या है। वह किस अभावको पूर्ण करनेके लिए दिल्लीके सिंहासनपर आया और उसके सम्मुख क्या और कितना कार्य्य था, यही इस परिच्छेदमें देखना है।

सिंहासनारूढ होनेके समय अकबर १३ वर्षका लड़का था। उस समय वह नाममात्रको हिन्दुस्तानका बादशाह था, क्योंकि उसके अधीन केवल दुआबका थोड़ा सा भाग और वर्तमान पंजाबका अधिकांश था। १६०५ में उसके देहान्तके समय उसका शासन हिमालयसे विन्ध्याचलतक और पच्छिमी अफ़गानिस्तानसे पूर्वी बंगाल तक फैल गया था। यह प्रसार एक निश्चित नीतिका फल था। अकबर की इच्छा सम्पूर्ण भारतवर्षको अपने अधिकारमें लानेकी थी। जीत उसके जीवनके प्रधान उद्देश्योंमेंसे एक है। भारत ही नहीं, वरन् पच्छिमके देशोंको भी जीतना उसकी इच्छा

के बाहर न था। आईन अकबरीमें बारह सूबोंका वर्णन करनेके पहले अबुलफ़ज़ल लिखता है कि— "मैं इन सूबोंका विवरण बंगालसे आरम्भ करता हूं जो कि हिन्दुस्तानका निम्नतम प्रदेश है और जबुलिस्तानतक अपने विवरणको पहुंचाना चाहता हूं। मैं आशा करता हूं कि जबतक मैं वहांतक लिख चुकूंगा तबतक सम्भवतः तूरान और ईरान ही नहीं वरन् अन्य देशोंका भी विवरण जोड़ना पड़ेगा।"* इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अकबर तूरान और ईरान इत्यादिको भी जीतकर अपने साम्राज्यके सूबे बनानेकी चेष्टा करता, यदि उसका जीवन कुछ और अधिक दिन रहता तथा अनुकूल समय प्राप्त होता।

सम्भव है कुछ लोग भारतको एक देश न मानते हों, किंतु प्राचीन कालसे लेकर वर्तमान समयतकके इतिहाससे यही विदित होता है कि भारतमें भौगोलिक एकता है। प्रायः सभी सुयोग्य सम्राटोंकी इच्छा होती थी कि समस्त देशको एक छत्रके तले लाकर राजकीय एकता प्रदान करें। भारतीय इतिहासकी चञ्चल मालाके पुष्पोंके भीतर इसी प्रयत्नका सूत्र दृष्टि गोचर होता है। तो भला अकबर सा उच्चाभिलाषी व्यक्ति अपने प्रयत्नके पुष्पको इस मालामें क्यों न गूंथता! अकबरको यह भी भूला न था कि उसका पितामह बाबर अपने पूर्वजों की भूमिको जीतनेकी अनेक चेष्टाएँ कर चुका था। वह जानता था कि अन्तमें असफल होकर भी बाबर अपने वंशानुगत देशसे प्रेम करता था। अतएव मध्य एशियाकी ओर अकबरका ध्यान जाना स्वाभाविक था। फिर मुहम्मद तुगलक इत्यादि दिल्लीके सुलतानोंकी तरह ईरान अथवा फारसपर विजय पताका फहरानेकी ओर सम्राटकी इच्छाका झुकाव होना असम्भव नहीं है। इस प्रकार जीत विषयक तीन चार समस्याएँ अकबरके सामने थीं। एक तो भारतकी भौगोलिक एकताको राजकीय एकता प्रदान करना, दूसरे अपने पूर्वजोंके देशको अपने अधिकारमें लाना और तीसरे अन्य देशोंपर विजय प्राप्त करना। अबुलफ़ज़लकी उपर्युक्त बातका दूसरा अर्थ ही क्या हो सकता है?

यदि अनुकूल समय होता तो अकबर भारतके पश्चिम भी अपनी नीति दौड़ाता। पर वह अपनी कठिनाइयोंको जानता था। सम्पूर्ण भारतका विजय जब इतना दुष्कर था, तब योग्य और बुद्धिमान विजेता दूसरी ओर अपना ध्यान नहीं दौड़ा सकता था। अपनी शक्ति को ईरान और तूरानकी ओर नहीं बिखरा सकता था। काज़ीको अलाउद्दीन खिलजीको यह सम्मति दी थी कि पहले हिन्दुस्तानके ही भिन्न भिन्न भागोंको जीतना चाहिये; तब कहीं दूसरी ओर ध्यान दौड़ा सकते हैं। अस्तु अकबरकी भी नीति यही थी। उसका निश्चित उद्देश्य था हिन्दुस्तानको अपने सुदृढ अधिकारमें लाना। हिन्दुस्तानकी विजयके बाद वह दक्षिण भारतके राज्योंको भी जीतनेकी चेष्टा करने लगा। कुछ भाग उसने अपने जीवनकालमें ही मिला लिया। पर अधिकतर विभाग सदा उसकी छत्रछायाके बाहर रहा। उसकी इच्छा भारतके पश्चिम जा सकती थी पर उसका निश्चित उद्देश्य यह नहीं था। उसकी नीतिको दक्षिणी भारतके ऊपरी भागमें ही रुक जाना पड़ा। हां, यदि सम्राट शतायु होता तथा उसका प्रसिद्ध मंत्रि-मंडल* अंत समयतक संसारमें रहता तो संभव था वह अपने उद्देश्यको आगे बढ़ाता। पर यह होना न था। वह भी मनुष्य था और बुद्धिमान् नीतिज्ञ था। वह अपना उद्देश्य शक्तिके बाहर नहीं बना सकता था। अतएव उसका उद्देश्य था हिन्दुस्तानको अपने शासनमें लाना और यथासाध्य दक्षिणी भारतको जीतना।

यद्यपि अकबरने ऐसे ऐसे कार्य भी किये, जिनका होना शान्तिके ही कालमें सुगम है, तथापि तलवारको छुट्टी कभी न मिली। दिल्ली और आगरेकी विजयसे आरम्भ करके काबुल बंगाल,

* ग्लैड्विन २९८

*The Round Table of India.

राजस्थान, मालवा और गुजरात तथा गोंड़वाना और उड़ीसा इत्यादि सभी भागोंको जीतना था। क्योंकि प्रायः सभी प्रान्त उस समय वास्तवमें स्वाधीन थे। इसके अतिरिक्त दक्षिणमें खानदेश, बरार, विदर, अहमदनगर, गोलकण्डा और बीजापुर अपने स्वतंत्र सुल्तानोंके अधीन थे। इनके अतिरिक्त विजयनगरका विशाल हिंदू राज्य भी समृद्धि-पूर्ण था। समुद्रके किनारे गोआ इत्यादिमें पुर्तगालियोंका अधिकार था और पश्चिमोत्तर किनारेपर काशमीर सिन्ध बलूचिस्तान आदि पूर्णतः स्वतन्त्र थे। ऐसी दशामें अकबर सा बुद्धिमान् और उच्चाभिलाषी व्यक्ति इच्छा होते हुए भी अपने ध्यानको काबुलके परिक्रम नहीं ले जा सकता था। सच तो यही है कि अपने बृहत् कार्यका ध्यान रखते हुए उसने भारतकी भौगोलिक एकताको राजकीय एकता प्रदान करना ही अपना उद्देश्य बना लिया और इस उद्देश्यकी पूर्तिमें उसे अपूर्व सफलता भी प्राप्त हुई। दक्षिणके प्रधान राज्योंको छोड़कर सभी उसके अधीन होगये।

* कर्नल मैलेसन और काउण्ट वानर्नोअरका कहना है कि अकबर भिन्न भिन्न राज्योंको शासन करनेके लिए ही नहीं जीतता था वरन् उसका उद्देश्य उन राज्योंको सुख और समृद्धि-पूर्ण बनाना था॥ †डाक्टर स्मिथने अपनी पुस्तकमें इसका युक्तिपूर्ण खण्डन किया है। स्वयम् अबुलफ़ज़ल† आईन (तृतीय-खण्डन-पृष्ठ ३९९) में लिखता है S. "एक बादशाहको सदा विजयकी कामना करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा न करनेसे पड़ोसके बादशाह उसीके विरुद्ध हथियार उठाने लगते हैं। सेनाको युद्धका अभ्यास कराना चाहिये, अन्यथा सैनिकोंके सुखप्रेमी (आराम तलब) हो जानेकी सम्भावना रहती है।" सोलहवीं शताब्दीकी राजनीतिमें कर्नल मैलेसन और वान नोअर जैसी उक्तियोंको स्थान देना अनुपयुक्त है। आजकल न्याय और स्वभाग्य निर्णय (self determination) के समयमें भी सच्चा इतिहासकार निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकता कि कोई विजेता विजित देशके सुखके लिए ही जीतने चलता है। फिर एक मध्यकालीन सम्राट्के लिए ऐसा कहना केवल अत्युक्ति है। अकबर अपनी प्रजाके सुख समृद्धिका ध्यान रखता था, इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु उसका यह कार्य केवल निमित्तथा और राज्यको दृढ़ता देना नैमित्तक था। उसका चरम उद्देश्य था एक सुदृढ और विशाल मुग़ल साम्राज्यकी स्थापना करना और गौण उद्देश्य था विजित देशकी प्रजाको सुख औरसमृद्धि पूर्ण बनाना।

सम्राट् का विजय मात्र उद्देश्य नहीं था। वह दिल्लीके सुलतानोंके इतिहाससे परिचित था। सिंहासन पर बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और शेरशाह सूर जैसे योग्य व्यक्तियोंको बैठने का अवसर मिला था। वह लोग दृढता पूर्वक अपने राज्य की बाग डोर पकड़े रहे। इनके शासन की प्रशंसा प्रायः बहुत से इतिहासकारोंने की है। परन्तु इनके घरानेमें साम्राज्य टिक न सका। शेरशाह सूर भी जिसकी योग्यतामें किसीको संदेह नहीं है दिल्लीके राज्यको अपने वंशमें चिरस्थायी न कर सका। उन साढ़े तीन शताब्दियोंमें दिल्ली के सिंहासन पर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं आया जिसके वंशमें राज्य लक्ष्मी स्थिर रूप से रही हो। लक्ष्मीकी चंचलता सिद्ध करनेके लिए १२०६ से १५५६ तकके इतिहासमें अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। पर अकबरकी बुद्धि विलक्षण थी। वह इतिहाससे लाभ उठाना जानता था। उसने ऐसी राज्य व्यवस्था चलायी कि उसके आधारपर डेढ़ शताब्दियोंतक साम्राज्य उसके वंशजोंके हाथमें स्थिर

* पृष्ठ १८४; मैलेसन 'अकबर'　　† जैरेट
† पृष्ठ १४६-७; स्मिथ 'अकबर'　　S. अकबरके शब्दोंमें

रूपसे रहा और अयोग्य तथा बलहीन व्यक्तियोंके आनेपर भी पूरे डेढ़ शताब्दियों तक नाममात्रके मुग़ल सम्राटके नामकी धाक तो अवश्य ही रही। इस प्रकार डेढ़ शताब्दियों तक दृढ़ शासन करने के बाद भी मुग़ल राज वंशकी इतिश्री होनेमें पूरी डेढ़ शताब्दी लग गयी।

इस प्रकार विजयके साथ साथ अपने राज्यको दृढता देना भी अकबरके शासनका उद्देश्य था। भारतके मध्यकालीन इतिहासमें इस विषयमें अकबरको ही सबसे अधिक सफलता हुई। उसे इस उद्देश्यकी ओर पठान सुल्तानोंके चञ्चल इतिहासने ही नहीं प्रवृत्त किया वरन् सबसे अधिक तो हुमायूंके पतन की गाथाने उसपर प्रभाव डाला। उसे मालूम था कि शेरशाह सूरने उसके पिताको बड़ी सरलतासे दिल्लीके सिंहासनसे उतारा था। वह यह भी जानता था कि उसके पिताको कहां कहां ठोकरें खानी पड़ीं और कौन कौन सी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। वह समझ गया था कि केवल विजयसे काम नहीं चल सकता। उसके पितामह के ही समयमें प्रायः सारा हिन्दुस्तान* जीता जा चुका था, पर वह टिक न सका। अत एव अकबरने यह निश्चय कर लिया कि जितना जीता जाय उतना दृढ और स्थिर रहे। जीत का काम और स्थिरीकरणका भाव दोनों साथ साथ चलना चाहिये। यों तो अपने राज्यको दृढता देना सभी नृपतियों का उद्देश्य होता है, परन्तु सफलता कुछ ही लोगोंको होती है। जीतकी धुनमें लोग प्रायः स्थिरी-करणके भावको भूल जाते हैं। पर अकबरको अपने उद्देश्यको ओर सर्वदा ध्यान बना रहता था। उस के दोनों कार्य्य साथ साथ चलते थे। जीतकी गाथाका तार उसके शासन कालके आरम्भ से प्रायः अंत तक देख पड़ता है। उसी प्रकार राज्यको स्थिरता देनेवाले कर्य्योंका भी तांता आरम्भ से अन्त तक मिलेगा। हिन्दुओं तथा हिन्दू राजाओं के सम्बन्धमें उसकी जो नीति रही उसका बहुत कुछ अभिप्राय राज्यको स्थिरता देना ही था। हिन्दू राजकुमारियोंसे परिणयकी नीतिका उद्देश्य भी यही था, क्यों कि अबुलफ़ज़ल * आईने-अकबरी में लिखता है कि "हिन्दुस्थान और अन्यदेशोंके राजाओंकी पुत्रियोंसे विवाह सम्बन्ध करके वह राज-द्रोहोंको रोकता है और बाहर के सबल व्यक्तियोंको मित्र बना लेता है।"

वास्तव में सम्राट अकबर में निर्माण और स्थिरीकरणकी प्रतिभा (constructive genius) थी। कर्नल मैलेसनका कहना है × कि जब बैरामखाँ अकबर के नाम से शासन करता था उस समय बालक सम्राट विगत राज वंशों की अस्थिरता का कारण सोचा करता था। तथा अपने विचारोंको परिपक्व कर लेने पर उसने शासन की बाग डोर अपने हाथमें ली और ऐसी शासन पद्धति चलायी कि जबतक उसके अनुसार शासन होता रहा तब तक तो मुग़ल वंश फलता फूलता रहा और उसका पतन तभी हुआ जब मुग़ल सम्राट् उसके सहिष्णुता और मैत्रीकरणके सिद्धान्तोंसे विचलित होने लगे।" बाबर और हुमायूं को जीत के सिद्धान्त के अतिरिक्त दूसरा कुछ सोचनेका अवसर न मिला और हुमायूं में तो योग्यता भी न थी। किन्तु अकबरने मुग़ल राज वंशकी जड़ को दृढ़ता पूर्वक जमा कर विजित देशोंमें सुख और शान्ति की स्थापना की।

(असमाप्त)

* उत्तरी भारत।

* ब्लैड्मन ३७ × अकबर पृष्ठ ६

जीवनका बीमा करानेके आर्थिक और मनोवैज्ञानिक लाभ

[ले०—श्री० चन्द्रावरकर]

किसी भारतवासी और मुख्यतः किसी हिन्दूसे, जो आत्माकी अमरतामें विश्वास करता है और जिसकी कार्यशक्ति इस जीवनके बाद दूसरे जीवनको भी भला बनानेमें बहुधा लगी रहती है, यह कहना अनावश्यक सा होगा कि वह भविष्यकी चिन्ता करे। किन्तु जिनका मन और जिनके कर्म भाग्यके भरोसे ही हुआ करते हैं और इसीलिए जो उस पवित्र कर्तव्यसे उदासीन रहते हैं, जो उन्हें अपने उन सम्बन्धियोंके हितके लिए करना चाहिये, जिन्हें वह मरनेके बाद निस्सहाय छोड़ जायँगे उनके विचार और मननके लिए कुछ आवश्यक बातोंका लिखना उचित है।

मानव जीवनकी अनित्यता सभीके लिए एक भयानक भव्य—होनहार घटना—है। संक्रामक रोगोंके कारण जिनका भारतवर्ष एक तरहसे निवास-स्थान सा हो गया है; भारतकी विचित्र सामाजिक अवस्था तथा जलवायु और अनियमित दिनचर्य्याके कारण प्रत्येक भारतवासीको कब्रमें पैर लटकाये बैठा समझना चाहिये—कुछ ठीक नहीं वह किस घड़ी अपने आश्रितोंको निस्सहाय छोड़ चल बसे। हाय! न जाने कितने बालकोंको अपने पिताकी अचानक मृत्युके कारण दूसरे सम्बन्धियोंके टुकड़े तोड़ने पड़े हैं; न जाने कितनोंका सर्वनाश हो गया है! यदि हम यह सोचकर कि "आप मरे जग परलय" अपने मनको समझालें और परिवारके लिए कुछ उचित प्रबन्ध न कर जायं तो सचमुच समाज और धर्मकी दृष्टिमें हम बड़े पापी हैं। अकालके भयानक परिणामोंसे बचनेके लिए जो अनेक उपाय बताये जाते हैं, उनमें जानका बीमा करानेसे अधिक उपयोगी कोई दूसरा नहीं है। भारतवर्षमें जान-बीमा उतना लोकप्रिय नहीं है, जितना कि पाश्चात्य देशोंमें। इस बातका ज्वलन्त प्रमाण कनेडाकी सन् १९१५ की बीमाके सुपरिन्टेन्डेन्टकी रिपोर्ट (Report of the superintendent of Insurance, Canada) और उसी सालकी भारतकी जान बीमा करनेवाली कम्पनियोंके विवरण (Returns of Life-Insurance Companies in India) की तुलना करनेसे मिल जायगा।

	कनैडा	भारतवर्ष
जान-बीमा करनेवाली कम्पनियोंकी संख्या ...	४४	६७
१९१५ तक जितनी रकमके बीमे कराये गये ...	३९३½ करोड़ रुपया	२ करोड़ रुपया
नए बीमे जो सन् १९१५में किये गये उनकी रक़म	६६३३ लाख रुपये	२२४ लाख रुपये
जन संख्या (लगभग)	७000,000	३0,000,0000

भारतवर्षमें आदमी पीछे ।॥)। सवा बारह आना बीमेकी रकम का औसत है और कनेडामें ५६२) रु०। भारतवर्षकी इस शोचनीय दशाके अनेक कारण बताये जा सकते हैं, जिनमेंसे मुख्य यह हैं:—

(१) शिक्षाके प्रचारकी कमी अर्थात् जनता

की निरक्षरता। (२) जान-बीमा कम्पनियोंका बहुत-देरमें अर्थात् सन् १८७४में खुलना। (३)सन् १९१२ तक उन पर सरकारी दबावका न होना।

मार्च सन् १९१२ में बीमा करनेवाली भारतीय कम्पनियोंके एक्टके पास हो जानेके बाद बहुत सी कम्पनियोंकी स्थिरता निश्चित हो गई है और अब साधारणतः जनता निर्भय हो-कर अपने रुपयेके खो बैठनेके डरको छोड़कर जान बीमा करा सकती है। किन्तु भ्रम और अज्ञानका आवरण बड़ी कठिनतासे दूर होता है और इसीलिए अब भी ऐसे अनेक आदमी हैं जिन्हें जान बीमाकी उपयोगितापर विश्वास नहीं। ऐसे मनुष्योंके लाभके लिए इस निबन्ध-में हम इस प्रशंसनीय संस्थाके कुछ फायदोंका दिग्दर्शन करायेंगे—

मनोवैज्ञानिक लाभ

मनोविज्ञानके प्रत्येक विद्यार्थीको अच्छी तरहसे मालूम है कि शरीर और मनका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। शरीरकी चेष्टाओं पर मन की क्रियाओंका बहुत बड़ा असर पड़ता है। जिन कारणोंसे मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाती है उनमें कोई इतना अधिक हानिकर नहीं है जितना जीवनके दुखोंपर सदा सोच करते रहना। इन-मेंसे प्रायः ९९ फी सैकड़ा चिन्ताओंके कारण हम स्वयं होते हैं। बहुधा परिमित आयके मनु-ष्य दिन रात इसी चिन्तामें डूबे रहते हैं कि यदि अकालमें ही वह मृत्युके कराल गालमें पड़ जायं तो उनके आश्रितोंके सिरपर न जाने कितने दुःखके पहाड़ टूट पड़ेंगे। यदि मनुष्य सदा इसी चिन्तामें मग्न रहे तो अवश्य ही वह शक्ति-हीन और उसकी आयु क्षीण हो जायगी। अब अगर ऐसे मनुष्य अपना जानबीमा करालें तो उनके मनमें बड़ा परिवर्तन हो जाय। जब कभी किसी क्षण मनमें भविष्यके दुखोंका ध्यान आ-यगा तब उसी क्षण यह विचार कर कि हमने परिवारके सुखके लिए उचित प्रबन्ध कर दिया है चिन्ता बहुत हलकी हो जायगी। और इस प्रकार चिन्ताके घट जानेसे अवश्य मनुष्यकी आयुकी वृद्धिमें सहायता मिलेगी। स्वभावकी स्थिरता, मनकी शान्ति और इन्हींके कारण प्राप्त हुआ दीर्घ जीवन, यह सब जीवनके बीमा करानेके अमूल्य लाभ हैं। बड़ा विचित्र बात तो यह है कि तब भी कुछ मनुष्य यही सोचते हैं कि "जान-बीमा" करानेसे मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाती है। हमारी समझमें नहीं आता कि यह किस प्रकार हो सकता है। हमारा दृढ विश्वास है कि इससे आयुकी वृद्धि होती है।

इस निबन्धमें सुभीतेके लिए हम भारतवर्ष-के मनुष्योंको तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं, अर्थात् (१) धनवान (२) मध्यम श्रेणीके और (३) गरीब। यदि यह उससे लाभ उठाना चाहें तो जानबीमा इन सभीके लिए बहुत लाभकर है; किन्तु बेचारे गरीब निर्धनताके गर्त और अज्ञानके अन्धकारमें पड़े सड़ रहे हैं और उनकी वर्तमान दशा इतनी आशाजनक नहीं है कि जिससे वह जान बीमेसे लाभ उठा सकें। कुछको छोड़कर धनवानोंको इस संस्थाकी परवाह नहीं है। पर एक मध्यम श्रेणीके साधारण मनुष्यकी बात बिलकुल दूसरी है। उसी को इससे पूरा लाभ उठाना चाहिये। इन मध्यमश्रेणीके मनुष्यों-से हमारा मतलब उनसे है जो सरकारी नौकरी या और कोई व्यापार आदि करके खाने पीनेसे खुश हैं। दिन प्रतिदिन "जीवन संग्राम" अधिक घोर होता जाता है। व्यवहारमें आने-वाली चीज़ोंकी क़ीमत बढ़ जानेके कारण जीवन-निर्वाहका खर्च बढ़ता जाता है। इस सबका फल यह है कि साधारण मनुष्यकी परिमित आमदनीपर बड़ा बोझ पड़ता है। बहुत से मनुष्य विलासप्रियता, भले आदमियों-की रहन सहनके विषयके गलत खयालों, खाने पीनेमें विदेशी रीतिका दासत्वपूर्ण अनुकरण और समाजमें श्रेष्ठ होनेकी धुनमें फिजूल खर्च

हो जाते हैं। गाड़ियां, नौकर और रसोइये फैशनके साधन समझे जाते हैं। यह सब मिल कर एक साधारण हिन्दुस्तानीकी आर्थिक अवस्थाको बिगाड़ कर उसके गार्हस्थ जीवनको निराशापूर्ण और खेदजनक बना देते हैं। बेचारे मध्यमश्रेणीके मनुष्यकी ही आफ़त है। हमने हैदराबाद (दक्खिन) जैसे शहरमें रहने-वाले कई मनुष्योंके आय और व्ययकी आँच पड़ताल की है और औसत निकाला है कि एक ६००) रु० वार्षिक आमदनीवाला मनुष्य कितना बचा सकता है। गणनाके लिए हमने मान लिया है कि एक साधारण मनुष्यके परिवारमें दो बालक और एक स्त्री है। खर्चका ब्योरा इस प्रकार बैठता है:—

वार्षिक आय	खर्च की मद	खर्च की रकम	सालाना बचत
६००) रु०	मकानका किराया ...	८०)	
	भोजन और वस्त्र ...	२५०)	
	नौकर, नाई, धोबी आदि	५०)	
	बालकोंकी शिक्षा ...	५०)	
	त्योहार और उत्सव, संस्करादि ...	३०)	
	आभूषण आदि ...	३०)	
	सफर, रोग, और दान	५०)	
		५४०)	६०)

जो गृहस्थ कि नियमित जीवन व्यतीत करता है और जो अपनी आय और व्ययको ठीक ठीक रखता है इतना बचा सकता है और इसमें से ४५) या ५०) रु० बीमेकी पालिसीके प्रीमियम अदा करनेके लिए अलग रख सकता है और यदि उसकी अवस्था ३० से ३५ वर्षके बीचमें हो तो २५ वर्षके बाद अदा होनेवाली १०००) की पालिसी रख सकता है। किन्तु जिस प्रकारसे व्ययका विभाजन ऊपर दिखाया गया है उसके लिए बड़ी कड़ी मितव्ययिताकी आवश्यकता है। कड़ी मितव्ययिता चाहती है कि कठिनाइयोंका ध्यान न कर हमें दैनिक सुखोपभोगमें कमी करनी चाहिये और भविष्यके लिए प्रबन्ध करना चाहिये। किसीके धनका अन्दाजा इस बातसे नहीं करना चाहिये कि वह कितना कमाता और खर्च करता है, वरन् इससे कि वह कितना बचाता है। छोटी छोटी रकमोंमें नियमसे प्रीमियम अदा करनेसे मनुष्य मितव्ययिता और साथ ही साथ बचत करता है। बचत तभी हो सकती है जब व्यय नियमित हो। उपर्युक्त उदाहरणमें अभी हमने देखा है कि ४) प्रति मास बचा लेनेसे अन्तमें १०००) बच जाते हैं। एक साधारण मनुष्यके लिए इतनी अधिक बचत तभी सम्भव है जब उसके जीवनका बीमा हो चुका हो। इसके सिवाय यदि अभाग्य-से अकालमृत्यु हो जाय तो बीमेसे एक खास लाभ और है। जानबीमा करानेसे मनुष्य बचत करना सीखता है और बचाता भी है, जिससे न केवल बीमा करानेवाला ही धनवान होता है किन्तु व्यक्तिगत बचत करनेकी शक्ति बढ़ जानेसे सब राष्ट्रकी सम्पत्ति बढ़ती है। निस्सन्देह बीमेका प्रचार राष्ट्रके सुसम्पन्न होनेका सूचक है। यह बात कि भारतवर्षमें बीमेकी रकम फी आदमी १) रुपया भी नहीं है हिन्दुस्तानकी

वर्तमान शोचनीय आर्थिक अवस्थाको भली प्रकार प्रकट करती है। कुछ अक़्लमन्द कहते हैं कि बीमामें धन लगाना केवल अपव्यय है, क्योंकि, वह तर्क करते हैं, कि यदि वही रुपया और दूसरी जगह लगाया जाय तो उसे अधिक ब्याज मिले। स्पष्टताके लिए एक २५ वर्षके युवकका उदाहरण लीजिये। अब यदि वह १०००) का बीमा १५ वर्षके लिए कराये तो उसे इस पालिसीके लिए ६६) वार्षिक देना पड़ेगा। इस प्रकार कुल रकम जो १५ वर्षमें जमा होगी वह ९९०) या कहीं कहीं १०००) या इससे भी अधिक। इस प्रकार साफ है कि रुपया जमा करनेका कुछ फायदा नहीं। किन्तु ऐसा सोचनेवाले अर्थशास्त्री जोखिमका ध्यान ही भूल जाते हैं। बीमा कम्पनी बैङ्क तो है ही नहीं। हां यदि कुल इकट्ठा किया हुआ धन कम्पनी ब्याज पर उठाये तो हिस्सेदारोंको फायदा हो जाता है, जिसका कुछ अंश बीमा करानेवालोंको भी मिल जाता है। सारांश यह कि किसी भी तरहसे बीमामें रुपया लगाना हानिकारक नहीं है, विशेषतः यह जानकर कि बीमा कम्पनीका काम बङ्कके कामोंसे बिलकुल भिन्न है।

एक नया कुटुम्ब

कुछ भावुक मनुष्य नैतिक कारणोंसे इस संस्थाको बुरा कहते हैं। उनकी धारणा है कि यदि एक मनुष्य १०००) रु० के लिए जान बीमा कराये और १००) या २००) रु० एक या दो किस्तमें जमा करके मर जाय तो उसके आश्रित बाकी ८००) रु० का लाभ उठानेमें बड़ा पाप करते हैं। इसी तर्क पर वह इस संस्थाकी निन्दा करते हैं, जिसे सभी बहुत उपयोगी और नैतिक समझते हैं। यदि थोड़ा सा भी विचार किया जाय तो इस आक्षेपका समुचित उत्तर मिल जाय। हमारी धारणा है कि बीमा करानेवाले जात और पांतका ख़याल छोड़कर एक परिवार बनाते हैं और हरएक बीमा करानेवाला मनुष्य इस नये परिवारका सदस्य बन जाता है। प्रत्येक बीमा करानेवाला जो नियमसे प्रीमियम अदा करता है परिवारकी रक्षाके लिए रुपया जमा करता है। यदि एक बीमा करानेवाला मर जाय तो बाकी आदमी उस मृत मनुष्यके आश्रितोंकी सहायता करते हैं। उनका कर्तव्य है कि वह किसी एक बीमा करानेवालेके मर जानेपर उसके आश्रितोंकी हित-साधना करें। इसी सहायतामें इस संस्थाका नैतिक महत्व है। हमें तो इसमें कुछ भी नीति-विरुद्ध नहीं जान पड़ता कि एक परिवारका मनुष्य अपनी आयमेंसे अपने परिवारवालोंके हितके लिए कुछ बचाकर अलग रखे। ठीक इसी प्रकार एक बीमा करानेवाला दूसरे बीमा करानेवालेके लिए करता है।

सारे बीमा करानेवाले अपने तथा अपने आश्रितोंके सामाजिक तथा आर्थिक हितके लिए एक सूत्रमें बंध जाते हैं। यह संस्था अधार्मिक नहीं है, किन्तु सद्गुण, स्वार्थ त्याग और संयमका ही फल है।

सारांश

इस युगमें भी जीवनका बीमा करानेसे हमें स्वयं तथा सहयोगसे सामाजिक तथा आर्थिक हितके लिए संचय करनेकी शिक्षा मिलती है।

अकबर की क्षमता ।

(गताङ्क से सम्मिलित)

[ले०—पं० शेषमणि त्रिपाठी, विशारद]
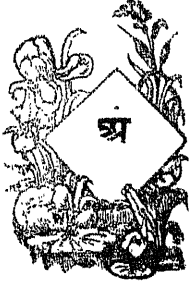
अन्य राजनीतिज्ञोंके समान अकबर भी अपने हृदगत भावोंको छिपाता था। वास्तवमें राजनीतिज्ञोंको ऐसा करना आवश्यक और उचित भी है। कभी कभी वह कहता कुछ था और हृदयमें सोचता कुछ था। गोआके पुर्तगालियोंके साथ वह ऊपरसे तो बड़ी मित्रताका व्यवहार करता था पर भीतरसे उनके हानि और नाशका उपाय सोचा करता था। असीरगढ़में ख़ानदेशके बादशाहके प्रति भी उसका व्यवहार इसी ढँगका था। धार्मिक मामलोंमें मुसलमान धर्मके अनुकूल बहुत सी बातें वह राजनीतिक दृष्टिसे ही करता था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि "सम्राट्का परमेश्वर पर परम विश्वास है और वह सत्यकी खोजमें लगा रहता है। वह भीतरी तथा बाहरी कष्टोंको भी सहन करता है; तो भी वह कभी कभी आजकलके कट्टर मुसलमानोंको सन्तुष्ट करनेके लिये मुसलमानी प्रार्थनामें भी सम्मिलित होता है।" अंतिम बार १५७६ में अजमेरमें उसके जानेका भी यही कारण जान पड़ता है। "दीनपनाह" ने सैय्यदको प्रसन्न रखनेके ही लिये उस पत्थरका आदरसे स्वागत किया था जिसपर लोग कहते थे कि मुहम्मदके चरणोंका निशान था। यह बातें अबुलफज़लकी पुस्तकमें लिखी हैं। इसलिए इनमें सन्देह नहीं हो सकता। बार्टोली कहता है कि "अकबरने अपने हृदगत भाव अथवा विश्वास या धर्मके विषयमें ठीक ठीक जाननेका कभी अवसर ही नहीं दिया।" सम्भव है कि इसका राजनीतिक उद्देश्य रहा हो पर राजनीतिक सफलतामें तो इससे अवश्य ही सहायता मिली। बार्टोली फिर कहता है कि "सभी बातोंमें अकबर ऐसा ही था। वह देखनेमें तो बड़ा सच्चा और निश्छल था परन्तु वस्तुतः उसके शब्दों और कार्य्यों में बड़ी विभिन्नता थी। यदि कोई उसके आजके वचनों और कार्य्यों का गत दिवससे तुलना करे तो उसे दोनोंमें कोई समानता न मिलेगी।" वास्तवमें सम्राट्के आचरणपर साधारण न्यायालय नहीं विचार कर सकता। इसके लिये राजनीतिक न्यायालयमें ही जाना उचित और न्याय सङ्गत है। उस न्यायालयमें क्रूरतासे विचार करनेपर भी अकबरके चरित्रमें दोष निकालना कठिन होगा। यदि दोष होंगे भी तो वह गुणोंकी ढेरमें छिप जायँगे।

१८६६ के कलकत्ता-रिव्यूमें प्रोफेसर ब्लाकमैनने "जहाँगीरके आचरण" विषय पर बड़ा उत्तम लेख दिया था। उसमें उनका कहना है कि "समस्त मुसलमान शासकोंमें अकबर अपने राजकीय कर्तव्यको सबसे अधिक समझता था। उसके समयमें झगड़े शान्त किये गये, अविश्वास कम किये गये और देशभक्तिके विचारोंसे काम लिया जाने लगा। सम्राट्को विश्वास था कि उसको एक पवित्र कर्तव्यका पालन करना है और उसे अपने कार्य्यों के लिए ईश्वरके प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा। वह जानता था कि इस कर्तव्यको पूर्ण करनेके लिये उसको शासनके प्रत्येक कार्य्य पर ध्यान देना चाहिये। छोटी छोटी बातोंके भी समझनेमें जो समय लगता है उसे यही समझना चाहिये कि उतना समय परमेश्वरकी सेवामें लगा है।

अकबर साक्षर नहीं था किन्तु ज्ञान लिप्सा उसमें अधिक थी। शासनके गूढ़ तत्वोंको तो उसके समान बहुत कम लोगोंने समझा है। वह पुस्तकें पढ़ तो नहीं सकता था, परन्तु १६०५ में उसके पुस्तकालयमें २४००० चुनी हुई

हस्त लिखित पुस्तकें मिलीं। सम्राट् बहुतसी पुस्तकोंकी दो दो प्रतियाँ रखता था—एक प्रति बाहर रहती थी और दूसरी अन्तःपुरमें। इससे पता चलता है कि अंतःपुरमें भी वह पुस्तकें पढ़वा कर सुनता था। अकबर वास्तवमें बड़ा धार्मिक व्यक्ति था। उसका मस्तिष्क धर्मकी कट्टरताकी दीवालको लाँघ कर स्वच्छन्द धर्ममें भ्रमण करता था। दिनमें चार बार वह ईश्वरकी प्रार्थना करता था—प्रातः, मध्याह्न, सायम् और निशीथ। आत्म चिन्तन और ईशस्तुतिमें उसका बहुत समय बीतता था। उसका स्वभाव तो मनोहर था। पादरी जेरोम जेवियर कहता है कि "वह बडेके साथ बड़ा और छोटेके साथ छोटा है।" ड्यू जैरिकका कहना है कि "वह अपने कुटुम्बको प्रियतम, बड़ोंको भयावह और छोटों पर दयालु था," वह छोटे और साधारण लोगोंके साथ इतनी सहानुभूति रखता था कि उनकी बातें बराबर सुनता और प्रार्थनायें स्वीकार करता था। उनके तुच्छ उपहारोंको बड़े आदर और प्रेमके साथ ग्रहण करता था। इतना आदर तो वह बड़े बड़े दरबारियोंके उपहारोंका नहीं करता था! यहीसब कारण थे जिनसे सम्राट् सर्व प्रिय होगया था।

संक्षेपमें, यही कहा जा सकता है कि अकबर नीतिनिपुण, साहसी, कार्य्यशील, न्यायप्रिय, वीर, दयालु, कृतज्ञ, ज्ञान-लिप्सु, धार्म्मिक, सच्चरित्र (हाँ मीना बाज़ार वाली घटना उसके लिये कलङ्क पूर्ण थी, तो भी अकबरमें उत्कृष्ट चरित्रबल था) और सफल राजनीतिज्ञ, शासक और विजेता था। ऊपरके दृष्टान्तोंसे तथा उसकी राजव्यवस्थासे सम्राट्की अद्भुत क्षमताका पता चलता है। अस्तु अकबरकी क्षमता बड़ी थी और भारतीय शासनके निर्माणमें उसका बड़ा भाग था। इस नरपति कुल तिलककी क्षमतामें भला सन्देह ही किसको हो सकता है?

हिन्दीमें विज्ञान-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द

[लेखक—श्रीयुत सम्पूर्णानन्द, बी० एस-सी०]
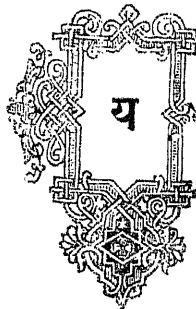
यह बड़ा ही व्यापक विषय है। इसके कई विभाग हो सकते हैं—हिन्दीमें वैज्ञानिक शब्दोंकी आवश्यकता, हिन्दीमें वैज्ञानिक शब्द कहां से लाये जायँ, हिन्दीमें प्रत्येक ग्रन्थकार द्वारा समान वैज्ञानिक शब्दोंके प्रयुक्त होनेकी आवश्यकता और इसके साधन; और इन सबपर ही स्वतंत्र निबन्ध लिखा जा सकता है, परन्तु अवसर देखकर मैं प्रस्तुत निबन्धमें ही उपर्युक्त सभी विभागोंपर थोड़ा थोड़ा लिखे देता हूं।

गत सम्मेलनमें एक विद्वानने जो अपना नाम नहीं प्रकट करना चाहते, 'हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य' शीर्षक लेखमें 'विज्ञान' शब्दकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की थी। उन्होंने दिखलाया था कि वस्तुतः विज्ञान शब्द उन सब विद्याओंके लिए प्रयुक्त हो सकता है जिनके सिद्धान्त प्रत्यक्ष प्रयोगों या अनुभवों द्वारा स्थापित किये जा सकते हैं। 'विज्ञान' शब्दका प्राचीन अर्थ यही है। योग, न्याय, व्याकरण, गणित, रसायन, गृहनिर्माण, खेती, जूते बनाना यह सभी विज्ञान हैं। यह कोई हंसीकी बात नहीं है—अक्षरशः सत्य है।

इस अर्थको लेते हुए हम देखते हैं कि योग, न्याय, आदि दार्शनिक विद्याओं तथा व्याकरण, गणित, आदि अन्य प्राचीन शास्त्रीय विद्याओंमें पारिभाषिक शब्द हैं और इन विद्याओंके सभी ज्ञाता इन शब्दोंका प्रयोग करते हैं। 'आत्मा,' 'पुरुष,' 'प्रकृति,' 'अविद्या,' 'समाधि,' 'मोक्ष,' 'पद,' 'संज्ञा,' 'कारक' आदि सब पारिभाषिक

शब्द ही हैं। गणितमें कई आधुनिक बातें भी सम्मिलित हो चली हैं। यही दशा कुछ कुछ व्याकरणकी भी है। इसीसे कहीं कहीं वैषम्य भले ही देख पड़ जाय, नहीं तो इन प्राचीन विद्याओंके विषयमें कोई इस प्रकारका प्रश्न उठता ही नहीं।

अब रहीं नवीन विद्याएं अर्थात् वह विद्याएं जिन पर स्वतंत्र प्राचीन ग्रंथ नहीं मिलते। रसायन, भौतिक विज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र—यह सब इसी कोटिकी हैं। इन्हींके लिए हम लोग सङ्कीर्णरूपसे 'विज्ञान' शब्दका आजकल बहुधा प्रयोग करते हैं। इनके ही विषयमें उपर्युक्त प्रश्न उठते हैं। बहुतसे स्थलोंपर तो शब्द हैं ही नहीं, हैं भी तो कहीं कहीं एक ही अर्थके लिए दो दो तीन तीन पूर्णतया भिन्न शब्द हैं। ऐसे अवसरपर क्या करना चाहिये?

भाषामात्रके प्राकृतिक प्रवाहकी ओर ध्यान देनेसे प्रतीत होता है कि जब आवश्यकता होती है तो शब्द आप ही बन जाते हैं। जब जनताके हृदयमें कोई अननुभूतपूर्व उद्गार होता है, जब वह किसी नये भावको व्यक्त करना चाहती है, तो वह देर तक शब्दोंके लिये नहीं रुकती, तत्काल ही कोई नया शब्द गढ़ लेती है। अतः यदि हिन्दीभाषी जनताको वैज्ञानिक शब्दोंकी आवश्यकता है तो नये शब्द बने बिना न रहेंगे। अब सोचना यह है कि आवश्यकता है भी या नहीं।

विज्ञानकी आवश्यकता तो निःसंदेह है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कालिजों और स्कूलोंमें सायंस पढ़नेवालोंकी संख्या बढ़ती जाती है। पर जब देशकी जनसंख्याको देखिये तो ऐसे अंगरेज़ी-पठित सायंसज्ञोंकी संख्या कुछ भी नहीं है। अभी तो काम चल जाता है, पर धीरे धीरे आपत्तियां प्रकट होने लगेंगी। गली गली शिक्षाके अनिवार्य और सार्वजनिक किये जानेकी पुकार है। इसका प्रयत्न भी हो रहा है। माना, पहिले लोगोंको केवल सामान्य लिखने, पढ़ने और गणितकी शिक्षा दी जायगी; पर कितने दिनों तक? यह भूख यों मिटनेकी नहीं, शीघ्र ही ऐसी पाठशालाएँ खोलनी पड़ेंगी जिनमें माध्यमिक, कमसे कम माध्यमिक, शिक्षा मातृभाषामें देनी होगी। सम्भवतः ऐसी ही उन्नति उच्च शिक्षाके विषयमें भी होगी।

इससे स्पष्ट है कि दिनों दिन, ज्यों ज्यों शिक्षाका क्षेत्र विस्तृत होता जायगा, विज्ञानके पाठक और अध्यापक भी बढ़ते जायंगे, वैज्ञानिक चर्चा भी बढ़ती जायगी; और फलतः वैज्ञानिक शब्द भी बनते जायँगे। इस समय हिन्दी-भाषियोंमें विज्ञानकी चर्चा बहुत कम है। 'प्रेम महा विद्यालय,' 'गुरुकुल' आदि दो एक संस्थाओंका होना न होना बराबर है। सच्ची आवश्यकता नहीं है। जो पुस्तकें बनी हैं वह एक कृत्रिम भूखकी शान्तिके लिए बनी हैं, इसी लिए उनका और उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दोंका प्रचार बहुत कम है। हाँ, धीरे धीरे विज्ञानाध्ययनमें रुचि रखनेवाली जनता बढ़ रही है, अतः कुछ पुस्तकें बन रही हैं। 'विद्युत्' 'ताप,' 'तापक्रम,' 'कीटाणु,' विकाशवाद,' आदि शब्द धीरे धीरे प्रचलित होते जाते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंकी आवश्यकता शिक्षाके प्रचार पर निर्भर है। इस समय शिक्षाका प्रचार कम है; अतः ऐसे शब्दोंकी आवश्यकता कम है, फलतः शब्द भी कम हैं।

यह तो शब्दोंकी आवश्यकताकी बात हुई। पर यह तो एक प्रकारसे स्वयं सिद्ध बात है कि सर्वत्र प्रत्येक अर्थ-विशेषके लिए एक शब्द-विशेषका प्रयोग होना चाहिये। कमसे कम प्रत्येक शास्त्रके भीतर तो ऐसा होना ही चाहिये उसी अर्थका बोध एक स्थलमें एक शब्दसे और दूसरे स्थलमें दूसरे शब्दसे हो तो पाठकको भ्रम पड़ जाता है। ज्ञानकी धारा रुक जाती है। एक पुस्तक पढ़कर उसी विषयकी दूसरी पुस्तकका

पढ़ना कठिन हो जाता है। समझदार लेखक कुछ समझ कर ही संज्ञा निर्माण करते हैं; पर पीछेसे एक प्रकारकी साहित्यिक अराजकता सी फैल जाती है और मनमाने शब्द गढ़ना ही गौरव-का चिह्न होजाता है।

यह दशा अच्छी नहीं है, स्थायी भी नहीं है। प्रत्येक पारिभाषिक शब्दका एक असन्दिग्ध, एकान्तिक, सर्वत्र-वर्ती अर्थ होना चाहिये। प्रत्येक अर्थके लिये एक अद्वितीय, सर्वत्रप्रयुक्त, स्पष्ट, शब्द होना चाहिये। कवियोंके कल्पना क्षेत्रोंमें तो नानार्थक शब्दों और अनेक नाम-धारी अर्थों-से काम चल जाता है; काम ही नहीं चलता, इनसे काव्यसाम्राज्यकी शोभा बढ़ती है। परन्तु विज्ञान नीरस है। उसे ऐसे खेल-तमाशोंके लिए अवकाश नहीं है। उसे शब्द और अर्थमें अविच्छिन्न और अच्छेद्य सम्बन्ध चाहिये। चाहे किसी ग्रन्थकारकी पुस्तक उठा लो, किसी विज्ञानवेत्ता के व्याख्यानमें चले जाओ, वही शब्द सामने आते हैं और उन्हीं अर्थोंका द्योतन करते हैं।

अभी अराजकताका रोग बढ़ने नहीं पाया है। ग्रन्थ भी थोड़े हैं, ग्रन्थकार भी थोड़े हैं, पाठक भी थोड़े हैं। अतः यदि अभीसे प्रबन्ध किया जाय तो उपाय हो सकता है।

इस स्थल पर यह प्रश्न आप ही उपस्थित होता है कि यदि समान शब्द रखने हैं तो वह शब्द कहाँसे आएँ? एक पक्ष यह कहता है कि हमको अंग्रेज़ीसे शब्द लेने चाहियें। शब्द बने बनाये हैं। नये शब्दों के गढ़नेमें जो परिश्रम होता है उससे पीछा छूटा। अंग्रेजी से, और अंग्रेजी भाषा में ही, हम विज्ञान सीखते हैं, हमारी भाषा में यों भी सैकड़ों अंग्रेजी शब्द आते जाते हैं, फिर अंग्रेजी से वैज्ञानिक शब्द लेने में कोई दोष नहीं है। दूसरा पक्ष कहता है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। हमको देशी भाषाओं, विशेषतः संस्कृत, से शब्द लेने चाहियें। यह ठीक है कि सामान्य बोलचालमें कुछ शब्द अंग्रेज़ीके प्रचलित हो गये हैं; पर यह प्रायः ऐसे हैं जिनका ठीक ठीक पर्य्याय मिलना कठिन था। कमसे कम आज-कल सुशिक्षित लोग खिचड़ी भाषा बोलना अच्छा नहीं समझते। और फिर लाघवका भी तो लाभ नहीं है। अंग्रेज़ी में भी प्रायः लैटिन आदिसे निकले हुए पारिभाषिक शब्द हैं। यह स्वयं लम्बे हैं, संस्कृतसे निकले शब्द इनसे लम्बे नहीं हो सकते। फिर जब शिक्षाका प्रचार होगा तो लोगों के लिये संस्कृत अधिक सुबोध होती जायगी। इस समय भी हिन्दुओं में इसका प्रचार धीरे धीरे बढ़ रहा है। अतः संस्कृत से निकले शब्द अधिक सुबोध होंगे। मद्रासको छोड़कर सारे भारतके लोगोंकी मातृभाषाएँ संस्कृत से ही निकली हैं। मद्रास-के भी विद्वानोंकी भाषा तो संस्कृत ही है। ऐसी अवस्थामें उसको छोड़ना अयुक्त है। यह ठीक है कि इस समय जिन लोगोंने अंग्रेज़ीके द्वारा शिक्षा पायी है उनको संस्कृतज पारिभाषिक शब्दों के लिखने, बोलने, समझने, में पहिले पहल कष्ट होगा; पर यह कोई बड़ी बात नहीं है। मनुष्य परिश्रम करने से विदेशी भाषा सीख लेता है, स्वदेशी भाषाकी तो बात ही क्या है। फिर, अपने शब्दों का प्रयोग जातीयता का एक लक्षण है। परायी भाषा से लेकर शब्दों का प्रयोग करना अपनी भाषा की दरिद्रता बत-लाना है और अर्थतः अपने को दरिद्र, बतलाना है जो कुछ हो, मैं स्वयं इसी संस्कृत वाले पक्ष का हूं।

अन्तिम प्रश्न यह है कि यह मान भी लिया जाय कि समान शब्द होने चाहियें और यह शब्द संकृतसे ही लिए जाने चाहियें, पर इसका साधन क्या है? यदि दस मनुष्य एक ही अर्थ के लिये दस संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना चाहें तो उनका कौन हाथ रोक लेगा? अराजकता को रोकने का साधन क्या है?

यदि राज्य इस काम को अपने हाथ में ले

ले, तो सब कठिनाइयां दूर हो जायँ। राज्यकी ओरसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध विज्ञानाचार्यों की उप-सभाएँ बैठा दी जायँ; और जो शब्द इन लोगों के द्वारा चुने जायँ उन्हींका प्रयोग उन पुस्तकों-में हो जो राज्यकी पाठशालाओंमें पढ़ाई जायँ। फिर तो यह शब्द केवल हिन्दी ही नहीं, प्रत्युत मराठी, गुजराती, बङ्गला, सबमें ही प्रचलित हो जयँगे।

परन्तु इसकी कोई आशा नहीं है। गवर्न-मेंट, जहाँ तक समझ में आता है, इस विषय-में कुछ भी न करेगी। सरकारी विश्वविद्या-लय, कलकत्ता, प्रयाग, पञ्जाब, आदिसे भी किसी प्रकार की आशा रखनी व्यर्थ है। हिन्दू विश्वविद्यालय भी इस समय तो इधरसे विमुख है। इस बात की भी कोई आशा नहीं है कि देशी नरेश मिलकर एक उपसभा नियत करें।

अतः यदि कोई साधन है तो वह यह है कि सम्मेलन इस कामको ले और बङ्गला, गुज-राती, मराठी, सम्मेलनोंसे भी सहायता ले। सब अपने अपने प्रतिनिधि नियत कर दें। यह प्रतिनिधि शब्दोंका चुनाव करें। फिर प्रत्येक सम्मेलन एक विशेष अधिवेशन द्वारा इन शब्दों पर विचार करे; और अन्तमें इन सब भगिनी भाषाओंका एक संयुक्त विशेष-सम्मेलन हो, जो शब्दोंका अन्तिम चुनाव कर दे। यदि केवल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने यह काम लिया तो उसका निर्णय उतना सर्वमान्य न होगा। फिर जो शब्द चुने जायं वह जहां जहां इन सम्मेलनों और इनके प्रवर्तकोंका प्रभाव पहुँचे वहां वहां प्रयुक्त हों। नवीन शब्दोंके लिये एक स्थायी उपसभा बैठ सकती है।

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि सब लोग या सब लेखक इन शब्दों को मानने लग ही जायँगे, क्योंकि सम्मेलनोंके पास कोई दबाने-का साधन नहीं है। परन्तु यह आशा की जा सकती है कि जो शब्द इतने विद्वानोंकी जांच-पड़तालसे चुने जायँगे वह प्रायः सर्वमान्य होंगे ही। फिर ज्यों ज्यों हिन्दीका प्रचार बढ़ता जा-यगा, इनका प्रचार आपही बढ़ता जायगा।

यह कार्य्य जितना कठिन प्रतीत होता है उतना कठिन है नहीं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के वैज्ञानिक कोशको लीजिये। सभा उतनी प्रभावशालिनी संस्था नहीं जितना कि सम्मेलन है, फिर भी उसके कोशको बहुत कुछ सफलता हुई है। ऐसी दशामें सम्मेलन द्वारा बनाये गये कोशको अवश्यमेव सफलता होगी।

सूर्य

(१)

र जगतका सूर्य एक प्रधान अङ्ग है। ज्योतिषमें सूर्यका वर्णन भी प्रधानतासे किया जाता है। सूर्यके विषयमें वैज्ञानिक विधियोंसे नाना प्रकारकी खोज लगाई गई हैं, जिनका संक्षेपसे वर्णन हम पाठ-कोंकी भेंट करते हैं।

सूर्यका वर्णन करनेके लिए सबसे प्रथम धारणा यह है कि सूर्य एक साधारण तारा है। उसकी रचना उसी प्रकारकी है जैसी रातको टिमटिमाने वाले तारोंकी है। इसलिए सूर्यकी परीक्षा करनेके अनन्तर भौतिक और रासायनिक रचनाका वर्णन भी वैज्ञानिकोंने उसी सदृश किया है।

सूर्यके आवरण

आंखसे देखने पर सूर्यका बिम्ब चमकता गोला सा दिखाई पड़ता है। दृश्यमाण बिम्ब-पर एक प्रकाशमान बड़ा आवरण छाया हुआ है, जिसको हिरण्कोष (photosphere) कहते हैं। इसके बीचमें लिपटा हुआ सूर्यका वास्तविक पिंड आकारमें बहुत ही छोटा है। सूर्य ग्रहणके

समयोंमें विशेष परीक्षणोंसे ज्ञात हुआ है कि सूर्य पर इस आवरणके अतिरिक्त इस पर एक अन्य भी आवरण है, जिसको हिरण्यवसन (chromosphere) कहा जाता है। यह आवरण उज्जनका ही बना हुआ है। इस पर भी एक आवरण है, जिसका नाम अंशुवलय या मयूखमाला या मरीचिमुकुट (corona) रक्खें तो अच्छा है। हम उक्त तीनों नामोंमेंसे अंशुवलयका पारिभाषिक रूपमें प्रयोग करेंगे। यह भी जाना गया है कि इन तीनों आवरणोंके भी बाहर विशेषतः सूर्यके मध्यरेखीय कटिबन्ध पर एक ऐसे द्रव्यका आवरण है जिसकी रचना कुछ अंशुवलयके घटक द्रव्योंसे मिलती है और कुछ अशोंमें भिन्नता रखती है :

सूर्यकी इन सब रचनाओंकी परीक्षा सप्तरङ्गी परीक्षणों द्वारा की जाती है। इस कारण विद्वानोंकी इस विषयमें दो भिन्न भिन्न स्थापनाएं हो गयी हैं।

(२)

प्रथम स्थापनाके अनुसार सूर्यका वायुमंडल हिरण्यवसनसे ही सीमित है। हिरण्यवसनके घटक द्रव्य वही हैं जो पृथ्वी तल पर प्राप्त होते हैं वह तापकी अधिकतासे सूर्यमें गैस रूपमें हैं। अंशुवलय तथा अन्य आवरणोंके द्रव्य सूर्यके ही परिशेष भाग हैं।

दूसरी स्थापनाके अनुसार सूर्यके वायुमंडल की सीमा अंशुवलय है। ज्यों ज्यों सूर्यके केन्द्रके समीप गहराईमें जावेंगे त्यों त्यों ताप अधिक होता जाता है। यह सिद्धान्त सभीने माना है कि हिरण्यकोष (photosphere) तक ही तापकी इतनी अधिक मात्रा हो जाती है कि रसायनिक तत्व तापकी प्रबलतासे प्रकृतिके सूक्ष्मतर रूपमें हो गये हैं; अर्थात् फलतः गहराईमें विद्यमान गैसें बहुत सरल रूप में किसी प्रकारका भी यौगिक न बनाती हुई विद्यमान हैं और ऊपरकी तहोंमें वह मिश्रित हो जाती हैं। सूर्यके कुछ (अपेक्षतः) शीतल भागोंमें मूल तत्वोंकी गैसें उस रूपमें भी विद्यमान हैं जिस रूपमें वह भूमंडल पर भी उपलब्ध होती हैं। और अंशुवलयमें तत्व कणोंके रूपमें और कणसंघोंके रूपमें भी पाये जाते हैं।

इस प्रकारकी स्थापानाओंके भेदका कारण केवल परीक्षणोंकी विधियोंमें भेद होना ही है।

एक विधिमें सप्तरंग-परीक्षक-यन्त्र (Spectroscope) में प्रकाश सम्पूर्ण सूर्य बिम्बसे आता हुआ प्रविष्ट होता है और सप्तरङ्गी पट्टिका (spectrum) में सब ही प्रकाश विलयनकी रेखाएं दृष्टिगोचर होती हैं। यह प्रतिवर्ष स्थिर हैं।

दूसरी विधिमें सूर्यके प्रत्येक घटक द्रव्यका भिन्न भिन्न भाग या खण्ड लेकर परीक्षा की गई है। इस प्रकारसे पृथक् पृथक् धब्बोंकी (sunspots) की, ज्वालोद्रेकों (prominences) की, हिरण्यवसनकी, और अंशुवलयकी सप्तरंगी पट्टिकायें ली गई हैं। यह सभी पट्टिकाएं प्रतिवर्ष बहुत परिवर्तित होती रहती हैं। प्रायः इनका परिवर्तन धब्बों और उद्रेकोंमें अधिक होता है।

(३)

मध्यम घनता Mean Density

यह स्पष्ट है कि उक्त प्रकारकी दोनों स्थापनाओंके अनुकूल सूर्यकी घनता सामान नहीं हो सकती। यदि सूर्य मंडलको हिरण्यकोश तक ही सीमित माना जाय तो जलको इकाई मानकर सूर्यकी घनता १.४४४ होती है। और यदि अंशुवलयको भी सूर्यके वायुमंडलमें जोड़ लिया जाय और अंशुवलयका विस्तार हिरण्यवसनसे ५००००० मील दूर माना जाय तो सूर्य मंडलका परिमाण ही हिरण्यवसनकी अपेक्षा १० गुना हो जाता है और घनता पूर्वकी अपेक्षा $\frac{1}{10}$ हो जाती है।

(४)

सूर्यके वायुमंडलके घटक मौलिक

प्रथम, प्रथम विधिसे प्राप्त किये परिमाणों-पर विचार करते हैं और इसकी जांचके लिये महाशय फ्रौनहोफरकी आविष्कृत रेखाओंकी रासायनिक अभिज्ज्वलित तत्वोंकी विशेष उज्ज्वल रेखाओंसे तुलना करते हैं। यदि इन परीक्षणोंसे पृथ्वी तल पर पाये गये मौलिकों-की सूर्य लोकमें सत्ता प्रमाणित भी हो जावे तो भी उसका सूर्य मंडलमें स्थान निर्धारित नहीं किया जा सकता। यदि हम अपने रसा-लयमें इतना अधिक ताप पैदा कर सकें जिससे कि मौलिक पदार्थ अपने परम सूक्ष्मतर रूपमें आ सकें तो उसके प्रकाशसे हम सूर्यके प्रकाश-की सप्तरङ्गी पट्टिकाके सदृश सप्तरङ्गी पट्टिका भी प्राप्त कर सकते हैं। और तभी सूर्यकी सप्तरङ्गी पट्टीकी ठीक ठीक आलोचना की जा सकती है।

महाशय किरचाफ (Kirchhoff) अङ्गस्ट्रम और थेलीनके अनुसार नीचे लिखे मौलिक पदार्थ सूर्यलोकमें पाये गये हैं।

किरचाफ		अङ्गस्ट्रम और थेलीन
सोडियम	(Sodtum)	सोडियम
लोह	(Iron)	लोह
खर	(Calcium)	खर
मग्न	(Magnesium)	मग्न
निकिल		निकिल
क्रोमियम		भारियम
कोवल्ट		तांबा
उज्जन		जस्ता
मैंगनीज़		
टिटेनियम		

इन मौलिकोंमेंसे भी कईके विषयमें बहुत सन्देह है और इनके सिवा कई और नये मौलि-कोंका होना भी सिद्ध हो गया है। नीचे लिखी सूचीमें दर्शाये पदार्थ सूर्यमें विद्यमान समझे गये हैं। (?चिन्ह सन्देह सूचित करता है।)

अलूमिनियम	वनेदियम	विस्मिथ ?
स्ट्रौंशियम	पलेदियम	टीन ?
सीसा	मोलिवूडीनम	चाँदी ?
काद्मियम	इरिडियम ?	ग्लूसिनम ?
सीरियम	लीथियम ?	लन्थेनम ?
युरेनियम	रूबीडियम ?	इट्रियम ?
पोटाशियम	सीसियम ?	इर्बियम ?

सूर्यके घटक पदार्थोंकी परीक्षा करनेके पश्चात् जब हम यहांकी रासायनिक साक्षियों की परीक्षा करते हैं तो यहां और वहांके मौलिकोंकी एकताकी स्थापना डगमगाती पता लगती है। सूर्यकी प्रत्येक घटनाकी रासायनिक प्रकृतिमें ही भेद नहीं; प्रत्युत सभी अवस्थाओंमें एक वैचित्र्य दिखाई देता है। यहाँ तक कि हमारे रसालय वहांकी वास्तविक स्थिति दर्शाने में लवमात्र भी सफल नहीं हो सकते।

(५)

घटक मौलिकोंका रसायन

दूरवीक्षणोंसे देखने पर सूर्यका हमें विम्ब-मात्र दीखता है। और उस विम्ब पर बहुतसे धब्बे या काले चिटकने भी दीख पड़ते हैं। इन चिटकनोंको धब्बोंके नामसे पुकारा जाता है। यह क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होता है, यह तो अगले लेखाङ्कमें दर्शाया जावेगा परन्तु वैज्ञानिक रसायन-परीक्षणों द्वारा इसकी वास्त-विकता दर्शाते हैं।

धब्बोंकी सप्तरङ्गी पट्टिकाएं साधारण सूर्य-की सतरङ्गी पट्टिकाओंसे बहुत भिन्न होती हैं। क्योंकि धब्बोंकी पट्टिकामें महाशय फ्रानहोफर-की कुछ एक रेखाएं चौड़ी होजाती हैं। प्रत्येक धब्बेमें उनका आकार बदलता है और वर्ष प्रतिवर्ष भी उनमें भेद आ जाता है। १८८६ ईस्वीसे १८८५ तकके बीचमें कैम्ब्रिजमें

स्थानमें लगभग ७०० परीक्षणोंके पश्चात् यह परिणाम प्राप्त हुए।

(१) धब्बोंकी सतरङ्गी पट्टी सूर्यकी सतरङ्गी-से सर्वथा भिन्न है। कतिपय फ्रानहोफरकी रेखा लुप्त हो जाती हैं। नवीन रेखाएं प्रकट होजाती हैं। और पूर्व ज्ञात रेखाकी गाढ़ता बदल जाती है।

(२) फ्रानहोफरकी रेखाओंको पैदा करने-वाले तत्वोंकी कतिपय रेखाएं बहुत चौड़ी हो गयी हैं।

(३) अधिक फैली रेखाओंमें प्रत्येक धब्बे-के परीक्षणमें भेद दीखा। लोहकी रेखाके आधार पर सतरङ्गी पट्टिकोंको नियमित श्रेणी-बद्ध करनेका प्रयत्न किया पर कुछ फल न हुवा। सब परीक्षणोंके परिणामोंको ६ विभागोंमें बांटा गया तो भी आधेसे अधिक प्रकार उनमें समा-न सके।

(४) किसी एक पदार्थकी रेखाओंकी भी तुलना करें तो जान पड़ता है कि दो भिन्न भिन्न पदार्थोंकी रेखाएं हैं। यदि एक अर्थात् पदार्थ की तीन रेखा हैं क, ख, ग तो तुलना करते हुए क, ख हैं तो ग नहीं; क, ग हैं तो ख नहीं; ख ग हैं तो क नहीं।

(५) एक ही परीक्षा करते हुए विशेष रेखा-ओंमें बहुत भेद आ गया। १२ ऐसी रेखाएं हैं जो प्रतिदिन चौड़ी ही होती गयीं।

(६) धब्बोंकी सतरङ्गीमें देखी गई बहुत रेखाएँ न्यून तापपरिमाण पर भी देखी जा सकती हैं। और कुछ एक रेखाएं ओषोज्जन (oxy-hydorgen) ज्वालामें भी पायी गयी हैं। यह रेखाएं विद्युत्की चापीय ज्वालाके ताप परि-माणसे विद्युत् चिनगारीके ताप परिमाण पर उतर आनेपर कुछ भी परिवर्तित नहीं होतीं।

(७) किसी पदार्थकी कुछ रेखाएं स्थिर रहती हैं और कुछ रेखाओंमें प्रकाशकी लहरीय लम्बाईमें भेद हुआ दीखता था।

(८) विक्षेप पृष्ठके प्रयोगसे धब्बोंमें दो या अधिक पदार्थोंकी सत्ता सिद्ध होती थी।

(९) लोह, कोबल्ट, क्रोमियम, मांगल, टिटेनियम, खर (कैल्सियम) और निकिल इनकी रेखा धब्बोंकी सतरंगियोंमें अन्य धातुओं-की रेखाओंसे मिल जाती हैं। और टंगस्टन, तांबा, और जस्तेकी रेखाएं अन्योंसे नहीं मिलतीं।

(१०) लोहा, मांगल, जस्ता, टिटेनियम-इनकी धब्बोंकी सतरंगीमें विद्यमान रेखा ज्वालासे प्राप्त रेखाओंसे भिन्न होती हैं। को-बल्ट, क्रोमियम और खर—इनकी रेखाएं ज्वाला रेखाओंके सदृश ही हैं।

(११) यह भी ज्ञात हुआ कि फैलनेवाली रेखाओंमेंसे कतिपय भौतिक मौलिककोंकी ज्वालाओंमें नहीं पायी जा सकतीं।

(१२) बहुत सी चौड़ी रेखाएं एकान्तरमें देखने पर परिवर्तित हो गयीं।

(१३) रेखाओंकी न्यूनतम संख्या प्रायः ज्ञात तत्वोंकी थीं।

(१४) रेखाओंकी अधिकतम संख्या ज्ञात तत्वोंकी प्रतीत होती थीं।

(१५ परिवर्तन या भेदका यही तात्पर्य है कि सूर्य-पृष्ठ अधिक धब्बोंकी अवस्थामें धब्बोंमें ताप बहुत अधिक बढ़ जाता है।

(६)

हिरण्यवसन (Chromosphere)

सूर्यमंडलके ऊपरी भागमें बड़ा भारी विक्षोभ रहता है और आपेक्षिकतया कभी बड़ी शान्ति रहती है। भिन्न भिन्न दशामें इस भागके परीक्षणसे बड़ा कौतुकजनक फल प्राप्त होता है।

अविक्षुब्ध अवस्थामें हिरण्यवसनकी सत-रङ्गी सर्वथा उज्जनके सदृश होती है। साथही सतरङ्गीकी पीली पट्टिका पर एक रेखा होती है,

जो द१ (D1) द२ (D2) के बहुत समीप द३ (D3) कहाती है।

हिरण्यवसनोंमें दो कारणोंसे विक्षोभ उत्पन्न कहाती है।

(१) ज्वालोद्रेकोंके कारण (Prominences)

(२) स्तूपशिखरोंके कारण (Domes)

'सूर्यमण्डलसे ज्वालाके पटल वेगमें लहराते हैं, वही ज्वालात्रेक कहाते हैं और यदि निचले भीतरी पृष्ठसे वाष्पोंके उठनेके वेगमें ऊपरी आवरणका कोई भाग गुम्बजके आकारमें परिवर्त्तन हो जावें तो वह स्तूपशिखर कहाते हैं दूसरी घटनाका नाम स्तूपोद्गम (Wellings up) कहा जाता है। इन उठे हुए स्तूपोंकी सतरङ्गीमें भी बड़ी विशेषता होती है।

(७)

ज्वालोद्रेक (Prominences)

सूर्य पृष्ठपर ज्वालापटलोंका बलपूर्वक उठना ज्वालोद्रेक कहाता है। सूर्यलोकमें होनेवाले विक्षोभोंका एक नमूना यह भी है। यह ज्वालोद्रेक दो प्रकारके होते हैं—प्रथम, जो अपेक्षतः मध्यम वेगके होते हैं; दूसरे जिनमें क्षोभका वेग बहुत अधिक होता है। दूसरेकी सतरङ्गी पट्टिकाओंमें बहुत सी धातवीय रेखाओंकी उपस्थिति पाई जाती है। इसीसे इनको हम धातवीय ज्वालोद्रेक (Metalic Prominences) के नामसे कहेंगे। धातवीय ज्वालोद्रेकाकी प्रथम दशामें रेखाकी लहरीय लम्बाइयां प्रायः ४६४३, ५·३१, और ५३१५·६ तक भी होती हैं। जब ज्वालोद्रेककी दीप्तिका वेग और भी बढ़ता है, तब और भी रेखाएं बहुत सी प्रगट होती हैं। एक विशेष अवसर पर सारी सतरङ्गी पट्टी रेखाओंसे भर जाती है। इस प्रकारके उद्रेकोंका वेग २५० मील प्र० सै० या १०,०००,००० प्र० घ० होजाता है। इनसे उद्रेकोंमें विद्यमान मौलिकोंके तीव्र विक्षोभोंका ही अनुमान किया गया है। यद्यपि यह सब रेखाएं धातुओंकी ही है तो भी इस अवसर पर उनका घनत्व बदल गया होता है। जो रेखाएं बहुत ही स्पष्ट रूपमें गहरे रङ्गकी दिखाई देती हैं वह यहाँके धातुओंसे बहुत फीके रूपमें पैदा होती हैं। फैलनेवाली रेखाएं इनसे अतिरिक्त हैं। किसी भी मौलिककी सतरङ्गी पट्टिकामें दृश्य रेखाओंकी संख्या उद्रेक दशामें बहुत न्यून होजाती है।

उद्रेकोंकी परीक्षाके पश्चात् महाशय टेकनी और रिक्षाने सूर्यके धब्बोंकी परीक्षाके साथ निम्नलिखित परिणाम प्राप्त किये हैं।

१—उद्रेकों तथा हिरण्यवसनकी सतरङ्गी पट्टिकाओंकी मौलिक रेखाएं उज्जन के अतिरिक्त यहांके विद्यमान मौलिकोंकी सतरङ्गी रेखाओंसे बहुत भिन्न हैं; जैसे कि लोहकी ४६० रेखाओंमें से केवल २ रेखा ही प्राप्त होती हैं।

२—जिस प्रकार धब्बोंकी परीक्षामें रेखाएं बदल जाती हैं उसी प्रकार उद्रेकोंकी परीक्षामें भी रेखाओंमें परिवर्त्तन हो जाता है। उद्रेकोंमें कई एक मौलिकोंकी रेखाएं कुछ तो रहती हैं और शेष लुप्त हो जाती हैं। कुछ एक उद्रेकोंकी लुप्त रेखाएं प्रकट होजाती हैं और पहली रेखाएं लुप्त होजाती हैं।

३—बहुत कम रेखाओंमें परिवर्त्तन होता है। धब्बोंकी अपेक्षा यह परिवर्तन बहुत न्यून है।

४—एक ही पदार्थको ध्यानमें रखें तो यह परिवर्तन बहुत ही न्यून हो जाता है।

५—कालपरिवर्तनके अनुसार रेखामें भेद आता है।

६—उद्रेककोंकी रेखाओं और मूलपदार्थोंकी रेखाओंमें इतना भेद है जो विद्युत्-चिनगारी की रेखाओंका विद्युत्-चाप-दीप्तिकी रेखाओंमें भेद होता है।

७—बहुत सी रेखाओंका कारण ज्ञात नहीं है।

८—उद्रेकोंमें दीखनेवाली लोहकी रेखाएं ओषोज्जनीय ज्वालाके तापपरिणाम पर नहीं दीखतीं। धब्बोंके परीक्षणोंमें ओषोज्जनकी रेखाएं प्रकट होती हैं। परन्तु उद्रेकोंमें इसकी एक भी रेखा नहीं होती।

९—बहुत सी रेखाएं फ्रानहोफ़रकी रेखाओं-में नहीं पाई जातीं और कुछ एक फ्रानहोफ़र की रेखाओंसे अधिक घनी हैं।

१०—धब्बोंके परीक्षणमें जामनी पट्टिकामें H, K दो उज्ज्वल रेखाएं थीं और कुछ रेखाएं अधिक गहरी काली तथा फैली हुई थीं। इसी प्रकार उद्रेकोंमें H,K उज्ज्वल हैं। परन्तु शेष रेखाओंमें कोई परिवर्तन नहीं।

११—विक्षेपक द्वारा जाना गया है कि बहुत सी रेखा दो तथा अधिक मौलिकोंमें भी समान हैं।

(८)

अंशुवलय (Corona)

अन्दरके अंशुवलयकी सप्तरंगी परीक्षासे ज्ञात हुआ है कि मुख्यतः वह उज्जनका बना हुआ है। उज्जनकी सभी रेखाएं दृष्टगोचर होती हैं और कैल्सियमकी H, K रेखाएं भी ज्यों की त्यों हैं' जिससे यही सिद्ध होता है कि यातो उसमें कैल्सियम है या कोई अन्य मौलिक कैल्सियमका ही घटक है जो सूर्यके अत्यन्त तापसे पृथक हो जाता है।

बाह्य अंशुवलयमें उज्जनकी रेखाएं लुप्त हो जाती हैं। परन्तु १४७४ रेखाके साथ हीफ्र रेखा भी शेष रह जाती हैं। यद्यपि हमारे सब परिणाम संदिग्ध हैं तो भी यह परिणाम स्पष्ट है कि बाह्य अंशुवलयमें उज्जन ठंडी हो जाती है तो भी उसमें एक वस्तु विद्यमान है जिसकी एक रेखा १४७४ है। यह मूलतत्व ज्ञात नहीं। हम यह भी जानते हैं कि अंशुवलयमें ऐसे घटक भी हैं जो प्रकाशको प्रतिक्षिप्त भी करते हैं। क्योंकि १८७१ ईस्वी में महोदय जैनसन और १८७२ में वार्क महोदय तथा अन्य विद्वानों ने भी बाह्य अंशुवलयकी सप्तरंगीमें फ्रानहोफ़रकी काली रेखाएं देखीं। इसलिये हम यह कल्पना करते हैं कि इस सप्तरङ्गी पट्टिकाका कुछ भाग उस प्रकाशका बना है। जो घटक अवयवोंके स्वतः तप्त होनेसे चूनेकी तप्त अग्निज्वलित बत्तीके सदृश आ रहा है। और कुछ भाग उस प्रकाशका है जो अंशुवलयसे आवृत भागों (हिरण्य-कोष और हिरण्यवसन) का स्थूल घटकोंसे प्रतिक्षिप्त होकर आरहा है। यह स्थापना १८८२ के सूर्यग्रहणमें सर्वथा पुष्ट हो गई है। क्योंकि उस समय प्रतिक्षिप्त प्रकाशकी पृथक् सतरङ्गी भी प्राप्त की गई थी। इसमें उज्ज्वल धारें भी थीं और असाधारण थीं।

—जयदेव विद्यालङ्कार।

भारतवर्षका हमला जर्मनी पर

सन् २०२५ ई०

स्थान बर्लिन।

दाँय दाँय! भट भट! तड़ाक!

फड़ाक! भड़ाक!

४ बजेका समय है सूर्य अस्त होगये हैं। स्थान स्थान पर बिजलीकी रोशनी हो रही है। जर्मन पुरुष और स्त्रियाँ इधर उधर टहल रहे हैं और अपने अपने निवास स्थानों अथवा होटलों को जानेका विचार कर रहे हैं। शीतका समय है और शीत अच्छी मालूम होती है और अभी कष्टदायी नहीं है। इतनेमें ही तमाम नगर भर में हलचल मच गयी। एक यह मरा एक वह मरा। कहीं होटल गिरा, कहीं डाकघरमें आग लग गयी। एक चलती हुई रेलगाड़ीके इञ्जनपर गोला गिरा। इञ्जन नदारद, पर गाड़ी झोंकेमें चली जा रही है। सब भौंचक हैं, आश्चर्य करते हैं कि यह गोले कहांसे आ रहे हैं। इतनेमें खिसिर कैसरके नाती, जो अपने बाबाके समय में जब वह राज छोड़कर भागे थे घुटनों चलते

थे अब लौट आये हैं और राज्य करते हैं, अपने नगरकी दुर्दशा देखकर और सुनकर सजधज कर जनरलों और बड़े बड़े पदाधिकारियोंके साथ जांच परताल करने निकले। किसी जनरलको हुकुम हुआ इधर जाओ; किसीको हुकुम हुआ उधर जाओ। वायुयानोंके जनरलको हुकुम हुआ कि आकाश मार्गमें जाकर ढूंढ़ो और सर्चलाइटों द्वारा पता लगाओ कि शत्रु किधर हैं। इतनेमें भड़ाक एक गोला गिरा और खिसिरके मोटरकारका शोफर यमलोककी सैर करने चल बसा। एडिकांग और अन्यान्य अफसर दौड़े आये और खिसिर शाहंशाहको एक निकटके सुरक्षित स्थानमें पहुंचाया। फोरिन (परराष्ट्र विभागके) सचिवको फौरन हुकुम हुआ कि जो अन्यान्य देशोंमें हमारे राजदूत हैं उनसे बेतारके द्वारा पूछो कि किस राष्ट्र ने हमसे यह शत्रुता ठानी है। जिस दूतके पास तार जाता है वह आँखें फाड़कर, नथुने फुलाकर, मुंह खोलकर उसे बारबार पढ़ता है और उसकी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। "शत्रुताका क्या अर्थ है, किससे पूछूं, क्यों पूछूं और शत्रुता होती भी तो मैं यहाँ क्यों होता। कितने ही दिवस पहले यह राज्य छोड़कर चला गया होता।" यह सोच विचार ही हो रहा था और तड़ित समाचार इधर-उधर दौड़ाये जा रहे थे कि इतनेमें वायुयान मरे हुए कागके समान फटफटाते हुए अंधेरेमें ऊपरसे गिरने लगे। कहींपर तो वायुयानके पंख दाहिने बायें मकानोंपर गिरे हैं और एञ्जिन व उसके कारका ढेर सड़कपर गिरा है, चलानेवालेकी हड्डी पसलियोंका पता नहीं। कहींपर वायुयान किसी मकानपर गिरा है तो मकानकी छत और वायुयान दोनों भड़भड़ाकर ज़मीनपर आ रहे हैं। अब और भी हलचल पड़ गई; नगर भर अपने अपने घरोंसे बाहर निकल आया और बर्लिन छोड़कर भागनेका विचार होने लगा। इतनेमें ही अन्यान्य देशोंके राजदूतोंके समाचार आने लगे कि उन देशोंमें शत्रुताका कोई चिन्ह भी नहीं है।

इस भांति रात्रिके २ बज गये। बर्लिनका बच्चा बच्चा जगा हुआ है और जिनके पास सवारीका बन्दोबस्त है, बर्लिन छोड़कर बाहर भागे जा रहे हैं। निर्धन निवासी अपने बाल बच्चोंको लेकर बाहर मैदानमें भेड़के समान एकत्रित हो रहे हैं। जाड़ेकी ठंडी ठंडी हवा चल रही है। दांत कटकटा रहे हैं। जोड़ जोड़ कांप रहा है और जाड़ेके मारे सिकुड़े जा रहे हैं। सब रात्रि व्यतीत होनेको आगई और किकीकी अक्ल काम नहीं करती। स्प्री नदीके सब पुल टूट गये; लगभग सब स्टेशन चकनाचूर होगये। गिरजाघर बर्लिनमें एक तो थे ही कम, पर अब तो बमके गोलोंसे एक भी न रहा। अधिकांश घर टूटफूट गये हैं।

६ बजे प्रातःकालका समय है और सूर्योदय होनेको अभी ४ घंटे हैं कि इतनेमें एक गोला आर्सेनल (गोला बारूदका घर) पर गिरा। खिसिरके बाबाका यह नियम था कि ४० वर्षका युद्धका समान हर समय एकत्रित रहना चाहिये। खिसिर उनके पौत्र हैं और अङ्गरेज़ोंने जो उनके बाबाकी दुर्दशाकी थी वह उनको सदैव याद रहती है। उन्होंने प्रण कर लिया था कि वह १०० वर्षके युद्धकी सामग्री एकत्रित रक्खेंगे। स्प्री नदीके तटपर चारों ओर जलसे घिरा हुआ एक टापू सा है। यह कई मील लम्बा चौड़ा है। एक पक्का गढ़ सा उसके चारों ओर बना हुआ है। इसीमें आर्सेनल है। इसपर बमका गोला गिरते ही बस एक ज्वाला सी पृथ्वीसे निकलती हुई दिखाई दी कि जितने नगर निवासी थे वह मानों एक भयानक सुनसान बन में जो वृक्ष रहित है खड़े हुए मालूम होने लगे। उनके कानमें किसी प्रकारका शब्द असर नहीं करते थे अर्थात् कान बहरे होगये थे। अब एक दूसरेसे वार्तालाप करनेकी जो कोई इच्छा

करता है तो दूसरा उसको कुछ उत्तर ही नहीं देता। वह भुंझलाता है। एक दूसरेको मारते पीटते हैं। प्रत्येक मनुष्य यह समझता है कि कुसमयपर कोई किसीका साथ नहीं देता; अब जो हम इनसे बात करते हैं तो यह उत्तर नहीं देते। नगर भरमें एक घोर दङ्गा मच गया है। पति अपनी स्त्री को मारता है। कोई स्त्री अपने पतिका मुंह नोच लेती है। कहीं कोई मालिक अपने नौकरको पीटता है। कहीं सिपाहियोंकी कम्पनियां बाहर निकली खड़ी हैं और बाहर नगरका प्रबन्ध करनेको जानेको है पर कमांडिंग अफसरके आर्डरको सुनते ही नहीं। अफसरको ज्ञात होता है कि सिपाही बाग़ी होगये हैं और आज्ञा नहीं मानते। वह दांत पीसता है व सिपाहियोंको समझाता है। सिपाही आश्चर्य करते हैं कि आफिसर कुछ न कहकर मुंह क्यों चिढ़ा रहे हैं। लगभग एक घंटे तक किसीको यह ज्ञात ही नहीं हुआ कि नागरिक सब बहरे होगये हैं।

अब दूसरा आश्चर्य यह देखिये कि जैसे भूकम्प आता है और मकान डगमगाकर गिर पड़ते हैं उस प्रकारसे नगर भरके सब मकान डगमगाकर गिरे तो नहीं पर अपने अपने स्थान से हट गये हैं। पर इस बातपर किसीने ध्यान ही न दिया। प्रकाश होनेके समय ही फिर अंधेरा छा गया था; यहां तो आपसमें धींगा मुश्ती होने लगी और यह किसीको ध्यान ही न रहा कि यह तो मालूम करें कि यह प्रकाश काहेका था। इस समय भी नागरिकोंको अधिकांश दुख अपने बहरे हो जानेका है; पर कुछ पुलिस कर्मचारी और फौजी पदाधिकारी जिस दशामें प्रकाश दिखाई पड़ा था उस ओरको चले। चलते चलते जब आर्सेनलके निकट आये तो गिरे हुए मकानोंके ढेर मिलने लगे। बिजलीके तार टूटे हुए थे; सर्वत्र अंधकार था, थोड़ी दूर और आगे बढ़नेके पश्चात् अन्धेरेमें और कुछ प्रातःकालके उजालेमें सामने एक झील सी दृष्टि आने लगी। न सामने आर्सेनल दिखाई देता है न आर्सेनलके आसपासके मोहल्लोंके मकान दिखाई पड़ते हैं। जिस प्रकार सांप मेंढक निगलनेपर फैल जाता है उसी प्रकार स्प्री नदी इस स्थानपर मानों फैलकर दो तीन मील चौड़ी हो गई है और सर्वत्र जल ही जल देख पड़ता है।

सारा बर्लिन बहरा हो गया, कौन कहे और कौन सुने, अब केवल इशारोंसे काम होता है। भाग्यवश अगर विन्दा व कालिका इस समय जीवित होते तो उनकी बर्लिनमें बहुत मांग होती और आदर होता; क्योंकि साहित्य पढ़ना व पढ़ाना फ़जूल होगया। बर्लिनके नागरिकोंको तो भाव बताना बहुत उपयोगी होता। खैर आश्चर्यकी बात यह सुनिये कि खिसिरका अर्दली जो खोफिया(Intelligence dept.)के सम्बंधमें काम करता था जानबूझकर बहरा रखा गया था। इस समय उसके कानके परदे खुल गये पर वह चकित है और उसकी बुद्धि काम नहीं करती कि क्या होगया है। वह तो सबकी सुनने लगा पर उसकी अब कोई नहीं सुनता। अब किसीकी कुछ नहीं बनाये बनती। यह विचार हो रहा है कि जिसको जहां जगह मिले भाग जाय पर यह सूचना प्रकाशित कैसे हो। बड़े बड़े काग़ज़ोंमें "भागो" शब्द लिखकर अपनी अपनी पीठ पर लगाकर सब लोग भागे जाते हैं और सरकारी आज्ञासे यही दीवारों पर भी चिपका दिया गया है। पर इतनेमें ही अररररर धम! एक एरोप्लेन (Aeroplane) पानीकी आर्सेनल (Arsenal) वाली झीलमें आ गिरा। इस भगदरमें लोग भागना तो भूल गये और उस तरफको दौड़े और चारों तरफ घूम फिरकर देखने लगे। किसीकी हिम्मत नहीं कि आगे बढ़कर पानीमें जाय। तब तक जब मनुष्य घबराया हुआ पानी पर हाथ पैर मारता दिखाई पड़ा। कुछ आद

मियोंने एक लकड़ीका तख्ता पानीपर फेंक दिया और दो आदमी उसको सहारेसे पकड़कर आगेको उस मनुष्यकी ओर बढ़े और उसके पास पहुंचकर उसे तखते पर बिठाया। और दो एक बार तखते परसे वह लुढ़क गया, फिर सम्भल कर बैठा और यह लोग सहारा देकर उसे किनारे लाये। इतनेमें खिसिरको खबर मिली। वह भी उसी स्थानपर आगये और उसको अपने मोटरकार पर बिठा कर अस्पतालकी ओर चले। इतने समयमें उसके हवास कुछ ठिकाने हो गये और उसने कुछ कहना चाहा पर इस बातका उसको ज्ञान था ही नहीं कि अब यहां सुनता कौन है। उसे बोलता और झुंझलाता देखकर कुछ खिसयाये और मुसकराते चेहरेसे खिसिरने उससे कहा कि हम सब बहरे हो गये हैं। अब सूर्य भी अच्छी तरह उदय हो गया और कोहरा भी कुछ छट गया है। इस मनुष्यने आकाश की ओर उंगली उठाकर लिखा कि "वह देखो जो काली काली बूंदोंके समान पक्षियोंका झुंड सा मालूम होता है वह किसी शत्रुके वायुयान हैं, और हिम रेखासे ऊपर उड़ रहे हैं। जब आपकी आज्ञानुसार हम लोग शत्रुकी खोज लगाने ऊपर गये तो चारों ओर फैल गये और खोज लगाने लगे। सिगनल द्वारा सबोंने अपनी अपनी दिशायें निश्चित कर ली थीं और मुझको ज़िब्रूजकी ओर जानेको कहा गया। मैं ज़िब्रूज तक गया पर मुझे कोई दिखाई न दिया। इसके पश्चात् मैं लौटा आता था। सूर्यका प्रकाश होना आरम्भ होगया था। मैं कुछ ऊंचा होकर उड़ने लगा और मैंने यह विचारा कि बर्लिन पहुंचकर नगरके चारों ओर चक्कर लगाऊं और अपने सहकारी वायुयानोंका कुछ पता लगाऊं। इतनेमें ही यह जो बूंद सरीखे आकाश मार्गमें दिखाई देते हैं, इनमेंसे एक बूंद मेरी ओर आती दिखाई दी और दो मिनटके भीतर ही उसने एक बड़े वायुयानका रूप धारण कर लिया। तब मुझे ज्ञात हुआ कि यह बर्लिनके ही ऊपर आकाशमें किसी शत्रुके वायुयान हैं। मैं यह सोच ही रहा था इतने में मुझसे १००० फुटपर वह वायुयान आगया और उसमेंसे एक लम्बा बांस सा मेरी ओर निकलता दिखाई दिया। बस मेरा इंजन बन्द होगया। यह देख मेरे प्राण निकल गये। मैंने देखा कि मेगनेटो (magneto) अब कामही नहीं करता, न एञ्जिन (Engine) चिनगारी देता है। उसका काम बन्द हो गया और मैं नीचेकी ओर गिरने लगा। शत्रुका वायुयान ऊपरकी ओर जाने लगा और जो बांस सरीखी चीज़ निकली थी उसीमें लोप हो गई। मैं अच्छी तरह यह न देख सका कि उसपर किस देशका झंडा है पर यह अवश्य मालूम हुआ कि उसपर बीचमें एक गोल फुटबाल सी और दाहने बाय दो हाकी स्टिक सी खड़ी थीं। यह बातें हो रही थीं कि इतनेमें ही शत्रु के वायुयान नीचे उतरने शुरू हो गये। किसकी पलटन और किसकी फौज; किसका घर और किसके बालबच्चे; जिसका जिस तरफ सींग समाता है भागा जाता है। जिनके पास सवारी है वह सवारी पर भागते हैं और जिनके पास सवारी नहीं है पैदल ही टांगें घसीटते चले जा रहे हैं कि इतनेमेंही बर्लिनके ठीक ऊपर वायुयान आगये और हर एक वायुयानमेंसे जिस प्रकार बोटकी दो मूछें सी निकली होती हैं दाहिने बायें दो बांस सरीखे लटक गये। कुछ थोड़े से धनके लोभी धन एकत्रित करनेमें भागनेसे पिछड़ गये थे और इस कारण जर्मनीमें किसी स्थानको भागनेका प्रयत्न मोटरमें चढ़कर कर रहे थे कि उनके भी मेगनेटो (magneto) बेकार हो गये। हाथ पांव फूल गये। कभी स्टारटर (starter) घुमाते हैं, कभी पेट्रोल (petrol) खोलते ह, कभी स्क्रू खोलते हैं, पर गाड़ी चलती ही नहीं। बर्लिन (Berlin)

के ऊपर जब शत्रु के वायुयान उड़ने लगे तो (magneto) ही नहीं बल्कि टेलीफोन, तार, बेतार (telephone, telegraph, wireless) आदिके सब यन्त्र बेकार हो गये। पावर हौस (power house) का इञ्जन और डैनेमो (dynamo) तो चलते रहे और शेष सब बन्द हो गये। कुछ देर बाद ऐसा ज्ञान पड़ने लगा कि शत्रु ने ४, ५ वायुयानोंको बर्लिन (Berlin) के और निकट आकर मानो नगरके चारों ओर भ्रमण करनेकी आज्ञा दी है। इन्होंने दो चक्कर काटे होंगे कि इतने में झपटकर चारों (power house) पावर हौसकी ओर उड़ गये और किंचित नीचे आकर ऊपर की ओर एक ऐसा झटका मारा कि दूर से यह ज्ञात होता था कि वह कोई वस्तु खींच रहे हैं। वह बारी बारीसे नाचे जाने और ऊपर उठने लगे। (power house) पावर हौसके ऊपर से हटते नहीं थे। मैं यह तमाशा देख ही रहा था कि एकाएक पावर हौस का भी डैनेमो (dynamo) शिथिल हो गया। नगर के ट्राम (trams) व रेलें व अन्यान्य कारखाने सब यन्त्र जो चल रहे थे बन्द हो गये। अब इन वायुयानोंके निकट आ जानेपर नागरिकोंको मालूम हुआ कि झंडोंपर दो सर्पों के बीचमें सूर्यका चिन्ह बना है और इसके ऊपर ब्रिटिश (British) साम्राज्यका साधारण चिन्ह है। यह डबल चिन्ह देखकर कुछ कुछ ज्ञात होने लगा कि यह आक्रमण किस ओर से हुआ है। पर यहां इतना किसको समय है कि कुछ इनसे बात चीत करे और राज्यकी ओरसे कुछ पूछताछ करे। यहां तो सबको अपने अपने प्राणोंकी पड़ी है। किसका राज्य और किसका प्रजा !

(शेष आगे)

—"जटायु"

कल

(ले० —श्री० रतनलाल, एम० ए०)

र्तमान युग कलोंका युग कहा जा सकता है। जितनी वृहदाकार और शक्ति-शाली कलोंका आविष्कार पिछले सौ वर्षों में हुआ है, उतनी सृष्टिके आदिसे सौ वर्ष पहिले तक न बनी होंगी। इस शब्दका प्रयोग प्रायः हम लोग दिन रात किया करते हैं ; पर यदि इसकी परिभाषा देनेके लिए कहा जाय तो कदाचित् हममेंसे बहुत कम निकलेंगे जो ठीक ठीक उत्तर दे सकेंगे। कलकी सरल परिभाषा यहांपर दे देना इसीसे उचित ज्ञान पड़ता है। जिस वस्तुके द्वारा हम शक्ति सफलता और सुगमतासे लगा सकते हैं उसे कल कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाके समझनेके लिए दो एक उदाहरण पर विचार कर लेना चाहिये। आपको एक अमरूदके चार टुकड़े करके बच्चोंको देने हैं। मान लीजिये कि अमरूद पका हुआ और मुलायम है। आप हाथसे ही उसका चूर्ण तक कर सकते हैं, पर अच्छे साफ़ चार टुकड़े करना आपके लिए असम्भव है। हाथसे दबाने से और उसका रूप विकृत हो जाता है। हाथ न दबाकर आप जेबसे चाकू निकालते हैं और उसके सफाईसे चार टुकड़े कर डालते हैं। चाकू अपने आप तो अमरूद काट नहीं सकता। आपने शक्ति लगाई उसीने चाकूसे अमरूद कटवाया। यदि आप हाथसे ही दबाकर अमरूदके चार टुकड़े करते तो आपको शक्ति अधिक लगानी पड़ती, क्योंकि उसके टुकड़े करनेके अतिरिक्त उसको आप कुचल भी डालते। इसी भांति चाकू, कैंची, गंडासा, हँसिये, आदि
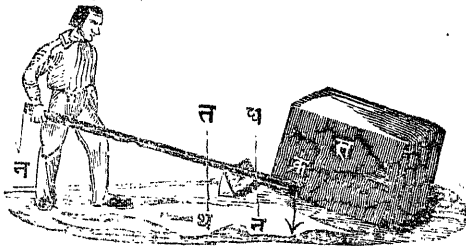
चित्र ४४—प्रथम कक्षाकी डांडी। बाएं छोर न पर शक्ति लग रही है।

वस्तुओंपर विचार करके यह सहज ही ज्ञात हो जायगा कि प्रत्येकमें शक्तिका सदुपयोग होता है।

ऊपरके उदाहरणमें मान लीजिये कि अमरूद कड़ा है। आप हाथसे दबाते हैं, वह दबता तक नहीं, पर आप छुरीसे उसे सहजमें ही काट सकते हैं। ऐसा क्यों होता है? बात यह है कि हाथसे दबानेसे आपकी शक्ति बहुत बड़े क्षेत्र-में अमरूदकी सतहपर जिसका स्पर्श हाथसे है, काम करती है, परन्तु जब आप चाकूके बेंटे-को दबाते हैं तो शक्ति बहुत थोड़े स्थानपर लगती है और अभीष्ट शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।

आप कुएँपर जाकर पानी खींचना चाहते हैं। यदि कलसा बड़ा हुआ तो खींचनेमें यह डर रहता है कि झोकके साथ कुएँमें न गिर जायं। परन्तु जहां चरखीपर रस्सीको चढ़ाया कि बजाय ऊपरके खींचनेके आप नीचेको खींचना आरम्भ कर देते हैं, जिसमें गिरनेका भय तनिक भी नहीं रहता। चरखी भी एक कल है। इसकी सहायतासे शक्ति लगाना आपके लिए सुगम हो जाता है।

यहांपर यह स्मरण रखना चाहिये कि कलोंसे हमारा बल नहीं बढ़ सकता। बल हमारा उतना ही बना रहता है, परन्तु शक्ति लगाना सम्भव हो जाता है और हम सहजमें ही बड़े बड़े काम कर लेते हैं। क्रेन यंत्रकी सहायतासे एक साधा-रण मनुष्य भी सेकड़ों मन बोझ उठा लेता है,
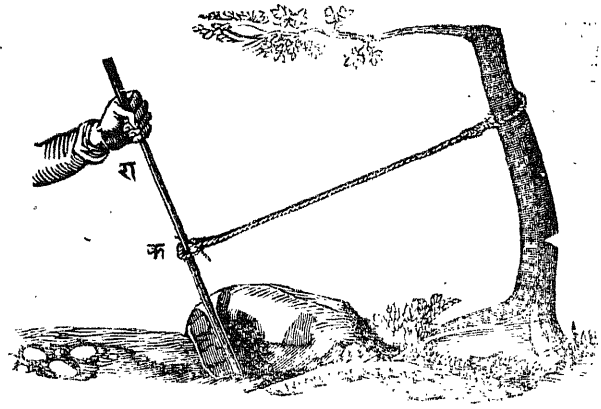
चित्र ४५—दूसरी कक्षा की डांडी। सुमेरु स स्थान है जहां डांडी धरती परटिकी हुई है।

परन्तु वस्तुतः उसे काम उतना ही करना पड़ता है, जितना हज़ार आदमी उसके उठानेमें करते। आगे चलकर उदाहरणोंपर विचार करनेसे मालूम हो जायगा कि जो बलमें वृद्धि दिखाई पड़ती है, उसकी कसर समय अथवा दूरीमें निकल जाती है। कलें अनेक हैं, परन्तु मुख्य कल दो ही हैं—डांडी और ढलवां-तल। जितनी अन्य कलें हैं वह सब इनके ही विविध रूपान्तर हैं। आज हम केवल डांडीपर विचार करेंगे। "डांडी के अद्भुत खेल" शीर्षक एक अत्यन्त मनोरञ्जक और शिक्षा-प्रद लेख विज्ञान भाग १, अंक १ में निकल चुका है। जिन पाठकोंको उक्त अंक मिल सकें अवश्य पढ़ लें।

डांडी लकड़ी या लोहेकी कठोर छड़ होती है, जो एक निश्चित विन्दुपर घूमती है और जिसपर दो ऐसी शक्तियां काम करती हैं जो उसे विपरीत दिशाओंमें घुमानेकी चेष्टा करती हैं। जो शक्ति कि हम लगाते हैं उसे तो उद्योग (power) कहते हैं और दूसरीको विरोध (re-

sistance)। निश्चित विन्दुको सुमेरु (fulcrum) कहते हैं। सुमेरुकी स्थिति उद्योग और विरोधके स्थानोंके विचारसे तीन तरहकी हो सकती है—(१) सुमेरुकी एक ओर उद्योग हो और दूसरी ओर विरोध; (२) सुमेरु और उद्योगके बीचमें विरोध हो; (३) विरोध और सुमेरुके बीचमें उद्योग हो। अतएव डांडियां भी तीन प्रकारकी होती हैं।

एक लकड़ी या लोहेके मामूली डंडेको पहिले और दूसरे प्रकारसे कैसे काममें ला सकते हैं, यह चित्र ५४ और ५५ में दिखलाया है। चित्र ५४में विन्दु स सुमेरु है। उद्योग न पर लगा हुआ है और विरोध क पर अर्थात् बोझ जो उठाना है वह क स्थानपर है और शक्ति न स्थानपर। चित्र ५५ में डांडीका सुमेरु स है। शक्ति ख स्थानपर लगाई जा रही है, जिसका विरोध पेड़ कर रहा है, जो
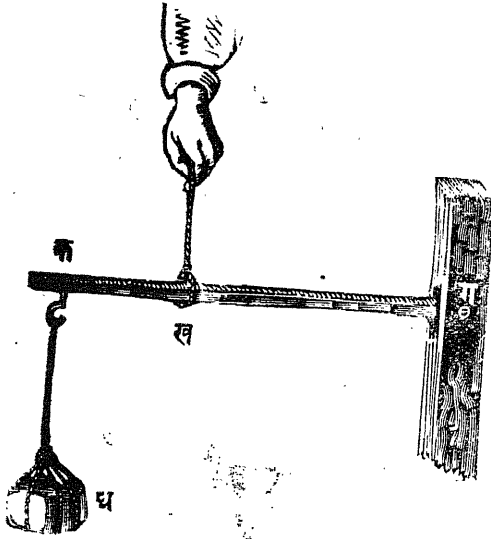
चित्र ५६—तीसरी कक्षाकी डांडी।

क विन्दुपर बँधा है। उसी छड़को तीसरी कक्षाकी डांडीकी नाईं काममें लानेकी विधि चित्र ५६ में दिखाई है। ग सुमेरु है, ख पर उद्योग हो रहा है और क पर विरोध।

एक वा दूसरे प्रकारकी डांडी से हम हर समय काम लेते रहते हैं। मैं इस समय लिख रहा हूं। उंगली और अंगूठेका अन्तिम पोरवा

चित्र ५७—रेलकी पटरी उठानेका सब्बल। 'ग' छोर पटरीके नीचे घुसेड़ देते हैं। 'ख' पृथ्वीपर जमा रहता है, 'क' पर शक्ति लगाते हैं।

तीसरी कक्षा की डांडीका काम कर रहे हैं। पोरवेका जोड़ सुमेरु है, पोरवेके पट्ठे उद्योग कर रहे हैं और उसका छोर कलमको चला रहा है। मैं इस समय पान खा रहा हूं। दांत दबाकर सुपारी काटता है। जबड़ेका जोड़ सुमेरु है; पट्ठा उद्योग-कर्ता है और जहाँ सुपारीका टुकड़ा दबाता है वह स्थान विरोधका है। यहाँ भी तीसरी कक्षाकी डांडी हुई। जब हथेलीपर वज़न रखकर उठाते हैं तो हाथ भी तीसरी कक्षाकी डांडीका काम करता है।

कैंची प्रथम कक्षाकी दुहरी डांडी है। बीचकी कील सुमेरु होती है; जहाँसे पकड़ते हैं वह स्थान उद्योगका होता है; जहाँपर कैंची

चित्र ५८—कैंची

काटती है वह विरोधका होता है। इसी प्रकार विचार करके देखिये तो सब्बल (जब उससे पत्थर सरकाते हैं), साधारण तराज़ू, धौंकनीका डंडा, चावल कूटनेकी ढेंकी और पानी खींचनेकी ढेंकुली यह सब पहली कक्षाकी डांडी हैं।

नाव खेनेकी डांड़ दूसरी कक्षाकी डांडी होती है। उद्योग हाथसे करते हैं, विरोध नांवमें

लगा हुआ कड़ा करता है, जहाँसे नावको डाँड

चित्र ५९—ढेंकुही।
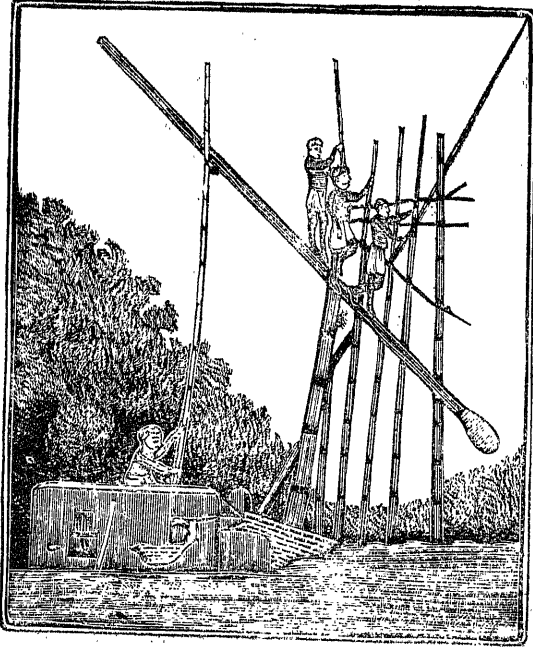
ठेलती है; जहाँ पर डांडका चौड़ा भाग पानीमें डूबता है वही विरोध-स्थल होता है। सरौता भी दूसरी कक्षाकी डांडी है (चित्र नं० ६०)।

अब यह विचार करना है कि किस प्रकार-की डांडीसे हमें उद्योगमें सुगमता होती है और किसमें कष्ट, क्योंकि कलोंका प्रयोग मनुष्य कार्यको सुगम बनानेके लिए ही करता है। इस विषयको छोड़नेके पहले एक और बात समझ
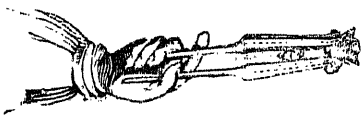
चित्र ६०—सरौता।

लेनी चाहिये, जिस उद्देश्यसे ही नीचे एक प्रयोग दिया जाता है। आप एक सीधी लकड़ी (कख) लें और उसमें डोरा बाँधकर इस प्रकार लट-का दें कि वह समतल रहे। अब ग बिंदुकी दोनों तरफ दो डोरे बांध दें और उनके सिरों पर फंदे बनादें, जिसमें बटखरे बाँधे जासकें; एक ओर के डोरे में (फ) एक सेरका बाँट बाँध दें, दूसरेमें (प) अधसेरा बाँध दें। अब डोरों को इधर उधर सरकाकर फिर लकड़ीको समतल करदें और प, फ की दूरी ग से नाप लें। आपको मालूम होजायगा कि प्रत्येक स्थितिमें अधसेरा, सेरसे दुगनी दूरीपर रहेगा। यदि दूरी चौगुनी करदें तो पौसेरा ही सेरके बोझको सं-

चित्र ६१—यदि 'प' पर ८ तोलेका और 'फ' पर १० तोलेका बांट लटका दें तो प ग १० और फ ग ८ होगा।
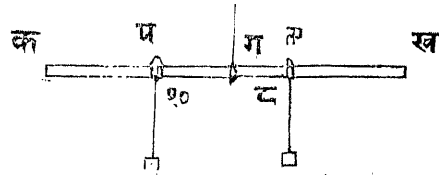
भाल लेगा। दूरी अठगुनी करदें तो अधपई ही काफी होगी। इस प्रकार सेरके बाँटसे आप छोटे से लेकर बड़ेसे बड़ा बोझ तोल सकते हैं। अज्ञात बोझका (य) का परिमाण होगा:—

$$य = १ \text{ सेर} \times \frac{गफ}{गप}$$

यह सिद्धान्त उन तराजुओंका है, जो आप रेलवे स्टेशनोंपर देखते हैं, जहाँ छोटे छोटे बांटों-से बड़े बड़े बोझ तोल दिये जाते हैं। अर्कमी-दिस कहा करता था कि यदि उसे पृथ्वीके बाहर कोई स्थान खड़े होने भरको मिल जाय तो वह पृथ्वीको तोल डालेगा।

इस प्रयोगपर विचार कीजिये। क्या कारण है कि सेरको अधपईसे तोल लेते हैं। सोचिये कि सुमेरुपर इन दोनों बटखरोंका क्या प्रभाव पड़ता है। यह दोनों छड़ीको सुमेरु (ग) की दो तरफ खींचते हैं। सेर एक तरफ घुमानेकी चेष्टा करता है और अधपई दूसरी तरफ। यह

घुमानेकी चेष्टाएँ बराबर हैं ; यदि न होतीं तो छड़ एक ओर घूम जाती। इस घूमनेकी चेष्टाको घूर्ण कहते हैं। अब हम घूर्णकी परिभाषा दे सकते हैं। किसी स्थिर विन्दुको लक्ष्य रखकर किसी शक्तिका घूर्ण शक्तिके परिमाण और उसकी दिशा से विन्दुकी दूरीके गुणनफलके बराबर होता है। उक्त प्रयोगमें सेरका घूर्ण = १सेर × गफ; अधपईका घूर्ण = ⅛सेर × गप। यह दोनों घूर्ण जब बराबर होंगे और विपरीत दिशाओंमें होंगे छड़ी पड़ी रहेगी। इसलिए अधपईकी दूरी सेरकी दूरीसे अठगुनी होती है।

सारांश यह कि घूर्णोंका बराबर और विपरीत दिशाओंमें होना साम्यके लिए आवश्यक है। अब इस सिद्धान्तको तीनों श्रेणीको डांडियोंमें लगाइये। चित्र ५४ में हाथसे लगाई हुई शक्ति का घूर्ण = शक्ति × सन और पत्थरका घूर्ण = व × सक ; जहाँ व पत्थर का वज़न है। डांडी को पत्थर एक तरफ और हाथ विपरीत दिशामें घुमाना चाहते हैं। अतएव घूर्ण विपरीत दिशावाले हैं। यदि पत्थर १० मनका है और आप २० सेर की शक्ति लगा सकते हैं तो स क से स न २० गुना होना चाहिये ; तब पत्थर तुल जायगा। उसके उठानेके लिये स न दूरी २० गुनेसे अधिक होनी चाहिये। स्पष्ट है कि २० सेरकी शक्तिसे आपने १० मनके पत्थरको उठा लिया ; पर सोचनेसे मालूम हो जायगा कि जब हाथ २० फुट घूमेगा, तब पत्थर एक फुट उठेगा। [हाथ और पत्थर वृत्तोंमें घूमेंगे, जिनके अर्ध व्यास १ : २० का संबन्ध रखेंगा]।

उपरोक्त उदाहरणसे मालूम हो जायगा कि पहली कक्षाकी उपयोगिता $\frac{\text{स न}}{\text{स क}}$ के बराबर होगी। यदि डांडी पर पत्थर सुमेरुसे दूर हो और शक्ति सुमेरुके पास लगाई जाय तो उपयोगिता कम हो जायगी। दूसरी प्रकारकी डांडीमें उपयोगिता १ से अधिक है, क्योंकि शक्ति सुमेरुसे विरोधकी अपेक्षा अधिक दूरी पर लगाई जाती है। चित्र ५५ में देख लें। तीसरी श्रेणीकी डांडियोंमें उपयोगिता १ से कम हो जाती है, अर्थात् जितनी शक्ति लगाते हैं, उतनी भी सफलता नहीं होती। प्रकृतिने मनुष्य आदि जीवोंके शरीर में सब तृतीय श्रेणीकी डांडी क्यों रखी हैं, यह बात समझनेके लिए शरीर निर्माण पर विचार करना भर पर्याप्त होगा ; फिर स्वयम् ही स्पष्ट हो जायगा कि ऐसा न करना अनिवार्य और परमावश्यक था।

एकसे दो भले

[ले०—श्री० गंगाप्रसाद, बी० एस-सी०]

यह एक साधारण कहावत है कि एकसे दो भले होते हैं। जब कभी आदमी किसी काममें हाथ डालता है, उसे एक संगी, साथी या सलाहकारकी प्रायः आवश्यकता पड़ा करती है। इस संसारमें बहुत कम ऐसी वीरात्माएँ होती हैं, जो अपने ही भरोसे–बिना दूसरेका सहारा ढूंढ़े, संसार यात्रा करनेके योग्य होती हैं। पर देखा जाय तो उन्हें भी अपनी आत्मा अथवा परमात्माका अवलम्ब लेना पड़ता है। जहां दो साथी होते हैं तहां एककी कमी दूसरा पूरी कर देता है। यही संग साथका सबसे बड़ा लाभ है।

वैज्ञानिक संसारमें भी इस महान नियमके अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रत्येक मौलिक के कुछ निजके गुण हुआ करते हैं, जैसे कठोरता, वर्धन शीलता, गुरुत्व द्रवणशीलता आदि। अतएव गुणोंपर विचार करके ही हम पदार्थों

का उपयोग करते हैं। जो पदार्थ जिस कामके उपयुक्त जँचता है उसे उसी काममें लाते हैं। सोनेकी खड्ग, चांदीकी कटार, प्लाटिनमके चाकू, सोडियमकी छुरी, पुटासियमकी कढ़ाई, रेडियमकी अंगूठी, न आजतक बनी हैं, न कभी बनेंगी। शमशीर हिन्दके लिए इस्पात ही काम आवेगी और अंगूठियोंके लिये सोना या चांदी। पर प्रायः ऐसा होता है कि हमारे किसी खास कामके लिए किसी एक पदार्थमें, सब गुण पाये जाते हैं, पर कोई अवगुण या कमी भी निकल आती है। जब ऐसी समस्या आकर उपस्थित होती है तब उपरोक्त कहावत ही चारितार्थ होती है कि एक से दो भले। इसीके कुछ उदाहरण पाठकोंके विनोदार्थ यहां देते हैं।

लोहा बहुत ही सस्ता पदार्थ है, जो सब जगह मिलता है और आसानीसे बनाया जा सकता है।

इसलिए लोहेसे अनादि कालसे नित्यके जीवनमें काम आनेवाली चीज़ें बनायी जाती हैं। तवा, कढ़ाई, कलछुली, चिमटे इत्यादि लोहेके बनते हैं। पर लोहा नरम होता है इसलिए तलवार, बन्दूक, भाले, कटार, हथौड़े इत्यादि चीजें जिनमें सख्ती चाहिये, लोहेकी ही बनायी जाती हैं। यहां काला कोयला, जो स्वयम् लोहेसे बहुत कम कड़ा होता है, लोहेके आड़े आता है। और उसे कठोरता प्रदान कर देता है।

इस्पात या फौलाद वास्तवमें साधारण लोहा होता है, जिसमें सौ भागमें एक हिस्सा कोयलेका रहता है। इसी कोयलेके तुच्छ परिमाण की बदौलत फौलादके इतने प्रशस्त गुण होते हैं।

लोहेमें एक और भी कमी है। जहां उसे हवा लगी और पानी पड़ा कि मुरचेने उसे खाना शुरू किया। जो लोहेकी चीज़ें बनती हैं, उन्हें इसीलिए किसी तरकीबसे बचानेका प्रयत्न किया जाता है। जो बहुत बड़ी चीजें हैं, जैसे पुल, रेलके अंजन और जहाज़, उनपर तो रोगन कर देनेसे काम चल जाता है। सिंदूर या अलूमिनियमकी बुकनी अल्सीके तेलमें मिलाई और पोत दी। ग्रेफाइट (पत्थरके कोयलेका एक रूपान्तर) भी कहीं कहीं काममें आता है, पर छोटी छोटी रोज़के कामकी चीज़ों पर आये दिन रोगन करना न आसान ही है, न अच्छा ही। आपको पानी रखनेके लिए एक बर्तन चाहिये। सबसे सस्तो धातु लोहा है। आपने बर्तन लोहेका बना लिया। पानी धीरे धीरे लोहेको खाने लगेगा और थोड़े दिनोंमें उसमें छेद हो जायँगे। लोहेकी रक्षा करना इसलिए आवश्यक है।

अब यदि आप इसपर रोगन करते हैं तो पानी न पीनेके कामका रहेगा न नहानेके काम का। इसीलिए वैज्ञानिकोंने एक और तरकीब निकाली। उन्होंने लोहेपर अन्य ऐसी धातोंका चढ़ाना शुरू किया जिन्हें नम हवा नहीं खाती। ऐसी धातुएँ रांग और जस्ता हैं। यह दोनों ही सुगमतासे पिघल जाती हैं। इसीलिए पिघली हुई धातुमें डोब दे देने भरसे धातु लोहेपर चढ़ जाती है। रांग या टीन चढ़े हुए लोहेकी चद्दरके मामूली मट्टीके तेलके पीपे होते हैं, जिन्हें हम भ्रमवश टीनके पीपे कहते हैं। जस्ता चढ़ी हुई लोहेकी चद्दरकी बालटियां, पानीके नल, कोठियां, टंकियां, इत्यादि होती हैं।

पाठकोंको मालूम होगया होगा कि जिस पीपेको वह टीनका समझते थे वास्तवमें वह लोहेका बना होता है। सच है कि संसारमें चीजें जैसी ऊपरसे दीखती हैं वैसी असलियतमें नहीं होतीं। सीनेकी सुइयां, कागज़ टांकनेके आलपीन भी प्रायः ऊपरसे चमकती हुई साफ सफेद धातुके बने हुए दिखाई पड़ते हैं। किन्तु यदि हम उनकी ऊपरकी तह खुरच डालें तो मालूम हो जायगा कि वह भी लोहेके बने होते हैं। आलपीन पीतलके भी बनाये जाते हैं। पीतलके ऊपर टीनकी तह रहती है। यह तह आलपीनोंको

पिघली हुई टीन या रांगमें डुबोकर नहीं चढ़ाते, प्रत्युत् एक अनोखी रोचक विधि से चढ़ाते हैं। आप थोड़ा सा तूतिया पानीमें घोललें और घोलमें कोई लोहेकी चीज़ डाल दें; तो थोड़ी देरमें लोहेपर तांबा चढ़ जायगा। पुराने ज़मानेके रसायनके भक्त इसी प्रयोगसे यह सिद्ध किया करते थे कि लोहा तांबेमें तबदील हो जाता है, पर आजकल हम जानते हैं कि शनैः शनैः लोहा घुलता जाता है और तांबा चढ़ता जाता है। इसी प्रकारकी एक तरकीबसे आलपीनोंपर टीन चढ़ाई जाती है। टीनका एक घोल तय्यार किया जाता है और उसमें पीतलके आलपीन छोड़ दिये जाते हैं।

एक धातुपर दूसरी धातु चढ़ानेका आज कल एक और भी तरीका निकल आया है। वह यह है कि जिस धातुको चढ़ाना होता है उसका एक विशेष प्रकारका घोल तय्यार कर लिया जाता है। उस घोलमें एक ओर तो धातुकी एक तख़्ती लटका दी जाती है और दूसरी ओर वह चीज़ लटका देते हैं जिसपर धातु चढ़ानी होती है। तदनंतर किसी बाटरी के छोर इन दोनोंसे तार द्वारा जोड़ देते हैं। बिजलीकी धारा बहने से धातु चढ़ जाती है। (जिस चीज पर धातु चढ़ानी होती है उसको सदा बाटरीके ऋण पटसे जोड़ते हैं।) इस तरकीबसे आजकल सैकड़ों चीज़ोंपर निकिल, सोना, चांदी चढ़ाया करते हैं।

बाइसिकिलके कल पुर्ज़े, ताले, कबज़े, कड़े इत्यादि चीज़ोंपर निकिलका मुलम्मा कर देते हैं। डिबियों, तश्तरियों, खिलौनोंपर भी निकिलका मुलम्मा रहता है। रसोईके बरतनोंपर टीनका मुलम्मा रहता है, जिसे कलई कहते हैं। चमचों और प्यालोंपर भी कलई कर देते हैं; किन्तु चान्दी चढ़ा देना अधिक उचित होता है। चम्मच और कांटे ब्रिटेनिया-धातु अथवा जर्मन सिल्वरके होते हैं। ब्रिटेनिया मेटेल तो टीन और सुरमेका धातु मिश्रण होती है; पर जर्मन सिल्वर में ताम्बा, जस्ता और निकिल रहता है। इनपर चान्दी चढ़ा देनेसे अम्लोंका प्रभाव नहीं पड़ता।

क़लई कर देना अथवा मुलम्मा चढ़ा देना एक धातुकी कमीको दूसरीसे ढककर पूरे कर देनेकी विधि है। जहां ऊपरकी तह उतरी कि अन्दरकी धातुके सब ऐब निकल आये। यह दशा वेष-भूषा-मात्रके जेंटिलमेनोंकी सी है। "उघरे अन्त न होइ निबाहू।" मुरादाबादी गिलासों, कटोरियों और थालियोंकी जो दशा महीने दो महीने बरतनेके बाद हो जाती है, वह सभीको मालूम है। गिलटकी तशतरियोंमें जब कोढ़सा चूने लगता है, लाल लाल धब्बे पड़ने लगते हैं, तब कैसा घृणित दृश्य होता है। अब कलईको छोड़कर दूसरी विधिपर विचार करना उचित है जिसमें किसी धातुके अवगुण विशेष निकाल देनेके लिए किसी दूसरी उपयुक्त धातुको लेते हैं और गलाकर दोनोंको एक मेल कर देते हैं। इस विधिका सबसे साधारण और सरल उदाहरण पीतलका है। ताम्बेके बरतन खाने बनानेके काम नहीं आ सकते। वह खानेको जहरीला कर देते हैं। ताम्बा मुलायम भी बहुत होता है और जल्दी घिस जाता है उसके बर्तन पिचक जाते हैं और भद्दे हो जाते हैं। जस्ता बहुत जल्द अम्लोंमें गल जाता है। पीतलमें यह दोनों अवगुण बहुत घट जाते हैं। साथ ही साथ कड़ापन आ जाता है।

पैसे, पाई, अधन्ने ताम्बेके बने कहे जाते हैं, परन्तु वास्तवमें शुद्ध ताम्बेके नहीं होते; क्योंकि ताम्बा बहुत जल्दी घिस जाता। ताम्बेमें मुलायम टीनका ५ प्रति शत मिला देनेसे महान परिवर्तन हो जाता है। जो धातु-मिश्रण इस भांति तय्यार होता है वह ताम्बेसे कहीं ज्यादा कड़ा होता है।

सोने, चान्दीका भी यही हाल है। इन

तुओंके सिक्के या ज़ेवर बनाये जायं तो उपयुक्त कठोरता न होनेके कारण नतो उनपर बढ़िया काम हो सकता है और न रोज़मर्राके इस्तेमालके लायक होते हैं। इसीलिए उनमें सदैव ताँबा मिला दिया जाता है। गिनीमें २२ केरेटका सोना रहता है अर्थात् उससे प्रत्येक २४ भागमें २ भाग ताम्बेके रहते हैं।

इसी प्रकार अलुमिनियमको अधिक कठोर बनाने के लिए उसमें २% मेगनीसियम मिला देते हैं। इस धातुमिश्रणको मेगनेलियम कहते हैं।

ऊपर जितने उदाहरण दिये हैं उनमें प्रायः धातु-मिश्रण बनानेका एक मात्र लाभ कठोरता बढ़ा देना है। पर यह न समझना चाहिये कि केवल इसी एक गुणके लिए धातुमिश्रणोंकी कदर की जाती है। नीचे कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं, जिनमें अन्य गुणोंके लिए धातु-मिश्रणों की रचना की जाती है।

बाटरीमें शुद्ध जस्ता और ताम्बा काम आता था। पर शुद्ध जस्ता बड़ा महगा पड़ता था। इस लिए मामूली जस्तेको लेकर, गंधकके तेज़ाबसे साफ करलेते हैं और पारा चढ़ादेते हैं। पारा जस्तेके साथ मिलकर एक मिश्रण बना लेता है, जो शुद्ध जस्तेकी नाईं ही बाटरीमें काम देता रहता है।

धातुके तारोंकी बाधा तापक्रमके अनुसार बदलती रहती है। इस कारण प्रमाण-बाधाएँ बनानेमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी, क्योंकि जहाँ तापक्रममें ज़राभीअन्तर पड़ा नहीं कि बाधामें भी अन्तर हुआ। आज कल कई धातु-मिश्रण ऐसे मिल गये हैं जिनकी बाधा तापक्रमके बहुत अन्तर होजानेसे भी नहीं बदलती। ऐसा एक पदार्थ मेंगेनिन है जिसकी बाधा ०°श से ४०°श तक उतना ही बनी रहती है। इस पदार्थ में ८४ भाग ताम्बेके, १२ मेंगेनीज़के और ४ निकिलके होते हैं।

हम जानते हैं कि बरफ का द्रवण विन्दु ०°श है, किन्तु नमकका घोल ०°श पर नहीं जमता या गलता। जितनी मात्रा नमककी अधिक होगी, उतनाही द्रवणविन्दु कम हो जायगा। २३ प्रति शत नमक मिला देनेसे द्रवणविन्दु २३·६°श हो जाता है। इसी भाँति जब एक धातु दूसरीमें गला दी जाती है तो दोनोंका द्रवण विन्दु कम होजाता है। यहाँ जिस धातुकी मात्रा अधिक होती है वह घोलक और जिसकी कम होती है वह घुलित कहाती है। किसी धातुको लीजिये, उसमें कोई दूसरी धातु गलाइये और शनैः शनैः उसकी मात्रा बढ़ाते जाइये। द्रवणविन्दु घटता चला जायगा, फिर एक न्यूनतम स्थान तक घट जायगा। तदनन्तर यदि घुलित धातुकी मात्रा बढ़ादें तो द्रवणविन्दु बढ़ने लगेगा। यदि मात्रा इतनी अधिक बढ़ादें कि पहली धातुकी मात्रा उसके सामने न कुछ हो जाय तो द्रवणविन्दु दूसरी धातुका हो जायगा।

सारांश यह कि धातु मिश्रणका द्रवणविन्दु धातुओंसे कम होता है। इसका सबसे साधारण उदाहरण टांका है। टांकेमें राँग और सीसा रहता है। रांगका द्रवणविन्दु ४४०°श और सीसेका ६१७°श है किन्तु टांका ३७४° पर ही पिघल जाता है। जब चार चार धातुओंको मिलाकर धातु-मिश्रण बनाये जाते हैं, तब तो द्रवण-विन्दु और भी कम हो जाता है। एक पदार्थ है जिसे वुड्स फ्यूसिबिल एलोय (Woods' fusible alloy), अर्थात् वुड महोदयका आविष्कृत धातुमिश्रण, कहते हैं। वह ६५°श पर पिघल जाता है। इसका यों अनुमान लगाइये कि यदि इसकी देगची बनाकर पानी खौलाना चाहें, तो पानीके खौलनेके बहुत पहले ही वह पानी होकर बह जायगी। इस पदार्थमें बिस्मिथके ४, सीसेके २, राँगका १ और कादमियमका १ भाग होता है। इसके

द्रवणविन्दुका मिलान इसके घटकोंके द्रवण-विन्दुओंसे कीजिये तो बड़ा आश्चर्य होगा। रांग और सीसा तो ४४०°श और ६१७°श पर पिघलते हैं, पर बिस्मिथ और कादमियम भी (५१४°श और ६०८°श पर) कम तापक्रमों पर नहीं पिघलते।

इन द्रवणशील धातु-मिश्रणोंका उपयोग व्यापारमें बहुत होता है। फायर-ऐलारमों अथवा आगसूचकोंमें इस धातु-मिश्रणका प्रयोग होता है। एक बिजलीकी घंटीमें इसके बने हुए तार से एक कीं कसदेते हैं। जब आग लगती है तो तार थोड़ी गरमी पाकर पिघल जाता है और कीं गिरते ही घंटी बजने लगती है। इसी प्रकार पंखों और लम्पोंके साथ भी (फ्यूज) लगा देते हैं, जो आवश्यकतासे अधिक धारा पहुंचनेसे गल जाते हैं और धाराका बहना बन्द कर देते हैं। स्प्रिंकलर्समें भी यही धातुमिश्रण काम आते हैं। बड़े बड़े गोदामोंमें जगह जगह पानी छिड़कनेके स्प्रिंकलर्स लगे होते हैं। उनके मुंह द्रवणशील धातु मिश्रणसे बन्द रहते हैं। गरमी पाकर धातुमिश्रण गल जाता है और पानी निकलना आरम्भ हो जाता है और आग बुझ-जानेकी बहुत कुछ सम्भावना रहती है।

धातुमिश्रणोंका रङ्ग भी अजीब होता है। चाँदी और जस्तेसे गुलाबी, सोने और एलु-मिनियमसे बैजनी, ताम्बे और अलुमिनियमसे सुनहरी, ताम्बे और जस्तेसे पीला धातु मिश्रण बनता है।

जिस प्रकार स्वर्गलोकसे गङ्गा जब आईं तो शंकरने ही उनका वेग सम्भाला, इसी प्रकार तेज़ मिज़ाज फ्लोरीनकी उत्पत्तिके समय एक इरीडियम और प्लाटिनमके धातु-मिश्रणके ही बरतन बनाये गये थे।

हम देख चुके हैं कि मनुष्यको संगी साथी-की आवश्यकता पड़ती है और उसकी उपयो-गिता बढ़ जाती है। धातोंमें भी यह बात पाई जाती है। ईश्वरको भी सृष्टिके लिए प्रकृतिकी अपेक्षा रहती है। अतएव "एक से दो भले" वाली कहावत अक्षरसः सत्य है।

भूलोकका अमृत (दूध)

[ले०—प्रोफेसर ब्रजराज, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०]

रतवासियोंका ध्यान इस समय राजनीतिक प्रश्नोंकी ओर आकर्षित है। इस देशके बड़े बड़े नेता भा-रतवासियोंके लिए राज-नीतिक क्षेत्रमें काम करना अधिक उपयोगी समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रकी हर प्रकारकी उन्नति शासन सम्बन्धी अधिकारोंकी प्राप्तिपर निर्भर है; परन्तु इस बातको भूल न जाना चा-हिये कि हमारे देशके लिए रोटीका प्रश्न सर्वो-परि है। मनुष्यको समाज और धर्म्मसे सम्बंध रखनेवाले प्रश्नोंका तभी ख़याल आता है, जब उदरपूर्तिके सम्पूर्ण साधन मौजूद रहते हैं। अनाज तथा खाने पीनेकी अन्य चीज़ें बराबर महँगी होती जा रही हैं। जनता तथा गवरमेंटके लिए यह ज़रूरी है कि ऐसे साधन उपस्थित किये जायँ जिनसे भारतवासियोंको पेट भर भोजन मिलनेका प्रबन्ध हो जाय।

हिन्दुओंके मामूली भोजनका आवश्यक अंग गायपर निर्भर है। बिना घी दूधके हिन्दू संतुष्ट नहीं हो सकते। हिन्दू लोग दूधको सा-त्विक भोजन कहते हैं। साधू महात्मा लोग अन्य समस्त सांसारिक पदार्थोंको छोड़कर दूध

और उससे बने हुए मिष्टान्नको खाकर परमात्माकी आराधनामें अपना समय बिताना उचित समझते हैं। धर्म और मोक्षकी कठिन राहपर चलनेका सुगम उपाय यही समझा जाता है कि दूधके अतिरिक्त कोई और खाद्य पदार्थ न खाया जाय। हिन्दू धर्ममें खाने पीनेके मामलेमें बड़ा विचार है। पाश्चात्य सभ्यतासे प्रभावित यूरोपियन रस्म रिवाजोंके हिमायतियोंको हिन्दुओंके छूत छातके पचड़े और खानपानके मसले हास्यास्पद मालूम होते हैं। हिन्दुओंके व्यवहारों और विचारोंको सनक मात्र समझ कर टाल देना उचित नहीं है। वैज्ञानिक मस्तिष्कका यह कर्तव्य है कि प्रयोगों द्वारा बिना छान बीन किये हुये किसी प्रश्नपर राय न कायम करले। इस बातका कारण ढूंढ़नेका प्रयत्न करना चाहिये कि हिन्दू लोग क्यों दूधको परमोत्कृष्ट भोजन मानते आये हैं।

खान पानके मामलेमें वाद विवाद पुराने ज़मानेसे होता आ रहा है। रोगियोंको कितना और किस प्रकारका खाना देना चाहिये, इस विषय पर बड़े बड़े वैद्यकके ग्रन्थोंमें विस्तृत विवरण मिलता है। चरक और सुश्रुतने इस विषय पर बहुत कुछ विस्तारपूर्वक लिखा है। आज कलके वैद्य, डाक्टर और हकीम लोग भी अपने रोगियोंके खाने पीनेकी पूरी पूरी व्यवस्था करते हैं। इस प्रश्न पर यदि विस्तृत वर्णन किया जाय तो एक पूरी पोथी तैयार हो जाय। दुर्भाग्यवश संसारके बड़े बड़े वैज्ञानिकोंमें इस विषयके उसूलोंपर बड़ा मत भेद है। मांस अथवा दुग्धाहारके विषयमें अभीतक कोई निश्चित मंतव्य निर्धारित नहीं हुआ है। इसलिये यहाँपर हम कुछ ऐसी बात लिखेंगे जिनपर बहुत कम झगड़ा है।

दूधके सम्बन्धमें कुछ बातें ऐसी हैं जिनको सब लोग अपने साधारण अनुभव द्वारा मालूम कर सकते हैं। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनको हम प्रति दिन देखते हैं, इस लिए उनमें किसी प्रकारका मतभेद होना संभव नहीं है। यह साधारण बात है कि इस संसारमें मनुष्य-जीवनके पहले दो वर्षों में एक मात्र भोज्य दूध ही है। इससे यह नतीजा निकालना ठीक होगा कि दूध ही मनुष्यका प्राकृतिक भोजन है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जो कुछ खाता है वह मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं कहा जा सकता। ऐसा जान पड़ता है कि न तो मांस और न अनाज ही मनुष्यके लिए आवश्यक भोजन है। बचपनकी उम्र गुज़ार कर जब मनुष्य जवान होता है, तब उसका स्वाभाविक भोजन क्या होना चाहिये इस विषयमें अनुभव और प्रयोग द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है। ऐसा जान पड़ता है कि युवा मनुष्यके लिए कोई पदार्थ विशेष खाद्यकी रीतिसे निश्चित नहीं किया गया है।

खरबों वर्षके विकासके बाद आज मनुष्य अपनी इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है। प्रत्यक्ष है कि मनुष्य स्तनपायी पशुओंमेंसे है। मनुष्यका बच्चा अपनी मांका दूध पीकर पलता है। परमेश्वरने सृष्टिके रचनेमें बड़ी होशियारी और कौशलसे काम लिया है। हम कैसे मानलें कि ईश्वरने मनुष्यके बच्चेकी खुराक निर्धारित करनेमें कोई भूल करदी होगी। यह नतीजा निकालना युक्ति-संगत मालूम होता है कि स्तनपायी जानवरोंके पूर्ण विकासके योग्य खाद्य सामग्री उचित और आवश्यक अंशोंमें माके दूधके अन्दर मौजूद मिलेगी। इसमें सन्देह नहीं कि गायका दूध बछड़ेके लिए ही बनाया गया है; इसलिये वह मनुष्यके बच्चेके लिए पूर्णतया उपयुक्त नहीं है। लेकिन सब दूध करीब करीब एकसे ही होते हैं। इसलिये किसी एक तरहके दूधकी परीक्षा करके हम सबके सम्बन्धमें कुछ मन्तव्य निर्धारित कर सकते हैं। एक बात तो प्रत्यक्ष ही है कि बचपनके बाद जवानीमें भी

मनुष्य कितने ही स्तन-पायी जानवरोंका दूध अपने खानेके काममें लाता है। और दूधकी बनी हुई भिन्न भिन्न प्रकारकी मिठाइयां तथा घी, मक्खन और दही खाता है। दूध और उससे बने हुए पदार्थोंका मनुष्यके भोजनमें क्या स्थान है, यह जाननेसे इस बातका अन्दाज़ा लगता है कि मनुष्यका भोजन बहुत कुछ दूध-पर ही निर्भर है। यहां तक कि बीमारीकी अवस्थामें दूधका प्रयोग करना ही हितकर तथा स्वास्थ्यके लिए आवश्यक प्रतीत होता है। विशेष कर हिन्दुओंका भोजन पुष्टि-कारक और स्वास्थ्य-प्रद तभी होता है जब दूध और उससे बने हुए पदार्थोंका आधिक्य हो।

सम्भव है बहुतसे लोग यह कहें कि दूधमें कोई स्वाद नहीं होता। परन्तु ऐसा कहनेका असली कारण यह है कि मसाले और खटाई तथा भिन्नभिन्न प्रकारके पदार्थोंसे हमारी जीभका स्वाद बिगड़ गया है। निरन्तर इस बातके उद्योगमें लगे रहनेके कारण कि भिन्न भिन्न प्रकारकी स्वादिष्ट सामग्री हमारे लिए भोजनार्थ उपस्थित हो, हम लोगोंकी आदतें बिगड़ गई हैं। भला उस दिनकी याद तो कीजिये जब हम और आप केवल चौबीस घंटेकी आयुवाले थे। तब हममेंसे किसने इस बातका विचार भी किया था कि दूध स्वादिष्ट पदार्थ नहीं है, अथवा किसी अन्य स्वादिष्ट पदार्थकी हमको आवश्यकता है। दूधके सम्बन्धमें ठीक नतीजा तभी निकल सकेगा जब यह मान लिया जाय कि भूख केवल इसलिए लगती है कि खूनमें जिन जिन तत्वोंकी आवश्यकता हो वह पहुंचते रहें। भोजन करनेका सच्चा अभिप्राय यही है कि शरीरको जीवित रहनेके लिये आवश्यक सामग्री पहुँचती रहे। केवल जीभको स्वादिष्ट पदार्थ चखाकर संतुष्ट करना कभी भी खाना खानेका अभिप्राय नहीं हो सकता। यह बात ठीक तरहसे समझमें आजानेपर परमेश्वरके बनाये हुये इस प्राकृतिक भोजनकी महत्ताका पूर्ण अनुभव होगा। परमेश्वरने मनुष्य मात्रको दूध ही पिलाकर पाला है। पर दूधमें किसी प्रकारके मसाले नहीं मिलाये हैं। कुछ लोगोंको दूधके विरुद्ध यह आपत्ति है कि उन्हें दूध नहीं पचता; आध पाव दूध पी लेनेसे पेट बिगड़ जाता है। यह बात सम्भव है। गायका दूध बछड़ेके लिये उपयुक्त है, मनुष्यके लिये वह गाढ़ा और भारी ठहरता है। इसलिये आवश्यक है कि थोड़ा थोड़ा पीकर दूध पीनेकी आदत डाली जाय और पानी मिलाकर पतला करके गरम किया जाय और पिया जाय। इस तरहसे हर मनुष्यका पेट भी गायका दूध आसानीसे पचा सकेगा।

दूध पीनेसे कुछ असुविधा होनेका एक कारण यह भी हो सकता है कि लोग दूधको पतला पानी जैसा देखकर यह समझ लेते हैं कि इसमें कुछ तत्त्व ही नहीं है और दूध पी चुकनेपर भी ठूंसकर भोजन करते हैं। इसलिए बदहज़मी होजाना सम्भव है। साधारणतः यह अनुभव है कि यदि किसीसे पूछिये, 'क्यों साहब आज आपने कुछ खाया।' जवाब मिलेगा 'नहीं कुछ भी नहीं।' इनका कोई हितैषी बोल उठेगा, 'बिचरऊ सबेरे सेर भर दूध पीन रहै तबसे अबहिन तक बासिन मुँह बैठ हैं।' बस इससे आप समझ लीजिये कि भोजनमें दूधका क्या स्थान होना चाहिये। यह भली प्रकार समझकर दूधका प्रयोग किया जाय तो किसी प्रकारकी भी असुविधा होना सम्भव नहीं है।

बहुतसे लोगोंका यह विचार है कि दूध द्रव पदार्थ है और उसमें पानीकी मात्रा बहुत अधिक है, इसलिये दूध आधार नहीं हो सकता। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है क्योंकि पेटमें पहुँचते ही दूध तुरन्त दहीके रूपमें जम जाता है और अन्य ठोस भोजनोंकी तरह ठोस अवस्थाको

प्राप्त हो जाता है। इसलिये पेटमें पहुंचनेसे पहिले द्रव अवस्थामें रहनेका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि दूध भोजनका काम नहीं दे सकता है। इस सम्बन्धमें एक बात और जान लेनी चाहिये, जिससे भली प्रकार विदित हो जायगा कि लोगोंके उपरोक्त विचारोंमें कुछ भी सत्यता नहीं है। शरीरशास्त्र वेत्ताओंका मत है कि पचनेसे पहिले सब चीज़ें द्रव हो जाती हैं। बिना द्रव अवस्थाको प्राप्त हुए कोई भी चीज़ पच नहीं सकती। पेटके अन्दर खाद्य पदार्थोंके ऊपर सबसे पहिली क्रिया जो होती है उससे समस्त भोजन द्रव हो जाता है और तब पाचन क्रिया प्रारम्भ होती है। इसलिये यदि दूध पहिलेसे ही द्रव अवस्थामें हो तो क्या आपत्ति है।

बीमारीसे उठे हुए कमज़ोर प्राणीको शक्ति प्रदान करनेके लिए दूधसे बढ़कर कोई दूसरा खाद्य पदार्थ या औषध नहीं है। जो लोग शोरबा, यख़नी या तरह तरहके पदार्थ देकर हृष्ट और पुष्ट करना चाहते हैं वह सरासर गलती करते हैं। पाश्चात्य डाक्टरोंका यह अनुभव है कि दूध बहुत जल्द खोयी हुयी शक्तिको वापस लाता है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि मनुष्यका बच्चा अन्य जानवरोंके बच्चोंसे अधिक समय तक दूधके सहारे पलता है और बिना दूधके कोई और भोजन खाकर कोई भी मनुष्यका बच्चा जीवित नहीं रह सकता। यह सम्भव है कि माके दूध-की जगह कोई और दूध पिलाकर बच्चेको पाल लिया जाय पर बिना किसी न किसी दूधके बच्चेका पलना असम्भव है। कहना चाहिये, 'दूध नहीं तो मनुष्य नहीं।'

चाहे वैज्ञानिक रीतिसे मनुष्यकी असली आवश्यकताका विचार किया जाय और चाहे हिन्दुओंके धार्मिक भावोंकी ओर ध्यान दिया जाय, हर तरहसे यही नतीजा निकलता है कि राष्ट्रके जीवनको प्रबल बनानेके लिए शुद्ध और पवित्र दूधकी पर्याप्त मात्राका प्रबंध होना चाहिये। जब मनुष्यका प्राकृतिक भोजन दूध है तो हृष्ट पुष्ट शक्तिमान भारतवासी बनानेके लिए हम सब लोगोंका ध्यान दूधके बाहुल्य-की ओर जाना चाहिये। इस सात्विक भोजनके साथ साथ ही हिन्दू धर्मकी उन्नतिका प्रश्न बँधा हुआ है। इसलिए दूध और घीके दिनों दिन महँगे होते जानेपर घबड़ा कर कोई उचित प्रबँध ढूँढ़ निकालना चाहिए, जिससे देशके प्रत्येक व्यक्तिको आवश्यक मात्रामें शुद्ध दूध और घी मिलता जाय। सब सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक उन्नतिका मूल व्यक्तियोंके प्रबल जीवनपर स्थापित हो सकता है। यदि राष्ट्रके व्यक्तियोंका जीवन हीन और क्षीण है तो किसी प्रकारकी भी उन्नतिकी आशा करना दुराशा मात्र है। भारतवर्षके सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक नेताओंको भोजनकी इस विकट समस्याको हल करनेका मार्ग ढूंढ़ना चाहिये।

समालोचना

विज्ञान और आविष्कार—ले० सुखसम्पत्तिराय भंडारी, प्रकाशक श्री मध्य-भारत हिन्दीसाहित्य समिति, इन्दौर। पृष्ठ संख्या २०४, आकार डबल क्राउन सोहलपेजी। मूल्य १=)

इस पुस्तकके लेखकको श्रीमध्य भारत हिन्दीसाहित्य समितिने पुरस्कार देकर पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तककी समालोचना कई हिन्दी पत्रोंमें हो चुकी है। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक द्विवेदी महोदयने भी इसकी समालोचना की है और इसकी बड़ी तारीफ की है। इन सब कारणोंसे जब सम्पादक महोदयने यह पुस्तक मुझे समालोचनार्थ दी तो मैं बड़े

उत्साहसे इसे पढ़ने लगा। "हिन्दीमें इस प्रकारके ग्रन्थोंका अभाव है।" इसी अभावको पूरा करनेके उद्देश्यसे लेखक महोदयने प्रस्तुत पुस्तककी रचना की है। पुस्तकका 'अवलोकनकर' "हिन्दीके सुविख्यात लेखक श्री० बाबू सम्पूर्णानन्दजी" ने कुछ योग्य सूचनाएँ लेखकको दी थीं; हमें आशा है कि लेखक महोदयने उनसे लाभ उठाया होगा। पर यह बात हमारी समझमें नहीं आयी कि हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंका अभाव कैसे है? क्या लेखकको नहीं मालूम है कि हिन्दी पुस्तक एजेन्सीकी "खाद" और "भारतकी साम्पत्तिक अवस्था"; खड्ग विलास प्रेसका "सन्तति शास्त्र" इत्यादि; कोचकका "कृषिशास्त्र"; वनरजीका 'गन्ना और शकर'; वरमाजीकी 'हमारे शरीरकी रचना'; 'कृषि-कोष'; पचोली पुस्तक-माला; गंगा पुस्तक-मालाका "भूकम्प" और "किशोरावस्था"; बालकृष्ण और द्विवेदीके सम्पत्ति शास्त्र और अर्थशास्त्र; ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयके "देश दर्शन" आदि ग्रन्थ; नागरी प्रचारिणी सभाके ज्योतिष, भौतिकशास्त्र विषयक ग्रन्थ और विज्ञान परिषद्का "विज्ञान" तथा "विज्ञान ग्रन्थ-माला"; इत्यादि इत्यादि यह सब वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं। यदि लेखकको इतना भी न मालूम था तो श्री० बा० सम्पूर्णानन्दजीसे ही पूछ लेते। सहजमें ही पता चल जाता।

ग्रन्थकारको ग्रन्थ निर्माणमें "अंग्रेज़ीके कोई चालीस पचास ग्रन्थोंसे सहायता लेनी पड़ी है।" उनके लेखकोंको अलग अलग धन्यवाद देना लेखक सम्भव नहीं समझते। पर क्यों? पचास ग्रन्थों और ग्रन्थकारोंके नाम तो एक पेज पर ही आ सकते थे। पर लेखकको हमारी समझमें भय किसी और ही बातका था। आपके पहले ७० सफे एक ग्रन्थके आधार पर लिखे गये हैं। पुस्तकके पहले चतुर्थांशको यदि ग्रिगरी महोदयकी "Discovery: the Spirit and Service of Science" का बहुत भद्दा और गंदा रूपान्तर कहा जाय तो अनुचित न होगा। उक्त ग्रंथकी मनोरञ्जक और ललित भाषाकी तो छाया तक इस चतुर्थांश पर नहीं पड़ी। अनुवाद करनेकी हमारे ख्यालमें लेखकको लियाकत ही नहीं थी। जो कुछ उससे छीन झपटकर लिया वह भी इतना अशुद्ध; निर्जीव और विकृत होगया कि कहना पड़ता है 'दुहाई है ग्रिगेरी महोदयकी' आपके ग्रंथोंसे चोरी करके, मालको हथियाने केलिए उसके साथ बड़ी बड़ी ज्यादतियाँ की गई हैं। इन ज्यादतियोंके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं।

दोनों पुस्तकोंमें से पहला पैरा हम दिये देते हैं:—

"Since dawn the man had been seated on a stone at the bottom of a ravine. Three peasant women on their way to the vineyards exchanged "Good day" with him as they pased to their work. At sunset when they returned the watcher was still there, seated on the same stone, his eyes fixed on the same spot. "A poor innocent," one whispered to the others; "*Pe' caire !* a poor innocent," and all three made the sign of the cross. Fabre, the incomparable naturalist, patiently waiting to discover what is instinct and what is reason in insect life, is, to these vintagers, an object of supreme commiseration, an imbecile in God's keeping, wherefore they crossed themselves,"

"एक नालेके पास पत्थरकी एक बड़ी चट्टान रखी हुई है, उसपर आदमी सुबहसे आकर बैठा हुआ है। तीन देहाती स्त्रियां उस ओरसे निकलती हैं और वे इससे प्रणाम करके चली जाती हैं। सूर्य भगवान······उस मनुष्यका जिस

जगह ध्यान था अब भी वहीं है। वह किसी पदार्थको बड़े गौरसे देख रही है। ये बेचारी क्या समझें कि वह मनुष्य कौन है ? किसलिये यहाँ बैठा हुआ है और किस चीज़ पर अपना ध्यान जमाये हुए है। देहाती औरतें इसे एक भोला भाला प्राणी समझ आपसमें कानाफूँसी करने लगीं कि यह मनुष्य कितना मूर्ख और भोला है कि व्यर्थके लिये सुबहसे अब तक जबकि शाम होने आई है, यहीं बैठा हुआ है। यह कोई पागल तो नहीं है ? सचमुच इसकी दशा बड़ी शोचनीय और दयाजनक है। पाठक आप सोच सकते हैं कि यह मनुष्य कौन था ? किसलिए वहाँ बैठा था, किस बातको सोच रहा था ? यह सुप्रख्यात प्रकृति-विज्ञान विद् महामति फेबर था और वहाँ बैठा बैठा शान्ति-पूर्वक इस बातका पता चला रहा था कि जीवाणुओंके जीवनमें किस प्रकारकी स्वाभाविक प्रकृति और विचार शक्ति (Instinct और reason) होतीं हैं ?"

एक बार पढ़ जानेसे ही पाठकोंको दोनोंमें जो अन्तर है प्रकट हो जायगा। एक मामूली पत्थरको लेखकने बड़ी चट्टान बना दिया। दूसरे वाक्यमें उस और इसके प्रयोग पर ध्यान अवश्य देना चाहिये। आगे चल कर देख रही हैं का कर्त्ता वह अर्थात् मनुष्य है। his eyes fixed on the same spot का कैसा सुन्दर भाषान्तर है ! ग्रिगेरी महोदय ने जो भाव स्त्रियों के एक शब्द 'a poor innocent' से प्रकट कराये हैं उनका भण्डारी जी ने वाक्यों का भण्डार खोलकर कैसा सत्यानाश किया है। स्त्रियों के स्वाभाविक भोलेभाले भावोद्गार और क्रौस करने में जो ग्रिगेरी ने सौजन्यता, धर्मनिष्ठता, दया और सहानुभूति के भाव दर्शाये हैं उनपर भंडारीजीकी प्रगल्भताने पानी फेर दिया। आगे चलकर भण्डारीजी कहते हैं कि स्त्रियां क्या जानें यह कौन व्यक्ति था ! यदि उसी गांव के रहनेवाली स्त्रियां सुविख्यात प्रकृति-विज्ञान-विद् फेबरको न जानतीं तो उससे प्रणाम ही क्यों करतीं। भण्डारीजी, वह उसे जानती थीं, पर अपनी संकीर्ण बुद्धिके कारण उसके कार्यका महत्व नहीं समझती थीं, इसीसे उसपर दया प्रकट कर ईश्वरसे उसकी रक्षाके लिए प्रार्थना करतीं थीं और जादू टोना (क्रौस) करती थीं। ग्रिगरीका इतना आशय भी भण्डारी महोदय नहीं समझे, इसी कारण मूलकी खूबी खो बैठे।

पाठको, सावधान होजाओ। फेबरकी आँखें क्या हैं, अणुवीक्षणको भी मात करने लगीं। जिन जीवाणुओंका दर्शन शक्तिशाली अणुवीक्षण ही करा सकते हैं, उन्हें फेबरकी आंखें ही देख लेती हैं। धन्य हो महाराज, भण्डारीजी, आपने तो फेबरको दिव्यदृष्टि ही प्रदान करदी। पर यह आपकी नासमझी है। insect शब्दका अर्थ है कीड़े मकोड़े जिनके छः पैर होते हैं। आपने शायद एक बड़ा भारी शब्द ढूंढनेकी कोशिश की। पुराने कोशोंमें तो यह मिलता नहीं, फिर क्या आपने कहीं यह शब्द सुन लिया था ? यदि किसी सामयिक पत्र अथवा वैज्ञानिक ग्रंथको पढ़ते तो पता चल जाता कि bacteria के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है, पर आपने तो पहले ही समझ लिया कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य है ही नहीं। आपकी पढ़नेकी तकलीफ बची, आपकी पुस्तकको जो खरीद कर पढ़ें वह गलत बातें जानकर झक मारें और ठोकरें खायें, आपकी बला से।

इसी भांति दूसरे पैरा में 'tower' के लिए 'गुम्बजदार गिरजा'; 'he balances two balls on the edge of the gallery' के लिए 'दो गेंदोंको हाथोंमें तौल रहा है'; 'suppressed' के लिए 'दबाया जाय', अत्यन्त अनुचित भाषान्तर हैं।

और दो एक नमूने देखिये। एक बार एक

रमणी ने फैरेडेसे पूछा कि आपका यह नया आविष्कार किस कामका है (What is the use of it)। फैरेडेने उलट कर जवाब दिया। "Madam; Will you tell me the use of a new born child"। भण्डारीजी इसका इस प्रकार अनुवाद करते हैं "बाई, यह तो कहो कि नये पैदा हुए लड़केसे क्या फायदा है? हम भण्डारीजीसे पूछते हैं कि उनके इस अनुवादसे क्या फायदा है?

पृष्ठ तेरह पर हक्स लेके रोजनामचेके अंश का हवाला दिया है। उसको भण्डारीजीने मासिक पत्र बना दिया है। "to be indifferent as to whether the work is recognised as mine or not, so long as it is done:—are these my aims" का अनुवाद भण्डारीजीने किया है 'अपने कामकी दुनिया तारीफ करे, इस विचारसे उदासीन रहना, यही मेरे जीवनके उद्देश्य हैं।

भण्डारीजी ने अपने पहले अध्यायका नाम 'विज्ञान' रखा है, परन्तु ग्रन्थकारने Outlook and Endeavour; दूसरा अध्याय है, Truth and Testimony; इसका अनुवाद 'सत्य और प्रमाण' ठीक है।

पृष्ठ ४४ पर oil of vitriol (गंधकके तेज़ाब) को तांबेका रस बतलाया है, spectroscope (रश्मि चित्रदर्शक) को प्रकाश मापक। अभी चमत्कारोंका भण्डार पूरा नहीं हुआ है। हर्शल जब अपने दूर्बीनको एकबार एक स्थिति में कस देता था तो उसे आकाशका पूर्णिमाके चन्द्रमाके चतुर्थांशके बराबर भाग दिखाई पड़ता था। (the field of view visible at one setting was about one quarter the apparent size of full moon) अतएव उसने खगोलके अर्धगोलार्धमेंके तारोंकी गणना करनेकेलिए ३००००० स्थितियोंमें निरीक्षण किया होगा। इस विषयमें भण्डारीजी लिखतेहैं :—

वह एक वक्तमें अपनी दूरबीनसे पूर्ण चन्द्र के एक चौथे हिस्सेकी परीक्षा कर सकता था। चन्द्र जैसे ३०००००से भी ज्यादा ग्रहोंकी उसने परीक्षा करनी थी। and herschal had to observe more than 300000 of such fields in order to make his census of the stars in a hemi-phere of spacel.

हे भगवान, इस अनर्थका भी ठिकाना है, आकाश टूट क्यों नहीं पड़ता। ऐसे ही लोग लिख्खाड़ बनकर हिन्दी और देशका मुंह उज्वल करेंगे।

जिन लोगोंने इस पुस्तकको खरीदा है वह फाड़कर फेंकदें और द्विवेदीजी जैसे विद्वानोंके लिए ऐसी गन्दी पुस्तकोंकी अच्छी समालोचना कर देना अनुचित है। भाषाकी दृष्टिसे भी पुस्तक बहुत अच्छी नहीं है। द्विवेदीजी सायंस नहीं जानते तो किसी सायंसदांसे समालोचना करा देते। श्री मध्य भारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौरको उचित हैं कि जो प्रतियां बची हों उन्हें जलवा दे और पुरस्कार वापिस ले ले।

—रतनलाल।

पृष्ठ २०१ से २४० तक, बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैण्डर्ड प्रेस इलाहाबाद में छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

Reg. No. A 708

पूर्ण संख्या ६६
भाग ११
Vol XI.

कन्या, संवत् १६७७ । सितम्बर, १६२०

संख्या ६
No. 6

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

[एक प्रतिका मूल्य ।)

वार्षिक मूल्य ३)]

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ११ } कन्या, संवत् १९७७ । सितम्बर सन् १९२० । { संख्या ६

इस्पातको मात करनेवाली लकड़ी

[ले०—श्री० रतनलाल, एम० ए०]

काठकी छीलन, बुरादा, बादाम और फलियोंके छिलकों, तथा रुई आदि के पौदोंके डंठलोंसे कृत्रिम काष्ठ, कागज, कृत्रिम चमड़ा और नकली रेशम बहुत दिनों से बनाया जाता है। * इस कृत्रिम काष्ठ से प्रायः वह सब काम लिये जा सकते हैं, जो प्राकृतिक काष्ठसे ले सकते हैं। परन्तु किसीसे यदि यह कह दिया जाय कि फौलादसे भी ज्यादा मज़बूत लकड़ी होती है, तो वह कभी विश्वास न करेगा। पर विज्ञानकी महिमाका पार पाना असम्भव है। वैज्ञानिक जो कुछ कर दिखाये वह थोड़ा है।

लकड़ीकी दुर्बलताका कारण उसकी बनावट है अर्थात् यह कि वह रेशोंके समूहसे बनी होती है। प्रत्येक रेशा स्वयम् बड़ी खैंच बरदाश्त कर सकता है; बहुत बोझको सहार लेता है; परन्तु वह आसपासके रेशोंसे मज़बूतीसे नहीं जुड़ा रहता। इस बातकी परीक्षा करनेके लिए मेडीसन (Madison; Wis.) की जंगलातकी प्रयोगशाला (Forest Products Laboratory) ने एक यन्त्र बनाया है, जिससे लकड़ीका बल जांचनेके लिए रेशोंकी दिशामें खिंचावकी शक्ति लगाई जाती है अर्थात् रेशोंको दोनों तरफसे बाहरकी तरफ खींचकर तोड़ा जाता है, भीतर की तरफको खींचकर नहीं। पाइनवुडकी एक "सींक"† इस यंत्रमें रखी गई और दोनों सिरों को खींचकर बीचमेंसे तोड़नेकी नीयतसे बोझे लटकाये गये। मालूम हुआ कि ७५ से १०० पौण्ड तक के खिंचावको वह सह लेती है। लोहेके समान-

---

* विज्ञानके इसी अंकमें पृष्ठ २७६ पर "कृत्रिम काष्ठ" और विज्ञान भाग ३ संख्या २ पृष्ठ ५६ पर "कागज की लुगदी" नामके लेख देखिये।

† जिससे दांतमें अटके हुए कण आदि निकाला करते हैं।

आर वाले और ३ इंच लम्बे तारको परीक्षा की गई तो ३० पौंड के खिंचावसे ही टूट गया। अनेक परीक्षाओं का यह परिणाम निकला कि प्रायः सभी भारी लकड़ियां फौलादसे तिगुनीसे लगा छः गुनी तक मज़बूत होती हैं। रेशों को आड़ा डाल कर (उनके लम्बकी दिशामें) परीक्षा की गई तो ज्ञात हुआ कि फौलाद लकड़ीसे दुगनी अथवा चौगुनी अच्छी होती है।

उपरोक्त दोनों परिणामोंपर दृष्टि रखते हुए कि रेशोंके समानान्तर लकड़ी फौलादसे प्रायः छः गुनी और लम्ब की दिशामें फौलादसे प्रायः चौथाई ही मजबूत होती है, जंगलात की प्रयोगशालावालोंको यह सूझी कि यदि लकड़ीके पत्तर अथवा वर्क रेशों की दृष्टिसे कई तरफसे (कोणोंपर) काटे जायं और तदनन्तर उनको सरेस आदिसे जोड़ दिया जाय तो बहुत उत्तम प्रकारकी लकड़ी बनेगी, जिसमें सभी दिशाओंमें रेशे रहेंगे और खिंचाव बरदाश्त करलेंगे। इस प्रकारकी लकड़ी को "प्लाई-वुड" कहते हैं। इसके विषयमें यह अक्षरसः सत्य है कि यह फौलादसे भी ज्यादा मज़बूत होती है।

लकड़ीके पतले वरकोंसे पतले पतले ताव बनाना स्वभावतः कठिन काम है। इसमें दो प्रकारकी कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। एक तो यह कि वरकोंपर लेही या सरेस चढ़ादेनेके बाद उन का उठाना-धरना अत्यन्त कठिन हो जाता है। क्योंकि एक तो वह वैसे ही भञ्जनशील होते हैं दूसरे नमी पाकर और भी निकम्मे हो जाते हैं। दूसरी कठिनाई यह है कि स्याही या सरेसका पानी पीकर वरक फूल जाते हैं और सूखनेपर उनमें सिलवटें पड़ जाती हैं। इस कारण परतोंके जमानेके बाद सिकुड़न पैदा हो कर परत इधर उधर निकल आते हैं।

इन कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए यह तरकीब निकाली गई है कि झीने कागज़ों (टिस्यू पेपर) पर खूनसे बनी सरेस चढ़ाकर सुखा ली जाती है। काष्ठके वरकों को एकके ऊपर एक, सरेस चढ़े कागज़ों की तह देकर, चुन देते हैं। वरकों की संख्या तख़ते की मोटाईके अनुसार कम या ज्यादा ली जाती है और उन को एक ऐसे शिकंजेमें दबाया जाता है जो आपसे गरम होता है। गरमी पाकर सरेस अपना काम करने लगती है और वरक चिपक जाते हैं और शिकंजेके दबावसे खूब जमकर बैठ जाते हैं। इस प्रकार एक अच्छा तख़्ता मिल जाता है, जिसके बनानेमें ऊपर बतलाई हुई कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता।

प्लाइवुडके बहुत बारीक तख़्ते वायुयानोंके पंख बनानेके काममें भी आने लगे हैं। इञ्जीनियरोंका अनुभव है कि कपड़े की जगह प्लाइवुड का प्रयोग करनेसे उठनेकी शक्ति ६ अथवा ८ प्रतिशत बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि इसमें कपड़े की सी फड़कन ("Flap") नहीं होती। दूसरे बोझके ख़यालसे भी उस की मज़बूती उतनी ही होती है जितनी कपड़े की।

पहले पहल प्लाइवुडकी चर्चा इस सम्बन्धमें चली तो एक बड़ी भारी कठिनाईका खयाल आने लगा। वायुयान सभी मौसिमोंमें बाहर निकलते हैं और प्रायः गहरे कुहरे और अत्यन्त भीगी हुई हवामें घंटों रहते हैं। इस कारण प्लाइवुडके अन्दरकी सरेस नमी पाकर गलने लगेगी तो प्लाइवुडके अंश बिखुर जायंगे और वायुयानका नाश हो जायगा।

इस कठिनाईको दूरकरनेका प्रयत्न प्रयोगशालाके विशेषज्ञ करने लगे। दो प्रकार की नई सरेस निकाली गईं। एक तो जानवरोंके खूनसे बनाई गई और दूसरी दुग्धोज अथवा छेने (Caseine) से। इन सरेसोंका प्रयोग प्लाइवुड बनानेमें किया गया और उनकी परीक्षा पानीमें कई तापक्रमोंपर की गई।

ठंडे पानी में दस दिनतक और खौलते हुए पानीमें ८ घंटे तक डुबोये रखनेका उसपर कुछ भी

असर न हुआ। अन्तमें फिसलानेवाली मशीनसे भी परीक्षा की गई। इस यंत्र द्वारा जमे हुए वरकोंको एक दूसरेके ऊपर फिसलाकर अलग करनेका प्रयत्न किया गया। मालूम हुआ कि २५० पौण्डसे लेकर ७०० पौण्ड प्रति वर्ग इंच तकके दबावसे वर्क अलग अलग होते थे। प्रायः तन्तु या रेशे टूट जाते थे, पर सरेस नहीं छोड़ती थी।

प्लाइवुडने और विशेषतः इस नई आविष्कृत वाटरप्रूफ ग्लू (सरेस जिसपर जलका प्रभाव नहीं पड़ता) ने काष्ठकी तिजारतमें युगान्तर पैदा कर दिया है। अब न बर्रा जानेका डर रहेगा, न जोड़ों के खुलनेका भय। दुग्धोज-सरेस (Caseineglue) के प्रयोगसे अब अधिक चिरस्थायी काष्ठकी चीज़ें बनने लगेंगी।

मधुमेह*

[ले०-श्री० विश्वेश्वरप्रसाद, बी० ए०]

चाहे मधुमेही कोई इलाज करे या न करे उसे कुछ बातोंपर विशेष ध्यान देना ही पड़ेगा।

मूत्र परीक्षा

यदि संभव हो तो यह परीक्षा प्रतिदिन होनी चाहिये। यदि रात्रिमें १२ बजेके बाद मूत्रत्याग किया जाय तो परीक्षाके लिए वही मूत्र रखना चाहिये। नहीं तो प्रातःकालके मूत्रकी परीक्षा होनी चाहिये। सिद्धान्त यह जान पड़ता है कि भोजनके पचनेके समयके बाद जो मूत्र होगा उसीकी परीक्षासे यह ज्ञात होगा कि न पची हुई शकरका क्या शतांश है। इसकी परीक्षाकी दो विधि हैं। एक तो बेनेडिक्ट टेस्ट (Benedict's test) कहलाती है, दूसरी जो अधिक प्राचीन है फेलिङ्ग टेस्ट (Fehlings)। बेनेडिक्ट सोल्यूशन और फेलिङ्ग सोल्यूशन दोनों अंग्रेज़ी दवाखानोंमें मिलते हैं। इन दोनोंमेंसे बेनेडिक्ट टेस्ट अब अधिक अच्छा समझा जाता है। तोभी अधिकांश फेलिङ्ग सोल्यूशन ही बाज़ारमें मिलता है। इन दोनोंमेंसे जो मिले उसके द्वारा एक छोटेसे साधारण स्पिरिट लैम्पकी सहायतासे मधुमेही यह प्रतिदिन मालूम कर सकता है कि उसके मूत्र-में शर्करा है अथवा नहीं। शतांश मालूम करनेके लिए भी दोनों उपाय किये जाते हैं। शर्करा अथवा शर्करा शतांश मालूम करनेकी प्रयोग-विधि इन ओषधियोंके साथ ही रहती है। साधारणतया यही अच्छा होगा कि जब शर्कराका शतांश मालूम करना हो तो किसी केमिकल लेबोरेटरीके द्वारा मालूम करा लिया जाय।

शरीरकी तोल

मधुमेह जैसे जैसे बढ़ता है वैसे वैसे शरीरकी तोल भी घटती है। कमसे कम महीनेमें एक बार तो अवश्य शरीर तोल लेना चाहिये। इसमें तीन बातोंका ध्यान रखना चाहिये। (१) जब तोलिये तो उसी यन्त्रको काममें लाइये। (२) जो कपड़े पहनके एक बार तोलिये उन्हीं कपड़ोंको हरबार पहनिये। (३) जिस समय एक बार तोला हो उसी समय हमेशा तोलिये। कपड़ोंके विषयमें सिद्धान्त यही है कि आपके शरीरपर बाहरी वस्तुओंका बोझ बराबर वही रहना चाहिए, नहीं तो तोलमें अन्तर पड़ेगा।

इस सम्बन्धमें मैं डाक्टर महाशयोंसे यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि जैसे वह अपने पास थर्मामीटर, स्टेथोस्कोप, मूत्र परीक्षाका सामान, आदि रखते हैं वैसे ही उनको कुछ रुपया तोलनेके यन्त्र-के खरीदनेमें भी लगाना चाहिये। इसकी आवश्यकता केवल मधुमेहीको ही नहीं पड़ती वरन् राजयक्ष्मा वालोंको भी।

व्यायाम और शौच

मंदाग्नि और कब्ज़* मधुमेहीके लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। इन दोनोंका धीरे धीरे परिणाम यह

---

* कर्काङ्क पृष्ठ १५० से आगे

* दस्त साफ न होना।

होना है कि श्वासमें और मूत्रमें एक विकार आ जाता है जो मधुमेहीको अन्तिमदशा तक शीघ्र ही पहुंचा देता है। इस अन्तिम दशाका विशेष परिचय आगे होगा। यहां इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि दोनोंके लिए दैनिक, पर परिमित व्यायामकी नितान्त आवश्यकता है। व्यायाम ऐसी होनी चाहिये जिसमें अधिक परिश्रम न हो; इसीसे मधुमेहीको केवल घूमनेका उपदेश दिया जाता है। कमसे कम पांच छः मील प्रतिदिन घूमना चाहिये और यदि संभव हो तो दिनको भोजनके उपरान्त अवश्य चारपाईपर आराम किया जाय। यदि पचीस तीस मिनटके लिए नींद भी आजाय तो अच्छा है। परन्तु अधिक सोना हानिकारक है। इस प्रकार आराम करनेके बाद शीघ्र ठीक होता है।

शरीर चर्म

साधारणतया यह लोगोंको ज्ञात है कि मधुमेहीको आघातसे बचना चाहिये। अतएव दैनिक स्नान अत्यन्त आवश्यक है। सफाईका बहुत ध्यान रहना चाहिये। छोटीसे छोटी फुड़िया हो उसपर तुरन्त लिनिमेंट ओवआयोडिन (Liniment of iodine) लगाना चाहिये। बगल बनवानेमें यह ध्यान रहे कि दाने न निकलें। भफारा-स्नान करना अथवा शरीरको धीरे धीरे मलवाना अथवा तेल मलवाना अत्यन्त लाभदायक हैं। बच्चोंको जब फोड़े निकलते हैं तो हम सब उनका मीठा खाना बन्द कर देते हैं। और यही पूछते हैं कि क्या यह बच्चा मिठाई बहुत खाता है। मधुमेहीके रुधिरमें शर्करा अधिक हो जाती है और यही फोड़ोंके निकलनेकी संभावना अधिक रहती है। परन्तु यह बात तब अधिक संभव है, जब शरीर साफ न रहनेसे रोमछिद्र बन्द हो जायं और मैल बाहर यथोचित रीतिसे न निकलने पावे। साधारणतया २४ घन्टेमें ६ छटांक मैल हमारे शरीरपर जम जाता है और इसको बराबर हटाते रहनेके लिए स्नानादि उपाय आवश्यक हैं।

दांत

मधुमेही की आंत पर उसके दांतका प्रभाव कम नहीं पड़ता। मसूड़े चौड़ाईमें छोटे होने लगते हैं। पायोरियाकी बीमारी हो जाती है और दांत गिर जाते हैं। आरंभसे ही यदि ध्यान दिया जाय तो इस कष्टको दूर रखना संभव है। ज्योंही दांतमें खानेका मैल जमने लगे और दांतमें पानी लगने लगे तुरन्त (Pyrhocide) पाइरोसाइड नामक औषधीय मंजनका प्रयोग करना चाहिये और अयोडीन (Iodine) लगानी चाहिए। इससे अच्छा न हो तो (Emetine) एमेटीन की पिचकारी ली जाय। यदि इससे भी लाभ न हो तो दांतोंको सिलाखुलि दे नए दांत बनवा कर येनकेन प्रकारेण निर्वाह करे।

कोमा (Coma) अर्थात चर्बीजनित नशा

सौमें पैंसठ रोगी इस कष्टके कारण मरते हैं। यह वही अन्तिमदशा है जिसकी सूचना व्यायामके संबंधमें दी जा चुकी है।

पाचनक्रियाके साथसाथ शरीरमें कई तेजाब (acids) बनते रहते हैं। चर्बीके अधिक होनेसे और शर्करा प्रधान वस्तुके कम खानेसे एसीटोन (Acetone) नामक एक पदार्थ विशेष रुधिरमें, मूत्रमें और बहिःश्वासमें उत्पन्न हो जाता है। इसकी उत्पत्तिके बाद यदि उसके उत्पन्न करने वाले कारण बने रहते हैं तो डाइएसेटिक एसिड (Diacetic acid) भी शरीरमें बनने लगती है। और इसी प्रकार इसके बाद बीटा-ओक्सी ब्यूटीरिक एसिड (B-oxy butyric acid) बननेल गती है। इसका बन जाना वास्तविक कोमा का कारण है। शरीरमें सुस्ती, कुछ कुछ बेचैनी और घबड़ाहट मालूम होने लगती है। अन्तमें रोगी चारपाईपर इधर उधर लोटने पोटने लगता है अर्थात् उसकी घबड़ाहट बढ़ जाती है। नाड़ीका पता शीघ्र नहीं चलता

पर जल्दी जल्दी चलने लगती है। बोल स्पष्ट नहीं निकलता और मनुष्य अंड बंड असंगत बातें कहने लगता है। धीरे धीरे मूर्छा और नेत्रों के सामने अंधेरा छा जाता है। अन्तिम कष्ट श्वासका हो जाता है। पहिले तो श्वास भीतर नहीं धंसती फिर श्वास बाहर भी नहीं आती। ऐसा जान पड़ता है मानों हवाकी भूखसे मनुष्य मुंह खोले है और हवा नहीं मिलती।

यद्यपि कोमाके कारण और भी हो सकते हैं तथापि विशेषतया चर्बी प्रधान वस्तुओंका बढ़ना और शर्करा प्रधान वस्तुओंका बहुत कम हो जाना, यही दो प्रधान कारण जान पड़ते हैं असाधारण रोगियोंमें प्रोटाड-प्रधान वस्तुओंसे भी वह तेजाब शरीरमें बनने लगते हैं जिनका परिणाम कोमा होता है।

अतएव मधुमेहीको इसका सदैव विचार रखना चाहिए कि ऐसा पथ्य खावे जिससे कोमाकी संभावना न होने पावे। इस संबंधमें यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि परिश्रम यदि अधिक हो ता है। तो उससे भी कोमा हो जाता है।

जैसे मूत्रकी परीक्षा होती है वैसेही रुधिरकी और एसीटोन, डाइएसेटिक एसिड और ओक्सी ब्यूटीरिक एसिड (acetone, diacetic acid और B-oxybutyric acid) की भी होती है। इनकी परीक्षा घर होना कठिन है। कभी कभी डाक्टर-द्वारा परीक्षा कराते रहना चाहिये।

इन बातोंके अतिरिक्त मधुमेहीको विशेषतया अपने फेफड़ोंको ठंडक से बचाना चाहिये। न्यूमोनिया यदि हो जाय तो भी जीवनसे निराश ही होना पड़ेगा।

आग बांधना

[ले०—श्री० गंगाप्रसाद बी०एस० सी०]

भारत वर्षमें अनेक स्थानों और अवसरों पर ऐसे दृश्य देखनेमें आया करते हैं, जिनमें मनुष्य निर्भय होकर धधकते हुए अंगारोंपर चलते हैं, उन्हें हाथमें उठा लेते हैं, आग पर लोटते हैं, वस्त्र पहने हुए उठती हुई ज्वाला-शिखाओंमें घुस पड़ते हैं; पर उन्हें किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचती। विज्ञानके पाठकोंने पहाड़ी प्रदेश के डंगरियोंके करतबोंका† हाल विज्ञानमें पढ़ा ही होगा। मोरभंजमें भी एक ऐसा ही देवी-का भक्त है। लेखकने स्वयं एक बार ऐसा ही तमाशा देखा था। कुछ दिन हुए एक सज्जन धौलपुरमें आये थे। उन्होंने एक लम्बा गड्ढा खुदवा कर उसमें कोयले भरवा दिये। गड्ढा प्रायः दस बारह हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा होगा। जब कोयले दहकने लगे तो उन्होंने मंत्र पढ़कर पानीके कुछ छींटे आगपर दिये और स्वयं उसमें कई बार इधर उधर गये। बादमें उन्होंने दर्शकोंसे कहा कि जिसका जी चाहे अग्निपर चल सकता है।

अंग्रेजी पढ़े और कुछ हठधर्मी इस प्रकार की घटनाओंको केवल जादूका खेल कहकर मज़ाक उड़ाया करते हैं। हालमें "चेम्बर्स जरनेल" में स्पेन महोदयने इस विषयपर एक अत्यन्त रोचक लेख लिखा है। उसका कुछ अंश हम यहां पाठकों के विनोदार्थ देते हैं।

डाक्टर बोइस्सेरै (Dr. Boissario ने अपने "लूरडेस" (Lourdes) विषयक ग्रन्थमें बरनेडेटका हाल लिखा है। डा० डोजो (Dr. Dozons) ने लूरडेस की इस सिद्ध स्त्री को ज्वालाओंमें १५, १५ मिनट तक हाथ रखते देखा था। उसे न किसी

† विज्ञान भाग ७ अङ्क २ पृष्ठ ४६।

प्रकार की पीड़ा होती थी और न उसका हाथ झुलसता था। इसी प्रकार एक होम नामक सेवड़ा था। वह भी आग को बांध देता था। उसके प्रयोगोंके साक्षी जगद्विख्यात वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्स, श्री० एस० सी० हाल, डा० चेम्बर्स आदि थे। होम कभी पहलेसे तय्यारी नहीं करता था और न किसी प्रकार की ओषधियोंका प्रयोग करता था। उसका कहना था कि रक्षा करनेवाली शक्ति मानसिक अथवा अध्यात्मिक हैं। वह अपने मित्रोंके घरोंपर या अपने घरपर ही यह प्रयोग दिखलाया करता था। इसके एक तमाशेका हाल उदाहरणके लिए यहां दिया जाता है।

सं० १८७१ की ६ मईको होम महोदयने सर विलियम क्रुक्सके घर पर विशेष रीतिसे यह तमाशा इस लिए दिखलाया कि वह विशेषज्ञ और विश्वसनीय साथियोंके सामने; जिनमें डा० विल्किनसन, श्री०एस०स०सी हाल, श्री० एच. जेनकेन, अर्ल ओव क्रोफर्ड और लार्ड डनरेविन थे; इस घटनाकी अच्छी तरहसे जांच कर सकें। होमके हाथोंकी क्रुक्स महोदयने अच्छी तरहसे परीक्षा की और यह निश्चय कर लिया कि उन पर किसी प्रकारका मसाला नहीं चढ़ा था। इसके बाद आग प्रज्वलित की गई और होमने बिना संकोचके ज्वालामें हाथ डाल दिया। कुछ देरके बाद उन्होंने कोयलोंको हिलाकर अग्निको और भी तेज़ कर दिया, यहां तक कि लौ उनकी कलाई तक चाटने लगी। तदनन्तर उन्होंने एक रक्त तप्त कोयला हाथ में उठा लिया और आगको और भी तेज़ किया। थोड़ी देरमें यह कोयला गरम होकर सफेद (श्वेत-तप्त) होगया और उसमेंसे छोटी छोटी लपटें निकलकर उनकी उगलियोंपर दिखाई देने लगीं।

इसके बाद वह दर्शकोंके बीचमें आ खड़ा हुआ और हाथ फैलाकर उनसे प्रार्थना की कि उसकी अच्छी प्रकार परीक्षा कर देखें और गद्गद् कंठसे कहने लगा; "क्या ईश्वर अच्छा नहीं है? क्या उसके नियम आश्वर्य जनक नहीं हैं?"

होमने तब रक्तउत्तप्त कोयले हाथमें उठा उठा कर बांटने शुरू किये और दर्शकोंको आश्वासन दिलाया कि उन्हें किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंचेगी। वास्तवमें जिन जिन साहिबोंने अंगारोंको हाथमें लिया वह जले नहीं। सर एए डूलैंग जैसा ईसाई मतका कट्टरविरोधी और मौजिज़ोंमें विश्वास न रखने वालेको भी होमकी शक्तिमें विश्वास था, परन्तु उसे इसमें सन्देह था कि दर्शकोंको भी अभयदान मिल जाता है। लैंगमहोदयके एक पादरी मित्रके हाथ जलगये थे, तभीसे उन्हें इसमें सन्देह उत्पन्न हो गया था। हम कह सकते हैं कि पादरी महोदयके संदेहात्मक विचारोंका ही यह परिणाम होगा, वह सम्भवतः होमको शैतानका उपासक समझ मनमें घृणाके भाव भरे बैठे होंगे। या यों कहा जा सकता है कि उस समय अवस्था ठीक न थी और इसी लिए शक्ति कम प्रभाव जनक थी।

तमाशेके अन्तमें होमने दर्शकोंसे रुमाल लेकर उनमें लाल लाल कोयले बांधकर दिखलाये। रुमालोंपर जलने या झुलसनेका निशान तक नहीं था। क्रुक्स महोदयने इन रुमालोंकी भी अपनी प्रयोगशालामें परीक्षाकी और यह उन्हें यह विश्वास हो गया कि रुमालोंपर औषधें नहीं चढ़ी थीं। अब होमने एस० सी० हाल महोदयके सिरपर कुछ अंगारे रखकर उन्हें उनकेही बालोंसे ढक दिया। बालोंको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंची। हालको यह पता भी नहीं था कि उनके सिरपर अंगारे रखे हैं; पर जब होमने उन्हें सावधान होकर बैठनेको कहा तब उन्हें मालूम हुआ कि उनके साथ क्या मज़ाक किया गया है। मि० स्पेनका मत है कि आग बांधनेकी शक्ति यूरोप निवासियोंमें बहुत कम पाई जाती है, परन्तु जो जातियां यूरोपियन सभ्यताके प्रभावसे अभी तक बची हुई हैं, उनमें बहुत पाई जाती है। "फीजी निवासी, माओरी, हिन्दू, मलाया निवासी, पोलीनेशिया निवासी और कुछ जापानियोंमें आग बांधनेका ज्ञान फैला हुआ है"। इसका उपयोग वह प्रायः धार्मिक अनुष्ठानोंमें किया करते हैं।

"जबतक उत्तरी अमेरिकाके निवासी अपनी प्रारम्भिक प्राकृतिक अवस्थामें रहे वह इस विषयमें दक्ष थे। परन्तु बहुत दिनोंसे उन का पुराना स्वभाव और साथ साथ पुरानी शक्तियां जाती रही हैं। उस समयमें उनका प्रकृतिसे घनिष्ठ सम्बन्ध था, वह प्रकृति की गुप्त शक्तियोंसे परिचित थे, और स्वयम् भी उन शक्तियों को पा सकते थे। लाल लाल गरम पत्थरों पर चलना अथवा धधकती हुई भट्टियोंमें नंगे होकर निकल आना उनके लिये साधारण बात थी। ऐसा करनेसे उन्हें न दुःख होता था, न किसी तरह की हानि। एक बार एक बूढ़े रेड इण्डियन सरदारने लेखकसे कहा था कि दुःखके अनुभव न करने की शक्ति केवल एक मानसिक अवस्था है, जो निरन्तर अभ्याससे बहुत ऊंचे दर्जे तक पहुंचाई जा सकती है और इच्छानुसार आत्म-विस्मृति (self hypnotise) से उत्पन्न की जा सकती है। अर्थात् संकल्प शक्तिके संचालनसे जब चाहें तब अपने शरीर को ऐसी अवस्थामें ला सकते हैं कि दुःख का अनुभव न हो। सब संक्षोभों का अनुभवकर्ता मस्तिष्क है, अतएव दुःख अथवा पीड़ा का अनुभव न होने देनेके लिये मस्तिष्क को चेतना शून्य कर देना चाहिये और यह ऐसे साधनोंसे ही संभव होता है, जिन का ज्ञान केवल महात्माओं को होता है। जब उक्त अवस्था पैदा कर दी जाती है तो शरीरको रक्त-उत्तप्त जंजीरोंसे स्पर्श करा सकते हैं; किसी प्रकारके दुःख का अनुभव न होगा। ऐसे अवसरोंपर सिद्धोंके मुखपर पत्थर की सी कठोरता दिखलाई देने लगती है, क्योंकि मस्तिष्क क्रिया हीन हो जाता है।"

मि० स्पेनने इस सम्बन्धमें और भी बहुत सी बातें इकट्ठी करके उक्त लेखमें देदी हैं। पोलीनेशियन सोसायटीके मुखपत्र (Wellington, New Zealand, march 1899) में करनेल गडजन (Colonel Gudgeon) ने एक अग्नि-विहार का वर्णन किया है। गडजन रारोटोंगा (Rarotonga) में ब्रिटिश सरकार की ओरसे रेज़ीडेन्ट थे। अग्निविहार उसी स्थान पर हुआ था। इसमें तीन अंग्रेज और भी शामिल थे। एक भट्टेमें ("oven") कई बड़े बड़े पत्थर घंटों तक गरम किये गये थे। प्रत्येक पत्थर का व्यास १२ फुट थी। तमाशा करने वालेको लगभग २० फुट तक इन गरम पत्थरोंपर चलना था और वह भी नंगे पैर। २० जनवरीके दिन आग ५ बजे सवेरेसे जलाई गई थी। दो पहरके २ बजे टोहुंगा (Tohunga) अर्थात् पुरोहितने आकर गडजनसे कहा कि सब सामान तय्यार है। यह समाचार पा वह अपने मित्रों सहित वहां चले गये।

टोहुंगा और टौइरा (शिष्य) ने पहले कुछ मंत्र पढ़े, फिर पुरोहितने टि ट्री (ti-tree) झाड़ी की एक शाखा लेकर भट्टेके किनारे पर तीन बार चोट लगाई और आहिस्त-आहिस्ता गरम पत्थरोंपरसे टहलते हुए निकल गये। वह फिर उसपरसे वापिस आये।

तब पुरोहित मि० गुडविनके पास आया और वह डाली उनके हाथमें थमाकर बोला; "मैं अपनी मना (शक्ति) आप को देता हूं; अब अपने मित्रों सहित चले जाओ।" यह न्योता उन्हें तनिक भी न रुचा, पर काले आदमियोंके सामने अपना डरपोकपन कैसे दिखाते। अतएव बूट और मौज़े उतारकर "गरम स्वागत" के लिए कटिबद्ध हो गये। मि० गुडविन डाली लिये हुए आगे आगे चले। उनके पीछे पीछे करनेल गडजन, डा० ज्यार्ज क्रेग और डा० विलियम क्रेग थे। उन्होंने हिम्मत बांध कर आगे कदम रखा; यद्यपि करनेल साहब को बड़ा डर लग रहा था; क्योंकि उनके तलवे बड़े नाज़ुक थे। और सब तो सहीसलामत दूसरी ओर निकल गये, परन्तु डा० विलियम क्रेग जलगये; क्योंकि उन्होंने पुरोहितके कहदेने पर भी पीछे फिर कर देख लिया था। उन्हें निस्सन्देह बहुत दिनों तक दुख भोगना पड़ा। करनेल गडजन इस अनुभवके विषयमें कहते हैं;

"मुझे कैसा जान पड़ता था इस का हाल आप को मैं नहीं बतला सकता हूं। हां इतना अवश्य कह सकता हूं कि मैं जानता था कि मैं एक तप्त पत्थरों पर चल रहा था और गरमी भी मुझे मालूम होती थी। परन्तु जलता न था। मुझे केवल हलके हलके वैद्युतिक धक्कों का सा अनुभव होता था, पर इतना ही, अधिक नहीं। पत्थरों की गरमी की जांच करनेके लिए करनेल महोदयने आध घण्टेके बाद एक वृक्ष की टहनी पत्थरों पर डाल दी। थोड़ी देरमें ही वह आग लेगई। इन चारों महाशयोंके पीछे दो सौ अन्य वहांके निवासियों को पुरोहितने शक्ति प्रदान की और वह भी पत्थरों परसे सकुशल निकल गये।

इसी प्रकार श्री० बेसिल टोमसनके "सौथसी-यार्न" नामक ग्रंथमें और न्यूज़ीलेण्ड इन्सटीट्यूटके कार्य विवरण (भाग ३१) में चमत्कारिक अग्नि-विहारोंका विवरण दिया हुआ है। डा० हौकिन (Dr. Hocken) ने फिजीमें यह तमाशा देखा था और उसका विवरण मई १८९८ में इन्सटिट्यूटके एक अधिवेशनमें पढ़ा था। यही उक्त कार्य विवरणमें छपा था। इस तमाशेके देखने वालोंमें डा० कोलक्यूहौन (Colquhoun) और डनकन महोदय भी थे।

इस सम्बंधमें मि० वाल्टरकेर्यूने जोनेथन नामके एक फिजियन जजसे प्रश्न किया था। उसने उत्तर दिया, "मैं स्वयम् आग पर चल चुका हूं, परन्तु यह नहीं कह सकता कि यह सब होता कैसे है। मुझे तनिक भी गरमी नहीं मालूम हुई।" मि० केर्यू जो वहां पर मेजिस्ट्रेट थे, कहते हैं कि सम्भवतः आगके चलनेवालेकी असीम श्रद्धा ही उसकी रक्षा करती है।

पोलीनेशियन जरनेलमें एक जगह लिखा है कि एक अंग्रेज महिला—लेडी थर्सटन—ने अपना रुमाल एक आग पर चलने वालेके कन्धे पर डाल दिया था; वह दो एक मिनट ही बाद एक लम्बी लकड़ी के सहारे उठा लिया गया था परन्तु तब भी झुलस गया था। एक दूसरे अवसर पर एक अंग्रेज़ी मजिस्ट्रेटने जो तमाशा देख रहा था एक रुमाल भट्टेमेंके एक उतप्त पत्थर पर डाल दिया। उस समय पहिले आदमीने पत्थर पर कदम ही रखा था। वह और उसके साथी रुमाल पर पैर रखते हुए चले गए और उन्हें कुछ क्षति ना पहुंची परन्तु रुमाल थोड़ी ही देरमें जल कर खाक हो गया। इसी प्रकार पोलीनेशियन सोसायटी केही जरनलमें मिसटेनिरा हेनिरीने जो होनोलूलूकी निवासिनी थीं एक पत्र प्रकाशित कराया था जिसमें लिखा था कि उनकी बहिन और उनकी बहिनका एक बच्चा यूमटी (Uu-mti) के एक अग्नि संस्कारमें गरम पत्थरोंपर चले थे। इस अग्नि संस्कारका वृत्तान्त उक्त जरनलके दूसरे भागके पृष्ठ १०८ पर छपा था।

प्रिन्स आफ वीड (Prince of Wied) ने अपने एक ग्रन्थ (Reias in das innere Nordamerika) में १८३९ में लिखा कि उन्होंने रेड इन्डियन्सका एक अग्नि संस्कार देखा था। भारतवर्ष और जापानमें ऐसे बहुत से खानदान हैं जिनमें आग पर प्रभुत्व पानेका गुप्त भेद परम्परासे चला आता है। स्पेनमें भी एक ऐसा खानदान पाया गया है। डाक्टर पेसकेलने भी एक पत्रमें (Les Annales des Sciences Psychiques) बनारसमें जो कुछ उन्होंने दो अवसरों पर देखा था (अक्टूबर १८९८ और फरवरी १८९९) में उसका वृत्तान्त लिखा है। अन्तिम अवसर पर तो एक पत्थर टूट गया और तीन आदमी आगमें गिर गये; परन्तु सकुशल निकल आये; उनके कपड़ों तक पर झुलसनेका निशान भी न हुआ था।

श्रीयुत स्पेन का मत है कि आग पर चलनेकी कलाका जन्म भारतवर्षमें हुआ था और यह बहुत ही पुरानी कला है। इसका वर्णन सामवेदके एक ब्राह्मणमें पाया जाता है। उसमें दो पुरोहितोंकी कथा है जो अपनी उत्कृष्ट पवित्रता दिखलानेके लिए आग पर चले थे। सम्भवतः यह कहानी ८०० ईसा से पूर्वकी है। भारतवर्षमें इससे भी अधिक प्राचीन कथायें प्रचलित हैं, जो शायद अनजीलकी कथाओंसे भी ज्यादा पुरानी हैं।

श्रीयुत संपूर्णानन्दकृत भौतिक विज्ञान*

यह पुस्तक मनोरंजन पुस्तकमाला का दसवां पुष्प है। काशीनागरी प्रचारिणी सभासे एक रुपयेमें यह मिल सकती है। यद्यपि हिन्दीमें भौतिक विज्ञानके अंग विशेषों पर [जैसे ताप, चुम्बक इत्यादि] स्वतंत्र पुस्तक निकल चुकी हैं; परन्तु भौतिक विज्ञानके सभी विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई स्वतन्त्र पुस्तक अब तक नहीं निकली है। गुरुकुल कांगड़ीने बैलफोरकी पुस्तकका अनुवाद अवश्य प्रकाशित किया है। इन बातोंपर ध्यान रखते हुए हम काशी नागरी प्रचारिणी सभाको प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित करनेके लिए धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। हमें आशा है कि भविष्यमें भी ना० प्र० सभा ऐसे विषयोंपर पुस्तकें प्रकाशित करती रहेगी। परन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि पुस्तकें विशेषज्ञोंसे लिखानी चाहिये और विशेषज्ञोंसे ही उनका सम्पादन कराना चाहिये।

पुस्तकमें भूलोंकी भरमार है। सम्पादकसे इतनी तो आशा की जा सकती थी कि भाषा विषयक भूलोंको तो वह सुधार देते, विज्ञान विषयक भूलोंका सुधार देना तो उनकी शक्तिके बाहर था। यदि वह अपनेको इस योग्य नहीं पाते थे कि किसी वैज्ञानिक ग्रन्थका सम्पादन करें तो उन्हें उचित था कि किसी औरसे उसका सम्पादन करा देते। प्रस्तुत ग्रन्थको देखनेसे प्रतीत होता है कि सम्पादकने सम्पादनमें ज़रा भी कोशिश नहीं की। केवल नामके लिए काममें हाथ डाल देना और उसको अच्छी तरह न करना यह शिक्षित जनोंके सर्वदा अयोग्य है। यदि इस बातका ध्यान रखा जाता तो ऐसा भ्रष्ट ग्रन्थ कभी प्रकाशित न होता। हमें आशा है कि भविष्यमें सम्पादक ऐसा दुःसाहस न करेंगे।

भाषाके कुछ नमूने यहाँ देदेना उचित मालूम होता है। पृष्ठ २ पर आप लिखते हैं; "साधारण लोग सायंससे संपूर्णतया अस्पृष्ट हैं।" यहां शब्द "अस्पृष्ट" का प्रयोग बिलकुल ग़लत है। "अस्पृष्ट" के दो अर्थ हैं, एक तो "पवित्र" अर्थात् जो किसीके स्पर्श आदिसे गंदा न हो गया हो, दूसरे जिसे किसी ने न छुआ हो। पहला अर्थ तो यहां खपता नहीं; दूसरा अर्थ लें तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। जिस "सायंस" विज्ञानके प्रतापसे हमें खाना, कपड़ा, बर्तन धूम्रयान, वायुयान, यंत्र, औषध, अनेकानेक पदार्थ मिलते हैं, जिनके बिना हमारा जीवन मुश्किल है, उस विज्ञानसे हम कैसे "अस्पृष्ट" हैं। कहीं लेखकको "Untouched by hand like Mellin's-food" वाली बात तो याद नहीं आगई। भविष्यमें शायद यह मुहाविरा हो जाय "Untouched by science like Indians"। पर शायद शब्दका प्रयोग "अनभिज्ञ" अर्थमें किया है, पर यह अर्थ इससे निकलता नहीं। "सम्पूर्णतया" शब्द भी बहुत व्यापक अर्थवाला है। इसका प्रयोग भी अनुचित है। पृष्ठ २० पर इस वाक्यकी रचना देखने योग्य है—"जो वस्तु पूरी नहीं डूबती

---

* लगभग तीन वर्ष हुए जब हमने इस पुस्तककी समालोचना सरस्वतीमें पढ़ी थी। समालोचना पढ़कर यह इच्छा उत्पन्न हुई कि ग्रन्थको देखें। हमने उसी दिन नागरीप्रचारिणी सभा के कार्य्यालय को वी. पी. द्वारा पुस्तक भेजनेको लिखा। एक महीनेके इन्तज़ार करनेके बाद हमने बा० श्यामसुन्दर दासको पत्र लिखा। उन्होंने सभाके उपमन्त्रीको आज्ञा दी कि पुस्तक वी० पी० द्वारा भेजदें। उपमन्त्रीका पत्र भी आया कि पुस्तक वी० पी० से भेज दी गई है, पर वह हमें आज तक नहीं मिली। कुछ महीने हुए प्रो० भुवनचन्द्र वोस ने यह पुस्तक विज्ञान परिषद् में भेजी। तब हमको भी इसके देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक हमने समालोचनार्थ श्रीयुत रतनलाल को देदी। उन्होंने जो बड़ी लम्बी चौड़ी समालोचना लिख कर दी, वह हम यहां सखेद प्रकाशित करते हैं।—सं०

उसके लिए यह नियम है कि वह इतनी डूबती है कि जितना डूबनेसे जिस पानीको जगह वह घेर लेती अर्थात् जो ऊपरको उठ आता है उसका तौल उस सम्पूर्ण वस्तुके बराबर हो।" यहां पर इतनी, जितना और जिसका प्रयोग कितनी उत्तमतासे किया गया है। आशय कितना स्पष्ट हो गया है। हमारी राय नाक़िसमें यदि इस प्रकार लिखा जाता "इतनी डूबती है कि उसके द्वारा हटाया हुआ पानी तोलमें उसके बराबर होता है, तो थोड़े ही शब्दोंमें मतलब आ जाता। दूसरे तौल शब्द का अर्थ पुल्लिङ्गमें तराज़ू होता है। उपरोक्त वाक्यमें लेखकका आशय वज़नसे है, न कि तराजू से। इस लिए तौल स्त्रीलिङ्ग मान कर "का" की जगह "की" का प्रयोग करना चाहिये। परन्तु लेखक महाशयने किताब भरमें "तौल" शब्दको पुल्लिङ्ग ही समझा है। सम्पादक महाशयको इतनी असावधानी न चाहिये थी। यदि उनको यह न मालूम था तो वह हिन्दी शब्दसागरमें ही देख लेते। पृष्ठ १० पर आप लिखते हैं—"कितने ही प्रश्नोंके उत्तर न्यूटनके स्थापित इस सिद्धान्तसे हो जाते हैं"। यह भी कितना सुन्दर वाक्य है। पृष्ठ ३६ पर आप लिखते हैं, "इसी प्रकार सर्दीसे वस्तुएँ सिमट जाती हैं।" यहां पर सिमटना शब्दका प्रयोग गलत है। सिमटनेका आशय बटुर जानेका है अर्थात् बिखरी हुई चीज़ोंका इकट्ठा हो जाना। सिकुड़ना शब्द अधिक उपयुक्त होता। पृष्ठ १०० का एक नमूना और देखिये "प्रायः साधारण अनुभवमें वायु और किसी अन्य पदार्थमें वर्तन होती है। ऐसी दशामें यदि दूसरी वस्तु चौकोर हो तो, उससे निकलनेके उपरान्त प्रकाशकी किरण अपनी पूर्व दिशाके समान वर्तन हो जाती है।" पाठक स्वयं रेखांकित शब्दोंको पढ़कर लेखककी योग्यताको सराहें। भूमिकामें आप लिखते हैं कि "वैज्ञानिक पुस्तकोंमें भूमिका लिखदेने की प्रथा नहीं है।" हमने तो जितने वैज्ञानिक ग्रन्थ देखे हैं, उन सबमें भूमिका दी हुई है। कमसे कम दो हज़ार पुस्तकें तो हमने देखी होंगी, उनमें तो इस प्रथा का प्रमाण पाया नहीं। शायद लेखक किसी देश विशेषकी बात कहते होंगे। पृष्ठ २ (भू) पर आप कहते हैं "ना० प्र० सभाने जो हि० वै० कोष बनाया है ... वह पूर्ण या सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती।" क्या दो लैनमें ही लिङ्ग बदल जाता है? पृष्ठ ३ पर "द्रव्यस्थिति सिद्धान्त" Coneservation ofmatter के लिए लिखा है वह भी सरासर गलत है।

पृष्ठ ६ पर लेखक महोदय पदार्थके पांच रूप बताते हैं। "ईथरिक" और "आयोनिक", इन दोनों शब्दोंके भाषान्तर नहीं दिये हैं। "ईथर" आकाश तत्व को कहते हैं। आकाशसे ही अन्य समस्त पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई है और वह आकाशमें ही विलीन हो जायंगे। आप फरमाते हैं "भौतिकपदार्थों अर्थात् द्रव्यों की संख्या तो बहुत बड़ी है; किन्तु वे सब कुछ थोड़ेसे मुख्य रूपोंमें पाए जाते हैं।" यह तो सब जानते हैं कि पानी, द्रव, ठोस और वायव्य रूपमें पाया जाता है, पर पानी किस देशमें और लोकमें ईथरिक और आयोनिक रूप में पाया जाता है, यह हमें तो मालूम नहीं। उसके परमाणुओंके पृथक् होते ही वह जल नहीं रहता; वह उज्जन और ओषजनमें परिणत हो जाता है। आयोनिक शायद भूलकर लेखकने लिख दिया है। चाहिये था, इलैक्ट्रोनिक। वास्तवमें "रूप" कहना ही गलत है, कहना चाहिये अवस्था। लिखना यह चाहिये था कि पदार्थ की (Matter) पांच अवस्था होती हैं। पदार्थों की (material substances) केवल तीन अवस्थाएँ होती हैं। इलेक्ट्रोनिक को आयोनिक समझ कर उन्होंने परमाणु शब्द की मट्टी खराब की है। ग्रन्थकारसे हम इतनी तो आशा करते हैं कि वह परमाणु शब्दका ठीक अर्थ जानते होंगे। अतः उसका अवैज्ञानिक रीतिसे "टुकड़े" के लिए प्रयोग न करना चाहिये।

सर्वनामका प्रयोग लेखक को आता ही नहीं। "वाष्प" और "वायु" का अन्तर तो लेखक और

सम्पादकको मालूम होगा, पर फिर भी पृष्ठ ३८पर आप लिखते हैं :—"(सोडावाटरकी बोतलमेंसे) उसमेंसे एक प्रकारका वाष्प निकलता है।" उसमेंसे कर्बनद्विओषिद् गैस निकलती है, न कि वाष्प।

अब विषय सम्बन्धी त्रुटियोंके भी कुछ नमूने देख लीजिये। पृष्ठ १४ पर आप लिखते हैं "पृथ्वी बहुत ठोस है अतः उसमें कणोंकी संख्या अधिक है, इसीसे उसका बल और सबसे बढ़कर है।" यह कितनी अच्छी दलील है। कणाद और गौतमको भी इन दलीलोंको देखकर शर्म आनी चाहिये। बहुत ठोसका क्या अर्थ है? कौनसे पदार्थ बहुत ठोस और कौनसे थोड़े ठोस होते हैं? ठोसपनेसे और कणोंकी संख्यासे और पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणसे क्या सम्बन्ध? पृथ्वीका बढ़ा हुआ आकर्षण उसके भारके कारण है न कि उसके आपेक्षिक गुरुत्वके, क्योंकि कम आपेक्षिक गुरुत्व वाली चीज़ भी अधिक आपेक्षिक गुरुत्व वाली चीज़से भारमें ज्यादा हो सकती है।

पके हुए फल वृक्षसे क्यों गिर पड़ते हैं? पाठको, क्या आपने कभी इस गूढ़ प्रश्नपर विचार किया है? यदि न किया हो तो श्री सम्पूर्णानन्द जी के ग्रन्थके १५ वें सफेको देखियेः—"जब फल पकता है तो उसके द्रव्यमानके बढ़नेसे अन्तमें खिंचाव इतना बढ़ जाता है कि टहनी उसे संभाल नहीं सकती और फल टूट जाता है; तथा पृथ्वीकी ओरका खिंचाव अधिक होनेसे वह नीचेंही गिरता है।" धन्य हो महाराज! आपने कैसी अच्छी व्याख्या की है! आपकी फिलोसफी शंकरसे अधिक गूढ़ है। अब तक तो लोग यही समझते थे कि फलका पकना उसकी पूर्ण बाढ़ हो जानेके अनन्तर ही आरम्भ होता है। अतएव फलके गिरनेका कारण डंठलका कमज़ोर हो जाना है, न कि बोझका बढ़ जाना। फिर फल ऊपरकी ओर न उड़कर सूर्य लोकको क्यों नहीं चला जाता। सूर्यका भार तो पृथ्वीसे बहुत ज्यादा है। इस प्रश्नको भी आपने क्यों न हल कर दिया।

पृष्ठ १६ पर इस वाक्यको प्रत्येक विज्ञान प्रेमीको पढ़ना चाहिए, "किसी गेंदको ऊपर उछालिये वह जब नीचे गिरने लगे तो ध्यान देकर देखिये। यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वह ज्यों ज्यों नीचे उतरता है उसका वेग बढ़ता जाता है, जिससे ज्ञात होता है कि ज्यों ज्यों वह नीचे आता है उस पर खिंचाव बढ़ता जाता है।" भगवन्! आपने बड़ी कृपा की कि "काठिन्य और विस्तार भयसे इस सिद्धान्तका गणितांश" छोड़ दिया है। यदि आप कृपा न करते तो भास्कराचार्य्यको मुंह दिखानेकी जगह न रहती।

पाठको, दो वस्तुओंमें जो आकर्षण होता है वह उनके भारोंके गुणन फल और उनके केन्द्रोंकी दूरी पर निर्भर होता है। यदि उनका भार भ और भा मानलें और उनकी बीचकी दूरी द तो उनके बीच का आकर्षण होगा $\frac{भ \times भा}{द \times द}$। पृथ्वीका केन्द्र उसके पृष्ठसे इतनी दूर है कि गेंद चाहे उसके पृष्ठपर रखा हो चाहे पृष्ठसे १०० फुट ऊपर उछाल दिया गया हो, उसकी दूरी पृथ्वीके केन्द्रसे दोनों अवस्थाओं में एक ही मानी जा सकती है। अतएव आकर्षण भी एक समान ही रहता है। परन्तु ऊपरसे गिरती हुई गेंदका वेग थोड़ी थोड़ी दूरीपर ही दुगना होता चला जाता है। मानलो कि गेंद छत परसे गिर गई और छतकी ऊंचाई २० फुट है। छतसे १ फुट नीचे उतरतेही उसका वेग प्रायः ८ फुट प्रति सेकंड होगा। ४ फुट नीचे गिरने पर १६ फुट हो जायगा। १६ फुट उतरने पर ३२ हो जायगा। इन बातोंसे पाठकोंको मालूम होगया होगा कि वेगका दुगना और चौगना हो जाना केवल तयकी हुई ऊंचाई पर निर्भर है। गुरुत्व आकर्षणमें इतनी जल्दी जल्दी, इतना अधिक अन्तर हो जाना सम्भव नहीं है।

गुरुत्व शब्दका प्रयोग इस पुस्तकमें बोझके अर्थ में किया गया है और density के अर्थमें भी। ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि पढ़ने वालेको यह भ्रम

हो जायगा कि आपेक्षिक गुरुत्वका भारसे कुछ सम्बन्ध है। किसी चीज़में भार न हो तोभी उसका आपेक्षिक गुरुत्व अवश्य ही होगा। जैसे एक लोहेके टुकड़ेको पृथ्वीके केन्द्र तक ले जायँ तो उसका भार शून्य हो जायगा; परन्तु उसका आपेक्षिक गुरुत्व उतना ही बना रहेगा। पृष्ठ १६ पर आप लिखते हैं "अब उसी लोहेके टुकड़ेको ले लीजिये और उसे पीट पीट कर उसका पतला पत्तर बना डालिये। अब उसका घनफल बढ़ गया? किन्तु तोल उतनेका उतना ही रहा, अब उसका नया घनफल जितना हुआ उतने घनफलका पानी उसके तोलसे भारी होगा। अतः वह पत्तर पानी पर तैरता रहेगा, इसी नियम पर दृष्टि रख कर लोहेके जहाज तक बनते हैं।" मालूम होता है कि ग्रन्थकारने यह लिखते हुए अफीम खाली थी। ठोकने पीटनेसे धातुओंका घनफल बढ़ता नहीं, परन्तु कम हो जाता है। यह समझना निरी मूर्खता है कि उसका घनफल कम हो गया। किसी भी धातुका पत्तर लिया जाय पानीमें छोड़ते ही वह डूब जायगा। हां एक बात अवश्य है कि अगर पत्तर मोड़ कर कटोरीसी बना ली जाय तो फिर पत्तरका घनफल न लेकर कटोरीका घनफल लिया जायगा, क्योंकि अब उसकी पानीके हटानेकी शक्ति बढ़ गई है। जितना पानी वह हटा देगी उसकी तोल कटोरीके वज़नके बराबर होगी न कि ज़्यादा, जैसा कि ग्रन्थकारने लिखा है। यह प्रयोग पाठक घर पर ही सहजमें कर सकते हैं। किसी कटोरी को कांटेमें तोल लीजिए। फिर एक गिलासको पानीसे लबालब भर दीजिये। उसे आहिस्तासे एक कटोरेमें रख दीजिये, जिससे पानी न गिरने पाये। कटोरीको हलकेसे गिलासके पानीमें तैरा दीजिये। जो पानी कटोरेमें गिर जाय उसको तोल लीजिये। उसका वजन कटोरीके बराबर होगा। कटोरीके पेंदेमें एक छेद कर दीजिये। धीरे धीरे कटोरी डूब जायगी और आपको सम्पूर्णानन्दजी की लियाकतका अन्दाज़ा लग जायगा। जब उन्हें जहाजोंके बनानेका ख्याल आया तब उन्हें उनके डूबनेका ख्याल क्यों न आया। पाठको, यहां तक जो कुछ आपको नमूने दिखलाये गये हैं वह भी गनीमत हैं। यदि आप इस ग्रन्थका पन्द्रहवाँ अध्याय पढ़े तो आप सम्पूर्णानन्दजीको दूसरा फेरेडे समझने लगें। इसमें तो सम्पूर्णानन्दजी ने अपनी योग्यताका पूरा परिचय देदिया है। इतना गलत और गलीज मस्विदा कहीं देखनेमें नहीं आया। क्या हम यह मान लेनेकी धृष्टता करें कि सम्पूर्णानन्दजी "तार" से सपूर्णतया "अस्पृष्ट" हैं? हमको आश्चर्य यह होता है कि एक बी० एस-सी० सज्जन इतनी गलत बातें कैसे लिख सकते हैं। उत्पादित (Induced) धाराओंका पैदा होना शायद उनकी समझमें आया ही नहीं है। यदि यही बात थी तो गैनोज़की फिज़िक्स के इस विषयके अध्याय का अनुवाद ही कर डालते।

तेरहवें अध्यायमें जो आपने विद्युल्लेम्पोंपर प्रकाश डाला है उसके लिए भी आपको धन्यवाद देना चाहिये। प्रकाशके वह "पुल" आपने बाँध दिये हैं कि वह घुंडीदार होगये हैं। "पुल" जिसे "चाप" कहना अधिक उचित है, सदा चापके आकारका होता है; इसी कारण उसका यह नाम पड़ा। पुस्तकमें एक मामूली बल्बका चित्र देकर उसे ज़बरदस्ती "चाप" लेम्प सिद्ध करनेकी चेष्टाकी गई है। लेखक महोदय, क्या यह नदियाके पण्डितोंकी व्यवस्था है। हमें तो यह खयाल आता है "लालबुझक्कड़ बूझके और न बूझे कोय। पैरकै चाकी बांधके, हिरना कूदो होय।" रूईको यशद हरिद (zinc chloride) में गलानेसे सेल्यूलोज़ बनाना आपने बतलाया है; यह भी एक नया आविष्कार है। आपने शायद कभी चाप लेम्पका चित्र नहीं देखा और सेल्यूलोज़का आपको कुछ भी ज्ञान नहीं। फिलेमेंट बनानेकी जो तरकीब बतलाई है वह भी बड़ी अच्छी है।

बिजलीसे स्टीमर भी चलाये जाते हैं, यह शायद आपके मस्तिष्ककी उपज है।

पृष्ठ २४६ पर आप रक़मतराज़ हैं 'पहली अवस्थामें अर्थात् जबकि घेरे दहनी ओरका दिया गया है, जिस सिरे पर प्रवाहका प्रवेश होता है उधर दक्षिण और दूसरी ओर उत्तर ध्रुव होता है।" धन्य हो, यह भी आपने बहुत ठीक फरमाया। यदि और अधिक ज्ञान न था तो इतना ही याद रखतेकि यदि धाराकी दिशा घड़ीकी सुइयोंकी गतिकी दिशाके समान हो तो जिस सिरेको देखते होंगे वह सिरा दक्षिण ध्रुव होगा। यदि इसके प्रतिकूल हो तो सिरा उत्तर होगा। आपने दो ब्लाक बनवाकर भी क्यों वृथा खर्चा बढ़ाया।

पृष्ठ २४५ पर आप लिखते हैं; "यदि जलमें कोई ऐसा पदार्थ घोल दिया जाय जिसमेंकि कोई धातु मिली हुई हो और उस जलमेंसे विद्युतका प्रवाह कराया जाय तो उस पदार्थ से वह धातु अलग हो जाती है।" इसमें "धातु मिली हुई हो" पर विचार करना चाहिये। "मिली हुई" का अर्थ क्या है? क्या "मिश्रण" और "यौगिक"का भेद भी आप नहीं जानते? वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें भाषा बहुत सावधानीसे लिखनी चाहिये। आगे आप लिखते हैं, 'वह धातु वहांसे पृथक् हो कर उस वर्तनमें जो ऋण विद्युन्मय है जा कर एकत्रित होती है। परन्तु सब धातुओंके लिए एक परिमाण नहीं होता। भिन्न भिन्न धातुओंका भिन्न भिन्न परिमाण होता है। साथ ही इसके जितना प्रबल प्रवाह होगा उतना ही धातुका परिमाण निकलेगा।" आपने यह न बतलाया कि कितने बरतन हैं? कौनसे ऋण विद्युन्मय हैं और कौन कौनसे धन विद्युन्मय? 'धातुओंका परिमाण' क्या बला होती हैं? आपकी "भिन्न भिन्न" शब्दोंसे भरी भाषा भिन भिना रही है। मालूम होता है कि किसीने मार पीटकर आपसे ग्रन्थ लिखाया था। आपने सीधे सादे शब्दोंमें यों क्यों न लिख दिया कि "विद्युत् प्रवाह कराने पर धातु ऋण ध्रुव पर मुक्त होने लगती है। मुक्त हुई धातुकी मात्रा प्रवाहकी प्रबलता, उसके जारी रहनेके समय और धातुकी प्रकृति पर निर्भर होती है।" इस प्रकार लिखनेमें जो आपके कथनमें छूट गया है, वह भी आ जाता। आपने समय बेचारे का तो ज़िक्र ही छोड़ दिया है, प्रवाह हो आपको बहा ले गया। आपकी लेखनीका प्रवाह रुकता तो समझ साथ देती और ग़लत बयानी न होती।

"विद्युच्छक्ति मापक" कितना सुन्दर शब्द है? क्या आपको धारामापक कहते संकोच होता था? वास्तवमें यंत्र चुम्बकीयशक्ति मापक है और धारा के परिमाणका सूचक है। उसे आपने विद्युच्छक्ति मापक क्यों नाम दिया? क्या संधि करनेकी योग्यता दिखलाना अभीष्ट था?

पृष्ठ २३५ पर धन विद्युन्मार्ग और ऋण विद्युन्मार्गमें जो अन्तर दिखलाया है वह आपकोही योग्य है। क्या आप धन और ऋण शब्दोंका अर्थ तक नहीं जानते। अजीब समझका फेर है। सब दुनिया यह कहती और समझती है कि धारा ताम्बेसे बहकर जस्तेकी ओर जाती है और घटके भीतर जस्तेसे चलकर ताम्बे तक आती है, परन्तु सम्पूर्णानन्दजी की बुद्धि विलक्षण है। उन्हें उल्टा ही सूझती है।

पाठको शायद आप समझें कि इनको बिजली का ज्ञान न हो, इसी कारण इन्होंने गलतियां की हैं, तो ज़रा प्रकाश विभाग की सैर कीजिये।

पृ० ९२ पर आपने दो समानान्तर दर्पणोंके बीचमें रखी हुई किसी वस्तुके प्रतिबिम्बों का बनना जो चित्र द्वारा समझाया है उस में तो आपने प्रकाश का सखता ही लोट दिया है। कोई भी सज्जन दो दर्पण आमने सामने रखकर, उन्हें बिलकुल सीधा खड़ा करके उनके बीचमें एक मोमबत्ती जला कर रखदें और देखलें कि सब प्रतिबिम्ब एक रेखामें होंगे। परन्तु सम्पूर्णानन्द जीने उन्हें ठोक पीटकर ऊपर नीचे कर दिया है।

पृष्ठ १०२ पर भी जो मृगतृष्णा समझानेके लिए चित्र बनाया है वह ग़लत है।

बहुतसे चित्रोंमें आपने प्रकाश की किरणें वर्तन होनेके पहले या पीछे टेढ़ी, वृत्ताकार दिखलाई हैं। प्रकाश सर्वदा सरल रेखाओंमें चलता है, यह सिद्धान्त सर्व सम्मत है, परन्तु सम्पूर्णानन्द जी संपूर्ण संसारसे अलग ही बांसुरी बजाना चाहते हैं। पृष्ठ १०६ का नीचे का चित्र, पृष्ठ १०६ का नीचेका चित्र पृ० १०८ का ऊपर वाला चित्र, इसके उदाहरण हैं। पृष्ठ १११ पर तो आपने कमाल कर दिया है। वह किरणों को मोड़ा है कि कहना पड़ता है कि अर्जुनने तो नींद को ही जीता था, आपने प्रकाश पर फतह: पाली है। तभी तो जिधर चाहते और जैसा चाहते हैं उसे मोड़ लेते हैं। दीप्त वस्तुके ऊपरके छोरसे जो प्रकाशरश्मि चली वह उसकी नाभिमें होती हुई तालमें जाती है और निकल कर बल खाती हुई दूसरी तरफ ऊपर को चढ़ जाती है। हमने तो यही पढ़ा था और देखा था कि किरण तालमेंसे इस प्रकार निकलनेके बाद अक्षके समानान्तर नीचे ही चले गी। पर शाबाश है सम्पूर्णानन्द जी! आपने किसी न किसी प्रकार प्रतिबिम्ब तो ठीक ही बना दिया।

पृष्ठ १२८ पर आपने जो फोटोग्राफीका फोटो खींचा है वह भी मनोमुग्धकारी है। फोटोग्राफरों, सावधान। एक नए ईसा का तुम्हारे उद्धारके लिए अवतार हो गया है! अब तुम्हें अलग अलग फिक्स (स्थायीकरण) करनेकी और डेवेलप (व्यक्तीकरण) करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इनकी बाइबिल पढ़ो। उसमें लिखा है:—

"यह सैंसिटिव प्लेट शीशे की एक टट्टी होती है जिसमें कई मसालोंके साथ मिला हुआ क्लोराइड आफ् सिलवर नामक मसाला लगा होता है। इस मसाले का यह गुण है कि प्रकाश पड़ते ही यह विकृत हो जाता है और जिस जिस क्रमसे लोगोंके अवयवोंसे प्रकाश आकर इसपर पड़ता है उसी उसी क्रमसे इसमें विकृति होती है। अंतमें एक दूसरा मसाला जिसे डेवेलेपर कहते हैं लगा कर फोटो को स्थायी कर देते हैं। यदि यह न लगाया जाय तो कुछ देरके बाद फोटो उड़ जाया करती है।"

धन्य हो महा प्रभो, आपने प्रकाश विज्ञानमें मार्शलला डिक्लेयर कर दिया है। सब रासायनिक और भौतिक नियमों का विज्ञन बोल दिया है। जो बच रहे उनके भाग्य समझो। पाठको, जिस पुस्तक की सहायतासे प्रस्तुत पुस्तक लिखी गयी है उसमें फोटो ग्राफीके सम्बन्धमें जो लिखा है, वह भी ज़रा देखिये :—

"A glass plate is coated with a thin layer of collodion containing a certain quantity of potassium iodide. The plate thus coated is then placed in a solution of silver nitrate. By the chemical reaction between the potassium iodide and the silver nitrate a coating of silver iodide is formed on the plate, which is sensitive to light and hence this operation must be performed in a dark roon. The plate is then placed in the slide and inserted in the camera instead of the focussing glass. The slide is so constructed that the plate can be instantaneously exposed to or cut off from the action of light. After exposure for a suitable time the slide is removd to a dark room. No change is visible in the plate but on pouring over it a solution called the developer an image gradually appears. When the picture is sufficiently brought out water is poured over the plate in order to prevent the further action of the developer. The parts on which light has not acted are still covered with silver iodide which would also be affected if the plate were now exposed to the light. It is accordingly washed with solution of soduim hyposulphite, which dissolves the iodide of silver and leaves the image unaltered."

यह लम्बा चौड़ा उद्धरण इस उद्देश्यसे दिया गया है कि सम्पूर्णानन्दजी आंख खोलकर पढ़लें।

प्लेट पर क्लोराइड आफ सिलवर नहीं रहता है

वरन् आयोडाइड रहता है। प्रिंटिंगपेपर पर क्लोराइड रहता है।

एक और चमत्कार देखिये। रोमरने प्रकाशका गतिवेग निकाला था। उस विषयमें आप लिखते हैं, "अब इस ज्योतिषीने इस उपग्रहके ग्रहणके पीछे पुनः दर्शनके समय दो व्यक्तियोंको दो स्थानों पर खड़ा किया और उन्होंने ज्योंही कि वह देख पड़ा घड़ी देखली। यह स्थान एक दूसरेसे कई लाख कोस की दूरी पर थे।" इसमें भी कमाल भरा हुआ है।

पाठको! इस ग्रंथके गुणों का गान कहां तक करूं। वह अपार है। लेखनीमें शक्ति नहीं कि वह इस मुश्किल कामको पूरा कर सके। नागरीप्रचारिणी सभाके सदस्योंको चाहिये कि इस पुस्तक की सब प्रतियां जलवादे, यदि उन्हें अपनी बात का और इज्जत का खयाल है। तो ऐसा भ्रष्ट ग्रन्थ किसीको पढ़नेको देना महा पाप है। यह ग्रन्थ सभाके उज्ज्वलयशमें एक बड़ा भारी कालिमाका टीका है, जो सभा को नज़रसे तो बचायेगा नहीं, वरन् सदाके लिए कार्यकर्ताओंको बदनाम करता रहेगा।

—रतनलाल

बेसिर का जन्तु अथवा सौथसी का स्वादिष्ट भोजन
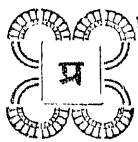
प्रति वर्ष नवम्बर और अक्तूबर मासमें शुक्ल पक्ष की दसमी अथवा एकादशी (On the day before the last quarter of the moon) के दिन पेलोलो (Palolo) जन्तुओंके ढेरके ढेर सौथसी द्वीप समूहके किनारोंपर आ लगते हैं। वहांके निवासी इस सुअवसर की प्रतीक्षा बड़े चावसे किया करते हैं, क्योंकि उन्हें इन कीड़ोंके कच्चे ही या पकाकर खानेमें बड़ा स्वाद आया करता है। जो यूरोपियन प्रवासी इन्हें खाने लग गये हैं उन्हें भी यह बड़े स्वादिष्ट और सौंधे लगते हैं। पर लोगों को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ करता था कि यह कीड़े बिना सिरके हुआ करते थे। यह रहस्य हालमें ही खुला है। वास्तवमें जिसे पहले कीड़ा समझते थे वह एक जन्तु-का भाग विशेष मात्र होता था। यह जन्तु मूंगे की चट्टानों की दरारोंमें रहा करता है। उसके शरीरके दो भाग हुआ करते हैं। असली बदन तो छोटे पर मोटे छल्लोंवाला होता है, उसका पिछला हिस्सा जिसे दुम भी कह सकते हैं सकड़ा, लम्बा और छोटे छोटे टुकड़ों का बना होता है, जैसा कि कनखिजूरेके शरीरके टुकड़े होते हैं। दुम कभी कभी डेढ़ या पौने दो फुट तककी लम्बी होती है। यह सन्तानोत्पत्तिके काममें आती है। जब मैथुनीय प्रौढ़ताका समय आता है तो यह दुम अलग हो जाती है। कुछ दिन तक तो वह इधर उधर फिरती रहती है, परन्तु बादमें इसके टुकड़े अलग होने लगते हैं। टुकड़ोंमें का प्रजा-सृष्टि का मसाला पानीमें गिर जाता है, जिससे पीछेसे जन्तु पैदा हो जाते हैं। पुच्छ हीन जन्तु पूर्ववत सुखसे मूंगोंकी दरारोंमें चैनसे दिन काटता रहता है और उसके दुम दुबारा उगने लगती है। कभी कभी पूछोंके टुकड़ोंके अलग अलग होनेके पहले ही वह किनारे जा लगती हैं और मांसाहारियोंको चाटका मज़ा देती हैं।

यह घटना वास्तवमें आत्म-विकृतिका एक अच्छा उदाहरण है। इससे जान्तव-सृष्टिमें बहुत मारकेके काम निकलते हैं। इस जन्तुकी सन्तति-का दूरदूर देशों तक फैल जाना केवल इसी शक्तिके कारण है। दुमका प्रत्येक भाग वस्तुतः एक डोंगीका सा काम देता है।

—मनोहरलाल

आदमी मर जाता है पर नाम रह जाता है

दुनियामें एकसे एक बड़े आदमी पैदा होते हैं और थोड़े दिन विश्वके मञ्चपर अपने कामोंका तमाशा दिखा चलबसते हैं। उनके लोकोत्तर शक्ति और प्रतिभाकेद्योतक काम बहुत दिनों तक लोगों को याद रहते हैं और उनकी स्मृति हरी रहती है। अर्जुन और भीमका रणकौशल, भीष्म-की सत्यनिष्ठता, रामका उत्कृष्ट वीर-चरित्र, कृष्णकी प्रेमलीला और अपूर्व विज्ञान, बलिकी दानशीलता, रावणका प्रजापीड़न, प्रलयकाल तक याद रहेगा।

हरेक व्यक्तिके मनमें इच्छा रहती है कि उसका नाम जिन्दा रहे। इसी कारण लोग कहीं गांव बसाते हैं, कहीं पुल बनवाते हैं, कुए खुदवाते हैं, बावड़ी, तालाब, धरमशालाएं बनवाते और सदावरत खोलते हैं। इसीका 'मोस्ट अप टूडेट ढंग सड़कोंका नामकरण है। प्रयागकी कीनींग (किंकानो?) सड़क, एडमान्सटन रोड, लूकर रोड, इत्यादि इसके उदाहरण हैं। इन पाश्चात्य कंगलोका नामकी इतनी परवाह रहती है कि कहीं घूरा भी मिल जाय तो शायद उसे भी अपना नाम प्रदान करदें। टकरका पुल भला क्या चीज़ है, पर साहबका नाम होना चाहिये।

भारतवर्षकेबड़े बड़े कवियों, शिल्पकारों, कारीगरों और चित्रकारोंने सदा अपनेको छिपाया, परन्तु पश्चिमीय देशोंमें ज़रा ज़रा सी बातोंमें ही लोगोंका नाम अमर कर देनेका प्रयत्न किया जाता है। गैलवनी महोदय बोलोगना (Bologna) में प्रोफेस्सर थे। वह मेढ़कोंकी टांगोंमें धातुओंका स्पर्श कराके फड़कन पैदा करानेका प्रयत्न किया करते थे। इन प्रयोगोंसे विद्युत् धारा पैदा करनेकी विधि बादमें वोलटाने निकाली। इनका काम किसी प्रकारसे भी महत्वका नहीं था। तथापि उनका नाम गैलवेनिक और गेलवेनाइज्ड शब्दों द्वारा अमर हो चुका है। ऐसेही औरभी अनेक उदाहरण मिलेंगे। जैसे एक वृक्षका नाम डागलसपाइन रखा गया है। पाइक पीक, माउण्ट एवेरेस्ट, डेहलिया ब्लासम, लिविंग्स्टोन नदी, आदिभी इसीके उदाहरण हैं। पर कहीं कहीं इस प्रथासे वास्तवमें बड़े बड़े योग्य और प्रतिभाशाली सज्जनोंकी कीर्ति चिरस्थायी हो गयी है। मेसमेरिज़्मका नाम पाठकोंने सुना होगा। इसके आविष्कर्ता फ्रांज़ मेस्मर (Franz Mesmer 1773-1815) थे। फैरेडे महोदयका नाम भी फेरेड शब्दमें अमर कर दिया गया है।

विद्युत् दबाव की इकाई वोल्ट, धारा की इकाई एम्पेयर, काम की इकाई वाट. विद्युत्की नापकी इकाई कूलम्ब, रेडियममेंसे निकले हुए पदार्थोंकी इकाई मेच (mache), जूल और क्यूरी इकाइयां भी बड़े बड़े वैज्ञानिकोंकी स्मारक हैं।

हर्ज़ियन लेहरें, रोनजन रश्मि, देवार कुप्पी, दानियल बाटरी, जीसलर ट्यूब, बेसीमरस्टील आदि वैज्ञानिक संसारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इससे यह न समझना चाहिये कि वैज्ञानिक संसारमें ही ऐसा प्रथा है। सलीम शाही जूता, बोयकोट*, कंटरी †जरीब, गांधी कैप, पेशवाई पाग, पेस्ट्यो राइज्ड मिल्क, नादिर शाही, राम राज्य, आदि शब्द भी इसी व्यापक प्रवृत्तिके उदाहरण हैं।

—मनोहरलाल।

---

† यह जरीब गंटर महोदयकी निकाली हुई है।

* कौनटी मेयोके केप्टेन बोयकोटके साथ उनके पड़ोसियोंने सब प्रकारका सम्बन्ध दिसम्बर सं० १८८० में छोड़ दिया था, तभीसे यह शब्द निकला है।

अकबरके शासनका उद्देश्य

[ले०—पं० शेषमणि त्रिपाठी]

(गतांक से आगे)

पहलेके मुसलमान बादशाहोंने इस देशकी भिन्न भिन्न जातियोंको एकताके बन्धनमें जोड़नेकी चेष्टा नहीं की थी। उनका शासन स्थिर नहीं था, क्योंकि किसी सबल शक्ति का सामना पड़नेपर उन्हें राज्यसे हाथ धोना पड़ता था। इस अस्थिरता के कारण सब लोगोंको विश्वास होगया था कि भारतीय मुसलमान राजवंश चिरस्थायी नहीं हो सकता। अपरञ्च, इस चञ्चल स्थितिने कुछ ऐसे लोगोंको भी पैदा कर दिया था जो राज्य-प्राप्तिके लिए यत्न करनेका अवसर ढूंढ़ा करते थे। सम्पूर्ण देश में कुछ ऐसे लोग छितराये हुए थे। उनका विश्वास था कि मुगलोंकी भी वही दशा होगी जो पहलेके मुसलमानी राजवंशोंपर बीत चुकी थी। वह समझते थे कि मुगलोंके स्थानपर कोई दूसरा दिल्लीके सिंहासनको सुशोभित करेगा। अकबर स्थितिको समझ गया था। अतएव उन भावोंको लोगोंके हृदयोंसे दूर करनेके उपाय वह सोचने लगा और वह अपने इस कार्य्यमें सफल भी हुआ। उसका पहला उद्देश्य था सम्पूर्ण भारतको अपने छत्रके नीचे लाना और दूसरा उद्देश्य था मुगल राजवंशको चिरस्थायी बनाना। वह सबको एक सुदृढ केन्द्रके चारों ओर एकत्रित करना चाहता था। समस्त राजकीय व्यापारोंको एक निश्चित प्रधान केन्द्रसे मिलाना उसका लक्ष्य था। वह उन लोगोंमें जो पहले उसकी शक्तिका सामना करते थे यह भाव उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता था कि अकबरकी अधीनतामें उनका सम्मान घटेगा नहीं, वरन् उसे फलने फूलनेका अवसर मिलेगा। जीते हुए राज्योंके शासकोंको वह सम्मानके पदोंपर यथासाध्य प्रायः सुशोभित करता था, जिससे वे सन्तुष्ट हो जाते थे। मालवा के अफगान शासकका उदाहरण इस बातका प्रमाण है। इस प्रकार सम्राटको अच्छे अच्छे लोग मिल जाते थे, जो उसके उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायता करते थे। राज्यको दृढता भी देनेमें इसका विशेष प्रभाव पड़ता था।

सम्राटका उद्देश्य विजय और स्थिरीकरणके अतिरिक्त कुछ और भी था। भारतको सुदृढ़ मुगल छत्रके तले लानेके साथ साथ देशकी प्रचलित राजव्यवस्थाका सुधारना भी उसका एक मुख्य उद्देश्य था। विजित प्रदेश के धन धान्यको लूटना उसका लक्ष्य नहीं था। वह हृदयसे चाहता था कि प्रजा सुखी और समृद्धिशाली हो। यही उसकी राज्य व्यवस्थाका चरम सिद्धान्त था। अबुल-फ़ज़ल आइने-अकबरी (Gladwin P: 2) में लिखता है कि "जनता के आचार विचार सुधारना, कृषिकी उन्नति करना, राजकर्मचारियोंका नियन्त्रण और सेनाका युद्धाभ्यास (discipline) सर्वोत्तम कार्य हैं।" सम्राट् की नीति प्रायः इसी केन्द्रपर चलती थी। इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए "जनता को सन्तुष्ट रखना और कोश तथा आय व्ययका समुचित प्रबन्ध करना अनिवार्य्य है।"* जब इन बातोंका ध्यान रखकर कार्य किया जाता है "तब प्रजा सुखी और समृद्धि पूर्ण होती है।"† अकबरका इतिहास इसी सिद्धान्तका दृष्टान्त है।

इस उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिए वह पूरा यत्न करता था और उसको सफलता भी अच्छी हुई। वह न तो कभी समय खोता था, न कार्य ही कभी छोड़ता था। सदा वह अपने उद्देश्यको सिद्ध करनेमें लगा रहता था। कार्य्यकी अधिकतामें भी वह आमोद प्रमोद और खेल इत्यादिमें भाग लेनेको समय पा ही जाता था। खेल इत्यादिमें भी सम्राट् अपने उद्देश्योंको नहीं भूलता था। प्रत्युत् इन खेलों-

* आईन अकबरी Gladwin. P. 2

† चौगान इत्यादि

से वह राजनीतिक लाभ उठाता था। अबुलफ़ज़ल S कहता है कि "सम्राट् मानव जातिके गुणों और भावोंको पहचाननेमें प्रवीण है। वह इन खेलोंका प्रयोग मनुष्योंके गुणोंकी परख करनेके लिए करता है।" इसमें सन्देह नहीं कि जो बातें साधारण मनुष्योंको आमोद प्रमोद सी ही देख पड़ती हैं, उन्हींके द्वारा बुद्धिमान् पुरुष अनेक लाभ उठाता है। अकबर खेल तमाशोंमेंसे भी अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके उपाय निकाला करता था। यहांपर मनुष्योंके गुणोंकी परख करके वह उनसे अपने काममें सहायता लेता था। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि साधारण बातोंसे भी सम्राट् असाधारण काम निकालता था। अबुलफ़ज़लने पशुयुद्ध इत्यादि सार्वजनिक तमाशों (Public spectacles) भी का राजनीतिक भावसे वर्णन किया है। वह कहता है कि "सम्राट् सार्वजनिक तमाशोंको इसलिए प्रोत्साहित करता है कि जिससे सब प्रकारके लोग उनमें सम्मिलन होकर मेल मिलाप और पारस्परिक मित्रता बढ़ावें। O" इन उद्धरणोंके देनेका अभिप्राय: यह है कि सम्राट् इन खेल तमाशोंसे भी अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायता लेता था। यह क्षमता सभी नृपतियोंमें नहीं होती।

अकबर अपने तीनों उद्देश्योंके महत्वसे सम्यक् परिचित था। अतएव उनकी पूर्तिके लिये सर्वदा यत्नवान् रहता था। हिंदू राजाओं तथा सम्राट्की हिन्दू प्रजाको मालूम हो गया कि अकबर पहलेके सुलतानोंसे भिन्न व्यक्ति है। उसके सिद्धान्त उन सुलतानोंकी तरह नहीं थे, जो हिन्दू प्रजाको तंग करना अपना धर्म समझते थे। वरन् तीनों उद्देश्योंके रगरगमें सहिष्णुता और मैत्रीकरणका भाव भरा था। वह सीधे रास्तेपर चलना चाहता था, क्योंकि सीधे मार्गसे चलनेवाला भूलें नहीं करता। उसके एक मुहरपर यह वाक्य खुदा था:—

"रास्ती मूजबे रज़ाये खुदा अस्त।
कस न दीदम कि गुम शुद अज़रह रास्त॥"

S आईन अकबरी Gladwin, पृष्ठ २०६
O " " " पृष्ठ १४१

अस्तु, अकबर स्वयम् सीधे मार्गसे चलता था। इसीको वह ईश्वरको प्रसन्न करनेका उपाय समझता था। इसी मार्गपर अपनी प्रजाको भी चलाना चाहता था। राजनीतिमें भी अकबरका यही सिद्धान्त था। वह अपने तीनों राजनीतिक उद्देश्योंको (विजय, स्थिरी करण और शासन सुधार) सिद्ध करनेके लिए भी इसी उपायका अवलम्बन किये था। उसे तीनोंमें सफलताकी आशा थी और सफलता हुई। अद्वितीय योग्यताके कई मनुष्य सम्राट्के सहायक थे। अब देखना है कि इस त्रिकोण भूमिपर जो भवन बना उसका रूप क्या था। अकबरने इन्हीं तीनों उद्देश्योंकी दीवारपर राज्य व्यवस्थाका एक सुदृढ़ और चिरस्थायी भवन निर्म्माण किया। उसके गम्भीर तत्वोंके समझनेके लिए इस परिच्छेदके अन्तमें इन तीनों उद्देश्योंको स्पष्ट लिख देना आवश्यक है। वह निम्न लिखित हैं:—

(१) भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंको एक छत्रके तले लाना।

(२) मुगल साम्राज्य को दृढ़ और चिरस्थायी बनानेका उपाय करना।

(३) प्रजाकी हित-चिन्ता और शासन प्रणाली का सुधार करना।

पिशल रचित प्राकृत व्याकरणका उपोद्घात *

(क) प्राकृत भाषाके प्रकार

भारतीय वैयाकरण और अलंकार शास्त्रज्ञोंके मतानुसार 'प्राकृत' से उन कतिपय शास्त्रीय भाषाओंका बोध होता है, जिनका सामान्य लक्षण, उनके विचारमें, उनका संस्कृतसे

उत्पन्न होना है। अतः 'प्राकृत' शब्दकी व्युत्पत्ति 'प्रकृति' शब्दसे की जाती है। प्रकृति का अर्थ 'बीज' अथवा 'मूलतत्व' है। 'प्रकृति' उसे कहते हैं जो दूसरे पदार्थका प्रारंभक हो। यहां आचार्योंके मनमें संस्कृत ही प्रकृति है। हेमचन्द्र अपनी प्राकृत व्याकरण (परिच्छेद १ सूत्र १) में यों कहते हैं:—"प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्रभवं तत आगत वा प्राकृतम्।" अर्थात् बीज संस्कृत है। संस्कृतसे जिसका प्रभव है अथवा संस्कृतसे जिसका उपक्रम हुआ है उसको 'प्राकृत' कहते हैं। इसी प्रकार मार्कण्डेय अपने प्राकृत सर्वस्व नामक ग्रंथ (पृष्ठ १) में लिखते हैं:—"प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्रभवं प्राकृतमुच्यते" और दशरूपका टीकाकार धनिक परिच्छेद २ श्लोक ६० की व्याख्यामें लिखता है:—"प्रकृतेरागतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्। "सिंहदेवगणिन् वाग्भटालंकार (परिच्छेद २ श्लोक २) की टीकामें 'प्राकृत' शब्दकी व्याख्या निम्न प्रकारसे करते हैं:—"प्रकृतेः संस्कृताद्गागतं प्राकृतम्।" इसी प्रकारकी व्याख्या प्राकृत चन्द्रिका (देखिये पीटरसन साहब द्वारा संपादित तृतीय रिपोर्ट ३४३, ३४७) में पाई जाती है:—"प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्रभवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्।" नरसिंह कृत प्राकृत शब्द प्रदीपिका (पृष्ठ १) में निम्न लिखित व्याख्या पाई जाती है:—"प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृतीमता" और कर्पूरमंजरी (बंबई संस्करण ९, ११) की वासुदेवकृत प्राकृत संजीवनी नामक टीकामें भी प्राकृतशब्दका ऐसा ही निर्वचन मिलता है। यथा "प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः।" प्राकृत शब्दकी अन्य व्युत्पत्तियोंके लिये सोलहवां पैरा देखिये।

२. गीत गोविन्द (परि० ५ श्लो० २) की नारायण कृत रसिक सर्वस्व नामक टीकामें यों लिखा है:—

"संस्कृतात्प्राकृतमिष्टं ततोऽपभ्रंशभाषणम्।" अर्थात् 'प्राकृत' की उत्पत्ति संस्कृतसे है और 'अपभ्रंश' का जन्म 'प्राकृत' से हुआ है, ऐसी सर्वसाधारणकी धारणा है। शंकर का निम्न लिखित अवतरण (देखिये पिशल द्वारा संपादित शकुंतला ९, १०) और भी निश्चित रूपमें है:— "संस्कृतात्प्राकृतं श्रेष्ठं ततोऽपभ्रंशभाषणम्।" अर्थात् संस्कृतसे सबसे उत्तम प्रकारकी 'प्राकृत' भाषाका जन्म हुआ है और उससे 'अपभ्रंश' भाषाका। दण्डिन्के अनुसार यह 'श्रेष्ठ प्राकृत' महाराष्ट्री है। देखिये दण्डीकृत काव्यादर्श १,३४—"महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।" इसका कारण यह है कि महाराष्ट्री औरोंकी अपेक्षा अधिक संस्कृतकी समीपवर्ती समझी जाती है। जब भारतीय विद्वान् केवल प्राकृत शब्दका प्रयोग करते हैं तब उनका प्रायः सर्वदा महाराष्ट्रीसे ही आशय होता है। महाराष्ट्री अन्य प्राकृत भाषाओंकी मूलभित्ति समझी जाती है और प्राकृत व्याकरणोंमें पहिला स्थान महाराष्ट्री प्राकृतको ही दिया जाता है। उदाहरणके लिये सबसे प्राचीन प्राकृतके वैयाकरण वररुचि ही को ले लीजिये। आपने ९ परिच्छेदोंमें ४२४ सूत्रों द्वारा महाराष्ट्रीका विचार किया है और अन्य तीन प्राकृतोंमेंसे प्रत्येकका विचार केवल एक परिच्छेदमें १४, १७ अथवा ३२ सूत्रों द्वारा किया है। अन्तमें वररुचिने यहांतक कह दिया है कि जिस प्राकृतका इस ग्रंथमें † विशेष रूपसे उल्लेख नहीं हुआ वह महाराष्ट्रीके समान है। "शेषं महाराष्ट्रीवत् (१२, ३२)।" अन्य वैयाकरण भी इसी प्रकारसे विधान करते हैं।

३. परन्तु 'प्राकृत' का विशेष रूपसे क्या अर्थ है और इसके अन्तर्गत कितने विभेद हैं, इस संबन्धमें मत बाहुल्य पाया जाता है। वररुचिके अनुसार महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, यह चार ही प्राकृतके भेद हैं। हेमचन्द्रके अनुसार इन चारके अतिरिक्त आर्ष, चूलिका, पैशाचिक और अपभ्रंश भी प्राकृतके अन्तर्गत हैं। त्रिविक्रम, सिंहराज, नरसिंह और लक्ष्मीधर हेमचन्द्रके अनुयायी हैं। इनमें केवल इतना ही भेद है कि त्रिविक्रम 'आर्ष' का स्पष्टतया निषेध

† प्राकृत प्रकाश.

करते हैं और सिंहराज इत्यादि 'आर्ष' का नाम तक नहीं लेते। मार्कण्डेय (पृष्ठ २) 'प्राकृत' के चार विभाग करते हैं:—भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाच। 'भाषा' के निम्न लिखित प्रकार हैं:- महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, अवन्ती और मागधी। मार्कण्डेय 'अर्धमागधी' को 'भाषा' की कक्षामें परिगणित नहीं करते, प्रत्युत् वह किसी अकीर्तित ग्रन्थकारके मतका विरोध करते हुए उसका निषेध करते हैं और कहते हैं कि यह कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है; केवल मागधीका एक विशेष रूप है, जो शौरसेनीसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। वह 'दाक्षिणात्य' और 'बाल्हीकी' की भी परिगणना 'भाषा' में नहीं करते, क्योंकि उनके विचारमें 'दाक्षिणात्य' में कोई विशेष लक्षण नहीं पाये जाते और 'बाल्हीकी' तो मागधी ही है। 'विभाषा' इस प्रकार हैं:—शाकारी, चाण्डाली, शाबरी, आभीरिकी और शाक्की। यह 'ओड्री' और 'द्राविडी' का निषेध करते हैं। २७ प्रकारके अपभ्रंशके स्थानमें केवल तीन ही प्रकार अर्थात् नागर, व्राचड और उपनागर मार्कण्डेयको मान्य हैं। पैशाची के ११ भेद न मानकर मार्कण्डेय केवल कैकेय, शौरसेन और पांचाल इन्हीं तीन भेदोंको मानते हैं और इन की उत्पत्ति 'नागर' से बतलाते हैं। रामतर्क वागीशका भी यही मत है। यह असन्दिग्ध है कि सब वैयाकरण 'महाराष्ट्री' 'शौरसेनी,' 'मागधी' और 'पैशाची' को प्राकृतके अन्तर्गत मानते हैं।

(क्रमशः)

—नरेन्द्रदेव
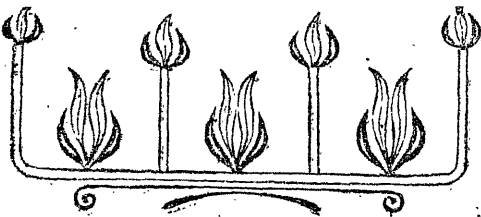
विज्ञान और भविष्य

[ले०-प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, एम. एस-सी., एफ. सी. एस, इत्यादि]

अन्तिम यूरोपीय महायुद्धसे होनेवाली हानियोंपर विचार करते हुये हम लोगोंको सबसे बड़े धन, वैज्ञानिक ज्ञानको, जो अनेक युगोंसे इकट्ठा होता चला आया है, भूल जाना नहीं चाहिये। यह एक ऐसी पूंजी है जो अनादि कालसे इकट्ठी होती चली आई है और जिससे प्रकृतिपर आधिपत्य स्थापित करनेमें मनुष्य मात्रको उत्तरोत्तर सहायता मिलती है। यह पूंजी ऐसी है जिसका नाश नहीं होता और जो यथार्थमें मनुष्य मात्रका बहुमूल्य पैत्रिक धन (Heritage) है। इस युद्धसे यह निर्विवाद प्रमाणित हो गया है कि खाद्य एवं अन्यान्य आवश्यक पदार्थ हम लोगोंकी ज़रूरतसे बहुत अधिक उत्पन्न नहीं होते और जो कुछ अधिक उत्पन्न भी होते हैं वह युद्ध आदि घटनाओंसे बिलकुल खपजाते हैं। यदि विज्ञानकी सहायता न रहती, यदि खेती वैज्ञानिक रीतिसे न की जाती, सिंचाईके नये नये तरीके ईजाद न होते, नये नये खाद्य उत्पन्न नहीं किये जाते, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लेजानेका उचित प्रबन्ध नहीं रहता, तो वर्तमान समयके भूमण्डलके निवासी अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकते थे। इतना होनेपर भी चारों ओरसे खाद्य पदार्थोंकी कमीकी खबरें मिल रही हैं और भारतवर्षके किसी न किसी भागमें अकाल पीड़ितोंकी क्रन्दन ध्वनि सुनाई पड़ती ही रहती है। ऐसा समझा जाता है कि यह पृथ्वी ६ अरब मनुष्योंका भरण पोषण कर सकती है, अनुमान किया जाता है कि यह संख्या सन् २१०० ई० में वर्त्तमान वृद्धिके हिसाबसे पहुंच जायगी। इन हालतमें, चाहे हम वर्त्तमान समयकी आवश्यकताओंका अथवा आनेवाले समयकी आवश्य-

कताओंका विचार करें यह निश्चय है कि आनेवाले समयमें जीवन और सभ्यताकी आवश्यकताओं में कमी नहीं होगी। वरन्, उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रहेगी। अतएव इन आवश्यकताओंकी पूर्ति ही करनी पड़ेगी, जिसका एकमात्र साधन विज्ञानका अनुशीलन और वैज्ञानिक रीतियोंका अवलंबन है।

दिन प्रतिदिन उद्योग धन्धे (industries) पेचीले होते जाते हैं। एक ओर तो उनमें लोगोंकी सफलता उनकी विशेष शिक्षापर निर्भर है, दूसरी ओर उनकी मस्तिष्ककी मौलिकतापर। भाग्यवश वैज्ञानिक लोगोंकी उपयोगिता दिनपर दिन बढ़ती जाती है और साधारण व्यक्ति भी अब उनकी उपयोगिताको समझने लगे हैं। अब वह समय नहीं रहा जब १७८४ ई० में लेवोआज़ियर (Lavosier) नामक एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी रसायनाचार्य्यको उनके देशके लोगोंने यह कहकर फांसी दे दी कि प्रजातंत्र राज्यको (Republic) रासायनिकोंकी आवश्यकता नहीं है। भविष्यतमें किसी देशके उद्योग धन्धे तभी वृद्धि प्राप्त करेंगे जब वह मज़बूत वैज्ञानिक नींवपर खड़े होंगे। पुरानी और अवैज्ञानिक रीतिसे चलनेवाले धन्धोंका अब समय नहीं रहा और न रहेगा; यदि वह अभीतक इस प्रकार जीवित हैं तो बहुत शीघ्र ही उनका अन्त होना निश्चय है।

ऐसे चिन्होंका अब अभाव नहीं है, जिनसे यह मालूम हो कि वैज्ञानिक शिक्षाकी आवश्यकता और उपयोगिता सभी समझने लग गये हैं। अन्तिम महायुद्ध और औद्योगिक प्रतिद्वंन्द्विताने सबोंकी आँखें खुल गई हैं और इसका प्रभाव सबोंपर पड़ रहा है। वैज्ञानिक विषयोंपर कार्य्य करनेवाले पुरुषोंकी चेष्टा और उद्योगसे नये नये आविष्कार दिन प्रतिदिन हो रहे हैं। आविष्कार करनेके लिए नये नये मार्ग भी खुल रहे हैं और खोजका क्षेत्र विस्तृत हो रहा है। जिनका यह विचार है कि कुछ समय पश्चात् अनुसन्धानोंका क्षेत्र संकीर्ण हो जायगा वह बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। नये नये विषयोंकी उन्नतिके साथ नाना प्रकारके प्रायोगिक यन्त्रोंका भी विस्तार हो रहा है। एक ओर तो बिजलीके भट्टों द्वारा (Electric furnaces) सूर्य्यकी गर्मीके बराबर गर्मी पाना सम्भव हो गया है। दूसरी ओर नीचेसे नीचा तापक्रम (temperture)—जिसका कुछ ही दिन पूर्व विचारमें आना कठिन था—पाना एक बहुत सरल कार्य्य हो गया है। इस प्रकार कुछ दिन पहले जो प्रयोग एक बहुत परिमित तापान्तरमें (limited scope) किया जा सकता था, आज उसके करनेका विस्तार सूर्य्य की गर्मीसे लेकर केवल शून्य (absolute zero) तक बढ़ गया है।

शुद्ध वैज्ञानिक विषयोंको छोड़कर जब हम व्यवहारिक विज्ञान (applied sciences) की ओर ध्यान देते हैं तब यहां भी अनुसंधानकी सामग्री बहुत अधिक पाते हैं। पेट्रोल इन्जिन जो पहले पहल छोटी छोटी किश्तियों और मोटर गाड़ियोंके चलानेमें काम आता था, अब उसीके बलसे वायुमण्डल का (वायुयानोंमें) और समुद्र-तलका (सबमेरीनोंमें) विजय सम्भव ही नहीं वरन् प्रायः प्राप्त हो चुका है। बेलका टेलीफोन जो पहले पहल दूरसे बातचीत करनेके लिए निकाला गया, अब उसने तारका सहारा छोड़ बेतारका रूप धारण कर लिया है और अब हम प्राचीन ऋषियोंकी नाईं यहां ही बैठे बैठे चाहे जिस देशके निवासियोंसे इस प्रकार बातचीत कर सकते हैं मानों वह हमारे पास खड़े हैं। फोटोग्राफी और इसके सूक्ष्मवेदी प्लेट (sensitive plate s) और कागज़ जिनका अब (Radioactivity) विकीरकतामें और इसी प्रकारके और और कार्य्योंमें प्रयोग हो रहा है, उनके निकालनेवालेको इस बातका स्वप्नमें भी विचार नहीं आया होगा। शून्य कुप्पीका (Vacuam flask) आविष्कार सर जेम्स डेवर महाशयने, तरलवायु (liquid air) रखनेके लिये किया था, अब वह गरम चाय रखनेके लिये इस्तेमाल हो रही है। रेडियम धातु जिसको

सैकड़ों पत्थर कूट पीटकर और अनेक रासायनिक क्रियाएं करके एक फ्रांसीसी विदुषी, मैडेम क्यूरी, ने कौतूहलवश थोड़ा सी मात्रामें निकाला था अब उसका प्रयोग पुराने बिगड़े हुए व्रणोंके अच्छा करनेमें होने लगा है। जाइरोस्टैट (Gyrostat) जो लड़कोंके खिलौने, लट्टू, से निकाला गया था और शुरूमें केवल एक वैज्ञानिक खिलौना था, अब वह एक पटरीकी रेलगाड़ीमें काम आता है, जो मामूली दो पटरीकी गाड़ियोंसे दुगनी तेज़ चलतीहै और जिसमें दुर्घटनाओंका तनिक भी भय नहीं होता।

आधुनिक आविष्कारोंमें सबसे महत्वका आविष्कार बेतारका है और अब भी यह एक ऐसा विषय है जिस पर बहुत कुछ कार्य्य किया जा सकता है। बेतार में एक प्रकारका अद्भुत किरिश्मा है कि सैकड़ों और हज़ारों मीलों तक बिना किसी दृश्य, स्पृश्य या स्थूल माध्यमके समाचार बातकी बातमें पहुंच जाता है।

भविष्यमें कुछ ऐसे नियम बनाने पड़ेंगे जिससे बेतारमें किसी प्रकारकी रुकावट न हो। चूंकि यह १ लाख ८६ हज़ार प्रति सेकन्डके अत्यन्त वेगवती चालसे चलकर आकाशमार्ग में चलता है, अतएव इसके लिये कोई अन्तर्जातीय (International) सीमा कावन्धन नहीं। खबरोंको पत्रके सम्पादकोंके पासपहुंचानेके लिये इससे अच्छा कोई साधन हो ही नहीं सकता। इसका कोई कारण नहीं मालूम होता कि भविष्यत्में क्लबों, होटलों तथा (Private) खानगी घरोंमें इसके द्वारा काम क्यों न लिया जाय। इसके द्वारा एक स्थानसे भेजने पर कितने स्थानोंमें खबरें पहुंच सकती हैं। जितने ही स्थानोंपर समाचार ग्राहक (receiving station) होंगे उतने ही स्थानोंपर खबर पहुंच सकती है। यहीं तक इसकी सीमा नहीं। इस बेतारके द्वारा अटलांटिक महासागर पार कर अमेरिकाके संयुक्त-राज्यसे पेरिसको मनुष्यके उच्चारित शब्द ऐसे रूपमें भेजे गये हैं जो बिल्कुल समझमें आसकते हैं। इसका कोई कारण नहीं मालूम होता कि बहुत शीघ्र ही एक वक्ता कलकत्ता या लन्दन या न्यूयार्कमें खड़ा होकर बेतारके द्वारा हजारों श्रोताओंको, जो भूमण्डलके सभी भागोंपर फैले हुये हों, व्याख्यान क्यों न सुना सके।

बहुत सी आशाएं दी जा रही हैं कि थोड़े से विद्युत् उत्पन्न करनेवाले स्थानोंसे सारे देशोंमें विद्युत् शक्तिका सञ्चार और प्रचार बहुत ही शीघ्र होगा। यह विद्युत् शक्ति इतनी सस्ती हो जायगी कि इसके सामने और किसी प्रकारकी शक्तिका ठहरना बिलकुल असम्भव हो जायगा। यह न केवल रेलके चलाने, खूंटियों के ठोकने और यन्त्रोंके सञ्चालनमें प्रयुक्त होगी, वरन् भोजन पकाने, पानी गरम करने और अन्य घरेलू कामोंके करनेमें भी काम आयगी। आधुनिक युग निस्सन्देह कोयलेका युग है। हम लोगोंके प्रायः सभी कार्य्य आजकल कोयलेकी शक्तिसे चल रहे हैं। कोयलेका प्रयोग यदि बन्द कर दिया जाय तो सभी कल कारखानोंको बन्द कर देना पड़ेगा। संक्षेपतः कोयला आजकल मनुष्यमात्रका जीवन है, आधुनिक समयकी सभ्यताका स्तंभ है, किन्तु वह समय शीघ्र ही आनेवाला है जब कोयलेके स्थानमें सभी जगह विद्युच्छक्तिका प्रयोग होने लगेगा।

खान-पान

खान-पानके विषयमें बड़ा मत भेद है। इस विषयपर बड़ा वादविवाद चल रहा है। किसीका कुछ मत है, किसी का कुछ। यहबात सभीको माननी पड़ेगी कि जितने मनुष्य हैं उनके मत इस विषय पर जुदे जुदे होंगे। आज कलके समाज सुधारक अन्तर्जातीय भोज (interdining) के लिए टेबुल तोड़ने पर उतारू हो जाते हैं। उनका कहना है कि सब मनुष्य एकसे हैं, उनके एक साथ

खानेमें कोई हानि नहीं है। दूसरी ओर कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो "तीन कनउजिया तेरह चूल्हा" वाली कहावत चरितार्थ करनेके लिए अपना सब कुछ अर्पण कर देते हैं। वह जात-पाँत चौका-चूल्हे का इतना विचार रखते हैं कि उनके नियमके विरुद्ध यदि कुछ थोड़ासा भी हुआ तो वह खानेसे हाथ धो बैठते हैं। अब यदि हम सर्वसाधारणके झुकावकी ओर नज़र दौड़ाते हैं तो जान पड़ता है कि वह जात-पाँत छुआछूतके विचारोंको यथा सम्भव कम करनेके पीछे पड़ा है। ऐसे मनुष्य भी हैं जो कहते हैं कि यदि जातपाँतका विचार छोड़ दिया जाय तो ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। अबतक यह शिकायत ही है कि विज्ञान इस विषयमें मौनावलम्बन किये हुए है। इस समय तक लोग समझते थे कि विज्ञानको इस विषयमें कुछ कहना ही नहीं है। खानपानके बखेड़ोंसे विज्ञानको कुछ सम्बन्ध नहीं—ऐसा विचार लेना निरी मूर्खता है। क्योंकि ऐसे आवश्यक विषयमें हम विज्ञानकी राय अब तक लेना नहीं चाहते थे। जो थोड़ेसे यहाँ वैज्ञानिक हैं भी वह ऐसे विवाद-ग्रस्त विषयको उठाकर अपनी माथा पच्ची नहीं करना चाहते थे। किन्तु भारतको दिनों दिन अधोगतिकी ओर अग्रसर होते देख मैं विज्ञानकी राय इस विषयमें ढूँढ़ने लगा। इस विषयमें हमें जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है उसका दिग्दर्शन आप लोगोंको करा देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। जो विचार यहां प्रकट किये गये हैं, उनके लिए मैं उत्तर दायी हूं और उनके विरुद्ध यदि किसीको कुछ शंका उठे उसका मैं समाधान करनेके लिए तैयार हूं।

मध्य एशियासे जब आर्य्यगण हिन्दुस्तानमें आये, उस समय सब एक थे। जात-पाँत कुछ नहीं थी। सबका छुआ सब खाते थे। इतिहास बतलाता है कि जब उनकी संख्या बढ़ने लगी और एकही व्यक्ति सब कामोंको सुचारू रूपसे सम्पादित करनेमें असमर्थ हो गया तब वह कई वर्गोंमें बँट गये और एक एक वर्गके जिम्मे एक एक काम दे दिया गया। उसी समयसे आर्य्योंके कई वर्ग होगये, जिनको जातिके नामसे पुकारते हैं। समयके हेर फेरसे इन जातियोंके आचार-विचार व्यवहार सब एक दूसरेसे भिन्न हो गये।* यह तो हमारी बातें हुईं। अब हमें यह देखना है कि दूसरे देशोंमें भी जात-पांत है या नहीं?

पश्चिमीय देशोंके इतिहासके पन्नोंको उलटनेसे पता लगता है कि वहां भी जातपांतका भेद-भाव फैला हुआ है। इंगलैन्ड, फ्रान्स, जर्मनी अमेरिका आदि सभी देशोंमें जात-पांत है। मेरे अन्तिम वाक्यको पढ़ कर पाठकोंके कान खड़े हो गये होंगे, किन्तु वह कुछ भी गौर करके देखेंगे तो उन्हें जान पड़ेगा कि वहांके रहनेवाले हम भारत-वासियोंकी ऐसी ही जात-पांतकी जंज़ीरमें बँधे हुए हैं; फरक केवल यही है कि भारतमें कार्य्यके अनुसार जातिमें ऊंचता और नीचता है; जैसे ब्राह्मणोंका काम सबसे श्रेष्ठ है इसीसे वह सब जातियोंमें श्रेष्ठ हैं। किन्तु पश्चिमीय देशोंमें धन-पर जातिकी ऊंचता नीचता निर्भर होती है। हमारे यहां चार मुख्य जातियां हैं, किन्तु इंगलैन्ड आदि देशोंमें केवल तीन। (१) अमीर व्यक्ति—राज-घरानेके, लार्ड घरानेके या और वह व्यक्ति जो धनिक हैं; (२) मध्यम श्रेणीके मनुष्य; (३) गरीब या मजदूर। एक वर्गका मनुष्य दूसरे वर्गके मनुष्यके साथ भोजन करनेमें सकुचाता ही नहीं किन्तु वार्तालाप तक नहीं करता। यदि कोई लार्ड श्रेणीका मनुष्य दावत देता है तो उसमें मध्य या निम्न श्रेणीके व्यक्तियोंको निमन्त्रण नहीं देता।

* यह इतिहासका कहना है, किन्तु मैं समझता हूं कि ज्यों ज्यों उनका विज्ञानका ज्ञान बढ़ने लगा वह समझने लगे कि एक साथ खाना महा हानिकारक है। इसीसे वह कई वर्गोंमें बंट गये।

जब कभी किसी कारखानेका मालिक अपने मित्रोंको भोज देता है तो उसमें मज़दूरोंको नहीं बुलाता। ऐसा ही दूसरी श्रेणियोंके बारेमें भी समझ लेना चाहिये। अब प्रश्न हो सकता है कि यदि कोई गरीब व्यक्ति अपने अध्यवसायके द्वारा अमीर हो गया तो वह अमीर व्यक्तियोंकी श्रेणी में ले लिया जायगा? हां, ऐसे कई दृष्टान्त दिए जा सकते हैं, जिनसे यह प्रमाणित हो जायगा कि गरीब व्यक्ति अपने परिश्रमसे लार्ड बन गये और जातिमें भी ऊंचे हो गये। हमारे यहां एक जातिका व्यक्ति दूसरी जातिमें कदापि नहीं लिया जा सकता। क्षत्रिय कदापि ब्राह्मण नहीं हो सकता किन्तु पश्चिमीय देशोंमें इसके विपरीत है। खैर, अब यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं रही कि जात पांतका भेद-भाव प्रायः सब देशोंमें किसी न किसी रूपमें वर्तमान है। अब यह देखना है कि विज्ञान एक दूसरेके साथ खानेके विषय में क्या कहता है?

इस प्रश्नका उत्तर मैं आगे चल कर दूंगा। यहां मैं अपनी अवस्थितिको बतला देना चाहता हूं। खान पानके विषयमें विज्ञानकी सहायता लेना मानों कट्टर हिन्दुओंके हिन्दुत्वको नाश करना है, शायद ऐसा ख्याल बहुत से मनुष्योंका हो सकता है; विशेषतः उनका जो विज्ञानको अभी तक समाजका शत्रु समझते हैं; जो समझते हैं कि विज्ञान हमारे भारतीय सिद्धान्तोंको जड़ मूलसे नाश कर देगा और विदेशी सिद्धान्तोंका मार्ग साफ करेगा। किन्तु मैं उन मनुष्योंसे,कर जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि विज्ञान ऐसा अन्यायी नहीं है। वह न्याय जानता है; अन्याय से उसका कोई सरोकार नहीं। कुछ देर के लिए आप भ्रममें पड़कर भले ही विज्ञानके सिर झूठको मढ़ दें, किन्तु अन्तमें विज्ञान सत्यका ही मार्ग दिखलावेगा। हमारे पूर्वजोंके सभी सिद्धान्त वैज्ञानिक थे, इसीका मैं इस लेखमें प्रतिपादन करना चाहता हूं।

आज कल विज्ञानके नामको सुनकर लोग डर जाते हैं, क्योंकि वह समझते हैं कि विज्ञानके ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हें समझना टेढ़ी खीर है। किन्तु यह लेख इस दृष्टिसे लिखा गया है कि सभी मनुष्य इसे पढ़ कर लाभ उठावें। जो विज्ञान नहीं जानते वह भी इसमें कोई ऐसी बात नहीं पावेंगे जो वह समझ नहीं सकेंगे। हां मुझे कई स्थानों पर ऐसे सिद्धान्तोंका सहारा लेना पड़ा है जो वैज्ञानिक हैं, किन्तु वह इतने सरल हैं कि प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है। जहां पर कठिन और जटिल सिद्धान्तोंका सहारा लेना पड़ा है, वहां पर उन सिद्धान्तोंको सरल भाषामें बतला देनेका प्रयत्न किया है। सबसे पहले यह देखना चाहिये कि हमें खानेकी आवश्यकता क्यों पड़ती है? किसी प्रकारका काम करनेसे हम लोगों का शरीर छीजता रहता है। चलने, फिरने, उठने, बैठने आदि शारीरिक काम ही नहीं किन्तु मानसिक कामोंसे भी, जैसे अध्ययन मनन आदिसे, मस्तिष्कादि शारीरिक यन्त्र छीजते रहते हैं। इसका प्रमाण यह है कि यदि किसी मनुष्यको किसी गुरुतर कार्य्य करनेके पहले और पीछे तोला जाय तो उसकी दोनों तोल एक नहीं होंगी। काम करनेके बाद वज़न कम हो जाता है। इस प्रकार वजन कम होनेका भी कारण है। एक सेर कोयलेको आप जलावें इसके बाद उसकी राखको तोलें तो आपको मालूम होगा कि राखका वज़न कोयलेके वज़नसे बहुत कम है। हमारे शरीरमें भी कोयलेके जलनेकी सी एक क्रिया होती रहती है जिससे हमारा शरीर छीजता रहता है। यदि हम प्रत्यक्ष भावसे कोई काम न भी करें तो भी हमारा शरीर छीजता रहेगा क्योंकि हमारे शरीर का सभी काम हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं होता। यदि हम कोई काम न करनेकी प्रतिज्ञा कर निश्चल भावसे बैठ रहें तो भी हमारे शारीरिक यन्त्र अपना काम करते रहेंगे और हमारा शरीर छीजता रहेगा।

ऊपर हम कह आये हैं कि हमारे शरीरमें लकड़ी या कोयलेके जलनेकी सी एक दहन क्रिया होती रहती है। इस विषयको मैं ज़रा अच्छी तरह समझा देना चाहता हूं। दहन क्रिया दो प्रकारकी होती है:—(१) मृदु दहन क्रिया और (२) तीव्र दहन-क्रिया। दोनों प्रकारको दहन क्रियामें एक मुख्य घटना घटती है, वह है गर्मीका पैदा होना। किन्तु फ़रक दोनोंमें यही है कि मृदु दहन क्रियामें गर्मीके साथ साथ प्रकाशकी उत्पत्ति नहीं होती और तीव्र दहन क्रियामें गर्मीके साथ साथ प्रकाश भी होता है। एक उदाहरणसे यह विषय ठीक ठीक समझमें आजावेगा। लोहेमें मुर्चा लगता है, किन्तु यह कार्य धीरे धीरे होता है। कई दिन बाद मुर्चाका लगना हम प्रत्यक्ष भावसे देख सकते हैं। यदि हम यत्न पूर्वक परीक्षा करें तो जान पड़ेगा कि इस परिवर्तनमें गरमी पैदा अवश्य होती है। किन्तु उसका मालूम करना कठिन है। हमारा खाना धीरे धीरे हज़म होता है। उससे भी गर्मी पैदा होती है। इसीसे जब हम तापमापक (Thermometer) लगा कर देखते हैं तो हमारे शरीर की गर्मी ६८·४° फा० दीख पड़ती है। उपरोक्त दोनों उदाहरण मृदु दहन क्रियाके हैं। लकड़ी या कोयलेका जलना, मोमबत्तीका जलना अर्थात् ऐसी क्रिया जिससे गर्मी और प्रकाश दोनों पैदा हों उन्हें तीव्र दहन-क्रिया कहते हैं।

लोग पूछ सकते हैं कि हमारे शरीरमें दहन क्रिया होनेका क्या प्रमाण है? वाह्य जगत्में लकड़ी या कोयला जलनेसे जो पदार्थ तैयार होते हैं वही पदार्थ हमारे शरीरमें दहन-क्रियाके सम्पादित होनेसे पैदा होते हैं। लकड़ीके जलनेसे यह सिद्ध होचुका है कि कार्बोनिक एसिड गैस और जल-वाष्प (Water vapour) तैयार होते हैं। कार्बोनिक एसिडगैस एक वायव्य (Ga eous) पदार्थ है। उसे हम देख नहीं सकते। वह बेरंग है। किन्तु उसके पहचाननेका एक तरीका यह है कि यदि चूनेके साफ पानीमें हम उस गैसको छोड़ें तो चूनेका पानी दूधके रंगका हो जाता है। अच्छा, हमने कहा है कि हमारे शरीरमें भी कार्बोनिक एसिड गैस तैयार होती है। इस सत्यको प्रमाणित करनेके लिये यदि हम साफ चूनेके पानीमें एक शीशेकी नलीके द्वारा फूंकें तो चूने कापानी दूध सदृश हो जायगा। जलवाष्पको प्रायः सभी मनुष्य जाड़ेके दिनोंमें अपने मुंहसे धुंएके आकारमें बाहर निकलते देखते हैं, किन्तु यदि कोई और प्रकारसे देखना चाहें तो वह किसी साफ ऐनकपर फूंककर देख सकता है—उसपर छोटेछोटे जलकण जमा हो जायंगे और ऐनककी स्वच्छ सतह अस्वच्छ या धुंधली दीख पड़ेगी।

हमारा शरीर एक इंजिन सदृश है। इंजिनमें जबतक कोयला पानी रहता है तबतक वह अपने कामको निरन्तर किया करता है, किन्तु कोयला या पानीके कम होजानेसे उसके काममें बाधा आजाती है और वह रुक जाता है। एक बार जो कोयला और पानी दिया जाता है वह केवल कुछ समयके लिये काफी हो जाता है। यही हालत हमारे शरीर-की भी है। इसमें जबतक कोयला रूपी आहारकी गर्मी रहेगी, तबतक वह अपना सब काम सुचारु रूपसे करेगा। किन्तु इसके कम होते ही हमारा शरीर काम करनेसे जवाब दे बैठेगा। ऊपर हम लोग देख आये हैं कि काम करनेसे हमारा शरीर क्षय होता रहता है। इस क्षयकी पूर्तिके लिये और शरीरमें काम करनेकी शक्तिका संचार करनेके लिये हमें खानेकी आवश्यकता होती है।

अब हमें यह देखना है कि खानेके पहले हमारा क्या कर्तव्य है? हम हिन्दू, खानेके पहले हाथ, मुंह, पैर अच्छी तरह धोलेते हैं, तबखाने बैठते हैं। किन्तु विदेशवाले ऐसा नहीं करते। विज्ञान इस विषयमें हमें पुरानी लकीर का फकीर ही बने रहनेको कहता है। इस कारण मैं अपने उन मित्रोंका साथ नहीं दे सकता जो पश्चिमीय रंगमें रंग गये हैं और सनातन भारतीय चालोंको छोड़ विदेशी चालोंको अपनाने लगे हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिये

कि मैं विदेशी चालका विरोधी और स्वदेशीका पक्षपाती हूं। किन्तु मेरे कहनेका मतलब यह है कि विदेशी चाल विदेशियोंके लिये रख छोड़िये और स्वदेशी चालको आप अपनाइये, क्योंकि विदेशी चाल आपके लिये महा हानिकर है और उससे दूर रहना बुद्धिमानोंका काम है।

हाथ धोकर खानेमें तो किसीको एतराज नहीं होना चाहिये। पश्चिमीय देशवासी छुरी कांटोंसे खाते हैं, उन्हें खाना हाथसे नहीं छूना पड़ता। इसलिए यदि वह बिना हाथ धोये खायं तो क्षमा किया जा सकता है। किन्तु हमारे वह भारतीय सज्जन जो बिना हाथ धोये हाथसे खाना खाते हैं वह अपनी मृत्युका आप आवाहन करते हैं। क्योंकि हम लोग बराबर अपने हाथसे कुछ न कुछ अवश्य छूते रहते हैं। हाथ कदापि शान्त नहीं रहता, वह बड़ा चंचल है। जो वस्तु हम लोग छूते हैं उनपरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु हमारे हाथोंकी अंगुलियोंमें लगजाते हैं। इनको हम खाली आंखसे नहीं देख सकते। वह बड़े बलशाली (Powerful) अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखे जा सकते हैं। इन जीवाणुओंमें सब प्रकार के जीव रहते हैं, कुछ अच्छे होते हैं और कुछ बुरे ही नहीं किन्तु बड़े विषैले भी होते हैं। जब हम बिना हाथ धोये खाते हैं तब यह जीवाणु हमारे खाये पदार्थोंके साथ मिलकर हमारे पेटमें पहुंच जाते हैं। उनमें जो ख़राब होते हैं, वह वहां पहुंच पड़ा उत्पात् मचाते हैं। पाचनक्रियामें विघ्न डालते हैं, कई प्रकार की बीमारियोंके कारण होते हैं; कभी कभी वह जीवन मरण के विधाता बन बैठते हैं। हाथ धोकर खानेके विषय में कई दलीलें और भी पेश की जा सकती हैं किन्तु मैं इस विषय पर और कुछ कहना नहीं चाहता क्योंकि स्थान कम है और बातें अभी बहुत कहनी हैं।

खानेके पहले पैर धो लेने चाहिएँ। हमारे बहुतसे मित्र कहा करते हैं कि खाते तो हाथसे हैं, फिर पैर क्यों धोएँ। पैरोंमें प्रायः चलते चलते अनेक प्रकार का मल लग जाता है, रसोई या चौकेमें प्रवेश करनेके पहले अतएव यह आवश्यक है कि पैर भी धो लिये जायं। दूसरे वैज्ञानिकोंका मत है कि खाना खानेके समय मन और शरीर शुद्ध और शान्त हों तो अच्छा है, अन्यथा खाना उचित रीतिसे पचता नहीं। हाथ पैर मुंह धोनेसे सुस्ती निकल जाती है, थकावट दूर हो जाती है; मन और शरीर स्वस्थ और शान्त प्रतीत होने लगते हैं; वैद्योंका मत है कि खानेके पहले पैर धोनेसे भूख बढ़ती है; प्यास शान्त होती है; खाना अच्छी तरह खाया जाता है और खाना हजम भी अच्छी तरह और जल्दी हो जाता है। पैर हाथ और मुँह न धोनेसे प्रायः प्यास अधिक लगती है। खाते समय पानी पीना पड़ता है, जो खाना खाने और तदनंतर उसके हजम करनेमें बाधा डालता है। दोपहरको सोनेके बाद या बहुत दूर चलकर आनेके बाद हाथ पैर ठंडे पानीसे धोकर देखा जाय तो उपरोक्त बातोंका अनुभव हो जायगा, प्यास घट जावेगी और थोड़े पानीसे तृप्ति हो जायगी अतएव सिद्ध है कि पैरोंका धोना भी हाथ धोनेसे कम आवश्यक नहीं है।

खानेके पहले और पीछे खूब अच्छी तरहसे मुँह साफ कर लेना चाहिये। जिनसे हो सके वह दतवनसे मुँह साफ करलें तो और अच्छी बात हो।

हवामें बहुत से छोटे छोटे जीवाणु होते हैं। इन जीवाणुओंमें आक्रमण करनेकी बड़ी शक्ति होती है। वह सभी पदार्थोंपर क्रिया करते हैं। यही कीड़े गुड़के रसको सिरका बनाते हैं। दूधको खट्टा करते हैं, ताड़ीमें खमीर उठाते हैं, मरे जानवरोंके शरीरको सड़ाते हैं। किन्तु सब जीवाणु एकसे नहीं होते—कोई कोई भयानक विषैले भी होते हैं। जब हम कोई वस्तु खाते हैं तब उसका कुछ अंश हमारे दांतोंमें लगा रह जाता है। यदि इस द्रव्यके टुकड़ोंको हम दांतके बीच में ही छोड़ दें तो हवाके जीवाणु उनपर आक्रमण करेंगे और कोई

विषैला पदार्थ बना देंगे जो हमारे थूकके साथ पेटमें पहुंचकर हानि पहुंचावेगा। हमारे यहां "तिनका करने" की प्रथा प्रचलित है। तिनकेसे लोग दांतके बीचके स्थानोंको साफ करते हैं और फिर पानीसे अच्छी तरह कुल्ला कर लेते हैं, जिससे अन्नकण हमारे दांतोंके बीचसे दूर हो जाते हैं।

किन्तु इतने ही से यह न समझ लेना चाहिये कि हमारे दांत एकदम साफ हो जाते हैं और अन्नकणोंसे छुट्टी पा जाते हैं। ऐसा कभी हो नहीं सकता। जिसे हम स्वच्छ समझते हैं वह प्रकृतिका सबसे गंदा स्थान है। वह छिपकर देखती रहती है और दांतोंके बीच यदि कोई अन्नकण पड़ा उसे मिला कि वह अपने यमराज सदृश दूतोंको आज्ञा देती है, वह उसपर वार करते हैं और कोई विषैला पदार्थ बनाकर छोड़ते हैं। मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि यह वस्तु थूकके साथ हमारे पेटमें पहुँच सकती है। इसका अधिकांश दांतोंके बीच में ही अटका रह जाता है। इसे खानेके पहले साफ कर लेना चाहिये, तब खाना चाहिये। क्योंकि अन्यथा खानेके साथ पेटमें जाकर हानि पहुँचावेगा। इसी-से विज्ञान मुँह अच्छी तरह धोकर खाना खानेको कहता है। पच्छिमी देशोंमें ९५ प्रतिशत मनुष्यों के दांत खराब होते हैं। इसका कारण केवल यह है कि वह खानेके पहले या पीछे मुँह नहीं धोते। यहां केवल ५ फी सदी ऐसे मनुष्य हैं जिनके दांत खराब हैं, किन्तु हम पश्चिमीय सभ्यताके आगे अपनी पुरानी चालोंको छोड़ते जाते हैं और अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

खाना कैसे चाहिए? हाथसे या छुरी कांटेसे, गत चैत्र मासके 'विद्यार्थीमें' इस विषयका एक लेख निकल चुका है। उसका यहां मैं केवल सारांश देता हूं; जिन्हें अधिक जाननेकी अभिलाषा हो वह उक्त पत्रको देख सकते हैं। (१) ईश्वरने हमें हाथ खानेके लिये दिया है। (२) हाथ तापमापक यन्त्र (Thermometer) का काम करता है। जो वस्तु गर्म रहती है, जिसे हमारी जीभ सह नहीं सकती उसे खानेको मना करता है। (३) अंगुलियोंको जैसा चाहे मोड़ सकते हैं। (४) छुरी कांटोंके व्यवहारसे उनके जीभमें चुभ-जानेका डर रहता है। * (५) कांटे चम्मच हाथके रूपान्तर मात्र हैं। (६) होटलोंमें वह अच्छी तरह साफ नहीं किये जाते। इत्यादि

इस विषयकी चर्चा करते समय हमें एक बात भूल नहीं जानी चाहिये। कितने ही मनुष्योंका कहना है कि हमारी अंगुलियोंके नखोंमें विष होता है। किन्तु यह बात सच्ची नहीं है। नखोंके बड़े होनेसे उनमें जो मैल घुस जाता है वह मैल विषका काम करता है। इससे बचनेका सहज उपाय यही है कि जब नख बढ़ें तो उन्हें तुरन्त काट या कटवा दिया जाय। यदि थोड़ी देरके लिए हम मान भी लें कि हमारे नखोंमें विष होता है तो उनसे दूर करनेका सहज उपाय हमें मालूम है। हमारे प्रान्त (बिहार) में प्रायः सब जगह—और मैं समझता हूं कि और कई प्रन्तोंमें भी—सावनके महीनेमें लोग (ज्यादे तर स्त्रियां) हाथों और नखों पर मेंहदी लगाते हैं। इसके लगानेसे सब विष दूर हो जाता है किन्तु पश्चिमीय शिक्षा दीक्षाने इसका बहिष्कार कर दिया है और जो लोग इसका व्यवहार करते हैं वह असभ्य आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं।†

चौका देकर खाना पकाना और चौके पर बैठकर खाना खाना चाहिये। आप लोगोंने अंधेरे घरमें किसी छिद्र द्वारा सूर्यके प्रकाशको आते देखा होगा। उस प्रकाशके बीचमें धूल-कणोंको उड़ते हुए, ऊपर नीचे जाते हुए या नाचते हुए भी देखा होगा। इन धूल-कणोंपर हवाके जीवाणुओं-का पूरा प्रभाव रहता है।

यदि एक शीशेके बकसमें कुछ हवा भर दी जाय और उसपर रोशनी डाली जाय तो उस प्रकाशमें भी धूल-कण दिखलाई देंगे। किन्तु यदि

* यह बड़ी लचर दलील है।—सं०

† इसमें भी बहुत संदेह है।—सं०

उसी बक्सकी निचली सतह पर ग्लिसरीन पोत दी जाय और उसे चारों तरफसे इस प्रकार बन्द कर दिया जाय कि उसमें हवा नहीं घुस सके तो कुछ घंटों बाद यदि उसपर फिर रोशनी डाली जायगी तो धूलकण नहीं दिखलाई देंगे। इससे जान पड़ता है कि धूल कण ग्लिसरीन पर जा बैठे हैं और हवा इन कणोंसे रहित होगई है। चौका देनेका सिद्धान्त इसीपर अवलम्बित है। चौका देनेसे हवाके सब धूलकण ज़मीन पर बैठ जाते हैं, जिससे खाना पकाने या खानेके समय हमारे खाद्य द्रव्योंके साथ नहीं मिलते। मैं ऊपर कह आया हूं कि यह धूल-कण बड़े हानिकारक होते हैं। इनसे बचना ही हमारा कर्तव्य है। *

मुझे शोक है कि मैं अभीतक अपने उस प्रश्नका उत्तर नहीं दे सका जिसे मैंने खान पानके विषयमें सबसे पहले उठाया था अर्थात् जात-पांतका भेद-भाव रखना चाहिये या नहीं, एक दूसरेके साथ खाना चाहिये या नहीं। प्रकृतिका नियम बड़ा विचित्र है। इसकी चाल हमारी बुद्धिके परे है। इसके गूढ़ रहस्यको समझ लेना टेढी खीर है। मैं जिस होस्टलमें रहता हूं वहां और कई विद्यार्थी रहते हैं। मैं जो वस्तु खाता हूं वही वहभी खाते हैं किन्तु प्राकृतिक अन्याय देखिये। मैं पतला दुबला हूं और मेरे एक मित्र हाथीका मुकाबिला करते हैं। आहार एक प्रकारका होनेसे कुछ नहीं होता, प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृति भिन्न भिन्न है और जिसकी जैसी प्रकृति रहती है उसीके अनुसार उसका शरीर बनता है। रक्त, मांस, मज्जा, वीर्य्य सभी प्रकृतिके अनुयायी हैं। ब्राह्मणकी प्रकृति शूद्रकी प्रकृतिसे भिन्न होती है। फिर सभी ब्राह्मणों-की प्रकृति एकसी नहीं होती। एक एक व्यक्तिकी प्रकृतिमें भिन्नता होती है। यह प्रकृतिका एक सिद्धान्त या नियम है। अमेरिकाके रेलोंके डब्बोंके साथ साथ ऐसे स्थान भी होते हैं जहां एक सुराहीमें पानी और एक शीशेका ग्लास रखा रहता है। वह दोनों वस्तुए जातीय (rational) समझी जाती हैं। इससे उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाता। जब किसी यात्रीको प्यास लगती है वह उस स्थानमें चला जाता है और सुराहीसे ग्लासमें पानी ढालकर पीलेता है। एक बार एक ग्लासकी परीक्षा एक वैज्ञानिक ने की। उसमें कई प्रकारके करोड़ों विषैले जीवाणु निकले। इसका कारण यही था कि एक ही ग्लासमें भिन्न भिन्न व्यक्तियोंने पानी पिया था। उन्हींके थूकमेंसे यह कीटाणु जमा हुएथे। यह एक जानी हुई बात है कि यदि कोई नीरोग मनुष्य किसी कुष्ट रोगीके साथ खायेगा या उसके बरते हुए बर्तनोंको काममें लायेगा तो उसे भी कुष्ट रोग धर दबावे गा। उदाहरणोंसे हमें मालूम होता है कि अपनेसे भिन्न प्रकृति वाले मनुष्यके साथ भोजन नहीं करना चाहिये, किन्तु यह पहचानना मुश्किल है कि किसकी प्रकृति प्रतिकूल है और किसकी अनुकूल। इस कठिनाई को दूर करनेके लिये पुराने पुरुषों ने एक दूसरेके साथ भोजन करनेको मना किया है। अब हम विज्ञानकी सहा-यतासे देखते हैं कि एकवर्ग या एक जातिके मनुष्योंको दूसरे वर्ग या उसी जातिके दूसरे मनुष्यके साथ नहीं खाना चाहिए। मनुष्यका व्यवहृत बर्तन या गमछा आदि भी यथा सम्भव वर्जनीय समझिये। एक थालीमें दो या अधिक मनुष्योंको कभी खाना नहीं चाहिये और न एक ग्लासमें विना धोये मांजे पानी पीना चाहिये।

इस विषयमें अभी बहुत कुछ कहनेको बाकी रह गया; जैसे कपड़ा या जूता पहन कर क्यों नहीं खाना चाहिये, दक्खिन मुंह बैठ कर खाना क्यों मना है इत्यादि। इनके बारेमें मैं समय मिलने पर लिखूंगा। पाठक धैर्य्य धरें और मेरी कही हुई बातों पर ध्यान दें। हमारे पूर्वज ऊंचे दर्जेके वैज्ञानिक थे।

* इस विषयमें "छुआछूत" शीर्षक लेख अप्रेल १९१८ के अंकमें निकल चुका है। सं०

अकबरका सार्वजनिक हितचिन्तन

अकबरके समकालीन महाकवि तुलसीदासने लिखा है कि 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवशि नरक अधिकारी॥' सम्राट्ने भी अपने शासनका ऐसा ही आदर्श रखा था। उसे प्रजाके उपकार साधनमें ईश्वरकी तुष्टिका उपाय देख पड़ता था। अकबरका कहना था कि राजाका दिव्य अंश न्याय और सुशासनमें ही है। हिन्दू राज नीतिका प्राचीन सिद्धान्त था कि जो राजा प्रजाके मंगल साधनका उपाय नहीं करता वह सिंहासनके योग्य नहीं है। इस नीतिसे विचार करनेपर मानना होगा कि अकबर सिंहासनके उपयुक्त ही नहीं था, वरन् उसने सिंहासनको अलङ्कृत किया था। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने सम्राट्के विषयमें इस प्रकार लिखा है—"अकबर जीवनकी निकुञ्जमें प्रजाके मंगल साधन रूपी सुन्दर फूल वृन्त वृन्तमें खिले थे। उनमेंसे सुगन्धि निकलती थी, मधुपकुल मधुर गुंजन करते थे, विहंगगण सुललित स्वरसे दिशायें पूर्ण करते थे। कौन इसकी सुगन्ध, सौन्दर्य्य और माधुर्य्यपर मुग्ध नहीं होगा?" भाषा यहाँपर अलङ्कारिक है पर इसमें अतिशयोक्ति कुछ भी नहीं है। उसने प्रजाके मङ्गल साधनके लिये कोई बात उठा नहीं रखी। उसे पूरी सफलता नहीं हुई, यह ठीक है। परन्तु इसका कारण अन्यत्र ढूंढ़ना चाहिये। सम्राट्ने प्रजाका दारिद्र्य दूर करनेका सङ्कल्प किया था, पर उसे सफलता न हुई। सम्राट् स्वयं कहता है—"मैंने दारिद्र्यके प्रतिविधानके लिये बहुतसे उपाय बहुत से व्यक्तियों द्वारा कराये, किन्तु हाय, उन लोगोंके अर्थ लोभके कारण मेरे महदुद्देश्य सिद्ध न हुए।" सिपहसालारको आदेश था कि वह प्रजाकी सुख समृद्धिका सदा ध्यान रखे। कोतवालको यह आज्ञा दी गई थी कि वह अपने यहांके नागरिकोंसे पारस्परिक सहायता और एक दूसरेके सुख-दुःखमें सहयोगका प्रबन्ध कराले; एवं प्रत्येक नागरिकके आय व्ययपर दृष्टि रखे। बाजारकी दरको ठीक रखनेकी चेष्टा करना और सोने चांदीके सिक्कोंका मूल्य स्थिर रखनेका यत्न करना उसका कर्तव्य था। दीन प्रजाके हितकी ही दृष्टिसे कोतवालको आज्ञा थी कि सेर और गजके मानमें भिन्नता न होने पावे, एवं धनाढ्य लोग आवश्यकतासे अधिक पदार्थ मोल न लेने पावें; क्योंकि इसमें धनहीन प्रजाकी हानि थी। आलसियोंको काममें लगानेका उसे आदेश था। देश और प्रजाकी आर्थिक उन्नति पर सम्राट्का बड़ा ध्यान रहता था। सम्राट्के आमिल गुज़ार ऐसी चेष्टा करते थे जिससे देशमें मूल्यवान् द्रव्य पैदा हों। जो लोग उन कार्योंमें यत्नशील होते थे उनको उत्साहित करनेके लिए राजकरमेंसे कुछ भाग छोड़ दिया जाता था। किसानोंको तकावीके रूपमें सहायता भी दी जाती थी। पड़ती भूमिको कृषि योग्य बनानेका यत्न होता था और ऐसी चेष्टा की जाती थी कि जिससे कृषियोग्य भूमि पड़ती न रहने पावे। यदि कोई किसान किसी बहानेसे अपने सामर्थ्य भर खेती करनेसे हिचकता था तो उसके बहानेको नहीं माना जाता था; प्रत्युत् यही उद्योग होता था कि समर्थ कृषकोंसे अधिकाधिक खेती करायी जाय। कृषिके मार्गमें सुविधा रखनेके लिए सम्राट्ने आमिलोंको आदेश कर दिया था। सम्राट्ने दूरवर्ती तुर्क और फ़ारस देशसे बड़े यत्नसे और बहुत व्यय करके विचक्षण कृषकोंको भारतमें बुलाया था और उनके द्वारा यहाँ अङ्गूर इत्यादि भाँति भाँतिके मधुर फलोंकी खेती करायी थी। पञ्जाबमें आमोंकी वाटिकायें लगवा कर बहुत उन्नति की गयी थी

और भूमिकी उन्नतिके लिए बहुत से जलाशय, नहर और कुएँ बनवाये गये थे। अबुलफ़ज़लने लिखा है, " भारतवर्ष बहुत विस्तृत महादेश है, तो भी सब प्रदेश कर्षित होता है। दो मील पंथ चलनेपर जनपूर्ण नगरी, ऐश्वर्यशाली मुहल्ले, निर्मल जल, आनन्ददायक श्यामल शस्यक्षेत्र और मनोहर सड़कें मुग्ध कर लेती हैं। " इसमें कुछ अतिशयोक्तिका आभास देख पड़ता है, पर तथ्यका अभाव नहीं है। सारांश यह है कि अकबर भारतवर्षमें कृषिकी उन्नतिका बराबर उद्योग करता था। जिस प्रदेशमें विजन बन भूमि थी अथवा जो भूमि बहुत दिनोंसे पड़ती पड़ी हुई थी उसको सम्राट्ने राजकीय व्ययसे एवं कृषकोंको प्रोत्साहित करके कृषि योग्य कर दिया। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इस कार्यमें पूरी सफलता हुई।

उस समय भी प्रजा दरिद्र थी। और इस दरिद्रताका परिणाम यह होता था कि एक बर्ष की ही अनावृष्टिसे प्रजाको अकालका पूरा अनुभव होने लगता था। अकबरके शासन कालमें १५५६, (उत्तरीभारतमें) १५७३-४ (गुजरातमें) १५८३ या १५८४* और १५९५-९८ (हिन्दुस्तान भर में) ईसवीमें अकाल पड़े थे। सन् १६३० के अकाल के विषयमें एक इतिहासकारने लिखा है कि कुत्तेका मांस बकरेके गोश्तके स्थानपर विकता था और विकाऊ आटेमें हड्डियाँ चूर्ण करके छोड़ दी जाती थीं। यह सम्भव है अकबरके समयमें भी ऐसा हुआ हो, क्योंकि १५९५-९६ के अकालके विषयमें तो लिखा है कि आदमी आदमीको खा डालता था। सड़कें भी मुर्दे पड़े रहनेसे बड़ी भयावह हो गई थीं। सम्राट्ने उस अकालमें अकालपीड़ितोंकी सहायताका प्रबन्ध किया और यह काम देश फरीद बुखारी (बादको जिसे मुर्तज़ा खाँ कहने लगे) की अधीनतामें होने लगा। पहलेसे भी सम्राट्ने अन्न कोठारोंका आयोजन किया था। इन अन्न कोठारोंसे बड़ा लाभ होता था। अकालोंमें तो इन अन्न कोठारों द्वारा सैकड़ोंके जीवन बच जाते थे। अकालपीड़ितोंकी सहायता करनेकी इस प्रथाका अनुसरण बादके मुग़ल सम्राट् भी करते थे। शाहजहाँके विषयमें लिखा है कि १६३० में अकालपीड़ितोंकी सहायताके लिए उसने अनेक भोजनालय और सदावर्त स्थापित किये थे, एवं इसके अतिरिक्त प्रति सोमवारको ५००० रुपये बुरहानपुरमें बांटे जाते थे; अहमदाबादमें भी ५००० रुपये बाँटनेकी आज्ञा थी। राजकर भी ७० लाख रुपयों तक छोड़ दिया था। अस्तु मुग़ल सम्राटोंकी नीति अकालमें सहायता देनेकी ओर प्रवृत्त थी। सम्राट् अकबरके विषयमें लिखा है कि उसने भोजन बाँटनेका अच्छा प्रबन्ध किया, पर अकालकी कठोरताको अच्छी तरह दूर न कर सका। श्रीयुत चार्ल्स मैकमिनने अपनी पुस्तकमें (Famine truths, Half truths, and untruths) अंग्रेजोंसे पहिलेके समयको भीषण सिद्ध करनेकी चेष्टा की है, किन्तु वह पुस्तक स्वयं भीषणताके दोषसे पूर्ण है और उसके प्रत्येक पृष्ठसे यही टपकता है कि ग्रन्थकारने पुस्तककी रचना पक्षपात की दृष्टिसे की है। उन्होंने श्रीयुत दत्त महाशय की उपरोक्त बातोंका अपूर्ण और एक-पाक्षिक प्रमाणोंके आधारपर खण्डन करनेका प्रयत्न किया है। किन्तु दत्त महाशयकी बातें पूर्णतया सत्य मालूम होती हैं। श्रीयुक्त दत्तने लिखा है कि अंग्रेजोंके पहले अकालोंकी न तो इतनी अधिकता ही थी और न कठोरता ही। दत्त महाशयका यह कहना बिलकुल ठीक है कि मुग़ल सम्राटोंने कृषिको फलवती बनाया। इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। सारांश यह है कि सम्राट् अकबर और उसके कुछ वंशजोंका भी ध्यान कृषिकी उन्नति और प्रजाकी सहायता एवं रक्षाकी ओर विशेष था। दुर्भिक्षोंके समयमें चारों ओर बहुत से कर्मचारी और धन भेजकर प्रजाकी

* १५८३ या १५८४ का अकाल कड़ा नहीं था। केवल मंहगी पड़ी थी। † १६३० के विषयमें भी यही बात लिखा है।

सहायता की जाती थी। राजकरमेंसे भी बहुत सा छोड़ दिया जाता था। एवं खेतीके जलप्लावित होनेपर किसानोंको उस वर्षका कर छोड़कर और और वर्षोंमें धीरे धीरे उसको वसूल करते थे। सम्राट्ने अनेक स्थानोंपर दरिद्राश्रम स्थापित किये थे, जहां दीन दुखियों को अन्न * मिलता था। सम्राट् जब दरबारमें बैठता था अथवा राजपथपर निकलता था उस समय दरिद्र मनुष्योंमें धन वितरण किया जाता था। एवं फतहपुर सीकरीकी अर्थ पोखरी (अनूप तालाब) से बिना किसी भेदके रुपये बंटते थे। सम्राट्का शरीर, सौर-जन्म दिवस (अबनका पहिला दिन) एवं रजबकी पाँचवीं तारीखको, विविध बहुमूल्य रत्नों और पदार्थोंके साथ तोला जाता था (ग्लैड्विन पृष्ठ १८५-६)। अबुल फज़लने लिखा है कि दीन प्रजाको लाभ पहुंचानेका यह एक मार्ग था, क्योंकि यह सब रत्न और पदार्थ बाँट दिये जाते थे, एवं 'साल गिरह' की इस धममें बहुत से पशु पक्षियोंका भी दान किया जाता था और बहुतसे पशु पक्षियोंको सदाके लिए मुक्त कर दिया जाता था। तुला दानकी यह प्रथा मुग़लोंके लिए मौलिक न थी। हिन्दुओंमें भी बल्लाल सेनके 'दानसागर' और चन्द्रशेखरके 'विवाद रत्नाकर'में तुलादानका उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार कृषिकी उन्नति; अकाल पीड़ितोंकी सहायता और दीनप्रजाका दुःख निवारण सदा अकबरके ध्यानमें रहता था। उसने रोगियोंकी चिकित्साका भी कुछ प्रबन्ध किया था, पर इस विषयमें किसी विस्तृत आयोजनका पता नहीं चलता। वह कभी कभी अपने कर्मचारियोंकी मरहम पट्टी अपने हाथोंसे करता था। युद्धमें आहत और बन्दी किये हुए विद्रोहियोंकी × चिकित्सा करानेका उसने प्रबन्ध किया था। सम्राट्ने शिक्षापर भी ध्यान रखा था, किन्तु राज्यकी ओरसे प्रजाकी शिक्षाकी कोई विशेष योजना नहीं थी। आईनमें अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि हिन्दुस्तानमें शिक्षालयोंकी विशेषता है। शिक्षा पद्धतिमें सम्राट्ने कुछ सुधार भी किया। सम्राट्के चलाये हुए नियमोंसे विद्यालयोंपर "नया प्रकाश" और मदरसोंपर "चमकीली ज्योति" का विकास हुआ। आरम्भिक शिक्षामें वर्णमाला और संयुक्ताक्षर सीखना और नीतिके वाक्योंका अध्ययन करना सम्मिलित था। अध्यापकको नित्य प्रति बालकोंके अक्षर ज्ञान, शब्दार्थ, पद्यशिक्षा और उद्धरणपर विशेष ध्यान देनेका नियम था। आरम्भिक शिक्षाके अतिरिक्त बालकोंको नीति, अङ्कगणित, कृषि, मान-विद्या, ज्यामिति, ज्योतिष, वैद्यक, अर्थशास्त्र,*शासनकला, तर्क विद्या, इतिहास एवं ताबियाई रियाज़ी और इलाहीके अध्यापनका विधान था। इन विद्याओंको क्रम क्रमसे पढ़नेका नियम था। संस्कृत विद्यार्थियोंको व्याकरण, न्याय और पातञ्जल पढ़ना होता था। सम्राट्के शिक्षा विषयक सुधार भी बदाऊनीको अच्छे नहीं लगे। उसने लिखा है कि "सम्राट्के समयमें अरबी भाषाका अनुशीलन तथा मुहम्मदीआईन, आचार पद्धति और कुरानका पाठ दोषावह एवं दर्शन, चिकित्सा, गणित, काव्य, उपन्यास और ज्योतिष पढ़ना अत्यावश्यक समझा जाता था।" बदाऊनीके असंतोषका कारण यही था कि उसके संकुचित हृदयमें सम्राट्के उदार विचारोंको सहन करनेकी समर्थ नहीं थी! स्त्री शिक्षापर भी सम्राट्का कुछ ध्यान था। हरमके आय व्ययका हिसाब अवला कर्मचारिणी रखती थीं। स्मिथ साहबको† तत्कालीन शिक्षोन्नतिमें

* फतहपुर सीकरीमें हिन्दूओंके लिये 'धर्म्मपुर', मुसलमानोंके लिये 'खैरपुर' और हिन्दू योगियोंके लिये 'योगीपुर' नामक आश्रम खुले थे, जिनमें सैकड़ों मनुष्य प्रतिदिन आते और राज्यके व्ययसे आहार पाते थ।

× श्री बंकिमचन्द्र लाहिड़ीका 'सम्राट् अकबर'।

* इसे आधुनिक अर्थ शास्त्रसे भिन्न समझना चाहिये।

† सम्राट्के समयमें ही उर्दू भाषाका जन्म हुआ। राजा टोडरमल उर्दूके जन्म दाता कहे जाते हैं।

बहुत कुछ शङ्का है, लेकिन अबुलफ़ज़ल और बदाऊनीके वाक्योंके सामने स्मिथकी काल्पनिक शङ्का नितान्त निरर्थक है।

अकबरने शिल्पकी अच्छी उन्नति की थी। किन्तु जहाँतक पता चलता है दरबारके प्रयोजनमें आनेवाले पदार्थोंपर ही विशेष ध्यान दिया जाता था। दरी बनानेके लिए कई स्थानोंपर शिल्पशालाएँ थीं। सम्राट्ने फ़ारस, मंगोलिया और यूरोपसे उनके बनानेके उपकरण भी मंगाये थे। सरकारी शिल्पशालाओंमें ऐसी सुन्दर दरियाँ, तोपें और बन्दूकें बनती थीं, जिन्हें देखकर यत्रियोंको विस्मय होता था। आगरा और फतहपुरसीकरीमें बहुत बढ़िया कालीन इत्यादि बनते थे। पटना (गुजरात), बुरहानपुर (खानदेश) और बनारसमें सूती कपड़े बनते थे; एवं ढाका जिलेमें सोनार गांवके सूती वस्त्र सर्वोत्तम होते थे। सम्राट् काशमीरमें दुशाले बनानेके कार्य्यको विशेष रूपसे प्रोत्साहित करते थे। लाहौरमें भी काशमीरी दुशालोंकी एक सहस्रसे अधिक* शिल्पशालाएँ थीं। वहां एक विशेष प्रकारका दुशाला बनता था जिसमें रेशम और ऊन दोनों मिले रहते थे। सम्राट्ने भारतमें रेशम और पशमीनेके वस्त्र बनानेके कामको भी बहुत उन्नतिको पहुंचाया था। मुगल दरबारके ही कारण सैकड़ों कारीगरोंकी जीविका चलती थी। यथासाध्य शिल्पकलाको प्रोत्साहित करनेका यत्न किया जाता था। साधारण घरेलू कारीगरियां तो सदाकी भांति उस समय भी प्रचलित थीं। व्यापार और वाणिज्यकी उन्नतिमें भी सम्राट् सयत्न रहता था।

सन् १५८५ ईस्वीमें जब 'फिच' (Fitch) नामक सौदागर हींग, अफ़ीम, सीसा, कालीन, एवं विविध पदार्थोंसे लदी हुई १८० नौकाओंके साथ आगरेसे सात गांवको नदीके मार्गसे जा रहा था तो उसने मार्गमें इस देशकी कारीगरी और वाणिज्यको देखा था। पटनामें रूई, सूती कपड़ा चीनी और अफ़ीम इत्यादि तथा बंगालके टांडा नगरमें सूती कपड़ोंका व्यापार अच्छा था। इसी प्रकार "टेरी" ने देखा कि 'मुग़ल सम्राज्यमें विविध प्रकारकी सन्दूकें, क़लमदान क़ालीन एवं अन्य अनेक प्रकारके पदार्थ मिलते थे।' अकबरने विदेशी वणिकोंको भारतमें × आनेको उत्साहित किया था। वह उनके साथ बहुत सौजन्य प्रदर्शित करके अत्यधिक मूल्य देकर वस्तु खरीदता था। उसका कहना था कि "यदि ऐसा न करें तो यह लोग भारतमें न आवेंगे और भारतियोंको उन वस्तुओंके प्रस्तुत करनेके उपाय सीखनेका भी अवसर न मिलेगा।" व्यापारपर कर और चुंगियां भी अधिक न थीं। परन्तु तत्कालीन अर्थ शास्त्रके सिद्धान्तानुसार बाहर चांदी ले जानेका निषेध था। राजकर के साथ आईनकारने गुजरातके बन्दर † करका भी उल्लेख किया है। सम्राट् हर तरहसे वाणिज्यकी वृद्धिका उपाय करता था। लोगोंका कहना है कि वह स्वयं व्यापार करता था। इस देशसे नील और सूती ऊन बहुत बाहर जाता था। चीनसे चीना और वेनिससे शीशा भी यहां बहुत आता था। यूरोप, अफ्रीका, फ़ारस, अरब, चीन, जापान और भारत महासागरके द्वीपपुञ्जसे व्यापार होता था। भारतवासी भी दूरदेशोंमें जाकर वाणिज्य करते थे। इस प्रकार प्रजाके दुःख निवारणके साथ साथ कृषि, शिक्षा, शिल्प, और वाणिज्यपर भी सम्राट्का ध्यान था।

सम्राट्ने कला कौशलको बहुत उत्साहित किया, एवं निर्माणके कार्य्योंमें उसने उन्नति भी अच्छी की। फतहपुरसीकरी इत्यादिके दिव्य भवनों और भिन्न भिन्न स्थानोंके अकबरी दुर्गों एवं अन्य इमारतोंके विशेष वर्णनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। सम्राट्ने कितनी ही नगरियोंका निर्माण कराया, कितने ही राजपथ बनवाये और कितनी ही पथशालाओंकी प्रतिष्ठा हुई। अनेक

* सम्राट्ने चित्र शिल्पकी भी अच्छी उन्नति की थी। इसका विवरण आगे दिया जायगा।

× जहांगीरने भी। † समुद्रका घाट

नहरें और जलाशय उसने खुदवाये, एवं अनेक प्रासादों, अट्टालिकाओं उद्यानों एवं अन्य इमारतों से सामराज्य को अलङ्कृत किया। इन सबके अतिरिक्त 'डाक'पर भी उसका ध्यान था। उसने देशभरमें डाकका प्रबन्ध किया। पांच पांच कोसपर दो घोड़े और हरकारे नियुक्त किये जिसे हिन्दीमें "डाक चौकी" कहते थे। इनसे दरबारसे लेजाने एवं बाहरसे डाक ले आनेका काम लिया जाता था। हरकारे २४ घन्टेमें ५० कोस दौड़ जाते थे एवं आगरेसे अहमदाबादको ५ दिनमें चिट्ठी पहुँचती थी (ब्रिग्सका कहना है कि यह वेग आधुनिक तेज़ी से भी अधिक है)। विशेष समाचारोंको शीघ्र पहुँचानेके निमित्त घोड़ोंका उपयोग होता था। फ़रिश्ता कहता है कि चार सहस्र हरकारे सदा नियुक्त रहते थे जिनमेंसे कुछ तो विशेष विशेष अवसरोंपर (जहां डाक नहीं थी) ७०० कोस दस दिनमें पहुँचते थे और ब्रिग्स कहता है कि घोड़ों द्वारा एक हज़ार चार सौ (१४००) मील दस (१०) दिनमें जाते थे। लेकिन इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता कि इस डाकका प्रयोग प्रजाके द्वारा भी कभी किया जाता था। जहांतक मालूम होता है इस डाक चौकीका प्रयोग सदा सरकारके ही कामोंके लिए होता था। अब अन्तमें केवल यही प्रकट करना है कि सम्राट्का ध्यान "सार्व्वजनिक हित चिन्तन" की ओर अधिक था। सम्भव है आजकलकी दृष्टिसे उस समयके सार्व्वजनिक कार्य्योंमें कुछ त्रुटियां (और कुछ बातोंमें अत्यधिक जैसे उस समय यात्राके उपकरण एवं डाक इत्यादिका प्रबन्ध प्रजाके लिए विशेष न था) रही हों, किन्तु इतना तो अवश्य है कि कुछ आवश्यक बातोंमें भारत तीन शताब्दी पहले अत्युत्तम स्थितिमें था, एवं सम्राट् अकबरका ध्यान प्रजाकी भलाईमें सदा निरत था।

खाद्यकी उपयोगिता

हम लोगोंको खाद्यकी आवश्यकता क्यों होती है, इसपर विचार करना चाहिये। उपवास करनेवालोंको विदित होगा कि उपवाससे शरीर कैसा निर्बल हो जाता है। कार्य्य करनेकी शक्ति जाती रहती है। बहुत दिनों तक यदि उपवास किया जाय तो शरीरमें हड्डियोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। दुर्भिक्षके समय भूखे मनुष्योंकी क्या दशा होती है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। आहाराभावके कारण शरीर सूख जाते हैं और उनके शरीरमें केवल हड्डियां ही दिखाई पड़ती हैं। परन्तु यदि उन्हें भोजन मिलने लगे तो फिर उनकी दशा क्या होती है? उनका शरीर सबल और हृष्टपुष्ट हो जाता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आहारपर ही शरीरकी निर्बलता और सबलता निर्भर है। अतएव आहारसे दो काम होते हैं, (१) शरीरकी पुष्टि और (२) शक्तिकी वृद्धि।

हम लोग यदि कोई काम न करें तो भी शरीर छीजता रहता है। चलने फिरने, दौड़ने और व्यायामादिके करते समय शरीरके मांसका विस्तार और संकुचन होता है, जिससे क्षति होती है। पाठाभ्यास और चिन्तादि मानसिक कार्य्योंसे भी मस्तिष्कादि शारीरिक यन्त्रोंकी क्षति होती है। यदि किसी मनुष्यको तोला जाय और उसके पश्चात् उसे किसी कठिन परिश्रमका काम करनेको कहा जाय तो काम समाप्त होनेके पश्चात् उसे तोलनेसे मालूम होगा कि पहलेकी अपेक्षा इस बार उसका बोझ कम हो गया है। इस प्रकार बोझ या भारके कम हो जानेका क्या कारण है? हम लोगोंके शरीरके भीतर सर्वदा एक प्रकारकी दहन क्रिया होती रहती है और इसीसे शरीरकी क्षति होती है। जिस प्रकार किसी लकड़ीके भस्म हो जानेसे इसकी तोल कम हो जाती है उसी

भांति इस दहन क्रियाके द्वारा हम लोगोंके शरीरकी क्षति होती है और उसकी तोलमें कमी होती है। जैसे जैसे अधिक परिश्रम के कार्य्य किये जाते हैं तैसे तैसे शरीरके भीतर दहन क्रिया भी बढ़ती है। इस लिए अधिक परिश्रम करनेसे शरीरकी अधिक क्षति होती है। इतना ही नहीं यदि कोई काम मेहनतका न भी किया जाय तो भी शरीरकी क्षति होती रहती है। इसका कारण यह है कि हम लोगोंके शरीरके अनेक कार्य्य हम लोगोंकी इच्छापर निर्भर नहीं हैं। यदि हम लोग प्रतिज्ञा करके चुपचाप सो जायं तो भी हमलोगों के शारीरिक यन्त्रादि (हृतपिण्ड इत्यादि) धीरे धीरे कार्य्य सम्पादन करते हैं। इससे क्षति होती है। यहां पर ऐसा प्रश्न हो सकता है कि शरीरके दग्ध होनेका प्रमाण क्या है? दो एक साधारण परीक्षाओं से 'शरीरके दग्ध' होनेकी सत्यता सिद्ध हो सकती है।

इसका प्रमाण यह है। लकड़ी और कोयला जलनेसे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं,हमलोगोंके शरीरके भीतर "दहन क्रिया" सम्पादित होनेसे उन्हीं पदार्थों की उत्पत्ति होती है। तब दोनोंमें विभेद यही है कि लकड़ी और कोयलेके जलनेसे गरमी और प्रकाश होते हैं और हम लोगोंके शरीरकी दहन क्रियासे केवल ताप ही होता है, प्रकाश नहीं होता। इस प्रकारकी दहन क्रिया को मृदु दहनक्रिया (Slow combustion) कहते हैं।

लकड़ी, पत्थर कोयला, तेल, मोम या चर्बी की बत्ती, जीव-देह इत्यादि प्रत्येक आरगेनिक (Organic) पदार्थ में कर्बन और उज्जन है। इन सब पदार्थों के दग्ध होनेके समय यह दोनों मूल वस्तु वायुके ओषजन के साथ मिलकर यथाक्रम कार्बोनिक एसिड गैस और जलवाष्प तैयार करते हैं। कारबोनिक एसिड गैस अदृश्य और वर्णहीन है, इसलिये आंखोंके द्वारा नहीं देखे जाने पर भी उसके अस्तित्व को एक रासायनिक परीक्षा द्वारा हम लोग साबित कर सकते हैं। निर्मल जलके समान स्वच्छ और वर्ण हीन चूनेका पानी यदि कार्बोनिक एसिड गैसके साथ मिला दिया जाता है तो दूधके समान उज्वल हो जाता है।

प्रथम परीक्षा—परीक्षाके लिये एक आयताकार मुखवाली बोतलमें एक औंस चूनाका जल रख बोतलको भली भांति हिलाओ। चूनेके जलमें विशेष कोई परिवर्तन नहीं होगा, पहले जिस प्रकार स्वच्छ था उसी प्रकार स्वच्छ रहेगा। एक छोटी मोमबत्तीको जलाकर बोतलमें डालदो और बोतलके मुख को एक कागज़के टुकड़ेसे ढक दो। थोड़े ही समयके पश्चात् देखोगे कि बत्ती बुझ गयी है। अब बत्ती हटाकर बोतलके मुंह को बन्द कर दो और फिर उसे अच्छी तरहसे हिला दो। तब देखोगे कि चूनेका जल दूधकी भांति उज्वल होगया है।

चूनेके जलके दूधकी तरह उज्वल होनेका क्या कारण है? बत्तीके जलते समय उसका कर्बन बोतलकी वायुकी ओषजनके साथ मिलकर कर्बन द्वि-ओषिद गैसमें परिणत होगया है और इसीने चूनेके जलके साथ मिलकर चूनेके पानीको ऐसा करदिया है।

बत्ती जलते समय उसमेंकी उज्जन ओषजनके साथ मिलकर जल वाष्प बनाती है। किन्तु जल वाष्प जबतक जल बिन्दुका आकार धारण नहीं करती तब तक हम लोग उसे देख नहीं सकते। बत्तीके जलने से जो जल उत्पन्न होता है उसको हम लोग एक साधारण परीक्षा द्वारा प्रमाणित कर सकते हैं।

द्वितीय परीक्षा—एक जलती हुई मोम बत्तीके ऊपर एक शुष्क और स्वच्छ कांचका ग्लास रखो। अल्प समय पश्चात् ही वह अस्वच्छ दिखाई देगा। उसी समय ग्लासके भीतरी भागको अंगुली द्वारा स्पर्श करनेसे मालूम होगा कि सूक्ष्म जलकण जम गये हैं।

अब हम लोगोंने देख लिया कि कर्बन और उज्जन युक्त मोम बत्ती वायुमें जलनेसे कर्बन

द्विओषिद् गैस और जल उत्पन्न करती है। मोमबत्ती, लकड़ी आदि पदार्थोंके सदृश कर्बन और उज्जन हम लोगोंके शरीरसे भी उत्पन्न होता है। इन्हीं दोनों पदार्थोंको ओषजन से संयोग होते रहनेसे हम लोगोंके शरीरमें दग्धक्रिया सर्वदा हुआ करती है। इस दग्ध क्रियासे कर्बन द्विओषिद् और जल उत्पन्न होते हैं, जो हमलोगोंकी सांसके साथ बाहर निकलते हैं, किन्तु वर्णहीन और अदृश्य होनेके कारण हम लोगोंको दीखते नहीं।

अतएव हमलोगोंके शरीरमें जो निरन्तर दग्धक्रिया हुआ करती है इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। यदि यह पूछा जाय कि मोमबत्ती जिस प्रकार जलती है उस प्रकार हम लोगोंका शरीर नहीं जलता है, इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि हम लोगोंके शरीरकी दहनक्रिया बहुत धीरे धीरे होती है, इस कारण उससे केवल ताप ही पैदाहोता है, प्रकाश नहीं। जीवित प्राणियोंके शरीर स्पर्श करनेसे गरमी मालूम होती है परन्तु मरे प्राणियोंके शरीर शीतल होते हैं। इसका कारण यही है कि मृत देहमें श्वास क्रिया नहीं होती; ओषजन शरीरमें प्रवेश नहीं करने पाती; इससे दहन क्रिया नहीं होती, और ताप उत्पन्न नहीं होता, शरीर Let शीतल रहता है। इस दहन क्रियासे उत्पन्न हुए ताप द्वारा शरीरका तापक्रम साधारणतः ६८.४ डिग्री रहता है। तापमापक (Thermometer) द्वारा हम लोग इस उष्णताको नाप सकते हैं। ज्वर होनेपर शारीरिक दहन क्रिया तेज हो जाती है, इस लिये शरीरका तापक्रम ६८.४ फा०से अधिक पाया जाता है।

मैंने पहले ही कहा है कि कर्बनयुत पदार्थके दहनसे क्षति होती है, इसलिये तोल कम होती है। हम लोगोंका शरीर भी उपरोक्त मृदु दहन क्रिया द्वारा निरन्तर क्षय होता है और इससे तोलमें कमी होती है। किन्तु यदि हम लोग प्रति दिन अपनेको तोलें तब हम लोग देखेंगे कि अनेक दिन तक हम लोगोंकी तोल एकही रहती है, अथवा बहुत धीरे धीरे घटती है। जबतक किसी प्रकारका रोग नहीं होता है घटनेका कोई चिन्ह नहीं पाया जाता है। इस प्रकार कम होनेका क्या कारण है?

पहलेही कहा जा चुका है कि हम लोग कोई परिश्रमका काम करें या न करें शरीर अवश्य छीजता है। इसी छीजनेके यथोचित प्रबन्ध नहीं होनेसे शरीर धीरे धीरे निर्बल होने लगता है और एक दिन मृत्यु हो जाती है। हम लोगोंको देखना चाहिये कि इस क्षति पूर्णके क्या उपाय हैं। जिस प्रकार कलों के लिये कोयलेकी जरूरत होती है और कोयला जब भस्म हो जाता है तब फिर कोयलेकी आवश्यकता होती है, नहीं तो, कल बन्द हो जाती है; उसी प्रकार हम लोगोंके शरीरके यन्त्रोंके संचालनके लिये खाद्यकी आवश्यकता होती है। खाद्य परिपक्क होनेपर शरीरके सब स्थानोंमें जहां आवश्यकता होती है शोणित द्वारा पहुंचता है। इस प्रकार शरीरकी क्षतिपूर्ति और पुष्टिसाधन होता है। पत्थर कोयलेमें जो (स्थान संभूत) अव्यक्त (Potential inergy) है, दग्ध होनेके समय प्रथम तापमें और बादमें कल आदि चलानेमें काम आती है। हम लोगोंके खाद्यमें भी अव्यक्त शक्ति अधिक परिमाणसे रहती है। खाद्यके अक्सिजनके साथ दग्ध होनेके समय हम लोगोंके शरीरके लिये गर्मी और कार्य्य करनेके लिये शक्तिका संचालन होता है। इस लिये खाद्य-ग्रहण ही एकमात्र शारीरिक क्षय निवारक और शक्ति संचालक है।

जिस प्रकार शरीरकी क्षति होती है उसी प्रकार उसकी पूर्ति के भी उपाय हैं। एक छोटा बच्चा प्रति दिन बढ़ते बढ़ते किसी समय एक हृष्टपुष्ट मनुष्य होजाता है। दोनोंके शरीर संगठन समान होने पर भी विकाशके सम्बन्धमें दोनोंमें यथेष्ट भेद देखा जाता है। दोनोंके शरीरकी दीर्घता और भार का विचार करनेसे मालूम होगा कि बच्चेके शरीरकी किस परिमाणसे वृद्धि हुई है और पुनः किस प्रकार पूर्णदेह मनुष्यमें परिणत

हुआ है। शारीरिक दीर्घताके परिमाणमें सब अङ्ग प्रत्यङ्ग का यथोचित विकाश होता है। जन्मसे २८ या ३० वर्ष तक वृद्धिका समय है और उसके बाद शरीरकी वृद्धि नहीं होती। बहुत दिनों तक एक ही प्रकार रहता है और वृद्धावस्थामें शरीरका क्षय आरम्भ होता है। अत एव खाद्य जो शरीरकी क्षीणता को निवारण करता है, वही २८ या ३० वर्ष तक शरीरकी वृद्धिमें सहायता करता है। शिशु-को बालकमें, बालकको युवकमें, एवं युवकको पूर्ण मनुष्यमें परिणत करता है। शिशु, बालक, और युवक, सबको यथेष्ट परिमाणमें खाद्य की आवश्यकता है। यथेष्ट परिमाणमें खाद्य नहीं मिलने के कारण उनके शरीरका पूर्णतः विकाश नहीं होता है। परन्तु यथेष्ट खाद्यका अर्थ अपरिमित भोजन नहीं है।

अब देखा जाता है कि विशेषतः खाद्यकी प्रयोजनीयता निम्न लिखित चार कारणों से है—

(१) शारीरिक क्षय निवारण
(२) देहकी वृद्धि
(३) तापकी उत्पत्ति
(४) शक्तिकी उत्पति

ऐसा सम्भव नहीं कि सब खाद्य यही चार कार्य्य सम्पादन करें। भिन्न भिन्न खाद्य उन चार विषयोंके लिये आवश्यक हैं। एकही खाद्य उन चारों विषयोंके लिये उपयोगी नहीं है।*

—गयाप्रसाद

कृत्रिम काष्ठ

[ले० पं० गंगा शंकर पचौली]

जिस प्रकार कृत्रिम हाथीदांत, आबनूस तथा चमड़ा बनाया जाता है उसी प्रकार, छोटी छोटी और हलकी वस्तुओंके बनाने तथा काष्ठकी वस्तुओं पर नाना प्रकारके जाली फूल बूंटे आदिके काम करनेके लिए कृत्रिम काष्ठ भी बनाया जाता है। परन्तु इतना अवश्य है कि कृत्रिम हाथीदांत और चमड़ेमें असली चमड़ा नहीं होता, वरन् और और ही पदार्थोंके योगसे काम लेते हैं, परन्तु कृत्रिम लकड़ी बनानेमें और पदार्थों को छोड़ केवल काष्ठके बुरादे छीलन तथा वनस्पतिसे उत्पन्न पदार्थ ही काममें लाये जाते हैं।

लकड़ीका बुरादा जो लकड़ी चीरनेमें बनता है वह तथा नारियलके छिलकोंको कूट पीसकर बनाया हुआ चूर्ण और इसी प्रकार सुपारी तथा बादामके छिलकोंका चूर्ण और कहवेका फोक तथा नाजकी भुसी आदि कृत्रिम काष्ठके बनानेमें काम आते हैं। इनमें अन्तिम दोनों पदार्थोंका चूर्ण बहुत हलके तथा नाजुक कामके योग्य होता है। अत्यन्त महीन चूर्ण वा चूरा अच्छा होता है। यदि उसको चिम्मड़ बनाना होता है तो काष्ठके बहुत छोटे और महीन तन्तु और मिला देते हैं। इन वस्तुओंको इस प्रकार बनाते हैं। सीधे रेशे (तन्तु) वाली लकड़ी जैसे 'डील' 'पाइन' को लेकर तन्तुओंकी लम्बाईमें आध इंच मोटे टुकड़े कर लेते हैं। फिर उनके दियासलाई की लकड़ीके अनुमानके टुकड़े करते हैं और जलमें उनको मुलायम होने तक भिगा रखते हैं। जब वह मुलायम हो जाते हैं, तो उनको खरलमें कूट कर महीन तन्तु बना लेते हैं। जब वह बालोंके समान महीन और छोटे छोटे हो जाते हैं तब उन को जैसे चूनेमें बालों को मिलाकर काममें लाते हैं उसी प्रकार इन काष्ठ तन्तुओंको भी काष्ठ चूर्णमें मिला कर काममें लाते हैं। ऐसा करनेसे काष्ठके चूर्णमें पकड़ अच्छी हो जाती है, जिससे सूखनेपर कृत्रिम काष्ठ फुसफुसा नहीं रहता। तन्तुमिश्रित काष्ठका चूर्ण बहुत महीन कामके योग्य तो नहीं होता, पर बड़े बड़े काम बनानेमें तो अवश्य उपयोगी होता है।

कृत्रिम काष्ठ बनानेमें दो ही पदार्थ काम आते हैं। किसी काष्ठका चूर्ण और दूसरा उस चूर्णको बांधने के लिए सरेस तथा गोंद आदि चिपकनी वस्तु।

* श्रीयुत चुन्नीलाल बोस के 'खाद्य' पुस्तकसे अनुदित। ले.

'पाइन' (सनोवर), 'डील' (——) आदि लकड़ी का बुरादा अर्थात् रेती वा आरीसे उत्पन्न हुआ चूर्ण, कहवा का फोक बात लछट भली प्रकार सुखाकर महीन पिसी हुई, और बादाम का और गोले का छिलका महीन पिसा हुआ और इसी तरह की कठोर छिलकेवाली वस्तुओं का छिलका तथा मटर आदि फलियोंमें लगनेवाले फलों की फली सूखी हुई, कृत्रिम लकड़ी बनानेके काम आती हैं। सुपारी का चूर्ण इतना सुगमता से और अच्छी रीतिसे बांधनेमें नहीं आता जैसा कि लकड़ीका बुरादा आता है। मटर आदिकी सूखी फलियोंको उबालकर बेलनसे दाबनेसे चिम्मड़ कागज़ बनानेके लिये सतह सी हो जाती है और वह फिर किसी बुनावटवाली वस्तुका अच्छा बदल हो सकती है।

काष्ठके चूर्ण को छाननेके लिए चलनियों की आवश्यकता होती है। यह चलनियां कई प्रकार की होनी चाहिये, जिनमें महीनसे महीन चूर्ण और मोटा चूर्ण भी छाना जा सके। बाज़ारमें बहुत सी चलनियां महीनसे महीन छिद्रवाली बिकती हैं उनसे काम लिया जा सकता है। परन्तु जिनको अपने आप चलनी बनाने की इच्छा हो इस सुगम रीति को काममें ला सकते हैं।

एक लकड़ी का घेरा उतना बड़ा लो जितनी बड़ी चलनी बनानी हो और एक गोल टुकड़ा महीन किरमिच का घेरेसे दुगने वा ढ़ाई गुने व्यासका लेकर उस घेरेके एक ओर छोटे छोटे परेगोंसे जड़ दो, जैसा कि चित्र ६२में दिखायाहै, इस प्रकार काष्ठके चूर्णको
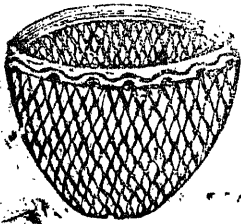
चित्र ६२

छाननेके लिए उपयोगी चलनियां बनजाती हैं। जैसे सूत वा बुनाई की कनवास वा जाली होगी उसीके अनुसार चलनी महीन वा मोटे चूर्ण छाननेके काममें आवेगी।

काष्ठचूर्ण को पीसने वा रगड़नेके लिए खरल तथा ओखलीसे काम लिया जा सकता है। सिवाय इनके यदि कोई कहवा पीसने की घिसी-मिड़ी (?) चक्की कबाड़ी की दुकानसे मिलजाय तो उसमें भी मोटाचूर्ण पीसकर महीन हो सकता है।

सरेस

बाज़ारमें दो प्रकार की सरेस मिलती है। एकतो टिकियों की सूरतमें बिकती है और दूसरी चूर्ण की हुई होती है। इन दोनों प्रकारके सरेसोंको निम्न लिखित रीतिसे काममें लाने लायक बनाते हैं।

१—टिकियाकी सरेस को दो तीन परत कागजमें लपेट कर खरलमें उसके छोटे छोटे टुकड़े करे और एक ठंडे पानीके बर्तनमें छोड़ कर कुछ घंटों तक रख छोड़े, जिससे वह पानी सोख-कर फूल जाय। अब इस पात्रमें इतना पानी भरे कि उसके ऊपर तक आजावे और इस पात्र को एक दूसरे बड़े पात्रमें जिसमें जल भरा हो रखे और अग्नि पर रखकर बड़े पात्रके पानी को खौलने तक गरम करे। छोटे पात्रमें के सरेस को लकड़ीसे हिलाता रहे। जब सब गलकर एक रस हो जाय तो उतार कर रखले।

२—सरेसके चूर्ण को एक पात्रमें रखे और फिर उसमें खौलते हुए पानी को एक सी धार छोड़ता रहे और चमचे वा लकड़ीसे हिलाता रहे। वह गलती जायगी। प्रथम तो वह करछुली वा लकड़ी में चिपट जायगी, परन्तु खौलते पानी को छोड़ने से वह शीरेकी नाईं एक सी हो जायगी। उस समय सरेसका पात्र गरम जलके पात्रमें रखने-से एक सी गरमी पाकर सरेस एक रस हो जाती है।

इस प्रकार बनाई हुई सरेस उपयोगमें आने योग्य होती है, परन्तु इस बातका ध्यान अवश्य रहे कि जब सरेस का काम पड़े, उसी समय सरेसको बनावे।

सूखे काष्ठ चूर्णकी सरेस शोषक शक्ति जानना

प्रत्येक प्रकारके काष्ठके तथा छिलके आदिके चूर्णके बांधनेके लिए सरेसके जलका परिमाण जुदा जुदा होता है। इसलिए यह बात जानना अत्यावश्यक है कि जुदी जुदी जातिके चूर्ण को कितना सरेसजल मिलानेसे उस की लुगदी का परिमाण कितना रह जाता है, क्योंकि बिना इस बातके अनुभव किये हुए यह नहीं जान सकते कि अमुक नाप का कृत्रिम काष्ठ बनानेमें अमुक अमुक जातिके काष्ठका चूर्ण इतना इतना लगेगा। इसलिए इस स्थान पर प्रत्येक काष्ठचूर्ण-की जल शोषक शक्ति को जानने का सुगम उपाय लिखा जाता है जो पाठकगणको लाभप्रद होगा।

चित्र ६३
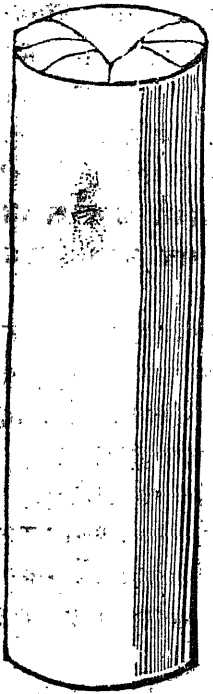
किसी समाचार पत्रका वा किसी रद्दी कागजका अनुमानसे एक फुट चौड़ा टुकड़ा लेकर एक रूलर जो दफ़्तरोंमें लकीर खींचनेके काम आता है उस पर लपे-टनेसे और प्रत्येक लपेटपर थोड़ी लेही फैलाकर दूसरी लपेट चढ़ाकर जितनी अधिक लपेट चढ़ सकें चढ़ाने और फिर एक सिरे पर कागजको मोड़ देने और सूख जाने पर रूलर परसे जुदाकर लेनेसे इस सूरतकी नली सी तैयार हो जाती है जिसका एक सिरा बंद होता है और दूसरा खुला रहता है। यह काष्ठ चूर्ण आदिके नापनेमें काम आती है। कागज़की नलीके स्थान यदि बांस वा किसी धातुकी बनाकर काममें लावें तो और भी अच्छा हो।

ऊपरकी विधिसे बनाई नलीमें काष्ठ चूर्णको भरकर किसी थाली वा पात्रमें उंड़ेले और उसमें बनी हुई सरेसको थोड़ा थोड़ा डालकर किसी चाकूसे मिलावे और लुगदी बांधले सरेस थोड़ी थोड़ी करके मिलाना चाहिये। इस प्रकार काष्ठ चूर्णको लुगदी बन जानेपर उस लुगदीको थोड़ा थोड़ा लेकर फिर उस नलीमें भरते हैं और किसी काष्ठके टूकसे भली प्रकार दाबते जाते हैं, यहां तक कि सब लुगदी उस नलीमें पहुंच जाती है। फिर उस नली-को चूल्हेके पास रख देते हैं, जिससे वह सूख जाती है। ऊपरकी रीतिसे जब जुदे जुदे काष्ठके चूर्णोंको भर भर कर देखा जाता है तो ज्ञात हो जाता है कि अमुक काष्ठका नली भर चूर्ण सरेसमें मिलानेसे नलीके अमुक भाग तक ही रह जाता है और उसमें इतनी सरेसकी आवश्यकता होती है। डील नामकी लकड़ीका चूर्ण जब इस प्रकार नली-में भर गया तो वह नली आधी ही भरी गई, अर्थात् वही चूर्ण सरेस मिलनेपर अपने परिमाणका आधा रह गया और भुसी वा चुनीको भरा गया तो वह एक तिहाई रह गई और कहवेके फांकको भरा गया तो वह जितना सूखी अवस्थामें नली भरा था सरेस मिलने पर भी उतना ही रहा अर्थात् परि-माणमें कम नहीं हुआ। इस प्रकार प्रत्येक जातिके काष्ठक चूर्णका अनुभव करलेना आगेको लाभ-दायक होगा।

सरेस मिलाना

जो काष्ठ चूर्ण में सरेसका जल ठीक अन्दाजसे मिलाकर काष्ठ बनाया जाता है तो उस बने काष्ठमें जाली आदि काष्ठकी मानिन्द ही काटी छीली जाती है। और जो सरेसके संग गिलसरीन या तेल और मिला देते हैं तो खुदाई और भी अच्छी रीतिसे की जा सकती है।

अब यह जानना अत्यावश्यक है कि किस जाति-के काष्ठ चूर्णमें कितनी सरेस ग्रहण करनेकी शक्ति है, क्योंकि जुदे जुदे प्रकारके काष्ठका चूर्ण जुदी जुदी ग्रहण शक्ति रखता है। मानलो कि कहवेके

फोक तथा अनाजकी भूसी और डील लकड़ीके चूर्णको सरेसके पानीको शोषण करनेकी शक्ति जाननी है, तो इन तीनोंके चूर्णको उपरोक्त पैमाने भर अलग अलग रखकर उसमें आध तोलेके अनुमान सरेसका बना पानी मिलानेपर यह जाना जाता है कि कड्वेका फोक शीघ्र ही पानीको ग्रहण कर काममें लाने के लायक हो जाता है। उसके पश्चात् अनाजकी भूसी को कुछ विशेषकी आवश्यकता होती है। और इससे भी अधिक डील काष्ठके चूर्णको सरेसका पानी दरकार होता है। डील के चूर्णको कड्वेसे दूना पानी चाहिये और भूसी को ड्योढ़ा; ज़ेतून और मेहोगनी काष्ठके चूर्ण डील की नाईं विशेष जलका शोषण नहीं करते। इसी प्रकार आम जामुन, चीड़, नीम, तून आदिके चूर्णकी सरेसके पानीको शोषण करनेकी शक्तिको जान सकते हैं। इसके जाने बिना किस जातिके चूर्णमें कितना सरेसका पानी चाहिये, यह नहीं बतला सकते; क्योंकि जो अन्दाज़से मिलाया जाता है तो जलके अधिक होजानेसे सरेसका अधिक भाग चूर्णमें मिल जाना सम्भव है और जो सरेस विशेष मिल जाती है तो सूखने पर उस चूर्णसे बनी वस्तु को आरीसे काटनेमें छीपटी उखड़ जाती हैं और जो सरेस कम रह जाती है तो वस्तु बिखर जाती है।

काष्ठ चूर्णसे लुगदी बनानेकी विधि

पहली विधि—'लाइम' के (जो नाम जंबीर वृक्ष की जातिसे सम्बन्ध रखता है) सूखे काष्ठ को आरीसे काटनेसे उत्पन्न हुए चूर्ण को किसी पात्रमें रखकर अग्नि पर इतना गरम करो कि वह भले प्रकार सूख जाय। उसको फिर पत्थरके खरलमें कूट कर महीन कर लो और अन्तमें महीन मलमलसे छान लो। 'ट्रागाकेन्थ' गोंद और बबूरके गोंदके समान भागोंमें, ४ भाग चमड़ेसे बनी सरेस (पार्चमेण्ट ग्ल्यू) मिला लो। और स्वच्छ जलमें उबाल कर महीन छन्नेसे छान लो, छन चुकनेके पीछे ऊपर की रीतिसे तैयार किया हुआ काष्टचूर्ण उसमें मिलाकर गाढ़ा शीरा सा बना लो। भली प्रकार उसको मिलाकर एक 'ग्लेज़्ड' अर्थात् चिकने किये हुए पात्रमें रखकर उस पात्रको गरम रेतपर रखो, जिससे उसमें का जल भाग उड़ जाय और वह साँचोंमें ढालने योग्य हो जाय। यदि इस प्रकारकी लुगदीमें रंग मिलाया जाय तो वह लुगदी रंगीन हो जायगी। और गुलाब का इतर वा लौंगका तेल अथवा ऐसी ही और सुगंधकी वस्तु मिलादें तो वह सुगंधित भी हो जायगी। चंदन तथा अगरकी लकड़ीका चूर्ण मिला देनेसे भी सुगंध उत्पन्न हो जाती है।

ऊपरकी रीतिसे बनी लुगदीको साँचेमें भरनेसे पहले साँचेमें बादामका तेल लगाते हैं। लुगदीको साँचेमें भर कर पांच छः दिवस तक उसको रखा रहने देते हैं, जिससे कि लुगदी सूख जावे। सूख जानेपर सांचेमेंसे लुगदीको निकालते हैं तो वह सांचे की सूरत की वस्तु हाथी दांत कीसी दिखाई देती है। यदि चाहें तो काष्ठ की नाईं उसको काट सकते हैं, खराद सकते हैं और रन्दा भी फेर कर चमका सकते हैं। सांचा 'प्लास्टर आव पेरिस' का बना हो, धातु का बना हो तो और भी अच्छा। अन्य प्रकार की लकड़ियों का बुरादा भी काममें आ सकता है। परन्तु शुद्ध सफेद सरेस और 'जिलैटीन' को ठीक अन्दाज़में मिलाकर ही काममें ला सकते हैं।

दूसरी विधि—खूब छने हुए काष्ठके महीन बुरादे को तारपीन, राल और मोमके मिश्रणमें मिलाकर लुगदी बना लो, परन्तु यह लुगदी अग्निपर रखनेसे जल उठती है, इसलिये बहुत सम्हाल कर इससे काम लेना पड़ता है।

तीसरी विधि—पांच भाग 'फलान्डर्स' गोंद में एक भाग मछलीकी सरेस मिलाकर वा स्वच्छ सफेद सरेस और मछली की सरेस मिलाकर मिश्रण बनाते हैं। हरेक गोंद तथा सरेसको जलमें मिलाकर अलग अलग फलालैनके कपड़ेमें होकर

टपकाते हैं, जिससे मैल तो रह जाता है और गोंद या सरेस का जल निचुड़ आता है। इनको फिर आपसमें मिलाते हैं। यदि यह गाढ़े होते हैं तो उस मिश्रणमें जल मिलाते हैं और उष्ण करते हैं कि जिससे वह कुछ गढ़िया जाता है। परन्तु इतना ध्यान रखते हैं कि वह उबल कर बहुत गाढ़ा न हो जाय, नहीं तो मिश्रण चटखना हो जाता है। इस प्रकार बनाये हुए मिश्रणमें काष्ठ का बुरादा मिलाते हैं और फिर उसको सांचोंमें भर कर जैसा अभीष्ट हो वैसी वस्तु तैयार कर लेते हैं।

चौथी विधि—७५० भाग सरेसके घोलमें १५०० भाग माजूफलके चूर्ण को मिलानेसे वह पीलापन लिये गेहुंए रंगको हो जाता है और उसको कामके योग्य पतला करनेके लिये उसमें पानी भी मिलाते हैं और पीछेसे उस मिश्रणका तिहाई काष्ठ का बुरादा मिलाते हैं। इस लुगदीसे जो वस्तु बनाई जाती है उसको मोटी वा दलदार रखते हैं, क्योंकि सूखनेपर यह तड़खनी रहती है। यदि इस मिश्रणमें ईंटका महीन चूर्ण मिलाया जाता है तो वह 'टेनिन'से मिलकर नीली झाईं लिये हुए लुगदी हो जाती है, जो सांचेमें बहुत अच्छी और कठोर होकर बैठती है।

'विलो' (बेंत की जाति का वृक्ष) की लकड़ीको खौलते पानी में उबालनेसे ऐसी नरम हो जाती है कि उसको चाहे जैसे मरोड़ सकते हैं, गूंद सकते हैं, काट सकते हैं, तथा उसपर छाप आदि लगा सकते हैं। अमेरिकामें एक वृक्ष ऐसा होता है जिसमें रुई की नाईं रेशेदार वस्तु उत्पन्न होती है और उस वृक्ष को 'काटनट्री' नामसे पुकारते हैं। इस वृक्षका काष्ठ 'विलो' काष्ठसे भी अधिक मुलायम होता है।

सांचे भरना

काष्ठ की लुगदी को सांचोंमें दो प्रकारसे भरते हैं। प्रथम विधि यह है कि जिस प्रकार सीसे को गलाकर सांचे भर देते हैं और उस को सांचेमें ही ठंडा होने तक रखते हैं और अन्तमें निकाल लेते हैं, उसी प्रकार काष्ठ की बनी लुगदीको सांचोंमें भरकर लुगदी को उसमें ही कठोर होजाने तक रहने देते हैं और पीछे निकाल लेते हैं। दूसरी विधि यह है कि लुगदी को सांचेमें भरकर उसको कठोर होनेसे पूर्व ही सांचेसे निकाल लेते हैं।

इन दो विधियोंमें प्रथम विधि काष्ठकी लुगदीके काम की यों नहीं है कि जब लुगदी को सांचोंमें ठूंस ठूंस कर भरा जाता है तो दाबके कारण लुगदीम की सरेस वा गोंद लुगदीके बाहर निचुड़ आता है और सांचेके भीतर ही सूख कर सांचे को पकड़ लेती है, जिससे सांचेमेंसे निकालने पर कुछ भागका सांचेमें चिपटा रह जाना सम्भव है। इस प्रकार वस्तु ठीक नहीं ढलती। जो सांचा धातुका बना हुआ हो और सांचेमें गाढ़ा नारियल का तेल वा घी चुपड़ा गया हो तो सम्भव है कि लुगदी सूखनेपर उसमें न चिपटे। दूसरी विधिसे सब प्रकारके सांचोंसे वस्तु ढाल सकते हैं; यह विधि यहां दी जाती है। पहले 'टिस्यू पेपर' (एक झिरझिरा बहुत नरम कागज) को तेलमें भिगोकर दो 'ब्लोटिङ्ग पेपर'के बीचमें रखते हैं, जिससे जितना अधिक तेल होता है वह दूर हो जाता है। इसके पश्चात् सांचेमें तेल लगाते हैं और लुगदीको जहां तक हो सकता है हाथोंसे सांचे की सूरत की बनाते हैं और उस पर 'टिस्यू पेपर' फैलाकर लुगदीको धीरे धीरे और हलकेसे सांचेमें भरते हैं और दाबते हैं। जब सांचेमें लुगदी ठीक ठीक भर जाती है और यह अनुमान हो जाता है कि लुगदी सांचेके सब भागोंमें पहुंच गई तो सांचे को धीरेसे उठा लेते हैं और उस 'टिस्यू' कागज को भी निकाल लेते हैं। ऐसा करनेसे ढली हुई वस्तु ज्योंकी त्यों निकलती है और वह बाहर ही वायुके लगनेसे जमकर कठोर हो जाती है। इस विधिमें लुगदीके सांचेमें चिपटे रहने का भय नहीं रहता।

सांचोंमें ढालनेके पीछे प्रायः यह देखा गया है कि यह लुगदी सूखने पर बैठती है और सिकुड़ती है, जिस का परिणाम यह होता है कि जितना महीन काम प्रथम उभड़ा हुआ साफ दिखाई देता है वह सूखनेपर नीचे बैठ जाता है। इस लिए लुगदीसे ढली वस्तुमें महीन काम को ऊपरसे उभाड़ देते हैं वा निहानीसे खोदकर उभाड़ देते हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि लुगदीसे वस्तु बनानेमें लुगदी औज़ारोंसे चिपट जाती है, जिस को बीच बीचमें छुड़ाते रहने की यह तरकीब है। काम करनेके आरम्भमें, और बीच बीचमें भी, औज़ारों को गरम जलमें डोब देकर शीघ्र ही पोंछ लेना चाहिये। जब हाथसे ही किसी वस्तु, को बनाना होता है तो अंगुलियों को उष्ण जलमें डुबोकर पोंछते रहते हैं, लुगदी को विशेष गीली नहीं होने देते और सूखे काष्ठ चूर्ण का बासन पास रखते हैं। अंगुलियों को तेल लगाकर रगड़ कर साफ कर लेते हैं और पीछे काष्ठके सूखे चूर्ण-में डालकर निकाल लेते हैं। यदि अंगुलियां गीली रहती हैं, तो फिर चिपकनी हो जाती हैं।

काष्ठ की लुगदीके उपयोग

उपरोक्त विधिसे बनी काष्ठ चूर्ण की लुगदीसे अनेक उपयोगी काम हो सकते हैं। जब किसीके पास पुरानी वस्तु लकड़ी की बढ़िया कटाव वा खुदाईके कामकी होती है और कालान्तरमें उसमें छिद्र व दरार आदि हो जाती हैं तो उनको भरनेमें लुगदी ही काममें आती है क्योंकि सूख कर यह लुगदी ही काष्ठ हो जाती है। यदि किसी काष्ठके खिलौने वा मूरतके हाथ पैर तथा और अङ्ग भंग हो जाते हैं तो उन अंगों की मरम्मत लुगदीसे हो सकती है और जो वह बिलकुल ही खराब हो जायं तो लुगदीसे नये बनाकर लगाये जा सकते हैं और सूख जाने पर रेतीसे रगड़ कर साफ कर दिये जा सकते हैं।

जैसा काष्ठमें खुदाई का काम पंजाब प्रान्तमें होता है, वैसा काम, लुगदी को सांचेमें भर कर वा हाथसे गढ़कर सुगमतासे बना सकते हैं। इस बातकी पूर्ण जांच हो चुकी है कि काष्ठ की लुगदीसे बनी वस्तुमें कटाव वा खुदाईका काम हो सकता है और काष्ठ की नाईं उस पर जिला भी की जा सकती है।

ऐसा भी देखनेमें आता है कि बढ़ई का काम सीखनेवाले कोई कोई जोड़ों को (जैसा कि 'मोरटिस', 'टेनन' तथा 'डवटेलिंग' आदि को) ठीक ठीक नहीं बैठा सकते, क्योंकि वह लकड़ी को अंदाज़से ठीक काटनेमें विशेष काट लेते हैं जिससे चूल ढीली रह जाती है और फिर उसमें पच्चर ठोकते हैं। यदि पच्चरके स्थान जोड़में लुगदीको भरकर ठीक किया जाय तो लुगदी सूखने पर काष्ठमें एक हो कर मिल सकती है और वह जोड़ भी बेमालूम हो जाता है।

काष्ठकी बनी हुई वस्तुमें जहां बढ़ईने भूलसे कोई छिद्र कर दिया है और उसमें लकड़ीकी डाट ठोकना चाहता है उस स्थान पर यदि लुगदी बनाकर काममें लावें तो बहुत अच्छी होती है और जोड़ काष्ठमें मालूम नहीं होता। इसी प्रकार जब किसी दर्पणके चौखटेके छिद्र ढीले होजानेसे शृंगारदानका दर्पण ढुलक जाता है तो उन छिद्रों-में लुगदीको भरनेके बाद सूखनेपर दूसरे छिद्र कर दर्पणको ठीक कर दिया जाता है।

विलायतमें मिस्टर जी० लीलेण्ड और पादरी एफ०सी० लेम्बर्टने इस लुगदीसे कई वस्तु बनाई हैं और अपनी "आर्टीफीशियल वुड" नामकी पुस्तक-में, जिसके आधारपर यह लेख लिखा गया है, लिखते हैं कि काष्ठ की लुगदीसे कलमदान, चौखटे, संदूक तथा पिटारी, डिब्बी आदिपर नक्काशीका काम भी बन सकता है। नमूनेके चित्र भी उनकी पुस्तकमें दिये हुए हैं। पाठक महाशयोंको उनको अवश्य देखना चाहिये।

अब किसी काष्ठकी वस्तुपर कुछ ऊंचा उठा हुआ उभाड़का काम दिखाना होता है तो काष्ठ पर उभाड़में दिखाये जानेवाली वस्तुका चित्र खींच कर उस पर थोड़े थोड़े अन्तरसे काष्ठ वा लोहेकी पतली और जितना ऊंचा उभाड़ दिखाना हो उससे कुछ कम दुगनी लम्बी कीलें इतनी जड़ देते हैं कि वह आधी बाहरको निकली रहती हैं। इन कीलों पर लुगदी चढ़ाते हैं और जिस रीतिका चित्र बनाना होता, लुगदीसे कीलोंके सहारे बनाते जाते हैं और कीलोंको लुगदीमें ढकते जाते हैं, जिससे काम टिकाऊ हो जाता है।

बाज़ारू बनावटी लकड़ी

विलायतके बाजारमें 'लोइओनाइट, नामकी बनावटी लकड़ी मिलती है, जो कि आबनूस कीसी बनाई जाती है। परन्तु इस काष्ठका तथा अन्य बनावटी काष्ठों का बनाना बिना कलोंके दुःसाध्य है, क्योंकि लुगदीको दाबकर काष्ठ जैसा एक करनेके लिये पूरे पूरे दबावकी अवश्यकता होती है, जो बिना कलोंके नहीं दिया जा सकता। परन्तु जिनको बनावटी काष्ठके तख्ते बनाना अभीष्ट हो वह यदि मामूली हेण्डरौलर (Hand roller) अर्थात् हाथसे चलनेवाले बेलनोंको काममें लावें तो अच्छा है। अमेरिकामें फूस पयार आदिसे कृत्रिम काष्ठके तख्ते बनाये जाते हैं और काममें लाये जाते हैं। इसी प्रकार इस देशमें भी यह बनने लगे तो बहुत सी वस्तु जिनको कूड़ा कचरा जानकर फेंक देते हैं, उपयोगमें आने लगें और द्रव्य पैदा करनेका एक और मार्ग भी खुलजाय।

काष्ठकी छीलन

जो विधि पहले लिखी गई है वह काष्ठके बुरादे वा चूर्णकी लुगदीसे वस्तु बनानेकी है, परन्तु काष्ठकी पतली छीलनको किस प्रकार उपयोगमें ला सकते हैं यह भी दिखाना उचित जान पड़ता है। अमेरिकामें हलकी जातिकी लकड़ी पर ऊंची बढ़िया जातिकी लकड़ीकी पतली छीलनको चढ़ा कर अनेक प्रकारकी लकड़ीके भाव ही नहीं उत्पन्न करते हैं, वरन् काष्ठकी वस्तुओंके ऊपर बेल बूटे चित्र आदिका काम भी कर दिखाते हैं और बहुत पतली काष्ठ छीलनसे 'वाल पेपर' अर्थात् भीतों पर मढ़नेका कागज भी बनाते हैं। यदि मुलाइम काष्ठकी बहुत पतली छीलन लेही वा सरेस आदिमें भिगोई जाय तो वह कागजकी नाईं मुलाइम हो जाती है और फिर उससे तख्ते बन सकते हैं।

काष्ठकी छीलनको जमानेके कामकी लेही इस भांति बनाई जाती है। एक तोले सरेसके महीन चूर्ण-को आध पाव खौलते हुए जलमें रखकर चूल्हेकी गरमीमें आध घंटे तक रखते हैं। एक दूसरे पात्रमें एक तोले मैदाको अनुमान चार वा पांच तोले शीतल जलमें इतना घोलते हैं कि उसमें गांठें नहीं रहतीं। पश्चात् इन दोनों सरेस और लेहीको एक करते हैं और उस मिश्रणके पात्रको एक खौलते हुए जलके पात्रमें रखते हैं और अग्नि पर हिलाये जाते हैं, जिससे सरेस और लेही आपसमें मिल-कर एक जीव हो जाती हैं।

अब काष्ठकी छीलनको चारों ओरसे काट छांट कर जैसे काममें लगाना होता है उसकी सूरतका बना लेते हैं और तब एक काष्ठके बड़े तख्ते पर स्वच्छ मोटे कागजको बिछाकर उसपर बनी हुई सरेसको चढ़ाते हैं और ऊपरसे काष्ठकी छीलनके बने टुकड़ोंको जमाते हैं। जो काष्ठकी छीलनका तख्ता बनाना होता है तो, छीलनके टुकड़ोंको ठीक उसी प्रकार बराबर लगाते जाते हैं जैसे भीत चुननेमें ईंटा-को लगाते हैं। प्रथम परत छीलनकी लग चुकने पर पुनः सरेस लगाई जाती है और उसके ऊपर दूसरी परत छीलनके टुकड़ोंकी लगाते हैं परन्तु इस समय जो परत छीलनकी जमायी जाती है वह प्रथम परतके समकोण आड़ी लगाते हैं, जैसाकि ६४ चित्रमें १ वा २ आकृतिमें सूचित है। इन प्रत्येक परतोंके आपसमें मिलकर एक होजानेके लिये बलपूर्वक बेलनसे दाब देते हैं। इसप्रकार अभीष्ट मोटाईका तख्ता बनजाने तक परतपर परत चढ़ाते हैं और प्रत्येकको बेलनसे दाब दाब कर

एक जीव करते जाते हैं। अंतमें एक पतला और लचीला तख्ता बन जाता है जिसको चाहें काट सकते हैं, खोद सकते हैं और उसपर नक्काशी भी कर सकते हैं।
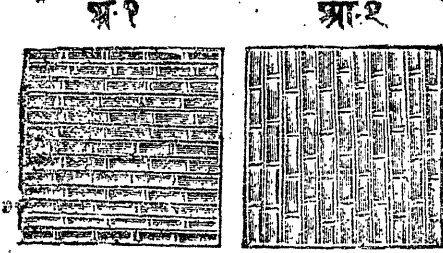
चित्र ६४

जो यह अभीष्ट होता है कि तख्ता इस प्रकारका बने कि उसको मोड़ भी सकें तो कागजके आधारके स्थानमें मोटे कपड़ेको लगाते हैं और छीलनकी परतोंको ऊपर लिखी विधिसे कपड़ेके दोनों ओर चढ़ाते हैं। परन्तु यह अवश्य याद रखना चाहिये कि जितना इन परतों को दाब दाब कर चढ़ाया जाता है उतनीही वह आपसमें मिल और चिपट कर एक जीव हो जाती हैं। दाब देनेके लिए यदि लोहेके बेलन काममें लाये जाते हैं तो अच्छा दबाव पड़ता है। और जो नरम काष्ठकी छीलनको 'वाटरप्रूफ' या चिम्मड़ सरेससे जिसमें तेल वा 'ग्लिसरीन' मिली हो जमाया जाता है और बलपूर्वक बेलन फेर कर एक जीव कर दिया जाता है तो उससे कमान, नाव खेनेकी डांड, मस्तूल तथा चाबुककी डंडी आदि बन सकती हैं। इतना ही नहीं वरन् पुस्तकोंके पट्ठे, सन्दूक, थाली, चोंगे और अनेक प्रकारकी वस्तु बन सकती हैं, जो गिरने पर या गरमी पानीसे न फटती हैं, न टूटती हैं। यहां तक छीलनके कामके विषयमें मिस्टर लीलेंड और पादरी लेमाट ने अपनी 'आर्टीफीशियल वुड' नामकी पुस्तकमें लिखा है कि यदि 'पिच' (अर्थात रालका मिश्रण) और बड़ी चौड़ी और लचीली लकड़ीकी छीलन पास हो तो बहुत अच्छी डोंगी बन सकती है।

मेज़पर गुलदस्ता रखनेके लिये गुलदस्त दान या घमला बनानेकी यह विधि है। एक घमलेको लेकर उसको धोकर पानीमें भिगो देते हैं और जब पानी घमले के सब छिद्रोंमें प्रवेश कर जाता है तो ऊपरसे उसे पोंछ कर स्वच्छ करदेते हैं। इसके पीछे तीन चार परत महीन कागजके उसके ऊपर लपेट कर ऊपरसे एक मज़बूत कड़े बादामी कागजको एक ओर तेल लगाकर और तेललगी ओर को कागजके परतोंकी ओर रखकर चढ़ाते हैं। यह बादामी कागज छीलन चढ़ानेके लिये आधार अर्थात् बुनियादका काम देता है। इस बादामी कागज़की ऊपरी ओर सरेस वा लेहीको लगाकर ऊपरसे काष्ठकी छीलनको पूर्वोक्त विधिसे जमाते हैं और दो वा तीन परत छीलनके चढ़ जानेपर यातो किरमिचके ३ इंच × १ इंचके टुकड़े चढ़ाते हैं वा मोटे सन या पटसनको कतर कूट कर उसके तन्तुओंका एक एकसा परत चढ़ाते हैं और पुनः सरेस लेहीको लगाकर ऊपरसे दो तीन परत छीलन चढ़ाने जाते हैं। इस प्रकार उस घमलेको जितना मोटा बनाना अभीष्ट होता है उतने अन्दाज़के परत चढ़ाते हैं। परन्तु प्रत्येक परतको पूरा पूरा दबाव देकर चढ़ाना आवश्यक है, क्योंकि बिना दबावके परत एक दूसरेको पकड़कर एक जीव नहीं होतीं और सूखनेपर वह परत जुदी जुदीसी दिखाई देने लगती हैं और जो दाब ठीक लगती है तो सब परत एक जीव होकर एक काष्ठके टूकके समान मालूम पड़ती हैं।

जब कोई गोलाई वाली वस्तु जैसेकि कटोरा वा सितार वा तम्बूरेका तोंबा आदि बनानी होती हैं तो जितनी बड़ी वस्तु बनानी अभीष्ट होती है उतना बड़ा धातु वा लकड़ी वा पत्थरका कटोरा नाँद जैसा काम हो वैसा लेकर उसके ऊपर प्रथम मज़बूत कागज लपेट ऊपरसे पूर्वोक्त विधिसे काष्ठकी छीलन और किरमिच वा सनके तन्तुओंकी

परत चढ़ाते हैं और पूरी पूरी दाब देते जाते हैं। जब अभीष्ट दलका हो जाता है तब सुखाकर उतार लेते हैं। और पीछेसे जैसा उसे शृङ्गार करना अभीष्ट होता है, उसका यातो कागज़की या काष्ठचूर्णकी लगुदीको लगाकर या काष्ठकी पतली छीलन जैसी आवश्यकता हो काट तराश कर चिपका कर बेल बूटे आदिसे सजादेते हैं। और जहां पची कारीका भाव दिखाना होता है वहांपर फूल बेल बूटे तो काष्ठकी छीलनके कतर कर जमाते हैं और बीचके ख़ाली स्थानोंमें रंगदार लुगदी भरदेते हैं, जिससे वह कार्म ऐसा मालूम होता है मानों एक प्रकारकी लकड़ीमें दूसरे प्रकार-की लकड़ी आदिको पच्ची किया गया है। उपरोक्त विधिसे जो काष्ठकी छीलनसे बना काम है उसको रंग रोगन आदि लगाकर तथा पालिश देकर साफ सुथरा और खूबसूरत बना सकते हैं। यहां कृत्रिम काष्ठ सम्बन्धी बातोंका केवल दिग्दर्शन कराया गया है। बुद्धिमान पाठक अपनी बुद्धिसे काष्ठचूर्ण तथा छीलनसे अनेकानेक उपयोगी काम लेसकते हैं और अनेक प्रकारकी वस्तु बना सकते हैं। जिन सज्जनोंको इस विषयमें विशेष जाननेकी इच्छा हो 'आरटीफीशियल वुड' नामकी 'यूज़ फुल आर्ट्स एण्ड हेंडी क्राफ्ट' नामक ग्रंथावली-की नं० ११ की पुस्तक देखें।

भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[लेखक—श्री० "जटायु"]

बर्लिनमें हलचल मच रही है। सब बर्लिन छोड़कर भागे जा रहे हैं। जहां कहीं वायुयान आता दिखाई देता है, लोग उसी प्रकार भाग खड़े होते हैं जैसे भेड़ियेको देखकर बकरियां। नगरके बाहर आस पास जो कोई चलता हुआ मोटर किसी वायुयानको अपनी ओर आते देखता है तो मोटर रोककर और उसे वहीं छोड़कर सब मोटरवाले भाग जाते हैं, क्योंकि अब यह सबको मालूम हो गया है कि जिस मोटरके ऊपर होकर वायु-यान उड़ जाता है उसका (magneto) मेगनेटो काम करना बन्द कर देता है।

कुछ देर बाद सब वायुयान बर्लिनके ऊपर-से चारों तरफको हट गये और एक वृत्तमें बर्लिन के चारों ओर उड़ने लगे। उन वायुयानोंमेंसे जो अब तक बहुत ऊंचे पर उड़ रहे थे एक उतरने लगा और नीचेवाले वायुयानोंके बीचमें उतर आया। यह वायुयान बड़ा सुन्दर बना था और इसके ऊपर एक पताका लहलहा रही थी। यह पताका लाल मखमलकी थी और वही चिन्ह, सूर्य, सर्प और त्रिटिश सिंहके, उसपर बने थे। यह सोनेके तारों-से मढ़ा हुआ था, जो दूरसे अत्यन्त चमकते हुए सुन्दर मालूम होते थे। ऐसा जान पड़ता था कि यह वायुयान सेना-नायकका है। देखते ही देखते यह वायुयान पोट्सडम फाटकके ऊपर आकर ठहर गया और जिस प्रकार बांधकर कुएंमें डोल लट-काते हैं वैसे ही इस वायुयानसे एक सिंहासन नुमा कुर्सी नीचे उतरती मालूम हुई और पोट्सडम (Postdam) फाटककी छत पर आकर ठहर गयी। इसके पहले ही एक नवयुवक, कुरसी परसे कूद कर छत पर खड़ा हो गया। उसका गेहुआं रंग था, पस्ता कद था, दोहरा बदन था और ललाट पर एक महराटी पगड़ी बंधी थी, जिसके ऊपर केवल एक हीरेकी कलगी लगी थी। इस युवकका शेष सिपाहियाना ठाठ था। उसने कुरसीसे कूदकर अलग होनेके बाद अपनी जेबसे घड़ीके आकारसे कुछ बड़ा एक यन्त्र निकाला। उसको उसने अपने बायें हाथमें लिया। जैसे घड़ीमें ज़ंजीर लगी होती है वैसे ही इसमें भी एक ज़ंजीर लगी थी। इसज़ंजीर को उसने कुरसीके एक कांटेमें लटका दिया और दहने हाथसे जैसे घड़ीकी सुईयां चलाई जाती हैं, इस यन्त्र की सुइयोंको मोड़ने लगा। इस क्रियाके करते ही उसकी पताकासे त्रिशूलके रूपकी प्रकाशकी

धाराएं ऊपरकी ओर निकलने लगीं और साथ ही साथ और जितने वायुयान चारों ओर दिखाई देते थे उनसे भी प्रकाश निकलने लगा। प्रकाश अभी एक या दो सेकंड ही निकला होगा कि इसका निकलना बन्द हो गया और नायक जिसको कि हम भारतेन्दु कहेंगे उस यन्त्रकी सुइयों पर कुछ क्रिया करता रहा। इसका फल यह हुआ कि चारों ओरसे वायुयान उड़ उड़ कर आने लगे और जैसे पलटन कवायद करती है उसी प्रकार आकाश मार्गमें कवायद करने लगे और सब दिशाओंमें कुछ कुछ बंट गये। इसके पश्चात् दो वायुयान भारतेन्दुके वायुयानके पास उतर कर आये और उनमेंसे बहुत से आदमी नीचेकी ओर कूद पड़े।

भारतेन्दु तो सिंहासन पर बैठ कर उतरे थे, पर यह सिपाही केवल वायुयानकी गाड़ीसे जैसे तैराक नदीमें कूदते हैं कूद पड़े। कूदनेके साथ ही इनकी पीठपरसे एक ट्यूब (Tube) दो तीन हाथ की निकल आई और इसका ऊपरला सिरा फूलकर गुब्बारा सा हो गया। जैसे सिपाहियोंकी पीठपर कारतूसोंकी पेटी सी होती है उसी प्रकार इनकी पीठपर भी एक पेटी सी थी, जिसमें ट्यूबका निचला सिरा लगा था। जैसे फोटोके कैमरेमें शटर खोलने बन्द करनेके लिये एक बल्ब (Bulb) और ट्यूब (Tube) लगा रहता है, उसी प्रकार इस पेटीमें भी लगा था। बल्बको सिपाही छड़ीकी तरह अपने हाथमें पकड़े थे। बल्बके दबानेसे ट्यूबके सिरेपर गुब्बारा सा निकल आता था और फूल उठता था और सिपाही ऊपरकी ओर उड़ने लगता था। हाथ ढीला छोड़नेसे गुब्बारा छोटा होने लगता था और सिपाही नीचेकी ओर चलने लगता था। इस प्रकार चारों ओर सिपाही उड़ने लगे और लगभग १०० सिपाही भारतेन्दुके चारों ओर एक वृत्तमें दिखाई दिये। भारतेन्दुने इनमेंसे एकको बुलाया जो केवल इसी प्रकार जैसे मनुष्य पृथ्वीपर चलनेमें पर हिलाते हैं वायु पर पैर हिलाने लगा और आगे बढ़ आया। भारतेन्दुने सेनापति कह कर इसे बुलाया था, तब हमें मालूम हुआ कि यह सेनापति है और जिस महापुरुषका नाम हमने भारतेन्दु रखा है मालूम होता है कि हो न हो सम्राट् है। इसने सेनापतिसे कहा कि परराष्ट्र-सचिव (Foreign Secretary) को फौरन सूचना भेजो कि हमने बर्लिन खाली करा लिया है और अब वायुयानोंको हम जर्मनीके अन्यान्य स्थानोंको भेज रहे हैं। कैसरकी तरहसे हम हत्याकांड यहां नहीं खोलना चाहते, न हमारी इच्छा है कि जर्मनीके निवासी भारतकी काली माताको बलि दिये जायं। हम इनको केवल अपने अधीन कर लेना चाहते हैं। इस कारण हमने हुकुम दिया है कि जर्मनीमें हमारे जनरल फैल जायं और प्रजाको केवल शस्त्र-हीन कर दें। यह समाचार भारत वर्षमें प्रकाशित कर दिया जाय। यहांके राजकाजका प्रबन्ध करनेके लिए हमको सिविलियनों (Civilians) की आवश्यकता है। इस हेतु जो भारतीय यहां आना चाहें उनसे कह दिया जाय कि केवल खाना और निवास स्थान मुफ्त मिलेगा और एक हज़ार मुद्रा वार्षिक वेतन मिलेगा। १५ वर्षके पश्चात् पेनशन मिल जायगी, पर पेनशन पानेके पश्चात् भी जो ठहरना चाहेंगे तो कोई और अच्छा पद उनको दिया जायगा।

भारतवर्षमें इस सूचनाके प्रकाशित होते ही कुल देश भरमें दिवाली मनाई गई और घर घर आनन्द मंगल होने लगा। वृद्धों ने दिन भर हर्षके आंसू गिराये और नाना प्रकारसे दैवको धन्यवाद दे कहने लगे, "यद्यपि हज़ारों वर्षकी गुलामीके पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने हमको स्वतंत्र बनाया था, पर पुराना धब्बा जो हमारे ऊपर लगा था, वह नहीं मिटा था। ब्रिटिश सरकार ने जब हमें स्वतन्त्र बनाया था तब उसको इस बातकी द्विविधा थी कि स्वतन्त्र होनेपर हम अपने पैरों चल सकेंगे या नहीं। कहीं फिर लौटकर यह न कहें कि आओ, राज्य कीजिये; हम नहीं राज्य कर सकते। पर इस

जर्मन विजय ने अब हमारा मान, सत्कार और आदर ज्यों का त्यों स्थापित कर दिया है।"

जर्मनीका राजदूत चौंका और इस उत्सवको देखकर उसके कान खड़े हुए। और देशोंके राजदूत जो भारतवर्षमें थे उन्हें भी चिन्ता हुई और जर्मन राजदूतके पास दौड़े आये और उससे सब हाल दरयाफ्त किया। वह बारबार कहता था, "कल सुबह तक मुझे किसी बातकी खबर नहीं थी, न युद्धकी कोई बात चीत थी।" किन्तु अन्य राजदूत नहीं मानते थे। वह समझते थे कि इसमें कोई भेद है, जो वह छिपा रहा है अथवा लज्जा वश युद्धके पहलेकी घटनाओंको छिपाना चाहता है। बड़ी कठिनाईसे इन लोगोंने इसकी बात मानी और उसको सम्मति दी कि तुरन्त राज दरबारमें जाकर सब हाल पूछे; हम सब भी अपने अपने राज्यों-को वेतार द्वारा सूचना भेजते हैं और सम्मति देते हैं कि वह तुरन्त आक्षेप पत्र भेजें। जितने राजदूत हैं सब लाल पीले हो रहे हैं। फ्रांसका राजदूत अपनी मूछोंपर ताव देकर बार बार तलवारपर हाथ रखता है और कहता है, "यह भी कोई बात है, हम समझ लेंगे। यह तो हमारा पड़ोसी था, जब पड़ोसमें आग लगी है तो कमसे कम और कुछ नहीं तो अपनी रक्षाके हेतु ही हमको भारत वर्षको दण्ड देना चाहिये।"

रूसका राजदूत, जो बड़ा मोटा था; जिसकी ठोढी पर मोटी नाक, मोटे मोटे होठ, लहराती हुई दाढ़ी, लम्बी मूछें देखने लायक थीं; जो रोयेंदार टोपी व ओवर कोटकी भांति कोई कोट पहने हुआ था; इस प्रकार बीचबीचमें बोल उठता था जैसे मास्टिफ कुत्ता भौंकता है। वह कहता था, "वाह क्या अन्धेर है, दिल्लगी बाज़ी है, समझलेंगे। रूसका एक एक बच्चा चढ़ दौड़ेगा और सब मिल कर भारतको कच्चा खाजायंगे। जिस प्रकार दालकी पतीलीमें समय समयपर उबाल आता है, उक्त महोदय उबल उबल पड़ते हैं। अमेरिकाका राजदूत जिसका कद लम्बा, बड़े बड़े पैर (" पैर बड़े गंवार के"), बकरेकी सी दाढ़ी सिरके बाल बिना कतरे हुए (न मालूम पट्टे हैं या अंग्रेजी बाल), देखने लायक थे, धारीदार कोट पतलून पहने, ऊंची लम्बी मूठेकी सी टोपी सिर पर रखे; सोच सोच कर बातें करता है और कहता है, "इसीसे हम हर प्रकारके एक व्यक्ति शासन (Monarchy) के खिलाफ हैं। जब तक प्रजातंत्र राज्य न होगा ऐसे झगड़े सदा होते रहेंगे। सौ वर्ष हुए कि (जर्मन राजदूतकी ओर इशारा करके) आपके कैसरने ऊधम मचाया था; अब भारतेन्दु उसी तरह दुन्द मचा रहे हैं। इस प्रकारका युद्ध धर्मके विरुद्ध है। मनुष्योंको भी बहुत कष्ट पहुचता है। आप लोगोंकी एक दूसरे-के प्रतिकूल सहायता करना हमारे लिए वैसा ही है जैसा वैद्यके लिए प्रायः रोगीको ज़ुकाम और ज्वर दोनोंसे पीड़ित देखकर एकका इलाज करना और दूसरेको छोड़ देना। खैर इस बातसे आप यह न समझें कि मैं आप लोगोंका साथ न दूंगा। अमे-रिका भी आपकी ओरसे घोषणा पत्र प्रकाशित करेगा।" जापानका दूत, छोटे कदका, दोहरे बदन का; चपटी नाक, चौड़े चेहरे, पतले और छोटे ओंठ वाला आदमी है। वह मुंह सदैव बन्द रखता है, बहुत कम बोलता है। इस समय भी अधिकतर ध्यान पूर्वक अन्यराजदूतोंकी बातें सुन रहा है। अन्तमें उसने कहा, "इस बकवादका क्या फल होगा, पहले यह तो दरयाफ्त करो कि यह सब कैसे हुआ। अभी परसों तक तो भारतेन्दु यहीं थे। न जर्मनी-को किसीने सेना जाते देखी, न कोई किसी प्रकार-का युद्धका प्रबन्ध होता देख पड़ा। जर्मन दूतको चाहिये कि तुरन्त सेक्रेटेरियट (Secretariate) जाकर भारत सचिवसे मिले और पूछताछ करे।" पर जर्मन राजदूत कहने लगा, "यदि युद्ध छिड़ गया है और यह समाचार सत्य है तो बाहर निकलते ही लोग मेरे प्राण लेना चाहेंगे और शायद मैं भारत सचिव से मिल भी न सकूं, कैद कर लिया जाऊं।" इस कठिनाईको अब कोई राजदूत हल नहीं कर सकता और आंय बांय शांय इधर उधरकी तरकीबें बताते

हैं। जापानी राजदूत तुरन्त उठ खड़ा हुआ और बोला, इसमें डरनेकी कोई बात नहीं है; आप मेरे साथ चलें; मैं ले चलता हूं। यदि आपको किसी प्रकारका कष्ट देना होता तो कबका आपपर हाथ डाल दिया होता।" सब राजदूत बिदा होकर अपने अपने स्थानको गये और जर्मन राजदूतने अपना मोटर मंगाया। जापानी राजदूतको साथ लेकर, और चार शस्त्रधारी आदमी मोटर पर पीछे बैठाल कर, सम्राटके मंत्रि-कार्यालय (Secretariate) की ओर चले। मोटरके कोठीसे बाहर निकलनेपर जर्मनीके राजदूतको एक प्रकारकी जूड़ी सी चढ़ आई और इसके बाडी गार्डोंने अपनी अपनी जेबोंमें हाथ डालकर पिस्तौलकी मुठियां पकड़ लीं। सड़कपर जिधर मोटर जाता है तरह तरहकी पताका दिखाई देती हैं, जिनमें सुवर्णाक्षरोंसे अंकित है, "भारतकी जय, जर्मनीकी क्षय" और नाना प्रकारके उत्सव मनाये जा रहे हैं, पर जो मनुष्य उसको पहचानते हैं उसको देखकर मुस्करा देते हैं। कुछ दूर चलनेपर राजदूत और उसके बोडीगार्डके दिलसे भय तो जाता रहा पर आश्चर्य बढ़ गया। एक स्थानपर कालिजके कुछ विद्यार्थी जमा थे और (University Senate Hall) सेनेटहालकी ओर जा रहे थे। वहां कोई बड़ी भारी सभा होने वाली थी और विद्यार्थियोंने बड़ी लम्बी चौड़ी वक्तृताएं (Speeches) इस विजयोत्सव पर देनेका प्रबन्ध किया था। सेनेटहाल (Senate Hall) के सामनेसे मोटर निकला तो कुछ लड़कोंने ताली पीट दी और एक लड़केने सकड़परसे एक पुराना चिथड़ा मोटरके ऊपर फेंक दिया, जिसपर अन्य लड़कोंने उसे खूब चपतें लगाईं और सब लड़कोंने ताली बजानेवालोंको डांटा। प्रोफेसर विजय प्रताप मालवीयने जो वहां खड़े थे लड़कोंको समझाया और ऐसी हरकत करनेसे मना किया। उन्होंने कहा; "यह बड़ा ओछा व्यवहार है। और हमको इस बातका शोक है कि हमारे विश्वविद्यालयमें चार पांच लड़के भी ऐसी नीच बुद्धिके हैं जो शत्रुके आज्ञाकारी सेवकसे ऐसी दशामें कि जब हमसे उससे कोई निजी शत्रुता नहीं है और वह अकेला है और हमारा अतिथि है, ऐसा व्यवहार करें और उसका निरादर करें।"

(असमाप्त)

अलूमिनियम

लूमिनियम बनानेकी प्राचीन विधिपर हम पहले विचार कर चुके हैं। आज हम आधुनिक विधिपर विचार करेंगे।

आजकल अलूमिनियम प्रायः सब जगह वैद्युतिक विधिसे बनता है। बोरचर महोदयने जिस यंत्रका प्रयोग अलूमिनियम बनानेमें किया है वह चित्र ६५ में दिखलाया गया है।

चित्र ६५ बोर्चर भठ्ठा
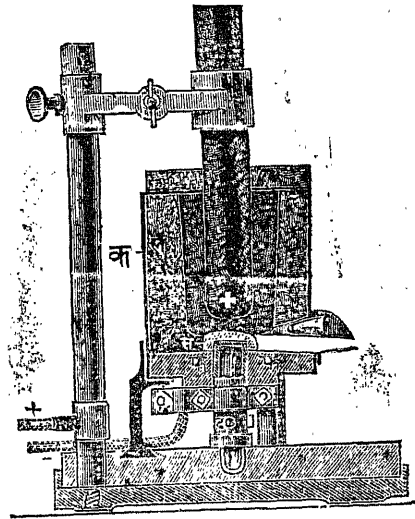
क एक लोहेकी धरिया अथवा बरतन है। इसका पेंदा फायरक्ले (fireclay) का बना हुआ है और उसकी भीतरकी तरफ मोटी तह अलूमिनियम ओषिद (बोक्साइट) की चढ़ी हुई है। पेंदेमें

इस्पातकी एक तखती स लगी हुई है, इसीमें एक ताम्बेकी नली ट कसी है। ट में होकर बराबर ठंडा पानी आया जाया करता है; इसके कारण स कभी ज्यादा गरम होकर अलूमिनियममें गल नहीं जाती। स सेही जैसा चित्रमें दिखाया है बाटरी अथवा डैनेमेका ऋणछोर जोड़दिया जाता है। अतएव स विद्युत्-विश्लेषण घटका निर्याणमार्ग अथवा ऋणअन्त है। प्रवेशमार्ग अथवा धन अन्त एक कर्बनकी मोटी छड़ अथवा छड़ोंका गट्ठा होता है जो इच्छानुसार ऊंचा नीचा किया जासकता है। चित्रमें इसी छड़पर धन चिन्ह है। इसीका सम्बन्ध डैनेमोके धन छोरसे कर दिया जाता है।

पहले कुछ अलूमिनियमके टुकड़े और थोड़ा सा क्रायेलाइट इस घरियामें रखते हैं और धनान्तको नीचे उतारकर उससे स्पर्श करा धारा बहाते हैं, जिससे मिश्रण गलकर द्रव होजाता है। तब धीरे धीरे क्रायेलाइट और बोक्साइट मिलाते हैं, यहां तक कि घरिया द्रवित पदार्थोंसे ऊपर तक भरजाती है। यहां क्रायेलाइट घोलकका काम देता है। विद्युत् विश्लेष्य अथवा वाहक बोक्साइट है। उसीका विश्लेषण होना है। उसके विश्लेषणसे ओषजन गैस और अलूमिनियम बनते हैं। गैस तो ढक्कनमें जो छेद है उसमेंसे निकल जाती है, परन्तु अलूमिनियम पेंदेपर एकत्रित होता रहता है। समय समय पर दाईं तरफके चित्रके निचले भागमें डाट दिखलाई है उसे खोलकर पिघली हुई धातु निकाल लेते हैं। बोक्साइट थोड़ा थोड़ा करके बराबर मिलाते रहते हैं। तह ब ऊपरसे वायुके सम्पर्कसे ठण्डी होती रहती है। इसी कारणसे नहीं गलती।
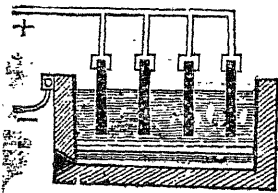
चित्र ६६ में हीरोलका यंत्र दिखाया है। इस यंत्रमें विश्लेषण घट लोहेका चौकोर बक्स होता है जो ८ फुट लम्बा और ६ फुट चौड़ा होता है। बक्स स्वयम् ऋणअन्त अथवा निर्याण मार्ग है। प्रवेश मार्गके लिए ४८ कर्बनकी छड़ तीन या चार पंक्तियोंमें एक ताम्बेकी छड़से लटका दी जाती हैं। ताम्र छड़ डैनेमोके धन अन्तसे जोड़ दी जाती है।

इस यंत्रमें भी घोलक द्रवित क्रायेलाइट है और विश्लेष्य बोक्साइट। जब बोक्साइटकी मात्रा घटने लगती है तो बाधा बढ़ने लगती है और एक लेम्प जो विश्लेषण घटके साथ हार बद्ध होती है जल उठती है। यही इस बातकी सूचना होती है कि बोक्साइट डालनेकी ज़रूरत है।

—रतनलाल

सूचना

जिन अनुग्राहक ग्राहकोंका वार्षिक मूल्य इस अंकके साथ समाप्त होजाता है उनसे सानुनय प्रार्थना है कि अपना आगामी वर्षका मूल्य मनी-आर्डर द्वारा भेजदें। वी०पी० मंगाकर व्यर्थ पोस्ट-आफिसको =) देना अनुचित दिखाई पड़ता है।

हमें पूरी आशा है कि हमारे सब विद्याप्रेमी ग्राहक पूर्ववत् 'विज्ञान' की सहायता करते रहेंगे और जिस कामका बीड़ा विज्ञानने उठाया है उसमें योग देते रहेंगे। हम सबको इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि हमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंके लिए विदेशोंका मुँह न ताकना पड़े।

जो सज्जन किसी कारण वश ग्राहक रहना सम्भव न समझते हों उनसे भी प्रार्थना है कि एक बार उस महदुद्देश्य पर विचार करलें जिससे विज्ञानका संचालन घाटा सहकर और तकलीफ उठाकर परिषद् कर रही है और तब भी यदि वह यही निर्णय करें कि ग्राहक न रहेंगे तो कृपा कर कार्ड सूचनार्थ डालदें, जिसमें परिषद्को।=)॥ की हानि न उठानी पड़े, जो पोस्टेजमें और व्यर्थ प्रति छपवानेमें पड़ता है।

निवेदक—मंत्री,
विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

भाग ११ की विषयानुक्रमणिका

Vijnana Reg. No. 708

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं यन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १२ } तुला, संवत् १९७७ । अक्टूबर सन् १९२० । { संख्या १

बच्चों की शिक्षा

आदर्श जीवनके लिए शिक्षा आवश्यक है

समाजके सङ्गठनकी आवश्यकता सबको मालूम होती है। सामाजिक जीवनको पुष्ट करना प्रत्येक मनुष्यका धर्म माना जाता है। लोगोंका विचार है कि सामाजिक जीवनकी शिथिलता और आदर्श-हीनताका प्रभाव व्यक्तियोंके जीवनपर तुरन्त दिखलाई पड़ता है। सामाजिक उन्नतिके कारण राष्ट्रमें प्रौढ़ता आती है। इसलिए सामाजिक जीवनके विकासकी ओर ध्यान देना हम सबका कर्तव्य है। प्रत्येक व्यक्तिको चाहिए कि अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक धर्मका पालन निरन्तर करता रहे और सदा अपने सामने यह उद्देश्य रखे कि समाज और राष्ट्र बलवान होते जायँ।

प्रश्न उपस्थित होता है कि सामाजिक शक्तिको बलवती बनानेका क्या ढंग है? रुचिके अनुसार लोग इस प्रश्नके जुदे जुदे उत्तर दे सकते हैं। परन्तु इसमें कुछ भी मतभेद नहीं हो सकता कि हर तरहकी सामाजिक उन्नतिका मूल बालकोंकी शिक्षापर निर्भर है। जिस प्रकारकी शिक्षा राष्ट्रके बच्चोंको मिलेगी वैसेही मनुष्य तैयार होंगे। शिक्षापर ज़ोर देनेका असली कारण यह है कि शिक्षाके द्वारा ही उच्च आदर्श मनुष्यके हृदयमें स्थान बना लेते हैं। जीवनको परमोत्कृष्ट आदर्शोंके अनुसार विकसित करके आदर्शोंके अनुसार कार्य करनेकी प्रबल आकांक्षा और शक्ति मनुष्यको शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होती है। उच्च आदर्शोंको स्थापित करना और उनके अनुसार कार्य करनेके लिए मनुष्योंको उत्तेजित करना आवश्यक है। मान लीजिये कि बातकी बातमें हर प्रकारके आवश्यक परिवर्तन सामाजिक जीवनमें कर दिये जायँ और एक क्षणमें आदर्श सामाजिक नियमोंके अनुसार समाजका सङ्गठन कर दिया जाय तो भी मनुष्य जीवनके तथा समाज सङ्गठनके सच्चे उद्देश्यकी सफलता सम्भव नहीं है। क्योंकि बिना पूरी

पूरी तैयारी किये हुए साधारण स्त्री पुरुषोंके लिए यह असम्भव है कि वह किसी उच्च आदर्शके अनुसार अपने जीवनको बना कर निरन्तर उस आदर्शके अनुसार काम करते रहें। जबतक परिश्रम और निरन्तर उद्योग द्वारा उच्च आदर्शके अनुसार जीवन निर्वाह करनेकी आदत नहीं डाली गयी है तबतक यह सम्भव नहीं है कि साधारण स्त्री पुरुष आदर्श सामाजिक स्थिति से बहुत जल्द आदर्शहीन जीवनकी ओर फिसल न जायँ। मनुष्य का चरित्र, उसकी आदत और उसके विचार तुरन्त उसे आदर्श अवस्थासे नीचे ढकेल देंगे और सब कृत्रिम उन्नतिको नष्ट कर देंगे।

छठीसे शिक्षारम्भ

बच्चोंको बड़ी होशियारीसे शिक्षा देनी चाहिये क्योंकि लड़कपनमें चरित्र जैसा बन जाता है वैसा ही जन्मभर रहता है। बिगड़ी हुई शिक्षाको सुधारना बहुत दुस्तर है। लड़कपनमें जो बुरे संस्कार पड़ जाते हैं उनको दूर करना बहुत मुश्किल है। ज़्यादा उम्र हो आनेपर बहुत ज़्यादा परिश्रम करनेपर भी सफलता कम होती है। यह साधारण अनुभवकी बात है। एक साधारण उदाहरण द्वारा यह बात स्पष्ट रीतिसे समझमें आ सकती है। जैसे युवावस्थामें कोई मनुष्य दुराचरणके कारण अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ ले तो जन्मभर तकलीफों और परेशानीमें फँसा रहेगा; और चाहे जितनी होशियारीसे और स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करते हुए जीवन निर्वाह करे पर स्वास्थ्य लौटकर नहीं आता और दुराचरणके बुरे फल कभी पीछा नहीं छोड़ते। एक बार स्वास्थ्य खो बैठनेपर स्वच्छता, शुद्ध वायु, भोजनके वैज्ञानिक नियमोंका पालन, उचित व्यायाम इत्यादि तन्दुरुस्तीके नियम मनुष्यकी सहायतामें असमर्थ रहते हैं और ऐसा मनुष्य निरन्तर उद्योग करनेपर भी अकसर बीमार बना रहता है। इसके विपरीत कोई हट्टा कट्टा जवान यदि लापरवाहीसे कुछ नियमोंका उल्लंघन भी करे तो भी बहुत ज़्यादा तकलीफ़में नहीं फंसता। इसलिए यदि कोई मनुष्य अपने जीवनको सार्थक, उपयोगी और पुरुषार्थी बनाना चाहता है तो आरम्भसे ही इस बातका ध्यान रखे कि लड़कपनका ज़माना समाप्त करके मनुष्य श्रेणीमें क़दम रखनेके समय बदन हृष्ट-पुष्ट हो और मन शुद्ध और पवित्र हो। यदि शारीरिक तथा मानसिक प्रौढ़ता जीवनयात्रा आरम्भ करनेके समय ही मौजूद नहीं है तो उद्योग और परिश्रम निष्फल रहेंगे। मानसिक विकासके लिए भी यही नियम हैं जो शारीरिक विकासके लिए हैं। विचार करनेसे यही समझमें आता है कि बच्चेके पैदा होते ही उसके चरित्र संगठनकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये और छठी होनेसे पहिले ही उसको चरित्रवान् बनानेका उद्योग आरम्भ हो जाना चाहिये।

मां बापका कर्त्तव्य

विवाहित लोगोंको इस बातपर विचार करना चाहिये कि वह अपने बच्चोंको किस प्रकारकी शिक्षा देंगे और उनको किस कामके लिए तय्यार करेंगे। उन्हें भली प्रकार सोच विचारकर यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वह अपने बच्चोंको किस प्रकारके जीवनके लिए और किन आदर्शोंकी सफलताके लिए तैयार करना चाहते हैं। बच्चा पैदा होनेसे पहिलेही माता पिताको यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि कमसे कम बच्चा पैदा होतेही शिक्षा आरम्भ हो जानी चाहिये। हिन्दू धर्मानुसार मनुष्यके संस्कार पैदा होनेसे पहिलेही आरम्भ हो जाते हैं। पर यदि देर भी कर दी जाय तो पैदा होनेके समयसे तो अवश्य ही संस्कारोंका आरम्भ हो जाना चाहिये। पाश्चात्य विद्वानोंकी भी यही राय है; परन्तु बहुत कम लोग इन प्रश्नोंकी ओर ध्यान देते हैं। अधिकांश लोग अपने धर्मका ख्याल नहीं करते, बिना किसी सोच विचारके बच्चे उत्पन्न करते रहते हैं और बच्चा पैदा होनेके बहुत दिन बाद तक इस बातपर

विचार नहीं करते कि किस प्रकारकी शिक्षा नवजात शिशुको देनी उचित है। किसीके भी सामने कोई भी शिक्षाका आदर्श स्पष्ट रीतिसे मौजूद नहीं है। बच्चा पैदा हो जाता है तो मांबाप उसे देख कर प्रसन्न होते हैं और विस्मित होते हैं। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता है, उसके विकासकी ओर और उसकी शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। मामूली रिवाजके अनुसार बिना किसी निश्चित आदर्श अथवा उद्देश्यके शिक्षाका आरम्भ कर दिया जाता है। माँ बाप बच्चेके विचित्र विकासको देखकर विस्मयमें डूबे रहते हैं। यह विस्मय उनके चित्तमें तीन प्रकारकी अवस्थाएं उत्पन्न करता है।

पहली अवस्था यह है कि वह बच्चेको खिलौना समझते हैं और उसे अपने मन बहलावका साधन मात्र मानते हैं। बच्चेको फुसलाकर बहलाकर और कभी कभी खाने पीनेका लालच देकर लोग उससे तमाशा करवाते हैं और उसकी भोली भाली बेतुकी बातोंपर खुश होते हैं। एक हद तक बच्चेके साथ खेल करनेमें अथवा उसे खिलानेमें कोई बुराई नहीं है परन्तु उचितकी सीमाको लोग बहुत जल्द लांघ जाते हैं और बच्चा लोगोंके तब मज़ाकका शिकार बन जाता है। अपने मन बहलावके लिए बच्चेको तंग करना और उसकी आदत बिगाड़ना ठीक नहीं है। देखा जाता है कि अशिक्षित लोग बच्चोंको गाली देना और मारना सिखलाते हैं और उनके तुतलाते तथा लड़खड़ाते दुर्व्यवहारपर खुश होते हैं। परन्तु यह लोग इस बातको भूल जाते हैं कि बचपनके कुसंस्कार जन्मभरतक पीछा नहीं छोड़ते। हमारा अनुभव है कि कितने ही दुराचरण माता पिता तथा बड़े बूढ़े लोग बच्चोंको बचपनमें ही खेलके बहाने सिखला देते हैं।

दूसरी अवस्था यह है कि लोग बच्चेको दयाके योग्य पदार्थ समझते हैं। बच्चेकी कमज़ोरी और परिमित शक्तिको देखकर बच्चेको इच्छानुसार कार्य करनेकी इजाज़त दे देते हैं और दया तथा प्यारके कारण उसको नाराज़ नहीं करना चाहते—बच्चा जैसा चाहता है करता है। लाड़ और प्यारके कारण उसकी इच्छाओंका उल्लंघन कोई नहीं करता। इसका फल यह होता है कि बच्चा ज़िद्दी हो जाता है और बड़ा होनेपर समझाने बुझानेपर किसीकी राय नहीं मानता। सहानुभूति अच्छी चीज़ है। बच्चेके साथ प्रेम और सहानुभूतिका बर्ताव करना चाहिये। बच्चेकी परिमित शक्तिका विचार करके उसकी त्रुटियोंको सहानुभूतिके कारण क्षमा भी कर देना चाहिये। लेकिन सहानुभूति और दयाके कारण उनको बेरोक टोक अपनी इच्छानुसार उचित और अनुचित व्यवहारके लिए अधिकार नहीं देना चाहिये। क्योंकि बच्चेके चरित्रपर इसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। इस अनुचित सहानुभूतिका यह फल होता है कि बच्चा चरित्रहीन रह जाता है और धार्मिक भावोंके अंकुर उसके हृदयमें जमने नहीं पाते। सच तो यह है कि इस तरह बच्चेका समस्त धार्मिक जीवन नष्ट हो जाता है।

तीसरी अवस्था यह है कि लोग बच्चेके हार्दिक भावोंको नहीं समझ पाते। बच्चा कौनसा काम किस लिए कर रहा है और कोई इच्छा किस लिए प्रकट कर रहा है, यह समझमें न आनेके कारण सहानुभूति नहीं रहती। बच्चेके मनोभावोंको न समझनेके कारण उसकी सहायता नहीं करते। रोते हुए अथवा बेचैन देखकर बच्चेको मारना या उसके ऊपर चिल्लाना बुरा है। इसके बजाय रोने और बेचैनीके कारण जाननेका उद्योग करना चाहिये, और कारण मालूम करके उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

माता पिताको निम्न लिखित रीतिसे व्यवहार करना चाहियेः—

१. सदा प्रेमपूर्ण बर्ताव करना चाहिये। परन्तु प्रेमकी मात्रा आवश्यक और उचित सीमासे बाहर

न जाने पाये तथा सोच समझ कर प्यार किया जाय।

२. सदा सहानुभूतिपूर्ण और मधुर भाषामें बातचीत करना चाहिये और स्वयम् शान्त तथा प्रसन्न वदन रहना चाहिये।

३. सदा व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक परमोच्च आदर्शको सामने रखकर काम करना चाहिये। निरन्तर उन्नति करनेका उद्योग करते रहना चाहिये।

४. बच्चोंके लिए शिक्षा पूर्ण खेल तथा मन बहलानेके ढंग उपस्थित करके उनमें उपरोक्त आदर्शोंके अनुसार कार्य करनेकी इच्छा उत्पन्न करना चाहिये।

बच्चोंको शिक्षा देते समय तथा उनको उच्च आदर्शोंके अनुसार कार्य करनेमें तत्पर करनेके लिए माता पिताको स्वयम् दृढ़प्रतिज्ञ, प्रेम और करुणापूर्ण, प्रसन्न वदन, शिष्ट और पहलेसे पहले बच्चेकी आवश्यकता जान लेनेकी शक्तिसे सम्पन्न होना चाहिये।

बच्चे की नक़ल करनेकी शक्ति

बच्चोंको आरम्भिक शिक्षा देनेका कोई अच्छा प्रबन्ध हमारे देशमें नहीं है। कमसे कम पाँच वर्षकी अवस्था तक और कभी कभी सात वर्षकी अवस्था तक भी बच्चोंकी कोई विशेष देख भाल नहीं की जाती। यह समझा जाता है कि कमसे कम पाँच वर्ष तक खेलने और खानेकी अवस्था है। पाँच वर्षकी अवस्थाको प्राप्त होनेके पहले बच्चेके मन और बुद्धिके विकासकी ओर विरले ही माता पिता ध्यान देते होंगे। अधिकांश लोग लाड़ प्यारके कारण, समय न मिलनेके कारण अथवा बच्चेके विकास और उसकी शिक्षा सम्बन्धी नियमोंके अनभिज्ञताके कारण बच्चेके अमूल्य जीवनके पहले पाँच वर्ष वृथा नष्ट होजाने देते हैं। केवल इतना ही नहीं है, लोग इस बातपर भली भांति ध्यान नहीं देते कि बच्चेमें नक़ल करनेकी शक्ति बड़ी प्रबल होती है और इस लिए जैसा व्यवहार और आचरण अपने चारों ओरके मनुष्योंमें देखता है ठीक वैसा ही आप भी सीख लेता है। यही कारण है कि ऊपर इस बातपर विशेष ज़ोर दिया गया है कि माता पिता अपने आचरणोंकी ओर विशेष ध्यान दें और धार्मिक, राष्ट्रीय और सामाजिक आदर्शोंको भली भांति समझ कर उनके अनुसार स्वयम् अपने जीवनका व्यतीत करें। बच्चा उच्च शुद्ध, पवित्र और धार्मिक आचरणका तथा परमोच्च आदर्शोंका नमूना देखेगा, तो आपसे आप बिना माता पिताके कुछ भी परिश्रम किये सदाचारी चरित्रवान और उच्च आदर्शोंका वैसा ही अनुयायी बन जायगा।

नौकरोंके भरोसे

भले घरोंमें यह प्रथा प्रचलित है कि बच्चोंको खिलानेके लिए नौकर रख दिये जाते हैं, जिनके ऊपर बच्चेकी देख भाल छोड़ दी जाती है। जो इतना रुपया खर्च कर सकते हैं कि नौकरकी तनख्वाह दे सकें वह बच्चेकी खबरगीरी झंझट समझकर नौकरोंपर टाल देते हैं। काहिली और खुदगर्ज़ीके कारण अपना परमावश्यक और परम पवित्र धर्म नौकरोंके सर मढ़कर बच्चेके रोने धोने और उसकी सेवा सुश्रूषासे अपनी जान छुड़ाते हैं। अपने क्षणिक सुखके लिए या अपने लिए कुछ शान्त चित्तता प्राप्त करनेके लिए बच्चेके मचलने और रूठनेको नौकरके मत्थे मढ़ते हैं। इसका परिणाम अच्छा नहीं होता है। जो सहानुभूति माँको अपने बच्चेके साथ होती है वह किसी नौकरको कभी नहीं हो सकती। जिस प्यारके साथ माँ अपने बच्चेके गुस्सेको सहकर उसे ठीक राहपर लगाती है वह किसी भी नौकरके हृदयमें होना असम्भव है। किसी भी माताका इतना कठोर हृदय न होना चाहिये कि वह अपने बच्चे-

की देखभाल दूसरोंके हवाले करके परमानन्दके सुखसे अपनेको वंचित रखे।

नौकरोंका आचरण कभी भी बच्चोंके लिए अनुकरणीय नहीं हो सकता, और न यह आशा की जा सकती है कि साधारण श्रेणीके लोग उच्च आदर्शवान् जीवनका नमूना बच्चोंके सामने उपस्थित कर देंगे। इसलिये बराबर इस बातका उद्योग करते रहना चाहिये कि वांछित प्रभावोंके अतिरिक्त कोई भी ऐसे प्रभाव बच्चोंके ऊपर न पड़ने पावें, जिनसे आदर्श चरित्र सङ्गठनमें बाधा पड़े। टोले मोहल्ले और गली कूचेके स्त्री पुरुषों और बच्चों तकसे बड़ी होशियारीके साथ भोली अवस्थाके बच्चोंको बचाये रखना चाहिये। टोना टटका और नज़र शायद कुछ भी नहीं हैं, परन्तु अन्य लोगोंके आचरण और उनके विचार बच्चोंके विकासपर तथा उनके चरित्रपर बड़ा भारी असर डालते हैं। इसलिए बुद्धिमती माताको निरन्तर इस बातका उद्योग करते रहना चाहिये कि बच्चे पर कोई भी बुरे प्रभाव न पड़ने पावें और न किसी दुराचरणका उदाहरण उसके सामने उपस्थित होने पावे।

छःसे लेकर पांच छः वर्ष की अवस्था तक बच्चेकी शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। यही ज़माना है जब भविष्यके समस्त जीवन की नींव पड़ती है। जैसी नींव होगी वैसी ही इमारत उसपर खड़ी होगी।

मैं अपने देशवासियोंसे आग्रह पूर्ण प्रार्थना करता हूँ कि वह जब माता और पिताकी श्रेणीमें अपना नाम लिखाने को तत्पर हों तो अपने संतानके प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को अवश्य भली भाँति समझ लें।

—अमरनाथ, एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.।

नय-वनस्पति

[ले०—श्री० श्यामसुन्दर बर्मा, विशारद]

आजकल राजनैतिक चर्चाकी ही अधिकता है। स्कूल और कालेजोंमें यदि हम दो विद्यार्थी किसी विषयपर दिलचस्पीके साथ बातचीत या वाद-विवाद करना चाहते हैं तो वह राजनीति ही है। किन्तु यह वादविवाद राजनीति या दण्डनीतिकी विद्या (Political science) पर अधिक नहीं होते। वर्तमान राजनैतिक घटनाएं उनका सारा समय ले लेती हैं। वास्तवमें विद्यार्थियोंका सम्बन्ध विद्यासे मुख्य रहना चाहिये और घटनाओंसे गौण। आज हम अपने पाठकोंका ध्यान आचार्य 'दण्डिन्' के एक वाक्यकी ओर दिलाना चाहते हैं, जो उन्होंने दशकुमार चरितके अष्टमोच्छ्वासमें विश्रुत चरितके अन्तमें लिखा है।

संस्कृतके कवियोंका यह स्वभाव है कि कथा लिखते लिखते वह बड़े मार्केकी बातें लिख जाते हैं। आचार्य दण्डिन्का यह वाक्य भी उसी ढङ्गका है। वाक्य यह है:—"अचिन्तयच्च राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तं, शक्तयश्च मंत्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण हि विनिश्चयोऽर्थानाम, प्रभावेण प्रारम्भः, उत्साहेननिर्वहणम्। अतः पंचांगमन्त्रमूलो द्विरूपप्रभावस्कन्धश्चतुर्गुणोत्साहविटपो द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः षड्गुण किसलयः शक्तिसिद्धि पुष्पफलश्च नयवनस्पति र्नेतुरुपकरोति।" इस वाक्यमें किस उत्तमतासे राज्यप्रबन्धका वर्णन है। एक वृक्षका रूपक बांधकर कविने, ८१० शब्दोंमें ही राज्यकी मशीनका वर्णन बड़ी चतुराई और बुद्धिमानीके साथ किया है।

कथा तो यह थी कि सुश्रुत अपने परम मित्र राजपुत्र राजवाहनसे अपनी कृतियोंकी चर्चा कर रहा था कि उसे विन्ध्यगिरिमें घूमते घूमते एक सुपात्र बालक देख पड़ा। उसका साथी एक वृद्ध

पुरुष पानी निकालनेके प्रयत्नमें कुएमें ही गिर पड़ा था। सुश्रुतने उसे निकाला और बालककी क्षुधा पिपासा शान्त करके वृद्धसे उनके वहां आनेका कारण पूछा। वृद्धने बताया कि उस बालकका पितामह पुण्यवर्मा बड़ा यशस्वी और प्रतापी राजा था किन्तु उसके पिताने अपनी अनीतिसे सारा राज्य खो दिया और अन्तमें मारा गया। इसी कारण यह बालक और उसकी माता अपने बान्धवांके घर भाग गये, किन्तु रानीने उस राजाकी बालकको मारनेकी इच्छाका पता पाकर बालकको मेरे साथ इस जंगलमें भेज दिया है। यहीं आपसे भेंट हो गई। भाग्यसे सुश्रुत उस बालकका सम्बन्धी निकला अर्थात् उस बालक भास्करवर्माकी माताके और सुश्रुतके मातामह (नाना) एक ही थे। सुश्रुतने भास्करवर्माको उसके पिताके स्थान पर किस प्रकार स्थापित किया और किस प्रकार भास्करवर्माके पिता अनन्तवर्माका राज्य उसके हाथसे निकल गया था इसके वर्णनमें कविने किस उत्तमतासे राजनीतिक छलकपटका वर्णन किया है, यह दशकुमारचरितके पढ़नेवाले ही जानते हैं। सुश्रुत भास्करवर्माको उसके पिताके सिंहासन पर बैठा कर किस प्रकार राज्यका संगठन करता है इसका ही वर्णन कविने उपर्युक्त रीतिसे किया है।

सुश्रुतने विचार किया कि राज्य तो तीन शक्तियोंके अधीन रहता है। वह शक्ति मंत्र, प्रभाव और उत्साह हैं। इन्हीं तीनोंकी परस्पर सहायतासे राज्य सम्भव है। आजकल समयके प्रभावसे हम लोग राजा शब्दको बुरा समझते हैं, किन्तु राजा शब्दका शाब्दिक अर्थ हमारे ही अनुकूल है। जो प्रजाको रंजित अर्थात् प्रसन्न रखे वह राजा (रञ्जयतीति राजा) और ऐसे ही राजाके राज्यके लिए इन तीनों शक्तियोंकी परस्पर सहायताकी आवश्यकता है। नहीं तो अपनी मनमानी करनेवालेको मंत्र (मंत्रणा Council) की क्या आवश्यकता है। यह तो उसकी सत्ताके बाधक हैं। किन्तु भारतवर्षमें हिन्दुओंके समयमें कदापि राजा मनमाने ढंगसे शासन नहीं करते थे। और जब कभी, कोई राजा अपनी मनमानी करता था उसको उसका फल भी वैसा ही मिलता था। राजाके अधिकार किस प्रकार परिमित थे और प्रजाके अधिकारों तथा हितों की किस प्रकार रक्षा होती थी, इसके लिए हमारे पूर्व पुरुषोंने क्या क्या नियम बनाये थे और इनकी राजनीति कैसी थी इसका सब पता वेद रामायण महाभारत, स्मृति पुराण शुक्रनीति, तथा कौटिल्यके अर्थशास्त्र आदिसे लग सकता है। उस समय भी हम लोग राजनीतिमें भाग लेते थे किन्तु हमारी राजनीति दूसरी थी और वैसा ही उसमें भाग लेने का हमारा ढंग था। हमको यह कहने का बिलकुल अधिकार नहीं कि उस समय न कोई राजनीति थी और न प्रजा को अपने अधिकारों तथा हितों का ध्यान था। हम यह भी नहीं कह सकते कि वह राजनीति खराब ही थी।

हम कह चुके हैं कि राज्य तीन शक्तियोंके अधीन है और यह शक्तियां मंत्र, प्रभाव और उत्साह हैं। मंत्र या मंत्रणासे कार्य का निश्चय होता है और प्रभावसे उस कार्य का प्रारम्भ; और उत्साहसे कार्य पूरा किया जाता है। उस समय भी आजकल की तरह राज्य (Government) के आवश्यक अङ्गोंमें व्यवस्थापन (legislation) मुख्य था। जैसे आजकल नियम हमारे चुने हुए प्रतिनिधि बनाते हैं, वैसे ही उस समय सर्वसाधारणके, और हम कह सकते हैं, कि ईश्वरके भी द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंने (ऋषियोंने) नियम बनाये थे। यह नियम सर्वकालके लिए ही उपयुक्त थे और देश काल और पात्रोंके अनुसार बदलने वाली परिस्थितिके लिए उस मंत्रणा द्वारा नियम बनते थे। आजकल की व्यवस्थापक सभाएं (Legislatures) बहुत अंशमें यही किया करती हैं। उनका काम पालसी (Policy) निर्धारण ही है।

राज्य (Government) का दूसरा अंग शासन (administration) ही है अर्थात् उसका दूसरा कार्य प्रबन्धात्मक (executive) है। इसका वर्णन भी दण्डिनने किया है। शासन (administration) यदि रहे भी और उसका प्रभाव (Prestige) कुछ न हो तो उसका रहना न रहना बराबर ही है। इसी लिए कहा है कि मंत्रणासे पालिसी (Policy) को निश्चित करके प्रभाव (Prestige) के आधार पर ही कार्यका आरंभ होना है। अब यदि उत्साह न हो तो प्रारम्भ किया हुआ कार्य जहां का तहां रह जाय। इस लिए प्रारम्भ किए हुए कार्यको पूरा करनेके लिए उत्साह (enthusiasm) की बड़ी आवश्यकता है। इस प्रकार राज्य तीन शक्तियोंके अधीन है और इन तीन शक्तियों की परस्पर सहायतासे ही राज-कार्य संभव है।

इस प्रकार पाँच अंगवाला मंत्र (पञ्चाङ्गमन्त्र मूलः) जिसकी जड़ और दो प्रकारका प्रभाव जिसका स्कन्ध या पेड़ी है (द्विरूपप्रभावस्कन्धः) और चार गुणवाला उत्साह जिसकी ४ शाखाएं हैं (चतुर्गुणोत्साह विटपः) और ७२ प्रकृति (मुहकमोंके हुक्काम) जिसके पत्र हैं (द्विसप्ततिपत्रः) और षड्गुण जिसके किसलय या पल्लव हैं और शक्ति और सिद्धि जिसके फूल और फल हैं ऐसा नय-वनस्पति अथवा राजरूपी वृक्ष नेता या नीतिज्ञ (राजा) का उपकार करता है। देखा आपने, कैसा सुन्दर वृक्ष है! जड़से लेकर फूलफल तक हरा भरा है जिसमें कोई दोष नहीं। भला ऐसे वृक्षकी शीतल छायामें कौन न रहना चाहेगा।

अब हम संक्षेपमें बताना चाहते हैं कि मंत्रके पांच अङ्ग क्या क्या हैं। प्रभावके दो प्रकार कौन हैं, उत्साहके चार गुण क्या हैं, ७२ प्रकृति क्या हैं और षड्गुण कैसे हैं।

मंत्र—सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।
विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमिष्यते॥

साथी (मित्र), साधनके उपाय, देशकालका विभाग, विपत्तिका प्रतीकार और सिद्धि, यह मंत्रके पांच अङ्ग कहाते हैं। मंत्र (Policy) करते समय इनका अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

प्रभाव—सप्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डयोः-इत्यमरः।

अमरकोशमें लिखा है कि कोश, खजाना, (treasury finance) और दण्ड, सेना, (army, police etc) को प्रभाव कहते हैं। क्या विना इनके प्रभाव (Prestige) रह सकता है?

उत्साह—दाक्ष्यं, अनालस्यं साधनशुद्धिः साध्यशुद्धिः चत्वारो गुणाः।

दाक्ष्य या होशियारी (Dexterity), अनालस्य या अदीर्घसूत्रता, ठीक ठीक साधनका ज्ञान (clear idea of the means) और साध्यका ठीक ठीक ज्ञान ये उत्साहके चार गुण हैं। क्या बिना इन गुणोंके कार्यको समाप्त कर देना कभी संभव है?

द्विसप्ततिप्रकृति

मध्यमस्य प्रचारंच विजिगीषोश्च चेष्टितं।
उदासीन प्रचारंच शत्रोश्चैव प्रयत्नतः॥
एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः।
अष्टौ चान्या समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः॥
अमात्य राष्ट्र दुर्गार्थ दण्डाख्याः पञ्चचापराः।
प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः॥

मनु० १५५, ५६, ५७ सप्तम अध्याय।

अर्थात् मध्यम, विजगीषु, उदासीन, शत्रुरूप मूल प्रकृति एक; शत्रुकी भूमिसे आगेका मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पीछे रहनेवाला पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार; इन बारह प्रकृतियोंमें प्रत्येकका मंत्री, राज्य, दुर्ग, अर्थ, दण्ड यह पांच द्रव्य प्रकृति हैं और मध्यमादि बारह प्रकृति इस प्रकार सब बहत्तर प्रकृति हैं। जिन्हें और अधिक इसके सम्बन्धमें जानना हो, वह मनुस्मृतिकी कुल्लूक भट्टकी टीका देखें।

षड्गुण

संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधी भावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा॥

संधि, विग्रह, यान (चढ़ाई) आसन (उपेक्षा करके घरमें बैठ रहना), द्वैध (अपनी सेनाके दो भाग करना), आश्रय (शत्रुसे पीड़ित होकर दूसरे बली राजाका आश्रय करना) यह छः राजाके उपकारक हैं; इस कारण इनको गुण कहते हैं। इनमें जिस गुणका आश्रय करनेसे अपना उपकार और शत्रु-राजाकी हानि हो उनका ही आश्रय करो। इनके भी दो दो भेद हैं। विस्तारसे मनुस्मृतिमें लिखे हैं।

यदि मंत्र (Policy) ठीक हो। फिर कोश और दण्ड भी खूब हो और उत्साहसे कार्य किया जाय तो अवश्य ही राजाको फल फूल रूपी शक्ति और सिद्धि मिलेगी और प्रजाका भी अनन्त उपकार होगा। अन्तमें यदि आचार्य दण्डिनको "नय-वनस्पति" पसन्द है तो आज हम राज्य की "मशीन" (administrative machinery) के पीछे मस्त हैं और यही भारत और इण्डिया (India) में अन्तर है।

सृष्टिकी अद्वैतताके प्रमाणमें वैज्ञानिक विचार

अहा! जगत् पिताकी इस अखिल सृष्टिमें आदिसे अन्त तक एक ही शक्तिका चमत्कार दिखाई दे रहा है। इस सर्वश्रेष्ठ शक्तिने सब पदार्थोंमें अपनी कुछ ऐसी फूंक दी है कि जिधर देखिये उधर ही पदार्थोंमें नीचीसे नीची श्रेणीसे लेकर ऊँचीसे ऊँची श्रेणी तक एक अद्भुत समानताका ज्ञान हो रहा है। छोटे पौधेसे लेकर बड़ेसे बड़े जीव तककी आप परीक्षा कर देखें, जिन आङ्गारिक पदार्थोंका वह छोटा जीव बना हुआ है उन्हींका वह बड़ा जीव भी बना हुआ मिलेगा। उदाहरणके लिए सबसे छोटे एककोषीय जीव, अमीबा (Amœba) को सूक्ष्म दर्शक द्वारा देखिये। उसमें आप क्या पाते हैं? आप देखेंगे कि कोष शहदकी तरह गाढ़े व दानेदार पदार्थ से भरा है, जिसके अन्तर्गत एक छोटा गोल टुकड़ा विद्यमान है। इस गोल टुकड़ेको कोषका केन्द्र अथवा मींगी (Nucleus) कहते हैं। इसी तरह आप बड़ेसे बड़े जीवके शारीरिक अंशकी परीक्षा कीजिये। सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा देखनेसे आपको ज्ञात होगा कि यह अंश एककोषीय अमीबाके ऐसे कितने कोषोंका बना है। हर एक कोषमें वही पदार्थ दृष्टिगोचर होगा जो पदार्थ सूक्ष्मदर्शक द्वारा अमीबा (Amœba) में देखा गया। अर्थात् उसी तरहका जीवाद्यम इसमें भी हम देखेंगे। केवल अन्तर यही है कि यहां जीव अगणित अमीबा ऐसे कोषोंका बनकर इतना बड़ा हो गया कि नग्न नेत्रोंसे ही इसको शरीरको हम देख सकते हैं।

पाठक गण! जिस मस्तिष्क वा ज्ञानतन्तु द्वारा संसारकी इमारत खड़ी आप देख रहे हैं वही ज्ञान तन्तु उसी रङ्गरूप और रचनाका आप नीचेसे नीचे योनिसे ऊपरसे ऊपर योनि तकमें पाएंगे। जिस तरह हमारा मस्तिष्क सुनने व देखनेका ज्ञान प्राप्त करता है उसी तरह उस छोटी योनि एसिडिएंज़ (Ascidians) अथवा कोथले व ऐमफी अकसस अथवा दुधारे (Amphioxus) का मस्तिष्क अपनी योनिके हिसाबसे काम करता है। यदि समुद्रके बसनेवाले कोथले (Ascidians) वा (Amphioxus) दुधारे जैसे छोटे जीवके ज्ञान तन्तुकी रचना देखी जाय तो ज्ञात होगा कि यह ज्ञान तन्तु श्वेत रङ्गका पतला कोमल पदार्थ है जिसमेंसे बहुत सूक्ष्म कोमल धागे निकल कर शरीरके समस्त भागोंमें प्रवेश करते हैं और मस्तिष्ककी तरह उन भागों द्वारा वह समस्त अंगोंका कार्य उसी स्थानसे कर रहा है।

इसी तरह दुधारेमें उसी रङ्गका कोमल पदार्थ होता है और कोथलेके मस्तिष्ककी तरह ही धागों

द्वारा उसके कुल शरीरका कार्य करता है; जैसे खाना पीना तैरना इत्यादि। अब मछलीकी योनिमें आइये। इसमें भी तरह तरहका कोमल श्वेत रङ्ग का मस्तिष्क पाइयेगा। ऊँची योनिके हिसाबसे इसमें यह भाग बड़ा होगा और इसके धागे अधिक फैले हुए होंगे। मछलीका कुल काम इस सूक्ष्म अवयव पर ही निर्भर है। एक नाड़ी द्वारा उसके मस्तिष्कमें ज्ञानकी धारा प्रवेश करती है, दूसरी नाड़ी द्वारा मस्तिष्कसे धार बह कर कार्यमें परिवर्तित हो जाती है। इसी तरह और ऊपरकी योनियोंकी परीक्षा करते करते मनुष्य योनिमें आइये। यहां भी आप वही बात पाइयेगा। स्थूल वा सूक्ष्म शरीरके जितने कारबार हैं सब एक ही जगहसे हो रहे हैं। सबकी बैठक मस्तिष्कके श्वेत कोमल पदार्थमें है, जहांसे धार ज्ञान तन्तुओं द्वारा सब नीचेके अङ्गोंमें उतरकर शरीरका काम चला रही है। कोथलाकारों (Ascidians) में यह मस्तिष्क एक इश्चके लगभग बारीक धागेकी तरह होता है, जो आगेकी ओर दो तीन जगह फूला हुआ होता है। इसका रूप रङ्ग बिलकुल मनुष्यके मस्तिष्ककी तरह होता है। कहीं कहीं दो चार नाड़ियां निकलती हुई दीखेंगी। इस सूक्ष्म योनिसे दुधारोंकी जोनिमें आनेसे उसी रूप रङ्गका मस्तिष्क इसमें हम कुछ बड़े और स्पष्ट रूपमें पाएंगे। मनुष्य जोनिमें इस भागका विस्तार सब जोनियोंसे अधिक पावेंगे। इसमें नाड़ियोंकी संख्या भी अगणित है और उसमेंसे शाखाएँ फूट फूट कर समस्त शरीरमें फैल कर शरीरका काम वृहत् रूपमें कर रही हैं। मनुष्यके मस्तिष्कमें हमको वह सब स्थान पृथक् पृथक् स्पष्ट रूपमें दिखाई देंगे जहांसे पृथक् पृथक् अङ्गका कार्य हो रहा है और जिसपर नीचेकी कुल रचना खड़ी है। इन बातोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्रत्येक जोनिके जीवका विकास नीचेकी जोनिसे ऊपरकी ओर हुआ है और जो अवस्था व रचना नीची जोनिमें पाई जाती है वही अवस्था व रचना उससे बढ़कर ऊपरकी जोनिमें भी पाई जाती है। इसी तरह मनुष्य जोनिसे ऊपर भी ऐसी रचनाका अनुभव हो सकता है। जिसकी रचना मनुष्यकी जोनिकी तरह हो पर अवस्था और भी श्रेष्ठ हो। सारांश फूलोंकी तरह एक धागेमें बंधा हुआ संसार कुल रचनाकी एकता (Oneness of the universe) का अनुभव करा रहा है। इस बातके प्रमाण वनस्पति वर्गमें भी विद्यमान हैं।

पाठकगण! थोड़ा ध्यान अब फूलों की ओर दीजिये। देखिये सृष्टिकर्ताने इनको भी एक ही डोरमें पो रखा है। इनमें सन्तान उत्पत्तिके साधन की रचना सबमें एक ही तरह की है। जिस तरह मछलीसे लेकर ऊंचीसे ऊंची जोनि तकमें सन्तानोत्पत्ति की क्रिया एक ही सिद्धान्त पर होती है, उसी तरह समस्त वनस्पतियाँ भी सन्तानोत्पत्तिके एक ही डोरेमें बन्धी हुई हैं। कोई फूल आप तोड़ लीजिये सबमें आप पुंकेसर (Stamen) और स्त्रिकेसर (Pistil) पायेंगे। अधिकांश वनस्पतियोंके फूलोंमें, किसी वर्गकी यह क्यों न हो, यह दो भाग अवश्य रहते हैं। या तो एक ही फूलमें दोनों हों वा अलग अलग फूलोंमें हों। बिना इनके संयोगके फल की उत्पत्ति असम्भव है।

यदि पुंकेसर (Stamen) की ध्यान पूर्वक परीक्षा की जाय तो ज्ञात होगा कि यह लिङ्ग छोटे छोटे दाने, वीर्याणुओं, (pollen grains) से भरे थैलों का बना हुआ है। यह रचना किसी पौधेके किसी फूलमें देखी जा सकती है। छोटीसे ले बड़ी तक कुल वनस्पतियोंमें वही रचना पाई जाती है। फूलसे फल, फलसे बीज, बीजसे पौधा; यह अटूट नियम एक ही जीवात्मके धागेसे बंधा हुआ संसार की एकताको भली भांति सिद्ध कर रहा है। जिस प्रकार छोटे जीवसे लेकर बड़ेसे बड़े जीव तकमें कोष की रचना एक ही है और ज्यों ज्यों ऊपर चढ़िये उनकी संख्या बढ़ती जाती है और कोषोंमें तरहें तरह की क्रियाओंके बढ़ जानेसे उनकी सूरतें तरह तरह की हो गई

हैं, ठीक वही अवस्था वनस्पति वर्गमें भी देखी जा सकती है। किसी वनस्पति का कोई छोटा अंश काट कर सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखिये। यह अंश भी आप को ऊपर कहे हुए जीवों की भांति अनेक कोषों का बना हुआ शहद की मक्खियोंके छत्ते की तरह दीख पड़ेगा। प्रत्येक कोषमें ठीक वही रचना दीख पड़ेगी जो आप एक कोषीय जन्तु में देखते हैं। वही जीवनमूल और वही केन्द्र। भली भांति परीक्षा करने पर ज्ञात होगा कि यह जीवनमूल ही वनस्पतियों तथा जन्तुओं का जीवन है। जिस प्रकार जन्तुओंमें मस्तिष्क व नाड़ियां पाई जाती हैं उसी प्रकार वनस्पतिमें भी यह विद्यमान हैं। इसी की विद्यमानता सर जगदीशचन्द्र बोसके प्रयोगोंने भली भांति प्रमाणित कर दी है। अतः इसके प्रमाणमें अब कुछ लिखना हम यहाँ पर आवश्यक नहीं समझते।

पाठको! इन्हीं बातोंसे अब यह ज्ञात हो गया कि वास्तवमें संसारके कुल पदार्थों का विकास एक ऐसी अद्भुत शक्तिपर निर्भर है जो कुल जीवोंको एक ही तत्वसे बांधे हुए संसार की एकता का बोध करा रही है।

सम्राट् अकबर और उसके राजकर्मचारीगण

[ले०—पं० शेषमणि त्रिपाठी, इतिहासरत्न]

भारतकी मध्यकालीन राजनीतिमें सम्राट्की शक्ति और अधिकारोंकी नियामक व्यवस्था कोई न थी। जिस शासकमें जैसी क्षमता होती थी, वैसी ही उसकी शक्ति और अधिकारोंकी इयत्ता भी रहती थी। एक सबल सुलतान या सम्राट् सब कुछ कर सकता था और एक निर्बल व्यक्तिका सिंहासनपर रहना भी दुष्कर हो जाता था। शासनका सब कार्य तथा अधिकार एक व्यक्तिके हाथमें था। उसे किसीकी सम्मति लेना आवश्यक न था। कोई उसकी इच्छाको रोक न सकता था। उसका शब्द ही कानून था। हाँ, कुरानके नियमोंका पालन करना सभी मुसलमान बादशाहोंको अनिवार्य था। परन्तु यह बात केवल सिद्धान्तमें सत्य थी; क्योंकि इतिहासमें अनेक उदाहरण इसके विरुद्ध मिलते हैं, सोभी हिन्दुस्तानमें ही नहीं, वरन् पच्छिमके मुसलमान देशोंमें भी।

मुसलमानी राष्ट्रका सिद्धान्त है कि समस्त शक्ति और अधिकार बादशाहसे ही औरोंको मिलते हैं। पद इत्यादि सब कुछ वही देता है। कोई भी संस्था या समाज विभाग उसके अधिकारके बाहर नहीं है। राज्यकी समस्त भूमिका स्वामी भी वही है। मध्यकालीन भारतमें उमरा लोगोंको जो जागीरें दी जाती थीं उनका उत्तराधिकारी सम्राट् ही माना गया है। उन लोगोंका सम्मान और पद सम्राट्की इच्छा पर निर्भर रहता था। अतएव उमरालोग उसे प्रसन्न रखनेके लिए खुशामद किया करते थे। * मुगल दरबारमें सम्राट्के मुखसे साधारण बातके निकलने पर भी "करामात!" "करामात!!" की झड़ी लग जाती थी! फारसीका यह छन्द उस समयके उमरावोंका प्रायः सिद्धान्त सा था :—

अगर शह रोज़ रा गोयद शबस्तीन्।
बबायद गुफ़्त ईनस्त माहोपरवीन्॥

यद्यपि मुसलमान नरपतिपर कुरान तथा उलमा इत्यादिका कुछ अधिकार रहता है तथापि वास्तवमें बादशाहकी शक्तिका नियंत्रण इनके द्वारा नहीं हो सकता था। उसकी शक्तिका नियन्त्रण केवल राजद्रोहोंके भयसे होता था। भारतके मध्यकालीन इतिहासमें बादशाह या सम्राट् किसी ईश्वरीय अधिकारसे सिंहासनका उत्तराधिकारी नहीं बनता था। सिंहासनाधिकारी होनेकी क्षमता

* बर्नियरकी भारत यात्रा Constable पृष्ठ २६४

तथा शक्ति निदर्शनके अतिरिक्त*दूसरा कोई नियम नहीं था। पहलेके प्रायः सभी सबल मुगल सम्राटोंने अपने देहान्तके बहुत पहले ही शासनके उत्तराधिकारी निर्दिष्ट करनेकी प्रवृत्ति दिखलाई थी। इससे ज्ञात होता है कि उस समय उत्तराधिकारके नियमकी जड़ मुग़लों द्वारा पड़ रही थी।

बीनने 'टर्क्स इन इंडिया' नामक पुस्तकके उपोद्घातमें दिखलाया है कि भारतमें मुगल साम्राज्यके स्थापकोंपर स्त्री जातिका कितना और कैसा प्रभाव पड़ा था। उन्नत तथा कार्य कुशल जातिकी स्त्रियोंसे उत्पन्न और अवनत तथा विविक्त (Secluded) स्त्रियोंसे पैदा हुई जातियोंमें महान् अन्तर है। वह तूरानियोंके वंशज थे, परन्तु चंगेज़खांके बाद तीसरी पीढ़ीमें उन्होंने इसलामधर्म स्वीकार कर लिया और प्रायः आर्य रुधिरकी स्त्रियोंसे (बहुधा लूट इत्यादिमें पकड़ी हुई कन्याओंसे) सम्बन्ध करने लगे। इन स्त्रियोंके दोष इस जातिमें भी आ गये। शेरखां (शेरशाहसूर) ने बाबरके खेमेमें मुगलोंके आचारोंका अनुभव प्राप्त करके (अब्बासखां, "डाउसन" चतुर्थ) कहा था कि "मैं मुग़लोंको हिन्दसे निकाल दूंगा, क्योंकि यह युद्धमें अफ़गानोंसे बढ़कर नहीं हैं। अफ़गानोंने अपनी फूटके कारण राज्य खो दिया। मैंने मुग़लोंको ध्यान से देखा है। उनमें नियम-पालन भाव (Discipline) नहीं है। तथा उनके शासक अपने पदके गर्वमें आकर शासन कार्य दूसरों (सचिव इत्यादिकों) पर छोड़ देते हैं और उनकी बात और कार्य्यपर अन्धोंकी तरह विश्वास करते हैं। यह राज कर्मचारीगण सैनिकों कृषकों या राजद्रोही जमींदारों इत्यादि सभी लोगोंके विषयमें अनुपयुक्त और बुरे लक्ष्यसे कार्य्य करते हैं...... सुवर्णके इस लोभके कारण वह शत्रु और मित्रमें कोई अन्तर नहीं रखते।"

किन्तु अकबर और उसके वंशजोंके इतिहासको चाहे स्थूल दृष्टिसे देखा जाय और चाहे सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय दोनों दशाओंमें यह स्पष्ट हो जायगा कि* "विजित भारतवर्षने अपने विजेताओंपर ही विजय प्राप्त कर ली।"

"बाबर और अकबरकी विजयोंका चरम परिणाम यह हुआ कि भारतवर्षने स्वयं मुग़ल राष्ट्र न बनकर मुग़लोंकोही भारतीय बना लिया। हाथ स्वयं उसी रंगमें रंग गया जिसमें उसे काम करना पड़ा।" माहमाङ्कन, नूरजहां बेग़म और जहांनारा इत्यादिके उदाहरणोंसे विदित होता है कि राजनीति पर मुग़लहरमका कभी कभी क्या, प्रायः, सदा ही बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। पर अकबरने हरमको भी तो गाढ़े हिन्दू रंगमें* रंगनेकी प्रथा चलायी थी! यहां तक कि सुल्तान सलीम (जहांगीर) और शाहजहां हिन्दू स्त्रियोंके पुत्र थे! परन्तु प्रधान बात तो यह थी कि हिन्दुस्तानमें मुग़लोंने विजित राज्यके शासनकी बागडोर अपने ही हाथमें नहीं रखी। हिन्दू लोग अधिक संख्यामें देशके शासन तथा सेनाके प्रबन्धमें लगाये जाते थे। उन्होंने हिन्दुस्तानमें देखा कि जनसंख्या बहुत अधिक है। देशमें एक सभ्य जातिका निवास है और साथ साथ पहलेकी एक विजेत्री जातिके लोग जो मुग़लोंके ही धर्मके हैं बसे हैं। इन मुग-

* जब अकबर अपनी मृत्यु शय्यापर था, उस समय राजा-मानसिंह खुसरू (सलीमकापुत्र) को सिंहासनका अधिकार दिलाना चाहते थे, किन्तु अकबरने सलीमको ही साम्राज्य प्राप्तिका अधिकार दिया। सलीम अपने पिताका कुछ दो वर्ष पहले विरोधी रहा। अपने एक मात्र बचे हुए पुत्रको सिंहासनके लिये नियुक्त करनेमें सम्भवतः सम्राट्ने यही सोचा था कि मुगल राजवंशमें पुत्रके ही उत्तराधिकारी होनेका नियम बना दिया जाय। खुसरूको छोड़कर जहांगीरके चुननेमें अकबरका सम्भवतः यही ख्याल था। बाबर और शाहजहांके इतिहाससे ज्ञात होता है कि लोग ज्येष्ठ पुत्रको उत्तराधिकारी बनाकर अन्य पुत्रोंको उनके अधीन रखना चाहते थे।

* विन्सेन्ट स्मिथ? केन्नेडी "History of the great Moghuls" पृष्ठ १८।

* हिन्दुओंके साथ विवाह-सम्बंध।

लोंमें चंगेज़खांकी कठोरता और निर्दयताको स्थान नहीं था। वह इतने मूर्ख न थे कि देशके कृषकोंको निकाल बाहर करनेकी इच्छा करते। अस्तु, भारतका मुग़ल सम्राट् मुग़ल नहीं, प्रत्युत् भारतीय रंगमें रंग गया था। उसके शासन-कार्यमें भारतियोंकी अधिक संख्या लगी थी और हरममें भी राजपूत कुमारियोंको लानेकी चेष्टा की जाती थी।

अस्तु, भारतका मुग़ल सम्राट् मुसल्मान राष्ट्र (The Muslim State) के सिद्धान्तोंका भी अनुचर नहीं था। उसके लिये कुरान ही सब कुछ न था। वह राजनीतिको भी समझता था। हां, औरङ्गज़ेबने भारतमें मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तोंको पुनः प्रचलित करनेकी विशिष्ट और महती चेष्टा की थी, परन्तु उसे सफलता न हुई। उल्टा मुग़ल साम्राज्यकी स्थितिको भी उसके कार्योंने डांवाडोल कर दिया। मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तोंको पहले पहल अकबर ने ही खुले मैदानमें तोड़ा। काफ़िरोंके ऊपर जो जज़िया कर लगाया जाता था उसे सम्राट् ने बन्द कर दिया था। इसके अतिरिक्त उसके अनेक कार्य मुस्लिम राष्ट्रके नियमोंके विरुद्ध थे। सितम्बर १५७६ (रजब ९८७) में उसने प्रधान उलमाओंसे यह स्वीकार ही करा लिया कि काज़ियोंकी सम्मतिमें विभिन्नता होने पर सम्राट्का निर्णय सभी उलमाओंको मान्य होगा। उन लोगोंने मान लिया कि ईश्वरकी दृष्टिमें सुल्ताने-आदिलका पद काजीके पदसे बड़ा है। अतएव उसकी आज्ञा उलमाओं तथा समस्त राष्ट्रको मान्य होनी चाहिये। इस प्रकार सम्राट्के अधिकारोंमें मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तों द्वारा जो धार्मिक नियन्त्रण रखा गया था, उससे भी अकबर मुक्त हो गया। यों तो उसकी स्वतन्त्रतामें पहले भी कोई बाधा नहीं डालता था, परन्तु अब तो उलमाओंने सम्राट् अकबरकी सर्वोपरिस्थिति और काजियों और उलमाओंकी अधीनता यथाविधि भी स्वीकार कर ली। इस प्रकार मुग़ल सम्राट्की शक्ति और उसके अधिकार मुस्लिम राष्ट्रके सुल्तानसे भी बढ़कर थे। उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी। धर्म गुरुओंको भी उसके कार्योंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं रह गया। केवल राज द्रोहका भय हो सकता था। परन्तु जब देशी सामन्तगण तथा हिन्दूप्रजा संतुष्ट ही नहीं वरन् उसके सहायक भी थे तब थोड़ेसे कट्टर सुन्नियोंके असन्तोषका उसे डर नहीं हो सकता था। और यदि वह सुन्नियोंके असन्तोषको दूर करनेमें लग जाता, तो हिन्दुओंमें असन्तोष फैल जाता और उस दशामें अधिक हानिकी सम्भावना थी। अस्तु, सम्राट् अकबरमें अपूर्व क्षमता थी और वह शक्ति और अधिकारमें पूर्ण स्वतन्त्र था।

सम्राट्की शक्ति और अधिकारोंकी विवेचनाके बाद यह आवश्यक है कि राजकर्मचारियोंके पदोंका भी दिग्दर्शन कराया जाय। सिद्धान्तमें तो एक स्वतंत्र सम्राट्के लिये कोई मंत्रिमण्डल रखनेका नियम आवश्यक नहीं है। अकबर यदि राजकार्यमें योग देनेके लिये दूसरोंको न रखता तो भी उसे कोई नियमोल्लङ्घनका दोष नहीं लगता। पर वह स्वयम् सब कार्य्य नहीं कर सकता था। एक व्यक्तिमें चाहे उसमें असीम क्षमता हो तथापि साम्राज्यका शासन अकेला, बिना औरोंकी सहायताके नहीं कर सकता। उसे राजकर्मचारी नियुक्त करने ही पड़ेंगे। हां, इतना अवश्य है कि इन राजकर्मचारियोंपर सम्राट्का पूर्ण अधिकार रहेगा और उसकी इच्छाके ही अनुसार उनकी नियुक्ति और पदच्युति इत्यादि होगी। अकबरके समयमें राजकर्मचारियोंकी यही स्थिति थी। यही दशा सभी स्वतंत्र शासकोंके कर्मचारियोंकी रहती है। अस्तु, अकबरके शासन कालमें मुख्य मुख्य सचिव यह थेः—

१. वकील या प्रधान सचिव।

यह राज कर्मचारियोंके शीर्षस्थानीय था। तीक्ष्ण बुद्धि, सब विषयोंके गूढ़ तत्वोंके ज्ञाता,

शिक्षित, निश्छल, कार्यपटु, आत्मीय और पर कीयके प्रति समदर्शी, शत्रु और मित्रके प्रति निष्पक्ष, सभी सम्प्रदायोंके हितचिन्तक और विश्वासी व्यक्ति को ही सम्राट् इस पद पर नियुक्त करता था। सभी का मंगल साधन वकीलोंका कर्त्तव्य था।

२. वजीर या * राज-सचिव

वज़ीर सर्व प्रधान सचिव होता था। अच्छे गणितज्ञ, सत्यवादी, सावधान, सुदक्ष, लोभहीन, एवं मनोहर और परिष्कृत लेखन-प्रणालीके ज्ञाता को सम्राट् इस पदपर नियुक्त करता था। राजकीय धनागारका तत्वावधान और हिसाब (लेखा) परिदर्शन करना इनका कर्तव्य था।

३—मीर बख्शी या प्रधान बख्शी :—

प्रधान बख्शी को बख्शी-उल-मुमालिक या मीर बख्शी कहते थे और प्रायः उसे † अमीरुल उमरा की उपाधि दी जाती थी। बख़्शी-उलमुमालिकके‡ यह कर्तव्य थे :—

(१) सेनामें रंगरूटोंको भर्ती करना।
(२) मंसबदारोंकी एक सूची रखना, जिसमें राजधानी तथा बाहरी प्रान्तोंमें नियत अफ़सरोंका विवरण भी हो।
(३) राजभवनके रक्षक अफ़सरोंकी सूची और उनके कार्य विभागका ब्यौरा रखना।
(४) तनख्वाहकी स्वीकृतिके नियम तैयार करना।
(५) नकद तनख्वाह पानेवाले अफ़सरोंकी सूची रखना और वेतनोंका विवरण रखना।
(६) डाकका प्रबन्ध करना।
(७) ऐसे रजिस्टर तैयार करना जिनमें छुट्टी या बिना छुट्टीके अनुपस्थित कर्मचारियों, देहान्तों, पदच्युतियों, अग्रिम दिये हुए नकद द्रव्य, मुतालिबा और प्रान्तोंमें कार्यकरनेवाले अफ़सरोंके पास भेजे हुए दस्तखत (लिखित आज्ञाका प्रेषण) इत्यादिका विवरण हो।
(८) किसी भारी युद्धके अवसरपर सेनाके पुरो भाग, मध्य भाग पृष्ठदेश और किनारोंपर सेनापतियोंके स्थानोंका निर्देश करना।
(९) युद्ध दिवसके प्रातःकाल सम्राट्के सामने प्रत्येक सेनापतिके अधीनस्थ मनुष्योंकी ठीक संख्या इत्यादिका विवरण उपस्थित करना।

इर्विनके अनुसार बख्शीको ही मीरे-अर्ज़ भी कहते थे। मीरबख्शीके अतिरिक्त तीन और बख्शी हुआ करते थे जिनके अधिकारों तथा कर्त्तव्योंमें थोड़ा बहुत अन्तर रहता था। अपरंच सूबोंमें भी इसी प्रकारके कार्य करनेके लिए अफ़सर रहा करते थे। प्रान्तीय बख्शीके ही पदमें प्रायः वाक़या* निगार का भी पद सम्मिलित रहता था। आज कल भी जिले की तहसीलोंमें बख्शी का पद कहीं कहीं होता है परन्तु अकबरके बख्शी दूसरे ही प्रकारके होते थे। आधुनिक बख्शी अत्यन्त साधारण लेखकके तौर पर होता है। किंतु अकबरके समयमें बख्शी का पद साम्राज्यमें बड़ा ऊंचा पद था। बख्शीके कर्त्तव्य और अधिकार भी बड़े भारी भारी और उत्तर दायित्वके थे। आधुनिक और तत्कालीन बख्शीमें आकाश और पातालका अन्तर है। अतः इनकी तुलना करना ठीक नहीं है।

* वजीर को कभी कभी दीवान कहते थे।

† इर्विन (The army of the Indian Moghuls पृष्ठ ३८)का अनुमान है कि अकबरके समयमें एकसे अधिक व्यक्तियोंको अमीरुल उमराकी उपाधि मिलती थी, पर आलमगीरके समयसे एक साथ दो व्यक्ति इस उपाधिको नहीं धारण करते थे।

‡ Irvine पृष्ठ ३८।

* सम्भवतः वाकया निगार और वाक़या नवीस का पद एक ही था।

४—सदर या सदरुस्सदर

अकबरी शासनके पूर्व भागमें सदर सर्वोच्च धार्मिक कर्मचारी था। धर्म का शासन उसके हाथमें था। वह मृत्युदण्ड भी दे सकता था तथा धर्म अथवा परोपकारके निमित्त* बिना सम्राट् की आज्ञा लिये भूमि समर्पित कर सकता था। नये भूपतिके नाममें उस का खुतबा पढ़ना भूपतिकी पदप्राप्तिको नियमानुकूल बना देता था। किंतु बादको सम्राट्ने सदरकी शक्तिको कम कर दिया और १५८२में तो इसका अंत ही कर दिया। इस पदको मिटाकर सम्राट्ने सदरुस्सदरके कार्य को छः प्रान्तीय अफ़सरोंमें विभक्त कर दिया।

वकील, वज़ीर, मीरबख्शी और सदर इन चार बड़े बड़े अफ़सरोंके अतिरिक्त अन्य कर्मचारी भी महती शक्ति रखते थे; जैसे अबुलफजल न तो कभी विधिवत् वज़ीर बनाया गया और न वकील; परन्तु वह सम्राट् का बहुत समय तक अत्यन्त विश्वस्त मन्त्री और राज्य सचिव था। शासनपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। राजभवनके कर्मचारियोंका भी अधिक प्रभाव था। पाकालय, जलपूर्ति, अश्वालय इत्यादि राज भवनके भिन्न भिन्न भागोंका अच्छा संगठन था। हकीम हुम्मामका जो मीर बकावल अर्थात् पाकालय का अध्यक्ष था उसका दरबारमें बड़ा प्रभाव था। वह सम्राट्का मित्र था और उसकी गणना† नवरत्नोंमें हुई है। अबुलफ़ज़ल राजभवनके कर्मचारियोंका वर्णन करते हुए लिखता है कि "सम्राट् सब पदों (ओहदों) के कार्योंसे परिचित है और उसने प्रत्येक विभागके लिये यथोचित नियम बनाये हैं। .... इन पदोंपर वह सत्यप्रिय (ईमानदार) लोगों को नियुक्त करता है। ...... राजभवनके बहुत से कर्मचारी सैनिक वेतन पाते हैं तो भी इस शासनके ३६ वें वर्षमें राजभवनके कर्मचारियों को ३०९१८६०९५ दाम (७७२९६५२ ।।।=)) वेतन दिया जाता है।" इस सम्बन्धमें वह फिर लिखता है कि "राज्यके व्यय तथा कर प्राप्तिके लिए सौसे अधिक दफ्तर हैं जिनमें से प्रत्येक एक नगर अथवा छोटेसे राज्यके समान मालूम होता है।" राजकीय हरम भी कई समूहोंमें विभक्त था और हर एक समूह एक स्त्री दारोगाके अधीन रहता था। बड़े फाटकपर मुशरिफ रहता था और अन्दर रक्षक स्त्रियां थीं। हरमकी रक्षाका पूरा प्रबंध था। इसके लिये भी बहुत से कर्मचारी नियुक्त थे। राज भवन और हरमके अतिरिक्त साम्राज्यके शासन कार्यके लिये राजधानी और प्रान्तोंमें बहुत बड़ी संख्यामें राज कर्मचारी नियुक्त थे।

ख़जाने के प्रबंधके लिये प्रत्येक करोड़ीके साथ एक एक ख़जांची भी रहता था। राजधानीमें एक प्रधान खजांची भी बाद को नियुक्त किया गया, जिसे सहायता देनेके लिये दारोगा और लेखक नियत थे। इनाम, दान तथा अन्य इसी प्रकारके व्ययोंके लिये भी खजांची, कर्मचारी और पेशकार इत्यादि अलग रहते थे। रत्नालय (जवाहिरातका दफ़्तर) में भी एक ख़जांची, एक तेपकची, एक दारोगा और बहुत से निपुण जौहरी थे। टकसालमें तो अनेक प्रकारके कर्मचारी होते थे। अबुलफ़ज़लने टकसालके कर्मचारियोंके कार्य और उनकी फ़ीसोंका अच्छा विवरण दिया है। टकसालका प्रधान अफ़सर एक दारोगा होता था। तथा दरोगाके अतिरिक्त सर्राफ़, अमीन, मुशरिफ़ व्यापारी, खजांची, मापक (तौलने वाला) पिघलाने वाला, जर्राब, सिक्ची, सुचक, कुर्शब, निचेवी वाला, खक्शु, इत्यादि अनेक छोटे बड़े कर्मचारी उसमें लगे रहते थे। सम्राट्को जब बाहर जाना होता

* स्मिथ : अकबर; पृष्ठ ३४८

† अकबरी दरबारके नवरत्न यह थे :—

राजा बीरबल, राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, हकीम हम्माम, मुल्ला दुपियाजा, फ़ैज़ी, अबुलफज़ल, मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानां और तानसेन

था उस समय अनेक कर्मचारियोंकी आवश्यकता होती थी। इन कर्मचारियोंके भी पद प्रायः स्थायी होते थे; क्योंकि बराबर इनकी आवश्यकता पड़ती रहती थी। इस कार्यके लिये १००० फ़राश (ईरानी और तूरानी भी), ५०० पुरोगामी, १०० जलवाहक, ५० बढ़ई, ५० शिविरनिर्माता, ५० योजक, ३० चर्मकार और १५० भंगी नियत थे। परन्तु इन छोटे छोटे नौकरोंकी गणना राजकर्मचारियोंमें नहीं की जा सकती। किंतु इस विभागके कर्मचारियोंमें मीर मंज़िलका पद भारी होता था। वही खेमे का स्थान इत्यादि भी निर्दिष्ट करता था। इस कार्यमें अनेक मंसबदारोंकी भी आवश्यकता पड़ती थी।

चौकी देनेके लिए राजधानीमें तीन प्रकारके कर्मचारी होते थे। मंसबदार, अहदी, घुड़सवार और पैदलोंके सात विभाग थे, जिनमेंसे प्रत्येक एक एक दिन चौकी देता था। प्रधान उमराओंमें-से कोई इनका अध्यक्ष होता था। कुशक (चौकी) का मीरेअर्ज़ और अमीर सदा सम्राट्के समीप रहते थे; क्योंकि सभी आज्ञायें इन्हींके द्वारा भेजी जाती थीं। इन सात विभागोंके अतिरिक्त सेनाके बारह भाग थे, जिनमेंसे प्रत्येक एक एक महीने चौकी देता था। और फिर दूसरे १२ विभाग थे जो एक एक वर्ष तक बारी बारीसे यह काम करते थे। इर्विनने (पृष्ठ १८६) तीसरेका वर्णन नहीं दिया है और पहले दोनोंके विषयमें उनका कहना है कि "मैं नहीं समझता कि यह दोनों विभाग (सात और बारहके) एक ही साथ कैसे काम करते थे!"

तोपखाना एक दारोगाके अधीन था और उसमें बहुत से लेखक काम करते थे। उमराओं और अहदियों को अच्छी तनख्वाहें दी जाती थीं। बन्दूकचियानके भी वेतन अच्छे थे। बड़े बड़े अफ़सर चाहे वह मुल्की बेड़ोंमें हों अथवा फौजीमें (Civil or military) में हों, मंसबदार कहलाते थे। 'मंसब' केवल सैनिक सेवाके लिये नहीं प्रयुक्त होता था। प्रत्येक* राजकर्मचारी जो साधारण सिपाही या दूतके पदसे ऊंचा होता था मंसब पाता था। वास्तवमें साधारण कर्म-चारियोंको छोड़कर अन्य दशाओंमें राजकीय कोशसे रुपये पानेके दो ही उपाय थे। या तो मंसब स्वीकार करके राजकीय सेवा की जाय या पवित्र पुस्तकोंके विद्यार्थी या, मुतवल्ली या ख़ादिम या दरवेश या काज़ी या मुफ़्ती होकर मददेमआशके लिये प्रार्थना की जाय। † इन अफ़-सरों (मंसबदारों) की तैंतीस श्रेणियां थीं। देह बाशीसे लेकर देह हज़ारी तक मंसबदार होते थे। ८००० के ऊपरके मंसब कभी भी ‡ राज-कुमारोंके अतिरिक्त दूसरोंको नहीं दिये गये थे। दूसरे प्रकारके सैनिक कर्मचारी 'अहदी' थे। अह-दियोंके दीवान और बख्शी अलग हुआ करते थे। प्रधान 'अमीर' इन लोगोंका अध्यक्ष रहता था। इन सैनिक कर्मचारियोंके अतिरिक्त एक मीर बहरी भी होता था जो नौ-सेनाका प्रबंध करता था।

अकबरका साम्राज्य भूमिकरकी व्यवस्थाके लिये प्रसिद्ध है। इस विभागमें भी बहुत से कर्म-चारी लगे रहते थे। आमिल गुज़ार कर वसूल करनेके लिये, × तिपकची बितिक्ची हिसाब इत्यादि ठीक रखनेके लिये, तथा कानूनगो, पटवारी, मुहर्रिर, ज़मींदार, मुकद्दम, नायब, मुंसिफ़, खजांची और थानेदार इत्यादि वसूली, हिसाब, अथवा अन्य प्रकारसे इस कार्य्यमें सहायता देनेके लिये नियुक्त

* इर्विन पृष्ठ १

† मंसबदारोंके नीचे रोजदार होते थे, जो लिखने इत्यादिका काम करते थे।

‡ ७००० का मंसब बादको राजा टोडर मल तथा दो एक और अफ़सरोंको मिला था।

× ग्लैडविनके आईन अकबरीमें तिपकची नाम दिया है पर स्मिथने अपने अकबरके इतिहासमें (पृष्ठ ३७६) बितिक्ची लिखा है। Topukchy gladwin Bitikchi : Smith.

रहते थे। भूमिकरके सम्बन्धमें इन कर्मचारियों-पर दृष्टिक्षेप फिर करना होगा; अतएव यहांपर केवल निर्देश कर देना ही पर्याप्त है।

न्याय और विचारका कार्य मीरआदिल और काज़ीके सिपुर्द था। काज़ी विचार करता था और मीर आदिल दण्ड निश्चय करके दण्डकी आज्ञा देता था। इसके अतिरिक्त स्थान स्थानके सम्वादोंका पता लगानेके लिये वाक़िया नवीस नियुक्त थे। पुलिस का भी प्रबंध था। नगरोंमें दोषोंको बंद करने और सुव्यवस्था रखनेके निमित्त कोतवाल रहा करते थे। कोतवाल नगरको महालोंमें बांटकर एक एक मीर महाल के अधीन कर देता था और नगरके प्रत्येक महालमें दो दो गुप्तचर रखता था। कोत-वालके काय प्रायः आजकलके कोतवालोंके कार्योंसे मिलते जुलते हैं किन्तु तत्कालीन और आधुनिक कोतवालमें अंतर भी पर्य्याप्त है।

अकबरका साम्राज्य सूबोंमें विभक्त था। पहले बारह सूबे थे पर बादको बढ़ा कर उनकी संख्या १५ कर दी गयी। सूबेका शासन एक सूबे-दार या सिपहसालारके अधीन रहता था। जब तक सूबेदार अपने पदपर स्थित रहता था, उसके अधिकार प्रायः अपरिमितसे थे। शासनकी सैनिकताका इसीसे पता चल जाता है कि प्रान्तीय शासकको जिसे बादको "सूबेदार" कहने लगे आईने अकबरीमें 'सिपहसालार' नाम दिया है। प्रान्तकी प्रजा और सेना उसके अधीन थी और उसीके सुशासनपर प्रजाकी सुखसमृद्धि निर्भर थी। न्यायका विचार भी उसे करना पड़ता था। न्याय कार्यमें उसे काज़ीसे सहायता मिलती थी। आव-श्यकतानुसार मीरअदल भी नियुक्त कर दिये जाते थे। अस्तु, प्रान्तीयशासकोंको अपने प्रान्तपर पूरा अधिकार था। प्रबंध, सेना और न्याय (Civil, military, Judicial) तीनों विभागोंका कार्य उसके अधीन था। किंतु अबुलफ़ज़ल कहता है कि "जो कार्य नौकरोंके द्वारा हो सकता है वह पुत्रोंको नहीं सिपुर्द करना चाहिये। जो कार्य पुत्रों द्वारा किया जा सके वह सिपहसालारको उन्हीं से कराना चाहिये।" सूबेके प्रत्येक विभागमें योग्य व्यक्तियोंको उसे नियुक्त करना चाहिये। उसे डाकुओं इत्यादिका दमन करके सड़कोंको सुरक्षित रखना चाहिये। सेनाकी नियमप्रियता (discipline) का ध्यान रखना, कृषि तथा जन संख्याकी वृद्धिका उद्योग करना उसका कर्त्तव्य था। आईनेअकबरीका रचयिता कहता है कि "भिन्न भिन्न कार्यके लिये वास्तवमें सुयोग्य व्यक्तियोंको नियत करना चाहिये। और यदि वास्तविक योग्यताके व्यक्ति न मिलें तो सिपाह-सालारको उचित है कि वह उस पदपर कई व्यक्तियोंको नियत करे जो न तो एक दूसरेके सम्बन्धी हों और न घनिष्ट परिचित हों।" इस प्रकार सिपहसालार अपने प्रान्तका शासक था और प्रान्तके अधिकतर कर्मचारियोंको वही योग्यतानुसार नियुक्त करता था।

सिपहसालारके नीचे फौजदार होता था। उसकी भी नियुक्ति सम्भवतः सम्राट् स्वयं करता था। एक प्रान्त में कई फौजदार होते थे। इनके अधीन कई परगने रहते थे। जान पड़ता है कि सरकारों के ही अध्यक्षको फौजदार कहते थे। फौजदार का यह भी कर्तव्य था कि वह राजद्रोहियोंका दमन करे, करों की वसूली में कर सम्बन्धी कर्मचारियोंकी सहायता करे और आवश्यकता पड़ने पर कर देना अस्वी-कार करनेवालोंके प्रति सैनिक बलका भी प्रयोग करे। उसके लिये नियम था कि जहाँ पैदलों से काम चल जाय, रिसाले (Cavalry) का उप-योग न करे। उस समय अकबर के शासनकालमें याज्ञवल्क्य का "दण्डस्त्वगतिका गतिः" वाला सिद्धान्त माना जाता था। राजद्रोहियोंको दमन करनेपर जो लूटका माल होता था उसका पञ्च-मांश तथा विभक्त करनेपर बचा हुआ कुल भाग फौजदार को राजकीय कोशमें भेज देनेका नियम

था। सम्राट् की आज्ञाओं और नियमोंको कार्यमें परिणत करना उसका कर्तव्य था।

इस प्रकार अकबरी साम्राज्यके शासनकार्यमें कर्मचारियोंका एक वृहत् समुदाय लगा था। ऊपरके पृष्ठोंसे ज्ञात होता है कि चार प्रधान राजकर्मचारियोंके (वकील, वजीर, मीरबख्शी और सद्र) अतिरिक्त राजभवन, हरम, खजाना, रत्नालय, टकसाल, खेमा और तोपखाना इत्यादिमें बहुत से कर्मचारी नियुक्त थे। राजकरकी वसूली इत्यादि और पुलिस, न्याय तथा प्रान्तीय शासन कार्यके लिये बहुत से योग्य व्यक्तियोंको कार्य करना पड़ता था। राजकर विभागके आमिल, कानूंगो, पटवारी इत्यादि, न्यायविभागके काज़ी और मीरअदल तथा पुलिस विभागके कोतवाल और मीरमहाल इत्यादि सभी अकबरके उद्देश्योंके पूर्ण करनेमें यथा साध्य सहायक थे। सूबोंमें सिपाह सालारों की शक्ति तथा सरकारोंसे फ़ौजदारोंका कार्य विशेष ध्यान से देखने का विषय है। सेनाके विविध कर्मचारियों तथा मंसबदारों इत्यादि पर फिर दृष्टिक्षेप करने का अवसर मिलेगा। यह विदित होता है कि आज कलकी भांति उस समय भी* राजकर्मचारियोंका दल अत्यंत संगठित रूपमें था। पर उस समय इतना ध्यान देने पर भी घूस लेने वालोंकी संख्या कर्मचारियोंमें अधिक थी †। बड़े बड़े कर्मचारियों को सम्राट् स्वयं नियुक्त करता था तथा मंसबदारी, वकालत, सिपहसालारी राज कुमारोंमेंसे किसीकी अतालीकी, अमीरुल उमरा, महायती, विज़ारत, बख़शीगीरी, और सदारत आदि की नियुक्ति फ़रमान या सनद द्वारा होती थी। इनके अधिकार अधिक थे, परन्तु अन्तमें यही कहना है कि साम्राज्यके छोटे बड़े सभी कर्मचारियोंकी नियुक्ति और पदच्युति सम्राट्के बायें हाथका खेल था।

* बदाऊनी भाग २ पृ० २० तथा केनेडी पृष्ठ १०४

† अकबरके शासन कालमें हिन्दू लोग प्रतिष्ठित पदों पर थे। इस का कुछ ब्यौरा आगे चल कर मिलेगा। कीन The Turks in India पृष्ठ ८३।

भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले०—श्री० 'जटायु']

बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीके विद्यार्थियोंने बड़े विचित्र विचित्र आविष्कार किये हैं। इस युद्धमें इनसे अलौकिक फल प्राप्त हुए हैं। इस इतिहासमें स्थान स्थानपर इनका समावेश होगा।

बाबू खद्मपद्म घोषने अपनी गवेषणाओंसे यह सिद्ध किया कि मनुष्य जो भोजन करता है उसके ९० अंश शरीरसे मल मूत्रके रूपमें निकल जाते हैं और केवल १० अंश काम आते हैं। इसका भी बहुत सा भाग अन्यान्य रीतिसे नष्ट हो जाता है। इन्होंने सोचा कि अगर भोजनके सारकी बटी बनायी जायं तो वह यात्रियोंके लिये बड़ी उपयोगी होगी। भोजनमेंसे घुलन शील और पौष्टिक पदार्थ निकालकर और सुखाकर छोटे बेरके समान बटी बनानी चाहियें। एक बटी खालेनेसे २४ घण्टे तक भोजनकी आवश्यकता नहीं रहेगी, न शरीरका बल न्यून होता है। इन वायुयानोंमें प्रत्येक मनुष्यके पास भोजन बटीका एक एक डिब्बा है। आपने कार्तूस देखे होंगे। कार्तूसोंमें शीशेकी गोली अथवा चार पांच छर्रे होते हैं। इनके पीछे बारूद अथवा गन्काटन होती है। सबके अन्तमें एक तांबेकी टोपी लगी होती है। जब घोड़ा टोपीपर गिरता है चिनगारी उत्पन्न होती है और इस चिनगारीसे बारूद अथवा गन्काटन दग जाती है। दगनेमें जो शक्ति उत्पन्न होती है, उससे गोली अथवा छर्रे बड़े वेगसे आगे ढकेले जाते हैं। विश्वविद्यालयके एक और पार्सी विद्यार्थी मच्छरजी भींगुरजी चिड़िया वालाने विचारा कि गन्काटनके स्थानपर अगर कोई द्वितीय वस्तु

उससे अधिक वेगसे दगने वाली रखी जाय तो गोली भी बहुत दूर जायगी। उन्होंने सोचकर (Trinitrotoluene) ट्राइ नाइट्रो-टूलीनका एक नई रीतिसे प्रयोग किया। इससे गोली साधारणतः पचीस मील तक जा सकती है। मिस्टर चिड़िया-वालाने इतिहासमें पढ़ा था कि जर्मनीने १०० वर्ष हुये कि विषैली गैसोंका प्रयोग किया था और यह (Pipes) पाइपोंमें भरकर जैसे अग्नि बुझानेके लिये जल फेंका जाता है उसी तरह फेंकी जाती थीं, पर यह बड़ी भद्दी रीति थी; इन्होंने विचारा कि जैसे होलीके कुमकुमोंमें गुलाल भरकर फेंका जाता है वैसे ही अगर यह किसी वस्तुके छोटे छोटे कुम-कुमोंमें तरल रूपमें लाकर भरी जायं और गोलीके स्थानपर कार्तूसोंमें रखकर दागी जायं तो इनको बहुत दूर फेंक सकते हैं और काममें ला सकते हैं। इन्होंने एक नई रीतिसे एक नये प्रकारके कार्तूस बनाये और बड़ी सफलता प्राप्त की, पर उसी समय उनके विचारमें यह भी आया कि विषैली गैसोंसे हत्या करना ठीक नहीं है। युद्धका अभिप्राय केवल यही होता है कि शत्रु निर्बल होकर अपने अधीन हो जाय। हत्या करना निर्दयता है। इस विचारसे इन्होंने क्लोरोफार्मसे कपूरका सा एक नया पदार्थ बनाया और दग्धोज (सेलूलाइड) की कुप्पियोंमें भरकर गोलीके स्थानोंमें कार्तूसोंमें प्रयोग किया। जब गोली दागी जाती है तब तापसे सेलूलाइड गलजाता है और उसके अन्दरकी वस्तु गैस बन कर बाहर निकल आती है और जिस मनुष्यपर यह गोली मारी जाती है उसके चारों ओर फैलकर उसको बेहोश कर देती है।

इस विश्वविद्यालयके एक और विद्यार्थी भास्कर रघुनाथ फड़केने कनेरके फलमेंसे एक क्षार निकाला है। इसको घोलकर शरीरके जिस अङ्गमें टीका लगा देते हैं, उस अंगमें यह तुरन्त फैल जाता है और उसको शिथिल कर देता है, जिससे वह नष्ट तो नहीं होता, पर उससे कोई काम नहीं लिया जा सकता। पहले भागमें आप पढ़ आये हैं कि भारतेन्दुके वायुयान हिम-रेखासे कितने ही ऊंचे उड़ रहे थे। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इनमेंके मनुष्य शीतसे कैसे बचे। इन वायुयानोंको देखिये कि मनुष्यके बैठनेके जो कमरे बने हुये हैं उनके ऊपर एक और कमरा बना हुआ है। इन दोनोंके बीचमें जो स्थान है उसमें होकर एंजिनसे जो धुआं निकलती तथा वायु मंडलमें जाती है। इस प्रकार उसकी तापसे कमरा गर्म रहता है और ताप नष्ट नहीं होता।

जबसे प्रातस्मरणीय महाराज रामचन्द्रजी-का लङ्का विजयका मैंने युद्ध देखा है संसारके युद्ध अब मुझे वैसेही मालूम होते हैं जैसे बालकों-का सेंठेके धनुष बाण लेकर रामलीलाका खेल करना होता है। मैं कभी हिमालयके शिखरपर, कभी ब्लैङ्क (Mount Blanc) कभी ईडीज़पर निवास करता फिरता हूँ। अबकी बार भ्रमण करता हुआ मैं ध्रुव-स्थानको चला गया था। शीत अधिक पड़नेके कारण मैं वहांसे दक्षिणकी ओर लौटा आता था कि मार्गमें बर्लिनके ऊपर भारतेन्दुके वायुयान उड़ते हुये मिले और मैं जो लीला वर्णन कर आया हूं देखने लगा। जब पोट्सडम फाटकके ऊपर भारतेन्दुको वायुयान ठहरा तो मैं उसके ऊपर जाकर बैठ गया और नीचे झुककर मैं देखने लगा। वायुयानके सारथिके स्थानपर मुझे मारुतसुत बैठे दिखलाई दिये। मुझे बड़ा आनन्द हुआ, उन्होंने सिर उठाकर मुझे देखा, मुसकुराये और मैंने नमस्कार किया। उन्होंने मुझे इशारेसे अपने पास बिठा लिया। मैंने बड़ी नम्रतासे स्तुतिकी और पूछा कि यह क्या लीला है उन्होंने कहा कि यह मेरे स्वामीकी सन्तानमें से हैं। बड़े धर्मिष्ठ और उत्साही हैं और बड़े परा-क्रमी हैं। मुझे इनपर दया आयी है और इनकी रक्षाके हेतु इनके साथ हूं। यह मुझे पहचानते नहीं हैं, तुम भी आओ मेरे साथ होलो और यह लीला भी देखलो। इस प्रकार मैंने यह सब लीलाएँ देखी हैं। वृद्ध हो गया हूं और मेरी स्मरणशक्ति मन्द होगई है। इस कारण मैं प्रति दिवस क्या हुआ वर्णन

नहीं कर सकता। जैसा जैसा याद पड़ता आयेगा वर्णन करूंगा।

भारतेन्दु सड़कपर आन खड़े हुये और सेनापति और योद्धाओं सहित उतर आये। भारतेन्दुकी आज्ञानुसार जर्मन भाषी भी जो भारतवर्षसे साथ आया था, वायुयानसे उतार लिया गया; मोटर पादुकाएं सबोंने अपनी अपनी झोलीसे निकाल कर पहनलीं। यह पादुकाएं मोटरसे चलती हैं। प्रत्येक पादुकामें चार पहिये लगे हैं। मनुष्य बूट पहने इन पादुकाओंपर खड़ा हो जाता है और जिस वेगसे बाइसिकल चलती है एक स्थानसे द्वितीय स्थानपर चला जाता है। भारतेन्दु योद्धाओं सहित चल खड़े हुए। रास्तेमें एक मनुष्य मिला। उसको घेर लिया। वह भयके मारे कांपने लगा। जर्मन भाषी द्वारा भारतेन्दुने उससे राज भवनका रास्ता पूछा और राजभवनकी ओर चल दिये। दो मनुष्योंके बीचमें जर्मन नागरिकको कन्धेपर रख लिया। पांच मिनटमें राजभवन पहुंच गये। राजभवनके फाटकपर कुछ सिपाही पहरेपर खड़े रह गये थे। उन्होंने भारतियोंकी तरफ गोली चलायी। गोली उनके वस्त्रमें लगकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और वस्त्रपर तनिकसा चिन्ह रह गया। यह वस्त्र सर्दार खड्गसिंह नलुआ नामी एक सिक्ख इंजीनियरके बनाये हैं। इनके वस्त्र खाकी जीनकेसे वस्त्र मालूम होते हैं। यह जीन नहीं है। रबर और चेंच मिलाकर एक नवीन रीतिसे कपड़ा बनता है। अस्तर अबरा इसी कपड़ेका होता है और जैसे रुईके वस्त्र बनाये जाते हैं वैसे इससे बनाये जाते हैं, पर रुईके स्थानपर इनमें बहुत छोटे छोटे स्प्रिङ्ग भरे हैं। इनपर गोली अथवा तलवार असर नहीं करती।

गोलीके उत्तरमें सेनापतिने जर्मन सिपाही पर तमञ्चा छोड़ा। वह तुरंत बेहोश होकर गिर पड़ा। एक भारतीय योद्धाने आगे बढ़कर उसके दोनों हाथ आस्तीनें चढ़ाकर नंगे कर दिये और अपने पाकटसे निकालकर कनेरमूका टीका दोनों हाथोंमें लगा दिया और सब आगे बढ़कर राज भवनमें जा पहुंचे। जहां कोई जर्मन सिपाही आक्रमण करता उसकी यही दशा की जाती थी। भारतीय सेना राजभवन भरमें फैल गई और एक सिपाहीको फाटक के हातेमें पहरे पर छोड़ दिया। भारतेन्दुने अपने निवासका स्थान राजदर्बारके कमरेमें बनाया और योधाओंसे कहा कि इधर उधर कमरोंमें ठहर जाओ और बेतारके तार द्वारा सौ वायुयानोंको सूचना भेजी कि उतर आओ और बर्लिनके अन्यान्य स्थान पर खड़े होजाओ। जैसे पानीमें डोंगी पैराती है उसी प्रकार यह मकानोंके ऊपर ठहर कर पैराने लगे। वायुयानोंमेंसे भारतीय योद्धा उतर उतर कर सड़कों पर टहलने लगे और नगर भरमें फैल गये।

राजभवनमें जो जर्मन सिपाही तमञ्चे मार कर गिराये गये थे, दस पन्द्रह मिनट बाद होशमें आये और उठ खड़े हुये। वह भौंचक्के होकर इधर उधर देखने लगे और घोर आश्चर्यमें डूब गये। जब उन्होंने हाथोंके चलानेकी इच्छा की तो ज्ञात हुआ कि कुहनियोंसे नीचे हाथ बिलकुल सुन्न पड़ गये हैं, कुछ काम नहीं कर सकते। पागलकी भांति यह राजभवनसे भागे, किसीने यह राह ली, किसीने वह राह ली। जो कोई जर्मन नागरिक उनसे कुछ पूछता है तो यह सुनते नहीं। जो जहां भागते भागते थका वहीं खड़ा हो गया। जर्मनोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया और उसकी विपत्तिका हाल पूछने लगे। तमाम नागरिक उनकी दुर्दशा सुनकर कांपने लगे और बर्लिन भर इस प्रकारसे भयभीत हो गया कि जैसे भेड़ियेकी गन्ध सूंघकर बकरियां भयभीत हो जाती हैं। मुख्य मुख्य स्थानोंपर भारतेन्दुने योधाओंको पहरे पर खड़ा किया; आज्ञा दी कि अपने अपने निवासके लिये उचित स्थान ढूंढो। जिसको जहां कहीं कोई नया सुन्दर मकान

दिखाई देता है वह उसमें घुस जाता है। उसमेंसे जर्मन निकलकर भाग जाते हैं और वह जिस कमरे में जहां चाहता है विश्राम करता है। भारतेन्दुकी आज्ञानुसार उचित चौकी पहरा करके भारतियोंने विश्राम किया और अपनी थकावट निकाली।

जिनको भारतेन्दुने सेनापति नियत किया है महाराना उदयपुरके घरानेके हैं। उदयपुरकी गद्दी पर यही शोभायमन हैं। इनको भारतेन्दु प्रायः राना कहकर पुकारते हैं।

भारतेन्दु—रानाजी

राना—आज्ञा

भारतेन्दु—जर्मन भाषीको बुलवाओ और जर्मन भाषामें बर्लिनके नागरिकोंमें हमारी राजाज्ञाकी घोषणा कर दो।

जर्मन भाषी बुलाया गया और जर्मन भाषामें भारतेन्दु की आज्ञा लिखकर बर्लिन भरमें प्रकाशित की गयी। जो जर्मन भारतेन्दु की प्रजा होना चाहे बिना भयके बर्लिन आये। भारतेन्दु बड़े हर्षसे उसे अपनी शरणमें लेंगे। भारतेन्दु की जर्मन प्रजा और भारतियोंमें किसी प्रकार का भेद भाव नहीं बर्ता जायगा और जिनको शत्रुता ठाननी है वह जहां कहीं कि कोई भारतीय वायुयान दिखाई पड़े वहांसे इतनी दूर चला जाय कि वह फिर दिखाई न पड़े, नहीं तो वह अपनी हत्या का स्वयम् कारण होगा।

इस आज्ञाके प्रकाशित होते ही जर्मन सेनाके और जर्मन राजघरानेके मनुष्यों को छोड़ कर सब भारतेन्दुकी शरणमें आगये।

भारतेन्दुकी जर्मन प्रजाके मस्तकपर लाल स्वस्तिकका चिन्ह नियत किया गया। जिसके यह चिन्ह होता था वह भारतेन्दुकी प्रजा समझा जाता था और जिसके यह चिन्ह नहीं होता था वह शत्रु समझा जाता था और तुरन्त पकड़ कर उसके दोनों हाथों पर कनेरम् का टीका लगा दिया जाता था

भारतेन्दु की आज्ञानुसार बर्लिन और भारतवर्ष की राजधानीके मध्यमें वायुयानों की डाक स्थापित की गयी। प्रातःकाल भारतवर्षसे डाक आती थी और सायंकालको भेजी जाती थी और सप्ताहमें एक वायुयान माल असबाब भारतवर्षसे ले आता था और दूसरा बर्लिनसे ले जाता था।

भारतेन्दुने सेनापति को आज्ञा दी कि इंजीनियरों को भारतवर्ष से बुलायें। यह इंजीनियर समूचे मकान एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाकर रख देते थे। इन्होंने जितने सर्कारी मकान इधर उधर हट गये थे अथवा अपने स्थान से सरक गये थे मरम्मत करना और सम्हालना आरम्भ कर दिया।

भारतेन्दुने जर्मन प्रजाकी सहायतासे सर्कारी खजानोंके स्थान मालूम किये। खजाने लोहेके बक्सोंमें थे और इन की कुंजियां खिसिरके कर्मचारी अपने साथ ले गये थे। आक्सी-एसी टेलीन ज्वालाकी सहायतासे यह खोले गये। इस लौसे लोहेके बक्सों की मोटी मोटी इस्पाती चद्दरें उसी प्रकार जल जाती थीं जिस प्रकार दीपकमें कागज जल जाता है। इन सबमेंसे द्रव्य निकाल कर भारतेन्दुने अपने कब्ज़ेमें कर लिया। लगभग सब बर्लिन निवासी भारतेन्दु की शरणमें आये। कुछ थोड़ेसे हठधर्मी बर्लिन छोड़ कर भाग गये। भारतेन्दुने बर्लिनकी नागरिक संख्या जानने की आज्ञा दी। स्टेशनोंपर माल तौलने की जैसी छोटी छोटी मशीनें होती हैं वायुयानों द्वारा ऐसी आठ मशीनें भारतवर्ष से मंगाई गईं और आठ कर्मचारियों को दी गईं। बर्लिन आठ भागमें विभाजित कर दिया गया और यह मशीनें प्रत्येक भागमें एक एक करके भेज दी गईं। प्रत्येक भागके निवासी आते थे और वहीं की मशीन पर अपना नाम, अपने पिताका नाम, अपनी उम्र, अपना उद्यम, अपना मत और अपने

निवास स्थानका नम्बर (हर मशीनमें एक स्तम्भ बना था जिसमें बीस झरोखे थे) किसी एक झरोखेमें मुँह डाल कर कहकर चले जाते थे। इस तरह बीस बीस नागरिकोंकी टोलियां एक दमसे उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देकर चली जाती थीं। इस स्तम्भके अन्दर कोरे कागज़ भरे थे। इन कागज़ोंपर नागरिकोंके उत्तर देते ही प्रश्नोंके उत्तर आप ही आप अङ्कित हो जाते थे। इस प्रकार लगभग बर्लिन की आठ लाख जन संख्या थोड़े दिनोंमें आपही आप रजिस्टरों पर लिख गयी। जनसंख्या ज्ञात करनेके पश्चात् भारतेन्दु ने अपनी सेनामेंसे एकको बर्लिनका सुपरेंटेंडंट बनाया। सुपरेंटेंडंटने उचित स्थानोंपर थाने नियत किये और जर्मन प्रजामेंसे कांसटेबिल इत्यादि नौकर रखे गये। बर्लिन निवासी भारतेन्दु की सेनाकी अद्भुत लीला देखकर चकित हो गयी और खिलिर को बिलकुल भूल गई। एक ही सप्ताहमें यह ज्ञात होने लगा कि बर्लिनके नागरिक सदासे भारतेन्दु की प्रजा थे।

भारतेन्दुने अपने इंजीनियरोंको भेजकर बर्लिन का इलेक्ट्रिक पावरहौस फिर चलवा दिया। इससे बर्लिनकी प्रजाको बड़ा आनन्द हुआ। ट्राम और उनके नाना प्रकारके कारखाने फिर चलने लगे।

भारतेन्दुने भारतवर्षके वैद्य बुलाये और बर्लिनमें इनको नियत किया। इन्होंने बर्लिनके कुल औषधालय बन्द कर दिये और नागरिकोंसे कहा कि नाना प्रकारके अम्ल खार, और रस जो उनके औषधालयोंमें प्रयोग किये जाते हैं हानिकारक हैं। इनसे शरीर पीड़ासे थोड़े समयके लिये रक्षा पाता है और निर्बल हो जाता है। शरीरमें जो प्राकृतिक शक्ति है वह नष्ट हो जाती है और जो ओषधियोंमें धन व्यय होता है वह भी व्यर्थ जाता है। आहार विहार नियमानुसार करना, विश्राम करना और आवश्यकता पर कभी कभी भारतवर्ष के वैद्योंके बनाये हुये जीवाणुओंका उचित रीतिसे प्रयोग करना अधिक अच्छा है। इन वैद्योंके पास केवल एक बक्स था कि जिसमें बीस पचीस शीशियां थीं। इन शीशियोंमें पावभरके लगभग कोई चूर्ण अथवा जलके प्रमाण कोई वस्तु भरी हुई थी। किसीको कोई रोग क्यों न हो इन्हींसे इलाज करते थे। एक बर्तनमें पानी भर कर माड़ अथवा बूरा अथवा दूध थोड़ासा डालकर पानी उबाला जाता था। और एक सुई को आगमें गर्म करके साफ कर लेते थे और इन शीशियोंमेंसे किसी एकमें डालकर, नाममात्रको जो बूरा अथवा तरल पदार्थ उसकी नोकपर लग जाता था निकाल कर, सुईको उबाले हुये जलमें, जिसमें उपरोक्त लिखी हुई वस्तुओंमें कोई वस्तु होती थी, डाल कर एक एक दो दो तोला रोगियों को बांट देते थे। इसीको पीकर रोगियोंका स्वास्थ्य ठीक हो जाता था। अकसर रोगियोंने अच्छा होनेपर भारतीय वैद्योंको कुछ धन उपहारमें देने की इच्छा प्रगट की। वैद्य उसे यह कहकर लौटा देते थे कि यह हमारे देश का दस्तूर नहीं है, हम को भारतेन्दुसे काफ़ी वेतन मिलता है। भारतवर्ष में इस तरह का धन लेना बड़ा निकृष्ट समझा जाता है। इसी प्रकार स्थान स्थान पर औषधालय खुल गये और पुराने औषधालय बन्द हो गये। भारतीय मनुष्य सबके सब किशोर मालूम होते थे। जर्मन लोग उनसे उनकी आयु बहुत पूछा करते थे। वह अपनी उम्र सत्तर अस्सी वर्ष बताते थे। यह सुनकर जर्मनोंको बड़ा आश्चर्य होता था। भारतीय उनसे कहा करते थे कि भारतवर्षमें बहुत से मनुष्य तीन सौ चार सौ वर्षकी आयुके हैं और प्रायः पचास वर्षकी कन्याओंका विवाह होता है। सौ वर्षकी अवस्थाका मनुष्य नवयुवक कहलाता है। वह ज़माना गया जब पश्चिमी सभ्यताके कारण और मुसलमानी व्यभिचारसे भारतवर्षमें मनुष्य पचास ही वर्षमें बुड्ढा हो जाता था।

[असमाप्त]

एरोप्लेन अर्थात् हवाई जहाज

[ले०—प्रो० डी० बी० देवधर, एम० एस-सी०]

गत महायुद्धके समयसे एरोप्लेनका नाम अपने देशमें बहुत सुनाई देने लगा है; कहीं कहीं यह हवाई जहाज आकाशमें विचरते हुए भी नज़र आते हैं। गत युद्धमें हवाई जहाज़ोंपरसे शत्रुओंके सैन्य दलका हालचाल मालूम हो जाता था; अंतरिक्षमें भ्रमण करते करते शत्रुओंपर विघातक द्रव्य तथा बम गोलोंका वर्षाना एक अत्यन्त युद्धोपयोगी व साधारण बात होगई थी। युद्धमें ही एरोप्लेनोंका केवल राक्षसी विघातक उपयोग होता है, ऐसा समझना भूल है। आकाश मार्गसे डाक और पार्सलें वगैरा हज़ारों मील तक ले जाना, तथा प्रवासी सज्जनोंको एक देशसे दूसरे देशको पहुंचाना, इत्यादि महत्वके कार्य भी इन जहाजोंसे लिये जाने लगे हैं और भविष्यमें और भी सफलतासे लिये जायंगे। सुनते हैं कि जैसे पानीमें चलने वाले जहाज़ पर स्नानगृह, व्यायामगृह, निद्रागृह, नाटकगृह, इत्यादि अनेक सुख साधनोंकी व्यवस्था रहती है, वैसी ही व्यवस्था कुछ जर्मन तथा अमेरिकन हवाई जहाज़ोंपर भी रहती है।

ज़मीनपर चलनेवाली रेलगाड़ीका रास्ता बनानेमें कितनी कठिनता पड़ती है और कितना खर्च होता है, इसका विचार किया जाय तो पर्वतोल्लंघन तथा समुद्रोल्लंघन करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले हवाई ज़हाजकी उपयोगिता मालूम होती है। रेलगाड़ीकी गति घंटेमें ५० । ६० मील होती है, परंतु हवाई जहाज़ घंटेमें १५० मीलतक चल सकते हैं। आजकलके विमान पुराने ज़मानेकी तरह उज्जन वगैरह हलके वायु भीतर भरके हवामें नहीं उड़ते। प्राचीन गैसवाले विमान, गुब्बारे, हांकनेवालेकी इच्छानुसार नहीं चल सकते थे और उनकी गति भी बहुत थोड़ी थी। वर्तमान समयमें विमान के प्रति दिन अधिकाधिक उपयोग होनेकी संभावना रहनेसे, इनकी रचना और चालन विधि इत्यादिके विषयमें हम एक लेख माला देना चाहते हैं। जहांतक बनेगा, अति सामान्य गणित सिद्धांत ही काममें लाये जायँगे, जिसमें साधारण गणित जाननेवाले सज्जन भी इस विषयको अच्छी तरह समझ सकें।

जलाशय के भीतर अपनी हथेली जल पृष्ठके समानान्तर इधर उधर घुमाने से यह मालूम होगा कि पानीका दाब हथेली को ऊपर उठानेका प्रयत्न करता है। अपनी हथेली जल पृष्ठ रेखा से थोड़ी झुकी हुई रखो तोभी पानीका दबाव हाथको साधारणतः ऊपर ही फेंकता है, यह एक सामान्य नियम है। एरोप्लेनके पंखे जब हवामें पृथ्वीके समानान्तर चलते हैं तब उनपर भी हवाका दबाव ऊपरकी दिशामें लगता है। इस मुख्य तथा सामान्य नियमके अनुसार हवाई जहाज़ हवामें ऊपर ही ऊपर रहता है। उपरि-निर्दिष्ट समानांतर रेखा को हम मूल-रेखाके नामसे संबोधित करेंगे। पंखे यदि मूलरेखाकी तरफ थोड़े झुके हुए रहेंगे, तो भी दबाव लगभग लंब रेखामें ही पड़ेगा। पंखों के स्थिर रहने और हवाका प्रवाह उनको लगता रहने से जो दबाव उनपर पड़ता है, वही दबाव सापेक्षतया पंखे अपने गतिके अनुसार हवामें प्रवाह उत्पन्न करके पैदा करेंगे। इसतरह एरोप्लेन की गति बहुत रखी गई तो ऊपर उठानेवाला दबाव पंखेकी गति उत्पादक मोटर, तेल, मुसाफिर और अन्य कुल चीजोंका वजन ऊपर के ऊपर तोल सकेगा।

ऊपर उठानेवाली शक्ति किस तरह उत्पन्न होती है या क्या काम देती है, यह बतलाया गया; परन्तु इसके सिवाय इसको बहुत सी बातोंपर विचार करना होगा। जिस समय एरोप्लेन हवामें जा रहा है उससमय उसका साम्य बिलकुल बिगड़ना नहीं चाहिये। चलते चलते कहीं जोरसे हवा चलने लगी अथवा किसी प्रकारकी अन्य गड़बड़ उपस्थित

हुई तो यंत्र अधिक डांवाडोल अथवा औंधा न होजाना चाहिये, नहीं तो बड़ा अनर्थ हो सकता है। अतएव एरोप्लेनका यांत्रिक ज्ञान होनेके लिए हम इस विषयके तीन विभाग करेंगे। पहिले भागमें विचार करने की बातें यह हैं—स्थिर हवामें एरोप्लेनको ऊपर उठाना, मूलरेखामें आगे ढकेलनेकी व्यवस्था, अनेक शक्तियां जो विमानके चलनेसे पैदा होती हैं, मूलरेखाके साथ पंखे जो कोण बनाते हैं (झुकाव) उनका परिणाम, एरोप्लेन का वजन, पंखोंका क्षेत्रफल, चलते चलते मोटर बंद करनेपर भी विमानको चलता रखना, जमीनपर से विमानका ऊपर उठाना। दूसरे भाग में, विमान के तुले हुए रहने और उसकी स्थिरता, तथा विमानके इधर उधर मोड़नेपर विचार करना होगा। तीसरे में तूफान वा अव्यवस्थित हवाका प्रवाह और वातावरण संबन्धी अनेक घटनाओंके प्रभावपर विचार किया जायगा।

प्रथम भाग— १. किसी पंखेका क्षेत्रफल च वर्ग मीटर और हवाकी गति प्रति सेकंड ग मीटर मानलें तो दबाव होगा— द = ·०८× च × ग^2......(अ) च × ग^2 का गुणक (·०८) प्रयोगसे निश्चित किया है। समीकरण अ से यह ज्ञात होता है कि गति बढ़ानेसे दबाव बहुत जलदी बढ़ता है। यहां पर हम पंखा स्थिर है ऐसा समझते हैं; परंतु पंखा चलता रहा व हवा स्थिर रही तो भी सापेक्षतया वही समीकरण कायम रहेगा। इसके अलावा यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पंखेके आकार (Shape) का यहां कुछ भी महत्व नहीं।

२. हवाके प्रभावकी दिशा पंखेसे कुछ डिग्रीका कोण बनाती हो तो दबाव दूसरे समीकरणसे बतलाया जायगा। द$_1$ = अ × च × ग^2 × को...(आ) यहां पर "अ" गुणक रखा है; यदि कोण छोटा है, और पंखोंकी आकृतिके समान है तो इस गुणकमें फरक नहीं होगा। बहुधा यह कोण १२° से कम रहता है। और वह दशांश अपूर्णांकमें लिखा जाता है। समीकरण (आ) में पंखेकी आकृतिका भी संबंध आता है, परन्तु (अ) में आकृतिका कुछ भी परिणाम नहीं होता। सामान्यतः दबाव पंखेकी लंबाईके सम प्रमाणमें और विमान की लंबाईके व्यस्त प्रमाणमें बदलता है। उड़ते हुए विमानकी तरफ देखनेसे जो मछलीके समान लंबा आकार दीखता है उस लंबाईको विमानकी लंबाई कहते हैं। पंखेकी लंबाई ÷ विमानकी लंबाई इस प्रमाणको वैमानिक भाषामें आस्पेक्ट रेशिओ अर्थात् आकृति निष्पत्ति (Aspect Ratio) कहते हैं। बहुत करके यह प्रमाण ६ ÷ १ से अधिक नहीं रखते। पक्षिगणोंके पंख देखनेसे यही बात मालूम होती है। यह पंखे जैसा चित्र १में दिखाया है लंबाई
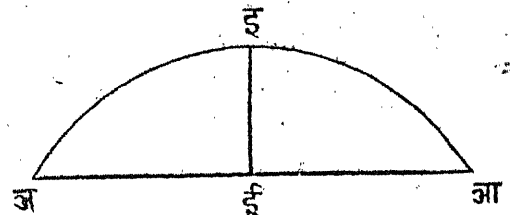
चित्र १

की तरफ झुके हुए रहते हैं और हवाका प्रवाह उनके पूरे बाजूको लगता है। बहुधा झुकाव इतना होता है कि ऊंचाई "इ ई" यह कुल लंबाई "अआ" का १ पन्द्रहवां हिस्सा होता है। "इ ई" को वैमानिक भाषामें कैंबर अर्थात् कूबा (Camber) कहते हैं। "आई" यह अआके तीसरे हिस्सेके बराबर रहती है। चीलोंके पंख इसी तरह झुके हुए नजर आते हैं। झुके हुए पंखेसे ऊपर उठाने की शक्ति अधिक उत्पन्न होती है। यह कूबेका परिमाण कप्तान फरबरने निकाला है। पीछे दिये हुए दबावके समीकरण गुणकमें इस पंखेके झुकावसे कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा। क्षेत्रफल, कोण, वा गति निश्चित होनेपर भी ऊपरका दबाव इस गुणक पर निर्भर होनेसे, इस गुणकको ऊपर, उठानेका

गुणक उत्तोलन गुणक (Lifting Coefficient) कहते हैं। उदाहरण—एरोप्लेनके एक पंखेका क्षेत्र-फल २५ वर्ग मीटर है; व उसपर वायु प्रवाह '१२ कोण बनाता हुआ २० मीटर प्रति सेकंडकी गतिसे पड़ता है। ऊपर उठानेका गुणक '४ है, तो कुल दबाव कितना होगा ? अपना सामान्य समीकरण द = अ×क्ष×ग²×को, ध्यानमें रखकर हिसाब किया तो द = '४×२५×४००×'१२ = ४८० किलोग्राम हुआ।

[असमाप्त]

—:०:—

उल्कापात

[ले०—श्री० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार]

(पौर्वात्यमत)
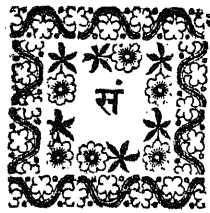
संसारकी सभी आश्चर्यजनक घटनाओंको देखकर बुद्धिमान जीव उनके सच्चे भेदके ज्ञानके लिये प्रयत्न करता है। सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर आज तकके मानव इतिहासमें इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं। प्रत्येक जातिने अपनी अपनी दृष्टिसे अपनी विधियोंसे घटनाओंका रहस्योद्घाटन करनेका प्रयत्न किया है।

(१)

स्वच्छ रात्रिमें खुले मैदानमें बैठे मनुष्यको अनन्त तारोंके अतिरिक्त भी एक विचित्र घटना दीखती है और वह है तारोंका टूटना। एक चमकीला तारा सहसा आकाश मार्गसे पृथ्वीकी ओर गिरता दिखाई देता है। इसी घटनाको उल्कापात कहा जाता है। संस्कृत साहित्यमें इसका बड़ा विशद वर्णन है। प्रथम पाठकोंके सामने हम अपने भारतीय प्राचीन विद्वानोंकी दृष्टिसे इस अद्भुत दिव्य घटनाका उल्लेख करेंगे और फिर पुराने और वर्तमानके पाश्चात्य विद्वानोंकी गवेषणापर प्रकाश डाला जायगा।

(२)

वराहमिहिर अपने कालका बड़ा प्रामाणिक विद्वान हो गया है। यह विक्रम महाराजकी विद्वत्सभाके नवरत्नोंमेंसे एक रत्न था। इसने अपनी बृहत्संहितामें उल्कापातके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

* स्वर्गलोकसे अपने पुण्यफलको भोगकर वहांके वासी पृथ्वीपर उल्का रूपमें गिरा करते हैं। उनके पांच प्रकार हैं—

१. धिष्ण्या। २. उल्का। ३. अशनि। ४. विद्युत्। ५. तारा। †

(१) धिष्ण्या ‡—धिष्ण्याकी पतली छोटी पूंछ होती है।

वह जलते अंगारेके समान दो हाथ लम्बी होती है और लगभग १० गज तक आकाशमें चमकती दीखती है।

(२) उल्का × —उल्काका सिर बहुत मोटा होता है। और गिरते गिरते उसकी पूंछ पहले बहुत छोटी और फिर बहुत बड़ी लम्बी हो जाती है। इसकी लम्बाई एक पुरुष प्रमाण (लगभग ६,७ फुट)के होती है। इसके बहुतसे भेद होते हैं।

---

* दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः॥ (वराह० बृ० सं० अ० ३३ श्लो० १)

† बृहस्पतिने लिखा है कि शौनकने यह पांच भेद बताये हैं। "एवं पंच विधाश्चैताः शौनकेन प्रकीर्तिताः।"

‡ धिष्ण्या कृष्णाऽल्पपुच्छा धनूंषिदश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम्। ज्वलिताङ्गार निकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन॥

(वराह० बृ० सं० अ० ३३ श्लो० ६)

× उल्का—उल्काशिरसि विशाला निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा। दीर्घा च भवति पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः॥

(वराह० बृ० सं०)

(३) अशनि *—चक्राकार होकर बड़ी भारी गर्जनाके साथ, पृथ्वीतलको फाड़ती हुई मनुष्य, गज, अश्व, मृग, पत्थर, घर, वृक्ष आदिपर पड़ जाया करती है।

(४) विद्युत्†—विद्युत् सब जीवोंको भय देती हुई तड़ तड़ शब्द करती हुई एक दम टेढ़ी मेढ़ी लम्बी चौड़ी होकर जलती हुई जीवोंपर और लकड़ियोंपर गिर पड़ती है।

(५) तारा‡—तारा एक हाथ लम्बी श्वेत वर्णकी या तांबा कमल या सूतके रूप-रंगकी तिरछी, नीचे या ऊपर आकाशमें जाती हुई दिखाई पड़ती है।

(३)

यह पांच प्रकारकी उल्काका वर्णन वराहमिहिरने किया है और साथ ही इनके भी अनेक भेदोंका वर्णन किया है, जिसके साथ फलादेश भी जोड़ दिया है। परन्तु हम यहां फलादेशका कोई वर्णन नहीं करेंगे। इस प्रसङ्गमें केवल भारतीय विद्वानोंके अनुशीलन द्वारा प्राप्त तत्सम्बन्धी ज्ञानमात्रकी आलोचना करना ही हमारा कर्तव्य है।

(१) उल्का कितने रूपकी होती है? कभी यह प्रेत, शस्त्र, गधा, ऊंट, नाका, बन्दर, कुत्ता बिल्ली, हल और मृगके सदृश; कभी गोहरा, सांप और धूमके रूपकी और कभी दो सिरकी होती हैं।×

(२) कभी झण्डी, मच्छी, हाथी, पहाड़, कमल, सांप, घोड़ा, तपी हुई चान्दी और हंसकी कांतिवाली और कभी वज्र, श्रीवृक्ष, शंख और स्वस्तिकके आकारमें चमकती है।

(३) आकाशमें अग्नियां (उल्काएं) गिरती हुई और आकाशमें ही भ्रमण करती हुई राजा राष्ट्रके विनाशके लिये सर्वधारणको हैरान किया करती हैं।

(४) कभी चन्द्र और सूर्यको छूती हुई या उसमेंसे निकलती हुई गिरती हैं। और कभी बड़ा भारी भूकम्पका कारण होती हैं।*

(५) कभी श्वेत, लाल, पीली और काली होती हैं।

(६) और कभी सांवली, लाल, नीली, रुधिर, आग, और काली राखके रंगवाली होती हैं। कभी संध्या और दिनके समयमें गिरती हैं। कभी बीच बीचमें टूटी हुई और कभी टेढ़ी होती हैं।

(७) कभी वह दण्डके आकारमें चिरकाल तक आकाशमें खड़ी रहती है। कभी यह आकाशमें रस्सीसे बन्धी हुई लटकती दीखती है। कभी झण्डेके आकारकी होती है।†

(८) कभी वह जिधरसे चलती है उधरको लौट जाती (प्रतीपगा) है; कभी टेढ़ी चालसे जाती है। कभी सीधी नीचे और कभी सीधी ऊपरको जाती है।

(९) कभी मोरकी पूंछके समान चौड़ी पूंछ वाली होती है और कभी सांपकी तरह

---

* अशनि—अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु। निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना॥
(वराह० वृ० सं० अ० ३३ श्लो० ४)

† विद्युत—विद्युत्सत्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा। कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता॥ श्लो० ५

‡ तारा—तारा तु हस्तदीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा। तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव॥ श्लो० ७

× गोधाहि धूमरूपाः पापा चोभय शिरस्काच।
(वराह० अ० ३३ श्लो० ६)

* संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च॥
(वराह० अ० ३३ श्लो० १२)

† यस्याश्चिरं तिष्ठतिखेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः स्यान्नृपतेर्भयाय। (वराह० श्लो० २४)

होती है। कभी मंडलाकार और कभी छत्राकार और बांसोंके झुण्डोंके समान होती है।*

(१०) कभी व्याघ्रके समान, कभी सूकरके समान कभी चिनगारियोंकी झड़ी जैसी होती है। कभी कई खण्डोंमें टूटकर टुकड़े टुकड़े हो जाती है और बड़ा भारी शब्द उत्पन्न करती है।

(११) कभी इन्द्रधनुषाकार स्वतः आकाशमें लुप्त होजाती है। यह नाना प्रकारकी उल्काओंके रूप कह दिये।

अब प्रश्न उठता है कि वराहमिहिरने इनकी वास्तविकताका कोई परिचय नहीं दिया। विस्मय यह है कि उससे प्राचीन कालके सिद्धान्तोंने भी इस पर कोई विशेष तत्व दृष्टिसे विचार नहीं किया।

(१)

अत्यन्त प्राचीन ज्योतिषी गर्गाचार्यने लिखा है कि लोकपाल, इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर आदि देवता लोग अपने धधकते हुये अस्त्रोंको फेंकते हैं। इसीकी छाया लेकर वराहमिहिर वटकणिका ग्रन्थमें लिखते हैं कि लोकपाल लोग लोकोंके विनाशके लिये जो अस्त्र छोड़ते हैं, वही उल्का कहाते हैं। औरोंके मतसे पुण्योंका फल भोगने-पर स्वर्गसे आत्माएँ उल्का रूपमें लौटती हैं।‡

बृहस्पतिका मत भी प्रायः ऐसा ही है। उनका मत है कि "दृढ़ इन्द्रियोंसे दृढ़ तेजस्वी शरीरही यह हैं, जो क्षमा युक्त सात्विक सत्यव्रतमें रत हैं। जो आकाशको अपनी किरणोंसे प्रज्वलित करते हैं। यह उनका किरणोंसे युक्त तप ही है जो उनके शरीरोंको ढांपे रहता है। अपने भाग्यके क्षयसे वह आकाशसे अपने चिन्हों सहित पृथ्वी तलपर गिर पड़ते हैं। और जहां जहां पड़ते हैं वहां वहां प्रजाओं पर नाना प्रकारके भय त्रासका कारण होते हैं।"

प्रायः शेष सब भेद और उनके लक्षण प्राचीन आचार्योंके समान ही हैं।

(५)

अबतक लिखे लक्षणोंमें हमें यही विशेषता जान पड़ी कि १. दीप्त शिर होना। २. दीप्त पुच्छ होना। ३. महान शब्द या तड़तड़ शब्द होना। ४. नाना प्रकारके चमकते स्वरूप होना। ५. टूटनेमें खण्ड खण्ड हो जाना। ६. चिनगारियोंकी झड़ियां छूटना। ७. चिरकाल तक आकाशमें ठहरना। ८. धूमके सहित प्रकट होना। ९. भूकम्प होना।

इनके अतिरिक्त एक विशेषता मयूर चित्र नामक ग्रन्थमें पायी जाती है। उसमें लिखा है। "यदि शिलावर्षण सहित उल्कावृष्टि हो तो भूमि सहस्रों योद्धाओंका खून पीती है"*

पराशर और विशेषता दर्शाते हैं। यह कहते हैं कि (१) यदि उल्का पृथ्वी पर गिरकर फिर पुरुषकी ऊंचाई जितनी ऊंचाई तक उछले तो राजाका राज पलट जाता है। †

(२) जो गिरकर १० दिनों तक भी भूतलपर जलते अंगारोंके सदृश धधकती रहे तो राजा बदल जाता है।

इससे अधिक विशेषता हमको प्राप्त नहीं हुई।

---

* वहिं पुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा।
(वराह० श्लो० २६)

सस्फुलिङ्गार्चिः। (पाराशरः)

‡ अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सन्त्यजन्त्युल्काः।
केषांचित् पुण्यकृतां तत्रोल्काविच्युतिः स्वर्गादिति॥
(वराह० स्वल्प संहितायाम्)

* उल्कावर्षो यदिभवेच्छिला वर्षसमन्वितः।
योधमुख्यसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम्॥
(मयूरचित्र)

† या चावनिमभिपत्याशु पुरुषमात्रमभि ऊत्प्लेव्******
या चनिपत्याङ्गारमिवाभासेन्मुहुरन्तर्देश रात्रीः साऽन्यमवनि-पतिमभिकुर्यात्॥
—पाराशरः।

(६)

इतने पर प्राचीन सभी ग्रन्थकारोंने इसके शुभाशुभ फलोंपर तो बड़ा विचार किया है परन्तु उल्काकी वास्तविकताका आलोचन करनेका प्रयत्न नहीं किया।

इस बातको केवल लोकपरलोकके अस्त्र और स्वर्ग लोकसे पुण्यात्माओंका पुण्य समाप्त हो जाने पर गिरना, यह काल्पनिक आधार देकर पूरा कर दिया।

हमें यह निःसन्देह मानना पड़ेगा कि प्राचीनतम संस्कृतके विद्वान् गर्ग, बृहस्पति, पराशर, मयूर शौनक, व्यासदेव, वाल्मीकि आदि ऋषि मुनियोंने दिव्य घटनाओंका खूब अच्छी तरहसे निरीक्षण किया था। उनका प्रत्यक्षरूप, उनके प्रकार, उनके परिणाम, उनके आकार विकार और गति और काल भेदोंका बहुत गहरा पता चलाया था।

(७)

महाशय जे. ई. गोरे, एफ. आर. ए. एस. ने अपनी विज़िबिल यूनीवर्स (दृश्यजगत्) नामकी पुस्तकमें ऐतिहासिक उल्कापातोंकी घटनाका उल्लेख करते हुये सबसे पुराना काल १४७८ ईसा से पूर्वका लिखा है। और वह उस समयके लिये भी सन्देहमें हैं। उससे उतर कर प्लूटार्कका ७०५ ईसा से पूर्वका लेख देते हैं।

परन्तु भारतवर्षके इतिहासका कुछ नहीं कहा जा सकता। (प्रिहिस्टोरिक्एज्) ऐतिहासिक सीमाको भी पार करनेवाले कालके ग्रन्थोंमें इस घटनाका उल्लेख मिलता है। 'हिरण्यकेशी ब्राह्मण' में उल्कापातका उल्लेख है और उसको इन्द्रकोपका नमूना बतलाया है। 'अथर्वणाद्भुत ग्रन्थमें उल्कापातकी शान्तिविधि दर्शायी है। रामायणमें और महाभारतमें कई स्थानोंपर विस्मय जनक उल्कापातोंका वर्णन किया है; जैसे नमूनेके लिये—

१ अयोध्या काण्ड (रामायण) में लिखा है—बड़ीभारी आवाजोंके साथ बड़े आघात पहुंचाने वाली बड़ी बड़ी उल्काएं गिरती हैं। ऐसे निमित्त दीखने पर राजा मरता है, राष्ट्र नष्ट हो जाता है।

२ गदापर्वमें (महाभारत) पाण्डवोंके शिविर के नाशकी सूचनाके वर्णनमें लिखा है—"बड़ा भारी शब्द करती हुई धड़ाकेके साथ जलती फड़कती हुई बड़ी भारी उल्का पृथ्वीपर गिरी।"

३ द्रोणपर्व (महाभारत) में द्रोणके वधके समय बड़े धड़ाकेके साथ कांपती हुई स्वयं चमकती हुई युद्धके बीचमें सबको अपनी पूंछमें समेटती हुई उल्का गिरी।

४ भीष्मपर्व (महाभारत) में लिखा है कि कुरुपाण्डवोंकी सेनामें विनाशकी द्योतक

"बड़े धड़ाकेसे बिजुलीके समान चमकती हुई उल्काएं" गिर रही हैं। ऐसे समयमें महर्षियोंने कहा है कि पृथिवी हजारों राजाओंका खून पीयेगी। बस; यह ४ उद्धरण नमूनेके लिये पर्याप्त होंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि उल्कापातका ज्ञान उनका भेद, आकार; उनकी नाना प्रकारकी गति, परिणाम आदि; भारतके विद्वानोंको बहुत पहलेसे ज्ञात थे।

परन्तु विस्मयकी बात यह है कि इसकी सत्य गवेषणा का प्रयत्न किसीने भी नहीं किया था।

१—सनिर्घातामहोल्काश्च पतन्तिहिमहास्वनाः ॥
प्रायेणहि निमित्ताना मीदृशानां समुद्भवे ।
राजा वा नाशमाप्नोति राष्ट्रं वा नाशमृच्छति ॥
(अयोध्या०)

२—महास्वनापुनर्दीप्ता सनिर्घाताभयङ्करी ।
पपातचोल्का महती पतिते पृथिवीपतौ ॥
(गदापर्व)

३—अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घातासकम्पना ।
उल्का ज्वलन्तीसंग्रामे पुच्छेनावृत्यसर्वशः ॥
इसी प्रकार अन्य भी हैं।

वराहके किये ५ भेदोंके देखनेसे यह पता लगता है कि बिजली, तारा, उल्का आदि सभी समान समझे जाते थे।

(८)

उल्का नाना प्रकारकी क्यों होती है; बड़ी छोटी क्यों होती हैं; नाना रंगोंकी क्यों होती हैं; शिला कहांसे आती हैं; उनमें धूम, स्फुलिङ्ग, दीप्ति, ज्वाला यह क्यों होती हैं; अनेक दिशामें गति क्योंकर होती है, उनके अनेक प्रकार और खण्ड क्या हो जाते हैं; उनकी पुच्छ लम्बी चौड़ी छोटी फटी हुई क्यों होती है; इसका प्राचीन विद्वानोंने कोई उत्तर नहीं दिया। हां यदि कोई उत्तर है तो इस प्रकारका है जैसे कि इस प्रश्नका कि "एक मकानकी छत गिर पड़ी। नीचे एक स्त्री दबकर मर गई। प्रश्न हुआ कि वह छत क्यों गिरी।" ऊपरके विद्वानोंके सदृश विद्वान उत्तर देंगे—१म छतका पुण्य पूरा होगया था सो भूतलपर गिर गयी; २य स्त्रीका पाप फलना था सो देवताओंने उसपर छत गिरादी; इत्यादि। परन्तु उत्तर सीधा यह है कि पानी अधिक पड़नेसे कड़ियां और गचचूना कमजोर पड़ गया था इसीसे छत नीचे गिर पड़ी। बस इसी कारणसे वैज्ञानिक उत्तर ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। देवताओंका कोप और स्वर्गवासियोंका पुण्यक्षय दो ही कारण लिखे गये हैं।

यह संक्षेपसे हमने प्राचीन ग्रन्थोंमेंसे उल्का विषयकसार संग्रह करदिया। अब दूसरे लेखमें पाश्चात्य आलोचन परीक्षणके आधार पर विशेष लिखा जायगा।

भिन्न भिन्न प्रकार की हवाएं

[ले०-प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, एम. एस-सी.]

"छितिजल पावक गगन समीरा,
पञ्चरचित यह अधम सरीरा"

गोस्वामी तुलसीदास जीके इस कथनसे यह स्पष्ट है कि वायुको वह उन पांच मौलिकोंमेंसे एक मानते थे जिनकी सहायतासे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। रासायनिक परिभाषामें मौलिक किसे कहते हैं, यह समझलेना बहुत ज़रूरी है। किन्तु इसके पहले रसायन शास्त्र ही क्या है, यह भी जानना नितान्त आवश्यक है।

यह संसार परिवर्तनशील है; इसे सभी स्वीकार करते हैं। हम लोगोंके चारों ओर अनेक प्रकारकी क्रियाएं प्रतिदिन, प्रति घन्टा, नहीं नहीं प्रतिक्षण हो रही हैं; जैसे पानीका बरसना, आगका जलना, लोहेमें मुरचा लगना, इत्यादि। वैज्ञानिकोंने इन क्रियाओंको दो भागोंमें विभक्त किया है—भौतिक और रासायनिक।

जो परिवर्तन केवल बाहरी अवस्था और रूपमें ही होता है और इस अवस्था और रूपके परिवर्तनसे पदार्थ (matter) आदि और परिवर्तित दोनों ही अवस्थामें ज्योंका त्यों बना रहता है, उस परिवर्तन को भौतिक परिवर्तन कहते हैं और जो परिवर्तन केवल पदार्थोंकी बाहरी अवस्था और रूपमें ही नहीं वरन् उसकी प्रकृति और सत्तामें भी होता है उसे रासायनिक परिवर्तन कहते हैं। उदाहरणके लिए एक प्लाटिनम धातुका तार गरम कीजिये। उसमें कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ, उसे हाथसे छूना कठिन है। पर थोड़ी देरमें फिर वह पूर्ववत् हो जायगा। यदि मग्नीसियमके तारको गरम करें तो वह जल उठेगा और एक श्वेत भस्म रह जायगी, जो एक नया

ही पदार्थ होगा। पहिला परिवर्तन भौतिक और दूसरा रासायनिक है।

जिस शास्त्र द्वारा हम लोग रासायनिक क्रियाओं तथा रासायनिक परिवर्तनोंका अध्ययन करते हैं वह शास्त्र "रसायन शास्त्र"के नामसे विख्यात है। इस सृष्टिके सारे पदार्थों को रासायनिक दृष्टिसे हमलोग दो भागोंमें विभक्त करते हैं मौलिक (elements) अथवा यौगिक (compounds)। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंके अतिरिक्त इस संसारमें एक तीसरे प्रकारके पदार्थ हैं जो उपरोक्त दोनों प्रकारके पदार्थों अथवा एक ही प्रकारके दो अथवा अधिक पदार्थोंके अत्यन्त आस पास आ जानेसे बनते हैं, जो देखनेमें अभिन्न मालुम होते हैं। उन्हें साधारण मिश्रण या केवल मिश्रण कहते हैं (mechanical mixture)।

यौगिकोंके घटकोंको रासायनिक अथवा भौतिक क्रियाओं द्वारा अलग कर सकते हैं। विच्छेदसे जब ऐसे घटक मिल जायं कि उनमेंसे हम लोग किसी भी साधन द्वारा अधिक सरल पदार्थ न निकाल सकें तो उन घटकोंको मूल पदार्थ अथवा मौलिक कहते हैं।

आधुनिक रसायन शास्त्रमें मूल पदार्थकी इस परिभाषाका पहले पहल प्रचार करनेवाले इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध वैज्ञानिक रोबर्ट बोयल (Roebrt Boyle १६२७ से १६९१) थे। आप उसी वंशमें उत्पन्न हुये थे, जिसमें देशभक्त मेक्स्वेल उत्पन्न हुआ था। दो तीन अथवा अधिक मौलिकोंसे यौगिक बनते हैं। यह सम्भव है कि जिस पदार्थको हम लोग आजकल मौलिक मानते हों वह नये नये साधनों द्वारा यौगिक सिद्ध हो जाय। पिछले समयमें ऐसा हुआ भी है।

अभी तक जितने मूल तत्वोंका पता लगा है उन की संख्या प्रायः ८० है। इनमें केवल ३०। ३५ ही ऐसे हैं जो साधारणतः पाये जाते हैं। इन इनेगिने मौलिकोंके संयोगसे ही असंख्य यौगिक और मिश्रण बने हैं, जिनसे इस सृष्टि का निर्माण हुआ है।

इतनी प्रारम्भिक व्याख्या करके अब मैं अपने विषयमें प्रवेश करता हूं।

जुदे जुदे प्रकार की हवाओंका ज्ञान बहुत प्राचीन कालसे नहीं है। इसके कई एक कारण हैं, जिनमेंसे मुख्य यह हैं—साधारणतः हम लोग अनेक प्रकारके ठोस और तरल पदार्थोंसे परिचित हैं। आकार, रूप रंग और गन्धमें एक से न होनेसे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सहजमें ही इनकी परीक्षा की जा सकती है और उनका विभेद किया जा सकता है। किन्तु हवाओंमें इन गुणोंका अभाव है। उनका कोई आकार नहीं। इससे प्रायः हम लोग उन्हें अपनी आंखोंसे देख नहीं सकते। भिन्न भिन्न सुगन्धित और दुर्गन्धित पदार्थोंके मिलनेसे साधारण वायुकी गंध बदलती रहती है, इससे लोगोंका यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि एक ही प्रकारकी हवा जुदे जुदे पदार्थोंके सहयोगसे जुदे जुदे रूप धारण करती है। हवाके इस अद्भुत व्यवहारसे लोगोंका यह विश्वास हो गया था कि जो वस्तु अनेकानेक रूप धारण करती है उसका अनुसन्धान करना निष्फल और निष्प्रयोजनीय है।

हमारे यहां "हवा" अथवा "वायु" शब्द बहुत प्राचीन हैं। अंग्रेजीमें "air" शब्द भी प्रायः उतना ही प्राचीन है। हम लोग "हवा" शब्दका उसी अर्थमें प्रयोग करते हैं जिस अर्थमें अंग्रेजी gas शब्दका प्रयोग होता है। gas शब्दके निकालने वाले Van Helmont नामका एक व्यक्ति था जो १५७७ से १६४४ तक जीवित था। उन्होंने एक विषली हवाका आविष्कार किया। इसको वह Gas Sylvestre अर्थात् लकड़ीकी हवा कहते थे। अनेक स्थानोंपर आपने इसे पाया। पहाड़की खोहोंकी हवामें, आगसे निकली हुई तथा सड़े हुये पदार्थोंसे निकली हुई हवामें इसकी बहुतायत थी। इसका विशेष गुण यह था कि जलती हुई बत्ती इस हवामें बुझ जाती

थी। आधुनिक शब्दोंमें इस हवाको हम लोग कर्बनद्विओषिद ("कार्बोनिक एसिड गैस") कहते हैं।

किसी कुप्पीमें संगमर्मरके टुकड़े रखकर उसमें नमकका तेजाब डालनेसे यह गैस बनाई जाती है। चूनेके पानीको यह दूधिया कर देती है। जलती हुई बत्ती इसमें डालनेसे बुझ जाती है। हवासे भारी होनेसे यह बरतनोंमें ऊपरसे डाली जा सकती है। आग बुझानेके काममें यह आती है। एक प्यालीमें बेंज़ीन डाल कर दियासलाई दिखाइये। वह जल उठेगी। पर कर्बन द्विओषिद गैसके एक घटको उसपर औंधातेही वह बुझ जायगी।

वायुमण्डल की वायुमें भी इसका अंश वर्तमान है। साधारणतः इसका अंश एक हज़ार भागमें एकसे कम ('०४) है। किन्तु जिस शहरकी बस्ती बहुत घनी है और जिस घरमें वायुके आने जानेका उचित प्रबन्ध नहीं, वहां इसका अंश बढ़जाता है। सांससे निकली हुई हवामें इसका अंश बहुत अधिक रहता है, जो चूनेके पानीमें फूंकनेसे प्रमाणित होता है। हम लोगोंके स्वास्थ्यके लिये यह बहुत आवश्यक है कि हवामें इसका अंश जितना ही कम हो उतना ही अच्छा है। स्वयं यह है गैस हानिकारक नहीं है, किन्तु ओषजनका अंश कम कर देनेके कारण स्वांस लेनेकी क्रिया ठीक ठीक नहीं होती और उससे स्वास्थ्यकी हानि होती है।

इस विषैली गैसके अतिरिक्त एक जलने वाली गैसका भी आपने पता लगाया था। इस गैसको नाम दिया था गैस पिंग्यू (Gas Pingue)। यह अंतड़ियों और सड़ते हुये गोबरमें पाया गया था। इस गैसको हम लोग आजकल दलदली वायु या मिथेन (Marsh gas or methane) कहते हैं।

वान हेलमोंट (Van Helmont) के समय तक इससे अधिक ज्ञान लोगोंका नहीं था। जलने वाली और विषैली हवाएं भी भिन्न भिन्न प्रकारकी हो सकती हैं, यह वह लोग नहीं जानते थे।

इसके कुछही वर्ष बाद जोनमेयो (John Mayow) ने १६७४ में हवा इकट्ठा करनेकी विधि निकाली, जिसका कुछ परिवर्तित रूपमें आजकल भी हमलोग व्यवहार कर रहे हैं। इस विधिसे उन्होंने लोहा और गन्धकाम्लके द्वारा पहले पहल एक दूसरी जलनेवाली हवा (Hydrogen) उज्जन बनाई। किन्तु वह इसको साधारण वायुसे भिन्न नहीं मानते थे।

इन (Van Helmont and John Mayow) के आविष्कार लोगोंको अन्य गैसोंके अनुसन्धानकी ओर झुकानेके लिए काफी थे, लेकिन समय उसके लिये तैयार नहीं था। मेयो (John Mayow) से प्रायः सौ वर्ष बाद इन विषयोंका अनुसन्धान होने लगा और कुछ ही दिनोंमें अनेक हवाओंका आविष्कार हुआ।

१७६६ ई० में केवेण्डिश (Cavendish) नामक एक विख्यात रासायनिकने इस जलनेवाली हवाका अनुसन्धान शुरू किया। इसे आपने जस्ते या लोहेको तेजाबों (acids) में गला कर तयार किया था। यह विधि आजकल भी इस गैसके बनानेमें प्रयोगशालाओंमें काम आती है।

यह यश केवेण्डिश (Cavendish) को ही प्राप्त है कि उन्होंने पहले पहल भौतिक गुणोंके परीक्षणसे हवाओंको पहचाननेकी तरकीब बतलायी। आपने बताया कि हवाओंकी घुलनशक्ति और घनत्व अलग अलग होते हैं।

करीब करीब इसी समय सन् १७७४ ई० में प्रीस्टली (Priestloy) ने ओषजन (oxygen) का आविष्कार किया; पारेके लालरस (red oxide of mercury) को एक ताल द्वारा किरणें डालकर गरम करनेसे एक प्रकारकी हवा निकाली जिसमें चीजें बहुत तेजीसे जलती थीं। इस हवामें आपने एक चूहेको रखा और देखा कि वह चूहा वायुमण्डलके वायुकी अपेक्षा प्रायः दुगुने समय तक जी सकता था।*

* दोनों तरहकी वायुको बन्द बरतनोंमें भरकर यह प्रयोग किया गया था।

इसके बाद उनको इस हवाके सूंघनेकी खुद इच्छा हुई और सूंघनेपर थोड़ी देरतक शरीरमें आश्चर्य्य जनक हलकापन और आराम मालूम हुआ। पीछे और और तरीक़ोंसे भी आपने इस गैसको तैयार किया। प्रायः उसी समय एक दूसरे रासायनिक लेवासियर (Lavoisier) ने इस विषयपर अनेक प्रयोग करके यह प्रमाणित किया कि यह हवा वायुमण्डलके वायुका एक मुख्य अंश है और वायुमण्डलके वायुमें इसके ही रहनेसे जलनेवाली वस्तुएं साधारणतः जलती हैं। आपने ही पहले पहल इसका नाम ओक्सीजन (oxygen) रखा। इसके बाद कुछ ही दिनोंमें इन गैसोंके आविष्कारसे लोगोंको विश्वास हो गया कि अनेक ठोस और तरल पदार्थोंकी नाईं अनेक वायवीय पदार्थोंका होना भी सम्भव है। तब अन्य नई नई गैसोंकी खोज शुरू हुई और कुछ ही दिनोंमें अनेक वायव्य पदार्थों, मौलिक और यौगिकोंका पता लग गया, जिनका वर्णन इस थोड़ेसे समयमें होना सम्भव नहीं। केवल दो और वायव्य पदार्थोंका कुछ वर्णन कर इस व्याख्यानको समाप्त करूंगा।

नये नये वायव्य पदार्थोंके आविष्कारसे उत्साहित होकर प्रीस्टली ने (Priestley) साल एमोनियक (Sal ammoniac) अर्थात् नौसादरसे गैस बनाकर एकत्र करनेकी चेष्टा की और इसमें आपको सफलता भी हुई। पारेके ऊपर इस नई गैसको आपने एकत्रित किया, किन्तु ज्योंही यह पानीके साथ लगी, बिलकुल लापता हो गयी। पीछे मालूम हुआ कि पानीमें इसकी घुलन शक्ति बहुत अधिक है। यह वायुमण्डलकी हवासे हलकी भी है। इस गैसका नामकरण पहले पहल सन् १७८३ ई० में बर्गमेन (Bergman) ने किया और इसका नाम अमोनिया (ammonia) रखा।

इस गैसके व्यवहारिक प्रयोग (practical application) अनेक हैं। बर्फ बनानेकी कलोंमें यह बहुत अधिकतासे काम आती है, यद्यपि पाश्चात्य देशोंमें आजकल नयी नयी कलोंके आविष्कारसे इसका प्रयोग उठ रहा है।

अंग्रेजी दवाईयोंमें इसका प्रयोग बहुत होता है। स्मेलिंग साल्ट (smelling salt) का प्रयोग विद्यार्थी बहुत किया करते हैं। यह और कुछ नहीं है, केवल सुगन्धित द्रव्योंसे मिला हुआ अमोनियाका एक यौगिक है। बिच्छूके काटनेपर इसे सूंघनेसे विष बिलकुल उतर जाता है। इस प्रयोगको मैंने स्वयं करके कई बार देखा है।

हरिन (Chlorine) के विषयमें कुछ कहकर मैं इस व्याख्यानको समाप्त करूंगा। यह हरिन खानेवाले नमकका एक अंश है। शील (Scheele) ने पहले पहल इसे निकाला था। मङ्गनीज़ द्विओषिद (Manganese dioxide) की क्रियासे नमक और गन्धकाम्लको उपस्थितिमें यह तैयार होता है। इसका रङ्ग सुआपंखी और गंध बुरी होती है। पान करनेसे दम घुटने लगता है।

फ्रांसके एक प्रसिद्ध रसायनाचार्य Berthelot बर्थेलो (सन १७८५) का मत था कि यह ओषजनका एक यौगिक है। उनका यह सिद्धान्त अशुद्ध प्रयोगोंका फल था। जैसे जैसे इस पदार्थका अध्ययन होता गया यह प्रमाणित होता गया कि यह एक मौलिक पदार्थ है, न कि यौगिक, और आधुनिक नाम (Chlorine) क्लोरीन पहले पहल सन १८१० ई० में Davy ने दिया।

इसके दो गुण बहुत महत्वके हैं—(१) वानस्पतिक रङ्गोंका उड़ाना (२) जीवाणुओंका नाश करना।

रङ्गोंके उड़ानेके गुणके कारण कपड़ेके कारखानोंमें इसका बहुत अधिकतासे प्रयोग होता है। (bleaching powder) रंग उड़ानेवाले चूर्णसे आप लोग शायद परिचित होंगे। इस चूर्णमें रंग उड़ानेवाली वस्तु हरिन ही है। रङ्ग उड़ानेवाले चूर्णके स्थानमें आजकल (Sodium Hypochlorite) सोडियम उपहरित नामक पदार्थ इस्तेमाल होता है, जो

कपड़ोंके कारखानों ही में (elec.rolyis) विद्युत् विश्लेषण द्वारा तैयार होता है।

दूसरा गुण जीवाणुओंके नाश करनेका है। आप लोगोंको मालूम है कि अनेक बीमारियोंके जीवाणु (Germs) हम लोगोंके शरीरमें प्रवेश करते रहते हैं। इन जीवाणुओंका नाश हरिनके प्रयोगसे सहजमें ही हो सकता है। गत युद्धमें खंदकोंमें विरञ्जक चूर्णका प्रयोग इसीलिये किया जाता था। इसीलिए युद्धके समयमें सफेद कागज़ महँगा हो गया था।*

जड़ता अथवा तमोगुण

जीव और निर्जीव पदार्थोंमें भेद केवल जड़ता और चेतनताका है। जो जीव चल फिर नहीं सकते अथवा जिन्हें चलने फिरने, हिलने डोलनेमें कठिनाई या कष्टका अनुभव होता है वह जड़ कहे जाते हैं। पत्थर, ताम्बा, कांसा, पीतल, मट्टी आदि आदर्श जड़ पदार्थ हैं। पेड़ पूर्णतया जड़ नहीं हैं, उनमें कुछ चेतनता पाई जाती है। मनुष्यमें सब पशुओंसे अधिक चेतनता पाई जाती है, परन्तु स्मरण रहे कि उसमें भी जड़ता अवश्य रहती है।

जड़ताकी परिभाषापर पहले विचार कर लेना आवश्यक है। जड़ताका अर्थ है दशा अथवा स्थितिके बदलनेकी असमर्थता। अब यह विचार करना चाहिये कि यह गुण अथवा अवगुण कहां कहां पाया जाता है? उससे कुछ लाभ भी होता है अथवा केवल हानि ही हुआ करती है?

चाहे कोई वस्तु चल रही हो अथवा स्थिर हो वह अपनी दशा स्वयं नहीं बदल सकती। मान लीजिये कि एक पत्थर आपके सामने पड़ा है। क्या यह सम्भव है कि वह अपनी स्थिति अपने आप बदल दे? ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। इसी लिए कहते हैं कि पत्थर जड़ है। फुटबाल की भी यही दशा है। अपने आप चलकर वह गोल तक नहीं पहुंच जाती। उसे गोल तक पहुंचानेके लिए काम करना पड़ता है। मान लीजिये कि आपने उसमें ज़ोरसे ठोकर लगाई। ठोकर खाकर देखिये वह किस वेगसे चलने लगी। अब क्या उसमें यह सामर्थ्य है कि अपने आप ठहर जाय। शायद आप कह बैठें कि इसमें संदेह ही किसको हो सकता है। प्रत्यक्षके लिये प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती। हम अपनी आंखोंसे देखते हैं कि थोड़ी अथवा अधिक दूर चलकर वह ठहर जाती है। पर ज़रा ध्यान देकर सोचिये। यदि आप एक संगमर्मरकी बिलकुल चिकनी, साफ, पालिश की हुई गेंद बनाकर संगमर्मरके अत्यन्त चिकने फर्शपर ढुलकावें तो वह कितनी दूर तक लुढ़ककर पहुंचेगी। स्पष्ट है कि वह बहुत दूर तक चली जायगी। पर क्यों? आप कहेंगे कि फर्श चिकना है। इससे सिद्ध है कि फर्शका खुरदरापन ही गेंदके रुकनेका कारण है। यदि गेंद और फर्श दोनों पूर्णतया चिकनी हों तो गेंद अनादिकाल तक चलती ही रहेगी। गेंदके रुकनेका एक और भी कारण है। वह है हवाकी रगड़ और दबाव। शायद हवाकी रगड़के नामसे आप चौंकेंगे। पर आप ज़रा हाथपर फूंकिये। देखिये कि हाथपरसे कोई चीज़ रेंगती हुई मालूम होती है या नहीं। मोटरमें या रेलमें बैठकर भी आप रगड़का अनुभव कर सकते हैं। उल्का, टूटने वाले तारे, जब हवामें प्रवेश करते हैं तो रगड़से इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि वह जल उठते हैं और तभी हमें दिखाई भी पड़ते हैं। पानीमें भी रगड़ होती है। यदि न होती तो नाव एक बार ढकेल देनेसे बहुत दूर तक चली जाती (क्यों कि हवा तो रहती ही, वह उसको अन्तमें रोक देती)। दबावके विषयमें सभी जानते हैं।

* यह व्याख्यान परिषद्के २७ नवम्बर के अधिवेशनमें दिया गया था। —सं०

उपरोक्त बातोंसे ज्ञात हुआ कि कोई भी वस्तु यदि ठहरी हुई हो तो चल नहीं सकती और यदि चलती हो तो ठहर नहीं सकती, जब तक कि उसपर कोई शक्ति न काम करे।

इस बातके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं :
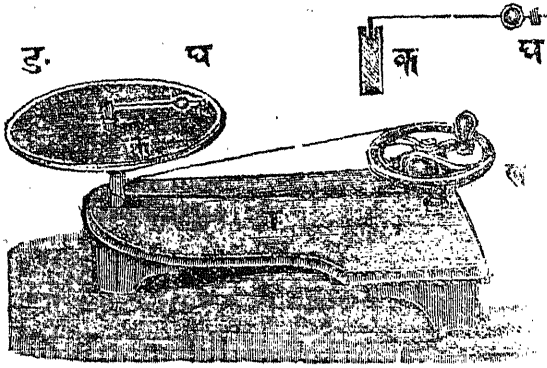
चित्र २

चित्र २ में एक घूमने वाली-मेज़ (Whirling table) दिखलायी गई है। ख पहियेके घुमानेसे ङ मेज़ घूमती है। इसके बीचमें एक क लकड़ी लगी हुई है, जिसके छिद्रमें एक मुड़ी हुई डंडी है, जो घूम सकती है और जिसके परले सिरेपर घ गेंद जड़ी है। क, घ का सम्बन्ध चित्रके ऊपरके भागमें अलग दिखलाया है। ख को घुमाइये, ङ घूमने लगेगी और साथ साथ घ भी घूमने लगेगी। ङ और घ के घूमनेका वेग एक समान होगा। अब ख को रोक दीजिये, ङ रुक जायगी। पर आप पायेंगे कि घ घूमती रहती है। अन्तमें हवाके दबाव और रगड़से वह भी ठहर जायगी। अतएव सिद्ध हुआ कि पदार्थमें यदि एक बार गति पैदा करदी जाय, तो उसमें स्वयम् ठहर जानेकी शक्ति नहीं है।

मान लीजिये कि एक सवार घोड़ेपर चढ़ा हुआ बड़े वेगसे चला जा रहा है। घोड़ा ठोकर खाकर रुक जाता है। जब तक घोड़ा चलरहा था, सवार भी उसी वेगसे जारहा था। घोड़ा तो ठोकर खाकर ठहर गया। पर सवारको कौन रोके। परिणाम यह होता है कि सवार आगेको गिरता है। (चित्र ३)
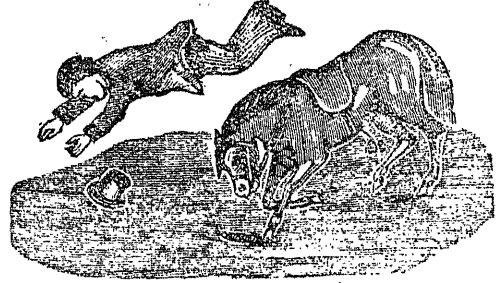
चित्र ३—घोड़ेके ठोकर खानेसे सवार आगेको गिरता है।

इसी प्रकार यदि घोड़ा सहसा चमक कर भागने लगे तो सवार एक दम उतने वेगसे आगे न बढ़ सकेगा। उसका नीचेका भाग जो काठी पर जमा है वह आगे घोड़ेके साथ चलेगा पर ऊपरका भाग असावधानीके कारण अपने पुराने धीमे वेगसे चलता रहेगा। परिणाम यह होगा कि सवार पीछेको गिरेगा (चित्र ४)। इसी प्रकार जब रेल एक दम ठहर जाती है तो सवारियां आगेको झुक जाती हैं। जब वह एकदम चल देती है तो पीछेको धक्का लगता है।

चित्र ४—घोड़ेके अचानक दौड़नेसे सवार पीछेको गिरता है।

यह शायद आपने देखा होगा कि रेलके नौकर जब चलती गाड़ीमेंसे उतरते हैं तो सदा थोड़ी दूर तक उसके साथ दौड़कर ठहरते हैं। यदि ऐसा

न करें तो उतरते ही उसके पैर तो ठहर जायंगे। परन्तु ऊपरका भाग पूर्व वेगसे आगेको बढ़ेगा। अतएव वह मुंहके बल गिरेगा। (चित्र ५)
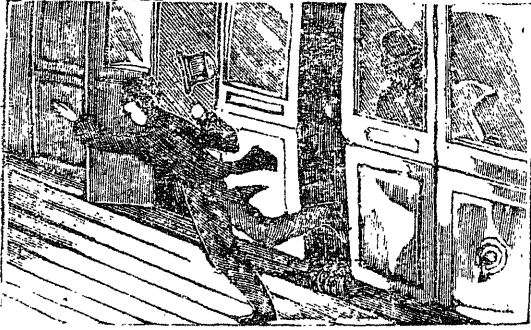
चित्र ५—चलती हुई रेल से उतर कर ठहरने वाला मनुष्य मुँह के बल गिरता है।

इस सिद्धान्तके ज्ञानसे आदमी बहुत काम निकालता है। जब आपको किसी नाली या खाई को फांदना होता है तो आप क्या करते हैं? आप दौड़ कर आते हैं और किनारे पर ठुकरा कर ऊपर उठ जाते हैं। आपका पहलेका वेग आपको पार कर देता है। (चित्र ६)

चित्र ६—खाई कूदने में जड़त्व ही पार लगाता है।

इसी भांति सरकसके तमाशोंमें जो सवार घोड़ेकी पीठपरसे उछलकर चक्रोंमेंसे निकल जाते हैं और फिर घोड़ेकी पीठपर ही उतर आते हैं, जाने या अनजाने इसी नियमका सहारा लेकर काम करते हैं। (चित्र ७)
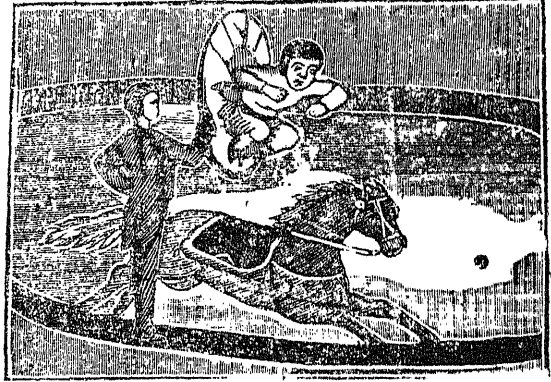
चित्र ७

एक खेल बच्चे आसानीसे कर सकते हैं। एक काठकी गेंद, किसी गिलासमें पानी भरकर और उसपर तख़्ता रखकर, रखदें। पास ही एक कमानी किसी चीज़से दबाकर रखें। कमानी छूटते ही दफतीको सरका देगी। गेंद पानीमें गिर जायगी (चित्र ८)।
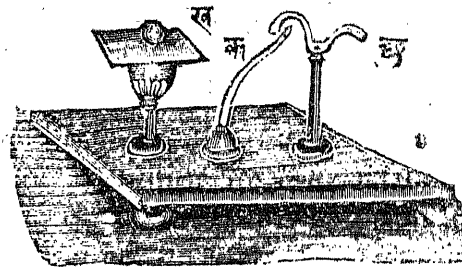
चित्र ८

सूपसे किसीको नाज फटकते आप देखें तो भी उसी नियमको बरतते आप पायेंगे। फटकनेवाला सूपको ऊपरको उछालता है, पर उसे थोड़ा सा ऊपर को उठनेके बाद ही रोक देता है। परन्तु नाज नहीं रुकता और ऊपरको
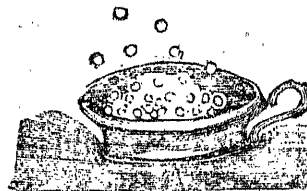
चित्र ९

उठता चला जाता है। यह प्रयोग एक थालीमें कुछ मटर रखकर भी कर सकते हैं। मटर उछलकर बाहर आ गिरेंगे। (देखिये चित्र ६)

हम देख चुके हैं कि इस जड़त्वसे लाभ उठा कर हम नाजको फटक सकते हैं, लॉंग जम्प या हाई जम्प कर सकते हैं, सरकसके वा साधारण खेल कर सकते हैं, चलती हुई रेलमेंसे उतर सकते हैं। पर क्या इससे हम कोई औद्योगिक लाभ भी उठा सकते हैं? अवश्य इसके कुछ उदाहरण सुनिये। आपने रेलमें सफर करते समय देखा होगा कि वह पानी लेनेके लिए स्टेशनोंपर ठहरती जाती है। यदि बिना ठहरे हुए ही पानी ले सके तो कितना समय बच सकता है। रेम्सबोटम महोदयने इस बातकी एक तरकीब निकाली है, जिसका विवरण चित्र १० से मालूम हो जायगा। गाड़ीके फर्शमेंसे एक नलीसी निकली हुई है (अ)। यह १० इञ्च चौड़ी है, यह एक नालीमें २ इंच डूब जाती है। नाली १८ इंच चौड़ी और ६ इंच गहरी होती है। जब ट्रेन तेज़ीसे
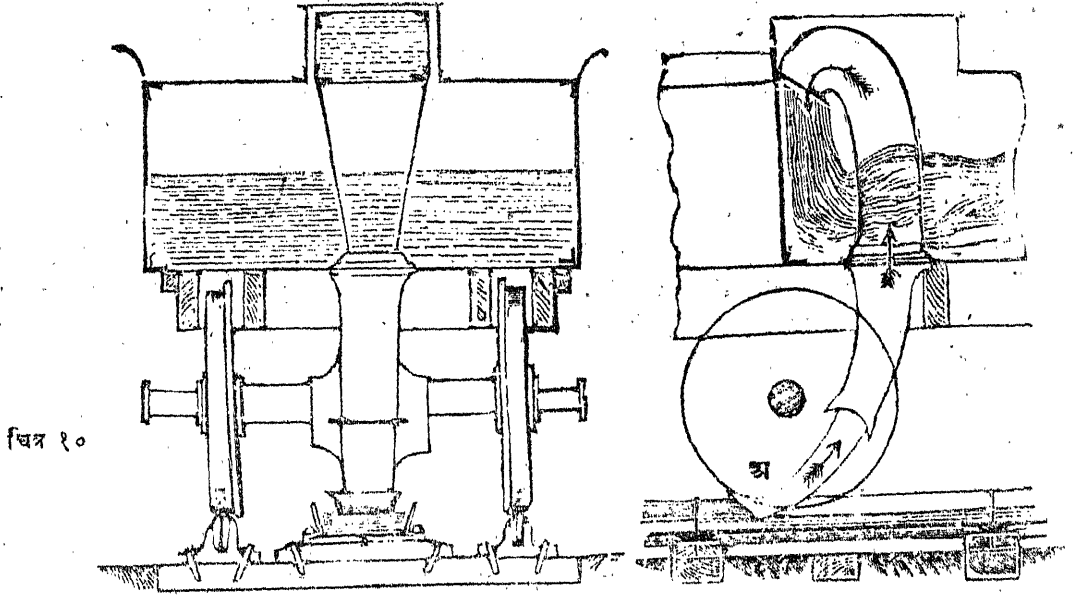
चित्र १०

चलती होती है तो अके मुहंमें पानी प्रवेश करता है। पहले तो यह स्थिर रहता है परन्तु नलीमें प्रवेश करते ही, ऊपरकी ओरको गाड़ीके वेगके बलसे वेगसे चढ़ने लगता है और होज़में गिरने लगता है। यदि पानीमें यह सामर्थ्य होती कि एक दम रेलके वेगको ग्रहण कर लेता तो वह ऊपरकी ओर न चढ़ता, केवल दो इंच तक ही ट्यूब पानीसे भरकर रह जाती। उसका जड़त्व, वेगको ग्रहण करनेकी असमर्थता ही, उसे ऊपर चढ़नेको बाधित करता है। यह एक स्थिर पदार्थके जड़त्वका उदाहरण हुआ। गाड़ीके, नाली और नलीके दो चित्र यहां दिये गये हैं, एक बगलसे और दूसरा सामनेसे काट कर भीतरका दृश्य दिखाया गया है।

एनफोल्ड रफल (बन्दूक़) की नालीमें एक सर्पिलाकार खाना कटा होता है। गोलीका अधोभाग खोखला प्यालेनुमा होता है। इसमें एक काठ की डाट लगी रहती है। जिस समय बन्दूक छोड़ी जाती है, उसमेंकी बारूद आग ले जाती है। उस समय उक्त लकड़ीकी डाटको धक्का पहुंचता है।
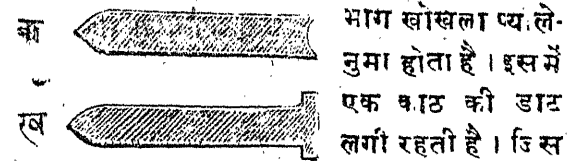
चित्र ११

वह धक्केसे जितना वेग उत्पन्न होता है उतना एक दम अपने जड़त्वके कारण धारण नहीं कर सकती। अतएव जितनेमें कि उसका वेग उतना होजाय, उसकी विकृति हो जाती है और वह इधर उधर दबकर सर्पिलाकार खानेको भर लेती है और उस का उक्त अंश खानेमें ही फिसलता हुआ आगे बढ़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि गोली जिसमें यह डाट ठुकी है, आगे बढ़ती जाती है और डाटके साथ साथ घूमती जाती है। अतएव रफलके बाहर निकलने पर उसमें दो प्रकारकी गति हो जाती है। एक तो आगे बढ़नेकी, दूसरी घूमनेकी। चित्र ११ के भाग क में केवल गोली ही दिखलायी गयी है। भाग ख में डाटकी विकृत आकृति दिखाई गयी है।

चीज़ोंके जड़त्वसे हम बार बार परेशान हुआ करते हैं। जिस जड़त्वसे हमें अनेक अवसरों पर हानि उठानी पड़ती है, उसी जड़त्वसे हम प्रतिक्षण काम भी लिया करते हैं। आपके पास एक हथौड़ा है। उसे आप बेंटे पर चढ़ाना चाहते हैं। इसी लिये आप उसे ज़मीनपर रख कर ठोकते हैं। आपको यह देखकर कि वह सुगमतासे नहीं चढ़ता, ज़रा ज़रा सरकता है अथवा टेढ़ा हो अड़ जाता है, कितनी झूंझल आती है। पर विचारनेकी बात है कि इसी अड़ जानेके गुण अथवा जड़त्वसे आपका काम चलेगा। यदि वह सुगमतासे चढ़ जाय तो काममें लाते समय वह उतर कर दूर जागिरेगा।
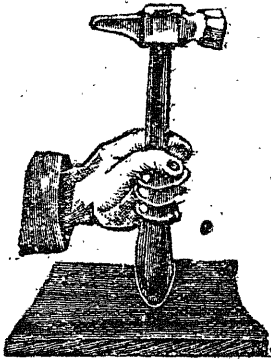
चित्र १२

(चित्र १२) कील ठोकते समय भी लोगोंको इसी लिए बुरा लगता है। जो लोग इञ्जीनियर नहीं हैं, उन्हें जब कभी मशीनों से काम पड़ता है वह कल, पुर्ज़ोंके जड़त्वसे कितने चिढ़ते हैं और कभी कभी तावमें आ मशीनको बिगाड़ बैठते हैं। पर इञ्जीनियरोंसे पूछिये। वह किस शान्तचित्ततासे काम लेते हैं।

किसी मनुष्यमें कोई अवगुण है, वह उसके हटाने अथवा छोड़नेकी कोशिश करता है। पर बार बार वह फिर वही दोष कर बैठता है। लोग उसे बुरा कहते हैं, वह भी असन्तुष्ट होता है। पर सोचनेकी बात है कि यदि मनका दोष इतनी जल्दी दूर हो जाय तो गुण भी इतनी जल्दी ही कूंच कर जायंगे। स्मरण रहे मन भी पदार्थमय* है, उसमें जड़त्व है। उसकी प्रेरक बुद्धि अथवा अन्तरात्मा है। वह जिस ओर इसे जितनी दृढ़तासे लगा देगी, उधर ही यह लगा रहेगा। गुण और दोष, धर्म और अधर्म तो दशाएं हैं। एक ही सड़कके दो भाग हैं; बीजज्या-मितिके भुजकी दो दिशाएं हैं, ऋण और धन। जिधर चाहिये मनरूपी गेंदको लुढ़का दीजिये। अपने जड़त्वसे चला जायगा। इसका ठहराने-वाला या तो अन्तरात्मा या बुद्धि है, अथवा मार्गकी रगड़—कठिनाइयां—या विषय रूपी वायु। उसमें स्वयम् स्थिति अथवा दशा-परिवर्तनकी शक्ति नहीं है। उसे जिधर लगाइये, लग जायगा।

सतोगुणके मतवालो, यह तुम्हारे सतोगुणका अस्तित्व केवल तमोगुणके सहारे ही सम्भव है। वास्तवमें सतोगुण कोई चीज़ नहीं। जिस जड़ताको तुम तमोगुण कहते हो, उसके दो प्रयोगान्तर ही रज और सत्व हैं।

खैर हमें इन दार्शिनक झगड़े टंटोंसे कोई सरो कार नहीं है। हमें तो इसके जड़त्व में ही परमोच्च सत्योंका अनुभव होता है, उसीमें निरन्तर कार्य-तत्परता, चहलपहल और अपरिमित शक्तिके दर्शन होते हैं। हमें तो पत्थर ही प्रत्यक्ष परमेश्वर प्रतीत होता है। पर ब्रह्मके उसीमें दर्शन होते हैं।

जड़त्वकी दो और व्यवहारिक उपयोगिताओंके उदाहरण दे हम इस लेखको समाप्त करेंगे। लिवर

* यहां पदार्थ शब्दका अर्थ वैज्ञानिक नहीं है, दार्शनिक है, पर नियम सर्वव्यापी होनेसे इस विषयकी यहां चर्चा की गयी है।

पूलके अन्नभण्डारोंमें चलते फिरते पदार्थोंके जड़त्वसे काम बड़ी उत्तमता और योग्यतासे लिया जाता है। गोदामके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक नाज पहुंचानेके लिए केनवास और रबड़से बनी हुई चौड़ी पट्टियोंसे काम लेते हैं। यह बेलनों पर घूमती हैं। चित्र १३ में पट्टी दो बेलनों पर शरों-

चित्र १३
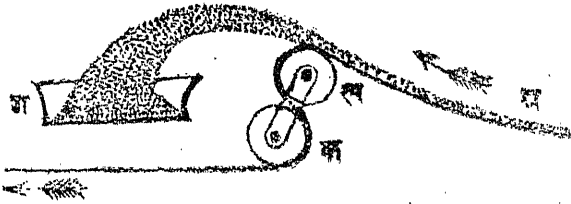
की दिशामें घूमती है। नाज पट्टी पर घ स्थान पर डाला जाता है। यह पट्टीके साथ साथ बहुत दूर तक चला जाता है। जब ख पर पहुंचता है तो पट्टीसे आगे बढ़ कर ग में गिर जाता है। पट्टीसे अलग होते ही वह ठहर नहीं जाता, किन्तु जड़त्वके कारण आगे बढ़ कर ग में गिरता है। इस प्रकारके जड़त्वको गति-जड़त्व कहते हैं।

जहां पर खत्तियां पक्की और कई खनोंकी होती हैं; वहां पर पहले नाज ऊपरके खनपर पहुंचा दिया जाता है और वहांसे सबसे नीचे मंज़िल तक मंज़िल ब मंज़िल इसी यंत्र द्वारा पहुंचाते जाते हैं; यहां तक कि कुल गोदाम भर जाता है।

इसी प्रकार मैंचेस्टरके बाहर घरोंमें पानी लानेमें भी इसी गुणका सहारा लेना पड़ता है। मैंचेस्टर और शेफील्डके बीचकी दल दली जगहमेंसे पानी मैंचेस्टरमें लाते हैं। गरमीमें तो यह पानी साफ और शुद्ध होता है, परन्तु वर्षा हो जाने पर कीचके मिल जानेसे गदला हो जाता है। अब प्रश्न होता है कि क्या ऐसा प्रबंध करना सम्भव नहीं है कि किसी तरकीबसे रिज़रवोयरमें गन्दा पानी तो न आने पावे, पर शुद्ध पानी आजावे।

चित्र १४ में जो तरकीब काममें लाई जाती है इसरतया समझमें आजायगी। जब पानी साफ होता होता है और धीरे धीरे चलता है, तो छिद्र क में होकर रिज़रवोयर अथवा कुण्डमें गिर पड़ता है। परन्तु जब गदला होता है और तेज़ बहाव होता है तो पानी क को नांघ कर आगे बढ़ जाता है और एक दूसरे ही कुण्डमें जा पहुंचता है।
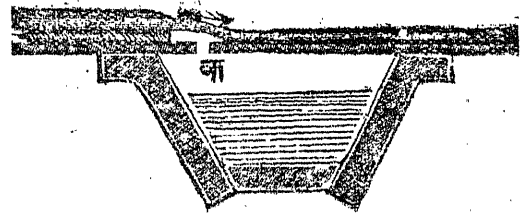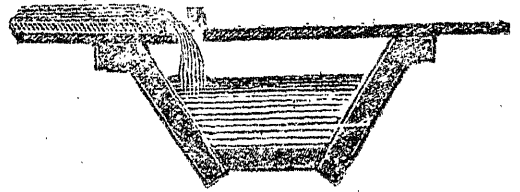
चित्र १४

गोली बनानेमें भी यही सिद्धान्त काम आता है। सीसा पिघला कर एक गुम्बजके ऊपरसे छोड़ा जाता है। गिरते समय उसकी बूंद बन जाती हैं, जो पानीमें गिरकर ठोस हो जाती हैं। अब इन गोलियोंमेंसे जो बिलकुल गोल हैं उन्हें विकृत आकार गोलियोंसे अलग करनेके लिए, सब गोलियोंको एक चिकने लोहेके ढलवां तल पर लुढ़काते हैं। तलके नीचे बहुत से गड्ढे बने होते हैं। जो गोलियां पूर्ण वृत्ताकार होती हैं वह लुढ़कनेमें इतना वेग सम्पादन कर लेती हैं कि वह इन गड्ढोंके ऊपर हो कर निकल जाती हैं और दूर जा गिरती हैं। जो विकृत होती हैं उनका वेग कम होनेसे वह गड्ढोंमें गिर जाती हैं।

पाठकों, हम भी जड़त्वके कारण ही इतनी देर तक लिखते रहे, अब आलस्य वातके लगनेसे यहीं आपसे विदा होते हैं।

—गंगा प्रसाद

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय*

[ले०—प्रो० जगद्बिहारी सेठ, एम० एस-सी०]

श्रीमान सभापति महोदय और सज्जनों।

मुझे अत्यन्त खेदके साथ कहना पड़ता है और परिषद्की ओरसे आप लोगों से खेदपूर्वक क्षमा याचना करनी पड़ती है कि अस्वस्थताके कारण इस सन्ध्या समयके कार्यक्रममें विज्ञापित वक्ता श्रीयुत गौड़ महोदय आप लोगोंके सामने उपस्थित नहीं हो सके और इस लिए निस्सन्देह उनकी सतत रुचिर एवं सरस और सरल, परन्तु भावशाली और गम्भीर वक्तृता सुननेकी इच्छा और प्रत्याशा करके आनेकेकारण आप लोगोंको जो हताशा हुई होगी, उसकी पूर्त्ति तो शायद ही आज हो सके। और उन सरीखे विद्वान और अनुभवी और गवेषक तथा सरल और सुरस भाषामें भी गम्भीर विचारोंको इस प्रकारसे कहने तथा समझानेकी सामर्थ्य रखनेवाले कि उसको उस विषयका कुछ भी ज्ञान न रखनेवाला एक अदीक्षित मनुष्य भी अच्छी तरहसे समझ सके; इन सब गुणोंसे युक्त महाशयके स्थानापर मुझ सरीखे अपेक्षतया नितान्त अनुभवहीन सामान्य व्यक्तिको आप लोगोंका एक आध घंटेका समय बितानेके लिये नियुक्त करनेमें परिषद्के कार्यकर्त्ताओंने कहांतक बुद्धिमानीका काम किया है तथा कहां तक वह आपलोगोंकी बधाईके पात्र हुए हैं—इसके बारेमें कहना व्यर्थ है।

आज शामको आप लोग सभ्यताके विकास सम्बन्धी अनेक चित्ताकर्षक और मनोरञ्जक परन्तु शिक्षाप्रद और नूतन ज्ञानदायक बातोंको गौड़ महाशयकी मनोहर वाणीसे सुननेकी प्रत्याशासे एकत्रित हुए हैं, परन्तु गौड़ महाशयको अनुपस्थित देखकर आप लोगोंने अवश्य ही अपनी अपनी प्रत्याशाओंको उनकी उच्च कोटिसे बहुत कुछ नीचे उतारलिया होगा। परन्तु यह बात सौभाग्यवश मेरे ही पक्षमें है; क्योंकि आप लोग अवश्य कोई बड़े गम्भीर विषय पर मुझसे कुछ सुननेकी प्रत्याशा न करेंगे। एक तो पर्याप्त समय भी मुझे न मिल सका कि आप लोगोंकी आशाएं बिलकुल ही मिट्टीमें न मिलानेका कुछ यत्न कर सकता। और दूसरे मुझमें कदाचित् इतना अनुभव और शक्ति भी नहीं कि आप लोगोंका ध्यान एकाग्र रीतिसे किसी भावपूर्ण और उच्च कोटिवाले विषयपर प्रायः एक घंटे तक नियोजित रख सकूं।

सभ्यताके विकासके भिन्न भिन्न प्रकारके और भिन्न भिन्न कालके विभेदोंको—किस प्रकारसे मनुष्यकी उत्पत्ति और प्रारम्भिक सभ्यता, किम्वा असभ्यताका विकास हुआ; किसप्रकारसे प्राचीन यूनान, रूम और मिश्रकी भिन्न भिन्न प्रकारकी सभ्यताओंका जन्म हुआ और किस पराकाष्ठा तक पहुंचाकर अन्तमें उनका क्रमशः विनाश आरम्भ हुआ, यहां तक कि शताब्दियां हो गईं कि उनका केवलनाम मात्र और एकाधचिन्ह मात्र ही रह गया; किस प्रकारसे भारतीय आर्य सभ्यताकी गौरव पताका संसारमें फहरायी थी; किन किन अद्वितीय बातोंका और आज दिन तक भी अनतिक्रामित सिद्धान्तोंका उसके द्वारा आविष्कार हुआ; किस प्रकार किन कारणोंसे भांति भांति के भयानक और संहारकारी आक्रमणों द्वारा पददलित और लुप्त प्राय हुई दिखती हुई भी अब तक उसमें पर्याप्त प्राण और श्वास शेष है, कि जिनके कारण आज भी वह संसारमें जीती और कुछ कुछ जागती हुई भी कहाये जानेके योग्य है और अब भी इस बातका दावा रखती है कि अर्वाचीन पाश्चात्य सभ्यताके प्रज्वलित तेजको भी फीका करके यह एक दिन फिर इस संसारको अपने शान्तिदायक आलोकसे सुखी करेगी; किस प्रकारसे कुछ लोग आशा करते हैं कि एक अनतिदूर दिवस फिर भी उसकी उच्च

* यह व्याख्यान आपने २६ नवम्बरको परिषद्के वार्षिक अधिवेशनमें दिया था।

पताका संसारमें फहरायेगी—तथा इस बातका भी कि आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक सभ्यताका क्रमशः किस प्रकार विकास हुआ, किस पराकाष्ठाको वह पहुंच चुकी है और अभी तक बराबर उन्नति करती चली जा रही है, दिन ब दिन नये नये आविष्कारों द्वारा नई नई करामातोंका, प्रकृतिके नये नये भेदोंका, नई प्राकृतिक बलशालाओंका, प्रकृतिके गूढ़ाति गूढ़ कौबेरिक-भाण्डारोंका पता लगता चला जारहा है; किस प्रकार आधुनिक काल वैज्ञानिक सभ्यता, वैज्ञानिक जीवनका एक प्रकारसे शैशवकाल ही कहा जासकता है, क्योंकि इस वैज्ञानिक सभ्यताका कहांपर पहुंचकर अन्त होगा, कब यह सभ्यताकी उस उच्चातिउच्च कोटि तक पहुंचेगी कि जिसके ऊपर जाना असम्भव होगा; पूरा पूरा निर्णय होना अत्यन्त कठिन है। यह संसार और इस संसारकी सभी बातें, सभी घटनाएं, सब प्रकारके विकास एक चक्रमें घूमते हुएसे प्रतीत होते हैं। भिन्न भिन्न देशों और राष्ट्रोंकी और भिन्न भिन्न प्रकारकी सभ्यताएं भी इसी चक्रके चक्करमें घूमती हुई सी देख पड़ती हैं। और संसारका इतिहास इस चक्रकी सर्वशक्तिमत्ताका ऊंचे स्वरसे गुणगान कर रहा है। जो जाति, जो राष्ट्र, जो सभ्यता कि उन्नतिके ऊंचेसे ऊंचे शिखरपर आरूढ़ हो चुकी है, वहां तक पहुँचकर, उस ऊंचे शिखरकी चोटीसे, उसका भी क्रमशः पतन हुआ है और यह नीचेको गिरी है।

विज्ञान रूपी सभ्यता भी क्या इसी चक्रके आधीन है। जिस प्रकार प्रकृति अनन्त है, जिस प्रकार प्रकृतिके सभी व्यापारों सभी भेदोंका पूर्ण निश्चयात्मकज्ञान अभीतक न किसीको प्राप्त ही हुआ है और न कोई ऐसा ही दिखलाई देता है कि जो इसकी सभी समस्याओंको समझ सके। सभी समस्या और भेदोंकी तो बात दूर रही जितना बहुत किम्बा थोड़ा ज्ञान आजकलके वैज्ञानिकों और पण्डितोंको है वह कदाचित् कुछ भी नहीं होनेके बराबर है। यह सब होते हुए भी ऐसा ही जान पड़ता है कि वैज्ञानिक संसारकी सभ्यता भी, उसका विकास भी, प्रकृति की ही भांति अनन्त होगा।

परन्तु यह सब बातें इस सभ्यताके विकास शीर्षक विषयमें आ सकती हैं या नहीं और यदि आ भी सकती हैं तो उनका यथाक्रम और पर्याप्त वर्णन करने की मुझमें तो सामर्थ्य नहीं। जिस महाशय का आज मुझे स्थान लेने को कहा गया है वह कदाचित् इन बातों पर विचार करते। मेरा तो वास्तवमें इन सब बातोंके बारेमें कुछ कहनेका भी इरादा न था और उनके केवल कथन मात्र करनेमें ही आप लोगोंका इतना समय लेनेके लिये क्षमा प्रार्थना करता हुआ मैं जिस विषय पर आप लोगों को कुछ सुनाना चाहता हूं उसकी ओर मुड़ता हूं।

सभ्यताके विकास को गौड़ महाशय ही पर किसी और समयके लिये छोड़ कर आज मैं आधुनिक पाश्चात्य सभ्यताके विकास नहीं परिणाम का एक चित्र आपके सामने रखना चाहता हूं। केवल पाश्चात्य ही नहीं वैज्ञानिक सभ्यताके एक केन्द्र का वर्णन करना चाहता हूं। और अब आप लोगों को और अधिक देर दुविधामें न रख कर साफ ही साफ कह देना उचित मालूम पड़ता है कि आज शामको मैं आप लोगोंको थोड़ी देरके लिये आपकी मनोकल्पना और अनुमान शक्तिरूपी हवाई जहाज़ पर बैठा कर वाक्चित्रों और छाया चित्रोंके द्वारा केम्ब्रिज और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय की सैर करानेके लिये ले जाना चाहता हूं। विज्ञान परिषद्के वार्षिक अधिवेशनके समय कदाचित् आप कमसे कम यह कभी न आशा करते होंगे कि वैज्ञानिक अथवा उपवैज्ञानिक वा छद्म वैज्ञानिक ही विषय को छोड़ कर ऐसे विषय पर भी कुछ कहना उचित होगा। परन्तु विज्ञान परिषद् का जो उद्देश मेरी समझमें आया है, उसके अनुसार तो मैं किसी भी विषय पर बोल सकता हूं।

यदि उससे आप लोगों की कुछ थोड़ी सी भी और किसी प्रकार की भी ज्ञान वृद्धि अथवा कमसे कम मनोरञ्जन हो सके। अतएव बिना किसी अधिक क्षमा प्रार्थनाके अथवा किसी अन्य भूमिका के मैं आपको अब सीधा उक्त सैर के लिये ले चलता हूं। हां एक बात की और क्षमा प्रार्थना करनी है कि यदि कहीं कहीं पर मैं अंग्रेजी शब्दों अथवा वाक्यों का व्यवहार करूं तो उसको आप लोग बुरा न मानेंगे।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का ठीक ठीक वर्णन करना एक प्रकारसे कुछ सहल काम नहीं है। क्योंकि हम लोगोंके यहां हर एक यूनिवर्सिटी का ढर्रा उससे बिलकुल ही भिन्न है। केम्ब्रिजके बारेमें यह कहा जा सकता है कि वहांके कालेज ही सबके सब मिल कर यूनिवर्सिटी बनाते हैं और यूनिवर्सिटी ही कालेज हैं। इस बातके स्पष्टीकरण का मैं यत्न करूंगा। केम्ब्रिजमें कुल मिलाकर कह सकते हैं कि २१ कालेज हैं। इनमेंके १६ तो असली कालेज कहे जा सकते हैं, दो को केम्ब्रिजमें हास्टेल कहते हैं, एक नान कालिजियेट विद्यार्थियों की संस्था है, जिसका भी एक Fitzvillianhall है, और दो स्त्रियोंके कालेज हैं। इस सारे संसारमें प्रसिद्ध और आधुनिक विज्ञान तथा नवीन विचारों का केन्द्र होते हुए भी इस यूनीवर्सिटीमें अभीतक ऐसे पुराने लकीरके फकीर पुराने विचार वाले, कट्टर लोग मौजूद हैं कि जिनकी वजहसे स्त्रियां यूनीवर्सिटीकी विद्यार्थिनियां नहीं कहलातीं और उक्त दो स्त्री कालेज असलमें यूनीवर्सिटीमें नहीं शामिल हैं। परन्तु ऐसी उम्मेद है कि एक सालके अन्दर ही अन्दर यह कालिमा छुट जायगी। आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटीने हाल में ही स्त्रियों को भी यूनीवर्सिटीमें शामिल कर लिया है। केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी अपनी आक्सफोर्ड बहिनसे कुछ साल छोटी है। इसलिए एक प्रकारसे उक्त बात (Evolution) विकाशवाद का केवल प्रमाण मात्र ही समझना चाहिये।

एक बात का पहिले ही पहिल बतला देना ठीक मालूम पड़ता है कि केम्ब्रिजमें कालेज का वही मतलब नहीं है जो कि यहांके कालेजों का मतलब है। वहां कालेज वास्तवमें होस्टल मात्र हैं।

विद्यार्थियोंके निवासके स्थानोंको ही कालेज कहते हैं। विद्यार्थियोंके कमरोंके सिवा वहां अवश्य एक दो या अधिक व्याख्यान भवन (Lecture Rooms) रहते हैं तथा गिरजा (College-Chapel) भोजन शाला (College DiningHall) पठनशाला (Reading rooms) इत्यादि इत्यादि भी कालेजके अन्दर ही होते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को दो कमरे मिलते हैं; एक तो बैठक या अध्ययनशाला (Study) समझिये और दूसरा (Bedrom) सोने का कमरा। इनके सिवाय एक और छोटी सी जगह होती है जहां पर कि बर्तन वगैरह रखते हैं और धोने मांजनेके लिये सिंक (नांद Sink) भी होती है। इस प्रकार एक एकके पास तीन कमरे होते हैं। परन्तु प्रत्येक कालेजमें इतने काफी कमरे नहीं होते कि कालेजके सबके सब लड़के उसमें रह सकें। इसलिये प्रत्येक कालेज शहरके कुछ घरोंको एटैच (Attach) या एफिलियट (Affilate) कर लेता है, जिनको लाजिङ्ग हौस (Lodging house) या डिग्स (Digs) कह कर पुकारते हैं। इस प्रकार एक एक घरमें दो तीन या अधिक कमरोंके सेट (Set of rooms) होते हैं। इन घरोंमें रहनेवालोंको मामूली खाने पीनेका और इस प्रकारकी और सब बातोंका इन्तजाम घरका मालिक करता है। परन्तु सब जगह डिसपलिन (Discipline) वही रखना पड़ता है अर्थात् उन्हीं नियमोंका पालन करना पड़ता है; और घरका मालिक भी कालेजके एक प्रकारसे अधीन ही समझना चाहिये।

एक प्रकारसे कह सकते हैं कि लड़के रहते तो हैं इन कालेजोंमें पर शिक्षा पाने यूनिवर्सिटीमें आते हैं। यूनिवर्सिटीके अलग व्याख्यानभवन (लेकचर रूम Lecture room) होते हैं। परन्तु यद्यपि उसके ज्यादातर व्याख्यान, लेकचर्स, इन्हीं

(University Lecture Room) भवनों में ही होते हैं, यह कोई ज़रूरी बात नहीं कि सब वहीं हों। जो व्याख्यान, लेक्चर्स (Lectures), का इन्तज़ाम कर सकते हैं और जो ऐसा करनेमें ही सुभीता समझते हैं वह अपने अपने कालेजोंमें भी लेकचर दे सकते हैं। प्रत्येक कालेजमें एक मास्टर (master) होता है जिसको कालेजका प्रिंसिपल (principal) कह सकते हैं। इसके नीचे वाइस-मास्टर होता है और जैसा छोटा या बड़ा कालेज हुआ उसके अनुसार एक या दो तीन ट्यूटर ( ) होते हैं। कालेजके सब लड़के इन्हीं ट्यूटर्स (tutors) के अधीन होते हैं। वही उनके पढ़ने लिखनेका इन्तज़ाम करते हैं या और जो कुछ काम हुआ कालेज या यूनिवर्सिटीके मुताबिक वह इन्हींके द्वारा होता है। इनके सिवाय और भी अधिकारी होते हैं जिनको डेरेक्टर ओव स्टडीज़ (Director of studies) कहते हैं। यह सब अर्थात् ट्यूटर्स वगैरह बहुधा वही होते हैं जो कालेजमें ही पढ़े होते हैं और जिन्हें इम्तहानोंमें फर्स्ट क्लास मिला हुआ होता है। ऐसे सब लोगोंको कालेज फेलोस (College fellows) कहते हैं। विद्यार्थियोंमें यह लोग डोन्स (Dons) कहलाते हैं। यूनिवर्सिटी अपने प्रोफेसर, लेक्चरर, डिमंस्ट्रेटर (Demonstrator) वगैरह इन्हीं डोन्स (Dons) मेंसे चुनती है। इनको भी कालेजमें ही रहनेकी, जगह मिलती है, जिसके लिये उनको कुछ किराया नहीं देना पड़ता। केम्ब्रिजमें लेक्चर (lecture) प्रायः सभी ९ और १ बजेके बीचमें ही होते हैं। सभी लेक्चर (lecture) एक प्रकारसे यूनिवर्सिटीके सब विद्यार्थियोंके लिए खुले रहते हैं। परन्तु यूनिवर्सिटीके प्रोफेसरोंके लेकचरोंको छोड़कर और जो लेकचर होते हैं उन सबके लिये एक एक गिनी फीस प्रति टर्म देनी पड़ती है। हर एक कालेजका ट्यूटर (tutor) अपने अपने अधीन प्रत्येक लड़केको टर्म (term) के शुरूमें अपने पास बुलाकर उसको यह बतलाता है कि कौन कौन लेकचर उसको लेने चाहिएँ। यों तो लड़का जब चाहे ट्यूटर (tutor) के पास जा सकता है परन्तु टर्म (term) के प्रारम्भमें उसे अवश्य जाना पड़ता है, जिसमें ट्यूटर (tutors) से इन सब बातोंकी पूछताछ कर (instructions) आवे और (term) के आखीरमें केम्ब्रिज छोड़नेसे पहिले भी ट्यूटरसे मिलले और कालेज छोड़नेकी एकज़ीट (exeat) अर्थात् आज्ञा उससे ले आये। और उसके पढ़ने लिखनेका हाल, वह लेकचरोंमें जाता है या नहीं इत्यादिका हाल सब ट्यूटर रखता है।

हां तो ९ से १ तक तो लेकचर होते हैं और एक बजेके बाद लंच वगैरह खाकर, लोगबाग व्यायाम आदिमें (physical culure) बहुधा लग जाते हैं। फुटबाल, रगबी, हाकी इत्यादि अपने अपने ऋतुके अनुसार होते हैं। गरमियोंमें टेनिस और क्रिकेटका ज़ोर शोर रहता है। जाड़ेमें अर्थात् करीब करीब अक्तूबरसे मार्च तक बहुधा पानी बरसता रहता है। कमसे कम बादल तो हमेशा ही छाये रहते हैं और दिन भी बहुत ही छोटे होते हैं, इस लिये इन दिनों टेनिस और क्रिकट ठीक तरहसे नहीं खेल सकते। इन खेलोंके सिवाय जिनको और कुछ नहीं होता वह एक दो घंटेके लिये टहलनेके लिए ही निकल जाते हैं। हां जो लोग विज्ञान (Science) लिये हुए होते हैं उन्हें प्रयोगशालाओंमें (laboratories) सवेरे यानी ९ और १ के बीच और तीसरे पहर याना २ से ५ के बीच काम करना पड़ता है। इन लोगोंको इस प्रकारसे इन्तजाम करना पड़ता है कि लेकचर भी एटेण्ड (attend) कर सकें, उनमें हाज़िर हो सकें, और जिस जिस समय पर कि (laboratories) प्रयोगशालामें काम हो वहां भी जा सकें।

केम्ब्रिजका विश्वविद्यालय सालमें २५ सप्ताह खुला रहता है—बाकी २८ सप्ताह वहां छुट्टी रहती है। सात आठ सप्ताहोंकी लगातार पढ़ाईके बाद प्रायः पांच छः सप्ताहोंकी छुट्टियां हो जाती हैं और गरमियोंकी छुट्टियां तो प्रायः पूरे चार महीनेकी

होती हैं। परन्तु इस लम्बी छुट्टीमें भी प्रायः छः हफ्तोंके लिये यूनिवर्सिटी और कालेज खुलते हैं। इस समय लेक्चर कोई नहीं होते, पर प्रयोग-शालाएं खुली रहती हैं और विज्ञान (science) के विद्यार्थियोंके लिये इस टर्ममें भी आना एक प्रकारसे ज़रूरी ही होता है। पर वैसे तो अगर कोई चाहे तो अच्छी तरहसे बिना किसी रुकावटके वह इन छः सप्ताह भी गायब रह सकता है। क्योंकि यह सप्ताह लड़केकी हाज़िरीमें तो गिने नहीं जाते। केवल इसलिये यह होते हैं कि जो चाहे इन दिनोंमें भी केम्ब्रिज जाकर पढ़ सकें। क्योंकि छुट्टियोंमें लोगोंको केम्ब्रिजमें रहने नहीं दिया जाता और अगर कोई रहना चाहे या एक दो दिनके लिये छुट्टियोंके बीचमें आना चाहे तो उसे ट्यूटर से ख़ास तौरसे इजाज़त मांगनी पड़ती है। यदि बिना इजाज़त मिले हुए ही ऐसा करे और ट्यूटरको पता लग जाय तो इस नियम विरुद्ध कार्यके लिये कुछ न कुछ थोड़ा या बहुत, उसकी मर्ज़ीके अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता है। यदि ट्यूटर चाहे तो इस अथवा और किसी नियम विरुद्ध काम करनेके लिए आपको यूनिवर्सिटीसे कुछ दिनोंके लिये या हमेशाके लिये निकाल सकता है।

केम्ब्रिजमें तीन पढ़ाईके टर्म होते हैं। पहिला अक्तूबरके बीचसे दिसम्बरके बीच तक। इसको मिकेलमस टर्म (Michaelmas term) कहते हैं। इसके बाद कोई ५, ६ हफ्तेकी (Christmas vacation) बड़े दिनकी छुट्टी होती है। दूसरा लेंट टर्म (Lent term) जनवरीके बीचसे मार्च तक होती है, फिर ५, ६ हफ्तोंकी ईस्टरकी छुट्टी (Easter vacation) होती है। तीसरा टर्म, (Easter term) ईस्टर टर्म, अप्रैलके अखीरसे जूनके प्रारम्भ तक होता है। उसके बाद चार महीनेकी बड़ी छुट्टी अक्तूबर तक होती है। इस प्रकार अक्तूबरसे जून तक केम्ब्रिजका साल होता है। किसी ने इसके बारेमें लिखा है।

Years die in July and are dead till September
By the first of October the new years' born.
It is a sturdy infant in mid-December
And reaches its prime some April morn
Hat and weary in June; if will breake, but here.
Is the dawn of the year.

इन तीन टर्मोंके जितने जितने दिन मुकर्रर होते हैं उतने दिन विद्यार्थीको केम्ब्रिजमें अवश्य रहना चाहिये। पर हाज़िरी वाज़िरीका झगड़ा नहीं होता। अपने निवास स्थानमें ही रातके समय रहना चाहिये। यही हाज़िरी है। अपने निवास-स्थानमें रातमें न होना बड़ीही सीरियस (Serious) बात है, जुर्म है, और उसके लिये आप बड़ी आफतमें फंस सकते हैं। पर ट्यूटर से इजाज़त लेकर आप ग़ैर हाज़िर हो सकते हैं। सभी कालेजों और उक्त लोजिङ्ग हौसेस (Lodging house) में दस बजे रातको दरवाज़ा बन्द हो जाता है, ताला लग जाता है। इसके बाद १२ बजे तक आप यदि चाहें तो बाहर रह सकते हैं, बिना ट्यूटर की इजाज़तके भी। परन्तु १० से १२ के बीचमें आनेसे आपको कुछ थोड़ासा जुर्माना देना पड़ता है। १२ बजेके बाद बाहर रहना अपनेको आफ़तमें डालना है।

यूनिवर्सिटीमें जो विद्यार्थी रहते हैं, अन्डरग्रेजुएट (undergraduate) या बी० ए०, इनस्टेटु-प्यूपिलेरी (in statu pupilari) कहलाते हैं। इन सबोंको बहुतसे नियमोंका पालन करना पड़ता है। उदाहरणतः, जिस किसी लेक्चरमें वह जायं, या ट्यूटरके पास जायं, या किसी यूनिवर्सिटीके काममें शरीक होवें, या यूनिवर्सिटीमें जायं, तो उन्हें केप और गाउनमें होना चाहिये। भिन्न भिन्न कालेजोंके अण्डर-ग्रेजुएटोंके लिए भिन्न भिन्न प्रकारके गाउन हैं। बी. ए. पास लोगोंके गाउन सब एक से होते हैं और अन्डर ग्रेजुएट गौन से ज्यादा लम्बे होते हैं। परन्तु अण्डरग्रेड और बी. ए. को उक्त सब नियम पालन करना पड़ते हैं। इसके सिवाय थोड़ेसे और भी नियम हैं जिनको सुनकर आपको अवश्य कुतूहल

होगा। जिस समय कि लड़का कैप और गाउनमें हो उस समय उसे सिगरेट आदि नहीं पीनी चाहिये, दौड़ कर नहीं चलना चाहिये, बाइसकल पर नहीं चढ़ना चाहिये। अंधेरा हो जानेपर अथवा इतवारके दिन किसी समय यदि वह कालेज छोड़ कर बाहर सड़कों पर जाय तो अवश्य उसको कैप और गौन में होना चाहिये। अकेले गाउन से ही नहीं काम चलेगा; कैप भी होना चाहिये और टूटी फूटी नहीं। यदि इन सब नियमोंका कोई उल्लंघन करे और पकड़ा जाय तो उसपर कुछ जुर्माना होता है; बी. ए. के ऊपर अन्डरग्रेड का दुगना। यहांपर यह कह देना ठीक मालूम पड़ता है कि एम. ए. होनेपर फिर वह इन नियमों से बरी हो जाता है। यह देखनेके लिये कि लड़के इन सब नियमोंका उल्लंघन न करें तथा और किसी तरहकी गड़बड़ न करें, यूनिवर्सिटी की तरफसे दो अफसर हर साल नियुक्त होते हैं। पहिले कहे हुए कालेज-डान्समें से ही यह तथा यूनिवर्सिटीके और सब अफ़सर (officials) चुने जाते हैं। इन सब डिसिपलिन (discipline) रखने वालोंको प्रोक्टर (proctor) कहते हैं। हर एक प्रोक्टर (procter) के पास दो नौकर होते हैं जो उनके साथ चलते हैं और लड़कोंको यदि ज़रूरत हुई तो पकड़ कर लाते हैं। इनको "बुल" या "बुलडाग" कहते हैं।

इंग्लैण्डमें सबसे अधिक सुहावना समय गरमियोंका होता है। मईके आरम्भमें अथवा अपरेलके अन्तमें पेड़ोंमें हरी हरी कोंपलें निकलनी शुरू होती हैं और वही वृक्ष जिनकी पत्र विहीन नीरस डालियां जड़ोंमें काटने को दौड़ती थीं जूनके मास तक सघन पत्तोंसे आच्छादित हो कर नेत्रोंका रञ्जन करने लगती हैं। अक्तूबरमें फिर पतझड़ शुरू हो जाती है। इस सुहावने ग्रीष्म कालका आरम्भ ईस्टर (Easter) में होता है। इसी टर्मके अन्तिम दिनोंमें केम्ब्रिजमें वार्षिक परीक्षाएं होती हैं और इस लिये टर्मके पहिले हिस्सेको लोग उतना ज़्यादा 'एंजोय' नहीं कर सकते। परन्तु इम्तहान होनेके बाद १०, १५ दिन तक टर्म रहता है और इसमें लोग खूब ही आनन्द करते हैं। इन्हीं दिनोंमें वहां पर सुप्रसिद्ध (Boatraces) बोटरेसस टेनिस टूरनेमेंट होते हैं, कालेज हाल सजाये जाते हैं। उनमें तरह तरह के ऐंटररटेनमेंट (Entertainment) और डांस (Dances) वगैरह होते हैं।

ग्रीष्मकालमें केम्ब्रिजमें एक सबसे ज्यादा प्रचलित और सभी तरहके लोगों द्वारा (patronised) पेट्रोनाइज्ड जो आनन्द करनेका ज़रिया है वह वहांकी केम नामक नदी है। नदी क्या, है तो एक छोटा सा नाला सा। जिस समय मैंने पहिलें पहल उसको कालेजके [illegible] अहातोंकी लौन्स (lawns) मैंसे जाते हुए देखा, उस समय मुझे वह इतनी छोटी नाली सी जान पड़ी कि मैंने यही समझा कि कोई छोटी मोटी नहर कालेजकी शोभा बढ़ानेके लिये लाई गई होगी। परन्तु असलमें वह वही सुप्रसिद्ध केम नदी निकली। और फिर पीछेसे जब हम उस बातके आदी हो गये तब तो वह काफ़ी चौड़ी मालूम होने लगी थी। यह नदी है तो छोटी पर है बड़ी गहरी और बाज़ जगह तो जिसको कहते हैं हाथी बुड़ाव उतना गहरा पानी है। वहांपर एक प्रकारकी चपटे तलेकी नाव होती है जिसको पण्ट कहते हैं। इनको उसपर खड़े हो कर लम्बे लम्बे बांसों द्वारा खेते हैं। कहीं कहींपर तो यह लम्बे लम्बे बांस पूरे के पूरे पानी के अन्दर चले जाते हैं और नदीकी थाह नहीं मिलती। इस पण्टके सिवाय और भी कई तरहकी नावें होती हैं। उनमेंसे कुछके चित्र मैं आपको यहां दिखलाता हूं। इस थोड़ेसे ही समयमें सभी बातोंका बतलाना तो असम्भव था और कितनी ही बातें अधूरी और बहुतेरी तो बिना कही हुई ही रह गयी होंगी; परन्तु आगे ही मैं आपका काफ़ी समय ले चुका हूं इस लिए आज यहींपर इतिश्री करता हूं।

समालोचना

शिक्षित और किसान—ले० श्री० भवानीदयाल जी। प्रकाशक सरस्वती सदन, इन्दौर। आकार डबल क्रौन सोलह पेजी। पृष्ठ संख्या लगभग ८०। मूल्य ।≈)

इस पुस्तकमें बड़ी योग्यताके साथ किसानोंकी दुर्दशा और उसके सुधारने के उपायोंका दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तककी भाषा शुद्ध और छपाई आदि अव्वल दर्जेकी है। पुस्तक प्रत्येक देश प्रेमीको पढ़नी चाहिये। ऐसी अच्छी किताबोंसे ही सच्चा ज्ञान देशकी जनतामें फैल सकता है।

इस पुस्तकका प्रचार किसानोंमें अधिक होना चाहिये। इस विचारसे यदि मूल्य थोड़ा रखा जाता तो अच्छा होता।

भारतीय नव युवकोंको सन्देश—संग्रहकर्ता श्री० रघुनाथप्रसाद। प्रकाशक सरस्वती सदन इन्दौर। पृष्ठ संख्या ११६। मूल्य ॥)

इस पुस्तकमें २३ लेखोंका उद्धरण और अनुवाद दिया हुआ है। सब लेखोंका विषय पुस्तकके नामसे स्पष्ट है। पुस्तक विद्यार्थियोंको अवश्य पढ़नी चाहिये। यह पुस्तक भी अच्छी तरह सम्पादित और मुद्रित है। नागरी प्रचारिणी सभाको ऐसी पुस्तकें निकालनी चाहिएँ।

कौमार भृत्य अथवा बाल चिकित्सा—ले० विवेचक। प्रकाशक जगद्भास्कर औषधालय, नयागंज, (कानपुर आकार क्रौन अठपेजी, पृष्ठ संख्या १६८। मूल्य ॥)

इस पुस्तकमें बड़ी योग्यता तथा उत्तमतासे यह दिखलाया गया है कि बच्चेके जन्म होनेके समयसे माता पिताको क्या क्या करना चाहिये। सौरीमें क्या क्या होना है, किन बातोंका वहां विचार रखना चाहिये, बालकको क्या, कैसे और किस समय खिलाना चाहिये, बालकोंको प्रायः कौन कौनसे रोग हो जाया करते हैं और उनका किस प्रकार उपचार करना चाहिये, इत्यादि।

पुस्तक प्रत्येक गृहस्थीके कामकी है।

मोटर प्राइमर—ले० और प्रकाशक कुमार कोसलेन्द्र प्रताप साहि सिंह, दियरा राज्य। मूल्य १॥≈)।

यह पुस्तक मोटर गाड़ी रखने और हांकने वालोंके बड़े काम की है। चित्रभी विषय समझानेके लिए बहुत दिये हैं। भाषामें अस्पष्टता कहीं कहीं आ गई है। पर इस पुस्तकका प्रकाशन हर तरहसे सराहनीय कार्य है।

स्वास्थ्य—ले० राय बहादुर डाक्टर सरजूप्रसाद तिवारी। प्रकाशक श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य-समिति, इन्दौर। आकार डबल क्रौन सोलह पेजी। पृष्ठ संख्या ४६। मूल्य ≈)

पुस्तक का विषय उसके नामसे ही स्पष्ट है। उक्त पुस्तकमें सफाई, स्वास्थ्य, वायु, प्रकाश, भोजन, जल, व्यायाम, आदि विषयों पर बड़ी सरल भाषामें उपयोगी बातों का उल्लेख किया गया है। पुस्तक बालकोंके बड़े काम की है।

इस पुस्तक की भाषामें कहीं कहीं दोष नज़र पड़ते हैं। पृष्ठ १ पर "रंग रूपके चौरासी लाख योनियों" लिखा है। "के"की जगह "की" चाहिये। पृष्ठ ६ पर "ईश्वरताके बाद सफाई का ही दर्जा है" दिया है। यह एक अंग्रेज़ी कहावत का अनुवाद है। इस कहावतमें जो गोडलीनेस शब्द आता है, उसका अर्थ ईश्वरता नहीं है; अर्थ है धर्मनिष्ठता। पृष्ठ १० पर "मनुष्यके शरीरकी त्वचा छोटे छोटे छिद्रोंसे चलनी बनी है" देखनेमें आता है। इसमें "चलनी बनी है" की मट्टी खराब की गई है। पृष्ठ १० पर "हवा सांस ले रहे हैं" में 'सांस लेना' सकर्मक धातु मान लिया गया है। ऐसा करना अनुचित है।

विषय सम्बन्धी कुछ त्रुटियां इस पुस्तकमें रह गई हैं। पृष्ठ ६ पर आप लिखते हैं "तेल लगा कर नहानेसे त्वचामें गरमी जल्दी पहुंचती है"। यह सरासर गलत है। तेल लगा कर कदापि स्नान न करना चाहिये। यह पानी को त्वचासे स्पर्श ही नहीं करने देता, अतएव सफाई अच्छी तरहसे नहीं होसकती, उलटा मैल चढ़ जाता है। दूसरे तेल लगाने और गरमी पहुंचने से

कोई सम्बंध नहीं। गरमी आती कहांसे है ? जाती कहां है ? क्या तेल पहुंचाता है, जो स्वयम् कुचालक है ? पृष्ठ ११ पर कार्बानिक एसिडगैसको ('कार्बोनिक एसिड' गैसका नाम नहीं है, जैसा ग्रन्थकारने भ्रमसे समझ लिया है, गैसका नाम है कार्बोनिक-एसिड-गैस अथवा कार्बोनिक एसिड की जन्म दात्री गैस; या कर्बन द्विओषिद) जहरीला बताना गलत है।

पृष्ठ १२ पर "वस्तु" शब्दका प्रयोग "पदार्थ" के अर्थमें किया गया है। वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें असावधानी न करनी चाहिये। पृष्ठ १३ पर लिखा है "जब बन्द कमरेका आक्सिजन सांस लेने और आगके जलनेसे बिलकुल खर्च होजाता है, तब मनुष्यकी मृत्यु होजाती और आग भी बुझ जाती है"। यह भी गलत है, क्यों कि सब ओषजन समाप्त होजाने के बहुत पहले ही आदमी मर जायगा। पृष्ठ १५ पर "मुंहसे कभी लेम्प मत बुझाओ, कारण ऐसा करनेसे लेम्पसे निकलने वाला कार्बोनिक एसिड तुम्हारे शरीरके भीतर पहुंचकर हानि पहुंचावेगा!" लिखा है। पर डाकृर साहब, "शरीरमें कार्बोनिक एसिड (?) कैसे पहुंच जायगा, केवल मुंहसे फूंकनेसे? यह बात हमारी समझमें तो आती नहीं; शायद आप व्याख्या करके लिखते तो समझ में आजाती। पृष्ठ १७ पर "कृत्रिम प्रकाशसे स्वास्थ्यको कोई लाभ नहीं पहुंचता, बल्कि प्रायः हानि पहुंचती है" लिखा है। शायद डाक्टर साहबने "मरकरी लेम्पका" नाम नहीं सुना है, वरना ऐसा न लिखते। इसी प्रकार आप फरमाते हैं, कि उज्जनके दो भाग और ओषजनका एक भाग मिलकर पानी बनता है, पर आपने यह न लिख दिया कि यह भाग आयतनके हैं, न कि भार के। साधारणतया भारके भाग दिये जाते हैं, न कि आयतनके। इसीलिये आपका लिखना भ्रमात्मक है।

विज्ञान परिषद्की वार्षिक रिपोर्ट

सभापति, विज्ञानपरिषद् इलाहाबाद की सेवामें।

महोदय

आज परिषद्को स्थापित हुए ७ वर्ष हो गये हैं। इन वर्षोंमें यह पुस्तकें छपवाती और व्याख्यान दिलवाती रही है और पिछले ५॥ वर्षसे यह एक वैज्ञानिक मासिक पत्र 'विज्ञान' भी निकाल रही है। पुस्तकें गूढ़ विषयोंकी तो नहीं हैं, परन्तु अपने ढंगकी निराली और प्राथमिक शिक्षाके लिए बड़ी उपयोगी हैं। यह हमारी बहुत दिनोंसे लालसा है कि विज्ञानके हरेक विभाग पर ऐसी पुस्तकें निकालकर भाषाकी उन्नति और पाठकों और देशकी सेवा की जावे परन्तु किसी न किसी कठिनाईके कारण हमें हमारे इरादेमें अभी तक सफलता नहीं हुई है। सबसे बड़ी कठिनाई तो हमारे पास रुपयेका अभाव है। जबसे परिषद् स्थापित हुई हरसाल इस अभावको हम अपने सभ्योंको और सहायकोंको जतलाते रहे हैं। पिछले साल ५००) के लग भग हमारे सभापति राजा सर रामपालसिंह जीके द्वारा हमको मिल गये थे। इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। परिषद्के सब सभ्योंसे चन्दा भी हर साल नहीं मिलजाता है। इस साल यह देख कर कि कई सभ्योंसे चार चार सालका चन्दा नहीं मिलता है और कब तक नियमोंके विरुद्ध कार्रवाई किये जावेंगे, कौन्सिलने यह निश्चय किया कि जिन सभ्योंने चन्दा नहीं दिया है उनका ध्यान नियमोंकी ओर दिलाया जावे। पत्र भेजे गये, जिनका उत्तर भी नहीं मिला। अंतमें कौन्सिलने ४० सभ्योंका नाम सभ्योंकी श्रेणीसे हटा दिया, जिससे सभ्योंकी संख्या कम हो गयी है। हमको चाहिये कि अब हम इस कमीके पूरे करनेकी कोशिश करें।

अब तक हम व्याख्यान म्योरकालेज में ही कराते आये हैं। यहां हमको सब प्रकारकी सहायता मिलती रही है जिसके लिए हम प्रिन्सिपल

और विज्ञान विभागके अध्यापकोंके कृतज्ञ हैं। हम को आशा है कि ऐसी ही सहायता हमको आगे भी मिलती रहेगी। तिसपर भी हमने एक मेजिकलालटेन मंगवाली है और आशा है कि अब व्याख्यान अन्य जगहों पर भी कराये जा सकेंगे।

विज्ञान हमारे अवैतनिक सम्पादकप्रो०गोपालस्वरूप भार्गव साहबकी कोशिशोंसे चल रहा है। इन कोशिशोंके लिए उनको जितना भी धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। उनका काम इस वर्तमान समयमें चाहे बहुत बड़ा न माना जावे परन्तु वह समय बहुत दूर नहीं है कि जब आप वैज्ञानिक साहित्यके बड़े सेवक समझे जावेंगे और लोग बाग आपके कामकी प्रशंसा करेंगे। वास्तवमें तो जब देशमें भाषा द्वारा विज्ञानका प्रचार होगा, तब ही आपके परिश्रमका फल मिलेगा।

विज्ञानका सम्पादन तो आपकी सहायतासे होता रहा, परन्तु कागज और अन्य छपाईकी चीजों की मंहगाईके कारण विज्ञानके चलानेसे ६००) का घाटा हुआ। कई विज्ञानके सहायकोंको हम इस समय उनकी उदारताके लिये धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ऐसे घाटेके समय विज्ञानकी आर्थिक सहायता कर उसे मरनेसे बचाया। हमको सहायकोंसे ४००) रु० के लग भग प्राप्त हुए हैं।

इस घाटेसे डरकर हमने सरकारसे ६००) सालकी सहायता मांगी। सरकारने हमको आशा दिलायी है कि हमको ६००) सालानाकी मदद तीन वर्ष तक इन शर्तों पर दी जावेगी कि विज्ञान की ५० प्रतियां सरकारके शिक्षा विभागको मुफ्त में दी जावें और विज्ञान शिक्षा विभागको पसंद आता रहे।

विज्ञानकी ५० प्रतियां मुफ्त देना परिषद्ने स्वीकार कर लिया, परन्तु अभी तक सरकारसे मदद मिली नहीं है। हम इस संबंधमें इतना और कह देना उचित समझते हैं कि यदि विज्ञानके ग्राहकोंकी संख्या न बढ़ी तो सरकारी मदद मिलने पर विज्ञानकी स्थितिमें बड़ा भेद न पड़ेगा। प्रो० गोपालस्वरूप साहबने विज्ञान ५ वर्ष चलाया। अब उनको बिना सहायकके सम्पादन करना कष्टदायक मालूम होता है। वास्तवमें हमको चाहिए था कि एक सहायक उनके लिए आजसे कई वर्ष पहले ही ढूंढ़ते, परन्तु कई कारणोंसे ऐसा न कर सके। अब सहायक देकर उनका हाथ बटाना चाहिए। सहायक बिना २००) मासिक खर्च किये मिलना कठिन है। यदि छः महीने में १००० ग्राहक न बढ़ गये तो विज्ञानका चलना कठिन होगा। इस लिए सब सज्जनोंसे हमारी यही प्रार्थना है कि इसके ग्राहक बढ़ानेका यत्न किया जावे।

इस वर्ष भी हिन्दी पुस्तकें ४००) की बिकी हैं॥ उर्दू पुस्तकें केवल ॥।-) की बिकीं। न मालूम उर्दू पुस्तकें पढ़नेवालों को वैज्ञानिक पुस्तकें क्यों नहीं पसंद आती हैं। हमारे मंत्री सैयद मेहदी हुसेन नासरी साहब बहुत दिनोंतक उर्दू पुस्तकें और पत्र निकालनेकी कोशिश करते रहे। अंतमें तंग आकर उन्होंने परिषद्से सम्बन्ध भी तोड़ दिया जिसके लिये हमको बड़ा अफसोस है। अब हम नहीं कह सकते हैं कि परिषद् इस तरफ कितनी और क्या कोशिश कर सकेगी।

तीस सितम्बर १९२० को समाप्त हुए सालका हिसाब इस रिपोर्टके साथ है। इससे मालूम होता है कि हमारे पास २५००)के लग भग रुपया है, जिसमेंसे ११००) के लग भग आजन्म सभ्योंका चंदा है जो नियमानुसार किसी काम में नहीं आ सकता है और ५००) उस दाम के हैं जो पिछले साल मिला था। इस रुपये के केश सार्टीफिकेट लिये हुये हैं और बाकी ७००) डाकखाने में जमा हैं। यह हालत संतोषजनक नहीं है, जब कि हर तरह खर्चा बढ़ गया है। चपरासी और क्लर्क की तन्खा ज्यादा देनी पड़ती है और हर मद में रुपया ज्यादा खर्च करना पड़ता है। दो साल से रिपोर्ट भी नहीं छपी है वरना कम से कम दो सौ रुपये और खर्च हो गये होते। इस साल सभ्यों की सूची अवश्य छपवाई जावेगी

क्यों कि उसमें परिवर्तन हो गये हैं। बहुत दिनों से सोचते सोचते इस साल परिषद् को विज्ञान परिषद्के नामसे रजिस्टर भी करा लिया गयाहै। सब कार्रवाई नियमानुसार करना पड़ेगी जिससे खर्चे में अधिकता हो जाने की सम्भावना है। इन सब बातों से यही नतीजा निकलता है कि परिषद् चलाने के लिये उसके सहायकों को आर्थिक सहायता दिल खोलकर देनी चाहिये।

हमारे सभापति राजा सर रामपालसिंह साहब के. सी. आई. ई तीन वर्ष बराबर सभापति रह कर नियमानुसार अब अगले साल के लिए सभापति नहीं चुने जा सकते हैं। इस अर्से में जो कुछ आपसे सहायता मिली है उसके लिए हम आप के कृतज्ञ हैं।

—मंत्री

विज्ञान परिषद् का हिसाब माह अक्तूबर १९१९ से ३० सितम्बर १९२० तक

आय

बकाया	१७२६१-)२
सभ्योंका चन्दा	७६८॥।=)६
आजन्म सभ्योंका चन्दा	३००)
हिन्दी पुस्तकोंकी बिक्री	५१०)६
उर्दू पुस्तकोंकी बिक्री	।॥-)
मुतफर्रिक	२।=)६
ब्याजके	५७।=)५
कमीशन	६३=)
दान	७॥)
अमानत (डाकखानेसे भूलसे आया)	१-)
	३५००॥।=)४

व्यय

किराया दफ़र, चपरासी और क्लर्ककी तनख्वाह	३४१॥=)६
मुतफर्रिक	८१॥-)
डाकव्यय	७१=)
पुस्तकों की छपाई	२३४॥-)६
नोटिसों की छपाई	१८॥)
बंगला कोष	४॥)
कागज़	१६५)
विज्ञानका चंदा	३५१)
रजिस्टरेशन की फीस	५०)
मैजिक लालटेन	२०६)
	१५५४)
कैश सार्टीफिकेट	१२४०)
बकाया	७०६॥।=)१
	३५००॥।=)४

हिसाब अगस्त १९२०

आय

बाकी	११५६१)॥२
चन्दा	८७)
पुस्तकोंकी बिक्री	१६॥=)॥
सूद (डाकखाने से)	५७।=)।२
डाकखाने से भूल से आया	१-)
	१३२४।=)॥१

व्यय

क्लर्क	१४)
चपरासी	८)
पेशगी (क्लर्क)	२)
पेशगी (चपरासी)	५)
टिकट	१)
मुतफर्रिक	१-)
	३१-)
बाकी	१२६३।-)॥१
	१३२५।=)॥१

प्राप्ति स्वीकार

श्री० डी. बी. देवधर, इन्दौर	१२)
,, ईश्वरीप्रसाद प्रयाग	१०)
,, राधामोहन गोकुल जी	१२)
,, लालजी अजमेर	५)
,, हरि रामचन्द्र दिवेकर, पूना	१२)
,, श्रीराम तिवारी, रायपुर	१२)
,, श्यामसुन्दरदास लखनऊ	२४)

हिसाब माह सितम्बर व अक्तूबर १९२०

आय

बकाया	१२६३।-)१०
चन्दा	८६)
बिक्री पुस्तकों की	२६॥।-)
कमीशन पुस्तकोंपर	१००॥≈)
मुतफर्रिक	१॥-)
	१५१४।≈)१०

व्यय

तनख्वाह क्लर्क० चपरासी	४४)
पुस्तकों के दाम बा० मुरलीधर	८)
पुस्तकों के दाम, डा० त्रिलोकीनाथ	३२६)
पुस्तकों के दाम, रघुनाथ सेनसिंह को	५२)
परिषद् की रजिस्ट्री के लिये	५०)
मुतफर्रिक	२॥)६
किराया आफ़िस	१८)
मनीआर्डर कमीशन ५) रु० पर	-)
मनीआर्डर कमीशन ५०) रु० पर	॥)
मेजिक लालटेन के हिसाब में	६)
सीतल चपरासी को १४ अगस्तके अधिवेशन के लिये	१)
टिकट	४॥।≈)
विज्ञान प्रवेशिका १ भाग छपाई	७५।≈)
दियासलाई छपाई	२६)
विज्ञान के हिसाब जो चले आते हैं	१२)
	६२६॥≈)६
बकाया	८८७॥)४
मीज़ान	१५१४।≈)१०

प्राप्ति स्वीकार

श्री० बाबू कन्हैयालाल	१२)
,, प्रो० नन्दकुमार तिवारी	३६)
,, सालिग्राम भार्गव	१२)
,, हरीकृष्ण पन्त अलमोड़ा	१२)
,, डा० त्रिलोकीनाथ	१२)
,, बा० चिरंजीलाल	५)
	८६)

शोक समाचार

रायबहादुर पं० हरिकृष्ण पन्तका गतमासमें स्वर्गवास हो गया। इस घटनासे परिषद्को बड़ा दुःख हुआ। आप बड़े योग्य इञ्जीनियर थे। इन प्रान्तोंमें शायद ही कोई और उनके समान अनुभवी इञ्जीनियर मिले। आप बहुत ही मिलनसार, खुशमिज़ाज और विद्याव्यसनी थे। आपकी सरलचित्तता आपसे सम्बन्ध रखने वालोंको मोहित कर लेती थी। आपने परिषद्के संस्थापनमें भी बड़ी सहायता की थी और उसके जन्मसे ही सदस्य थे।

ईश्वर उनकी आत्माको परम सुख और सम्बन्धियोंको परम शान्ति दे।

—मंत्री, विज्ञान परिषद्

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानिजायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १२ } कन्या, संवत् १९७७ । नवम्बर सन् १९२० । { संख्या २

फूलोंकी आत्मा या रूह

मानवी विकाससिद्धान्तपर जब हम गहरी दृष्टि डालकर यह निश्चित करना चाहते हैं कि यह विकास किस प्रकार और कहांसे आरम्भ होकर कौन सा विशेष परिवर्तन करता हुआ मनुष्योंकी किस प्रकारकी उन्नतिका साधन हुआ है, तो हमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। परन्तु थोड़े से ही अनुसंधान द्वारा हमें पता चल जाता है कि यह उन्नति क्रम कहां आरम्भ हुआ होगा। दृष्टान्त के लिए यदि यह विचार किया जाय कि आदिम मनुष्यमें कौतूहल और भय उत्पन्न करनेवाला कौन सा मुख्य कारण हुआ होगा; जिसकी उपस्थितिसे उसके हृदयमें बड़े गहन और गम्भीर विचार उत्पन्न होकर, उसकी बुद्धि और ज्ञानका विकास आरम्भ हुआ; तो हम कह सकते हैं कि जिस समय उसने पहले पहल सूर्यदेवके अस्त होने पर चारों तरफ़ अंधकारके साम्राज्यमें तारागणोंके निकलने अथवा निकले रहनेपर, उस अन्धकारपूर्ण प्रकाशमें सारी रात व्यतीत की होगी और चारों तरफ़की भयानक परिस्थितिका विचार किया होगा, उसी क्षण उसके हृदयमें भय मूलक कौतूहलके साथ प्रबल विचार तरंगोंके आवेगमें उसके मस्तिष्ककी इन शक्तियोंका विकास आरम्भ हुआ होगा! अपने चारों तरफ़ अनेकानेक प्रकारकी सृष्टि देखकर ही उसके हृदयमें कौतूहलका अंकुर जमने लगा होगा; परन्तु नैसर्गिक घटनाओंका जितना गहरा प्रभाव पड़ा होगा वही उस विकासमें एक नया युगान्तर कहा जा सकता है।

इसी प्रकार सम्भव है कि आदिम मनुष्यकी अवस्थामें सभ्यता-सूचक गहन परिवर्तन पैदा करनेवाला कारण, उसके कुटुम्बके सामाजिक तथा अन्य प्रभावोंको छोड़कर, उसके चारों तरफ़ बहुतायतसे उगनेवाले, चित्ताकर्षक और मनोमुग्धकारी सुन्दर फूल हुए हों; अथवा आस पासके जंगलोंके वृक्षोंकी सुगन्धित लकड़ियां हों। प्रकृतिने मनुष्यको सूंघनेकी शक्ति तो प्रदान की ही थी,

परन्तु साथ ही साथ यह कह देना आवश्यक है कि उस समयके मनुष्योंको अपनी ऐन्द्रिक शक्तियोंसे बहुत अधिक काम लेना पड़ता था और इन्हींके अनुभवके सहारे इनकी बहुत बड़ी मानसिक वृद्धि भी हुई है। जिस प्रकार अपना भोजन प्राप्त करनेके लिए बन्दर आदि जानवरोंको अब भी अपनी सूंघनेकी शक्तिसे बहुत कुछ काम लेना पड़ता है उसी तरह उस समयके मनुष्योंकी भी यही हालत रही होगी। ऐसी अवस्थामें उस समयके मनुष्योंके चित्तमें सुन्दरताकी मनमोहनी शक्तिका आभास फूलोंकी स्फूर्ति-कारी सुगन्ध द्वारा ही उत्पन्न हुआ होगा! अस्तु सूंघनेकी शक्तिके साथ सुगन्ध पर मोहित होना, मनुष्यके हृदयमें विश्वव्यापी सुन्दरताके आदर (appreciation) का प्रथम चिन्ह था!

मानवी सभ्यताके आदिमकालसे ही फूलोंकी इस चित्ताकर्षक शक्तिका मनुष्योंके हृदयपर जो गहरा प्रभाव पड़ा है तथा हमारी सौन्दर्योपासक (aesthetic) शक्ति की जागृतिमें जो सर्वोच्च भाग फूलोंने लिया है वह परम सराहनीय तथा अतुलनीय है। वैदिक ऋचाओंमें फूलोंकी सुगन्ध द्वारा देवताओंका परम सन्तुष्ट होना अथवा यज्ञ कार्यमें सुगन्धित पुष्प अथवा वनस्पतियोंका प्रयोग होना, इस शक्ति की उन्नतिका द्योतक है। हमारे देशमें प्राचीन वैदिक कालसे ही सुगन्धित पुष्प देवोपासनाके मुख्य साधन गिने जाते हैं और इसी प्रकार यज्ञाग्निमें भस्म की जानेवाली सुगन्धित औषधियां भी देवार्चनाकी आवश्यक सामग्री समझी जाती हैं। आदि कवि वाल्मीकके तपोवन वर्णनमें मुनि लोगोंकी कुटियोंके प्रत्येक अग्निकुण्डसे उठते हुए धुएंके साथ साथ वैदिक मंत्रोंका सुरीले और सुमधुर कंठोंसे उच्चारण जिस नैसर्गिक सुन्दरताका आदर्श है, उसका मुख्य अङ्ग है वह सुरभित समीर जिसके प्रत्येक झोंकेके साथ प्राणीमात्रकी आत्माको शान्ति और आनन्द प्रदान करनेवाली और उनके हृदयमें स्फूर्ति उत्पन्न कर जीवनके वास्तविक सुखका आभास दिखलानेवाली, सरस, सुमधुर, सरसावनि सुगन्धि मिली हुई थी।

फलोंकी सुगन्ध प्रत्येक मनुष्यके चित्तको प्रसन्न करती है, परन्तु रोगी, घायल और थके हुए लोगोंके लिए तो यह संजीविनी ही है। मनुष्यने इतिहासपूर्वकालसे पुष्पोंकी सुगन्धको सदा अपने आस पास रखनेका प्रयत्न किया है। जब ऋतु न होनेके कारण कुछ विशेष फूल नहीं रहे होंगे, उस समय ही मनुष्यको यह चिन्ता हुई होगी कि किसी प्रकार उनकी सुगन्ध अन्य ऋतुओंमें भी उसके पास रह सके। इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये जिन जिन चेष्टाओं द्वारा मनुष्य आज दिन तक अपनी इस कोशिशमें सफलमनोर्थ हुआ है वह परम सराहनीय हैं और उनके जाननेसे पता चलता है कि मनुष्यके हृदयमें फूलोंकी सुन्दरताका कितना आदर है।

संसारकी भाषाके प्रत्येक प्रभावशाली कविको फूलोंकी उपमा देनेकी आवश्यकता पड़ी है; कोई कवि प्रकृति वर्णन बिना फूलोंकी सुन्दरता पर मुग्ध हुये या उनकी मनोहरताका वर्णन किये नहीं कर सका है। काव्यको छोड़ अगर हम गद्य वर्णनका ही निरीक्षण करें तो भी हमें विवश हो कहना पड़ता है कि सुन्दरताका साक्षात्कार फूलोंसे ही होता है, फूल ही सुन्दरताके जन्मदाता हैं, यही मूर्तिमान सुन्दरता हैं। कविशिरोमणि कालिदास जहां जहां सुन्दर नैसर्गिक दृश्योंका मनोहर वर्णन करते हैं, वहां फूलोंका वर्णन जितना चित्ताकर्षक और प्रिय है वह आपके काव्य-रस-पानसे खूब ज्ञात होता है। फ़ारसीके परम विख्यात कवि उमर ख़ैयाम तो फूलोंसे इतना प्रेम रखते थे कि उन्होंने अपनी एक कवितामें लिखा है कि मैं चाहता हूं कि मृत्यु हो जाने पर भी मेरी क़ब्र ऐसे स्थानमें बनाई जावे जिसके चारों तरफ़ गुलाब हों। आज दिन भी हमारे कविसम्राट डाक्टर रवीद्रनाथ ठाकुर पुष्पोंसे जितना प्रेम रखते हैं, वह उनके काव्यसे परिचित प्रत्येक मनुष्य जानता है। परन्तु हमारे विचारमें

फूलोंके सबसे बड़े प्रेमी वह मनुष्य रहे हैं, जिन्हों ने इस बातकी चेष्टा की है कि वह अगर इन सुन्दर दैवी उपहारोंको सदा अपने पास सजीव न रख सकें तो इनकी आत्मारूपी सुगन्धको तो किसी प्रकार अपने वशीभूत कर उसका उपभोग करें। अतरकी प्रत्येक बोतलमें अगर कागके स्थानपर ज़बान होती तो वह अवश्य ही अपने उन प्रेमियोंके नामकी माला ही रटा करती। कल जो फूल वाटिकाओंमें खिल कर चारों तरफ़ अपनी सुन्दरताकी प्रदर्शनी खोले हुये, अपनी सुगन्ध द्वारा हर मनुष्यका हृदय चुराये हुये थे, आज वही फूल एक छोटीसी बोतलमें अपनी विश्व- मोहिनी सुगन्धके साथ, क़ैद किये हुये हैं। जिन फूलोंकी सुन्दरता क्षणिक और अस्थायी समझी जाती थी और अब भी समझी जाती है, उन्हींकी रूहको मनुष्य ने अपने बुद्धि-बलसे सदाके लिए अपनी दासी बना रखा है; उसे अपने विलास, आनन्द और प्रसन्नताका साधन बनाया है।

हज़ारों बरससे मनुष्य ने सुन्दरता देवीकी इस परम सुन्दरी, चपला सहेलीको अपने क़ाबूमें कर रखा है। यूरोपीय विद्वानोंका कहना है कि संसारमें सबसे पहिले मिश्रवालों ने ही इन फूलोंका वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हों ने केवल यही नहीं जान लिया कि नव-कुसुमित कलीके नवीन और परम कोमल पल्लवोंमें सुगन्धिग्रन्थि (Scent-glands) मौजूद होनेसे फूलोंमें सुगन्ध आती है, वरन् उन्हों ने यह ढूंढ़ निकाला था कि वह इन सुगन्धकी थैलियोंमेंसे किस प्रकार सुगन्ध खींच ले सकते हैं। इस कथनको सत्य मानते हुये इस समय हम केवल इतना ही लिखनेको तैयार हैं कि फूलोंके भण्डार इस भारत वर्षमें जहां इनकी सुन्दरताका इतना आदर रहा है वहां इसे वास्तविक रूप देनेकी भी अवश्य चेष्टा हुई होगी। या यों कहा जाय कि हमारे देशमें भी फूलोंकी सुगन्ध निकालनेकी कला हज़ारों बरससे मौजूद है। इन फूलोंको भपकेमें रख कर ऊपरसे पानी भर दिया जाता है और नीचे भट्टीमें आग जला दी जाती है। पानी उबल कर भाप बनने लगता है और भापके साथ साथ अतर भी जमा होता जाता है। इस विधिसे ताप देकर फूलोंकी पत्तियोंमें जो तेल मौजूद रहता है उसे वाष्पके रूपमें परिणत कर दिया जाता है। फूलोंसे निकले हुये तेलोंकी भाप पानीकी भापके साथ मिल कर भपकेकी नलीमें जा पहुंचती है, जिसे (Worm) कहते हैं। इस नलीके चारों तरफ़ ठंडा पानी बहता रहता है, जिससे यह सारी भाप ठंडी होकर फिर द्रव रूप धारण कर ग्राहक (Receiver) में जमा होती जाती है। अब ग्राहक भाण्ड में (Receiver) पानीकी भाप जम कर फिर पानी होकर भर जाती है और फूलोंमेंसे निकले हुये तेल की भाप फिर तेल हो कर पानी पर उतराने लगती है। यही तेल फूलोंका अतर या रूह है।

फूलोंका अतर निकालनेकी यह विधि हज़ारों बरसोंसे ज्योंकी त्यों सारे सभ्य संसारमें प्रचलित हो रही है। प्राचीन और अर्वाचीन विधिमें केवल इतनी ही विभिन्नता है कि आज कल बहुत बड़े बड़े भपकोंसे काम लिया जाता है। फ्राँस देशमें यह भपके रेलके एंजिनसे भी बड़े होते हैं। परन्तु मिश्रमें फेरोआ (Pharoa) के समय और भारत वर्षमें विक्रमादित्यके राज्यकालमें अतर निकालनेकी जो विधि थी वही विधि आज तक प्रचलित है, उसमें कोई भारी परिवर्तन नहीं हो पाया है।

अतर निकालनेकी यह विधि बड़ी सरल और सुगम है, परन्तु सब फूल इस आत्मबलिदानके कार्यमें समान उदार नहीं हैं। कुछ तो सूमकी भांति अपनी इस संचित मायाको अपनेसे अलहदा करना ही नहीं चाहते हैं। अग्नि और भापकी तापका भी उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उनको अपनी सुगन्ध इतनी प्रिय होती है कि अंग भंग होजानेपर भी वह उसे अपनेसे जुदा नहीं करते। ऐसी सूम-प्रकृति-वाले फूलोंका भी मनुष्यने पीछा नहीं छोड़ा है और रसायन रूपी मंत्र द्वारा इन्होंने इन फूलोंको भी अपने मोहन मंत्रसे वशीभूत कर इन्हें नागपाश

में बाँध लिया है। आपकी झुलसा देनेवाली लपट, जिस कामको नहीं कर सकी वही काम चरबी या मोमसे बड़ी सुगमतासे पूरा होजाता है। आप लोगोंने तांबेपर सोनेका पत्र चढ़े हुए हाथोंके कड़े अवश्य देखे होंगे। दो तीन सालके बाद अगर इन कड़ोंका सोना उखाड़ लिया जाय तो देखनेपर मालूम होगा कि तांबेमें भी सोना पैठ गया है अथवा सोनेमें भी तांबेका असर आगया है। ठीक इसी प्रकार उन फूलोंको जिनका ऊपर लिखी हुई विधि द्वारा अतर खींचना असंभव है, चरबी या मोमके साथ रखा जाता है तो यह चरबी बड़ी आसानीसे उनकी सुगन्ध सोख लेती है। पाठक ज़रा इस बेमेल जोड़ पर तो ध्यान दें। पुष्प ऐसी सुन्दर वस्तुकी सुगन्धके उपभोग करनेकी अधिकारी हो भद्दी और निकृष्ट चरबी !! ऐसी अवस्थामें हमें यही कहनेको विवश होना पड़ा है—

'अजब हैं कुदरतके सब खेल'

इस नई विधि द्वारा फूलोंका अतर इस प्रकार निकाला जाता है। लकड़ीके चौखटोंमें मोटे दलकी कांचकी चादरें लगवाकर इन शीशेकी चादरोंपर चरबीकी अच्छी मोटी तह फैलाकर जमा दी जाती है। इन चौखटोंका दल इतना मोटा रखा जाता है कि जब दो चौखटे एक दूसरेपर रख दिये जावें तो कांचोंके बीचमें कमसे कम ६ इंचका अंतर रहे। वाटिकाओंमें से ताज़ा तोड़े हुये फूल लाकर, जिनपर छोटे छोटे ओसकी बूंद मोतियोंकी भांति सूर्य किरण पड़नेपर इन्द्रधनुषका दृश्य उपस्थित करती रहती हैं, कांचपर फैलाई हुई चरबीके फर्शपर बिछा दिये जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दो चौखटोंके बीचमें फूल भर एक बड़ी टिकटोसी चुन दी जाती है। चरबीमें फूलोंका सुगन्धित तेल सोख लेनेकी इतनी अधिक शक्ति होती है कि कमसे कम १० बार फूलोंकी नई तहें बिछानी पड़ती हैं। प्रायः तीन दिनमें यह चरबी फूलोंका सारा सुगन्धित तेल चूस लेती है। निर्जीव पत्तियों को निकालकर बाहर फेंक दिया जाता है। फूलोंकी विश्वमोहनी सरल सुगन्ध इस प्रकार निकृष्ट चरबीके कब्ज़ेमें आजाती है और यही बसाई हुई चरबी अब पोमेड की भांति कांचपरसे छुटा ली जाती है और नई तहें जमाकर फिर टिकटी तैयार कर दी जाती है। जब चरबी फूलोंसे कुल सुगन्ध प्राप्त कर लेती है तब फिर अलकोहलके प्रयोगसे यह सुगन्ध इसके अधिकारसे भी छीन लीजाती है। बसाई हुई चरबी (Grease) की पतली पतली कांशें काटकर इन्हें अलकोहलकी बोतलोंमें भर खूब कड़ी डाट लगाकर रख दिया जाता है और हफ्तेमें दो तीन बार हिला दिया जाता है। प्रायः एक महीने तक इन बोतलोंको इस प्रकार रखकर हिलाते रहना पड़ता है। अलकोहल सुगन्धको खींच कर सोख लेती है और चरबीको छूंछकी भांति छोड़ देती है और यह जमकर अलहदा हो जाती है। अलकोहल को नितार कर भपकेमें भर दिया जाता है, परन्तु इस बार भपकेमें आग सीधी नहीं दी जाती है, वरन् यह भपका पानीके बड़े बरतनमें रख कर अलकोहलको गरम पानी द्वारा वाष्पीय अवस्थामें परिणत किया जाता है। अलकोहलकी भाप नलीमें जाकर ठंडे पानीकी सरदीसे जमकर फिर द्रव हो जाती है और सुगन्धित तेल इसमें बस जाता है। इस प्रकार यह सुगन्धित और पवित्र फूलोंका अतर तैयार हो जाता है।

फूल जैसी अलौकिक सुन्दरता-प्राप्त वस्तुको चिरजीवी तथा विश्वव्यापी बना कर विज्ञान ने संसारकी जो अपूर्व सेवा की है उसके लिए प्रत्येक मनुष्य आजन्म ऋणी रहेगा। रोगी हो या स्वस्थ, बूढ़ा हो, युवा हो या बच्चा, स्त्री हो अथवा पुरुष, फूल सभीको प्यारे हैं। परन्तु जिन देशोंमें कुछ विशेष पुष्प जल वायु मुआफ़िक न होनेके कारण प्राप्य नहीं हैं, वहाँ विज्ञानकी परम कृपासे फूलोंकी यह आत्मा या उनकी रूह छोटी छोटी दिललुभानेवाली शीशियोंमें पहुंच कर फूलोंसे भी बढ़ कर उपयोगी होती हैं। वहांके मनुष्य यदि फूलोंकी नैसर्गिक सुन्दर छटा न देख सकें तो भी

उनके दिल और दिमाग़को अपूर्व आनन्द देनेवाला, उनके मुर्झाये हुये और निराश हृदयमें स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाला तथा उनके प्रभा-शून्य मुखमण्डल पर प्रसन्नताकी आभा दिखलाने वाला, सुन्दर फूलोंका मनोहर अतर हर समय उनकी सेवामें तत्पर रहेगा।　　—शालग्राम वर्म्मा

चीनीका पेड़

आधुनिक कालमें बृटिश कोलंबियाके डोगलस सनोवर वृक्षमें एक उत्तम प्रकारकी चीनीका एक नवीन और अनोखा सोता पाया गया है। इस वृक्षकी पत्तियोंपर एक प्रकारकी चीनी बनती है जिसमें दुर्लभ ट्राइसेकेराइड (Trisaccharide), मिलिज़ाइटाज (molezitose), इतना अधिक उत्पन्न होता है जितना कि आज तक किसी वैज्ञानिक ने किसी दूसरे वृक्षमें नहीं पाया है। यह चीनी पहले तुर्किस्तान और फारसकी एक प्रकारकी झाड़ीमें पायी जाती थी। इसका विश्लेषण करनेसे प्रकट होता है कि इस चीनीमें लगभग पचास सैकड़ा ट्राइसेकेराइड (Trisaccharide) होता है। रासायनिक और वानस्पतिक विचारसे हमारे मतलबकी बात तो यह है कि जैसा कि इसके अवयव अलग अलग करनेसे ज्ञात होता है कि यह चीनी बहुत समान मिलावटसे बनी है।

यह चीनी चौथाईसे लेकर दो इञ्च तकके व्यासमें सनोवर वृक्ष पर जमती है और बहुत अधिकतासे होती है। इस चीनीका स्वाद उच्च कोटिकी चीनीकी भांति बहुत मीठा होता है। मुंहमें थोड़े समय तक यह लेईकी भाँति गाढ़ा रहती है, परन्तु तुरन्त ही रालके साथ मिलकर पूर्णरूपसे घुल जाती है।

यह चीनीका सनोवर वृक्ष बृटिश कोलम्बियाके सूखे भागमें होता है और विशेषकर ५० और ५१ अक्षांश तथा १२१ और १२२ देशान्तर रेखाओंके बीचके देशके सबसे गर्म भीतरी भागमें पाया जाताहै।

—रामभरोसेलाल

बीमार वृक्षोंको धुआं देना

चेचक निकलनेपर रोगीका कमरा एक प्रकारके धुएँसे सुगन्धित किया जाता है, जिससे कुटुम्बके अन्य लोगोंको वह बीमारी न हो जाय। इसी प्रकार जब किसी वृक्षका कोई भाग रोगी हो जाता है तो आसपासके दूसरे वृक्षोंको भी धूनी दीजाती है, जिससे वह बीमार न हों। किवाड़ बन्द करनेसे कमरेको आप भली भांति बन्द कर सकते हैं, परन्तु किसी वृक्षको धुआं देनेके लिये आपको उसपर तम्बू अवश्य तानना पड़ेगा ताकि पड़ोसके वृक्षोंसे वह अलग रहे। थोड़े दिन हुये लास एंजिल्सके मिस्टर मैकस्वेनने ग़ुब्बारेसे धुआं देनेका ढंग निकाला है।

तम्बू ग़ुब्बारेमें लटका दिया जाता है। तब ग़ुब्बारा चलाया जाता है यहां तक कि वह ठीक वृक्षके ऊपर आजाता है। तबतम्बू पेड़पर रख दिया जाता है; ग़ुब्बारा अलग कर लिया जाता है और दूसरे वृक्षके लिये दूसरे तम्बूको उठानेको लौटता है। इसी समय जो तम्बू ग़ुब्बारेके द्वारा वृक्ष पर लाया गया था पृथ्वीसे जकड़ दिया जाता है। हाइड्रोसायनिक एसिड (Hydrocyanic acid) की धूनी दी जाती है। यह प्राणनाशक उड़नेवाला वायवीय विष है और जैसे हीइसका धुआं पहुंचता है वृक्षके सब कीड़े मकोड़े यहां तक कि उनके अंडे भी मर जाते हैं। इस एसिडको प्रुसिक एसिड (Prussic acid) भी कहते हैं। इसमें शफ़तालूके फूलोंकी सी ललचाने वाली सुगन्धि होती है। जब तम्बू भली भाँति तान दिया जाता है, हाइड्रो सायनिक एसिड के डिब्बे इसके नीचे ठेले जाते हैं और खोल दिये जाते हैं।

जब गैस अपना घातक कार्य कर चुकती है ग़ुब्बारा लाया जाता है और तम्बू फिर लटक कर उठ जाता है और ग़ुब्बारा उसे दूसरे वृक्ष पर ले जाता है।

—शतानन्द

स्थिर विद्युत् उत्पादन

हम एक पिछले लेखमें बतला चुके हैं कि समान विद्युत्से विद्युन्मय वस्तुएँ एक दूसरीसे हटती हैं और असमान विद्युत्से विद्युन्मय वस्तुएँ एक दूसरीको खींचती हैं। उसी लेखमें यह भी बतलाया था कि विद्युन्मय वस्तु साधारण वस्तुको खेंच लेती है या उसकी ओर खिंच जाती है। साधारण और विद्युन्मय वस्तुओंका परस्पर खिंचाव विद्युन्मय वस्तुके पास वाले साधारण वस्तुके हिस्से पर असमान विद्युत्के उत्पादनके कारण माना जाता है। मान लीजिये कि क ख एक साधारण तांबेकी बेलनाकार वस्तु है, जो एक शीशेकी छड़ श पर लगी हुई है और यह छड़ एक
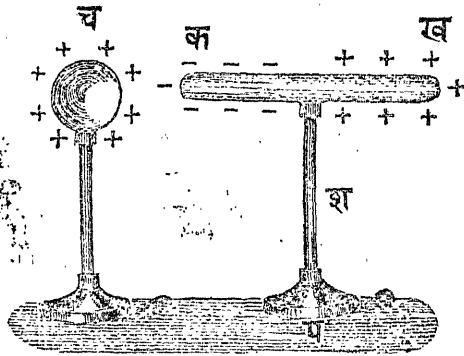
चित्र १५

कठके पाये प में जड़ी हुई है। अब यदि धनात्मक विद्युत्से विद्युन्मय एक गेंद च बाईं ओर इसके पास लायी जावे तो इसका बायां सिरा जो विद्युन्मय छड़के पास है ऋणात्मक विद्युत्से विद्युन्मय हो जावेगा, जिसकी जांचें एक ऋणात्मक विद्युत्से विद्युन्मय विद्युत्-लटकन पास लाकर उसके हटावसे की जासकती है। इसी प्रकार यदि विद्युन्मय शीशेकी छड़ इस वस्तुके दाईं ओर लायी जावे तो इस वस्तुका दायां सिरा ऋणात्मक विद्युत्से विद्युन्मय मिलेगा।

अब यहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साधारण वस्तुके केवल विद्युन्मय वस्तुके पासवाले ही हिस्से की अवस्था बदलती है? इसके उत्तरमें हमें 'नहीं' कहना पड़ेगा। साधारण वस्तुका दूरवाला हिस्सा समान विद्युत्से विद्युन्मय होजाता है। समान और असमान विद्युत्से विद्युन्मय हिस्सोंके बीचमें बहुत थोड़ासा हिस्सा ऐसा होता है जो विद्युत् शून्य कहा जासकता है। यह स्थान किस प्रकार निश्चय किया जा सकता है यह आगे बतलावेंगे।

साधारण वस्तु किसी विद्युन्मय वस्तुके पास लानेसे विद्युन्मय होजाती है, परन्तु जितनी देर विद्युन्मय वस्तु इस साधारण वस्तुके पास रहती है उतनी ही देर इस साधारण वस्तुकी अवस्थामें भेद रहता है। जैसे ही विद्युन्मय वस्तु हटा ली जाती है साधारण वस्तु अपनी विद्युत्शून्य या साधारण अवस्थाको लौट जाती है। विद्युन्मय वस्तुके पास लानेसे साधारण वस्तुके हिस्सोंपर बिजलीका पैदा हो जाना 'उत्पादन' कहलाता है।

यदि गेंदको साधारण वस्तुके पड़ोसमें रखते हुए हम साधारण वस्तुको हाथसे छुएं तो समान विद्युत्; जो विद्युन्मय छड़से जितनी दूर जाना उसके लिए सम्भव है, चली जाती है; हमारे शरीर और पृथ्वीमेंसे होती हुई पृथ्वीके दूसरे सिरेपर चली जावेगी। अब यदि हाथ हटा लें और फिर विद्युन्मय छड़को भी हटा लें तो साधारण वस्तु असमान विद्युत्से विद्युन्मय मिलेगी।

हाथ हटा लेनेसे साधारण वस्तु और पृथ्वीमें सम्बन्ध टूट जाता है और वह समान विद्युत्, जो पृथ्वीके परले सिरे पर चली गयी है अब साधारण वस्तु की असमान विद्युत्से मिलकर उसको विद्युत् शून्य अवस्थामें नहीं लासकती है। इसलिए जब विद्युन्मय छड़ हटा लीजाती है तो यह वस्तु असमान विद्युत्से विद्युन्मय मिलती है। इस प्रकार साधारण वस्तुको असमान विद्युत्से विद्युन्मय करना उत्पादनसे विद्युन्मय करना कहलाता है।

इस रीतिको थोड़े शब्दोंमें हम इस प्रकार कह सकते हैं। चालककी बनी हुई और रोधक पर

ठहरी हुई साधारण वस्तुके पास विद्युन्मय वस्तु लाइये और साधारण वस्तुको छूकर हाथ हटा लीजिये और तब विद्युन्मय वस्तुको भी हटा लीजिए। साधारण वस्तु असमान विद्युत्से विद्युन्मय हो जावेगी।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उसकी सत्यताकी जांच एक यंत्रसे जिसको विद्युत्दर्शक कहते हैं बड़ी सुगमतासे हो सकती है। यह यंत्र इस प्रकार बनाया जा सकता है। एक शीशेकी सुराही लेकर इसको लकड़ीके पेंदे पर रख लीजिए। एबोनाइट या गंधक का एक ऐसा काग बना कर जो इस
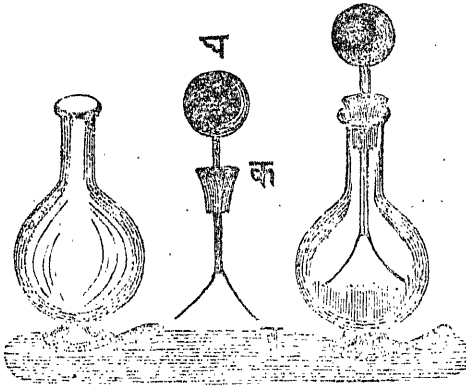
चित्र १६

सुराहीके मुँहको बंद कर सके उसमें एक छेद कर लीजिये। एक पीतलकी छड़ जिसके एक सिरेपर घुन्डी लगी हो इस कागमेंके छेदमें डाल दीजिये। इस छड़के दूसरे सिरे पर एक सोने चांदी या किसी और धातुके वरक का टुकड़ा तीन इंचके लग भग लम्बा और चौथाई इन्च चौड़ा बीचों बीचसे मोड़ कर गोंदसे चिपका दीजिये। यदि आप चाहें तो एक डेढ़ इंचके लग भग लम्बा और चौथाई इंच चौड़ा टुकड़ा छड़की एक ओर और उतना ही लम्बा चौड़ा दूसरा टुकड़ा छड़की दूसरी ओर चिपका सकते हैं। वास्तवमें हमको छड़के सिरेसे वरकके दो समान टुकड़े लटकते हुए चाहिएँ। चाहे वह दो टुकड़े अलग अलग चिपकाये गये हों या एकही टुकड़ेके दो हिस्से हों, इससे कोई मतलब नहीं। अब यह टुकड़े लगा कर कागको सुराहीके मुंह पर रख दीजिये। यह टुकड़े सुराहीके भीतर लटकते रहेंगे और घुंडी सुराहीके बाहर रहेगी। यह विद्युत्दर्शक यंत्र बन गया।

यदि विद्युन्मय चीज़ इस यंत्रकी घुन्डीके पास लायी जाय तो असमान विद्युत् तो घुन्डीपर रहेगी और समान विद्युत् वरकके टुकड़ोंपर चली जावेगी। समान विद्युत्से विद्युन्मय होनेके कारण वरकके टुकड़े एक दूसरेसे हटेंगे और चौड़ जावेंगे। अब यदि विद्युन्मय चीज़के अपने स्थानपर रहते हुए हम घुन्डीको हाथसे छू दें तो टुकड़ोंकी बिजली पृथ्वीमें चली जावेगी और टुकड़े पास पास आजावेंगे। हाथको हटा लीजिये और फिर विद्युन्मय चीज़को भी हटा लीजिये। जो असमान विद्युत् विद्युन्मय घुन्डीपर थी अब घुन्डी, छड़ और वरकके टुकड़ोंपर फैल जावेगी और टुकड़े फिर अलग हो जावेंगे और चौड़ जावेंगे।

विद्युन्मय वस्तुके पासवाले साधारण वस्तुके हिस्सेपर जो असमान विद्युत् उत्पन्न होती है उसको बंधी हुई विद्युत् भी कहना अनुचित नहीं होगा। यह विद्युत् विद्युन्मय वस्तुके निकट रहने तक उसी स्थानपर रहती है कि जहां उत्पन्न होती है। जो समान विद्युत् दूर वाले हिस्सेपर उत्पन्न होती है उसको स्वतंत्र विद्युत् कहना चाहिये। यह चालकके दूरसे दूर हिस्सेपर जानेकी कोशिश करती है।

विद्युत् दर्शकसे वस्तुओंकी अवस्थाकी जांच बड़ी सुगमतासे हो सकती है। विद्युन्मय वस्तुको दर्शककी घुन्डीके पास लाते ही दर्शकके टुकड़े चौड़ जावेंगे।

यदि साधारण वस्तु दर्शकके पास लायीजावेगी तो टुकड़ोंकी स्थितिमें कोई भेद न पड़ेगा।

यदि हमको यह जांचना हो कि विद्युन्मय वस्तु किस प्रकारकी बिजलीसे विद्युन्मय है तो हमको चाहिये कि दर्शकको एक प्रकारकी बिजलीसे विद्युन्मय करलें। यदि वस्तु उसी बिजलीसे विद्युन्मय होगी कि जिससे दर्शक विद्युन्मय किया गया

है तो वस्तुके पास लानेसे दर्शकके टुकड़े अधिक चौड़ जावेंगे। परन्तु यदि वस्तु असमान विद्युत्से विद्युन्मय होगी तो उसके टुकड़े वस्तुके पास लाते ही चौड़नेके बदले सिकुड़ने लगेंगे। साधारण वस्तुके पास लानेसे भी ऐसा ही होगा। इस लिए यदि टुकड़े सिकुड़ते हुए दिखलायी दें तो हमको चाहिए कि दर्शकको दूसरी प्रकारकी बिजलीसे विद्युन्मय करके फिर उस वस्तुको पास लावें। यदि अब टुकड़े चौड़ने लगें तो वस्तुके विद्युन्मय होनेमें कोई संदेह न होगा।

—शालिग्राम भार्गव।

नवग्रह

[लेखक—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी., एस-सी., एल. टी. विशारद]

भारतवर्षमें ऐसे हिन्दू बहुत कम होंगे जिन्होंने नवग्रहका नाम न सुना हो। सत्यनारायणकी कथासे लेकर विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार तक सबमें नवग्रहकी पूजा करनी पड़ती है। जिस समय जीव गर्भसे बाहर आता है पुरोहित जीकी पुकार होती है और उनसे पूछा जाता है कि वह अच्छे लग्न और नक्षत्रमें हुआ कि नहीं। यदि कोई बालक अथवा गृहस्वामी बीमार पड़ता है तो डाक्टर वैद्य और हकीमके साथ पुरोहित जी भी बुलाये जाते हैं और उनसे पूछा जाता है कि कोई ग्रह तो नहीं बिगड़े हैं। यदि जन्म कुण्डलीमें ऐसा कुयोग मिला तो उनसे प्रार्थना की जाती है कि ग्रह शान्तिका जप करें। प्रत्येक ग्रह की शान्तिके लिए जुदे जुदे मंत्र और दान करनेकी वस्तु हिन्दीके पञ्चाङ्गोंमें लिखी पायी जाती हैं। ऐसी ही रीतिके सम्बन्धमें बिहारीने कहा है—

बसै बुराई जासु तन, ताहीको सन्मान।
भलौ भलौ कहि छांड़िये, खोटे ग्रह जप दान॥

इन ग्रहोंके सत्य वा असत्य प्रभावके कारण ही भाषामें बहुतसे शब्द और महावरे प्रचलित हो गये हैं। 'ग्रह दशा बिगड़ी है'; 'मालूम नहीं किस ग्रहदशामें इनका जन्म हुआ कि सारी जिन्दगी दुःखमें ही बीती', इत्यादि वाक्य सहज ही दुःखी लोगोंके मुंहसे वा उनके साथियोंके मुंहसे निकलते हैं।

लोगोंको पुत्रका जन्म जितना सुखकर होता है उतना पुत्रीका नहीं। कई कारणोंमें से एक कारण यह भी है कि पुत्रीके पिताको उचित वरके खोजनेमें इस बातका भी विचार करना पड़ता है कि वर कन्याकी जन्म-कुण्डलियोंमें ग्रहोंका संयोग दोनोंके लिये शुभ है या अशुभ। नातेदारों और सम्बन्धियोंके द्वारा मालूम नहीं कितनी जन्मकुण्डलियां मंगा कर जांच करायी जाती हैं, कभी कभी तो वरके धन, जन, कुटुम्ब सबके ठीक होते हुए भी केवल इस लिए विवाह नहीं होता कि दोनोंके अमुक ग्रह परस्पर विरोधी हैं।

नवग्रहोंके इस अखंड राज्यको देखते हुए प्रत्येक विचारवान्के चित्तमें यह कल्पना उठती होगी कि यह क्या हैं; और कहां रहते हैं जो जन्म, मृत्यु किसी समय मनुष्यका पिंड नहीं छोड़ते। आज मैं इन्हीं नवग्रहोंके सम्बन्धमें प्राचीन और अर्वाचीन मतानुसार कुछ लिखना चाहता हूं—

नवग्रहोंका नाम याद रखना बड़ा सरल है। सप्ताहके दिन सात ग्रहोंके नामसे पड़े हैं; जो सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि हैं। सूर्यके पर्याय रवि, आदित्य हैं, जिनके कारण सूर्यके दिनको रविवार, आदित्यवार, ऐतवार या इतवार भी कहने लगे। चन्द्रमासे चन्द्रवार वा सोमवार हुआ, क्यों कि चन्द्रमाका दूसरा नाम सोम भी है। इसी प्रकार मंगलवारको भौमवार, बृहस्पतिवारको गुरुवार और बिहफै; शनिवारको

शनीचर वा सनीचर भी कहते हैं। सूर्य सिद्धान्त-में भी इन्हीं सात ग्रहोंका उल्लेख है।

नवग्रहोंकी श्रेणीमें सात तो वही हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, शेष दोके नाम हैं राहु और केतु। यह दोनों ग्रह पहले सात ग्रहोंकी नाई कोई पिंड नहीं हैं। सिद्धान्त ग्रन्थोंमें इनको 'पात'(node) कहा गया है। 'पात'का अर्थ वह विन्दु है जहां सूर्यकी कक्षा चन्द्रमाकी कक्षाको काटती हुई दिखाई पड़ती है। यथार्थमें सूर्यकी कक्षा चन्द्र-माकी कक्षासे बहुत दूर है और यह दोनों कक्षाएं एक दूसरेको स्पर्श तक नहीं करती हैं, परन्तु भूतल निवासियोंको काटती हुई उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं, जैसे ऊपर नीचे उड़ती हुई पतंगोंकी डोरियाँ दूरसे देखनेवालेको काटती हुई जान पड़ती हैं। जिस विन्दुपर चन्द्रमाकी कक्षा सूर्यकी कक्षा को काटती हुई उत्तरकी ओर चली जाती है, उसको राहु (moon's ascending node) और जिस विन्दुपर चन्द्रकक्षा सूर्यकी कक्षाको काटती हुई दक्षिणकी ओर जाती है उसको केतु (moon's ascending node) कहते हैं। इन दोनोंका अन्तर १८०° अथवा ६ राशिका होता है, इसीलिए कुछ पंचांगोंमें केवल राहुकी स्थितियां लिखी रहती हैं, केतुकी स्थितियां जाननेके लिए राहुकी स्थितियोंमें ६ राशि या १८०° जोड़ देते हैं। जिस समय सूर्य राहुके पास हो और चन्द्रमा केतुके पास अथवा सूर्य केतुके पास हो और चन्द्रमा राहुके पास उस समय सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक सरल रेखामें अथवा इसके लगभग होजाते हैं और पृथ्वी सूर्य चन्द्रमाके बीचमें आ जाती है, जिसमें पृथ्वीकी छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और चन्द्रमा कुछ देरके लिए ढक जाता है, जिसे लोग चन्द्रग्रहण कहते हैं। और जिस समय सूर्य राहु या केतुके पास हो, उसी समय यदि चन्द्रमा भी राहु या केतुके पास पहुंच जाय, तो सूर्य चन्द्रमासे ढक जाता है, जिसे सूर्यग्रहण कहते हैं। इसलिए कुछ लोगोंको भ्रम है कि पृथ्वी-की छायाकी नोकको राहु और चन्द्रमाकी छायाकी नोकको केतु कहते हैं। पृथ्वीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है अथवा ग्रास कर लेती है और लोगोंका विचार है कि राहु नामक राक्षस चन्द्रमाको पकड़ लेता है, इस कारण यह भ्रम और दृढ़ हो जाता है कि पृथ्वीकी छायाकी नोक ही राहु है, परन्तु यथार्थ बात यही है कि रविकक्षा और चन्द्रकक्षाके मिलन विन्दुको राहु और केतु कहते हैं। इस प्रकार हिन्दुओंके नवग्रह सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृह-स्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु हुए। पहले सात पिंड हैं शेष दो विन्दु विशेष हैं। पहले सात ग्रहोंके स्थानके विषयमें सूर्यसिद्धान्तका मत है कि ब्रह्माण्डके* मध्यमें आकाशकक्षा है, इसी आकाशकक्षाके नीचे नक्षत्रप्रवाह वायुके कारण भ्रमण करते हैं। नक्षत्रकक्षाके नीचे क्रमसे शनि-श्चर, मंगल बृहस्पति, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इस प्रकार सूर्य सिद्धान्तके अनुसार पृथ्वी केन्द्र मानी गयी है, शनिश्चर पृथ्वीसे सबसे दूर माना गया है और चन्द्रमा पृथ्वीके सबसे पास। चन्द्रमासे आगे बुध, बुधसे आगे शुक्र, फिर सूर्य, सूर्यके आगे मंगल और मंगलके आगे बृहस्पति माने गये हैं।

सब ग्रहोंकी योजनात्मक (linear) गति समान है। परन्तु सबकी कक्षाका विस्तार एक सा नहीं है। जो ग्रह दूर है उसकी कक्षा भी उसी अनुपातसे बड़ा है। इसलिए यद्यपि सब ग्रह समान योजना-त्मक गतिसे अपनी अपनी कक्षामें भ्रमण करते हैं, तथापि सब समान कालमें कक्षाका भ्रमण नहीं कर पाते। बड़ी कक्षावाले ग्रह अधिक कालमें और

---

* ब्रह्माण्ड मध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोधः क्रमशस्तथा ॥३०॥
मन्दामरेज्य भूपुत्र सूर्य शुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोधस्थाः सिद्ध विद्याधराः घनाः ॥३१॥
(सूर्य सिद्धान्त भूगोलाध्याय)

छोटी कक्षावाले ग्रह थोड़े कालमें अपनी कक्षा पूरी कर लेते हैं। *

यहां यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि आजकलके मतसे नवग्रहके सभी ग्रह ग्रह नहीं माने जाते। इन नवग्रहोंमें से मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ही आजकलके मतसे ग्रह कहे जा सकते हैं। सूर्य ग्रह नहीं है। क्योंकि सूर्य स्वयम् प्रकाशमान है और यह पांचों सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमा भी ग्रह नहीं है। यह तो पृथ्वीके चारों ओर घूमता है। इसलिये यह पृथ्वीका उपग्रह हुआ। इसका प्रकाश भी सूर्यसे आता है। आजकलके मतसे पृथ्वी ग्रह समझी जाती है, क्योंकि यह भी ऊपरके पांचों ग्रहोंकी नाई सूर्यकी परिक्रमा करती है और यह भी सूर्यके प्रकाशसे ही प्रकाशित होती है। इन ६ ग्रहोंके सिवा दो और ग्रह भी हैं जिनका पता पुराने ज्योतिषियोंको नहीं था, क्योंकि यह इतने छोटे हैं कि बिना दूरबीनकी सहायताके दिखाई नहीं पड़ सकते। इनके नाम हैं अरुण (uranus) और वरुण (neptune)। भारतीय मतसे सब ग्रह पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए माने गये हैं। परन्तु आजकलका यह मत है कि पृथ्वी स्वयं सूर्यकी परिक्रमा करती है और अन्य ग्रह भी सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। इन ग्रहोंकी रेखात्मक गति भी समान नहीं है, जैसा कि सूर्य सिद्धान्तका मत है। हां यह अवश्य ठीक है कि सूर्यसे जो ग्रह जितनी ही दूर है उसकी गति भी उतनी ही मंद है।

* उपरिस्थस्य महती कक्षाऽल्पाधः स्थितस्य च।
महत्याकक्षया भागा महान्तोल्पास्तथाल्पया ॥ ७५ ॥
कालेनाल्पेनभगणं भुंक्तेल्प भगणाश्रितः।
ग्रहः कालेन महता मंडले महति भ्रमन् ॥ ७६ ॥
स्वल्पयाता बहून् भुंक्ते भगणांश्छीत दीधितिः।
महत्या कक्षया गच्छंस्ततः स्वल्पं शनैश्चरः॥ ७७ ॥
(भूगोलाधिकारे)

ग्रहोंकी पहचान—आकाशमें जितने तारे हैं सबकी स्थिति निश्चित है। यह कभी अपने स्थानको नहीं बदलते। जो जिस स्थानमें है वह उसी स्थानमें सदैव नहीं तो हज़ारों वर्ष तक रहेगा। परन्तु ग्रह अपना स्थान दिन प्रति दिन बदलते रहते हैं। आज जहां हैं कल वहां नहीं रहेंगे, कुछ पूर्वको ओर हट जायँगे। इसी पूर्वकी ओर हटनेके ही कारण यह ग्रह कहलाने लगे, क्योंकि पूर्वकी ओर चलते चलते कभी यह एक तारेके पास पहुंच जाते हैं, और कभी दूसरेके पास, जिससे ऐसा जान पड़ता है कि मानों वह उस तारेको पकड़ने या ग्रहण करने जारहे हैं। इसीलिए इनका नाम ग्रह पड़ा।

पूर्वमें उदय होकर ऊपर उठते हुए पश्चिममें जाकर सूर्य, चन्द्रमा, तारे और ग्रह अस्त होते हैं। परन्तु यह गति उनकी गति नहीं है। यह तो पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण जान पड़ता है। इसलिए यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि तारे भी स्थान बदलते हैं। इन सब बातों की विशेष चर्चा अगले लेखोंमें की जायगी।

पेड़ रंगना

लकड़ी की बनी चीज़ें सुन्दर बनानेके लिए लोग लकड़ी को रङ्ग कर तरह तरह की वार्निश करवाते हैं, जिससे खर्च भी बहुत बढ़ जाता है और परिश्रम भी करना पड़ता है। विज्ञान की कृपा हुई तो भविष्यमें लोग इस खर्च और परिश्रमसे बच जायंगे। अमेरिकामें बहुत से प्रयोग ऐसे किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि हरे भरे पेड़में जिस रंगका नश्तर दे दिया जाय पेड़की लकड़ी उसी रंग की हो जाती है। नश्तर देने की विधि यह है:—वसन्त ऋतुमें पेड़के तनेके ऊपरी सिरेसे छेद करते हुए नीचे उतरते हुए चले जाइये, यहां तक कि उसका दूसरा सिरा तनेकी दूसरी और पहुंच जाय। फिर इसी छेदमें तेज़ अनीलीनका रंग भर दीजिए। यह रंग पेड़के चढ़ते हुए

रसमें मिल जाता है और बहुत जल्द लकड़ीकी नई पर्तें जो कि छालके नीचे रहती हैं रंग जाती हैं। इसी तरह दो सप्ताह तक रंग भरते रहनेसे सारी लकड़ी स्थायी रूपसे रंगीन हो जायगी। यदि इस लकड़ीसे कोई चीज बनायी जाय तो उसको वार्निश या पालिश करनेके पहले रंगनेकी आवश्यकता न पड़ेगी। रंगका नश्तर लगानेसे लकड़ी तो सदाके लिए रंग जाती है, परन्तु पेड़की बाढ़पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

जंगलात विभागको इस अनुभवसे लाभ उठाना चाहिए।

—शारदा सेवक

डाढ़ी मूंछसे लाभ

आजकलके शौकीन लोग प्रतिदिन न सही तो तीसरे दिन अवश्य डाढ़ी बनवाते हैं। कुछ लोग मूंछोंपर भी हाथ साफ करने लगे हैं और कहते हैं कि इनसे गंदगी बढ़ती है। ऐसे लोगोंको वाशिंगटनके डाक्टर आर्थर मेकडोनल्डका लेख पढ़ना चाहिये, जिसे उन्होंने फिलेडेल्फियाके 'दि मेडिकल वर्ल्ड' में छपवाया है। विज्ञानके पाठकोंके लिए उस लेखका सारांश यहां दिया जाता है:—

"रेलकी सड़कोंपर काम करनेवाले आदमियोंको जाड़ा, गर्मी, वर्षाका सामना बहुत करना पड़ता है। इस लिए इनको जुकाम खांसी अधिक सताती है। परन्तु जो डाढ़ी मूंछ रखे रहते हैं फेफड़े और श्वासके रोगोंसे कम बीमार होते हैं। फ्रांसीसी सेनाके सुरंग खोदनेवाले लम्बी डाढ़ीके लिए प्रसिद्ध हैं। यह भी जुकाम खांसीसे बहुत कम बीमार होते हैं।

स्त्रियोंके डाढ़ी मूंछ नहीं होती, परन्तु उनकी त्वचाके नीचे मनुष्यसे अधिक चर्बी होती है; विशेष करके गर्दन और चेहरेमें। इसके सिवा स्त्रियोंका स्वरयंत्र (larynx) और टेंटुआ (trachea) मनुष्योंके स्वरयंत्र और टेंटुएसे अधिक भीतर रहते हैं। इतना बचाव होते हुए भी स्त्रियोंको facial neuralgia की बीमारी पुरुषोंसे अधिक होती है।

डाक्टर साहब कहते हैं कि जैसे सिरके बालोंसे सिरकी रक्षा होती है उसी तरह डाढ़ीसे चेहरेकी रक्षा होती है। मूंछ प्राकृतिक श्वास शोधक है। जबड़े और कंठके ऊपर उगे हुए बालोंसे इनके भीतरके अंगोंको गरमी पहुंचती है और उनकी रक्षा भी होती है। मूंछके बाल हवामें उड़नेवाले हानिकारक कीटाणुओं और धूलके कणोंको सोख लेते हैं। डाढ़ीके बाल बाहर जानेवाली सांसकी गरमी लेकर भीतर जाने वाली सांसको दे देते हैं, जिससे ठंडी हवा गरम हो जाती है।

यदि आदमी दांतके दर्द; कौवेकी बाढ़; खांसी, जुकाम, सूजन इत्यादि रोगोंसे अधिक मुक्त रहना चाहे तो उसे डाढ़ी रखनी चाहिये।

जहांका जलवायु जल्दी बदलता हो वहां डाढ़ी रखनेसे लाभ होता है। इससे सर्दी गर्मीका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। बाल मुंड़ा देनेसे सर्दी गर्मी बहुत जल्द असर करती है; जिससे बीमार हो जानेका डर रहता है। ठंडी जगहोंमें तो डाढ़ीसे बहुत बचाव होता है। डाढ़ी मुड़ा देनेसे गर्मीके दिनोंमें भी गला बैठ जाता है और साफ साफ बोलते नहीं बनता। डाक्टरोंकी राय है कि जो व्याख्यान दाता कौवेके बढ़जानेसे या गला बैठ जानेसे बहुत पीड़ित रहते हैं उनको डाढ़ी रखा लेनी चाहिये।

'लिटेरेरी डाइजेस्ट' नामका पत्र कहता है कि २५ से ४५ वर्षकी आयुवाले ५३ स्वस्थ पुरुषोंके साथ अनुभव किया गया है; जो पहले तो डाढ़ी मूंछ रखे हुए थे, परन्तु परीक्षाके लिए सभीने मुंड़वा दी थीं। पहले तो सबको सर्दीसे दुःख जान पड़ने लगा। इनमेंसे चौदह ऐसे निकले जो इस परिवर्तनको सह सके और इनको किसी प्रकारका रोग न हुआ। शेषको दांत और जबड़ेके रोगसे, मसूड़ेके दर्दसे, जबड़ेके नीचेकी ग्रन्थियोंके

बढ़ जानेसे और पहलेसे ही बिगड़े हुए दांतोंके अधिक खोखले हो जानेसे बहुत पीड़ा हुई। डाढ़ी रखनेने बहुत से दोष भी ढक जाते हैं। चेहरा सुडौल और सुन्दर दिखाई पड़ता है, झुर्रियां ढक जाती हैं। मूंछसे होठ और दांतोंके दोष दिखाई नहीं पड़ते।

—बलदेव प्रसाद

महोबेमें पानोंकी खेती

हम पहिलेके एक लेखमें महोबेमें पानोंकी खेतीका कुछ हाल बता आये हैं। आज हम उसी विषयमें दो एक बातें और बतायेंगे। महोबेमें सिर्फ दो तरहके पान होते हैं—(१) बङ्गला और (२) बिलहरी या देशी। लोगोंका कहना है कि महाराजपूर (रियासत चरखारीमें एक जगह, जहां पानोंकी खेती बहुत होती है) का पान महोबेके पानसे अच्छा होता है। किसी एक प्रकारके पानका दूसरे प्रकारके पानसे अच्छा बताना या न बताना तो बहुत कुछ खानेवालेकी रुचि पर निर्भर है—कोई देसी पसंद करते हैं तो कोई बङ्गला और कोई कोई तो बनारसी 'मगई' के बीड़े के लिये बहुत कुछ दे डालते हैं। जो कुछ भी हो, परन्तु इतना तो अवश्य है कि महोबे के बाजारोंमें महाराजपूरके पानका अधिक आदर और मूल्य है। परन्तु महोबेके बरई इस बातको स्वीकार करनेके लिए तय्यार नहीं हैं कि उनके यहांका पान महाराजपूरके पानसे घटिया है, बलिक उनका यह कहना है कि महोबेके पानमें जो 'लज्जत' है वह महाराजपूरके पानमें नहीं। परन्तु यह बात कहां तक ठीक है, यह पानके प्रेमी ही अच्छी तरह बता सकते हैं। इतना हम कह सकते हैं कि यदि किसी वस्तुके आर्थिक मूल्यसे उसकी उत्तमता (quality) का पता चल सकता है तो यह मानने में कठिनाई न होनी चाहिये कि महोबेका पान महाराजपूरके पानका मुकाबिला नहीं कर सकता।

पान लगानेके दो महीने बाद टूटना शुरू हो जाता है और यह काम जब तक कि पानका पौधा रहता है और पत्ते आते रहते हैं होता रहता है। पानके विषयमें बरइयोंमें बहुत कुछ मिथ्यावाद प्रचलित है। परन्तु वह स्वभावसे ही संकुचित हृदय (conservative) होनेके कारण अपना भेद आसानीसे दूसरोंको नहीं बताते। यह लोग और विशेष कर वह जो इनसे पान लेकर बाहर 'देश' को पान भेजते हैं—खुशहाल और अमीर होते हैं। बरई नागके उपासक होते हैं, जिसका वह बहुत मान करते हैं। वह अपने इष्ट देवताको कभी दुःख नहीं देते और उनका विश्वास करते हैं कि वह भी बिना कारण उनको (बरइयों) हानि नहीं पहुँचाते। नागके उपासक होने पर भी यह और देवी देवताओंको मानते हैं। नागोंकी इतनी प्रतिष्ठा पानोंकी उत्पत्तिकी कथासे घनिष्ठ संबन्ध रखती है। वह पानकी बेलको 'नाग बेल' भी कहते हैं—और उसको नागोंकी माता मानते हैं। इसीमें इनकी नागपूजाका इतिहास है। उनका मत है कि हस्तिनापुरमें अश्वमेध यज्ञ होनेके पश्चात् विजय आनन्दके अवसरपर पाण्डवोंने पान खानेका विचार किया, परन्तु पानकी तब तक सृष्टि ही न हुई थी, इसलिये भूलोकमें पान उन्हें नहीं मिल सकता था। इस कारण उन्होंने इस वस्तुकी खोज के लिये पातालमें नागराज वासुकिके पास दूत भेजे। वासुकिकी रानी ने उनकी इच्छा तुरन्त पूर्ण की और अपनी अंगुलीका एक पोरा काटकर यह कहा कि इसे ले जाकर बो दो। दूतोंने पृथ्वीपर आकर ऐसा ही किया और उससे नागबेलि निकल पड़ी।

नागपंचमीके दिन विशेष तौरपर नागकी पूजा होती है। उस दिन वह बरेजोंमें नहीं जाते, वहां दूध, फल-फूल रखकर चले आते हैं। यही उनकी पूजा है। दूसरे दिन आकर पौधे सींचते

और रोज़के काम करते हैं। नागपंचमीके दिन एक पान भी नहीं तोड़ा जाता। बरेजोंमें जब कभी सर्प देख भी लेते हैं तब भी बरई उनसे बिलकुल नहीं बोलते। कुछ लोगोंका खयाल है कि यह बरई सांपके काटेकी औषधि जानते हैं; यद्यपि वह बताते नहीं हैं। यह बात कि सर्पोंके प्राकृतिक घर—ठंढक और नमोके कारण—बरेजे ही हैं और वह बरइयोंको हानि नहीं पहुंचाते नागोंके प्रति बरइयोंकी श्रद्धाको और भी दृढ़ कर देती है।

बरई लोग बिना नहाये बरेजोंमें नहीं जाते और न हर एक मनुष्यको उनमें जाने देते हैं। जूता पहिन कर किसीको वह उसमें अंदर नहीं जाने देते। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उनका खयाल है कि जूता पहिन कर जानेसे पान सड़ जाते हैं। पानोंकी बीमारियां कई प्रकारकी होती हैं, जिनको दूर करनेमें बड़ी कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त ज़रासी असावधानीसे सैकड़ोंका नुकसान होता है और साल भरकी मेहनत अकारथ जाती है। यह आराध्य देवी बड़ी कठिनता और परिश्रमसे प्रसन्न होती है और जब प्रसन्न होती है तो अपने भक्तको मालामाल कर देती है। परन्तु यदि उनके आदर सत्कारमें तनिक भी त्रुटि हुई और बरइयों ने ज़रा भी असावधानी दिखाई, तो ऐसी रुष्ट होती है कि उनको अपनी लागत भी मिलना मुश्किल होजाता है।

हमारे अशिक्षित हिन्दू भाई—और मुसलमान भाई भी—जिस वस्तुके पानेमें उन्हें अधिक परिश्रम करना होता है अथवा जिसका फल अनिश्चित है, उसको धार्मिक दृष्टिसे देखने लगते हैं। समय पाकर इन्हीं वस्तुओंके संबंधमें उनके उपासकोंको एक सूत्रमें बांधनेवाली एक कथा प्रचलित हो जाती है।

हम इस लेख (और इससे पहिलेवाले लेख) में बताआये हैं कि पानोंकी लता कितनी कोमल होती है और उसकी पैदावार किन किन कठिन युक्तियों पर निर्भर होती है और इस पर भी फल कितना अनिश्चित है; अतएव "नागबेलि" से जीविका करनेवाले इसकी ईश्वरीय उत्पत्तिमें विश्वास रखते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि उनके लिए मुक्ति तथा पुरुषार्थ की अपेक्षा प्रारब्ध प्रबल है।

—मुकट बिहारीलाल दर।

उल्कापात

(पाश्चात्यगवेषणा)

[ले०—श्री० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार]

(१)

पिछले लेखमें हमने भारतीय ज्योतिषियोंके विचारोंका उल्लेख किया था। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इस विचित्र घटनाका वर्तमान युगमें किस प्रकार रहस्योद्घाटन किया गया है।

वैज्ञानिक उन्नतिके इतिहासमें इस समस्याके क्रमशः क्या क्या उत्तर दिये गये, क्या क्या कल्पनाएँ की गयीं और क्या क्या सिद्धान्त निश्चित किये गये और तद्विषयक सच्चे ज्ञानके उपार्जनमें कहां तक सफलता प्राप्त हुई है, इन्हीं सब बातोंपर आज विचार करेंगे।

हम स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहते हैं कि इस घटनाका, व्यावहारिक हानि लाभ, जन्ममरण, काल दुकाल आदिसे, क्या सम्बन्ध है, इस विषयमें हम अभी कुछ विचार नहीं करना चाहते, क्योंकि इसकी पूरी जांच करनेके लिये अभी तक पर्याप्त ज्ञान संचय नहीं हुआ है।

(२)

ऐतिहासिक उल्लेख

गोरे महाशय अपनी पुस्तकमें लौकियर की कल्पनाकी व्याख्या करते हुए निम्न लिखित घटनाओंका उल्लेख करते हैं।

(१) ७०५ ई० पू० में उल्कापातका प्लुटार्क ने वर्णन किया है।

(२) लिवी महाशयने ६५४ ई० पू० में उल्लेख किया है।

(३) इगोस्पोटोमस नामक नदीमें गिरी उल्काओंका उल्लेख ४६८ ई० पू० में किया गया।

(४) २६४ ई० पू० में फ्रीजियामें एक उल्कापात हुआ।

(५) महाशय बायटने माचुआनके चीनके वर्णनमें ६४४ इ० पू० में हुवे १६ उल्कापातोंका वर्णन ढूँढ़ निकाला है।

(६) १४७२ की १६ नवम्बरको एक २६० पौण्ड (१३० सेर = ३ मन १० सेर) भारी शिला एन्सीशीम नगर (आलसेस) में गिरी। यह अब भी वहांके टाउन हालमें सुरक्षित रखी है।

(७) १६२२ में डिवोनशायरमें और १६२८में बर्कशायरमें पत्थर गिरे।

(८) १५ दिसम्बर १७९५ के दिन ५६ पौण्डका पत्थर यार्कशायरमें गिरा। गिरनेके समय बड़ा भारी धड़ाका हुआ।

(९) २६ अप्रेल १८०३ को फ्रांसके नगर एलयेगलमें बहुत से पत्थर बरसे।

(१०) १० मई १८७९को एक उल्का संयुक्तप्रान्त अमेरिकाके लोवाप्रान्तमें गिरा। उसके दो टुकड़े १७० पौ० और ५०० पौ० भारी थे। दूसरा टुकड़ा तो कड़ी भूमिमें भी १४ फुट धंस गया था।

(११) लौकियर कहते हैं कि सबसे बड़ी उल्का दक्षिण अमेरिकामें उटस्पा स्थान पर गिरी। इसका भार ३० टन था। इसी प्रकार और भी बहुत से स्थानोंपर छोटी-मोटी शिला गिरी हैं।

(३)

उल्काओंके विषयमें खोज

३०० वर्षोंसे उल्का विषयक खोज प्रारम्भ हुई है। जर्मनीके तत्ववेत्ता काल्डिनी महोदय ने सबसे प्रथम इस विषयपर विचार करना प्रारम्भ किया। यद्यपि उसने यह सिद्ध कर दिया था कि यह सब ऊपरसे गिरनेवाली शिलाएं आकाशसे ही गिरती हैं, तो भी उसकी इस कल्पनाको आदरकी दृष्टिसे न देखा गया, क्योंकि इनके विषयमें पहले बहुत सी मिथ्या कल्पनाएँ प्रसिद्ध थीं।

जो लोग इन शिलाओंको दिव्य शिलाएं मानने को तयार न थे, वह कहा करते थे कि यह शिलाएं मेघोंके अग्निमय शरीरसे पैदा होती हैं। दूसरे कहा करते थे ज्वालामुखीमेंसे गन्धक मिली धातो और पत्थरोंके टुकड़े वेगसे निकल निकल कर ऊपर चले जाते हैं और विशेष प्रकारके मेघोंमें अटक जाते हैं। वही समय समयपर गिरने लगते हैं।

महाशय लेबोयस्टर और उनके अनुयायियोंने उल्कापातों और विद्युत्पातोंको समान ही मान रखा था, जैसा कि हम लिख चुके हैं कि वराहमिहिरने भी उल्काके ही भेद विद्युत् और अशनि माने हैं।

वर्षा हुई शिलाओंके विषयमें लेबोयस्टरका मत था कि भयंकर अशनि या विद्युत् ही प्रबलतामें आकर, धरती पर पड़े किसी विशेष प्रकारके पत्थर या शिला पर गिरती है और उसका सा रूप धारण कर लेती है। वराहमिहिर भी अपनी बृहत् संहितामें यही मानते हैं। उन्होंने अशनिको पत्थर पर गिरते माना है। कहीं शिलाका आकाशपतन नहीं स्वीकार किया है।

(४)

१८०६ में म- वायट ने नार्मण्डीमें एक बड़े भारी शिलावर्षणकी खोज की और सिद्ध कर दिया कि यह शिलाएं आकाशसे ही गिरी हैं।

अब वैज्ञानिक भी यह माननेपर बाधित हुए कि यह दिव्य शिलाएं आकाशसे ही गिरती हैं। इन पत्थरोंका वैज्ञानिक संसारमें बड़ा मूल्य समझा गया है। इन्हींके आधारों पर परीक्षण करनेसे हम यह जाननेके समर्थ होते हैं कि दिग्दिगन्तस्थ तारे, ग्रह, नक्षत्रोंकी रचना किन द्रव्योंसे हुई है।

(५)

यह शिलाएं कहां उत्पन्न होती हैं, इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए अनेक कल्पनाएं की गयी

हैं। गत शताब्दीमें ही कितनी कल्पनाएं की गयीं पर अभीतक कोई भी पूरी संतोषजनक नहीं हुई।

ज्वालामुखीपर्वतोंसे शिलाएं बड़े वेगसे प्रायः बड़ी ऊंचाई तक फेंकी जाती हैं। तो भी पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणका बल इतना बाधक है कि यदि वायु मण्डलकी संघर्षण बाधाको न भी मानें तो भी पृथ्वीके आकर्षण-सीमासे पार होनेके लिये ७ मील प्रति सेकण्डका निरन्तर वेग आवश्यक है। यह बात सम्भव है कि किसी ज्वालामुखीसे इतने या इससे भी अधिक वेगसे फेंकी गयी शिला अवश्य पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणके क्षेत्रसे परे चली जायं और वहां वह उल्का बन जायं और फिर कभी विचरती हुई पृथ्वीकी लागमें आकर उल्कापिण्डके रूपमें गिरें। परन्तु अभी तक किसी ज्वालामुखीमें इतना फेंकनेका बल देखनेमें नहीं आया। दूसरे यहांके ज्वालामुखी शिलाओंकी और आकाशसे गिरी हुई शिलाओंकी रचनाओंमें पर्याप्त भेद पाया जाता है।

(६)

अब एक शंका यह हो सकती है कि यदि यहांके ज्वालामुखी पर्वतोंने शिलाओंको नहीं फेंका तो कदाचित् चन्द्रमण्डलके विशाल ज्वालामुखी पर्वतोंसे यह शिलाएं निकल कर पृथ्वी मण्डलपर गिरती हैं। या सूर्य मण्डलसे खण्ड टूटकर आते हों, या किसी ग्रहसे जैसे बृहस्पति, शनि, मङ्गल आदिसे यह शिलाएं ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा प्रेरित हो कर आती हों; जैसा कि वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहितामें लिखा है कि उल्काएं सूर्य और चन्द्रबिम्बसे निकलती हुई आती हैं। या अन्य तारोंसे ही यह टूटकर आती हों। या किसी प्रलय-कालवश खण्डशः टूटते हुये तारेके भाग बिखर कर आते हों। या बल पूर्वक फूटनेवाले किसी धूमकेतुके भग्नावशेष ही पृथ्वीपर बरसते हों या कदाचित् जैसे अन्तरिक्षमें जलबिन्दु या ओले और हिम शिलाएं जम कर नीचे गिरती हैं इसी प्रकार मट्टी, पत्थर, धातुके कण भी जम कर उल्का रूपमें बरसते हों। यह बहुत सी कल्पनाएं सन्मुख आती हैं, जिनके विषयमें सत्यासत्य विवेचन बहुत कठिन है।

(७)

पहले यह बात जाननी आवश्यक है कि इन शिलाओंकी रचना किस प्रकारकी होती है और उनमें क्या विशेषता होती है।

उल्कापिण्ड प्रायः तीन प्रकारके होते हैं:—

१. पाषाण उल्का—इसमें केवल कतिपय खनिजोंका; जैसे ओलिवाइन और ब्रोन्जाइट, आदिका बना हुआ पत्थर मात्र ही होता है।

२. धातुमय उल्का—जिसमें केवल धातु ही धातु होती है; जिसमें लोहे और निकिलका मिश्रण होता है।

३. धातु शिलामय उल्का—जिसमें खनिज पदार्थ और धातुमय भाग दोनों ही परस्पर गुथे होते हैं।

हम व्यवहारके लिये इनका नाम करण निम्न लिखित रूपसे कर सकते हैं।

१. पाषाण-उल्का (Aerolite)
२. धातु-उल्का (Siderite)
३. पाषाण-धातु-उल्का (Siderolite)

(८)

उल्काके प्रथम दर्शनमें चमकती धार आकाशके नीले तलपर खिचती प्रतीत होती है। क्योंकि वायुमण्डलमें प्रविष्ट होनेके पहले यह स्वतन्त्र आकाश मार्गमें अनिरुद्धगतिसे यात्रा कर रहा होता है। वह संयोगवश वायुमण्डलमें प्रविष्ट होता है। वायुमण्डलमें प्रवेश करते समय रगड़ पैदा होती है। उल्कापिण्ड स्वतः पहले ३० से ४५ मील प्रति सैकण्डके वेगसे चलता होता है। अब उसकी गतिपर बड़ा आघात पहुंचता है। प्रबल संघर्षण-से तापकी बड़ी भारी मात्रा उत्पन्न होती है। सामान्यतः दो एक सेकण्डोंमें ही वह पिण्ड भस्म होकर लुप्त हो जाता है। तापकी अधिकता और संघर्षणसे उसका एक एक कण पृथक् हो जाता है

और बहुत कुछ पिघलकर वाष्प होकर वायुमें फैल जाता है। कोई ही अपवाद रूपमें पृथ्वी तक पहुंच पाते हैं। इन्हींको 'टूटता तारा' कहा जाता है।

बड़े बड़े उल्कापिण्ड कई भागोंमें धड़ाके के साथ फट जाते हैं। यदि तापकी बड़ी मात्रा उनके बड़े पिण्डके गिरनेके समय तक उसे भस्म अथवा वाष्पमें परिणत न करदे तो वह पृथ्वीपर गिरते हैं।

पूर्व उल्लिखित नार्मण्डीका उल्कापिण्ड लगभग २००० खण्डोंमें फूट गया था। उसके बहुत से खण्ड बादमें भी गरम थे। एक खण्ड एक मनुष्य की बाहुपर गिरा। उसकी बाहु झुलस गई।

सबसे बड़ा उल्कापिण्ड जो अभी तक ज्ञात है मेक्सिकोमें गिरा था। उसका भूमिपर गिरनेके बाद भी भार ५० टनसे भी ऊपर था। वास्तवमें पृथ्वीपर इतने उल्कापिण्डोंकी वर्षा होती है कि जिसकी कुछ सीमा नहीं। महाशय आरहीनियसने गणना की है कि प्रतिवर्ष २०,००० टनके लगभग उल्कापिण्ड पृथ्वीपर बरस जाते हैं। यदि सचमुच कविकी आंखसे हम इनको लोकपालोंके अस्त्र मान लें तो पृथ्वी सचमुच चण्डी जगदम्बा है जो इतने गोले खाकर भी गम्भीरतया अपने मार्गसे च्युत नहीं होती। तिसपर भी लोकपालोंको लज्जा नहीं आती कि वह अपने भयङ्कर अस्त्र एक देवीपर निर्दयतासे इस प्रयोजनसे फेंकते हैं कि वह अपने पति सूर्यकी भक्तिसे प्रदक्षिणा करनी छोड़ दे। अस्तु, यह सब कल्पना है। कदाचित् प्राचीन संस्कृत साहित्यके उल्लेखोंमें ऐसी कल्पनाओंको सच समझकर अन्ध विश्वासको प्रधानता दी गई हो और देवताओंके अस्त्रोंकी कल्पना की गयी हो।

(९)

परन्तु पृथ्वीके विशालपिण्डकी तुलनामें गिरनेवाले कुल उल्कापिण्ड मिलाकर धूलकणके तुल्य हैं। इनमेंसे ज्यादातर तो वायुमण्डलमें ही सचमुच रगड़ खाकर चकनाचूर हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है २०,००० टन धूलि प्रतिवर्ष पृथ्वी मण्डलपर आती है, तो इसका परिणाम क्या होता है। सचमुच बहुत से उल्का तो पृथ्वी तक पहुंचते भी नहीं; वह वायुमें ही धूलि रूपमें लटक जाते हैं। यदि हमारे ऊपर वायुका विशाल गद्दा न होता तो इस लोकके प्राणियोंको बड़ा त्रास होता। कुछ समयमें ही शिलावर्षणसे सब जीवोंका संहार हो जाता। और पृथ्वी माताका हृदय निरन्तर प्रहारोंसे कांपता और दहकता रहता। पृथ्वी ने अपने बच्चे रूप जीवोंको आनन्दसे वायुमण्डलके कवचसे सुरक्षित किया है। चारों दिशाओंसे पड़नेवाले लोकपालोंके उल्कास्त्र इस कवचको छूते ही चिनगारी छोड़ कर भस्म हो जाते हैं और शायद ही कोई अभागा पृथ्वीके शरीरको छू पाता हो। सब बीचमें ही समाप्त हो जाते हैं। फिर उनकी धूल शनैः शनैः पृथ्वी तलपर उतरती है और ध्रुवोंपर जमे हुये अनन्त हिमकणों तकमें उपलब्ध होती है। उसकी रचना ठीक वैसी है जैसी उल्कापिण्डोंमें पाये गये धातवीय भागकी होती है। यही धातुमय रज आल्प्स और अन्य हिमावृत पर्वतों पर भी बराबर पायी जाती है। ध्रुवके गवेषकोंने ध्रुवों पर भी इसको पाया। समुद्रके तलों तक पहुंचनेवाले साहसी लोग समुद्र तलसे इस उल्का पिण्डकी धातुमयी धूलीको खोज लाये। विशाल भवनोंकी छतोंपर भी यह धातु धूली पायी गयी है।

(१०)

अब हम उल्कापिण्डोंकी शिलाओं पर कुछ विचार करते हैं। जो शिलाएं अपनी विशालता और कठोरताके कारण चूर्ण न हो सकीं या पिघल कर वाष्प न बन सकीं, वह पृथ्वीतल तक पहुंच जाती हैं। उनकी परीक्षा करने पर उनमें भी रचनाका भेद पाया जाता है। कुछ एक धातमय शिलाएं कठोर स्फटिकके रूपमें होती हैं, जो कदाचित् बड़े भारी दबाव और तापक्रमका परिणाम रूप हैं। इन स्फटिकोंकी रचना ही स्वतः कहती है कि इनका

तापक्रम अवश्य ८६०° शतांशसे भी अधिक रहा होगा।

कतिपय उल्कापिण्डोंमें एक पदार्थ ट्रिडिमाइट भी पाया गया है, जो अपनी रचनासे ८००° श० से १६२०° श० के बीचमें किसी तापमानकी सूचना देता है।

दूसरी ओर कई एक पाषाणमय उल्कापिण्डोंमें गहरे रंगका भास्मिककाच (Basic galss) भी पाया गया है, जिससे उसकी सहसा ठण्डे हो जानेकी सूचना मिलती है। इससे भी अधिक विस्मयजनक बात यह है कि कई उल्काओंमें ज्वलनशील कर्बोओं (hydrocarbons) के अंश भी पाये जाते हैं। इससे पता लगता है कि उन उल्कापिण्डोंका सदा ही ऊंचा तापक्रम न रहा होगा। यह ज्वलनशील पदार्थ अवश्य वायुमण्डलकी घोर प्रचण्ड तापमयी यात्राके बाद भी बच रहते हैं क्योंकि वह उल्कापिण्डके शीतल गर्भ भागमें सुरक्षित रहते हैं।

कई उल्काओंमें गर्भका भाग बहुत शीतल होता है, यहां तक कि पृथ्वीपर गिरते ही उनपर बर्फका गिलाफ़ चढ़ जाता है। वास्तविक भेद उल्का पिण्डोंके यह हैं। इनको देखकर इनके भिन्न भिन्न निकासोंका अनुमान होता है।

(११)

भिन्न भिन्न प्रकृतिके उल्कापिण्डोंको देखकर प्रतीत होता है कि इनकी उत्पादक मातृभूमि भी भिन्न भिन्न प्रकृतिकी होगी। उनके भी जुदे जुदे तापक्रम और ठण्डे होनेकी जुदी जुदी प्रगति हैं। कई उल्कापिण्ड खण्डमय रचनाके होते हैं, जो छोटे छोटे टुकड़ोंसे बने होते हैं। उनके पार्श्व स्फटिकके सदृश चमकीले टुकड़ोंसे जड़े होते हैं और उनमें खनिज पदार्थोंकी धारियाँ यह सूचना देती हैं कि इनके मातृपिण्डकी रचना अवश्य वैसी ही होगी जैसी भूमिपरके स्फटिकमय चट्टानोंकी होती है, क्योंकि उनके चटख चटख कर और फटकर वैसे ही खण्ड हुए होंगे।

(१२)

यह सब परीक्षा हमें इस परिणाम पर पहुंचा देती हैं कि उल्कापिण्ड एक ऐसे स्वतन्त्र आकाशयात्री पिण्डके खण्ड होते हैं, जिसमें हमारे जैसा वातावरण नहीं होता।

पाषाणमय उल्काको देखकर अनुमान होता है कि यह अपने मातृपिण्ड (Parent body)के छिलके या ऊपरके भाग होते हैं और धातु-उल्का कदाचित् मातृपिण्डका मध्य केन्द्रस्थ भाग होता है, जो हमारी पृथ्वीके मध्य भागके सदृश धातुमय ही होता है। इस अज्ञात पिण्डका मध्य भाग शनैः शनैः शीतल हो कर निकिल लोहके यौगिक रूपमें प्रकट होता है और बाहरका भाग शिलामय होनेसे बहुत शीघ्र ठंडा हो जाता है। वह शीघ्रही खण्ड खण्ड हो कर फूट जाता है। वहां ज्वालामुखीय क्रिया होना प्रारम्भ हो जाती है। जलका अभाव इसमें कोई शंका उत्पन्न नहीं करता। क्योंकि उल्कापिण्डके मध्य भागमें ऐसी गैस प्रचुर मात्रामें होती हैं, जो बड़े प्रचण्ड वेगसे ज्वालामुखीय उपद्रव करनेमें समर्थ होती हैं।

(१३)

उल्कापिण्डोंके निकासके लिये उक्त प्रकारके मातृपिण्डोंकी स्वतः सिद्ध कल्पना करनेसे और भी उल्कापिण्ड विषयक भिन्न भिन्न विशेषताओंका समाधान हो जाता है। निस्सन्देह ऐसे पिण्ड होंगे ही, क्योंकि उपरोक्त अवस्थाएं बहुत से उपग्रह तथा लघु ग्रहोंकी हो सकती है। इससे परे हम इन मातृपिन्डोंके विषयमें विशेष कुछ कह भी नहीं सकते।

अब बड़ा प्रश्न यही शेष रह जाता है कि उस मातृपिण्डसे यह भाग किस प्रकार टूटे और कैसे उल्कारूपमें होकर हमारे पास पहुंचे। मातृपिण्ड कदाचित् किसी अन्य पिण्डसे टकरा कर खण्ड खण्ड हो जाते हैं। ऐसा होनेपर उसके खण्ड खण्ड हो कर धूलके समान हो जाना और अत्यन्त अधिक तापका होना स्वाभाविक है, परन्तु प्रत्य-

नमें ऐसा होना नहीं प्रतीत होता। ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई छोटा पिण्ड किसी बड़े पिण्डके समीप पहुँचता है तो वह स्वतः छोटा होनेसे कई टुकड़े हो जाता है। और यह सब टुकड़े इकट्ठे के इकट्ठे उस क्रान्ति मार्ग पर घूमने लगते हैं जो उनके लिये सूर्य नियत कर देता है। उनका क्रान्तिमार्ग पृथ्वीके क्रान्तिमार्गसे कटता प्रतीत होता है। इसी बीचमें उनके मार्गके सम्पात स्थानों पर पृथ्वी बड़ी होनेसे इन कच्चे बच्चोंको बाज़की तरह झपट ले जाती है। वही हमें उल्का पिण्डके रूपमें गिरते दीखते हैं।

(१४)

इतना वर्णन कर चुकनेपर भी यह एक आकांक्षा बनी ही रहती है कि इनमें रासायनिक रचनाकी दृष्टिसे कौनसे पदार्थ होते हैं। इनका अन्य किसी सौर जगतके किसी ग्रह, उपग्रह या अन्य जगतके तारोंसे कोई प्रेम सम्बन्ध भी है। या सब इनपर झपटते और अपने वायुमण्डलोंके जालसे इन विचारे निस्सहायोंका शिकार ही करते हैं? इनका मार्ग ग्रहोंके सदृश है या उपग्रहोंके अथवा धूमकेतुओंके सदृश है? पृथ्वी ही इनका आहार करती है या और कोई भी उल्काहारी ग्रह है? इनकी गति, स्थिति और प्रलयमें कौन कौन सहायक और कौन कौन बाधक होते हैं, इत्यादि नाना प्रकारके प्रश्न या समस्याएँ हैं, जिनका समाधान करना विषय-पर पूरा प्रकाश डालनेके लिये आवश्यक है।

(१५)

उल्का पिण्डोंकी साधारण रचनाके विषयमें कुछ पहले लेखोंमें लिखा जा चुका है। अब कुछ विशेष दिग्दर्शन कराया जाता है। उल्कापिण्ड प्रायः काले (आवरण) छिलकेसे मढ़े हुए होते हैं। वायुके वायुमण्डलकी प्रबल रगड़से पैदा हुए प्रचुर तापसे ही उसका पिघला हुआ भाग इस प्रकार जम जाता है। वायुमण्डलमेंसे गुज़रते हुए उल्कापिण्डका वेग विस्मयजनक होता है। उसी वेगसे मः लौकियरके अनुसार ४५००° श० से ६०००° श० तक ताप मान चढ़ जाता है। इसके आनेका वेग अधिकसे अधिक ४५ मील प्रतिसेकण्ड होता है। जो अपनी क्रान्तिपर घूमते हुए शुक्रके वेगसे दुगना होता है। उल्कापिण्डका ऊपरका पृष्ठ ही प्रथम पिघलता है। वायुमण्डलमें प्रवेश न करनेके पूर्व वह साराका सारा समान रूपसे अत्यन्त ठंडा होता है। यदि पिण्ड बड़ा हो और गिरनेका वेग बहुत अधिक हो तो अन्दरकी शीतल अवस्था भूतल तक पहुंचने तक भी बनी रहती है, जैसा कि गत लेखांकोंमें दर्शा आये हैं। भारतके कांगड़ा ज़िलेके पर्वतीय नगर धर्मशालामें १८६०में एक इसी प्रकारका विशाल उल्कापिण्ड गिरा था जो अपने गिरनेके आधे घण्टे पश्चात् ही बर्फसे ढक गया था।

इस प्रकारके उल्कापिण्डोंकी रचनाके रासायनिक विश्लेषण करनेसे मः लौकियरके अनुसार निम्न लिखित पदार्थ प्रायः पाये गये हैं।

उज्जन	कैल्सियम
लोह	अलूमिनियम (स्फट)
निकिल	कर्बन
मग्नीसियम	ओषजन
कोबल्ट	गन्धक
ताम्बा	शिला कण

निम्न लिखित पदार्थ थोड़ी मात्रामें और कभी कभी ही पाये जाते हैं।

लीथियम	क्रोमियम
सोडियम	टिन
पोटासियम	संखिया (आर्सेनिक)
स्ट्रोंशियम	अञ्जन (अण्टिमनी)
टिटेनियम	हरिन (क्लोरीन)
नत्रजन	

इनमें उज्जन नत्रजन और कर्बन यह अपने मौलिक रूपमें मिलते हैं। शेष सब यौगिकोंके रूपमें मिलते हैं। निकिल और लोह की मात्रा धातुमय उल्काओंमें अधिक होती है। और पाषाणोंमें मग्नीसियम अधिक होता है। इसी प्रकार उज्जन

धातुमय उल्काओंमें और पाषाणोंमें कर्बनिकाम्ल अधिक होता है। भिन्न भिन्न उल्काओंमें लोहेका अनुपात भी भिन्न भिन्न होता है। किसीमें ८० से ९८ प्रतिशत पाया गया है और निकिल ६ से १० प्रतिशत तक। तो भी निकिलकी बहुत मात्रा होती है, कुछमें तो ५१ प्रतिशततक भी होती है। उनमें लोहा केवल ३० प्रतिशत होता है।

(१६)

इनकी भिन्न भिन्न ज्वालाओंकी सप्तरंगी परीक्षा कर चुकनेपर म० लौकियर इस परिणामपर पहुंचे हैं कि इनकी रचना धूमकेतुके शिरोभागसे मिलती है। कदाचित् उन्हींके यह भाग न हों। लौकियर महाशयका अनुमान है कि धूमकेतु उल्कापिण्डोंके पुञ्जोंका बना होता है। उन्हींके परस्परके टकराने और रगड़ खानेसे उसकी स्वतः भी कुछ दीप्ति रहती है।

यदि लौकियर महाशयका यह कहना सत्य है तो शिपरेली आदि विद्वानोंका यह कथन कि उल्कापुंजोंका और धूमकेतुओंका मार्ग एक ही होनेसे दोनोंमें बड़ा सम्बन्ध है सर्वथा पुष्ट हो जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि यह उल्कापुञ्जोंके बने धूमकेतु क्या सौर जगतके ही एक भाग हैं या कहीं बाहरसे आघुसे हैं।

(१७)

इस विषयमें लौकियर महाशयकी सम्मति है कि यह सौर जगतका अपना कोई भाग नहीं है। यह इस सौर जगतसे उत्पन्न नहीं हुए। प्रत्युत् इस सौर जगतके अतिरिक्त अन्य किसी जगतमें से आये हैं। पर किस प्रकार आये हैं, इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहते हैं कि सूर्य अपने ग्रहों उपग्रहोंके सहित किसी अविज्ञात मार्गपर भ्रमण कर रहा है। इसीने मार्गमें चलते चलते यह धूमकेतुओंकी माला किसी अन्य जगतके ऊपर अपने आकर्षण बलसे आक्रमण करके वहांसे जीतली है। और अब उसको परिक्रमाका मार्ग सौर जगतमें ही सम्मिलित हो गया है। अस्तु, कुछ भी हो अब तो यह अवश्य सौर जगतका भाग है। इस विषयपर हम अधिक विस्तार भयसे विवाद नहीं करते। और पाठकोंका ध्यान एक और अद्भुत घटना पर खेंचते हैं। वह घटना नियत कालपर उल्का वृष्टिका विचित्र दृश्य है।

(१८)

उल्कापतनका बड़ा कारण हम पहले दर्शा आये हैं कि उल्काओंका क्रान्ति मार्ग पृथ्वीके क्रान्ति मार्गसे कटता है और बीचमें वह आकर्षणसे खिचकर झपटमें आजाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी उल्काओंका वर्षण देखा गया है। सारा आकाश मण्डल घोर रात्रिके समय भी टूटते तारोंसे जगमगा जाता है। ऐसी घटनाएं कभी कभी देखनेमें आती हैं। इतिहासमें सबसे पुराना उल्लेख महाभारतमें कौरव पाण्डवोंके महासमरके समयका है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें रात दिन उल्काओंकी वर्षा हुई थी, उसके पश्चात्का एक ८०२ ईस्वीमें एक मुअरिश राजाकी मृत्युके वर्णनमें उल्कावृष्टिका उल्लेख पाया जाता है। उसके पश्चात् १७९९ ईस्वीमें, फिर १८३३ में, फिर १८६६ में। इस प्रकार अनुमान करनेसे यही पता लगता है कि ऐसी भयंकर उल्कावृष्टियोंकी बारी लगभग ३३ या ३४ सालके अन्तरसे आती है। इस गणनाके अनुसार ८०२ से लेकर अब तक २९ वर्षाएं हो चुकी हैं। महाशय न्यूटन कहते हैं कि उनमेंसे १२ वर्षाएं साहित्यमें लिपिबद्ध हो चुकी हैं।

(१९)

विद्वानोंका कथन है कि उल्कापिण्डोंके क्रान्ति-मार्गपर उल्काओंके नाना प्रकारके झुण्ड अपनी स्वतन्त्र गतिसे घूम रहे हैं। वैसे उनका सारा मार्ग ही एक प्रकारसे उल्काओंसे कीर्ण है, जिसमें छोटेसे ज़र्रेसे लेकर अच्छे बड़े बड़े परिमाण तकके उल्कापिण्ड हैं। पर गिरोहके गिरोह भी उसमें भिन्न भिन्न वेगोंसे गति कर रहे हैं।

जब कभी कोई बड़ा झुण्ड पृथ्वीकी भेंट में चढ़ जाता है तो वह अपना तन भस्म कर पृथ्वीकी आरती उतारते हैं। बस यही उल्का वृष्टि समझिये।

जैसे छतरीपर से उड़े कबूतरोंका झुण्डका झुण्ड एक प्रवाह रूपमें उड़कर और चक्कर लगा कर फिर वहीं आ जाता है उसी प्रकार इन उल्का पिण्डोंका समूह अपने क्रान्ति मार्गपर निरन्तर घूम रहा है।

यह आवश्यक नहीं कि समूह एक गोलपुञ्ज रूप ही हो, प्रत्युत् कई बार एक लम्बा प्रवाह रूप होता है। यह प्रवाह इतना लम्बा होता है कि इसके क्रान्ति मार्गके एक भागसे ही सिरसे पूंछ तक निकल जानेमें ही लगभग ढाई वर्षके लग जाते हैं। मीलोंमें इसकी लम्बाई कमसे कम २५०००००० कूती गयी है। इसको हम उल्का प्रवाह ही कहेंगे। इसकी चौड़ाई इतनी अधिक होती है कि पृथ्वी स्वतः ८००० मील व्यासवाली होती हुई प्रति मिनट १८ मील की गतिसे चलती हुई भी उसको कई दिनोंमें पार कर पाती है। लम्बाई बहुत होनेसे पृथ्वी एक प्रवाहमें ही कई बार लगातार दो एक साल तक विशेष ऋतुओंमें स्नान करती है। मानों उल्का सरितमें नहाती हुई उल्का पिण्ड रूपी कमलोंसे मेदिनीदेवी जल क्रीड़ा किया करती हैं।

इस मार्गपर बहुत से गिरोह जो स्वतः एक दूसरे से कुछ कुछ अन्तरपर स्वतन्त्र गति कर रहे हैं, उन गिरोहोंको हम उल्कापुञ्ज (Shoal of Herrings) और प्रवाहोंको उल्का-स्रोत कहेंगे।

(२०)

यह आवश्यक नहीं कि सब उल्कापुञ्ज या स्रोत एक ही मार्गपर गति कर रहे हों, प्रत्युत् इनके भी अनेक क्रान्ति मार्ग हैं। और वह भी प्रायः बदलते रहते हैं। न्यूटनके मतानुसार पृथ्वी स्वयं भी इनके मार्गके कुछ बदलनेमें कारण हो जाती है और इसी प्रकार संयोग वश अन्य महाग्रह भी अपनी आकर्षण शक्तिसे इनको अपने क्रान्ति मार्गसे विचलित कर देते हैं और मार्गको छोटा कर देते हैं। प्रायः बृहस्पति, शनि, (यूरेनस) लोमक और (नेपच्यून) वरुण ग्रह तो इनके क्रान्ति मार्गके परिवर्तनमें बड़ा भारी कारण होते हैं। कविता की भाषामें यों समझ लीजिये कि कभी पृथ्वी देवीके सौन्दर्यको देख यह लघुमनस्क उल्कारूप दिव्य यात्री अपने मार्गसे भ्रष्ट हो जाते हैं; कभी बृहस्पतिके फुसलानेसे; कभी शनि की वक्र भृकुटी से; कभी लोमक सदाशिवकी हुंकारसे और कभी वरुणके त्रिशूलसे भय खाकर अपने लम्बे मार्गमें न जाकर बीचसे ही लौट आते हैं। यदि यही लोकपालों की ओर से शस्त्रका फेंकना समझें तो क्या विस्मय है। इस विषयमें सूक्ष्म छोटी छोटी बातें लिखना अरुचि कर होनेसे छोड़ते जाते हैं।

म० लावेरियर और शिपरेली आदि विद्वानों के निरीक्षणोंने यह सिद्ध कर दिया है कि उल्काओं का क्रान्ति मार्ग और धूमकेतुओंका क्रान्तिमार्ग प्रायः एक ही होता है। उनमें परस्पर बहुत सा सम्बन्ध भी होता है।

(२१)

अब एक बहुत ध्यान देने योग्य बात रह गयी। वह यह कि उल्काओंको गिरते हुए ध्यान पूर्वक देखें, और उनके गिरने की रेखाओं को लम्बा करके देखें तो सभी एक विशेष बिन्दुसे निकले प्रतीत होते हैं। उस बिन्दु की स्थिति राशिचक्रमें किसी विशेष स्थानपर होती है। उस बिन्दुको उल्का प्रयाण-बिन्दु (Radiant) कहते हैं। भिन्न भिन्न समयों की वर्षाओं की जांच करनेसे ऐसे बहुतसे बिन्दुओंका पता लगाया गया है जो क्रान्ति वृत्तपर भिन्न भिन्न स्थानोंपर स्थित हैं; जिनको उनकी राशि या तारक मण्डलके नाम से पुकारते हैं। उनकी वृष्टि की पारी भिन्न भिन्न नियत कालोंके बाद ही आती है

इनमें सबसे प्रसिद्ध वर्षाका प्रयाण बिन्दु सिंहराशिमें है। उसको सिंहोल्का के नामसे पुकार सकते हैं। इसका वर्षण काल सवा तैतीस सालके बाद प्रायः नवम्बर मासके मध्यमें होता है।

इससे उतरकर दूसरे नम्बर पर अन्तर्मण्डल (Andromeda) की उल्कावृष्टि प्रसिद्ध है। उसको अन्तर्मदोल्का कहते हैं। यह प्रायः नवम्बरमें झड़ती है। इसी प्रकार और बहुत सी हैं, जिनमेंसे कुछ यहां दिखाते हैं।

१. सिंहोल्का—यह महावृष्टि ३३$\frac{१}{४}$ वर्षमें लौटती है। यह टेम्पल नामक धूमकेतुके मार्गपर है। यह नवम्बर मासमें होती है।

२. अन्तर्मदोल्का—यह ६, ७ वर्षमें लौटती है। इसकी गति ८ मील प्रति सैकण्ड है। यह बेलाके धूमकेतुके क्रान्ति मार्गपर गति करती है। नवम्बर मासमें होती है।

३ पारसीकउल्का या परशु उल्कावृष्टि—यह प्रति वर्ष ही होती है। पर अधिक उल्कावृष्टिका कुछ नियतकाल नहीं कहा जा सकता। यह १८६३ के ३ य धूमकेतुके मार्गपर है। धूमकेतु १०५ वर्षमें लौटता है; परन्तु यह प्रबल वर्षा १०५$\frac{१}{३}$ वर्षों के बाद होती है।

४. वीणोल्का—वीणा मण्डलमें स्थित विन्दुसे होती है; यह अप्रेलमें होती है। यह १८६१ के धूमकेतुके मार्गपर है। यह प्रति वर्ष ही प्रायः होती है। धूमकेतुका आवर्त्तन काल ४१५ वर्ष है।

५ कुम्भोल्का—यह मई मासमें होती है। यह हेलीके प्रसिद्ध धूमकेतुके मार्गपर है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुतसी हैं; जिनका उल्लेख विस्तारसे नहीं करते। इतना उल्लेख करके हम समझते हैं कि उल्काओंके विषयमें अब कोई विशेष समस्या नहीं छोड़ गये हैं। अब उपसंहार करनेके पहले पाठकोंको इसीसे सम्बद्ध दो एक आश्चर्य और सुनाते हैं।

(२२)

भारतवर्षमें प्रतिदिन सूर्यास्तके एक घण्टेके पश्चात् और प्रातः सूर्योदयसे एक घण्टे पहले क्रमशः पश्चिम और पूर्वमें एक हलका सा प्रकाश आकाशमें भासित होता है। उसको देख कर प्रायः चन्द्रोदय या चन्द्रास्तका संदेह हो जाया करता है। वही राशिचक्र प्रकाश (Zodiac Light) कहाता है। उसका मुख्य कारण यह होता है कि अस्तंगत सूर्य और उदय होनेवाले सूर्यका प्रकाश उल्का पिण्डोंके धूलीमय मार्गपर पड़ कर प्रतिफलित होता है। इसीसे वह प्रकाश दीखता है। शेष उसका कोई कारण नहीं है।

(२३)

उल्काके सम्बन्धमें एक ज्योतिषीकी विचित्र अद्भुत कल्पना भी सुना देना प्रसङ्गसे बाहर न होगा।

एच.एच.टर्नर महाशयने सूर्यमें धब्बे दीखनेका एक अद्भुत कारण कल्पित किया है। वह यह है—

उल्काओंके मार्गमें शनि महाग्रह अपने टेढ़े छल्ले सहित आ जाता है। और बड़े वेगसे बहता हुआ उल्का प्रवाह शनिके छल्लेसे टकरा कर बड़े वेगसे सूर्यमण्डलमें जा गिरता है। इनके गिरनेका वेग लगभग ४०० मील प्रति सेकण्ड होता है। यह उल्का प्रवाह भी प्रायः प्रसिद्ध सिंहोल्का ही
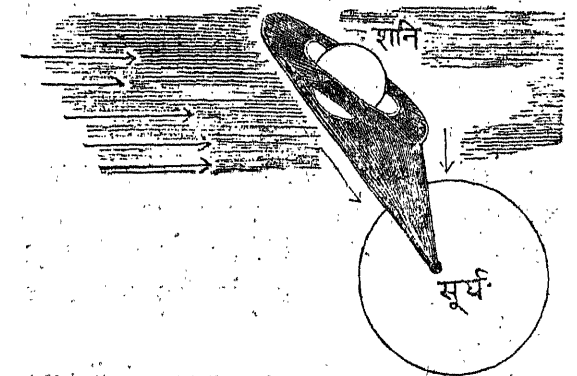
चित्र १७

माना गया है। इसीसे सूर्यकी भड़कती भट्ठी में यह छिद्र या धब्बासा दिखाई देता है। इस कल्पना

को स्पष्ट करनेके लिये महाशय स्क्विन घोल्टने निम्न प्रकारका चित्र दर्शाया है। देखिये चित्र १७

यदि यह कल्पना सत्य है तो बड़ी अद्भुत बात है। कभी ऐसा प्रतिक्षेप पृथ्वीपर आकर पड़ा तो बड़ा भयानक होगा। संस्कृत साहित्यमें शनिको लाल पगड़ीवाला सूर्य का पुत्र माना है। तो कल्पनामें यही कहिये कि शनि सा कुपुत्र गुस्सेमें आकर वर्तमान सरकारकी भारतीय पुलिसके मदमस्त कान्स्टेबिलोंकी तरह अपनी लाल पगड़ीके घमण्डमें सूर्यपर बड़ी निर्दयतासे पत्थरोंकी क्या गोलियोंकी वर्षा करता है।

(२४)

इस प्रकार हमने पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों प्रकारकी खजें इस विषयमें निष्पक्ष भावसे रख दी हैं। पाठक स्वयं भी विचारेंगे।

भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

ब्रह्मावर्त बड़ा प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था। यह गङ्गा जीके तटपर है। सौ वर्ष हुए कि इसके पूर्वमें कानपुर था, पश्चिममें कन्नौज और इसके दक्षिणमें कल्याणपुर और बारह रोही गांव थे। तब ब्रह्मावर्त्त एक छोटा सा गांव था। अब यह भारतेन्दुकी राजधानी है। जहां ब्रह्मावर्त्त था वहां अब राजभवन है। अब ब्रह्मावर्त्त बढ़कर एक बड़ा नगर हो गया है और कानपुरसे कन्नौज तक फैला हुआ है। इन दोनों नगरोंके मध्यका सब स्थान ब्रह्मावर्त कहलाता है और यह दोनों नगर अब इस राजधानीके पूर्व पश्चिम सीमापर दो मुहल्ले हैं। कन्नौजसे कानपुर तक लगातार पक्के घाट गंगाजीके तटपर बने हुए हैं।

हिन्दू गंगा जलको अमृत तुल्य मानते हैं। यह पवित्र जल व्यर्थ बह बह कर समुद्रको चला जाया करता था। भारतेन्दुने इसको एकत्रित करनेके लिये अपने इंजीनियरोंसे पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस कोसपर बड़े विचित्र बन्द बनवा दिये हैं। इससे गंगा जल सदैव घाटोंमें भरा रहता है और घाटोंकी ऊपरकी सीढ़ियोंपर जलबिम्ब दिखलाई देता है। इस प्रकारके सौ बन्द हरिद्वारसे हुगली तक हैं। इससे गंगाजलकी कभी न्यूनता नहीं होती। प्रत्येक बन्दके बीचोंबीचमें एक विचित्र फाटक है, जिसके द्वारा हुगलीसे हरिद्वार तक बड़े जहाज चले जाते हैं। ब्रह्मावर्त्त राजधानीकी रचना भी बड़ी अद्भुत है। इसमें सीधी और चौड़ी सड़कें इस प्रकारसे बनी हैं कि वायुयानोंपरसे देखनेसे यह नगर शतरंजके सदृश ज्ञात होता है, जिसके प्रत्येक खानेमें लग भग १० जरीब लम्बा और दस जरीब चौड़ा, कई खंडोंका मकान बना है। और प्रत्येक मकानके चारों ओर दश जरीबके लग भग चौड़े घास अथवा फूलोंके रमने हैं। फिर चारों ओर सड़कें हैं। प्रायः मकान पच्चीस अथवा तीस खण्डके हैं और सब मकानोंमें नीचेके खंडमें खाद्य पदार्थ वस्त्र, बरतन इत्यादि दैनिक आवश्यकताकी वस्तुओंके बेचनेकी दुकानें हैं और सबसे ऊपरके खंडमें बालकोंके पढ़ानेके स्कूल और स्त्रियोंके लिये व्यायामशाला और रोगियोंके निवास स्थान हैं। प्रायः मकानोंमें लगभग पांच पांच हजार स्त्री पुरुष रहते हैं। इन मकानोंमें प्रत्येक स्त्री पुरुषके लिये अपनी गृहस्थी लेकर रहनेके लिये बड़ा उचित प्रबन्ध किया गया है। बैठने, उठने, साने, पढ़ने और सामान रखनेके कमरोंके अतिरिक्त पाखानोंका बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। यह आप ही आप साफ हो जाते हैं, भंगीकी कुछ आवश्यकता नहीं। स्नानके कमरेमें दो पम्प लगे हैं। एकसे ठंडा पानी मिल सकता है, दूसरेसे गर्म। रसोईमें बिजलीके चूल्हे लगे हैं। लकड़ी कोयलेकी आवश्यकता नहीं होती। (Switch) स्विच घुमाया कि चूल्हा गर्म हो गया। निवासके कमरोंमें आमने सामनेकी दोनों दीवारोंपर दो गोल छिद्र बने हैं, जिनके मुहंपर महीन तारकी जाली लगी हुई है। एक छिद्रके तले लाल हैंडिल लगा है और एकके तले नीला। अगर कमरेमें

ठंड अधिक हो तो लाल हैंडिल घुमा देनेसे कमरे-में गर्म हवा आने लगती है अथवा कमरेमें गर्मी अधिक हो तो नीला हैंडिल घुमानेसे मन्द मन्द शीतलपवन आने लगती है।

निवासके कमरेकी दीवालपर एक काला काला चौकोर तख़्ता सा लगा है और इसके ऊपर कई रंगके बटन लगे हैं। अगर अनायास कमरेमें आग लग जाय तो नीला बटन दबा कर कमरेके बाहर निकल आइये, बटन दबते ही एक ऐसी गैस निकल आवेगी कि आग तुरन्त बुझ जायगी। इसी तख़्तेपर एक काला बटन लगा हुआ है। इसको दबा दीजिये तो पुलिस स्टेशनको तुरन्त सूचना पहुंच जायगी कि कोई चोर आया है और वह किस मकानके किस खंडमें और किस नम्बरके कमरेमें आया है। वह आन कर तुरन्त पकड़ ले जावेगी। सोते समय इस काले तख़्तेके सफेद बटनको दबा दीजिये। इस दीवारके अन्दर होकर और फ़र्शके नीचे ही नीचे दो तार आये हैं। घरके बक्स इन्हींसे स्पर्श करके रख दिये जाते हैं। जब तक कि सफ़ेद बटन एक विशेष कुंजीसे ऊपर न उठाया जायगा, जो कोई बकसोंको छू लेगा उसके हाथोंमें बक्स चिपट जावेंगे और अपने स्थानसे न उठ सकेंगे।

लाला श्रीवास्तव नरायण माथुर और कपूर प्रसाद टंडनने अपने आविष्कारोंसे यहां नगर भरमें बेतारके टेलीफ़ोन और लम्प लगा रखे हैं। जैसे कि अमेरेका, यूरोप इत्यादि अन्य उन्नत देशोंमें टेलीफ़ोन एक दूसरेसे नगर भरमें तारके द्वारा मिले रहते हैं यहां वैसे टेलीफ़ोन और लम्प नहीं हैं। यह किसी एक्स चेञ्ज (Exchange) अथवा पावरहौस (Powerhouse) से तारके द्वारा नहीं मिलाये गये हैं। यह बिना तारके ही काम करते हैं। हर एक खंडमें एक कोनेपर एक छोटा सा कमरा बना हुआ है और इस कमरेमें कई मेज़ें पड़ी हैं, जिनपर कि क़लम दवात रखी हैं और इस कमरेके एक कोनेमें एक लैटर बक्स वैसा ही बना है कि जैसा भारतवर्षमें १८वीं या उन्नीसवीं सदीमें प्रयोग किया जाता था। पर इसमें दायें बायें चिट्ठी डालनेके दो मुंह बने हैं। दायें मुंहमें एक पाई डाल दीजिये तो गिरते ही तुरन्त पोस्ट आफिसका एक लिफ़ाफ़ा चिट्ठीके कोरे कागज़ सहित निकल पड़ेगा। कागज़पर पत्र लिखिये और लिफ़ाफ़ेमें बन्द कर दीजिये। लैटरबक्सके बायें मुंहमें डाल दीजिये और दूसरे मुंहमें कान लगा कर सुनिये। देखिये कैसा सायं सायं शब्द निकल रहा है। यह बायां मुंह लैटरबक्सके अन्दर छिपी हुयी पाइपका मुंह है, पत्र मुंहमें पड़ते ही वायुसे आप ही आप खिंच कर डाकखाने पहुंच जाता है, जहां प्रत्येक घंटा चिट्ठियां और पार्सल निकाले जाते हैं और पाइपों ही द्वारा एक पोस्टाफिससे दूसरे पोस्टाफिस पहुंचा दिये जाते हैं।

इन मकानोंमें चारों ओर पांच पांच मिनटपर खटोले एक खंडसे दूसरे खंड तक चढ़ा उतरा करते हैं। अगर किसी खंडमें आपको जाना हो तो आप खटोलेपर बैठिये और (इस खटोलेकी दीवार पर प्रत्येक खंडका नम्बर अंकित है) जिस नम्बरको दबा दीजिये उसी नम्बरके खंडपर सर से पहुंच जाइये और उसी तरहसे उतर जाइये।

हर एक मकानमें इतना बड़ा कमरा कि जिसमें हज़ार पांच सौ मनुष्य आ सकें विवाह इत्यादि उत्सवके लिये अलग बना है। हर एक खंडमें चारों ओर दश बारह हाथ लम्बा चौड़ा एक छज्जा सा निकला हुआ है। किसी एक छज्जेपर आकर खड़े हो जाइये। तुरन्त एक रेलके सिगनेलका सा हत्था निकल आता है। जैसे सड़कोंके ऊपर किरायेके हेतु मोटरकार इधर उधर दौड़ते फिरते हैं वैसे इस नगरमें आकाशमें वायुयान उड़ा करते हैं। आपके छज्जे पर हत्था निकला हुआ देख कर एक वायुयान मकानके ऊपर आजायगा और उसमेंसे एक खटोला निकल कर आपके छज्जेपर टिक जायगा। आपके बैठते ही यह खटोला ऊपर खिंच जायगा और आपका वायु-

यानमें पहुंचा देगा। आपको जहां कहीं जाना है, किराया दे कर चले जाइये।

सौ वर्षके लगभग हुए कि बिलातारके बिजली-की शक्ति द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंचा देनेकी तरकीब मालूम हुई थी। नाना प्रकारके यंत्र बना कर और परीक्षाएं करके बाबू खष्टोपद्दो बोसने ऐसी ट्राम्बे निकाली हैं कि जिनमें और पावर हौसमें तार अथवा रेलों द्वारा सम्बन्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। इस नगरमें ट्राम्बे बिना रेलके चलती है और पावरहौससे शक्ति बिनातारके पहुंचाई जाती है।

बहुत वर्ष हुए कि बाइसिकलोंका प्रयोग होने लगा है। आपने देखा है कि एक अथवा तीन मनुष्य इनपर चढ़कर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर बड़ी सुगमतासे चले जाते हैं। बलराम गणेश पटेलके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ट्राम्बेकी गाड़ियोंमें भी चार पहियोंके स्थानपर दोही पहिये क्यों न प्रयोग हों। इस नगरमें इन्होंने एक नवीन रीतिसे केवल दो पहियेकी ट्राम्बे गाड़ियां चलाई हैं। और इस नगर भरमें मकानोंके ऊपर स्टील (cables) केबुल्स अर्थात् इस्पातके रस्सोंपर, जिस प्रकार कि रस्सोंके ऊपर नट चलता है, दुप-हिया ट्राम्बे गाड़ियां दौड़ी दौड़ी फिरती हैं।

इस नगर भरमें आपको कहीं भंगी नहीं दिख-लाई देगा। सब घरोंका मलमूत्र पाइपों द्वारा बह कर कानपुर मुहल्लेके पूर्व-दक्षिण ओर चला जाता है। यहां बड़े बड़े हौजोंमें एकत्रित होकर केवल जलके रूपमें परिवर्तित हो जाता है और इसमें दुर्गन्धि बिल्कुल नहीं रहती। फिर भी इस जलको गंगाजीमें फेंककर गंगाजलको अपवित्र नहीं करते। यह जल हौज़ोंसे निकाल कर पाइपों द्वारा गंगाके दूसरे ओर लेजाकर कृषिमें प्रयोग किया जाता है। यहां सड़कोंपर धूल नहीं उड़ती। यह ऐसी विचित्र विधिसे सींची जाती हैं कि इनकी गर्द इन्हींपर जमा रहती है। इसके उठानेके लिये विशेष बना-वटकी मोटर गाड़ियां हैं। यह सड़कपर बड़ी तेजीसे दौड़ाई जाती हैं और जहां जहां होकर यह चलती हैं वहांसे यह कूड़ा उठाकर अपने बक्सोंमें बन्द कर लेती हैं।

यह हम वर्णन कर चुके हैं कि बर्लिनमें भार-तेन्दुने जो वैद्य बुलाये थे, वह केवल जीवाणुओंकी सहायतासे सब रोग अच्छे करते थे। इस कारण आपको आश्चर्य्य न होगा कि इस नगरके अस्प-तालोंमें कोई औषधि नहीं प्रयोग होती है। केवल दो तीन दर्जन बोतलें एक अलमारीमें मिलेंगी और इन्हींसे सब रोग अच्छे किये जाते हैं। यही दशा पशुओंके अस्पतालकी है। यहांके अस्पतालोंमें चीर-फाड़ बिल्कुल नामको नहीं होती। काशी विश्वविद्यालयके मेडीकेल कालेजके प्रिंसिपेल डाक्टर जवाहिर लाल वाटलने एक अलौकिक औ-षधि दरियाफ़्त की है। नमकके पानीसे धोकर किसी टूटी हड्डीपर यह औषधि छिड़क दो तो जिस प्रकार भूमिमें किसी पेड़की डाल गाड़ देनेपर वृक्ष उगने लगता है उसी प्रकार हड्डी उगने लगती है और उगकर वैसी होजाती है कि जैसी टूटनेके प्रथम थी। उसी प्रकारसे किसी स्थानका मांस काट कर फेंक दो तो मांस भी हड्डीकी तरहसे उगने लगता है। विश्वविद्यालयके डाक्टर प्रज्ञानन्द नियोगीने कोकेनसे एक ऐसी औषधि बनाई है कि इसका जिस अङ्गमें प्रवेश करा दें वह अंग ऐसा सुन्न पड़ जाता है कि उसमें अगर छुरी भोंक दें तो भी पीड़ा नाम मात्रको नहीं होती। कोकेनस्तुका टांगमें एक सुईसे प्रवेश करा दीजिये और फिर छुरीसे टांग काटकर फेंक दीजिये तो मनुष्यको बिल्कुल पीड़ा न होगी। इसके पश्चात् डाक्टर वाटलकी औषधि घाव पर छिड़कते रहिये। हड्डी और मांस उगने लगेगा और कुछ समयमें टांग फिर ज्योंकी त्यों बन जायगी। अगर आंखमें मोतियाबिन्दु हो गया है तो जितना आंखका भाग खराब होगया है काटकर फेंक देने और डाक्टर वाटलके सोल्यूशनसे कुछ समय तक उसे तर रखनेसे आंख आप ही आप अच्छी होकर कमलके समान बन जायगी।

सौ वर्षका समय हुआ कि कानपुरमें बहुतसे पुतलीघर थे कि जिनसे नगर बहुत गन्दा रहता था और नगरके निवासियोंकी दशा बड़ी शोचनीय थी। यहां धनियोंकी अपेक्षा पढ़े लिखे मनुष्य बहुत थोड़े थे। नगर अधिकांश पुतली घरोंके कुली कवाड़ियों, क्लर्कों अथवा विद्याहीन धनाढ्य दल्लालों और व्यापारियोंसे भरा था। यहांकी दशा यह थी कि वेश्याएँ रखना सभ्यता समझा जाता था और देवस्थानोंमें धार्मिक उत्सवोंमें भी पतुरियोंका नाच होता था। जुआ प्रतिदिन होता था और मनुष्य अधिकांश केवल धन-प्राप्ति करनेमें लगे रहते थे। भारतेन्दुने एक तरफसे इन पुतली-घरोंको इस प्रकारसे निकाल बाहर किया कि जैसे कोई झाड़ू लेकर घरका कूड़ा निकाल बाहर करता है। भारतेन्दुका मत है कि ऐसे कारख़ाने राजधा-नीमें न होने चाहियें। उनकी आज्ञानुसार अब यह कारख़ाने काशीमें बनाये गये हैं। एक समय उन्हों-ने अपने राज भाषणमें कहा था कि जहां कहीं आग लगनेका भय होता है जलके घड़े भरे रखे जाते हैं, इसी प्रकार वह उद्यम कि जिसमें मनुष्य ग्रसित होकर सांसारिक नीच आदर्शोंमें पड़ जा सकता है वह ऐसे स्थान पर होने चाहियें कि जहां उसके तोड़के लिये विद्याका भंडार हो और बड़े उच्च श्रेणीके विद्वान रहा करते हों। इसलिये उन्होंने काशी विश्वविद्यालयके निकट पुतलीघरोंके बनानेकी आज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त वह कहते थे कि व्यापारकी उन्नतिके लिये और वैश्योंके लाभार्थ भी काशी बड़ा उचित स्थान है, क्योंकि कुल भारतसे जितने यात्री काशीमें आते हैं और किसी नगरमें इतने प्रति वर्ष नहीं आते। इससे व्या-पारके फैलनेमें भी बहुत सुगमता हो सकती है।

दक्षिणकी ओर सब लम्बाईमें गंगाजीके समा-नान्तर पार्क बने हैं। ब्रह्मावर्त्त पर राजभवन बने हैं और राज दर्बारका भवन भी यहां बना है। इसकी सीधमें जो नगरकी सीमापर पार्क बना है। वह सब पार्कोंसे विचित्र है। इस पार्कके बीचमें लगभग एक मील क्षेत्रका एक जल कुंड है और उसके बीचमें लग भग चार जरीब लम्बा व चार जरीब चौड़ा और जलसे दो हाथ ऊंचा एक संग-मर्मरका चबूतरा है और उसके चारों ओर पानी तक रंग बिरंगी सीढ़ियां बनी हैं। यह चबूतरा बड़ा विचित्र है। इस चबूतरे पर रंग बिरंगे गुल-दान रखे हैं। पुष्पोंके बीचमेंसे रंगबिरंगी जलकी धाराएं फ़व्वारोंसे आकाशकी ओर छुटती हैं और ऊपर जाकर बीचमें एक बड़ा भारी गोल मंडप बना लेती हैं; जिसके चारों ओर और कितने ही छोटे छोटे मंडप बनजाते हैं। इस भवनके अन्दर मनुष्य चारों ओर घूमते हैं पर उनके वस्त्र नहीं भीगते। यह विचित्र जलभवन हिन्दू विश्वविद्यालयके एक इंजीनियरका बनाया है। इनका नाम लाला राम-चरण लाल अगरवाल है। जब जल बन्द कर दिया जाता है तो केवल चबूतरा रह जाता है और भवन लोप हो जाता है।

हम वर्णन कर आये हैं कि कन्नौजसे कानपुर तक पक्के घाट बने हैं। इन घाटोंके समानान्तर हरे हरे दूबके लौन (Lawn) हैं। लौनोंके समानान्तर एक सड़क है और सड़कके इसपार समानान्तर एक सिरेसे दूसरे सिरेतक दुखंडी दूकानें बनी हैं। यह भारत हाट कहलाती है। इस हाटमें दूकानें दो खंडसे ज़ियादा ऊंची नहीं बनने पातीं, जिससे हाटके पीछे मकानोंके निवासियोंके गंगाजीके दर्शनमें अड़चन नहीं होती।

यहां गंगाजीके ऊपर कोई पुल नहीं है। पुलोंसे जहाज़ नदियोंमें सुगमतासे नहीं चलसकते। रेलें उस पार आती हैं और घाटोंके किनारेके जहाज़ों पर झक झकाती चली जाती हैं। जहाज़ रेलको उस पार ले जाकर पटरियों पर उतार देते हैं। पैदल यात्रियोंके लिये स्थान स्थान पर अन्तर्भौम सड़कें बनी हैं अर्थात् गंगाजीके तलेसे इस पारसे उस पार तक सुरंगें बनी हैं, जिनमें बड़ी बड़ी चौड़ी सड़कें हैं, जिनपर रातदिन

बिजलीकी रोशनी रहती हैं। इसी परसे पैदल यात्री गंगा पार जाते हैं।

जल भवनके दक्षिणमें ज्योतिष भवन है और इसके दक्षिणमें एक बड़ा ऊंचा स्तम्भ है, जिसके ऊपर एक बड़ी विचित्र घड़ी है। जब सूर्य्य ब्रह्मावर्त्तकी मध्यान्ह रेखापर आता है इस घड़ीमें आप ही आप बारह बज जाते हैं। नगरके सब कार्यालयोंकी घड़ियां बिजलीके तार द्वारा इस घड़ीसे मिली हुई हैं। इस घड़ीमें बारह बजते ही नगर भरकी घड़ियोंमें आप ही आप बारह बज जाते हैं। प्रेमदास भक्तराम गांधी यहांके प्रधान ज्योतिषी हैं।

जिन सज्जनोंने बनारस यूनिवर्सिटी स्थापित की थी उनमें श्रेष्ठ मदनमोहन मालवीय थे। तीर्थराज प्रयाग इनका निवास स्थान व जन्म स्थान था इनके पिता बड़े भारी पंडित और भक्त थे। इन्हींकी सन्तानमें पं० विद्यासागर मालवीय हैं। इनके ज्येष्ठ पुत्र प्रोफ़ेसर विजयप्रताप मालवीयका नाम इस इतिहासमें आचुका है। यह राज्यके प्रधानमंत्री थे। इनका मत है कि वह वस्तुएं जिनकी सब मनुष्योंको समान आवश्यकता होती है राजा हो अथवा रंक हो सबको राज्यकी तरफ़से मिलनेका प्रबन्ध होना चाहिये। इस कारण प्राथमिक शिक्षा सबको मुफ़्त मिलती है। औषधालयोंसे औषधें सबको मुफ़्त मिलती हैं। श्रमजीवियोंको निवास स्थान मुफ़्त मिलते हैं। राजा हो अथवा रंक, सबको कोई उद्यम अवश्य सीखना पड़ता है।

कोई श्रमजीवी अगर बेकार हो तो राजकी तरफ़से उसे काम दिया जाता है। राजकी तरफ़से स्त्रियोंकी शिक्षाके लिये गृहलक्ष्मी विद्यालय मुफ़्तके खुले हुये हैं। स्त्रियोंके लिये दाइयां और स्त्रिवैद्य सरकारकी ओरसे नियत हैं, जो बिना दाम लिये काम करती हैं। बिजलीसे शुद्ध किया हुआ दूध बालकोंको बीस वर्षकी आयु तक मिलता है।

यहांपर बहुतसे बेतारके समाचारके पत्र प्रकाशित होते हैं। उदाहरणार्थ अकाशी समाचार आकाशी दूत, आकाशी दैनिक, आकाशी मित्र इत्यादि। यह पत्र स्थान स्थानपर पुस्तकालयोंमें मुफ़्त पढ़नेको मिलते हैं और वायुयानों द्वारा भारतवर्षमें बांटे जाते हैं।

पच्चीस वर्षकी आयु तक बालक अथवा बालिकाका विवाह नहीं हो सकता। दोनों ब्रह्मचारी रहते हैं। इस मर्यादाके चलानेमें यहां बड़ी कठिनाई हुई थी। यहां स्त्रियां पर्देमें नहीं रहतीं। बड़ी कठिनाईसे परदा उठा और ब्रह्मचर्यका प्रचार हुआ। ब्रह्मचर्यके प्रचार करनेमें वैद्योंने पहले पहल हाथ डाला। वैद्योंने कहा कि मनुष्यके स्वास्थ्यके लिये और देशको सबल बनानेके लिये ब्रह्मचर्य आवश्यक है। कच्ची ईंट नींवमें देकर मकान बनाने और पक्की ईंटकी नींवपर मकान बनानेमें बड़ा अन्तर है। पक्की ईंटकी अपेक्षा कच्ची ईंटकी नींवका मकान किसी कामका नहीं होता। कुछ विद्वानोंने कहा कि समाजिक दशाको देखकर ब्रह्मचर्य्य अनिवार्य करनेकी ज़िदका फल यह होगा कि पश्चिमी देशोंकी भांति हमारे नवयुवक कुकर्मी हो जायेंगे और जब राजमें इनकी सुनवाई होगी तो यह कहेंगे कि इस विषयमें पशुओं और मनुष्यों का प्राकृतिक धर्म एक है। इससे जनसंख्यामें बड़ी दुर्घटना हो जायगी। मनुष्य दुर्बल हो जावेंगे और देश नाना प्रकारके रोगोंमें ग्रसित रहेगा। इस विषयमें बड़ा आन्दोलन हुआ और कोई बात तय न हुई और ब्रह्मचर्यके प्रतिकूल या अनुकूल दोनों दल अपने अपने सिद्धान्तोंपर डटे रहे। इसी समयमें मुंशी खुशबख्तराय, डी. एस-सी., एम. डी. के आविष्कारने एक नई सूरत पैदा कर दी। आपने अपने आविष्कारोंसे यह ज्ञात किया कि मनुष्यकी पीठपरकी एक विशेष गुरिया पर कोकेनके एक नवीन यौगिकसे टीका लगा देनेसे मनुष्यकी विषयकी इच्छा जाती रहती है, पर उसके पुरुषार्थमें कोई फ़र्क़ नहीं आता। इस क्रियाका प्रभाव स्त्री व पुरुषपर एक सा होता है और जब उपरोक्त गुरियापर एंटीकोकेनका टीका लगा दिया जाता है तो मनुष्यमें साधारण संभोगकी शक्ति आजाती है।

इस आविष्कारसे देशका बड़ा उपकार हुआ। राज्य-दर्बारसे यह नियम बांध दिया गया कि यज्ञोपवीतके समय प्रत्येक बालकके यह टीका लगा दिया जाया करे और जो ऐसा न करेगा उसे कड़ा दण्ड दिया जायगा। नौ वर्षकी उम्रमें कन्याओंके टीका लगाया जाय। पुरुषोंके पचास वर्षके पश्चात् और कन्याओंके बीस वर्षके पश्चात् जब विवाहका प्रबन्ध हो तो फलदान चढ़ा देनेके पश्चात् एक नवीन संस्कार किया जाय, जिसका नाम खुश-बख़्त उत्साह रखा जाय। इस समय पन्टी कोकेनका टीका लगा दिया जाय। (असमाप्त)

—जटायु

पृथ्वीकी दैनिक गति

[ले०—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद]

सूरज, चन्द्रमा, ग्रह, तारे सभी पूरबमें उदय और पच्छिममें अस्त होते हैं। इससे प्राचीन भारतवासियोंने यह कल्पना की थी कि मेरु पर्वतके ठीक ऊपर आकाशमें अक्षकी एक धुरी है, जिसकी दूसरी धुरी मेरु पर्वतके* ठीक ऊपर आकाशमें है। इसी अक्षसे बंधे हुए तारे, ग्रह इत्यादि प्रवह वायुके कारण पच्छिमकी ओर सर्वदा भ्रमण करते हैं। †इस मतके विरुद्ध आर्यभट्टने, जिसका जन्म ५३३ विक्रमीयके लगभग हुआ था, अपनी आवाज़ उठाई थी और कहा था कि जैसे चलती हुई नावपर बैठे हुए आदमियोंको किनारेके अचल पेड़ इत्यादि उलटी दिशामें चलते हुए जान पड़ते हैं उसी प्रकार अचल तारावली पच्छिमकी ओर चलती हुई जान पड़ती है। *उदाहरण देनेके सिवा उस समय ऐसे कोई साधन नहीं थे कि इस अनुमानको सिद्ध किया जाता और शायद इन्होंने भी दबी ज़बानसे ही यह विचार पेश किया था। इसीसे इसका खण्डन पीछेके ज्योतिषियोंने सहजमें ही कर दिया था। इन ज्योतिषियोंने यह तर्क किया कि यदि पृथ्वी ही पूरबकी ओर घूमती है तो जो पक्षी अपने घोंसले छोड़कर आकाशमें उड़ जाते हैं वह फिर अपने घोंसले तक क्यों पहुंच जाते हैं; क्योंकि पृथ्वीके घूमनेके कारण पृथ्वीमें लगा हुआ घोंसला तो बहुत पूरबमें चला जायगा; परन्तु पक्षी आकाशमें रह जानेसे बहुत पीछे पड़ जायगा। † दूसरा तर्क इन्होंने यह किया कि यदि पृथ्वी पूरबकी ओर घूमती है तो पताका झंडी इत्यादिको सर्वदा पच्छिमकी ओर उड़ना चाहिये, क्योंकि यह साधारण अनुभवकी बात है कि यदि कोई मनुष्य ढीला ढाला कपड़ा पहनकर या रुमाल हाथमें फैलाकर दौड़ता है तो उसकी चालकी तेजीसे कपड़ा उसके पीछेकी ओर उड़ता है और यदि यह कहा जाय कि पृथ्वी बहुत मंद चलती है इस लिए पताका इत्यादि पच्छिमकी ओर नहीं उड़ती तो इतनी मंद चालसे पृथ्वी दिन भरमें एक चक्कर कैसे कर लेती है। ‡आर्यभट्टकी प्राचीनोंके विरुद्ध नवीन कल्पनापर पीछेके ज्यो-

* पृथ्वीका दूसरी ध्रुव।

† नक्षत्र कक्षा खचरैः समेतो यस्मादतस्तेन समाहतोयम्।
भपञ्जरः खेचर चक्र युक्तो भ्रमत्यजस्त्रं प्रवहानिलेन ॥३॥
(सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय मध्यगति वासना)।

मेरोः समुपरि वियत्यक्षो व्योमस्थितो ध्रुवोऽधोऽन्यः।
तत्र निबद्धो मरुता प्रवहेण भ्राम्यते भगणः ॥४॥
(पंच सिद्धान्तिका अ० १३)

* अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत्सम पश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥

† भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्यान खात्पुनः स्वनिलय मुपेयुः ॥६॥
(पंच सिद्धान्तिका १३ अ०)

‡ अन्यच्च भवेद्भूमेर्न्हा भ्रमरहंसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरण मथाल्पगा स्यात् कथं भ्रमति ॥६॥
(पंच सिद्धान्तिका १३ अ०)

तिषियोंने कुछ ध्यान नहीं दिया; नहीं तो इन तर्कों-का उत्तर सहजमें ही मिल सकता था। चिड़ियोंके अपने घोंसले तक पहुंच जानेका कारण तो यह है कि यद्यपि चिड़िया आकाशमें उड़ जाती है तथापि भूभ्रमणके कारण उसमें जो वेग होता है वह उतना ही बना रहता है; इस लिए जिस वेगसे घोंसला पूरबकी ओर घूमता जाता है उसी वेगसे चिड़िया भी घूमती जाती है। हां उसको ज्ञान नहीं पड़ता; जैसे रेल गाड़ीपर चढ़ा हुआ आदमी उस वेगका नहीं अनुभव करता जिस वेगसे गाड़ी स्वयम् चल रही है और न डब्बेके भीतर ठीक ऊपरको उछाली हुई गेंद ही गाड़ीके हट जानेके कारण पीछे रह जाती है। गाड़ीमें बैठा हुआ आदमी यदि गाड़ीके बाहर किसी पेड़ या किसी विन्दुको लक्ष्य करके कोई कंकड़ी सीधी फेंके तो जब तक वह पृथ्वी तक नहीं पहुंचती तब तक गाड़ीके समान वेगसे ही आगे बढ़ती जाती है। इस लिए उस पेड़ या विन्दुसे वह आगे बढ़ जायगी जिसको लक्ष्य करके फेंकी गयी थी। थोड़ा सा अन्तर हवाके वेगके कारण अवश्य पड़ जायगा, क्योंकि गाड़ीके बाहर हवा पीछेकी ओर बड़े वेगसे चलती है और इस वेगका प्रभाव कंकड़ीको पीछे ढकेलता है। सरकस देखनेवालोंने देखा होगा कि बड़े वेगसे दौड़ते हुए घोड़ेपरसे सवार ऊपर उछलता है और फिर घोड़ेकी पीठपर आ जाता है; यद्यपि घोड़ा वहां से बहुत आगे बढ़ जाता है जहां से सवार उछला था। कारण यह है कि सवारमें घोड़ेका वेग मौजूद रहता है और पीठपरसे उछल जानेपर भी वह वेग उतना ही बना रहता है।

दूसरे तर्कका उत्तर यह है कि पृथ्वीका सम्बन्ध उस वातावरणसे भी है जिससे यह घिरी हुई है। वायु भी पदार्थ है जो पृथ्वीसे आकर्षित होता है; इस लिये पृथ्वीके साथ साथ वायु भी पच्छिमसे पूरबकी ओर उसी वेगसे बही जा रही है जिस वेगसे पृथ्वी घूम रही है। यही कारण है कि पृथ्वी-के घूमनेसे ध्वजा पताका पच्छिमकी ओर नहीं उड़ती आदमीके दौड़नेमें या गाड़ीके तेज चलनेमें जो हवा पीछेकी ओर तेज़ीसे बहती है उसका सम्बन्ध आदमी या गाड़ी जैसा नहीं है, क्यों कि यह तो हवाको चीरती फाड़ती आगे बढ़ती है। पृथ्वी हवाको चीरती हुई नहीं घूमती वरन् हवाको लिये हुए घूमती है। इसकी तुलना बन्द गाड़ीसे की जा सकती है। यदि रेलगाड़ीकी खिड़कियां बन्द कर दी जायं, जिससे गाड़ीके भीतरकी हवाका सम्बन्ध बाहरसे टूट जाय तो भीतरकी हवामें यह बल नहीं होगा कि वह टंगे हुए कपड़ोंको पीछेकी ओर उड़ावे।

अब तो विज्ञानकी कृपासे पृथ्वीका घूमना सिद्ध करना बहुत सहज हो गया है। उनमेंसे एक विधि यह है:—

यह साधारण अनुभवकी बात है कि पहियेका वह विन्दु जो धुरीसे दूर है धुरीके पासवाले विन्दुसे अधिक चलता है। पहियेके किनारे पर जो विन्दु है वह उन सब विन्दुओंसे अधिक चलता है जो पहियेके बीचमें है। यदि पृथ्वी ऐसे अक्षपर घूमती हुई मानी जाय जिसका एक सिरा उत्तरी ध्रुवपर और दूसरा दक्षिणी ध्रुवपर है तो यह स्पष्ट है कि किसी ऊंचे पेड़, मकान या मीनारकी चोटी उसके आधारकी अपेक्षा पृथ्वीके अक्षसे अधिक दूरी पर है। इस लिए चोटीकी सरल गति उसके आधारकी सरल गतिसे अधिक होगी। इस लिए यदि कोई वस्तु बहुत ऊंचाईसे पृथ्वी तलपर गिरायी जाय तो यह ठीक नीचे न गिरकर कुछ पूरबकी ओर हटकर गिरेगी। मान लीजिये कि सा वह स्थान है जहांसे वस्तु नीचे गिरायी गयी है अर्थात् एक मीनारकी चोटी। सापक लम्ब रेखा है जो पृथ्वीके केन्द्र तक जाती है और प मीनारका मूल है। यदि यह मान लिया जाय कि जितनी देरमें वस्तु पृथ्वीतल पर पहुंची मीनारकी चोटी सा से स तक पहुंची तो मीनारका मूल प से पा तक पहुंचेगा, क्यों कि स से चली हुई लम्ब रेखा सप है। यह स्पष्ट है कि प पा, सा सा से कम है। इसलिए

यह भी स्पष्ट है कि प की सरलगति सा की सरलगतिसे कम है। परन्तु जो वस्तु सा से गिरायीजाती है उसकी सरलगति सा के समान होगी। इस लिए वह पा पर न गिर कर पि पर गिरेगी, जहां प पि, ससा के समान है। अर्थात् वह वस्तु लम्ब रेखासे कुछ पूरबकी ओर हटकर गिरेगी।
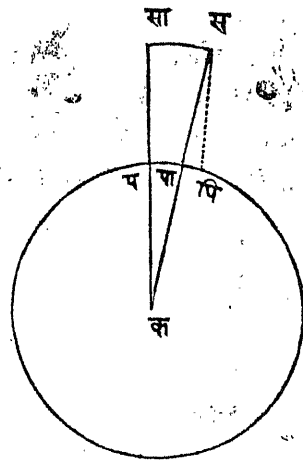
चित्र १८

इस लिए परीक्षा करके यदि यह सिद्ध किया जा सके कि ऊपरसे गिरी हुई वस्तु पृथ्वी पर पहुंचते पहुंचते यथार्थमें कुछ पूरब की ओर हट जाती है तब यह कल्पना भी ठीक मानी जा सकती है कि पृथ्वी पूरबकी ओर घूमती है। परन्तु यह परीक्षा है बड़ी कठिन। मीनार इतना ऊंचा बनाया नहीं जा सकता कि उसकी चोटी और मूल की सरल गतियोंमें इतना अन्तर हो कि वह साफ़ साफ़ जान पड़े, क्योंकि पृथ्वीकी त्रिज्या कमसे कम ४००० मील है और मीनार की चोटी १००० फुट भी नहीं हो सकती। बोलोन और हेमबर्गमें इस सम्बन्धमें जितनी परीक्षाएं की गयी थीं उनसे सिद्ध होता है कि २५० फुट की ऊंचाईसे गिरी हुई वस्तु लम्ब रेखासे साढ़े तीन इंच पूरब की ओर हट जाती है।

पृथ्वीके घूमनेका दूसरा प्रमाण फोको Foucault ने दिया था। इसकी परीक्षा फ्रांस की राजधानी पेरिसमें सम्वत् १९०८ विक्रमीयमें हुई थी। इन्होंने एक भारी लोहेके गोले को २०० फुट लम्बे तारके एक सिरे पर बांध कर पेरिसके पैन्थियान नामक गिरजे (Pantheon) की मीनारकी छतमें लटका दिया। गोलेके नीचे मेज़पर बालूकी पतली पर्त फैला दी। गोलेके नीचे एक आलपीन लगादी, जिससे जैसे जैसे लोलक हिले आलपीनसे बालूपर रेखाएं बनती जायं। गोला लम्बरेखासे कुछ हट कर डोरीसे दीवार में बांध दिया; फिर डोरीको जला देनेपर लोलक एक ही तलमें हिलने लगा। आलपीनसे बालूकी पर्तपर चिन्ह बनने लगे। प्रत्येक चिन्ह पहलेसे अलग होता जाता था। जैसे घड़ीकी सुई चलती है वैसे ही चिन्ह भी खसकते जाते थे। जान यह पड़ता था कि लोलकका तल पूरबसे पच्छिमकी ओर घूमता जाता है। यथार्थ बात यह थी कि लोलकके हिलनेका तल तो निरंतर एक ही सीधमें था परन्तु पृथ्वीके घूमनेके कारण सारा पैन्थियन, मेज़, बालूकी पर्त और दर्शकको लेते हुए; घूमता जाता था। यह परीक्षा कोई भी करके देख सकता है। ध्यान यह रखना होगा कि लोलक लम्बे तारमें बांधकर लटकाया जाय। तार जितना ही लम्बा होगा लोलक उतना ही मन्द चलेगा और देर तक हिलता रहेगा; क्योंकि हवाकी रगड़ कम हो जायगी। तारकी लम्बाई और लोलकके एक बारके हिलनेके समयमें यह सम्बन्ध है:—

$$क = \pi \sqrt{\frac{ल}{ग}}$$

जहां क वह काल है जितनेमें लोलक एक पूरा फेरा कर लेता है, π=३'१४, ग पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणकी वर्द्धमानता (acceleration) और ल लोलककी लम्बाई है। ग का मध्यमान ३२ फुट अथवा ९८१ शतांश मीटर है। यदि यह लोलक निरन्तर हिलता रहे तो आलपीनसे बनती हुई रेखाएं घड़ीकी सुईकी भांति घूमती घूमती एक चक्कर उत्तरी ध्रुवपर २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकंडमें कर लेंगी, ३० अक्षांश पर इसके दूने कालमें पूरा चक्कर होगा और पेरिसके अक्षांशपर ३२ घंटेमें पूरा चक्कर हो जायगा। निरक्ष देशमें लोलकके हिलनेका तल

नहीं बदलेगा। इस लिए आलपीनके चिन्ह एक दूसरेके ऊपर ही बनेंगे। चिन्होंके घूमकर पूरा चक्कर करनेका काल सब जगह समान नहीं है। इसका कारण यह है :—

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो कि लोलक उत्तरी ध्रुवपर लटकाया जाय तो लोलककी लम्ब-रेखा और पृथ्वीका अक्ष एक ही दिशामें होंगे। इस लिए जैसे जैसे पृथ्वी पच्छिमसे पूरबकी ओर घूमती जायगी इसके साथ दर्शकके खड़ा होनेका तल भी पच्छिमसे पूरबकी ओर घूमेगा और लोलकके हिलनेका तल पूरबसे पच्छिम हटता हुआ जान पड़ेगा; क्योंकि दर्शक पृथ्वीके घूमनेको देख नहीं सकता, इस लिए लोलक तल २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकंडमें पूरबसे पच्छिम घूमता हुआ एक चक्कर लगा आवेगा, क्योंकि इतने ही समयमें पृथ्वी अक्ष-पर घूम जाती है।

निरक्ष देश पर लोलककी आलपीनसे बनी हुई लकीर एक दूसरेके ऊपर होंगी, क्योंकि यहां लकीरके दोनों सिरोंकी पच्छिमसे पूरब वाली गति समान है। इस लिए लोलकका स्पन्दन तल एक ही लकीर पर हिलता रहेगा।

परन्तु यदि लोलक ध्रुव और निरक्ष देशके बीचमें कहीं हो तो आलपीनसे बनी हुई लकीरका वह सिरा जो ध्रुवके पास है निरक्ष देशके पास-वाले दूसरे सिरेसे मन्द चलेगा; इसलिए निरक्षके पासवाला सिरा पच्छिमसे पूरबकी ओर अधिक आगे बढ़ता हुआ ध्रुवके पासवाले सिरेके चारों ओर घूम जायगा और लोलककी लकीरें पूरबसे पच्छिमकी ओर घूमती हुई कुछ कालमें एक चक्कर लगा आवेंगी।

कल्पना कीजिये कि परीक्षाके स्थान स का अक्षांश (latitude) अ है। नना निरक्षवृत्त (equator), क पृथ्वीका केन्द्र, धधा पृथ्वीका अक्ष और ध उत्तरीध्रुव है। धधाके चारों ओर घूमनेवाला पृथ्वीका कोणीय वेग ऐसे दो भागोंमें बांटा जासकता है जिसमें से एक भाग 'क स' के चारों ओर घूमे और दूसरा कस से समकोण बनानेवाले कपके चारों ओर घूमे। यदि धधा के चारों ओर घूमनेवाला पृथ्वीका कोणीय वेग व माना जाय तो कप के चारों ओर घूमनेवाला वेग व × कोटिज्या(९०°-अ) अथवा व × ज्या अं होगा और कप के चारों ओर घूमनेवाला व × कोज्या अं होगा। कप पर घूमनेवाला वेग कस

चित्र १९
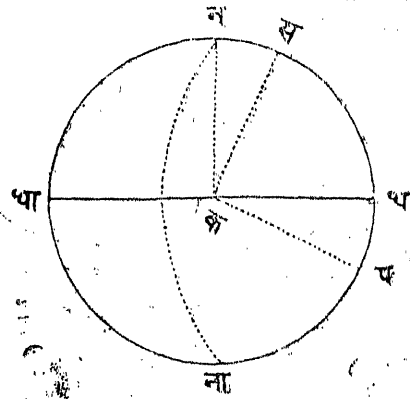
के समानान्तर होगा; इसलिए इसका प्रभाव लोलक पर वैसा ही पड़ेगा जैसा निरक्ष देशपर पड़ता है अर्थात् इस वेगके कारण लोलकसे खिंचने-वाली लकीरकी दिशामें कोई परिवर्तन न होगा। परन्तु कस पर घूमनेवाला वेग लकीरोंकी दिशामें परिवर्तन करेगा और पूरबसे पच्छिमकी ओर लकीरें बनती जायँगी जैसे घड़ीकी सुई चलती हैं। कितनी देरमें एक चक्कर पूरा हो जायगा इसकी गणना सहजमें ही की जा सकती है। क्योंकि जब कोणीय वेग व है तब तो पूरा चक्कर करनेका काल २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकंड है, इसलिए जब को-णीय वेग व × ज्या अं होगा तब चक्कर करनेका समय

अ व × ज्या अ° : व :: २३ घं० ५६ मि० ४ से० : समय

$$\text{अर्थात्}\ \frac{\text{२३ घंटे ५६ मि० ४ सेकंड}}{\text{ज्या अ०}}\ \text{होगा}$$

निरक्ष देश पर अक्षांश शून्य होता है; इसलिए ज्या अ° भी शून्य होगा और लोलकसे बनी हुई रेखाओंके पूरा घूम जानेका समय अनन्त होगा

अर्थात् वह घूमेगी ही नहीं जैसा ऊपर कहा गया है। ध्रुवके पास अं = ९०° इसलिए ज्या अं = १ इसलिए यहां लोलककी रेखाओंके घूम जानेका समय वही होगा जिसमें पृथ्वी एक चक्कर लगा लेती है। ध्रुव और निरक्षके बीचवाले स्थानों पर घूमनेका समय २३घंटे ५६ मि० ४से० से अधिक होगा।

उपर्युक्त सिद्धान्तसे घूमनेका जो काल निकलता है उससे परीक्षाओं द्वारा जाने हुए कालमें बहुत कम अन्तर पड़ता है, जिसके द्वारा पृथ्वीकी दैनिक गति सिद्ध होती है।

(अपूर्ण)

पिस्सू

(ले०—श्री० शङ्करराव जोषी)

यह कीड़ा हीनपक्ष (Aptera) वर्गका है। कुछ विद्वान पिस्सूको द्विपक्ष (diptera) और जूँको अर्धपक्ष (Hemiptera) वर्गका मानते हैं।

पिस्सू मनुष्यके शरीरका रक्त पीता है। जूं अस्वच्छ रहनेवाले व्यक्तियोंको ही तकलीफ़ देती है, किन्तु यह प्राणी किसीको भी नहीं छोड़ता। पिस्सू पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्री और बच्चोंको ज़्यादा तंग करता है। इसका कारण यह है कि इनकी त्वचा कोमल होती है; अतएव उसे नाज़ुक त्वचा में अपनी जीभ चुभानेमें ज़्यादा तकलीफ़ नहीं होती। यह प्राणी मनुष्यके शरीरपर नहीं रहता। खूब रक्त पी लेने पर उड़ जाता है। कुत्ता बिल्ली खरगोश आदि प्राणियोंके शरीरपर भी पिस्सू पाये जाते हैं। वह इन प्राणियोंकी देहपर स्थायी रूपसे निवास करते हैं; आजन्म उनका पीछा नहीं छोड़ते। परन्तु इन प्राणियोंके मरते ही यह कृतघ्न प्राणी उनके शवको छोड़कर चल देते हैं।

जूं और पिस्सूके आकारमें महदन्तर है। जूंका शरीर पीठ और पेटकी ओरसे चपटा होता है, किन्तु पिस्सूकी देह दोनों ओर से दाएं और बाएं चपटी होती है। पिस्सूके शरीर पर केशकी आड़ी समानान्तर कतारें होती हैं। यह बाल पीछेकी ओर झुके होते हैं, इसीसे उसे कूदनेमें हवासे किसी प्रकारकी रुकावट नहीं होती। पिस्सूके पर बहुत ही छोटे होते हैं, अतएव वह उड़ नहीं सकता, कूदता जरूर है। पिस्सूके पीछेके पांव मज़बूत होते हैं; अतएव वह अँखफोड़ेकी तरह उछलता है।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखनेसे पिस्सूका शरीर आश्चर्यका खज़ाना जान पड़ता है। अन्य कीड़ोंकी तरह इसके भी छह पांव होते हैं। इसका पांव कई छोटे छोटे टुकड़ोंके जोड़से बना होता है। पांवके आखिरी जोड़पर हुक के समान झुके हुए अवयव होते हैं। इन अवयवोंकी सहायतासे पिस्सू प्राणियोंके शरीरपर चिपककर बैठ रहता है। पिस्सूको दो स्पर्शेन्द्रिय और दो सादी आंखें होती हैं। शरीरके मानसे इसका मुख बहुत ही छोटा चोंचके आकारका होता है। चोंचके भीतर भालेके समान दो तीक्ष्ण अवयव होते हैं, जिनमें आरेके समान दन्तियां होती हैं। इन्हीं अवयवोंकी सहायतासे पिस्सू प्राणियोंके शरीरका रक्त पीता है। सिर छोड़कर पिस्सूका शेष शरीर बारह भागोंमें विभक्त है। सिरकी ओरके पहले तीन भागोंपर नीचेकी ओर तीन जोड़ी (छह) पैर होते हैं और ऊपरकी ओर पंख। पिस्सूके पंख बहुत ही छोटे होते हैं; अतएव वह उसे उड़नेमें सहायता नहीं दे सकते। शरीरके शेष नौ भाग मिलकर पेट (abdomen) बनाते हैं। पिस्सूका शरीर सीपके समान चिकना होता है। उसका रंग ऊदी होता है।

लोग अकसर कहा करते हैं कि पिस्सू काटता है। परन्तु वास्तवमें पिस्सू काटता नहीं, वह हमारे शरीरमें अपनी सूंड खोंसकर रक्त पीता है।

पिस्सू अस्वच्छ और टूटे फूटे घरोंमें रहता है। फर्शपर जो दरी आदि बिछाई रहती हैं, उनके नीचे अकसर बहुत सा कचरा और धूल जमी रहती है। पिस्सू दरीके नीचे भी अपना निवासस्थान नियत कर देता है। यदि फर्श बंदी की गई हो तो

फर्शके जोड़ोंमें एवं भीतोंकी दरारोंमें यह प्राणी अपने अण्डे रखता है। मादा जहां अण्डे रखती है वहां छोटी छोटी लाल गोलियोंका संचय नज़र आता है। यह गोलियां सूखे हुए खूनकी होती हैं। मादा इनका संचय इसलिए करती है कि अण्डोंमें-से बाहर निकल आनेपर बच्चोंको खानेके लिए उपयुक्त भोजन मिल जाय।

नर मादासे छोटा होता है। मादा एक बारमें ६,१० अंडे देती है। अण्डोंका आकार मुर्गीके अंडों की तरह लम्बा गोल होता है। अण्डे सफेद रंगके होते हैं। अण्डे गरमीके मौसममें चार दिनमें और शीतकालमें ग्यारह दिनमें पकते हैं। अंडोंमेंसे केश के समान महीन इल्ली निकलती है। इल्लीका रंग पहले तो कुछ सफ़ेद होता है; पर बादमें शीघ्र ही कुछ लाल रंगकी झाई आजाती है। इल्लीके न तो आंखेंही होती हैं और न पैर ही। परन्तु तो भी सांप-की तरह खूब तेज़ चलती है। करीब २५ दिन बाद इल्ली अपने शरीरके चारों ओर कोश बनाने लगती है। पंद्रह दिन कोशावस्थामें बितानेपर इल्ली पिस्सूमें परिवर्तित हो बाहर निकल आती है।

पिस्सूमें एक विशेषता यह है कि वह रक्त ला,ला कर इल्लियोंको पिलाता है।

कुत्ते बिल्ली आदि प्राणियोंके शरीरपर रहने-वाले पिस्सू और मनुष्योंका रक्त पीनेवाले पिस्सू अधिकांशमें एकसे ही होते हैं। कुछ फर्क तो अवश्य होता है, परन्तु उसे यहां दिखानेकी आव-श्यकता नहीं।

सबसे आश्चर्यकी बात तो यह है कि कुत्ते और-बिल्लीकी तरह पिस्सू भी पाला जासकता है। बैरन वालकेनीयर नामक लेखक अपनी "कीटक विज्ञान" पुस्तकमें लिखते हैं—

"सन् १८२५ में मैंने अपनी आंखोंसे पालतू पिस्सुओंका काम देखा है। करीब ३० पिस्सू फौजी सिपाहियोंकी तरह कवायद करते थे। कवायद करते समय यह पिछले दो पैरोंपर खड़े रहते थे और शेष पांवोंमें बालके समान महीन लकड़ीको बंदूककी तरह सीधा पकड़े रहते थे। उनमेंसे दो पिस्सू एक चार पहियोंकी गाड़ी खींचते थे। तीसरा पिस्सू एक गाड़ीपर बैठकर कोचमैनका, गाड़ी हांकने वालेका, काम करता था। दूसरे दो पिस्सू सोनेकी एक छोटी सी तोप खींचते थे। यह तोप सोनेकी महीन ज़ंजीरसे पिस्सुओंके पिछले पैरोंमें बांध दी जाती थी। यह सब काम एक कांचके टुकड़ेपर कराया जाता था। यह पिस्सू क़रीब २॥ वर्ष तक ज़िन्दा रहे। खानेका वक्त हो जानेपर इन्हें मनुष्यके हाथपर बिठादेते थे। क्षुधा शान्त होने तक यह खूब रक्त पीते थे। एक आध बार एक आध पिस्सू बिगड़ खड़ा होता और कवायद न करता तो मालिक अगरबत्तीकी तरह एक चीज़ सुलगा कर उसके चारों ओर घुमाता था। इससे डर कर वह अपना काम पूर्ववत् करने लगता था। करीब २॥ वर्ष तक इन पिस्सुओंने अपनी बुद्धिमानीसे सारे पेरिस नगरको आश्चर्यसागरमें मग्न रखा।

पिस्सू सब जगह पाया जाता है। अमेरिकाके उष्ण प्रदेशोंमें चिगो नामक जातिके पिस्सू पाये जाते हैं। चिगो दूसरे पिस्सुओंसे कुछ छोटा होता है। इस जातिके पिस्सूके अण्डे कुत्ते बिल्ली या मनु-ष्यके रक्तमें रहने पर ही परिपक्व होते हैं। अतएव मादा मनुष्यके शरीरमें—विशेष कर पैरके अंगूठेमें—ही अंडे रखती है। मादा अंगूठेमें छेद करती है और तब उसमें अपने शरीरका अधिकांश भाग प्रवेश करा देती है। केवल उसका सर बाहर रह जाता है। इस प्रकार बैठ जानेपर उसका पेट फूलने लगता है। अंडे भीतर ही पकते हैं और तब इल्ली माताकी देह चीर कर बाहर निकल आती है।

मनुष्यके शरीरके जिस भागमें चिगो प्रवेश करता है वह फूलने लगता है और उसपर खुजली चलने लगती है। तदनंतर उस स्थान पर एक फोड़ा हो जाता है और तब उसके फूट जानेसे पीप बहने लगती है। एक बार ज़ख्म हो जानेपर वह बड़ी मुश्किलसे भरता है। कभी कभी मनुष्यका अंगूठा गिर पड़ता है और कभी कभी तो यह

ज़ख्म इतना ख़राब हो जाता है कि मनुष्यकी मौत तक हो जाती है। दक्षिण अमेरिकाके ब्राज़िल देशमें चिगो बहुत पाये जाते हैं। वहांके निवासी इनसे बहुत डरते हैं। मोटे चमड़ेका जूता पहने बिना कोई भी व्यक्ति कभी बाहर नहीं जाता। प्रति दिन सोनेके पहले प्रत्येक व्यक्ति बच्चोंसे अपने पैरोंकी जांच करवा लेता है। बच्चोंसे पैरोंकी जांच करानेका हेतु यह है कि उनकी दृष्टि तीक्ष्ण होती है। जहां चिगो घुसकर बैठता है, वहां बारीक लाल दाग़ पड़ जाता है। चिगोका पता लगानेका यही एक साधन है।

प्राकृतिक और कृत्रिम नील

श्री फूलदेवसहाय वर्मा

नील संस्कृत शब्द है जिससे रङ्ग विशेषका बोध होता है। बहुत प्राचीन कालसे वस्त्रोंके रङ्गने और ओषधियोंमें इसका प्रयोग होता चला आया है। संस्कृतमें इसे "वणिक बन्धु" भी कहते हैं, जिससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन कालमें इसका व्यापार बहुत ज़ोर शोरसे होता था। पाश्चात्य देशों तक यहांका नील जाता था और चित्रों और कपड़ोंके रङ्गनेमें उसका व्यवहार होता था, यह बात निर्विवाद है। भारतवर्षमें कबसे इसका व्यवसाय शुरू हुआ इसका ठीक पता नहीं चलता, किन्तु प्राचीनप्रमाणित पुस्तकोंमें लिखी बातोंसे अनुमान किया जाता है कि ईस्वी सनके पहलेसे यह यहां उत्पन्न होते चला आता है। बहुत से पाश्चात्य देशोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें भी भारतवर्षके नीलका ज़िक्र पाया जाता है। १३वीं शताब्दीमें मार्कोपोलो (Marco Polo) नामक एक व्यक्ति ने इसका वर्णन किया है और इसके तैयार करनेकी विधि लिखी है। अङ्गरेज़ोंको, इसको स्वयं अपने यहां उत्पन्न करनेके पहले, सबसे अच्छा नील भारतवर्षसे मिलता था और 'बैआना नील'के नामसे विख्यात था। यह बैआना शाहजहानाबाद ज़िलेके एक ग्रामका नाम है, जहां इसकी खेती बहुत अच्छी और नील बहुत अच्छे प्रकारका होता था। १६वीं शताब्दीके अन्तमें इस नीलके पौधेका ज्ञान पाश्चात्य देशवासियोंको हुआ और तबसे इनकी खेती वहां होनी शुरू हुई।

नीलकी खेती हिन्दुस्तानके सिवाय आजकल अमेरिका प्रदेशमें भी होती है। हिन्दुस्तानमें बङ्गाल, बिहार और संयुक्तप्रान्तोंमें नील सबसे ज़्यादा पैदा होती है। मद्रासप्रान्तमें भी इसकी उपज अब अच्छी होती है। इन सब स्थानोंमें इसका व्यवसाय गोरे नीलहोंके हाथमें ही है। अभी तक बहुत कम हिन्दुस्तानी ऐसे हैं जिनकी दृष्टि इस व्यवसायकी ओर गई है। इसका कारण केवल देशवासियोंका अज्ञान और देशका दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। मेरा ऐसा दृढ विश्वास है कि यदि हम लोग इस व्यवसायकी ओर झुकें और इसमें लगें तो हम लोगों को बहुत कुछ सफलता हो सकती है, क्योंकि इस पौधेके उपजानेवाले हमारे देशी गँवार किसान भाई ही हैं। और इन गँवार किसानोंपर इन गोरे नीलहोंका कितना अत्याचार होता है, यह शिक्षित समाजसे छिपा नहीं है। इन अत्याचारोंके कारण ही बंगालमें इसकी खेती बहुत कम होगई और दिन बदिन कम होरही है। बिहार प्रान्तमें भी कुछ ऐसा ही लक्षण देख पड़ता है। यदि हम लोग इस व्यवसायको अपने हाथ न लेंगे तो बिलकुल सम्भव है कि कुछ ही दिनोंमें यह नीलका व्यवसाय हमारे हिन्दुस्तानसे जाता रहेगा और उसके पुनरुद्धार करनेके लिये वैसा ही कष्ट, परिश्रम और आन्दोलन करना पड़ेगा जैसा आज हाथके बने कपड़ोंके व्यवसायके लिये देशके दूरदर्शी नेताओं-को करना पड़ रहा है।

नील पौधेके बोनेके लिये वर्षा ऋतुके बाद आश्विन अथवा कार्तिक मासमें खेत जोत कर तैयार किया जाता है। अच्छी उपज होनेके लिये खेतोंको और सब प्रकारके घास पत्तोंसे साफ़

कराना बहुत ज़रूरी है। बिहारमें ऐसा देखा जाता है कि रबी फसल बोनेके लिये जो खेत किसान तैयार करते हैं उनमें सबसे अच्छे खेत नीलके लिये चुने जाते हैं। ज़मीन कुछ सीली हो तो इसके लिये अच्छा है। खेत फागुन अथवा चैत्र मासमें बोया जाता है। हलोंकी फारसे २ या ३ इञ्च गहरी एक एक फुटकी दूरीपर सारे खेतोंमें लकीर बनाई जाती हैं, जिनमें बीये रखकर मट्टीसे तोपदिये जाते हैं। सीले मौसिममें दोही तीन दिनोंमें अंकुर निकल आता है और प्रायः दो महीनेमें पौधे तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार जेठके अन्त अथवा अषाढ़के आरम्भ तक पौधे काटनेके योग्य हो जाते हैं। यदि फूलनेके समय तक उन्हें छोड़ दिया जाय तो वह बहुत पुष्ट और सख़ हो जाते हैं और उनसे कम परिमाणमें कम सुन्दर रङ्ग निकलता है। जब उनकी पत्तियां अधिक तुनुक होना शुरु होती हैं तब उनके काटनेका समय समझा जाता है। बाढ़ अथवा अधिक वर्षासे पौधे नष्ट हो जाते हैं। इससे हर साल उनको उपजानेकी आवश्यकता पड़ती है। यदि बाढ़ अथवा अति वर्षासे उनको बचाया जाय तो दो वर्ष तक वह काममें आ सकते हैं और हर डेढ़ महीनेपर उनकी डाल और पत्तियां छांटकर अलग की जा सकती है। यह पौधे २ से ३ फुट खड़े ऊंचे होते हैं। पत्तियां फटी हुई होती हैं, और हर पौधेमें प्रायः ५।६ जोड़े डालियां होती हैं और जैसे जैसे ऊपरको जाते हैं वैसे वैसे छोटी होती जाती हैं। पत्तियोंसे (racowe) छोटे होते हैं। उनमें बहुतसे छोटे छोटे कुछ हरे गुलाबी रङ्गकेसे फूल लगते हैं। फूलोंमें प्रायः ८-१० दाने बीये पाये जाते हैं। डाल और पत्तियोंसे रङ्ग निकाला जाता है।

डाल और पत्तियां पौधोंसे अलग करके बड़े बड़े टबोंमें रखी जाती और पानीमें डुबो दी जाती हैं। कुछ ही घंटोंमें पचना शुरू होता है। यदि गर्मीका मौसिम हो और पौधे परिपक्व हों तो ६ से ८ ही घन्टे इसके लिये काफी होते हैं, नहीं तो कभी कभी बीसों घंटे लग जाते हैं। पचना शुरु होनेपर फेन निकलने लगता है। पानी कुछ गरम होजाता है और धीरे धीरे गाढ़ा भी होना शुरू होता है। अंगारक* गैस उससे निकलती है और रङ्ग कुछ पीला हो जाता है। वह पीला पानी उस टबसे पेंदेकी नली द्वारा दूसरे टबमें ढाल लिया जाता है, जहां बहुत तेज़ी और ज़ोरसे चौड़े बने हुये लकड़ीके बकट (buckets) से हाथ अथवा यन्त्र द्वारा पीटा जाता है। इस क्रियाका मतलब केवल "श्वेत नील" को वायुमण्डलके वायुकी सहायतासे ओषिदीकरण (oxidised) द्वारा असली नील रंगमें परिवर्तन करना है। इस प्रकार नील पानीसे अलग हो पहले फेनके रूपमें ऊपर इकट्ठा होता और अन्तमें पेंदेमें बैठ जाता है। ऊपरका नील रहित पानी तब अलगकर लिया जाता है और नीचे बैठी हुई नील पानीमें कई घन्टों तक उबाल कर दबायी जाती और ठोस बना कर सुखायी जाती है। बिलकुल सूख जानेके पहिले ही यह घनों (cubes) में काट दी जाती और पूर्णरूपसे सुखाकर कागज़के डिब्बोंमें भर कर चालान करदी जाती है।

हिन्दुस्तानकी नील इतनी अच्छी और सस्ती होती है कि यूरोपका रङ्ग इसके सामने टिक नहीं सकता था। कुछ वर्ष पहले सारे जगतका नील बाज़ार हिन्दुस्तानके नील बाज़ारसे शासित एवं रक्षित था, किन्तु ऐसी अवस्था बहुत काल तक नहीं रह सकी। विज्ञान और विशेष कर रसायनके प्रचार और अध्ययनसे कृत्रिम नील तैयार करनेकी चेष्टा होने लगी। १८वीं शताब्दीमें कृत्रिम नील तैयार करके प्रकृतिपर विजय पानेकी चेष्टा करना रासायनिकोंके लिये एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना थी। विषय बहुत गहन था। इसके हल करनेके लिये धैर्य्य, उत्साह, दिमाग और धनकी ज़रूरत थी। रासायनिक द्रव्योंके बनाने और व्यवसाय करनेवाले जर्मन धन लिये तैयार थे। वह चतुर

* कर्बन द्विओषिद गैस।

व्यवसायी जानते थे कि इसकी सिद्धि हो जानेसे लागतसे अधिक धन उनको थोड़े ही समयमें मिल जायगा। उस समय जर्मनीमें पहले दर्जेके रासायनाचार्य्य भी मौजूद थे। इस सुअवसरको वह हाथसे छोड़ना नहीं चाहते थे। वह जानते थे कि कार्य कठिन है, सफलता बिलकुल सम्भव नहीं, पग पग पर अड़चनें मौजूद हैं; तो भी उन्होंने अपने बहुमूल्य समय और ईश्वरदत्त मस्तिष्क बलको लगाना अनुचित नहीं समझा। यह चेष्टा १८८० ई० में शुरू हुई और प्रायः १७ वर्ष तक लगातार जारी रही। इस बीचमें इसमें डेढ़ करोड़ रुपये लगे। कार्य प्रारम्भ होनेपर कृत्रिम रूपसे तैयार करनेमें सफलता प्राप्त होनेमें बहुत समय नहीं लगा, किन्तु इसके तैयार करनेमें जिन सामग्रियोंका व्यवहार हुआ वह काफी परिमाणमें नहीं पाई जाती थीं और उनका मूल्य भी इतना अधिक था कि उनसे बना हुआ नील प्राकृतिक नीलसे मूल्यमें तुलना नहीं कर सकता था। इस युद्धमें भाग लेनेवाले सैनिकोंमें मुख्य अडोल्फ-भान-बायर (Adolf von Baeyer) एक जर्मन रसायनाचार्य्य थे। इन कठिनाइयोंसे वह हटे नहीं। अन्तमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई और प्राकृतिक नीलकी अपेक्षा सस्ता कृत्रिम नील तैयार करनेमें कृतकार्य्य हुये। इसके बाद थोड़े ही समयमें यूरोपका बाजार कृत्रिम नीलसे भर गया और हिन्दुस्तानके नीलकी खपत उन देशोंमें कम होगयी। १८९६ ई० में सवा पांच करोड़ रुपयेकी नील हिन्दुस्तानसे बाहर गयी थी किन्तु १९१३ ई० में केवल ६० लाखकी ही नील बाहर गयी और उसी साल जर्मनीसे प्रायः ३ करोड़का कृत्रिम नील जर्मनीसे बाहर भेजा गया था। इन अङ्कोंसे यह स्पष्ट है कि जर्मनीने इस कृत्रिम नीलके व्यवसायकी थोड़े ही दिनोंमें बहुत अधिक उन्नति की।

भिन्न भिन्न विधियोंसे तैयार करनेमें भिन्नभिन्न द्रव्योंकी आवश्यकता पड़ती है, जिनमें गन्धकाम्ल, अमोनिया हरिन और सिरकाम्ल (Acetic Acid) मुख्य हैं। व्यापारिक दृष्टिसे वही विधि सर्वोत्कृष्ट समझी जायगी जिसके प्रयोगमें सुगमता हो और सस्ती वस्तुओंकी खपत हो। ऐसी विधिसे कृत्रिम नील तैयार करनेमें सबसे आवश्यक वस्तु नैपथलीन (Naphthalene) है। यह नैपथलीन कर्बन और उज्जनका एक यौगिक है। कोयलेको हवासे शून्य बर्तनोंमें तप्त करनेपर जो अलकतरा सरीखा तार बनता है उसीसे यह निकाला जाता है। नैपथलीनकी उजली गोलियां बाज़ारमें बहुत मिलती हैं और पुस्तक वस्त्रादि पदार्थोंको कीड़ोंके आक्रमणसे बचानेके लिये इस्तेमाल होती हैं। कृत्रिम नीलके तैयार करनेकी यह पहली सीढ़ी इस नैपथलीनको थैलिकाम्लमें परिवर्तन करना है। साधारणतः इस प्रकारका परिवर्तन नैपथलीनको गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे हो जाता है, किन्तु जब बड़े परिमाणमें प्रयोग किया गया तब मालूम हुआ कि यह परिवर्तन उतना शीघ्र नहीं होता। अतएव इसके सम्पादनमें जो व्यय होता है वह कृत्रिम नीलके व्यवसायको ध्वंस करनेके लिये काफी नहीं था। दैवात् एक आश्चर्यजनक आकस्मिक घटना हुई। तापमापक यन्त्रके अकस्मात् टूट जानेसे जिस बर्तनमें यह परिवर्तन क्रिया हो रही थी उसमें यन्त्रका पारा गिर पड़ा। इस पारेकी उपस्थितिसे परिवर्तन क्रियाका वेग बहुत बढ़ गया और इससे यह पूरी आशा होने लगी कि इस विधिसे कृत्रिम नीलका व्यवसाय अवश्य ही फलीभूत होगा।

आधुनिक विधि इस कृत्रिम नीलके तैयार करनेकी यह है कि पारेके स्पर्श और धुआं देनेवाले गन्धकाम्लकी सहायतासे नैपथलीन थैलिकाम्लमें परिवर्तित होती है। गरम करनेसे एक अणु जलका इससे निकल जाता है और यह "जल विहीन थैलिक" बन जाता है। इस जल शून्य थैलिकको अमोनियाके साथ गरम करने से "थैलपमाइड" नामक एक पदार्थ बनता है जो ब्रोमीन और पोटाशकी सहायतासे अन्थ्रानिलिकाम्लमें परि-

वर्तन हो जाता है; यह नया बना हुआ पदार्थ जब (chloracetic acid) हरिन-सिरकाम्लके साथ गरमकर पीछे पोटासके साथ पिघलाया जाता है (fuse) तब कृत्रिमनील तैयार होती है।

कृत्रिम नील तैयार करके प्राकृतिक नीलकी अपेक्षा सस्ती बेचनेमें सफल होना केवल थैलिकाम्लके तैयार करने पर ही निर्भर नहीं है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है इसके तैयार करनेमें और भी रासायनिक द्रव्योंकी आवश्यकता पड़ती है, जिनमें गन्धकाम्ल, हरिण, अमोनिया और सिरकाम्ल (Acetic acid) मुख्य हैं। आधुनिक सभ्यता और औद्योगिक उत्थानकी सामग्रियोंमें गन्धकाम्ल का स्थान सर्वोपरि समझा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि किसी देश वा जाति की औद्योगिक अवस्था का अन्दाज़ा जितना गंधकाम्ल उसमें बनता हो उससे लगाना चाहिये और यह बात ठीक भी मालूम होती है। न केवल पुरानी रीतिसे सोडा और नमकके तेजाबके तैयार करनेमें ही इसका प्रयोग होता है, वरन् शोरेके तेज़ाब अर्थात् नत्रिकाम्ल (Nitric acid) और विस्फोटक पदार्थोंके तैयार करनेमें, अनेक प्रकारके कृत्रिम रङ्गोंके बनानेमें, कृत्रिम खाद्योंमें, एवं अन्यान्य अनेक प्रकारके रासायनिक पदार्थोंके तैयार करनेमें इसका प्रयोग अनिवार्य्य है। साबुन और रुईके धन्धोंमें सोडा और विरञ्जक चूर्ण की अधिक परिमाणमें जरूरत पड़ती है, पर इनके बनानेमें भी गन्धकाम्ल का प्रयोग होता है। इस अत्युपयोगी वस्तुका प्रयोग जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे वैसे नई और सस्ती विधिसे इसे तैयार करनेकी चेष्टा वैज्ञानिक करते रहे। यदि गन्धक द्विओषिद किसी भांति ओषजनके साथ मिलजाय तो गन्धक त्रिओषिद बन सकता है, जो पानीमें घुलकर गन्धकाम्ल पैदा कर सकता है। कठिनता यहां केवल यही है कि गन्धक द्विओषिद ओषजनके साथ मिलकर साधारण तापक्रमपर त्रिओषिद नहीं बनाता। यदि ताप-परिमाण बढ़ाया जाय तब अवश्य ही त्रिओषिद बननेका वेग बढ़ जाता है; किन्तु साथ साथ अधिक ताप परिमाणसे त्रिओषिद पुनः द्विओषिद और ओषजनमें छिन्न भिन्न होने लगता है। लागतके विचारसे यह विधि कामकी नहीं। अतएव इस ओरसे निराश होकर रासायनिक दूसरी ओर झुके। एक ऐसी वस्तुकी खोजमें लगे जिसकी सहायतासे थोड़े तापक्रम बढ़ानेसे ही दोनों गैसोंका संयोग होजाय। इससे पहले वैज्ञानिकोंको यह विदित था कि रासायनिक क्रियाओंका वेग केवल एक नये पदार्थ की उपस्थिति से कभी कभी बहुत बढ़ जाता है। ऐसे पदार्थको पाश्चात्य रासायनिकोंने कैटेलाइज़र, कैटेलिस्ट, (catalyst; a catalysor; a catalytic agent) इत्यादि अनेक नाम दिये हैं। ऐसे पदार्थोंको उत्तेजक कहना अनुचित न होगा। गन्धक त्रिओषिद बनानेके कामका उत्तेजक भी शीघ्र ही मिल गया। वह था नत्रजनका एक ओषिद (oxide of nitrogen)। १७४६ ई० से इसका व्यवहार गन्धकाम्लके बनानेमें शुरू होगया। गन्धक अथवा लोहगन्धिदको जलानेसे गन्धक द्विओषिद बनाया जाता है। यह वायुमण्डल की वायु, नत्रजन एकौषिद और जलवाष्पके साथ सीसेके कमरोंमें भेजा जाता है। वहां ही गंधकत्रिओषिद बन जाता है और इस ओषिदके पानीमें गलनेसे गंधकाम्ल तैयार हो जाता है।

इस प्रकारका बना हुआ गन्धकाम्ल अशुद्ध और पतला रहता है। उसे गाढ़ा और शुद्ध करनेके लिये शोधन क्रियाकी आवश्यकता पड़ती है। कृत्रिम नीलके बनानेमें जिस गन्धकाम्लकी ज़रूरत पड़ती है उसे केवल गाढ़ा (concentrated) ही नहीं होना चाहिये, बल्कि उसमें गन्धक त्रिओषिद अधिक परिमाणमें घुला रहना चाहिये। ऐसा गन्धकाम्ल बहुत शक्तिशाली औषध (Reagent) है। यदि यह हवामें किसी खुले बर्तनमें रखा जाय तो धुआं निकलता रहता है, जिसके कारण उसे धुंआ देनेवाला गन्धकाम्ल कहते हैं।

बहुत दिनोंके बाद मालूम हुआ कि प्लाटि-नम* धातुकी सहायतासे साधारण तापक्रम-पर भी ओषजन उज्जनके साथ मिलकर पानी बना लेती है। सिरका बनानेवाले फिलिप नामक एक व्यक्ति ने १८३१ ई० में देखा कि प्लाटि-नमके प्रयोगसे गन्धक द्विओषिद बहुत सरलतासे ओषजनके साथ मिलकर त्रिओषिद बना लेता है। इससे लोगोंको आशा हुई कि कुछ थोड़ी बहुत गवेषणासे यह सम्भव है कि सीसेके बड़ेबड़े कमरों और नत्रिकाम्लसे छुटकारा मिल जाय। इस प्रकार इसके बनानेकी एक नई विधिका आविष्कार हुआ, जो आजकल "स्पर्शविधि"के नामसे विख्यात है। इस स्पर्शविधिमें केवल प्लाटिनमकी उपस्थिति अथवा स्पर्शसे गन्धकद्विओषिद और वायु-मण्डलके ओषजनके मिलनेसे त्रिओषिद बन जाता है। शुरूमें इस विधिकी सफलता बहुत निश्चित मालूम हुई, पर पीछे यह देखा गया कि प्लाटिनम-का उत्तेजक गुण धीरे धीरे घटने लगा और कुछ समयमें बिलकुल गायब होगया। थोड़े समयके लिये इस विधिके इतिहास गगनमें गाढ़ा बादल छागया और सब आशा दुराशा मात्र प्रतीत होने लगी। अन्वेषणसे विदित हुआ कि इस उत्तेजक गुणके लोप होजानेका कारण प्लाटिनमका "वि-षाक्त" हो जाना है। सुवर्णमक्षिका, जिसके जलानेसे गंधक द्विओषिद बनता था, उसमें संखिया रहता है। यही गैसके साथ जाकर प्लाटिनमको हानि पहुंचाता था। कठिन परिश्रमके बाद इसके दूर करनेके तरीके मालूम हुये और तब यह "स्पर्श विधि" सफलता पूर्वक काममें आने लगी। इस स्पर्श विधिसे गंधकाम्ल तैयार करनेके लिए बड़े बड़े आकारके डेढ़ डेढ़ लाख वर्ग फुट आयतनके सीसेके कमरोंके स्थानपर छोटे छोटे बर्तनोंका, जिनमें छोटी छोटी नलियां प्लाटिनम-विकीर्ण एसबेस्टस* से भरी हुई रहती है, व्यवहार होना शुरू हुआ। इन्हीं नलियोंमें होकर गन्धक द्विओषिद और ओषजन जाती है और केवल इस क्रियासे उत्पन्न हुए ताप द्वारा त्रिओषिदमें परिणत होकर कुहरे (mist) के रूपमें बाहर निकलती है। यह पहलेसे ही तैयार किये हुए गाढ़े (concentrated) गन्धकाम्लमें घुला लिया जाता है और इससे बहुत शक्तिशाली धुआं देनेवाला गन्धकाम्ल बनता है। इसीका कृत्रिम नीलके तैयार करनेमें प्रयोग होता है। प्लाटिनम एक बहु मूल्य धातु है और जैसे पहले कहा जाचुका है सोनेसे प्रायः तिगुना महँगा मिलता है। यद्यपि इस विधिमें यह खपता नहीं, बिगड़ता नहीं, तो भी पहले पहल इसके खरीदनेमें बहुत धन लग जाता है। इससे इत्यक औषध बनानेवाली कम्प-नियां इसका प्रयोग नहीं कर सकतीं। लोगोंकी तब दृष्टि दूसरे सस्ते उत्तेजक द्रव्योंकी ओर झुकी और ऐसा कहा जाता है कि आजकल कुछ ऐसे सस्ते धातु तथा यौगिक पाये गये हैं, जिनसे यह क्रिया उतनी ही शीघ्रता एवं पूर्णतासे सम्पादित होती है, जितनी प्लाटिनमसे। किन्तु ऐसे पदार्थों का अभी सर्व साधारणको ज्ञान नहीं है, क्योंकि उनके प्रयोग करने वाले व्यवसायकी दृष्टिसे उन्हें सर्वसाधारण को नहीं बतलाते।

दूसरी वस्तु जिसका इसके बनानेमें प्रयोग होता है हरिण है। इसके तैयार करनेकी विधिमें भी इन दिनों बहुत संशोधन हुआ है। पुरानी विधि नमकके तेजाबसे तैयार करनेकी थी। अब इस विधि में बहुत खर्च बैठता है। आजकल नमकके विद्युद् विश्लेषणसे आसानीसे और कम खर्चमें हरिन

*प्लाटिनम एक धातु है जो सोनेसे प्रायः तिगुनी महँगी और रूपमें चान्दीके सदृश होती है। इसके रासायनिक प्रयोग अनेक हैं, इसीसे यह इतनी मूल्यवान है।

*एसबेस्टस एक खनिज पदार्थ है जो अनेक स्थानोंमें पाया जाता है। हिन्दुस्तानमें भी मैसूर राज्यके अन्तर्गत यह पाया गया है और खानोंसे निकालकर व्यवहारमें लानेकी वहां चेष्टा हो रही है। इसका विशेष गुण यह है कि इस पर तापका प्रभाव नहीं होता।

तैयार करली जाती है। तीसरी वस्तु अमोनिया है। यह भी आजकल कोयलेसे गैस तैयार करनेमें गौण पदार्थके रूपमें काफी मिकदारमें तैयार होता है। पर नत्रजन और उज्जनके संयोगसे भी सरलतासे तैयार किया जा सकता है। इन दोनोंमेंसे किसी भी विधिसे तैयार किया हुआ अमोनिया काफी सस्ता मिल सकता है। चौथी वस्तु जिसका प्रयोग होता है वह सिरकाम्ल (acetic acid) है। करीब लाखों मन सिरकाम्ल हरसाल कृत्रिम नीलकी तैयारीमें लगता है। यह आजकल लकड़ियोंको वायु शून्य बर्तनोंमें गरम करनेसे जो अर्क निकलता है उसीसे बनाया जाता है।

इस प्रकार प्रायः १७ वर्षके लगातार परिश्रमसे कृत्रिम नील इतनी सस्ती तैयार होने लगी कि प्राकृतिक नील उसके सामने नहीं ठहर सकती थी। यद्यपि इस महत्वपूर्ण आविष्कारसे मनुष्यमात्र को लाभ हुआ, पर हिन्दुस्तानके नील व्यवसायियों-को इससे बहुत घाटा हुआ। और यह आशा की जाती थी कि कुछ ही दिनोंमें नीलका व्यवसाय हिन्दुस्तानसे बिल्कुल बन्द हो जायेगा। इस बीचमें गत युद्ध छिड़ गया। जर्मनीसे कृत्रिम नीलका आना बन्द हुआ। भारतकी नीलका फिर भाग जागा। जो नीलहे अभी तक नीलको पूर्णरूपसे छोड़ नहीं बैठे थे, वह लोग दूने उत्साहसे इसमें लगे और कुछ ही महीनोंमें उन लोगोंको इतना लाभ हुआ जितना स्वप्नमें भी आशा नहीं कर सकते थे। इसी बीचमें अंग्रेज़ सरकारका ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ। यह चेष्टा होने लगी कि बृटिश साम्राज्यके अन्दर जितनी वस्तुएं उत्पन्न होती हैं उनकी इस प्रकार तरक्की की जाय कि युद्धादि विशेष समयोंमें बृटिश साम्राज्यको किसी दूसरे देशका किसी पदार्थके लिये मुंह न ताकना पड़े। इस सिद्धान्तके अनुसार भारत सरकारने एक विशेषज्ञकी नियुक्ति की, जो आज कल पूसाकी कृषिप्रयोगशाला नीलकी खेतीको वैज्ञानिक रूपसे करके उसकी पैदावारको बढ़ानेकी चेष्टा कर रहे हैं। कहां तक वह इस कार्य्यमें सफल होंगे, यह समय ही बतलावेगा। भारतको सब प्रकारसे स्वावलंबी बनानेके लिये हर एक देशवासीको इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि वह यहांके उत्पन्न पदार्थोंकी पैदा वारको बढ़ावे और उसमें यथोचित शोध करे।

श्री० सम्पूर्णानन्द कृत भौतिक विज्ञान

(१)

(श्रीः रतनलाल एम॰ ए॰ कृत समालोचनाका उत्तर)

येऽसंसत्तु विवादिनः परयशः शूलेन शल्याकुलाः।
कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद्गुणाच्छादनम्॥
तेषां रोषकषायितोदरदृशां कोपोष्ण निःश्वासिनाम्।
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिना विद्या जनोद्वेजिनी॥

सितम्बरके विज्ञानमें मेरी 'भौतिक विज्ञान' नाम्नी पुस्तककी समालोचना निकली है. समालोचक हैं श्रीरतनलाल एम. ए. वस्तुतः उन्होंने बड़ा ही अच्छा काम किया है. इधर मैं कई वर्षोंसे ऐतिहासिक या राजनैतिक* पुस्तकें लिखता रहा हूँ अतः कदाचित् कुछ हिन्दी प्रेमी इस बातको भूल जायं तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है कि मैंने कभी कोई वैज्ञानिक पुस्तक भी लिखी है. यह समालोचना ऐसी विस्मृति न होने देगी. फिर, आजकल लोगों को राजनैतिक विषयोंसे इतना प्रेम है कि वैज्ञानिक पुस्तकें बहुत कम पढ़ी जाती हैं पर इस समालोचना को देखकर न जाने कितने मनुष्य कौतुहल-वशात् भौतिक विज्ञानको पढ़ेंगे. उनका उपकार ही होगा. यदि और कुछ नहीं तो विज्ञानके पाठकोंके लिये मनोरञ्जन तो अच्छा मिल गया. 'दिल्लगी भण्डार' न पढ़ा इस समालोचनाको पढ़ लिया.

* कि राजनीतिक

जीमें तो आया कि उत्तर न दूँ. किसी विद्वानका कहना है 'जवाबे जाहिलाँ बाशद खमोशी' परन्तु फिर सोचा कि ऐसा करनेसे उनका और उनके चारणोंका उत्साह और भी बढ़ जायगा. फिर, उत्तर न देना ऐसे भयङ्कर विद्वानका अपमान करना है. जिसको उनकी भयङ्कर विद्वत्तामें सन्देह हो, वह उनके लेखको पढ़ देखे. उन्होंने अकेले विज्ञानकी ही, एकाध नहीं, कमसे कम दो हजार पुस्तकें पढ़ी हैं. (क्या ही अच्छा होता यदि वह अपना पुस्तकालय काशी विश्वविद्यालयको दे डालते). इतना ही नहीं, वह हिन्दीके भी पण्डित हैं, हिन्दी शब्द सागर तकमें ग़ोते मारे हैं. यदि इस पर भी सन्देह रह गया हो तो उनकी रचनाशैली देखिये कैसे मधुर शब्दोंका प्रयोग किया है। कैसी फ़साहतके साथ दूसरोंको मूर्ख और अफीमची बताते हैं. महाराज, जिन विजया देवीके प्रसादसे आप इतना लिख गये वह भी आपके हथकंडोंसे घबरा उठीं. किसी फ़ारसी कविका यह कहना बिलकुल सच है

बल्कि मैं मीशवद अज़ सुहबते नादाँ बदनाम।

पर आप चिन्ता न करें, हम सरस्वतीके उपासक ऐसी बातोंके लिये सदा तैयार रहते हैं। कोई हमारा मान द्वारा आदर करता है, कोई धन द्वारा, कोई उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता है तो कोई अपनी एकमात्र पूंजी गाली ही भेंट करता है. हम सबसे 'स्वस्ति' ही करते हैं. मेरे सन्तोषका एक और कारण है. बाबू श्यामसुन्दरदासको* भी खूब ही खरी खोटी सुनाई गयी हैं, जब हिन्दीके गण्यमान्य विद्वान् और सम्मेलनके सभापति भी हिन्दी नहीं जानते (सागर-निष्णात् न होंगे, क्यों?) तो हम जैसोंकी क्या गिनती है?

'शेषं कोपेन पूरयेत्' तो कोई आपसे सीख जाय. इसी आवेशमें आकर आपने काशी नागरी प्रचारिणी सभाको दो नेक सलाहें दी हैं, एक तो यह कि वह विशेषज्ञोंसे पुस्तकें लिखवाया करे (और सम्पादन? इधर आपने—स्यात् ध्यान नहीं दिया*)। ठीक है, यदि जगदीशचन्द्र बोस, पी० सी० राय, रमण, गणेशप्रसाद आदि न भी राज़ी हों तो भगवान् बनाये रखे, क्या देशमें बहुश्रुत (या बहुपठित) एम० ए०, नहीं रहे? दूसरी नेक सलाह यह है कि भौतिक विज्ञानकी बची हुई प्रतियां जला दी जायं. यदि आप चीफ़सेक्रेटरी टु दी गवर्न्मेंटको† लिखकर यह हुक्म निकलवा देते कि जहां जहां भौतिक विज्ञानकी कोई प्रति मिले वहां ज़ब्त कर ली जाय तो बड़ा अच्छा होता। लोग मिथ्याज्ञानसे बच जाते।

उपकारीके साथ उपकार न करना पाप है। इस लिये मैं भी उन्हें दो एक परामर्श देना चाहता हूं. मेहरबान, समालोचना करना सीखो. समालोचना और छिद्रान्वेषणमें आकाश पातालका अंतर है. पुस्तक या लेखमें भूल रह जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, पर भूलें कई प्रकार की होती हैं। कोई केवल छापे की भूल होती है, कोई लिखनेकी जल्दीमें लेखकसे ही हो जाती है, पर कोई भूल लेखकके अज्ञानके कारण होती है, समालोचकको इन तीनोंकी पहिचान होनी चाहिये। प्रथम दोनों प्रकारकी भूलोंका कोई बड़ा महत्त्व नहीं है; द्वितीय आवृत्तिमें दूर हो सकती हैं: समझदार पाठक ऐसी ग़लतियोंसे कभी धोखा नहीं खाते। पर तीसरे प्रकारकी भूलें निःसन्देह बुरी हैं, बुरी ही नहीं, साधारणतया अक्षन्तव्य हैं†। योग्य समालोचक इनकी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, पर जिससे ज़बरदस्ती समालोचना करायी जाती है, वह क्या करे, उसे तो पेज रंगनेसे मतलब है. क्या आपसे आपके ही शब्दोंमें यों कहूं कि आपकी लेखनीका प्रवाह रुकता तो समझ साथ देती और ग़लतब-

* आपकी विद्वत्ताके विषयमें तो किसीको सन्देह नहीं है। समालोचकने विद्वत्ता पर आक्षेप नहीं किया।

* इस विषयमें भी वही परामर्श दिया है।

† निस्सन्देह। इसीलिए समालोचना छापी गयी थी।

यानी न होती ? मिसाल देकर समझाऊं ? आपके अनुसार 'भौतिक विज्ञानके पृ०१०० में यह वाक्य आता है "प्रायः साधारण अनुभवमें वायु और किसी अन्य पदार्थमें वर्तन होती है. ऐसी दशामें यदि दूसरी वस्तु चौकोर हो तो उससे निकलनेके उपरान्त प्रकाशकी किरण अपनी पूर्व दिशामें समान वर्तन हो जाती है". आपने इसकी हँसी उड़ाई है; शौक़से हँसिये, पर यदि कोई कहे कि आप सरासर झूठ बोल रहे हैं क्योंकि भौतिक विज्ञानके १०० वें पृष्ठ ऐसा कोई वाक्य नहीं है, तो उस समय आप क्या मुंह दिखलाएंगे? भौतिक विज्ञान की जिस प्रतिका आप स्वाध्याय करते हों, उसके सवें पृष्ठको गौरसे पढ़ जाइये और फिर, मेरा कहना मान कर, किसीसे समालोचना करना सीखिये. विना गुरुके विद्या नहीं आती.*

भाई जान, उर्दूकी भांति, 'आती है हिन्दी ज़ुबां आते २,' अल्हे† ज़बानकी कुछ दिनों सुहबत कीजिये, तब हिन्दी आयेगी, केवल शब्दसागरकी पोथी कहां तक मदद करेगी ? जब आप हिन्दी ही नहीं जानते तो आपसे 'अस्पृष्ट' और 'सम्पूर्णतया' के विषयमें बहस करना फ़जूल है‡। पहिले बिच्छूका मंत्र सीख लो, तब सांपकी बिल में हाथ डालो। हरिश्रृङ्गारका फूल देखा है ? आइये, आपको चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद कृत शब्दार्थ पारिजात दिखलाऊँ. उसके प्रथम संस्करणकी किसी-प्रतिको उठाकर ३३८ वां पृष्ठ देखिये उसमें लिखा है.

तोल दे० (स्त्री०) तौल, जोख, नाप, परिमाण फिर २४ पंक्ति नीचे चलकर लिखा है.

तौल तत् (पु०) तुला, परिमाण क्रिया, तोलने की रीति, मापनदण्ड, जोख, तोल,

लगे हाथों, ६६३ वां पृष्ठ भी देख डालिये उसमें लिखा है:—सिमिटना-दे० (क्रि०) सिकुड़ना, बटुरना, संकुचित होना.

कहिये, क्या समझे ? अबभी आप वही सुर अलापते जायंगे। कि मैंने 'तौल (पु०)' और 'सिमिटना' का असाधु प्रयोग किया है ? आप फ़रमाते हैं कि conservation of matter के लिये 'द्रव्यस्थिति सिद्धान्त' नहीं कहना चाहिये, मत कहिये, मैंने आप से कब आग्रह किया ? मैंने तो The principle of conservation of matter का अनुवाद 'द्रव्यस्थिति सिद्धान्त' किया है matter का अर्थ द्रव्य है और principle का, सिद्धान्त. काशी नागरी प्रचारिणी सभाके वैज्ञानिक कोषके २०८ वें पृष्ठपर लिखा है: conservation of energy = शक्तिस्थिति। इसीके अनुसार conservation of matter का अर्थ हुआ द्रव्यस्थिति (द्रव्यस्थिति सिद्धान्त नहीं) यही अर्थ पुस्तकके अन्तमें दिये हुए कोषके प्रथम पृष्ठपर दिया हुआ है। अपने मनसे बात गढ़कर उसे दूसरेके सिर मढ़ना और फिर उसका खण्डन करके अपनी पीठ ठोंकना आपको ही शोभा देता है मुबारक हो।

आपकी रायमें 'galvanometer' को 'धारामापक' कहना चाहिये, विद्युच्छक्तिमापक नहीं आपकी राय बहुत अच्छी है, पर आपका दिमाग़ क्या है, काजलकी कोठरी है: अच्छी बातोंको भी भ्रष्ट कर देता है आपकी समझमें मैंने 'विद्युच्छक्तिमापक' शब्द इसलिये गढ़ा है कि मैं लोगोंको यह दिखलाना चाहता हूं कि मुझे संस्कृतके संधिनियम ज्ञात हैं. शाबाश जीते रहो. यह न कहिये, आप संस्कृतमें भी खलल (क्षमा कीजियेगा दख़ल) रखते हैं. अब ज़रा, सभाके वैज्ञानिक कोषका, २१८वां पृष्ठ तो पढ़िये. देखिये, उसमें galvanometer को विद्युच्छक्तिमापक लिखा है या नहीं ? सच कहना, क्या देखा ? यदि लिखा है, तो संस्कृतज्ञता दिखलानेका रोग मुझे नहीं वरन् बाबू अभयचरण

* शोक है कि लेखकने यह आवेगमें मान लिया कि समालोचकने अपनी तरफसे वाक्य जोड़ दिया है। ऐसी असभ्य बातें नहीं कहनी चाहिएँ। यह वाक्य पृ० १०४ पर है।

† "अल्हे" कि "अहले"।

‡ समालोचकने जो इन शब्दोंके प्रयोगमें आपत्ति उठाई थी उसका आपने समाधान नहीं किया।

सान्याल एम. ए. एफ़. सी-एस, बाः भगवानदास एम. ए., महामहोपाध्याय पंः सुधाकर द्विवेदी आदिको होगया था. यह आप ही जानें कि यह लोग केवल ढोंग ही कर रहे थे या कुछ संस्कृत जानते भी थे.

मैंने लिखा है कि सोडावाटरके बोतलके खुलने पर उसमेंसे एक प्रकारका 'वाष्प' निकलता है। आप कहते हैं कि कर्बन द्विओषिद् गैस निकलतीहै। निकले, यह किस मसखरे ने कहा कि नहीं निकलती ? पर क्या यह गैस वाष्प नहीं है, पुस्तक के ७ वें पृष्ठको देखिये उस में (gas) के लिये 'वाष्प' पारिभाषिक शब्द मान लिया गया है*। पूर्वापर देखकर तब कलम उठाया कीजिये. यदि 'वाष्प' और 'वायु' का एक ही अर्थ है तब भी इस परिभाषासे किसी प्रकारका भ्रम नहीं पड़ सकता क्योंकि 'वाष्प' साधारण बोलचालमें प्रचलित नहीं है सारे अमरकोषमें 'वाष्प' का पता नहीं है, जी चाहे ढूढ़ डालिये। आपने स्वयं लिखा है कि आपको वायु और वाष्पका भेद मालूम नहीं और तो क्या कहूं वासुदेव गोविन्द आपटेकी English—Sanskrit Dictionary† खरीद लीजिये उसके १० वें पृष्ठमें लिखा हैः—

Air *n* आकाशः, वायुः, तालः, रूप, रीतिः

और १४४ वें पृष्ठमें लिखा है।

Gas *n* वाष्पः, वायुः, धूमः

अर्थात्—Gas के अर्थमें वाष्प और वायु दोनों आ सकते हैं पर Air के अर्थमें केवल वायु, वाष्प नहीं इससे सिद्ध है कि वायुकी अपेक्षा वाष्पका अर्थ व्यापक है. यही बात परिभाषासे निकलती है. ‡

* आपका मान लेना भर तो काफी नहीं है।

† आप यदि वामन सदाशिव आप्टेका कोष देखते तो अच्छा होता।

‡ लौकिकदां आपकी इस दलीलको गौरसे पढ़ें।

कहां तक लिखूँ. पर इसमें आपका विशेष दोष नहीं. हमारे विश्वविद्यालयोंका ढङ्ग ही ऐसा बुरा है. यदि कालेज क्लासोंमें हिन्दी अनिवार्य्य होती तो आप ऐसे विज्ञ पुरुषसे ऐसी गलतियां न होतीं. रही आपकी बदजुबानी सो वह तो स्वाभाविक दुर्गुण है. फिर कहीं ठिकानेकी नैतिक शिक्षा भी तो नहीं दी जाती. खैर, जो हुआ सो हुआ। अब अनाप शनाप लिखना छोड़ दीजिये; दूसरेकी आंखसे mote निकालनेके पहिले अपनी आंखसे Beam निकालनेकी फिक्र कीजिये।

आँकस कि नदानद व बिदानद कि बिदानद
दर जिल्हे मुरक्कब अबदुद्दहू बिमानद

(जो अज्ञ होकर भी अपनेको विज्ञ समझता है वह सदैव अज्ञ बना रहेगा). आपने कई स्थानोंपर मेरी हिन्दीकी इस्लाह की है. अच्छा है. अभ्यास करते रहो, यों ही हिन्दी लिखना सीख जावगे। मुझे सर्वनामोंका ज्ञान हो या न हो, किसी निरे नौसिखुएके* आक्षेपोंका उत्तर देना मेरी शानके† खिलाफ है. हिन्दी जगत् जो मेरी पुस्तकोंका समादर करता है और मेरे प्रयत्नोंको प्रोत्साहित करता है जानता है कि मैं हिन्दी लिख सकता हूं या नहीं.

अस्तु, अब आपके वैज्ञानिक ज्ञानकी बानगी भी लीजिये; स्वयं पता चल जायगा कि आपने 'भौतिक विज्ञान' को कहां तक दिल लगाकर पढ़ा है, जो पढ़ा है उसे कहां तक समझा है, जो समझा है उसे कहां तक न्याय पूर्वक लिखा है. एक शिकायत और करनी है. रतनलालजी पढ़ तो गये दो हज़ार पुस्तकें पर उनको वैज्ञानिक System या नियम बद्ध काम करना न आया. कभी तो प्रकाश का विषय उठाते हैं, कभी विद्युत का और कभी फिर प्रकाश की ओर दौड़ पड़ते हैं इस से

* यह लिखना अत्यन्त अनुचित है। इससे प्रकट होता है कि लेखकको बड़ा अभिमान है। विद्वानोंको नम्रता शोभा देती है।

† निस्सन्देह सरस्वतीके उपासक ऐसे ही होते हैं।

उनकी तो उनकी विज्ञान विचारे की नाम हँसाई होती है।*

आप कहते हैं कि परमाणुओं†को टुकड़े नहीं कहना चाहिये. क्यों? फिर समझायं कैसे? Newth अपनी Inorganic Chemistry में लिखते हैं?

"Matter is regarded by the chemists and the physicists as being composed of aggregations of minute *particles*.........To these particles the name molecules has been given." पुनः

"These *particles* of which molecules are composed are termed atoms." यदि यह वाक्य ठीक है तो अणुओं और परमाणुओंको टुकड़ा कहनेमें क्या आपत्ति है? फिर आप कहते हैं कि वाष्पीय, तरल, ठोस, आदिको द्रव्योंका रूप न कह कर अवस्था कहना, चाहिये. रूप इस लिये कहा गया कि साधारण पाठक समझ जांय पर अवस्था का शब्द कुछ आपकी उपज नहीं है. मूल पुस्तकमें ही आचुका है। जैसे (पृः ८) "चौथी अवस्था या चौथा रूप वह है जिसे 'लिकविड'‡ कहते हैं इसे भाषामें......"

आपकी रायमें ठोस अवस्था और कणोंकी संख्यामें कोई सम्बन्ध नहीं है। ज़रा Elementary Course of Physics by Aldous पढ़ जाइये उसमें वाष्पीयसे तरल औ रठोस होनेमें जो जो तब्दीलियां होती हैं वह वर्णित हैं जैसे "Let the volume be decreased, the temperature remaining the same; the number of molecules in unit volume is increased. So the molecules of gas having been brought nearer to one another by compression become involved with one another.......A mass of molecules so engaged is in the liquid state of matter......As the temperature is reduced, a point will be reached when the molecule has not sufficient energy to continue in its orbit...... The molecules adhere to one another" इत्यादि* यह मैंने कभी नहीं कहा कि gravitationका relative density से कोई सम्बन्ध है, यह आपकी गढ़न्त† है. पृथ्वीके ठोसपनकी बात केवल समझानेके लिये कही गयी थी। तात्पर्य्य यह था कि इतने द्रव्यमान की और वस्तु पासमें नहीं है। 'गुरुत्व' का द्रव्यमान और दूरी पर निर्भर होना पृः १६ पर स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ है।

प्रकाशके अध्यायमें ब्लाककी कुछ ग़लतियोंने आपकी बड़ी सहायता की है. यह एक बच्चा भी समझ सकता है‡ पृः १६ के ऊपरी भाग तक जितने चित्र हैं सबमें प्रकाशकी किरणें सीधी खिंची हैं, पृः १११ के पीछे भी बराबर किरणें सीधी ही खिंची हैं; इतना ही नहीं, १११ पर तीन चित्र हैं, जिनमेंसे केवल एकमें किरणें सीधी नहीं प्रत्युत तरंगाकार बन गयी हैं अतः एक सुबोध बालक भी समझ सकता है कि चार ब्लाकोंमें उनकी दिशा कुछ विकृत हो गयी है, तो यह ग्रन्थकारका दोष नहीं हो सकता. इस ब्लाकके दोषसे भी मूल विषयके समझनेमें रत्ती भर आपत्ति नहीं पड़ती।

पृः १११ पर जो चित्र बना हुआ है उसकी आपने खूब हंसी उड़ाई है, पर आपका दिल जानता होगा कि आपके लच्छेदार शब्दोंमें ज़रा भी सार नहीं है, दीप्तवस्तुके सिरेसे निकली हुई दो रेखाएं दिखलायी गयी हैं, एक axis के

* यह लिखना भी निरर्थक है।

† बात उल्टी है, सब टुकड़ोंको परमाणु नहीं कहना चाहिये।

‡ यहां पर ग्रन्थकारने "लिकविद" क्यों लिखा है?

* समालोचकने यह नहीं कहा। केवल यह बतलाया है कि पाठकोंको इन शब्दोंसे भ्रम हो सकता है।

† इसका हाल समालोचनामें दिया है।

‡ फिर क्या यह समझें कि सम्पूर्णानन्दजीमें बच्चोंसे भी कम योग्यता है कि उन्होंने ग़लत चित्र या ब्लाक बनवाये।

समानान्तर है वह तालमेंसे होकर नाभिकी ओर मुड़ गयी है, दूसरी नाभिमेंसे होती हुई गयी है, यह तालसे निकल कर axis के समानान्तर हो जाती है, जहां यह दोनों कटती हैं, वहीं दीप्तवस्तु के सिरेका प्रतिबिम्ब बनता है, इसी प्रकार उसके निचले भागका भी प्रतिबिम्ब बना है। इसी लिये प्रतिबिंब ठीक बना है, ब्लाकमें ग़लती यह हुई है कि जो रेखा सिरेसे चल कर नाभिको ओर जा रही है वह नीचेसे चली हुई समानान्तर जाने वाली रेखाका विस्तार सी प्रतीत होती हैं. इसी प्रकार नीचेसे चलकर नाभिकी ओर जाने वाली रेखा ऊपर से चली हुई समानान्तर रेखाका विस्तार सी प्रतीत होती है, एक एम० ए० इतना भी न समझे यह आश्चर्य्य है।*

आप फ़र्माते हैं कि मृगतृष्णाका चित्र ग़लत है. गुस्ताख़ी माफ़, यह पढ़कर 'तो भारस्य वेत्ता-नतु चन्दनस्य' की याद आती है. आखिर उन दो हजार पुस्तकोंमें क्या लिखा था? ख़ैर, यदि आप के पड़ोसमें कोई मैट्रिकका विद्यार्थी हो तो उससे कहिये यह विषय समझादे. Wright's Physics में ठीक यही चित्र दिया हुआ है।†

आपने ८५ वें पृष्ठ पर प्रकाशकी गति नापनेका प्रयोग दिया गया है उसकी भाषाको वाक्‌जाल बत-लाया है. उसका कमाल यही है कि जो मनुष्य उसको आद्योपान्त पढ़ जाता है उसकी समझमें आजाती है. पर आपने एक चाल खेली है प्रस्तुत विषय ८२ वें पृष्ठकी अन्तिम पंक्तिसे आरम्भ हुआ है और २६ वें पृष्ठके मध्यमें समाप्त हुआ है। हमारे समालोचक देवताने इन २॥ पेजोंमें से दो वाक्य ले लिये न उनके पहिलेके वाक्य दिये न पीछेके और लगे ताली पीट २ कर हंसने. यों तो आपके लेखमेंसे भी बड़ी २ बारीकियां पैदाकी जा सकती हैं ठीक है, एक बार पृः १०० के विषयमें आप स्थूल झूठ बोल चुके हैं अब पृः ८५ में विषयमें सूक्ष्म झूठ सही.*

क्या अब भी इस बातकी आवश्यकता है कि आपकी बातोंका उत्तर दिया जाय? यहतो निश्चय है कि आपकी अक़्ल ठिकाने नहीं आ सकती. None so blind as those who will not see. जो २ कर-श्मे आपने प्रकाशके विषयमें दिखलाये हैं वही विद्युत्‌के विषयमें विद्यमान् हैं. उदाहरणार्थ, आपने १५ वें अध्यायमें दिये हुए तारके वर्णनको ग़लत और गलीज मस्विदा बतलाया है. इसके उत्तरमें मैं यही कह सकता हूं कि आपकी समालोचना महज़ ग़लत और ग़लीज़ है. या तो आप का वैज्ञानिक ज्ञान भी ओछा है, या हिन्दी आपकी समझमें नहीं आती या आप जान बूझकर कुछका कुछ लिख रहे हैं. उस अध्यायमें 'needle telegraph' का सरल नियम समझाया गया है साथही morse telegraph' की तरफ़ भी कुछ इशारा कर दिया गया है. एक प्रारम्भिक पुस्तकके लिये इतना पर्य्याप्त है.

यदि आप फ़िलासेफ़र बनाना नहीं जानते या इतना नहीं समझते कि आर्कलैम्पके मूल सिद्धा-न्तको समझाने के लिये न तो सारी मशीनरी दिख-लानेकी आवश्यकता है न दानों कार्बनोंको ऊपर नीचे रखनेकी ही ज़रूरत है, तो मैं मजबूर हूं†। इतनी सलाह अलबत्तः दूंगा कि अभी समय है, किसी कालेजमें भरती हो जाइये।

इससे अधिक लिखना व्यर्थ है विज्ञानके पाठ-कोंका समय नष्ट करना है। इस प्रकारकी समा-लोचना लिखना (अर्थात् ऐसी असभ्य भाषाका प्रयोग करना) जैसा कि रतनलालजी ने किया है

---

* यदि एम. ए. न समझते तो ग़लती कैसे बतलाते? समानान्तर रेखाएँ सीधी कैसे जाती हैं?

† ठीक है आपके विषयमें यही कहावत चरितार्थ होती है। जो प्रतिफलनका कोण है वह बहुत छोटा है, इस कारण पूर्ण प्रतिफलन नहीं होगा।

* पाठक स्वयं पढ़कर देखलें।

† तो आपने क्यों और किस बातका चित्र दिया है?

विद्वानोंको शोभा नहीं देता। ऐसी समालोचनाओंका उत्तर देना भी समझदारोंकी शानके खिलाफ है. इस विषयमें इससे अधिक लिखकर मैं न तो इस झगड़ेको विस्तार देना चाहता हूं न अपने समय का खून करना चाहता हूं. यदि रतनलालजी इस बातका विज्ञापन देना चाहते थे कि वह भी हिन्दीके सुलेखक और विज्ञानके परिडत हैं, तो मेरी समझमें उनकी अभिलाषा अब पूर्ण हो गयी होगी मेरे पास इतना अवकाश नहीं है कि उनका उत्तर दे देकर सम्मान बढ़ाता फिरूँ।*

(२)

[श्री० रतनलालजीका उत्तर]

सम्पादक महोदयकी कृपासे मुझे श्री० सम्पूर्णानन्दजीके उत्तरके देखनेका अवसर मिला। यद्यपि मैं एम० ए० पास हूं और वह भी किसी भारतकी सड़ी हुई यूनीवर्सिटीका नहीं बल्कि केम्ब्रिज विश्वविद्यालयका—मैंने ५ वर्ष तक जगद्विख्यात भौतिक शास्त्रवेत्ता प्रोफेसर जे० जे० टामसन के पास रहकर भौतिक शास्त्रका अध्ययन किया है—तथापि मैं तो यही समझता हूँ कि मैं बहुत थोड़ा जानता हूं और यदि उम्रभर कोशिश करता रहूं तो भी पर्याप्त ज्ञान संचय न कर सकूंगा। सम्पूर्णानन्दजीने जो मुझे परामर्श दिया है कि कालेजमें भर्ती हो जाऊं, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं पर अभाग्यवश कोई कालेज न तो मुझे लेगा ही और न मुझे कुछ लाभ ही होगा। हां, यदि सम्पू० जी स्वयम् किसी कालेजमें दाखिल हो जायं तो फिरसे बी० एस-सी० का पाठ्यक्रम (Course) याद करलेंगे और एम० एस-सी० की डिग्री लेलेंगे। न मालूम किस नशेमें वह मुझे यह सलाह देगये।

जब सम्पादक जीने मुझे पुस्तक समालोचनाके लिये दी थी तो मैंने उनसे कहा था कि "मुझे हिन्दीके सुयोग्य लेखकोंका हाल मालूम है। यह लोग—इनमेंसे अनाड़ीसे अनाड़ी भी—देश और मातृभाषाकी सेवाका दम भरते हैं, नौसिखे भी अपनेको सरस्वतीका भक्त समझते हैं; जिनमें क़लम उठानेका शऊर नहीं वह ग्रंथकार बन बैठते हैं; पर वास्तवमें लिखते हैं या तो सौ पचास रुपयेके लालचसे या कुछ नाम पैदा करनेकी गरज़से। जो आदमी चार आने प्रति पृष्ठ अथवा चार रुपये प्रति फार्मकी उजरत लेकर लिखते हैं उनके कामकी उत्तमताका अन्दाज़ा लगाना कुछ मुश्किल नहीं है। जब इनके ग्रन्थोंके दोषोंको दिखलाया जाता है तो यह लोग निर्लज्जतासे गाली गलौज करने लगते हैं।" परन्तु मुझे सम्पादक महोदयने आश्वासन दिलाया कि सम्पूर्णानन्दजी एक शिक्षित व्यक्ति हैं; यद्यपि वह तो नहीं मालूम कि उनको मनो० पुस्तकमालाके सम्पादकसे क्या उजरत मिली है। उन्होंने यह भी कहा कि "वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें मनगढ़त बातोंको कोई स्थान नहीं मिलता, उनमें जो कुछ दिया जाता है प्रायः ठीक ही होता है, फिर वैज्ञानिक विषयोंके सत्यासत्यके जाननेवाले बहुत हैं, मौका पड़नेपर उन्हें मध्यस्थ बना सकते हैं।" इस भांति सम्पादक जीके बार बार कहनेपर मैंने समालोचना लिखी। मुझे जो डर था वही हुआ। ग्रन्थ अत्यन्त भ्रष्ट निकला। जो बातें वैज्ञानिक संसारमें आजतक किसीको ख्वाबमें भी नहीं मालूम थीं वह सम्पूर्णानन्दजीके ग्रन्थमें देखनेमें आयीं। उन्हें पागलका प्रलाप कहे बिना नहीं रहा

* इस लेख को जैसा का तैसा छाप दिया है, विराम चिन्ह आदि ज्यों के त्यों हैं। इनका प्रयोग लेखक बहुत समझदारीसे करते हैं। लेखकने समालोचनामें बतलाई हुई ग़लतियोंका कुछ भी जवाब नहीं दिया। केवल दो शब्दोंके बारेमें लिखा है। हमें बड़ी ख़ुशी होती यदि लेखक महोदय असभ्य शब्दों और बेसिर पैरकी बातोंके स्थानपर केवल मतलबकी बातें लिखते और यह सिद्ध करते कि उनके ग्रन्थमें कोई ग़लती नहीं है। पर मालूम होता है कि केवल दुनियादिखावेके लिये आपने यह उत्तर लिखा है। टिप्पणियां रतनलालजी की हैं। —सं०

जाता। वस्तुतः सम्पूर्णानन्दजीको छेड़ना "सांपकी बिल" (कि "के बिल") में हाथ डालना साबित हुआ। निर्बलका सबसे बड़ा हथियार गाली देना होता है। अयोग्य व्यक्ति एक मात्र निर्लज्जताका सहारा लेकर सारे संसारको जीतनेका दावा रखते हैं। यही हाल श्री० सम्पू० जीका है। अब तक हम यह समझते थे कि शायद बेचारे बी० एस-सी० तक पढ़े हैं, ग्रन्थ लिखनेके समय तक पढ़ा पढ़ाया भूल गये होंगे—और इसमें कुछ आश्चर्यकी बात भी नहीं, क्योंकि बेचारे स्कूलके विद्यार्थियोंको पढ़ाते रहे हैं—पर हमको अब मालूम हुआ है कि उनका दिल और दिमाग दोनों बिगड़ गये हैं। यदि दिमाग दुरुस्त होता तो अपनी गलतियोंको समझ जाते और नागरी प्रचारिणी सभाको मेरी सलाह मान लेनेको लिख देते। यदि दिल ठीक होता तो गाली गलौजकी नौबत न आती, निर्लज्जताके आंचलकी ओटमें सहारा न ढूंढ़ते।

मैंने समालोचनामें जितनी बातें उठाई थीं, उनमेंसे केवल दोका उत्तर उन्होंने दिया है। उनमें जो कुछ गलती ग्रन्थकारने की है वह मैं पहले बतला देना चाहता हूं। वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखना खिलवाड़ नहीं है। भाषा इतनी कोमल होती है कि विज्ञानके पूरे अर्थ और आशयको बड़ी कठिनाईसे बर्दाश्त कर सकती है। अंगरेजीमें इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

यदि हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखना अभीष्ट है तो इसी प्रकारकी शब्दरचना बुद्धिमत्तासे करनी पड़ेगी। सम्पू० जीने ठीक कहा है, कोष बहुत सहायता नहीं कर सकते हैं। मैं इस बातकी ताईद करता हूं। और इसीलिए केवल एक साधारण शब्दके अर्थ और प्रयोगका ज्ञान करानेके लिए नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित और बा० श्यामसुन्दर दासजी द्वारा सम्पादित कोषका हवाला दे दिया था, परन्तु वैज्ञानिक शब्दोंके लिए अवैज्ञानिकोंका सहारा ढूंढ़ना केवल अवैज्ञानिकों का ही काम है। द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदीका ग्रन्थ प्रमाण ग्रन्थ नहीं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कोष अधिक प्रमाणिक ग्रन्थ है। "तौल" शब्दका पुल्लिङ्गमें प्रयोग वज़नके अर्थमें नहीं होता। यदि होता है, तो जिस प्रान्तमें, नगरमें, ग्रन्थमें आपने देखा हो उसका प्रमाण देते। चतुर्वेदी कोषका प्रमाण मान्य नहीं है। वह पुस्तक भी सम्भवतः ४, ६, रुपये प्रति फार्मकी उजरतपर लिखी गई होगी, तभी ऐसी भूल हुई। "सिकुड़ना" और "सिमिटना"में भेद जानना और निकालना चतुर्वेदीजीके लिए असम्भव था। पर्याय शब्द एक अर्थमें समान होते हैं, पर सब अर्थोंमें नहीं। उनमें बड़ी बड़ी बारीकियां होती हैं। कोई आदमी जाड़ेके मारे गठड़ी हुआ बैठा है। आप क्या कहेंगे, जाड़ेके मारे "सिमिट" रहा है या "सिकुड़" रहा है। कोई आदमी कपड़े फैलाए बैठा है। उससे क्या कहेंगे "कपड़े "सिकोड़" कर बैठो" या "कपड़े समेटकर बैठो।" फर्शपर रुपये बिखरे पड़े हैं, आप क्या कहेंगे, "रुपये समेट लो" या "सिकोड़ लो"। इतने उदाहरण देनेपर भी आपकी समझमें दोनोंका अन्तर न आवे तो आपकी बुद्धिको सराहना चाहिये। "कहिये क्या समझे?" "अब भी आप वही सुर अलापते जायंगे कि मैंने" "तौल" और "सिमिटना" का साधु प्रयोग किया है।

मालूम होता है ग्रन्थकार कोष देखनेमें बड़े कुशल हैं। नक़लको भी अक़ल चाहिये। आप आप्टेकी डिक्शनेरीमेंसे नकल करते हैं—"Air-आकाशः वायुः; तालः; रूपं; रीतिः" और "Gas वाष्पः,; वायुः; धूमः" और कहते हैं कि "Gas के अर्थमें वाष्प और वायु दोनों आसकते हैं।" खूब। इसमें भी आपने अपनी योग्यता दिखला दी। चूंकि एक अवैज्ञानिक कोषमें कुछ दिया है इसलिए वह मान्य है। यदि ऐसा है तो "हवा चल रही है" के स्थान पर आप आजसे कहा करें "आकाश चल रहा है", "रूप चल रहा है", "ताल चल रहा है"। खबरदार जो कहा कि "हवा चल रही है।" इसी भांति कहा करना कि "उजा एक

प्रकारका धूम है", "ओषजन एक प्रकारका धूम है।" बाबूसाहब चले तो हैं वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखने, पर योग्यता नहीं गधे चरानेकी भी। विज्ञानमें दो शब्द हैं "vapour" और "gas"। यदि गैसके लिए "वाष्प" शब्दका प्रयोग किया जायगा तो "vapour" के लिए क्या शब्द प्रयुक्त होगा। आप कुछ कोषों का हवाला देकर जनताको भुलावेमें डालना चाहते हैं। आँख खोल कर देखिये कि नागरी० प्र० के वैज्ञानिक कोषमें पृष्ठ २१६ पर Gas के लिए "गैस" और पृष्ठ २३६ पर vapour के लिए "वाष्प" दिया है। आपकी चंचलता तो अनूठी है।

श्रीयुत विद्वद्वर सम्पूर्णानन्दजी किस विश्वविद्यालयके पदवीधर हैं। बेशक यदि भारतीय विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीमें सब विषय पढ़ाये जाते तो सम्पूर्णानन्दजीकेसे भ्रष्ट ग्रंथ लिखनेवाले पैदा न होते। धन्य हो भारतके विश्वविद्यालयो! तुम्हारी ही करामात है कि ऐसे धुक्कड़ विद्वान् पैदा होते हैं!!

यदि वामन शिवराम आप्टेका कोष देखते तो यह ग़लतियां न करते। पर मालूम ऐसा होता है कि ग्रन्थ लिखते समय आपको धुनमें (काहेकी?) यह ख़याल ही न आया होगा कि मैं क्या लिख रहा हूँ। जब आपकी आँखें समालोचना पढ़ कर खुलीं तब आपको ख़याल आया और लगे कोष देखने। अन्धकारमें गांठकी अकल भी चाहिये। और फिर गलती बतलानेपर तो मानलेनी चाहिये। संस्कृतके दो एक श्लोक लिखने और फ़ारसी और अंग्रेज़ीके मुहाविरे लिख देनेसे गलतियां दूर नहीं हो जातीं। आपको बड़ा घमंड है कि "हिन्दी जगत जो मेरी पुस्तकोंका समादर करता है और मेरे प्रयत्नोंको प्रोत्साहित करता है जानता है कि मैं हिन्दी लिख सकता हूं या नहीं"। हिन्दी जगत जागृत होता तो आपकी सी गलीज़ और गन्दी किताब बिकती ही नहीं। कुछ भले आदमियों ने इस लिए खरीद ली कि आपकी हिम्मत न टूटे। इसपर भी आपको यह घमंड है कि बड़े सरस्वतीके उपासक हैं। जब ऐसे उपासक भारतमें रहगये तभी तो सरस्वती भाग कर सात समुद्र पार चली गई हैं।

पाठकोंको स्वयम् ज्ञात हो गया होगा कि विद्वद्वर श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी, बी. एस-सी., एल. टी. कितने धुक्कड़ विद्वान् हैं और कैसे "स्वस्ति" कहने वाले हैं। दो एक ग्रन्थ लिखकर आप सबको हिन्दी लिखना सिखानेका दावा रखते हैं। हमारी भी यही इच्छा है कि संसार आपके भौतिक विज्ञान को भूल न जाय, उसे याद रखकर ऐसे भ्रष्ट ग्रन्थों को भविष्यमें प्रकाशित न होने दे और अब आयन्दा पदवीधरोंकी पदवियोंसे धोखा न खा जाय।

"शक्ति" किसे कहते हैं, इस बातका भी ग्रन्थकारको ज्ञान नहीं है। यदि होता तो स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदी आदिके नामकी दुहाई न देकर अपनी ग़लती मान लेते। विद्युत्धारा नापनेका एक यंत्र होता है जिसे galvanometer कहते हैं। वह विद्युच्छक्ति, जो केवल एक मूर्खता द्योतक शब्द है जिसका कुछ अर्थ नहीं, नहीं नापता। वाट-मीटर होते हैं, जिनसे विद्युत्धारा द्वारा किया हुआ काम नापा जाता है। इतनी बात तो बी. एस-सी. महोदयको आनी चाहिये थी। क्या आप बतला सकते हैं कि विद्युत्शक्ति क्या बला होती है? उसका क्या रूप है? कहां मिलती है? शायद नागरी प्रचारिणी सभाके दफ़तरमें या बी. एस-सी. महोदयके घरमें? विद्युत्के (force) सच्चे रूपका ज्ञान आजतक संसारके किसी वैज्ञानिकको नहीं हुआ। हां उसके द्वारा उत्पादित चुम्बकत्व शक्तिका अनुभव होता है, उसीको नापकर विद्युद्धाराका अनुमान लगाते हैं। अब स्वर्गीय बाबू भगवानदास और बाबू अभय चरण सानयालके नामकी दुहाई देनेसे काम नहीं चलता। जिस विद्वानको आकर बहस करना है करे। सम्पूर्णानन्दजी यदि आपको समालोचनामें दिये हुए विषयकी सच्चाईमें सन्देह है तो अब आप इस योग्य तो रहे नहीं कि किसी कालेजमें पढ़ें; बुड्ढे तोते क्या पढ़ेंगे, पर आप अपनी पुस्तककी एक प्रति और समालोचना किसी विज्ञानके प्रोफ़ेसरके पास

भेजदें, आपको एक सप्ताहमें मालूम हो जायगा कि आपकी क्या लियाकत है। यदि आप न करेंगे तो यह मुझे करना पड़ेगा।

conservation के लिए "स्थिति" शब्द ठीक नहीं, कहना चाहिये अमरत्व। उत्तर आपने ज़रा तो सोच समझ कर दिया होता।

आपने Newth के ग्रन्थका उद्धरण देनेका कष्ट क्यों उठाया? आपने अपने ग्रन्थमें पदार्थके आयोनिक रूपका वर्णन करते हुए कहा है—"इस अवस्थामें द्रव्योंके सूक्ष्म और अत्यन्त छोटे परमाणु (अर्थात् टुकड़े) हो जाते हैं।" माना कि यह टुकड़े होते हैं, पर क्या यह टुकड़े परमाणु होते हैं? गलती आपने यह की है न कि यह कि परमाणु समझानेके लिए टुकड़े शब्दका प्रयोग करना। अणु, परमाणु, विद्युदणु सभी टुकड़े होते हैं, परन्तु टुकड़े टुकड़ोंमें तो भेद होता है? यदि ग्रन्थकार समालोचनाको ही अच्छी तरह पढ़ लेते तो यह बात पहले ही समझमें आजाती। समालोचना उन्होंने आद्योपान्त या तो पढ़ी नहीं या क्रोधके कारण समझ न सके। इसका प्रमाण दूसरा भी है। वैज्ञानिक ग्रन्थोंका निर्माण और सम्पादन, दोनों विशेषज्ञोंसे करानेका परामर्श मैंने दिया है (पृष्ठ २५८ विज्ञान भाग ६); पर सम्पू० जी ने लिखा है कि सम्पादनके विषयमें कुछ कहा ही नहीं है। इसी भांति "वाष्प" और "गैस" के विषयमें भी आपने समालोचनामें दिया अंश नहीं पढ़ा।

"रूप" केवल form का उलथा मात्र है। अवस्था अधिक उपयुक्त है। रूपसे आकृतिका बोध प्रायः होता है, इसीलिए यद्यपि रूप कहना गलत नहीं है तथापि अवस्था शब्द अच्छा है। यहांपर भी आप अपनी चालाकीसे मुख्य बात उड़ा गये। आपको बतलाना था पदार्थों और द्रव्यकी अवस्थाओंमें भेद। पदार्थोंकी अवस्था ३ होती हैं और द्रव्यकी (matter) चार। चौथी अवस्थामें—यदि उसे हम अवस्था कह सकते हैं, जो बहुत विवादास्पद है—पदार्थोंका व्यक्तित्व नहीं रहता।

बेचारे सम्पूर्णानन्दजी क्या करें। उनकी दौड़ तो Wight's Physics, Aldous Physics तक ही है। उनके दिमागमें यह बात ही नहीं समा सकती कि किसीने दो हज़ार किताबें देखी या पढ़ी होंगी। अफसोस है इस कूप मंडूकपर। इन हाथोंसे कमसे कम दस हज़ार पुस्तकें निकली होंगी। यदि सम्पूर्णानन्दजी देखना चाहें तो दो तीन हज़ार किताबें उन्हें प्रयागमें दिखाई जासकती हैं।

पानी पावभर लीजिये; उसमें अणुओंकी संख्या स मानलो। उसे जमा दो। आयतन बढ़ जायगा। तरलकी अपेक्षा अब प्रति घन सेन्टीमीटर अणुओं की संख्या कम है या ज्यादा? ख़ैर यह एक उदाहरण विशेष है। क्या आप बता सकते हैं कि बहुत ठोस और थोड़े ठोसमें क्या अन्तर है? पारे और ताम्बेके एक एक घन सेन्टी मीटर आयतनके भाग लिए जायं तो किसमें अधिक कण (?) होंगे? इस बातका जवाब न देकर Aldous का उद्धरण देदिया। क्या इसीसे जो आपके ग्रन्थमें दोष बताया है वह दूर होगया।

"पृथ्वीके ठोसपनेकी बात केवल समझानेके लिए" आपने लिखी है। "तात्पर्य यह था कि इतने द्रव्यमान की और कोई वस्तु पासमें नहीं है।" पाठको, जरा आपके उपरोक्त कथनको किताबमेंके इन वाक्योंसे मिलाइये तो—"पृथ्वी बहुत ठोस है, अतः उसमें कणोंकी संख्या अधिक है, इसीसे उसका बल और सबसे बढ़कर है।" कैसी अच्छी तरह तात्पर्य निकाला है।

"अब इस ज्योतिषीने इस उपग्रहके ग्रहणके पीछे पुनः दर्शनके समय दो व्यक्तियोंको दो स्थानों पर खड़ा किया और उन्होंने ज्योंही कि वह देख पड़ा घड़ी देखली, यह स्थान एक दूसरेसे कई लाख कोसकी दूरीपर थे।" सम्पूर्णानन्दजी आंख खोलकर पढ़िये। जो आपने लिखा, वह सरासर गलत और अत्यन्त निन्दनीय है। जिस रीतिका अवलम्ब रोमरने किया था वह आपको देनी चाहिये थी। इस प्रकारकी गन्दी बातें शेख चिल्लियोंकी सी

न लिखनी चाहियें। क्या इस वाक्यकी आप व्याख्या कर सकते हैं?

क्या आपने ही यह ग्रन्थ लिखा है? क्या आपको ही नहीं मालूम कि वर्तन सम्बन्धी वाक्य पृष्ठ १०४पर दिया है। निलज्जताकी पराकाष्ठा है!!!

तारके सम्बन्धमें जो आपने उत्पादित धागाओं का उत्पादन बतलाया है वह बिलकुल गलत है। आपको यह स्वीकार करलेना चाहिये, बेशर्मीसे न कहिये कि वह ठीक है। मोर्स टेलीग्राफका ज़िक्र करके पीछा न छुड़ाइये।

पृष्ठ २५० को आंख खोलकर देखिये। काहे का चित्र वहां दिया है? कुछ लोक परलोकका खयाल करके जवाब दिया होता।

विद्वानोंके विषयमें निस्सन्देह आदरसे बातें करनी चाहियें, किन्तु जो भ्रष्ट ग्रन्थ लिखते हैं, उनके बराबर पापका भागी और कोई नहीं होता। उनको दोष बतलाना पुण्य कार्य है। इसीसे समालोचना लिखी गयी थी, परन्तु आपके उत्तरसे मुझे बड़ा अफसोस हुआ।

काले कोयलेका एक अद्भुत गुण

विज्ञानके पाठकोंको मालूम होगा कि हीरे और कोयलेमें रासायनिक दृष्टिसे कुछ अन्तर नहीं है, परन्तु असली उपयोगिताके खयालसे कोयला हीरेसे हज़ार गुना अच्छा है। यदि गन्दी जगहोंमें कोयलेका चूर्ण डाल दिया जाय तो वहांकी सब गन्दी हवाओंको कोयला सोख लेता है। संडासों में भी कोयलेका चूर्ण अथवा राखका सदा प्रयोग करना चाहिये। जहां लट्ठोंको ज़मीनमें गाड़ना हो, तहां लट्ठोंको ऊपरसे झुलसाकर ऊपरीतहको कोयलेमें बदल देते हैं। फिर न उसे सीलसे डर रहता है न दीमकसे दहशत। जहाज़ों पर या वाटरवर्क्समें कोयला पानीके शुद्ध करनेमें काम आता है। पर हालमें ही जी. बी. सेट, बी. ए., एफ. आर. ए. एस. ने, जो कलकत्तेके आइवी नरसरी गार्डनमें काम करते हैं कोयलेके बड़े महत्वपूर्ण गुणोंका आविष्कार किया है। उन्होंने "Charcoal as a Wonderful Fertilizer" नामकी पुस्तक लिखी है। इसमें इन महाद्भुत गुणोंका उल्लेख किया है।

उक्त महोदयने अनुभव किया है कि तरकारी और फूलोंके बीजोंके अङ्कुरित होनेमें धरतीमें मिलाया हुआ कोयला बड़ी सहायता करता है। कलमें भी कोयला-समन्वित भूमिमें जल्दी लग जाती हैं। लोअर बँगालमें प्रायः वर्षा ऋतुमें वोयलेट और क्राइसेनथिमम पौधे अच्छी तरह नहीं रहते, किन्तु मट्टीमें कोयला-चूर्ण मिला देनेसे आनन्दसे सरसाते रहते हैं। यही चूर्ण गुलाब, जिरेनियम, वर्बेना, लेवेण्डर (Roses, geraniums, verbenas, lavendars) इत्यादिको अतिवृष्टिके प्रभावसे सुरक्षित रखता है। तरकारियोंकी पैदावार और बाढ़ इस चूर्णके प्रयोगसे बहुत अच्छी होती है। जाड़ेमें प्रतिवर्ष फूल देनेवाले पौदोंपर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। फूल जल्दी निकल आते हैं और उनके रङ्ग अधिक चटकीले होते हैं।

म० सेटने एक आमके पेड़पर प्रयोग किया और बड़े अद्भुत परिणामपर पहुंचे। यह पेड़ खूब हरा भरा और सरसब्ज़ था, किन्तु इसमें फल बहुत कम लगते थे। अनेक खादोंके प्रयोग करनेसे भी इसपर कुछ प्रभाव न पड़ा। सेट महोदयने पेड़की जड़के पासकी भूमि बड़ी सावधानी से खोदी, जिसमें मुख्य जड़ें (primary roots) न कटें और फिर उसमें कोयला-चूर्ण मिश्रित खाद भर दी। फिर क्या कहना था—पहिले तीन सालकी औसद पैदावार थी ३०, उस वर्ष हुई ६७०।

विज्ञानके प्रेमियो, प्रयोग करके देखो और लाभ उठाओ।

—गंगाप्रसाद

नोट—पृष्ठ ७७ पर जो गुर दिया है उसे इस भांति क = ॥. $\sqrt{\frac{ल}{ग}}$ पाठक सुधार लें।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानिजायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १२ } धन, संवत् १९७७ । दिसम्बर सन् १९२० । { संख्या ३

खटमल

(ले०—श्री० शंकरराव जोशी)

यह प्राणी अर्धपक्ष (Hemiptera) वर्गका है। अर्धपक्ष वर्गके कीड़ेके मुखका आकार चोंचके समान होता है। इसीसे बहुत से विद्वानोंने उसे रिंगक्रोटा (Rhynchota) अर्थात् चंचुमुख संज्ञा दी है। परन्तु सब वर्गके कीड़ोंका नाम करण उनके पंखोंकी बनावटपरसे किया गया है। अतएव इस वर्गके नामकरणमें भिन्नता करना उचित न दीखनेसे कीटकविज्ञानमें उक्त नाम बहुत कम पाया जाता है। खटमलके समान कुछ ऐसे कीड़े भी इस वर्गमें शामिल हैं, जिनके पंख नहीं होते। कोशावस्थामें भी इस वर्गके कीड़ेके हिलना डोलना आदि व्यापार जारी रहते हैं। अण्डेमेंसे निकले हुए प्राणी और पूर्ण बाढ़ तक पहुंचे हुए प्राणीके आकार और स्वरूपमें ज्यादा फर्क नहीं होता। फर्क इतना ही होता है कि अर्भककी अपेक्षा पूर्णावस्था-प्राप्त प्राणीकी इन्द्रियोंकी बाढ़ पूर्णताको पहुंच जाती है। और उसकी जननेन्द्रिय प्रजोत्पादन करने योग्य हो जाती है। इस वर्गमें कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जिनके परिवर्तन डांसके परिवर्तनके समान होते हैं।

भारतवर्षमें ऐसे बहुत ही कम नगर या गाँव होंगे जहां यह प्राणी न पाया जाता हो। जाने कितनी शताब्दियोंसे भारतमें इस प्राणीका अस्तित्व रहा है। किन्तु इंगलैंडमें १५वीं शताब्दीके पहले इस प्राणीका अस्तित्व न था। अंगरेज़ीमें इसे (Bug) बग कहते हैं। इस शब्दकी उपपत्ति के बारेमें ठीक ठीक कुछ भी नहीं कहा जासकता। शेक्सपियरने अपने ग्रन्थोंमें कई स्थानपर इस शब्दका उपयोग किया है, किन्तु उसका अर्थ बिलकुल निराला है। संस्कृत भाषामें खटमलको मत्कुण संज्ञा दीगई है, परन्तु इस शब्दकी उपपत्ति के सम्बन्धमें कुछ भी पता नहीं चलता। अमरकोषमें इस शब्दका नाम तक नहीं पाया जाता। सम्भव है उस ज़मानेमें भारतमें इस प्राणीका अस्तित्व न रहा हो।

ठंडे प्रदेशोंमें खटमल नहीं पाया जाता। यूरोपके उत्तरी प्रदेशोंमें भी यह प्राणी नहीं पाया जाता। इटली आदि यूरोपके दक्षिणी देशोंमें खटमल पाया तो अवश्य जाता है, किन्तु बहुत कम। अनुमान किया जाता है कि अमेरिकाका पता लगनेपर जो लोग अमेरिका जाकर वापस यूरोप आये थे, वह अपने साथ वहांसे खटमल भी ले आये थे। टामसमोफेट नामक लेखक ने सन् १६३४ में 'कीटकविज्ञान' सम्बन्धी एक पुस्तक लिखी है, उसमें सबसे पहले खटमलका उल्लेख किया गया है।

खटमल उष्ण प्रदेशोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। खेड़ोंकी अपेक्षा शहरोंमें रहना इसे ज्यादा पसंद है। एक संस्कृत कविने लिखा है।

सर्वस्वापहरो न दस्युकुलजः खट्वाङ्ग भृत्रेश्वरो।
दोषानिष्टकरो न धर्म निरतः कीलालयो नासुरः॥
नृणां पृष्ठ पलायनो न पिशुनः शीघ्रं गमो नो हयः।
शश्वद्रात्रिचरो न राक्षसगणः कोयं सखि ब्रूहि मे॥

दूसरे एक शृंगाररस प्रिय कविने उसके आचरण-के सम्बन्धमें लिखा है—

कोणेषु तिष्ठति रहश्चरतिस्वरावान्
निद्रां ददाति न निशि प्रतिपद्य शय्यां।
भूयश्च संदशति मे वपुषि प्रसक्तः
कृष्णः सखि न हि समत्कुणकः प्रमत्तः॥

खटमल $\frac{१}{५}$ इंच लम्बा होता है। इसका आकार लम्बा और चपटा होता है। इसका मुख चोंचके समान होता है। वह अपनी चोंच, इच्छानुसार बाहर भीतर कर सकता है। चोंचके भीतर बालसे भी महीन चार हथियार होते हैं। खटमल इन्हीं अवयवों द्वारा मनुष्यके शरीरका रक्त चूसता है। खटमलके सिरके मानसे उसकी आंखें बहुत बड़ी होती हैं। उसके पंखोंकी पूर्ण बाढ़ नहीं होती। पंखके समान कुछ अवयव होता तो ज़रूर है, परन्तु उनकी सहायतासे वह उड़ नहीं सकता। अर्धपक्षके बहुत से कीड़ोंका भी यही हाल है। बहुत कम कीड़ोंके पंखोंकी पूर्ण बाढ़ होती है। हज़ारमें एक आध कीड़ा शायद उड़ सकता हो। परन्तु यह अपवाद है। खटमल तो कभी उड़ता ही नहीं। नरकी अपेक्षा मादा कुछ मोटी होती है।

शरीरके मानसे खटमलका सर बहुत ही छोटा होता है। शरीरके जिस भाग पर पांवोंका दूसरा तीसरा जोड़ (pair) मिला हुआ है, वहां कुछ स्थान खाली है। इसी स्थान पर एक प्रकारका दुर्गन्धियुत पदार्थ भरा रहता है। इस पदार्थ द्वारा वह शत्रुसे अपनी रक्षा कर लेता है। खटमलको छूने या उसके मरजाने पर जो दुर्गंध आती है वह इसी पदार्थसे पैदा होती है। शत्रुके पीछा करते ही खटमल दुर्गंध छोड़ता है, जिससे डरकर शत्रु नौ दो ग्यारह हो जाता है। परन्तु कुछ ऐसे भी कीड़े हैं जो इस दुर्गंधिकी बिलकुल परवाह नहीं करते। झींगुर खटमलका दिली दुश्मन है। एक बार देख लेनेपर वह उसे जिंदा नहीं छोड़ता।

खटमलका अण्डा सफेद तथा कुछ लम्बा होता है। मादा प्रति बार ५० अण्डे देती है। अण्डेमेंसे इल्ली नहीं निकलती। अण्डेमेंसे निकले हुए प्राणी और पूर्ण बाढ़को पहुंचे हुए प्राणीके आकार और स्वरूपमें बहुत कम अन्तर होता है। परन्तु पूर्ण बाढ़को पहुंचनेके पहले प्रजोत्पादनका कार्य नहीं हो सकता। खटमल ११ सप्ताहमें पूर्ण बाढ़को पहुंच जाता है। परन्तु ऋतुके अनुसार यह अवधि घट बढ़ जाया करती है।

कई महीनों तक भोजन न मिले, तो भी खटमल मरता नहीं। खटमल अपने जाति भाईको मार कर नहीं खाता। क्षुधासे बहुत ही पीड़ित होनेपर एक आध खटमल अपने जाति बांधवको चट कर जाय तो यह अपवाद स्वरूप है।

अर्धपक्षके बहुत से कीड़े अन्य खाद्य वस्तुओं पर जीवन निर्वाह करते हैं। तदनुसार संभव है खटमल भी अन्य किसी खाद्य पदार्थ पर जीवन निर्वाह करते हों, किन्तु अभी तक हमें इस बात

का पता नहीं चला है कि खटमल मनुष्यके रक्तके सिवा अन्य किसी पदार्थको खाता है या नहीं।

अन्य कीड़ोंकी तरह खटमलको भी श्वासोच्छ्वासके लिए हवाकी ज़रूरत होती है। परन्तु खटमल यह क्रिया अन्य प्रकारसे करता है। खटमलकी दोनों करवटों पर महीन छेद होते हैं। खटमल इन्हीं छेदों द्वारा श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करता है।

व्हाव्हें, मोफेट, अरिस्टाटलके समान विख्यात विद्वान समझते थे कि खटमल स्वेदज है। उनका कहना था कि खटमलके मर जानेपर उसकी दुर्गंध से बहुत से खटमल पैदा हो जाते हैं। परन्तु यह मत भूल भरा है। पुरुष स्त्री संयोग बिना सन्तानोत्पत्ति होना संभव नहीं।

खटमलकी प्रजावृद्धि खूब होती है। गरमीके दिनोंमें मादा महीनेमें चार बार अण्डे देती है। ऊपर लिखा जा चुका है कि मादा प्रति बार ५० अण्डे देती है। इस हिसाबसे प्रति मास २०० खटमल पैदा होते हैं। यदि घरमें १५ मादा हुईं तो एक ही महीनेमें सारा घर खटमलसे भर जायगा।

स्वच्छता रखनेसे खटमल कम होते हैं। खटमल मारनेके लिए कई दवाइयां काममें लाई जाती हैं। मेथिलेटेड स्पिरिट या कार्बोलिक-एसिडको पानीमें मिला कर मिश्रण तयार करते हैं। जिस जगह खटमल छिप कर बैठते हों वहां यह मिश्रण छिड़कनेसे उनका नाश हो जाता है। कमरेकी खिड़कियां और दरवाज़े बंद कर गंधक की (सलफ़र डाइ ओक्साइड) धूनी देनेसे भी खटमल मर जाते हैं। परन्तु इससे अण्डोंको नुकसान नहीं पहुंचता। अतएव चौथे पांचवें रोज़ या प्रति अठवारे गंधककी धूनी देना आवश्यक है।

रोग जो टाइफ़ोयड जीवाणुओंके निकट संबंधियोंसे होते हैं

[ले०—श्री० मुकुट विहारीलाल दर, बी. एस-सी., एल-एल. बी.]

अंत्र (intestine) के कुछ रोगोंका सच्चा कारण अभी तक डाक्टरोंकी समझमें नहीं आया है। अंत्रमें इतने भिन्न प्रकारके जीवाणु मिलते हैं कि कभी कभी यह कहना बहुत मुश्किल होजाता है कि किसी विशेष पीड़ाका कारण कौनसे जीवाणु हैं। अंत्रमें जो जीवाणु पाये जाते हैं उनमेंसे प्रायः बहुतसे ऐसे हैं जो टाइफ़ोयड बैसिलाइ (typhoid bacilli) के निकट संबंधी हैं। इस लेखमें हम इन्हींमेंसे कुछ आवश्यक तथा अधिक परिचित जीवाणुओंका वर्णन करेंगे।

बृहदंत्र (colon) बैसिलस—यह बहुत कुछ टाइफोयड बैसिलससे मिलता जुलता है। यह मनुष्य और अन्य उच्च जातिके पशुओंकी अंत्रमें पाया जाता है। यह साधारणतया अंत्रमें भरे हुए खाद्य पदार्थ ही पर अपना निर्वाह करता है और किसी तरहकी विशेष हानि नहीं पहुंचाता। परन्तु जब शरीर दुर्बल हो जाता है, जैसे कि गरमी की ऋतुमें या जब कि अंत्रमें जीवाणुओंकी अधिक शक्तिशाली जाति पहुंच जाती है तो यह बैसिलस उदरामय (diarrhoea) तथा अन्य पीड़ाओंका कारण होता हुआ मालूम पड़ता है।

पेचिशका बैसिलस—पुरानी पेचिश एक प्रकारके (protozoa) आदि-प्राणीके कारण होती है, जिसका हाल हम किसी समय एक पृथक् लेखमें लिखेंगे। नये पेचिशके आकस्मिक आक्रमण—जो कि कभी कभी महामारीके रूपमें भी प्रकट हो जाते हैं—एक ऐसे बैसिलसके कारण होते हैं जिसका टाइफ़ोयड बैसिलससे बहुत कम अंतर है। यह पश्चिमीय देशोंमें—और यहां भी—भयानक रोग समझा जाता है और फ़ौजोंमें इससे बहुत

भय रहता है। उन देशोंके कुछ भागोंमें यह रोग गरमीकी ऋतुमें महामारीके रूपमें प्रगट होता रहता है। इसके जीवाणु भी टाइफ़ोयड जीवाणु की तरह फैलते हैं। चूंकि यह रोग अत्यंत भयानक है—विशेष कर बच्चोंके लिये—इसलिये पेचिश के रोगीका सब मल सावधानीसे नष्ट कर देना चाहिये।

मांस विषरोग (meat poisoning or ptomaine poisoning) अथवा टोमेन विष रोग—इनके कारण दो भिन्न प्रकारके जीवाणु होते हैं। यह भयंकर और प्रायः प्राण घातक रोग है जो कि खराब मांस खानेसे टोमेन विष (ptomaine) द्वारा शरीर विषाक्त हो जानेसे होता है। इस रोगका अत्यंत साधारण रूप टाइफोयड-जीवाणु जातिका एक बैसिलसके कारण होता है—जो कि चौपाये, घोड़े, सूअर और बकरोंपर आक्रमण करता है। यह जीवाणु पशुओंके बध किये जानेसे पहिले उनके मांसमें रहता है, परन्तु कहीं कहीं तो इस रोगकी महामारी असावधान तथा विचार हीन कस्साईयोंके कारण जो रोगी पशुओंको मार कर उनका मांस बेचते हैं हुई है। हमारे देशमें मारे जाने वाले पशुओंकी जांचका कोई उचित तथा संतोष जनक प्रबंध नहीं है। हालमें ही कानपुर तथा और कई शहरोंमें सुनते हैं कस्साबोंने कुत्तोंका मांस (बकरे का मांस कह कर बेच दिया।

जिस मांसमें यह जीवाणु होते हैं, वह रूप और स्वादमें अच्छे मांससे भिन्न नहीं होता। एक और प्रकारका मांस विष रोग (meat poisoning) एक ऐसे बैसिलस द्वारा होता है जो धनुष्टंकार (टीटानस) जीवाणुका संबंधी है। यह पशुके बध होनेके बाद ही मांसमें प्रवेश करता है। और जिस मांसमें यह होता है उसमें प्रायः बुरी बदबू आने लगती है। यह बैसिलस मनुष्यके शरीरमें तो नहीं वृद्धि करता परन्तु मांसमें वृद्धि करनेसे उसमें एक ऐसा विष (toxin) पैदा कर देता है जो कि मनुष्य को सांघातिक विषसे विषाक्त कर देता है। खूब पकानेसे यह विष (toxin) नष्ट हो जाता है। इस प्रकारका मांस-विष रोग प्रायः ऐसे मांस द्वारा होता है जो डब्बोंका (tinned meat) होता है या जो बिना अच्छी तरह पकाये खा लिया जाता है। चूंकि हमारे देशमें मांस—और सच पूछिये तो हर एक चीज—खानेसे पहिले अच्छी तरह पका ली जाती है और रक्षित मांस (preserved meat) प्रायः बहुत ही कम खाया जाता है इसलिये यहां यह रोग कम होता है। विलायती डिब्बोंके मांसके चटोरोंको सावधान रहना चाहिये।

यह जीवाणु मांसमें गंदगीसे आता है। इस कारण जो मांस खानेके लिये आवे उसको सावधानी तथा बहुत सफाईसे रखना चाहिये।

मांस मनुष्यके जीवनके लिये आवश्यक नहीं है। विपरीत इसके अच्छा मांस—जिसका मिलना बहुत कठिन है—न प्राप्त होने पर खराब मांस खानेसे अपने जीवनसे हाथ धो बैठनेका भी भय रहता है। कृषि उपयोगी पशुओं विशेषतया गौके बधसे देशके स्वास्थ्यकी अवनति तथा आर्थिक हानि होती है। दूध और घी जो स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं प्रायः दुष्प्राप्य हैं। और यदि यही हाल रहा तो कौन अचम्भा है कि एक दिन यह स्वास्थ्योपयोगी वस्तुएं केवल हकीम तथा वैद्योंके नुसखों तथा अत्तारोंकी बंद अलमारियोंमें ही पायी जायं।

इस लिए अपने स्वास्थ्यके लिये और देशकी आर्थिक उन्नतिके लिये हित कर यही है कि मांस जहां तक हो सके न खाया जाय।

वृक्षोंके घावोंकी चिकित्सा

जब वृक्षोंकी काट छांट करते हैं, उनकी डालियां इस उद्देश्यसे काट देते हैं कि वह अच्छी तरह फलें फूलें, तो उनके अंगोंपर स्थान स्थानपर घाव (कटाव) रह जाते हैं। जिन वृक्षोंकी लकड़ी बड़ी मुलायम होती है वह इस क्षतिके कारण सड़ने

लगजाते हैं; और इन्हीं कटावोंके कारण कीड़े आदि छेद करके घुस जाते हैं। इन सब आपत्तियोंसे वृक्षोंकी रक्षा करनेके लिए साधारण अलकतरेका प्रयोग करना चाहिये। उसे केवल एक बार लगाकर ही नहीं समझ लेना चाहिये कि बस होगा, किन्तु अच्छी तरह लगाकर मल देना चाहिये। समझ लेना चाहिये कि हम इसे पालिश कर रहे हैं। ऐसा करनेसे उसकी पानीसे रक्षा हो जायगी और कीड़ोंसे भी।

—गंगाप्रसाद

बोलनेवाली घड़ी

घड़ियोंमें डायल और सुइयाँ होती हैं। चाबी भर देनेसे कई पहिये घूमते हैं और सुइयोंको चलाते हैं। यही डायल पर घूमकर समय बतलाती हैं। रातके समय डायल नहीं दीखती, इसलिए रेडियम डायलोंका प्रयोग होने लगा। कुछ घड़ियोंमें प्रत्येक १५ मिनट पर घंटी बजती है, पर पौवेकी एक, अद्धेकी दो, पौनेकी तीन और पूरेकी चार घंटियां होती हैं। घंटा पूरे होनेपर घंटेकी संख्या भी बज जाती है। इस भांति यदि १२। बजे आंख खुल जाय और दूसरे कमरेमें अथवा पलंगसे दूरी पर घड़ी रखी हो तो या तो बिना एक बजे तक जागे या उठे समय नहीं मालूम हो सकता। अतएव ऐसी घड़ीकी उपयोगितामें किसीको सन्देह नहीं हो सकता जो स्वयम् बोलती हो। न्यूयोर्कके श्री० एच डार्टमेनने ऐसी एक घड़ीका आविष्कार किया है।

यह घड़ी प्रत्येक १५ मिनट बीत जानेपर बोलती है और ठीक समय बोल देती है। एक फिलमका इसमें प्रयोग होता है, जिसमें सिनेमाके फिलमोंकी तरह छेद रहते हैं। इसी फिलम पर रिकार्ड लगे रहते हैं। एक क्रमसे यह रिकार्ड बजते हैं। इस घड़ीमें दो बटन भी लगे हैं, जिनमेंसे एक तो इस कामका है कि उसे दबानेसे फिर दुबारा रिकार्ड बज जाता है और दूसरेके दबानेसे घड़ी चुप हो जाती है।

घड़ी १६ इंच ऊंची, १० इंच चौड़ी और ४ इंच मोटी है। आविष्कारक महोदय सात साल से इसे काममें ला रहे हैं। इस बातसे प्रतीत होता है कि यह जल्दी खराब होनेवाली चीज़ नहीं है।

—गंगाप्रसाद।

सर्वगामी मोटर साइकिल

मोटर साइकिलोंमें साइडकारका लगा होना एक अत्यन्त साधारण बात है। एक महाशयने इस साइडकारको नावका रूप दिया है। साधारणतया यह किश्तीनुमा साइडकार एक दो आदमियोंके बैठने अथवा सामान लादनेके काममें आसकती है। पर पानीमें भी तैर सकती है और साइकिलके इंजनसे चलाई जासकती है। इसमें ऐसी सर्पिलाकार कमानियां लगी हैं कि सड़कपर चलनेमें भी कुछ कष्ट नहीं होता।

दूर दूरके कुण्डों, तालाबों, झीलों इत्यादिमें सैर की गरजसे जानेवालोंको नावकी अनुपस्थितिके कारण हताश हो लौटना न पड़ेगा।

—गंगाप्रसाद।

भारतीय विज्ञान-सम्मेलन

इस सम्मेलनका आठवां अधिवेशन ३१ जनवरीसे ५ फर्वरी १९२१ तक कलकत्तेमें होगा। अधिवेशनके संरक्षक बंगालके लाट रोनेल्डशे होंगे और सभा-पति होंगे होनरेबिल सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी।

भिन्न भिन्न विभागोंके सभा-पति इस भांति होंगे:—

कृषि और व्यवहारिक वनस्पति विज्ञान-श्री० एस० मिलीगन, एम० ए, बी० एस-सी०। आप गवर्मेन्ट

ओव इण्डियाके एग्रीकलचरल एडवाइज़र हैं और पूसाकी कृषि प्रयोगशालाके डाइरेक्टर।

भौतिक विज्ञान और गणित—श्री० जे० एच० फील्ड, एम० ए०, बी० एस-सी०। आप आगरेके वायु-विज्ञान वेधशाला (aerological observatory) के डाइरेक्टर हैं।

रसायन-शास्त्र—बैंगेलोरकी इण्डियन इन्स्टिट्यूट ओव सायंसके डाइरेक्टर डाक्टर एच० ई० वाटसन।

वनस्पति-शास्त्र—डाक्टर बीरबल साहनी, प्रोफेसर गवर्मेन्ट कालेज लाहौर।

जन्तु-शास्त्र और मनुष्य-विज्ञान—डाक्टर एफ० एच० ग्रेवले।

भूगर्भ-शास्त्र—प्रोफेसर डी० एन० वाडिया, एम० ए०, बी० एस-सी०, प्रिंस ओव वेल्स कालेज, जम्मू।

वैद्यक—लफटेंएट करनेल जे० डबल्यू० डी० मेगो, एम० बी०, आइ० एम० एस०, लखनऊ निवासी।

—गंगाप्रसाद।

आलू

[ले०—श्री० गंगाशंकर पचोली]

१—पौदेका देश

आलू जो कि आजकल एक पवित्र खाद्य माना जाता है और जिसकी खेती भी दिनोंदिन बढ़ती जाती है, वास्तवमें दक्षिण अमेरिकाका वासी है। स्पेनवाले इसे यूरोपमें लाये और वहांसे वह जर्मनी तथा आस्ट्रिया पहुंचकर खूब बढ़ा। सर फ्रेन्सिस ड्रेकने आलूकी गांठें अमेरिकासे लाकर सरवाल्टर रेलेको दीं और आलूकी खेतीका प्रचार किया। इस देशमें आलू पहले पहल सूरत नगरमें आया था और वहीं उसकी खेती शुरू हुई थी। पर आजकल उसकी खेती थोड़ी बहुत देशके सब भागोंमें होती है। इतना ही नहीं वरन् अफरीकाके दक्षिण छिरेसे लेकर उत्तरमें आइसलेण्ड व लैपलेण्ड तक इसकी खेती होती है।

सोलहवीं शताब्दीके अन्त तक इस पौदेका 'पोटैटो' नाम न हुआ था। एक जिरार्ड नामके लेखकने गांठकी सूरत शकरकंद (स्वीट पोटैटो) से मिलती देख इसका नाम 'बटाटा' या 'पोटैटो' रख दिया। गुजरातमें अबभी वही लातिनी नाम 'बटाटा' प्रचलित है। इस देशमें इसका नाम 'आलू' कैसे पड़ा, इस बातका पता नहीं। अपनी जन्मभूमि अमेरिकामें यह जंगलोंमें होता है और ६ वा ७ फुट तक ऊंचा बढ़ता है। चिली, पेरू, ईकेडर प्रान्तोंमें यह बहुत होता है। आलूके पौदेमें गांठ ही खानेकी चीज़ है।

२—पौदेकी जाति

उद्भिद् शास्त्रमें वनस्पतियोंके अनेक भेद हैं। उनमें एक 'सोलेनेसिई' नामका है। इस जातिके पौदोंमें जो लक्षण पाये जाते हैं वह इस प्रकार हैं:—इस भेदमें वनस्पति और क्षुप नामके पौदे होते हैं। जो वृक्ष भी हैं तो वह नरम काष्ठवाले हैं। इन पौदोंमें पत्ते आमने सामने, पर डालीपर घूमते हुए उगते हैं। (चित्र २२ में देखिये)। पुष्प एक अलग डंडीपर (अकेले अथवा गुच्छोंमें) या शाखाके छोर पर उगते हैं। प्रत्येक पुष्पमें पुं और स्त्री केसर होती हैं। पुष्पके अन्तरमण्डलमें पँखड़ियां जुड़ी हुई थाली वा घंटेके आकारकी होती हैं। पंखाड़ियां पांच या अधिक होती हैं और नोकदार होती हैं। पांच पुंकेसर प्रायः मिली हुई वा पुष्पदलसे चिपटी हुई होती हैं। फल अनेक बीजोंवाला आंवले कासा होता है। इस भेदमें वनतमाकू (असेंदू), भटकटैया, बैंगन, आलू, तम्बाकू, धतूरा आदि पौदे हैं। हम तो आलूका वर्णन करेंगे जो 'सोलेनेसिई' भेदमें 'ट्यूबरोसम' जातिमें आता है।

इस 'सोलेनेसिई' अर्थात् धतूरा भेदकी अनेक जातियोंमें छः ऐसी हैं, जिनमें कंदग्रंथि लगती है।

इनमेंकी तीन दक्षिण अमेरिकाके ब्राज़िल प्रान्तमें होती हैं और बाकीकी तीन आलू (सो०ट्यूबरोसम) डारविनका आलू (सो० मेग्लिआ), और कमर्सन आलू (सो० कमरसोनी) हैं। हमारा विषय मामूली आलू है जो प्रायः खेतों और बाड़ियोंमें बोया जाता है।

हमारे मामूली आलूके भी गांठोंके रूप रंग आकृति आदिकी भिन्नताके कारण अनेक अवान्तर भेद होते हैं। यूरोपमें तीस चालीस वर्ष पूर्व प्रायः ५०० जातिकी गांठें होती थीं। इङ्गलेण्ड स्काटलेण्डमें अब भी अनेक जातिकी गांठें होती हैं। जर्मनोंने सबमेंसे छांटकर २० प्रधान जातियां रखी हैं। इङ्गलेण्डमें ५० जातियोंको मुख्य माना है जिनमें बागू जाति भी शामिल है।

रूप रंग आदिके सिवाय पौदेके शीघ्रपाकी और देरपाकी होनेसे दो प्रकार और हैं। शीघ्र-पाकी वह पौदे हैं जिनमें गांठें डेढ़दो मासमें तैयार होजाती हैं। दूसरी वह जाति है जिसमें गांठको तैयार होनेमें अधिक काल लगता है। इन दोके बीचमें एक तीसरी जाति है जिसका नाम 'सेकण्ड-अर्ली' है। हमारे देश उत्तरीय हिन्दुस्तानमें तो पहाड़ी और देशी नामसे दो ही जातियां प्रधान हैं। इनमें भी रूप रंग छिलका गूदा आदिकी भिन्न-ताके कारण विभेद अनेक हैं। पहाड़ी आलू अच्छा माना जाता है।

पौदेका वर्णन

आलूका पौदा १॥ वा २ फट ऊंचा होता है। पेड़ी हलके रंगकी होती है। पत्रदंडी बड़ी होती है जिसपर पत्ते पिच्छाकार (pinnate) लगते हैं; परन्तु डंडीकी जड़के पासके छोटे और नोककी तरफसे क्रमशः बड़े होते जाते हैं; जिससे डंडीके सिरेका पत्ता सबमें बड़ा रहता है। पत्तोंमें एक कड़वा और विषैला खार होता है जिसको 'सोलेनिन' कहते हैं। और इसी कारण वह चारेके काममें कम आते हैं। इसके फूल, बैंगन वा लाल-मिरिचके फूल जैसे होते हैं, जिनमें प्रत्येक पंखड़ी पांच लोरवाली होती है। पुष्पका आकार रकाबी वा घंटाकासा होता है। स्त्रीकेसर बीजकोषके
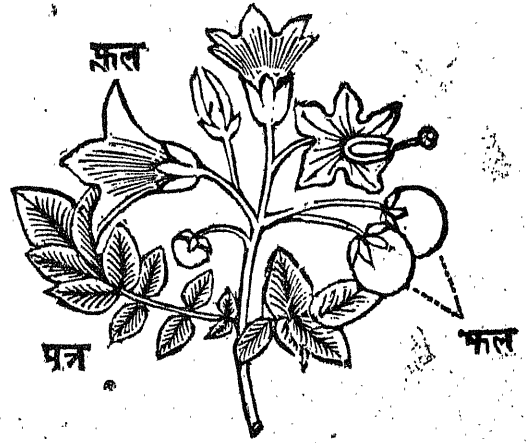
चित्र २०—आलूके पत्ते, फूल और फल।

ऊपर होती है और चारों ओर पांच पुंकेसरसे घिरी रहती है। मानों उसपर एक खोल चढ़ा रहता है। पुंकेसरोंकी पराग कोथली सिरेपर मिली होती हैं। यह पुंकेसर पीली और पुष्पदल अर्थात् पंख-ड़ियां बैंजनी रंगकी होती हैं। स्त्रीकेसरके रेतपात्रमें छिद्र होते हैं, जिनमें होकर पराग बीजकोष तक उत्तर जाता है और बीज स्थापितकर फल रूपमें
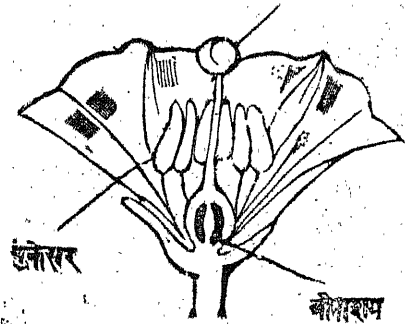
चित्र २१ आलूका फूल

उत्पन्न होता है। फल आंवले कैसे गोल हरे रंगके

होते हैं, जिनमें बीज रहते हैं। बीजोंसे नई नई जातिके आलू उत्पन्न किये जासकते हैं। मामूली तरहपर तो आलूकी गांठोंको ही बोते हैं और यही गांठ खानेमें काम आती हैं। गांठसे 'स्टार्च' (माडी) निकाली जाती है और एक प्रकारका मादक द्रव्य खैंचा जाता है। आलूका रस औषधिके काममें भी आता है।

आलूके पौदेमें गांठ ही अधिक उपयोगी भाग है। गांठ धरतीके भीतर ही बढ़ती है। गांठ धरतीके भीतर जड़के पास लगने और बढ़नेसे कंद कही जासकती है, पर वास्तवमें यह कंद नहीं वरन् पेड़ीका फूला भाग माना जाता है; क्योंकि और लक्षणोंको देखते यह पेंडो ही ठहरती है। गांठको देखनेसे उसपर कली और बहुत सूक्ष्म पत्तीसी मालूम होती हैं; जो कंद वा जड़में नहीं होतीं। इसी कारण गांठको जड़ वा मूलका भाग न मानकर पेड़ी का अंग माना जाता है। गांठको बोनेसे उसमेंकी कली फूट निकलती है और प्रत्येक कलीसे पौदा उत्पन्न हो जाता है।

गांठ एक पतले छिलकेसे मढ़ी रहती है, जो भीतरके 'मावे'से चिपटा रहता है और बाहरकी सर्दी गर्मीसे उसकी रक्षा करता है। इसकी परीक्षा करनेके हेतु एक गांठको छिलकेसहित और दूसरीको छीलकर धूपमें रखिये, तो छिलकेवाली गांठ ज्योंकीत्यों रहेगी और छिली हुई गांठ सिकुड़ जायगी। यदि इन दोनों गांठोंको बो दिया जाय तो बेछिली अंकुरित हो जायगी और छिली हुई अंकुरित नहीं होगी। इससे यही सिद्ध होता है कि छिलका बाहरी गरमीको रोकने और 'कलियों' की रक्षा करनेका गुण रखता है। पौदेको यदि धरतीसे तरी न मिले तो वह मुरझा जाता है, परन्तु गांठमें पौदा उत्पन्न करनेकी शक्ति बनी रहती है।
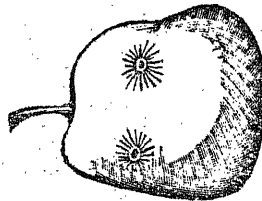
चित्र २२—आलू

पौदा उत्पन्न करनेकी शक्तिको बनाये रखनेका काम छिलकेका है। कलीके फूट निकलने पर गांठ के 'मावे'से उनका पोषण होता है और 'मावे'के खर्च हो जानेपर पौदेको खुराक जड़ द्वारा धरतीमें से मिलती रहती है।

धरती परके उन भागोंमें जहां सरदी गरमी विशेषतासे नहीं पड़ती, आलूके पौदोंमें फल भी लगते हैं, जो हरे रङ्गके गोल और अनेक बीजवाले होते हैं। उष्ण देशमें फल नहीं लगते और इसी कारण इस देशमें बीज नहीं बोते। जहां बीज बोये जाते हैं वहां फूलमें संकरीकरण रीतिका प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारकी गांठें उत्पन्न करनेवाले पौदे उत्पन्न किये जाते हैं।

४—गांठके घटक

पौदोंमें आङ्गारक और अनाङ्गारक दोनों प्रकारके पदार्थ होते हैं। आङ्गारक पदार्थोंमें ओषजन, नत्रजन, उज्जन और कर्बन मुख्य हैं। वैसे ही अनाङ्गारक पदार्थोंमें पोटासियम, केल्सियम, मेग्नेसियम, फास्फोरस, गंधक और लौह प्रधान हैं। इन्हीं मौलिकोंसे प्रायः सभी पौदे बने हुए हैं। इन दस तत्वोंके आपसके संयोगसे अनेक यौगिक बनते हैं, जिनमें 'कर्बोज, सफेदीवाले (एल्बूमेनाइड), राख, और पानी मुख्य हैं। आलूकी गांठोंमें भी यह पदार्थ पाये जाते हैं। 'कर्बोजोंमें मांडी, खांड, काष्टोज आदि और रेशे (फाइब्रिन), दुग्धोज, (केसीन) आदि हैं। गांठोंका पृथक्करण करनेपर १०० भागोंमें इस भांति पदार्थ पाये गये।

पानी ७५ भाग, मांडी २१ भाग, प्रोटीन २$\frac{१}{२०}$ भाग, स्नेह (फैट) $\frac{१}{१०}$ भाग, राख १ भाग, रेशे $\frac{५}{१०}$ भाग।

इस पृथक्करण से ज्ञात होता है कि आलूकी गांठमें माडी खांड आदि कर्बोज (कार्बोहाइड्रेड) तो शरीर में गरमी उत्पन्न करनेवाले हैं और 'प्रोटीन'

अर्थात् सफेदीवाले बल फुर्त्ती देते हैं। इस हेतु प्राणीके लिये आलूकी गांठ एक अमूल्य खाद्य वस्तु है।

आलूकी राख तथा रसमें पोटाश, सोडा, लाइम (चूना), मेग्नेशिआ और लोहेके ओषिद पाये जाते हैं, जिनमें पोटास मुख्य है। आलूके रसमें खारके संग अम्ल भी पाये जाते हैं।

५—आलूकी खेतीके उपयुक्त धरती

आलूका पौदा वास्तवमें जङ्गली है। इसलिये सब प्रकारकी धरतीमें पौदा हो सकता है। मटियार, दुमट, भूड़ा सब प्रकारकी धरती उसके कामकी है। धरतीका अन्तर पड़ नरम होना चाहिये कि जिसमें जड़ घुस सके और वहांकी तरी द्वारा अपना आहार भी ले सके। जिस खेतकी मिट्टीके ढेले हाथसे दबानेपर बिखर जायँ और जो मुलायम और गहरे दलकी हो तो वह आलूके बहुत अयुक्त होती है। जो धरती नदी बरामद हो, पर मटियार भी हो, तो उसमें अच्छी जुताई कमाईसे पानी भरे न रहनेपर गांठोंकी फसल अच्छी हो सकती है। जिस धरतीमें पानी भरा रहता है वह आलूके पौदेके लिए उपयोगी नहीं होती। जिस धरतीमें कुछ खटास और चूनेका अंश होता है, वह अच्छी मानी जाती है। मिट्टीमें यदि सड़ी गली वनस्पतिके अंश विशेष हों अथवा दलदली धरतीमें आङ्गारक पदार्थ अधिक हों तो चूनेके अंशकी आवश्यकता होती है। परन्तु चूनेके अधिक होनेसे गांठोंमें रोग पैदा हो जानेकी सम्भावना रहती है। बम्बई प्रान्तमें इटेली देशसे गांठोंको मंगाकर बोते हैं। इस कारण सूरत पूना महाबलेश्वर आदि स्थानोंके आलू प्रख्यात हैं। इसका एक कारण यह भी है कि वहां 'पोटाश' का अंश धरतीमें अधिक है। रेतीकी मिलावटवाली, काली वा लाल धरतीमें तथा चाक खड़िया के मेलवाली धरतीमें आलूकी काश्त हो सकती है। यह कहा जाता है कि लाल धरतीमें पैदावार अच्छी होती है। जिस धरतीमें रेत मिली हो और जो मोटे दलकी हो (जिसमें जड़ सुगमता से नीचे उतर सकती है और तरीको पा सकती है) पर जिसके भीतरी भागमें जल न भरा हो और जिसमें 'पोटाश' वा चूनेके अंश भी हों, तो वह धरती, पहाड़ी भी हो तो भी, आलूकी खेतीके कामकी होती है।

६—जुताई

आलूकी अच्छी पैदावारके लिए यह आवश्यक है कि धरतीको गहरा जोते, जिससे खेतकी मिट्टी नीचेसे ऊपर तक महीन और मुलायम हो जाय। यूरोपमें जर्मनीका देश आलूकी खेतीमें चढ़ बढ़कर है। इसका कारण यही है कि वहां खेतको महनतसे शोधित रीतिसे जोतने और कमाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। धरतीकी मिट्टीको नरम और महीन बनाकर और हरी खाद देकर उसकी कम हुई उर्वरा शक्तिको ही नहीं बढ़ा लेते वरन् आलूकी पैदावारको भी अधिक और अच्छी कर लेते हैं।

यूरोपके देशोंमें शरद् ऋतुमें जो वहांकी खिज़ां
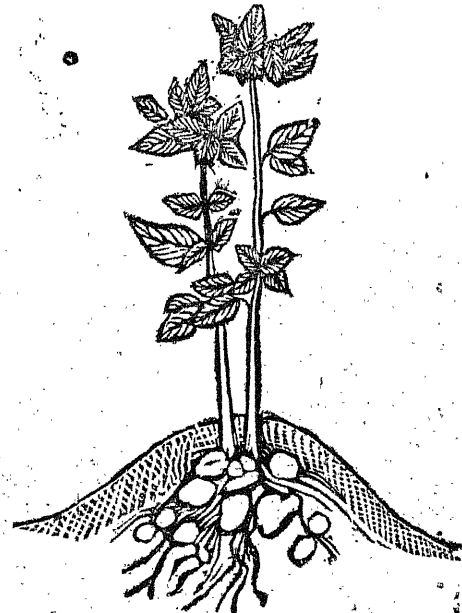
चित्र २३—आलूका पौदा

है, धरतीमें हल चला देते हैं, खेतमें उगी घास पात-

को उखाड़ कर दूर कर देते हैं और मिट्टी भुर भुरी कर देते हैं और फिर उसको सर्दीके दिनोंमें गहरी जोत देते हैं। पहाड़ी भागोंमें जहांकी धरती नरम रोड़ोंसे बनी है वहां वसंत ऋतुमें खेतको आड़ा तिरछा जोतते हैं। इसी रीतिसे वनस्पति अंशवाली 'पीट' व लाल धरतीको भी जोतकर कमाते हैं। मटियार धरतीको, सूख जानेपर बसंत ऋतुमें उसी रीतिसे कमाकर ठीक करते हैं। मटियारके भीगे होनेपर उसका कमाना कष्ट साध्य होता है। ऐसी भारी धरतीमें सर्दीके आरम्भमें गोबरका बना खाद देकर हल वा कुदाल फावड़ेसे खोद देते हैं। खेतको वैसा ही छोड़ देते हैं। सर्दीकी ऋतुमें ओस पाला वायु आदिके प्रभावसे मिट्टीके ढेले बिखर जाते हैं और मिट्टी मुलायम हो जाती है। गरमीके दिनोंमें दुबारा हलसे वा फावड़ेसे जोत या खोद देनेसे मिट्टी महीन होजाती है।

इस देशमें धरतीको देशी हलसे १० वा १२ दफे जोतकर नरम और महीन करते हैं। जो भारी और गहरा जानेवाला हल होता है तो थोड़ी ही जोतसे काम चल जाता है। हलसे जोतनेके बाद पटेला फेरते हैं, जिससे डले टूट जाते हैं और धरती नरम हो जाती है। खेतमेंसे घास कूड़ा पतवार निकालनेके लिये खेतमें हेंगा या दन्ताल फेरते हैं। जो कदाचित् इतना करने पर भी ढेले पूरे नहीं टूटते तो फिर मोगरियोंसे काम लिया जाता है, पर इसमें बहुत महनत और खर्च होता है। खेतकी मिट्टी ७ वा ८ इंच गहरी जुत जाने और महीन होजाने पर खाद फैलाकर हल चला दिया जाता है

७—खाद

खानेकी चीज़ें प्राणियोंकी वृद्धि और पोषणके लिए आवश्यक हैं वैसे ही वनस्पतियोंके लिये भी भूमिमें उचित पौष्टिक पदार्थोंकी ज़रूरत होती है। भोजन तथा जल न मिलनेसे प्राणी जैसे धीरे धीरे क्षीण होता और अन्तमें नष्ट हो जाता है, वैसे ही पौदे भी, भूमिमेंसे खुराक और तरी न मिलनेपर, सूखकर नष्ट होजाते हैं। पौदोंके लिये धरती खुराकका भण्डार है। इसीलिए जब पौदोंकी खुराकके उपयुक्त कोई पदार्थ कम हो जाता है तो वह खादके द्वारा धरतीमें पहुँचाया जाता है। आलूके पौदेमें पोटाश चूना आदि क्षार पाये जाते हैं। यह क्षार धरतीमें कम हो जानेपर पौदा वृद्धि नहीं पा सकता। इसी लिए इन पोटाश आदिको धरतीमें पहुँचाना पौदेकी बढ़वारके लिये ज़रूरी है।

पोटाश, चूना आङ्गारक पदार्थ आदि भूमिमें पहुँचाना मात्र ही काफी नहीं है, वरन् इनका ऐसी अवस्थामें होना भी आवश्यक है कि पौदा उन्हें ग्रहण कर सके। आलूके पौदेमें नत्रजन, पोटाश, चूना, गंधकाम्ल आदि पाये जाते हैं। इस हेतु वह खाद पौदेके कामके हैं जो इनको धरतीमें पहुँचा सकें। पशुओंके गोबर, लीद, मेंगनी, मूत्र 'गुआनो' आदिमें नत्रजन, फास्फेट और पोटाश विद्यमान हैं। इस हेतु यह उपयोगी खाद हैं। पशुओंका मलमूत्र और वनस्पतियोंकी पत्तियां सड़ा गलाकर धरतीमें दी जायं तो श्रेष्ठ है। लकड़ीकी राख और 'केनाइट' की खादसे पोटाश धरतीको मिल जाता है। सोडियम नत्रेत और अमोनिया गंधेत की खादसे नत्रजन और हड्डीके चूर्णसे 'फोस्फोरस' खेतमें पहुँच जाता है।

यूरोपमें परीक्षासे यह देखा गया है कि खेतमें पौने तीन मन आलू उत्पन्न होनेमें ४ सेर नत्रजन ४ सेर फोस्फेत और ६॥ सेर पोटाश खर्च हो जाता है। इन पदार्थोंकी कमी को वही खाद दूर कर सकते हैं जिनमें यह पाये जाते हैं।

मि. न्यूशाम ने जो खाद बताये हैं वह इस भांति हैं।

उन्होंने खूब सड़ा गला पशुओंके गोबर मूत्रका २८ मन खाद एक एकड़ मटियार भारी धरतीमें शरद ऋतुमें दिया था और हलकी धरतीमें वसन्त ऋतुमें पौने तीन मन 'सल्फेट अमोनिया' और ७ मन 'सुपर्फास्फेट' खूब मिलाकर गांठोंके बोनेके समय कूंडोंमें बुरक दिया था। इससे फसल

अच्छी हुई थी। दूसरा खाद जिसका उन्होंने प्रयोग किया वह ७ मन 'केनाइट' वा २ मन 'सल्फेटपोटाश' प्रति एकड़ है, परन्तु इस खादका मिलना कठिन है और दूसरे देशी किसान खरीद नहीं सकते। आलूके लिये 'पोटाश' मुख्य खाद है। इस हेतु उन्होंने लकड़ीकी राख और भाड़ भट्टी चिमनी वगैरह पर जमा हुआ धूएंका धूमसा बताया है। यह राख धूमसा गोबरके सड़े खादमें मिलाकर बोनेके समय कूंडमें डाले जायं तो लाभदायक होते हैं। हलकी धरतीमें ४ मन 'जिप्सम' और २॥ मन मामूली नमक प्रति एकड़ लाभ प्रद होता है।

स्काटलेण्डके कृषि कालिजकी परीक्षासे देखा सिद्ध हुआ है कि यदि २७५ मन गोबरके खादके साथ ५५ से ९१ 'सुपर्फास्फेट' व १॥ से २ मन 'अमोनिया सल्फेट' तथा २ मन 'पोटाश सल्फेट' मिलाकर दिया जाता है तो यह मिश्रण आलूकी फसलको सर्वश्रेष्ठ साबित होता है। हड्डीका महीन चूर्ण और 'सोडा नाइट्रेट' अर्थात् चिली देशका शोरा प्रथम नराईके पीछे पौदोंकी जड़के पास बुरकते हैं।

इस देशके किसानोंके लिये तो पशु मलमूत्रका खाद जो सड़ा गलाकर काममें लाया जाय तो फायदा रह सकता है। इसके साथ राख, धुमासा, सूखे पत्तोंसे बना खाद, अण्डीकी खली आदिको मिलानेसे अच्छा और सस्ता खाद बन जाता है। प्रति एकड़ २०० मन गोबरका खाद, ५ से १ मन तक राख, या ३ या ४ मन हड्डी का चूर्ण मिलाना चाहिये।

शोरेमें नत्रजन बहुत है, इस लिए दस बारह मन अंडीकी खलीके संग छः सात मन शोरा मिलाकर प्रति एकड़के हिसाबसे बोनेके समय कूंडोंमें बुरककर ऊपरसे हलकी मट्टी ढक देनेसे भी अच्छा खाद लगजाता है। आंधीझाड़ेके पौदे बीजोंसे उत्पन्न कर हरे भरे हलचला कर धरतीमें मिला देनेसे 'पोटाश' का काम दे जाते हैं, क्योंकि आंधीझाड़ेमें पोटाश ज्यादा होता है। सूरजमुखी, जुआर, मक्का आदिकी पेड़ामें भी 'पोटाश' होता है।

८—बीज वा गांठसे फसल

आलूकी अच्छी और पूरी फसल लेनेके लिये धरतीकी गहरी जोत और कमाई जैसी जरूरी है उससे बढ़कर बीजकी जाति और छांट है। जितना बीज अच्छा और भरा पूरा होगा उतनी ही फसल अच्छी होगी। यहांपर बीज शब्दसे फलमें उत्पन्न हुआ वास्तविक बीज और आलूकी गांठ दोनोंसे तात्पर्य है। इस भेदको स्पष्ट करनेके लिये बीजको बीज और गांठको गांठबीज जानना चाहिये। इस देशमें आलूमें पौदेपर फूल बहुत कम लगते हैं पर शीतल देशोंमें होते हैं। प्रत्येक फूलमें नर व मादा (पुंकेसर और स्त्रीकेसर) होती है, जिनमें पुंपरागका स्त्री रजके खिलनेपर संयोग होनेसे बीजकोषमें बीज पड़ता है और फलकी उत्पत्ति होती है। फलके पकनेपर उसमेंसे बीज लेकर बोये जाते हैं। आलूके फूलमें कभी कभी पुंकेसरका खिलना और पराग देना तथा स्त्रीकेसरमें रज निकलना एक साथ नहीं होता। इस कारण फलकी उपज कम होजाती है। ऐसी दशामें होशियार माली एक जातिके फूलके परागको दूसरी जातिके रजपात्र पर चढ़ा एक मिश्रित जातिका बीज उत्पन्न करते हैं, जिनको बोनेसे एक और जातिकी गांठ पैदा हो जाती है। यह रीति 'संकरीकरण' नामकी पुस्तकमें सविस्तर दीगई है। पौदेमें फल लगते हैं तो उनको पत्तोंके पूरे पकजानेपर तोड़कर रेतेमें दाबदेते हैं, जहां वह मुरझा जाते हैं। फलमेंसे बीज निकाल लेते हैं। जो बीजोंमें गूदा लगा होता है तो पानीसे धो, पोंछ और सुखा पेकट बना रखते हैं। एक फलमें दो सौ तीन सौ तक बीज होते हैं। बीघा दो बीघा

चित्र २४—फल और बीज

खेती करने वालेके लिये दो वा तीन फलोंके बीज काफी होते हैं। "जो एक पौदेके सब फूलोंमें संकरीकरण किया जाता है तो अनेक फल लगनेसे लाखों बीज हो सकते हैं और उनसे सैकड़ों बीघे धरतीमें एक नई मिश्रित जातिके आलू होसकते हैं। काठकी पेटियोंमें दुमट मिट्टी को थोड़ा रेत और वनस्पतिका सड़ा गला खाद मिलाकर भरदेते हैं और उसमें उन बीजोंको बोते हैं और पेटियोंको गरमी और प्रकाशमें रखते हैं। पौदोंके कुछ उग आनेपर उनकी पौदोंको वानस्पतिक खाद लगी हुई धरतीमें एक वा पौन हाथके अन्तरसे लगाते हैं। इन पौदोंके बढ़नेपर जो गांठें लगती हैं उनमेंसे भरी पूरी गांठको गांठ बीजका काम देनेको जुदा रखते हैं। छांटकर जुदी रखी गांठोंको लगानेसे जो नई गांठें पैदा होती हैं उनमेंसे फिर छांटकर गांठोंको गांठबीजके काममें लाते हैं। जब इस प्रकार गांठोंको छांटकर लगानेमें दो तीन वर्ष बाद गांठ उतर जाती है तो फिर पौदेके फूलमें संकरीकरण रीति द्वारा बीजको सुधारकर अच्छी गांठें पैदा करते हैं।
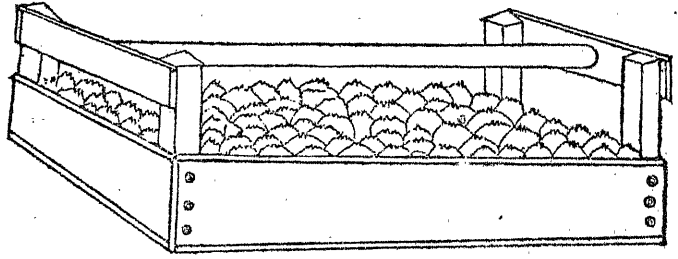
जिन पौदोंमें फूल फल नहीं लगते या कमज़ोर लगते हैं और बीज नये पौदे उत्पन्न करनेमें असमर्थ होते हैं तो ऐसे पौदोंसे अच्छी फसल लेनेके लिये उनको इस रीतिसे सुधारते हैं। जब पौदोंमें गांठ लगना शुरू होता है तो गांठोंको तोड़ लेते हैं, जिससे पौदेका कुल ज़ोर गाँठोंकी वृद्धिमें न लगकर फूल फल पैदा करनेमें लग जाता है और पौदेमें फूल फल लग जाते हैं वा ज़ोरदार होजाते हैं और फिर उनके बीजोंसे उम्दा गांठ पैदा करनेवाले पौदे पैदा हो सकते हैं। परन्तु यह पौदे प्रथम वर्ष बहुत छोटी गांठें देते हैं। इस लिये वह गांठ बीजके काम नहीं आतीं। तीसरी व चौथी साल जाकर गांठ अपने पहिले आकारकी होने लगती हैं।

एक फलके बीजोंसे जैसे अनेक पौदे पैदा किये

चित्र २४—अंकुरित करनेकी पेटी

जाते हैं वैसे ही एक गांठसे भी बहुतसे पौदे हो सकते हैं। मि० न्यूशामके कथनानुसार आध पावकी आलूकी गांठमें औसतसे दस बारह आंखें होती हैं और प्रत्येक आंखमें छः तक कलियां मानें तो प्रत्येक गांठमें साठसे बहत्तर तक कली होती हैं। इन कलियोंको जुदा बोया जाता है तो पौदा हो जाता है। इन कलियोंको प्रथम छोटे छोटे घमलोंमें लगाते हैं और जब अंकुर छः इंच ऊंचे हो जाते हैं तो उनके फुलकोंको काटकर जुदे घमलोंमें लगाते हैं और उनको ६५ से ७० दर्जेकी गरमीमें रखते हैं जिससे वह जड़ पकड़ लेते हैं। यह पौदे जब ढाई तीन इंचके होते हैं तब इनकी फुलक काट जुदा लगाते हैं। यह कलम लगानेकी रीति उस समय तक काममें लाते हैं जब तक कि पौदा नरम रहता है। उसमें कुछ कड़ापन आते ही पौदेको घमलेमेंसे उठा खुली कियारियोंमें लगाते हैं। उन ही महाशयका कथन है कि किसानको चाहिये कि थोड़े आलू लेकर उपर्युक्त रीतिसे खेतीकर लाभालाभका अनुभव करे।

हमारे देशमें प्रायः गांठ बीजको ही लगाकर आलूकी फसल करते हैं, इस लिये फसलको अच्छी करनेके लिये गांठ बीजको छांटना मुख्य काम है। एक खेतकी उपजकी गांठको उसी खेतमें बोनेसे आलूकी जाति व पैदावार दोनों उतर जाती हैं। इसलिये जहांके आलू प्रख्यात हों वहांकी गांठोंको मंगवाकर बीजके काममें लाना अच्छा है। गांठोंकी

सजीवता और उनकी दृढ़ बनावटको देखना चाहिये। जो गांठें अधिक पक जाती हैं उनमें मांड़ीका भाग अधिक हो जाता है और ऊपरका छिलका नसोंका जाल बन जाता है, जिससे गांठें उबालकर खानेके कामकी तो अवश्य रहती हैं पर बोनेसे पौदा ठीक नहीं पैदा होता। जब गांठोंमें मांड़ी तो बहुत बनी न हो पर नत्रजन विशेष मात्रामें हो उस समय गांठोंको निकाल लेते हैं। यह लक्षण पौदेकी पत्तियोंके पीला पड़नेसे पूर्व ही होते हैं। आलूके उबालनेपर उसके गूदेमें मोमकाला चिम्मड़पना तथा द्रवताका कम करना अभीष्ट होता है तो खादमें 'फास्फेट' और 'पोटास' की मात्रा बढ़ा देते हैं और नत्रजन की मात्रा कमकर देते हैं। गांठोंको बोनेसे पहले 'फार्मेलिन'के घोलमें (एक सेर फारमेलीन १८ सेर पानीमें) डोबकर सुखा लेनेसे कई रोग दूर रहते हैं।

पौदा उत्पन्न करनेमें गांठोंको दो रीतिसे काममें लाते हैं। प्रथम तो गांठोंको ज्योंकी त्यों साबुत लगाते हैं। दूसरे उनको काटकर बोते हैं। जब गांठको साबुत ही लगाते हैं तो रोग रहित और तोलमें चार तोलेसे आठ तोले तककी गांठें छांट

चित्र १६—आलूकी जड़ और गांठ

ली जाती हैं। पूरी गांठको बोनेमें दो आंखोंको छोड़ बाकीकी निकाल लेते हैं। इससे हलकी गांठ बोनेके कामकी नहीं होती हैं। जो आठ तोलेसे तोलमें अधिक हैं तो काटकर उनके दो तीन टुकड़े करके बोते हैं। प्रत्येक टुकड़ेमें कमसे कम दो आंखें रखते हैं और टुकड़े करनेमें सिरेकी तरफसे बीचकी ओर को काटते हैं पर आड़ी नहीं काटते। खेतसे निकली ताजी गांठोंको नहीं बोते, क्योंकि उनके गल सड़ जाने या उनमें रोग लग जानेका भय रहता है। गांठ को काट कर कुछ दिन रखकर बोनेसे उनका घाव सूख जाता है और तुरन्त ही बोना होता है तो उन टुकड़ों पर कोयलेका चूर्ण गंधकका फूल या फुका चूना बुरक देते हैं। गांठोंको काट कर बोनेसे पौदा बहुत जल्द बढ़ता है जब कि पूरी गांठ बोनेसे समय लगता है। कटी गांठोंको जो शीघ्र ही नहीं बोते तो उन टुकड़ोंको धरती पर छायामें फैलाये रखते हैं। बोरोंमें भरने या ढेर लगाकर रखनेमें उनके सड़ जानेका भय रहता है।

शोरा १ सेर, 'सल्फेट अमोनिया' १ सेर १ मन पानीमें घोलकर उसमें आलूकी गांठोंको भिगो कर सुखा लेते हैं, जिससे उनको धरतीमें बोनेपर रोग नहीं लगता।

(असमाप्त)

विज्ञान और आविष्कार

सर जगदीश चन्द्र बसुने बम्बईमें ३ री जनवरीको "विज्ञान और आविष्कार" पर एक व्याख्यान दिया। प्रोफेसर पी० गेडीज़ सभापति थे। विद्यार्थियों और अन्य लोगोंकी अच्छी भीड़ थी।

व्याख्यानके आरम्भमें बसु महोदयने कहा कि तीन वर्ष हुए जब कि मुझे ज़ेवियर कालेज तथा अन्य कालेजोंके कुछ विद्यार्थियोंसे बात चीत करनेका अवसर मिला था। इस समय यद्यपि ठहरनेका समय बहुत कम है तथापि विद्यार्थियोंसे फिर

मिल लेना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं; क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारतका भविष्य उन्हींके हाथमें है। यही भारतके विधाता हैं। सयाने लोगोंने वर्षों काम किया। अब समय है कि वह आराम करें और युवकवृन्द उनके कामको संभालें। एक विचारसे हम लोग अमर हैं; क्योंकि हमारे शरीर भले ही नष्ट हो जायं परन्तु हमारे विचार, प्रयत्न और आदर्श सदाके लिए जीते रहेंगे।

वसु महोदयने कहा कि वैज्ञानिक खोज करते समय पहली बात जो ध्यान देने योग्य है यह है कि अपने उद्देश्यको सदा सामने रखो और अपने देशकी सेवा करनेका विचार सबसे प्रधान मानो, जिससे कि हमारा देश संसारके अन्य देशोंके साथ फिरसे उचित स्थान प्राप्त कर सके। अपने देशकी सेवा करनेका एक ढंग यह है कि हम अपनी बुद्धिको सतत मनोयोग द्वारा तीव्र बनावें।

इसके बाद वसु महोदयने उस कामके सम्बन्धमें कहा जिसे उन्होंने २० वर्ष पहले अदृश्य जीवनकी खोजके लिए आरम्भ किया था और जिसमें वह बहुत दिनोंके बाद सफल मनोरथ हुए। विद्यार्थियोंको समझाया कि उन्हें भी वैसे ही धीरजके साथ काममें लगा रहना चाहिये।

जगदीश महोदयने कहा कि २० वर्षसे मैं यह जाननेकी खोजमें था कि प्राणी जीवन और वनस्पति-जीवनमें समानता है कि नहीं। परन्तु कठिनाई यह थी कि वनस्पति तो अधिकांशमें निष्क्रिय और निश्चल जान पड़ती हैं और यह सच भी है कि उनकी गति सीमा बद्ध है। इसलिए ऐसे यंत्रके ढूंढ़ निकालनेकी आवश्यकता पड़ी जो पौदों की फड़कन खूब बढ़ाकर दिखा सके और एक सेकन्डके सहस्रांश समयमें उनमें जो घटना घटती है उसका पता लगा सके। यह जाननेके लिए अत्यन्त सूक्ष्म गतियोंके नापने और लिखनेकी आवश्यकता पड़ी। कभी कभी तो प्रकाशकी एक तरंगकी* लम्बाईसे भी कम दूरी नापनी पड़ी है। इतना करने पर पौदोंने अपने जीवनका रहस्य अपनी ही लेखनीसे लिख दिया। इन खोजोंने यह सिद्ध कर दिया कि पौदों और जीवधारियोंकी जीवन क्रियाओंमें (life reactions) एकता है। क्योंकि पौदे और जीवधारी सोते हैं तब दोनों ही संज्ञाहीन हो जाते हैं और जब उनकी मृत्यु होने लगती है तब भी दोनोंमें ही मृत्युकी फड़कनें देखी जाती हैं। इन दो बातोंमें ही समानता नहीं है, जीवधारियोंमें जिस प्रकार हृदयकी फड़कन अपने आप होती है वैसी ही फड़कन पौदोंमें भी पायी जाती है और उत्तेजकों, बेहोश कर देनेवाली ओषधियों तथा विषोंका जो प्रभाव जीवधारियों पर पड़ता है वही पौदों पर भी पड़ता है।

मैगनेटिक क्रेस्कोग्राफ

एक एक क्षणमें पौदे कितना बढ़ते हैं और उनमें क्या क्या परिवर्तन होते हैं इसका पता लगानेके लिए क्रेस्कोग्राफ नामक यंत्र तैयार किया गया है, जो पहले दस लाख गुना बढ़ाकर बातें बतलाता था और अब डेढ़ करोड़ गुना बढ़ाकर बतला सकता है। यदि बहुत धीरे धीरे रेंगनेवाले कीड़ेकी चाल इसी हिसाबसे बढ़ायी जा सके तो वह २४ घन्टेमें सारी पृथ्वीका चक्कर २०० बार कर आवे। यह सोचा जा सकता है कि ऐसा नाज़ुक यंत्र ऐसे उद्योगी नगरमें तनिक धक्केसे अस्त व्यस्त हो जायगा। परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि इसमें ऐसी युक्ति रखी गयी है कि बाहरी सूक्ष्मसे सूक्ष्म धक्के का इसपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता, जैसा कि

---

* प्रकाशकी बड़ीसे बड़ी एक तरंग की लम्बाई $\frac{७६२१}{१००००००००}$ शतांश मीटर और छोटीसे छोटी एक तरंगकी लम्बाई $\frac{३७२८}{१००००००००}$ श० मी० है। यह ध्यान रहे कि १०० इंच = २५४ श० मी०

(वाटसन)

प्रकाश-चिन्होंसे दिखाई पड़ता है जो एक ही जगह स्थिर है। उदाहरणके लिए वसु महोदयने अपने यंत्रमें धातुके टुकड़े लगा दिये। पीतलके एक इंच लम्बे टुकड़ेका ताप यदि एक अंश बढाया जाय $\frac{1}{50000}$ इंच बढ़ जाता है, जो प्रकाशकी एक तरंगकी लम्बाईके समान है। यदि एक जलती हुई मोमबत्ती तीन फुटकी दूरीपर रखी जाय तो उससे ताप एक अंशके हज़ारवें भागसे भी कम बढ़ेगा। इस लिए इस मोमबत्तीके कारण पीतलके टुकड़ेकी बाढ़ प्रकाशकी एक तरंगके हज़ारवें भागसे भी कम होगी। क्या यह सूक्ष्म बाढ़ भी नापी जा सकती है? उत्तरमें कहा जायगा कि 'हां'।

इस यंत्रमें पौदेका एक टुकड़ा लगाया गया। प्रकाश-चिन्ह तुरन्त हट गया जिससे सिद्ध हुआ कि पौदा बढ़ रहा है। इसके बाद पौदा क्लोरोफ़ार्मकी बहुत हलकी भापमें रखा गया, जिससे बाढ़को बहुत बड़ी उत्तेजना मिली। परन्तु यह बाढ़ कुछ देरके बाद रुक गयी और इतने ज़ोरसे सिकुड़न पैदा हुई कि जान पड़ने लगा कि मृत्यु आगयी।

वसु महोदयने कहा कि पौदेमें बढ़नेवाले तंतु ही नहीं होते; इनके अंग प्रत्यंगमें चेतनता भी होती है। हम इनके जीवन की बाढ़को और फड़कनको अंकित कर सकते हैं और यह भी देख सकते हैं कि किन किन अवस्थाओंमें यह फड़कन कम होती है और किन किनमें अधिक और मृत्यु हो जाने पर सबमें रुक जाती है। हम यह भी जान सकते हैं कि पौदेके अनेक अंग एक दूसरेसे वाहक सूत्रों (conducting threads) द्वारा इस प्रकार जुड़े हुए कि यदि एक स्थान पर उत्तेजना पहुंचायी जाय तो वह सारे पौदेमें फैल जाती है। यह स्नायविक स्फुरण (nervous impulse) अनेक ओषधियों और विषोंके द्वारा घटाया बढ़ाया और रोका जा सकता है जैसा मनुष्यमें किया जा सकता है। निचोड़ यह कि इस प्रकार अनेक बातोंमें पौदों और मनुष्यों की जीवन क्रियाएं एक सी हैं। इस लिए यह सम्भव है कि पौदोंके अनुभवसे मनुष्यके दुःख दूर किये जा सकते हैं।

—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव।

आकाशकी सैर

[ले० श्री० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद]

क्या आप जानते हैं कि रातको जो अनगिनत टिमटिमाते हुए तारे दिखाई पड़ते हैं वह क्या हैं; इनसे हमारा क्या काम निकलता है? यदि नहीं, तो प्रतिदिन घंटे आध घंटे आकाशकी सैर कीजिये और देखिये कि इनसे हमको क्या क्या जानकारी होती है। यह देख न ,घबड़ाइये कि यह तो सब एकसे ही हैं; पहचाने कैसे जायंगे और गिने कैसे जायंगे। सबको पहचानने या गिननेकी आवश्यकता नहीं है। थोड़ेसे मुख्य मुख्य तारोंको जान लीजिये। फिर जैसे जैसे आपकी जानकारी बढ़ेगी आप स्वयम् ही औरोंको जाननेकी इच्छा करेंगे। परन्तु आरम्भ कहांसे कीजियेगा? एक स्थान स्थिर कर लीजिये, जहांसे आगे पीछे, इधर उधर, चलकर सब जगह आसानीसे पहुंच जाइये। आइये वही स्थान स्थिर करें, जिसको प्रकृतिने सदाके लिए नहीं तो सैकड़ों वर्षोंके लिए स्थिर कर दिया है और जिसको लोगोंने भी ध्रुवकी पदवी दे दी है। परन्तु आकाशमें ध्रुव ठीक उत्तर दिशामें दिखाई पड़ता है। इस लिए यदि ठीक उत्तर दिशाकी पहिचान हो जाय तो ध्रुव तारेका पहिचान लेना कुछ कठिन नहीं है। इस लिए आइये पहले उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम दिशाओंका निश्चय करलें।

आप जानते हैं कि सूरज जैसे जैसे ऊपर चढ़ता है किसी आदमी या पेड़की छाया छोटी होती जाती है और जिस समय सूरज सबसे ऊपर चढ़

आता है उस समय छाया सबसे छोटी होती है और उसी कालको लोग मध्यान्ह कहते हैं। मध्यान्ह कालके पीछे छाया बड़ी होने लगती है और सांझ तक बढ़ती ही जाती है। इससे आप ठीक मध्यान्हका समय जान सकते हैं। छायाके बढ़ने घटनेके साथ साथ इसकी दिशा भी बदलती है। मध्यान्ह कालमें छायाकी दिशा ठीक उत्तर दक्खिन होती है।

उत्तर दक्खिन दिशाकी ठीक ठीक पहचान हो जाय इसके लिए त, थ, द, धके आकारका एक तख्ता लकड़ी या पत्थरका ले लीजिये। इसकी लम्बाई त, थ, एक फुटके लगभग हो और चौड़ाई त, ध, ८ इंचके लगभग हो। द, धके मध्यविन्दुसे द, धके समकोण बनाती हुई एक छोटी रेखा खींचिये और इसीपर एक विन्दु क मान लीजिये क को केन्द्र मानकर $1\frac{1}{2}$, $2\frac{1}{2}$, ३ और $3\frac{1}{2}$ इंचकी त्रिज्याके वृत्त खींच लीजिये। क विन्दुपर ५ इंच लम्बी सीधी लोहेकी कील गाड़ दीजिये जिसका ऊपरी सिरा नोकदार हो और जो तख्तेके धरातल से समकोण बनाती हो। इस कीलको आगे शङ्कु* के नामसे पुकारा जायगा।

मध्यान्हके पहले देखिये कि शङ्कु की छायाकी नोक किस वृत्त को छूरही है। वहां एक चिन्ह बना दीजिये और देखते रहिये कि छाया छोटी होती होती किस वृत्त तक पहुंचती है। जब नोक ऐसे विन्दुपर पहुंच जाय जहांसे वह आगे बढ़ने लगे वहां एक चिन्ह बना दीजिये। यह काम कुछ कठिन है। यदि यह न जाना जासके कि जिस समय छाया सबसे छोटी थी उस समय नोक कहां थी तो कुछ चिन्ता न कीजिये। देखते चलिये कि नोक बढ़ती बढ़ती फिर उस वृत्तको कहां छूती है जिस पर पहले आपने चिन्ह बनाया था। इन दोनों चिन्होंसे केन्द्रतक दो रेखाएं खींच दीजिये और जो कोण बने उसे दो समान भागोंमें बांट दीजिये। यही समविभाजक रेखा उत्तर दक्खिन दिशाको बतलाती है।* [देखिये चित्र २७]

मान लीजिये कि मध्यान्हके पहले कीलकी छायाकी नोक प विन्दुपर है जो एक वृत्तपर है। यहां एक चिन्ह बना दीजिये। छाया घटते घटते भीतर वाले वृत्तोंके भीतर चली जाती है। ऐसा हो सकता है कि उसकी नोक किसी वृत्तपर नहीं पहुंचती; फिर बढ़ने लगती है। ऐसा होनेपर आप यह नहीं बतला सकते कि वह किस स्थानपर सबसे छोटी हुई थी। परन्तु बढ़ते बढ़ते उसकी नोक उस वृत्तपर फिर पहुंचेगी जिसपर प विन्दु है। तुरन्त वहां चिन्ह बना दीजिये जहां छायाकी नोक उस वृत्तको छूती है और इस विन्दुका नाम रख लीजिये पू। प पू विन्दुओंको मिला दीजिये। यह पूरब पच्छिम रेखा है प पच्छिम विन्दु और पू पूरब विन्दु है†। क से इस रेखापर एक लम्ब गिराइये और इसको आगे भी बढ़ा दीजिये। यह उत्तर दक्खिन रेखा हुई। उ उत्तर विन्दु और द दक्खिन विन्दु है। यदि क से लम्ब रेखा डालनेमें कठिनाई जान पड़े तो प और पू को केन्द्र मानकर ऐसी त्रिज्याके दो समान वृत्त

---

* पुराने ग्रन्थोंमें १२ अंगुलके शङ्कुका प्रयोग किया गया है।

शिला तलेम्बु संशुद्धे वज्र लेपेऽपिवा समे।
तत्र शङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः सममण्डलमा लिखेत ॥१॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कु कल्पना द्वादशांगुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेयत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः ॥२॥
तत्र विन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥३॥
(सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार)

† जितने कालमें छायाकी नोक प से पू तक गयी उतने कालमें सूर्यकी क्रान्ति भी कुछ बदल गयी जिससे दिशामें बहुत सूक्ष्म अन्तर पड़ गया, परन्तु यह अन्तर इतना सूक्ष्म है कि यदि इसका कुछ विचार न किया जाय तो कोई हर्ज नहीं।

खींचिये जो एक दूसरेको काटते हों। बस इन्हीं दोनों विन्दुओंको मिला दीजिये। यही उत्तर दक्खिन रेखा होगी। इसी उत्तर दक्खिन रेखाकी सीधमें दूरतक एक रेखा खींच लीजिये जो रातको पहचानी जासके।

सूरज डूबने के घंटे डेढ़ घंटे पीछे इसी रेखा पर उत्तर की ओर मुंह करके खड़े हो जाइये और देखिये कि पृथ्वी और आकाश कहां मिलते हुए दिखाई पड़ते हैं। जहां दोनों मिलते हुए दिखाई पड़ते हैं वही क्षितिज कहलाता है। उत्तरकी क्षितिजकी ओर ध्यानसे देखिये। क्षितिजसे कुछ ऊपर दो तारे पास ही पास दिखाई पड़ेंगे। यह दो तारे लघु सप्तर्षिके शिर हैं और दिसम्बर जनवरीके महीनेमें तो, सात आठ, बजे संध्याको उत्तर क्षितिजसे थोड़ी दूर ऊपर दिखाई पड़ते हैं। क्षितिजसे जितने ऊपर यह हैं, लगभग उतने ही और ऊपर एक तारा है, जो लघु सप्तर्षिका अन्तिम तारा है। यह सर्वदा एक ही जगह ठहरा हुआसा जान पड़ता है। इसी लिए इसको ध्रुव तारा कहते हैं। उत्तर क्षितिजसे ध्रुव तारेकी ऊंचाई इलाहाबाद काशीसे २५$\frac{१}{२}$ अंश, लखनऊसे २७ अंश, दिल्ली से २८$\frac{१}{२}$ अंश, लाहौरसे ३१$\frac{१}{२}$ अंश और पेशावर से ३४ अंश है। पंजाब और काशमीरमें इस तारेकी ऊंचाई उत्तर क्षितिजसे ३० से ऊपर, राजपूताना, संयुक्तप्रान्त, नयपाल, बिहार, बंगाल, आसामके उत्तरी भागोंमें २५ से लेकर ३० अंश तक, आसाम और दक्खिनी बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, गुजरात उत्तरी बम्बई प्रान्तमें २० से २५ अंश तक, दक्षिण बम्बई प्रान्त, हैदराबाद, उत्तरी मद्रास प्रान्तमें १५ से २० अंश तक, मैसूर मध्य मद्रास प्रान्त, तंजौर इत्यादिमें १० से १५ अंशकी ऊंचाई तक जान पड़ती है।

लघु सप्तर्षिके तीन तारे जिनके बारेमें ऊपर कहा जाचुका है साथ साथ दिखाई पड़ते हैं। इन्हींके बीचमें चार तारे और हैं जिनको मिलाकर कुल सात होते हैं, जिससे इनका नाम सप्तर्षि पड़ा है। यह सातों तारे अंधेरी रातमें जब आकाश साफ रहता है दिखाई पड़ते हैं, परन्तु चांदनी रातमें पहले ही तीन दीखते हैं। इनसे थोड़ी ही दूर पूरबकी ओर दो तारे पास ही पास क्षितिजसे ऊपर उठते हुए जनवरी और फरवरीके महीनोंमें दीख पड़ते हैं। इन दो तारोंकी सीधमें ही ध्रुव तारा दिखाई पड़ता है। इसीलिए यह दो तारे सूचक (pointers) कहलाते हैं। यह सूचक उन सात तारोंमेंसे हैं जिनको लोग सप्तर्षि कहते हैं। फरवरीके अंतमें यह सातों ईशान कोण (उत्तर पूरब) की क्षितिजके ऊपर उठे हुए दिखाई पड़ेंगे। इन सात तारोंको सप्तर्षि कहते हैं और जिन सात तारोंमें ध्रुव है उसको लघु सप्तर्षि कहते हैं। इन दोनोंकी स्थिति चित्र २८ से जान पड़ती है।

इन दोनों सप्तर्षियोंको कुछ दिनतक ध्यानसे देखा जाय और यह जान लिया जाय कि यह किस समय किस दिशामें रहते हैं तो इनके द्वारा रातके किसी समय भी यह जाना जाता है कि क्या बजा है। इसलिए इनसे घड़ीका काम लिया जासकता है। कोई कोई इनको आकाशीय घड़ी कहते भी हैं। इसकी चर्चा किसी अन्य लेखमें की जायगी। इस समय तो पूरबकी क्षितिजकी ओर ध्यानसे देखना चाहिये जहां एकसे एक बढ़कर तारा मण्डली दिखाई पड़ रही हैं। पूर्वमें हन्नी हन्नाका उदय हो चुका है और यह कुछ ऊपर उठ आये हैं। तीन तारे तो पास ही पास हैं; इन्हींके चारों किनारों पर उत्तर दक्खिन दो दो तारे चारपाईके पायेकी भांति दिखाई पड़ते हैं। इस मण्डलीको मृगशिरा नक्षत्र कहते हैं, जिनको गांववाले हन्नी हन्नाके नाम से पुकारते हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह तारे रातको तीन चार बजे पच्छिमकी ओर दिखाई पड़ते हैं। इसी लिए खेतिहर इन्हींको देखकर समयका अनुमान करते हैं और सवेरा होता हुआ समझकर अपने अपने काममें लग जाते हैं। पूस माघके महीनोंमें

यह हस्ती हस्ता खेतिहरोंके बड़े कामके होते हैं। जेठके महीनोंमें सूर्य भी घूमते घूमते इन्हीं तारोंके आसपास आजाते हैं। उस समय प्रचंड गरमी पड़ती है। लोग कहते हैं कि मृगशिरा तप रहा है। लोगोंका विश्वास है कि जब मृगशिरामें सूर्य खूब तपता है तब बरसात अच्छी होती है। छः हज़ार वर्ष पहले सूर्य देवता जब इस मृगशिरा तारा मण्डली (नक्षत्र) में आते थे तब बसन्तका आरम्भ होता था और तभी देवताओंका दिन आरम्भ होता था। उस समय सारे संसारमें रात दिन समान होता था। परन्तु अब तो बसन्तका आरम्भ बहुत पहले हो जाता है। इस बातको बड़ी ही विवेकपूर्ण समालोचना लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने ओरायन (orion) नामक ग्रन्थमें बड़ी ही विद्वत्ताके साथ की है। उस ग्रन्थका नाम ओरायन अथवा अग्रहायण इसी लिए रखा है कि अंग्रेज़ीमें मृगशिराको ओरायन कहते हैं। वेदोंमें इस मृगशिरा का वर्णन अनेक स्थानोंमें हुआ है, जिनसे लोकमान्यने यह सिद्ध किया है कि वेदका वह काल कमसे कम आजसे छः हजार वर्ष पहले का था। इस प्रमाणसे उन पाश्चात्य विद्वानोंकी बातें उलट गयी जिनसे वह सिद्ध करते थे कि वेद ईसाके दो हज़ार वर्ष पहलेके बने हैं।

मृगशिरा नक्षत्रके नीचे कुछ उत्तरकी ओर हट कर दो तारे पास पास दिखाई पड़ते हैं। यह पुनर्वसु कहलाते हैं। अंग्रेजीमें एक को कैस्टर (castor) और दूसरेको पोलक्स (pollux) कहते हैं। पुनर्वसुसे कुछ दक्खिनकी ओर पूर्वक्षितिजके पास ही पुष्य नामक एक तारा दिखाई पड़ता है। इसको अंग्रेजीमें प्रोसियान (Procyon) कहते हैं। पूर्वसे कुछ दक्खिनकी ओर बढ़िये तो एक बड़ा चमकदार तारा दिखाई पड़ेगा। इसका नाम लुब्धक है। अंग्रेजीमें इसको Sirius कहते हैं। आकाशमें जितने तारे हैं उनमें यह सबसे अधिक चमकदार है।

पूरबकी क्षितिजसे आँखें हटा कर ठीक ऊपर की ओर ले जाइये। छः सात तारे बहुत पास पास दिखाई पड़ेंगे। इनका नाम कृत्तिका है। गाँव वाले इसको 'कचपचियां' कहते हैं। इनसे भी यह लोग समयका अन्दाज़ा करते हैं। एक समय ऐसा भी था जब कृत्तिका ठीक पूर्वमें उदय होती और पच्छिममें अस्त होती थी। अब तो यह कुछ उत्तर हो गयी है। कृत्तिकाके नीचे पूरबकी ओर रोहिणी नामकी तारा मण्डली दिखाई पड़ती है। इसका एक तारा बहुत चमकदार है और कुछ लाल रंगका है।

आज जितने नक्षत्रोंका वर्णन किया गया है उनका चित्र भी दिया जाता है। इस चित्रसे मिलान करनेपर आकाशके तारोंकी पहचान आसानीसे हो जायगी। मिलान करते समय पूरबकी ओर मुंह करके खड़े हो जाइये और चित्रको हाथमें इस प्रकार लीजिये कि दाहिना हाथ चित्रके पच्छिमी किनारेपर हो और बायां पूरबी किनारे पर। ऐसा पकड़ कर चित्रको खड़ा कर दीजिये जिससे पूरबी किनारा पूरबी क्षितिजसे लगा रहे और पच्छिमी किनारा ठीक ऊपर रहे। उत्तरी किनारा उत्तरकी ओर दक्खिनी दक्खिनकी ओर रहे। ठीक ऊपर कृत्तिका दिखाई पड़ेगी। कृत्तिकासे नीचे रोहिणी और रोहिणीके नीचे मृगशिरा इत्यादि। दो चार दिन तक इस प्रकार देखनेसे इन तारोंको अच्छी तरह पहचान लेना कठिन नहीं है। जैसे जैसे दिन बीतते जायंगे यह तारे कुछ पच्छिमकी ओर खिसकते जायंगे। कृत्तिका कुछ पच्छिमकी ओर हो जायगी। रोहिणी ठीक ऊपर दिखाई पड़ने लगेगी। परन्तु इनके परस्पर सम्बंध यही बने रहेंगे। [देखिये चित्र २६]

भारत-गीत—६७

गुरु जी ऐसा अब न करूंगा
कुटिल कुनीति कुमति के मग में पग मैं अब न धरूंगा

(२)

सुमन-माल को व्याल जान कर मन में भय न भरूंगा
अम्मृत जान गरल-रस पी पी जीते अब न मरूंगा
गुरु जी ऐसा अब न करूंगा

(३)

मायाविनि ममता का भंडा फोड़े बिन न रहूंगा
समता, सुमति, सुकृत सेवा के सुख से विमुख न हूंगा
गुरु जी ऐसा अब न करूंगा

श्रीपद्मकोट
२०-१०-२०　　—श्रीधर पाठक

देशी रंग

भारतवर्षमें विदेशी रंगोंके प्रचारके पहिले देशी रंग काममें आते थे। यहांके रंगीन कपड़े किसी समय दुनियामें अपना सानी नहीं रखते थे। पश्चिमीय देश-वासियों की आंखें उनपर ठहरती नहीं थीं। वह यहांके रंगे हुए कपड़ोंके मुकाबिलेमें अपने यहांके रंगीन कपड़ोंको तुच्छ समझते थे। इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि यहांके बहुमूल्य रंगीन कपड़े विलायतके राजा महाराजाओंकी शोभा बढ़ाते थे। किन्तु समयने पलटा खाया; इस कलाका लोप हुआ। अब हम लोग इस अवस्थाको पहुंच गये हैं कि रंग बनानेके व्यापारका पुनरुत्थान करनेमें हमें बरसों व्यतीत करने पड़ेंगे।

आजकल हमारा ध्यान अपनी खोई हुई वस्तु-को ढूंढ़ निकालनेकी ओर नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो हम अब तक अपने गये हुए व्यवसायकी उन्नतिकी ओर पैर बढ़ाते। आज दिन हम विदेशी भड़कीले रंगोंसे इस प्रकार मोहित हो गये हैं कि जब हम स्वप्न देखते हैं तब विदेशी रंग विविध रूपमें दिखाई पड़ते हैं। हमारे जीमें कभी यह खयाल नहीं आता कि हम अपने यहांकी वस्तुओंसे उत्तम रंग तैयार कर सकते हैं। हम जब ध्यान करते हैं तब टीनके डब्बे और उनपर लगा हुआ चित्रोंसे सुशोभित कागज दिखलाई देता है। रंग बनानेकी चर्चा जब उठती है तो खयाल आता है जर्मनीके रंगोंका। यह हमारी आधुनिक दशा है।

हमारे यहां जो रंग बनते थे वह वनस्पतियोंसे बनते थे या यों कहिये कि प्रकृति हमारे लिये रंगों को बना देती है। आज कलके विदेशी रंग नकली (artificial) होते हैं। असली और नकलीमें भेद होता ही है; नकली असलीकी समानता किसी हालतमें नहीं कर सकता। विदेशी रंग हमारे रंगों कीसी चमक नहीं रखते। वह देशी रंगोंके बनिस्बत

कम ही दिनोंमें फीके पड़ जाते हैं। देशी रंग सस्ते तथा पक्के होते हैं। उनको फूलों तथा वनस्पतियों से निकालना भी कठिन नहीं है, किन्तु भारतवर्ष-के और सब व्यवसायोंके साथ साथ इसका भी अंत हो गया है। जो फूल पहले रंग बनानेके काममें आते थे वह अब बेकार मुर्झा जाते हैं।

प्रकृति कामधेनु है। उसके अनन्त भाण्डारसे आप जितना चाहें निकालें, किन्तु वह घटनेवाला नहीं है। प्रकृतिके इस भाण्डारसे हमारे पूर्वजोंने बड़े बड़े रत्न निकाले थे। उन्हीं रत्नोंमें एक रत्न प्राकृतिक रंग है। यह रंग जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं कई प्रकारकी वनस्पतियोंसे, फूलोंसे, फूल की डंडियोंसे, वृक्षोंकी छाल तथा फलोंके छिलकों-से निकाले जाते हैं। इन रंगोंको निकालनेका पेशा कुछ लोगोंने इख्तियार कर लिया था। यही मनुष्य रंगोंको निकालते तथा कपड़ोंको रंगते थे। ऐसे मनुष्य प्रायः सभी गांवोंमें रहते थे। यह फसलके दिनोंमें फूलोंको चुन कर सुखा लेते थे और काम पड़नेपर उसीसे रंग निकालते थे। जहां तक मुझे ज्ञात है उस समय रंग "पैक" करके एक स्थानसे दूसरे स्थानको नहीं भेजे जाते थे, सूखे हुए फूल भले ही एक जगहसे दूसरी जगह जाते हों।

संसार रंगोंका खेल है। यहां रंगोंका कुछ ठिकाना नहीं है—जहां देखिये वहीं एक रंग दिखलाई देगा। आकाश दिन भरमें न मालूम कितने प्रकारके रंग दिखलाता है; फूलोंको विविध रंगोंसे विभूषित देख कर हमें उस परम पिता परमेश्वरका ध्यान आता है जो एक ही पृथ्वीसे, एक ही प्रकारके खादसे अनेक रंगोंकी सृष्टि करता है। कौन ऐसा मनुष्य है जो इन सब रंगोंका नाम बता सके? किन्तु एक बात बड़ी विचित्र है। इस संसारके जैसे सभी प्राणी एक परमात्माके अंश हैं; वैसे ही अंतमें सब उसीमें लीन हो जाते हैं, वैसे ही सभी रंग सफेद रंगके अंश मात्र हैं और सबको मिला देनेसे वही सफेद रंग हो जाता है।

यह बतलानेके पहले कि वनस्पतियोंसे किस प्रकार रंग निकाले जाते हैं, मैं उनका नाम बतला देना चाहता हूं:—

फूल—यों तो प्रायः सभी फूलोंसे रङ्ग निकालते हैं किन्तु उनमें मुख्य कुसुम, टेसूका फूल (पलास), हारसिंगार, बैर, धौ आदि हैं।

छाल—नासपाती, अनार, बबूल, केला, हर्रे बहेरा, आंवला, माजूफल आदि।

अन्य पदार्थ—नील, हलदी, नीलाथोथा, बकम, पतंग, रतनजोत, तूतिया, कसीस, जवाखार, सिन्दूर, सुरमा, गेरू, आदि।

रंग निकालना

रङ्ग दो प्रकारसे निकाले जाते हैं।

(१) जिस पदार्थसे रङ्ग निकालना हो उसे कूटकर साधारणतया उसके अठगुने पानी (तौल कर)में भिगो देते हैं और कुछ घंटों (२ से ६)के बाद उसे मलकर फिर आध घंटे छोड़ देते हैं। इसके बाद पानी मिले हुए रङ्गको धीरेसे निथार (Decant) लेते हैं। यह रंग अव्वल दर्जेका होता है। पुनः बर्तनकी तलछठ को पहलेसे आधे पानीमें अर्थात् जितना पदार्थ लिया गयाथा उसकेचौगुनेपानीके साथ कुछ घंटे (२ से ४) छोड़ देते हैं। तदनन्तर मलकर रङ्ग मिले हुए पानीको निकालते हैं, यह रङ्ग दोयम दर्जेका होता है। कभी कभी तीसरी बार भी रङ्ग निकालते हैं किन्तु यह रङ्ग बहुत फीका होता है। इस विधिसे उन फूलोंका रङ्ग निकाला जाता है जिनका रङ्ग गरम करनेसे फट जाता है।

(२) उपरोक्त विधिसे रङ्ग निकालनेमें समय अधिक लगता है। इससे जिन फूलों तथा अन्य पदार्थोंका रङ्ग गरम करनेसे फटता नहीं उनको निकालनेके लिए दूसरी विधि काममें लाते हैं, किन्तु इस विधिसे रंग निकालनेमें खरचा अधिक पड़ता है। जिस पदार्थसे रङ्ग निकालना होता है उसे कूट कर पानीके साथ एक कड़ाहमें रख-

कर आग पर चढ़ा देते हैं। धीमी आंचसे उसे घंटे दो घंटे गरम करते हैं। रङ्ग निकल आनेपर किसी कपड़े द्वारा रङ्ग मिले हुए पानीको छान लेते हैं। यह पहले नम्बरका रङ्ग है। इस विधिसे भी तीन तरहके रङ्ग निकलते हैं। यदि किसी पेड़की छाल या फलके छिलके या लकड़ीसे रङ्ग निकालना होता है तो यह तरीका काममें लाया जाता है। कसीस, तूतिया आदि वस्तुओंको केवल पानीमें घोल देनेसे रङ्ग बन जाता है।

कई प्रकारके फूलों तथा वनस्पतियोंके मिलाने से एक तीसरा रङ्ग तैयार होता है। ऐसे रङ्ग या तो दो तीन वनस्पतियोंको एक साथ मिला कर निकाले जाते हैं या कपड़ा रङ्गते समय कपड़ेको दो रंगोंमें रंगनेसे उसपर एक तीसरा रङ्ग चढ़ जाता है। जैसे नीलके रङ्गमें कपड़ा रङ्गनेके बाद उसे फिर हल्दीके रङ्गमें रंगे तो सब्ज़ रङ्गका कपड़ा हो जायगा। इसी प्रकार नीला तथा सुर्ख रंग मिलानेसे बैंगनी रङ्ग बन जायगा।

कपड़ोंका रंगना

रंग निकालनेके बाद कपड़ा रंगनेका नम्बर आता है। रंग तो सब कोई निकाल सकते हैं। किन्तु कपड़ा रंगना ज़रा मुश्किल काम है। उसके लिये यहां पर कुछ नियम लिख दिये जाते हैं, जिन-पर ध्यान देनेसे रंगना कुछ सहल हो जायगा। किन्तु रंगाईका काम समय तथा अनुभव पर निर्भर करता है। जो मनुष्य प्रति दिन इस कामको करते हैं वह इस काममें बड़े दक्ष होते हैं और वह जैसा चाहें रंग सकते हैं; किन्तु नौसिखोंके लिये नीचेकी कतिपय पंक्तियां लाभदायक सिद्ध होंगी।

(१) जिस कपड़ेको रंगना हो उसे पहले पानीमें अच्छी तरह भिगो लेना चाहिये, तब उसका पानी निचोड़ कर रंगमें डालना चाहिये। अन्यथा रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ता और कपड़ेमें धब्बे रह जाते हैं।

(२) कपड़ेको रंगसे निकालनेकी जल्दी नहीं करनी चाहिये। कपड़ेको रंगमें अच्छी तरह उलट पुलट कर उसमें डूबा हुआ कुछ देर छोड़ देना चाहिये, जिसमें कपड़ा रंग अच्छी तरह सोख ले।

(३) यदि एक बारमें रंग कपड़े पर अच्छी तरह नहीं चढ़े या कपड़े पर एक और दूसरा रंग चढ़ाना हो तो एक बार कपड़ा रंग कर उसे सुखा लेना चाहिये, तब उसे दूसरी बार या दूसरे रंगमें रंगना चाहिये।

रंगनेके बाद

रंगनेके बाद रंगको चमकीला तथा "खुलता" करनेके लिये कपड़ेको खटाई, फिटकिरी या चूनेके पानीमें कहीं कहीं धोते हैं। किन्तु इससे रंग धुल जानेका डर रहता है। इसलिये लोग कपड़ा रंगनेके पहले ही रंगमें खटाई डाल देते हैं। जो क्रिया कहीं कहीं रंगनेके बाद की जाती है वह कुछ जगह रंगने के पहले ही की जाती है। जिनका कपड़ा रंगना ही पेशा है उनसे पूछने पर पता चला कि कपड़ा रंगनेके पहले ही रंगमें खटाई डाल देना श्रेय है, क्योंकि ऐसा करनेसे कपड़ा रंग अच्छी तरह सोखता है। तीन प्रकारकी खटाई काममें लाई जाती हैं:—(क) दही (ख) नीबू (ग) आम। दही हल्दीके रंगके साथ मिला कर कपड़ा रंगते हैं। इससे हल्दीकी बू जाती रहती है और रंगमें चटक आ जाती है। नीबू और आमकी खटाई भी रंगमें डालते हैं। नीबूका रस और आमकी खटाईका पानी काममें लाते हैं। किन्तु कितने रङ्गमें कितनी खटाई डालनी चाहिये यह परीक्षा द्वारा जाना जा सकता है। रङ्गमें थोड़ी सी खटाई मिला कर उसमें कपड़ेका एक छोर डुबा कर देखा जाता है। यदि रङ्ग उड़ जाता है तो और खटाई डाली जाती है और यदि कपड़े पर काला दाग पड़ जाता है तो उसमें और रङ्ग मिलाते हैं। रङ्ग जब न उड़े न काला हो तब जानना चाहिये कि खटाईकी मात्रा ठीक है और रङ्ग कपड़ा रङ्गनेके काममें लाया जासकता है। आमकी खटाई निकालना कोई बड़ी बात नहीं है। कच्चे आमको पानीमें रख छोड़नेसे उसकी सब खटाई पानीमें चली जाती है।

कपड़ा सुखाना

वानस्पतिक रंगोंसे रङ्गे गये कपड़ोंको छायेमें सुखाना चाहिये; क्योंकि धूपमें सुखानेसे या तो उनके रङ्ग उड़ जाते हैं या फीके पड़ जाते हैं। विशेषतः नीलके रङ्गमें रङ्गे हुए कपड़े धूपमें सुखाये जाते हैं।

रंगोंका पक्का करना

वनस्पतियोंसे जो रङ्ग निकालते हैं वह साधारणतः कच्चे होते हैं। धोनेसे वह कपड़े परसे जाते रहते हैं। इस लिये उन्हें पक्का बनानेकी आवश्यकता पड़ती है। यहां वहां पूछने पर ज्ञात हुआ कि वनस्पतियोंसे रङ्ग निकालते समय यदि उसमें मजीठ डाल दिया जाय और दोनोंका रङ्ग एकसाथ निकाला जाय तो पक्का रङ्ग निकलेगा।

नीलका रंग

नीलसे रङ्ग बनानेकी एक देशी रीति पं० लक्ष्मीधर बाजपेयीने "विद्यार्थी" में छपवाई थी। उसे यहां मैं "विज्ञानके" पाठकोंके लाभार्थ उद्धृत करता हूं:—

२० तोले नीला थोथा; ४० तोले नील (सफूफ किया हुआ), २० तोले पापड़खार, २० तोले गुड़ ४० तोला कलीका चूना (ताजे पानीमें भिगोया हुआ) १५ या २० सेर पानी। यह चीजें मिश्र करके मटकेमें भर कर रखे, तो लगभग ४-५ दिन में नील बिलकुल पानीमें मिल जायगा। जाड़ेके दिनोंमें उक्त क्रियाकी पूर्णतामें ७-८ दिन लगेंगे, फिर इसमें कपड़ा भिगो कर देखिये कैसा रङ्ग चढ़ता है और बाहर निकलते ही अधिक चढ़ता जायगा। अगर एक दफा डुबोनेसे जितना रङ्ग हम चाहते हैं उतना न चढ़े तो फिर एक बार उसे उसी पानीमें डुबाना चाहिये। इस भांति जैसा हम रङ्ग चाहते हैं वैसा चढ़ा सकते हैं। रङ्ग चढ़ानेके बाद कपड़ा धूपमें फैला देना चाहिये और फिर पानीमें धो डालना चाहिये। देखिये कैसा पक्का रङ्ग चढ़ता है। यदि चूना पहले न भी मिलाया जाय तो कुछ हानि नहीं है परन्तु रङ्गसे निकालनेके बाद कपड़ा अवश्य चूनेके पानीमें डुबोना चाहिये, फिर सुखाना चाहिये। कपड़ेकी अपेक्षा सूत ही रंगा जाय तो अधिक लाभदायक होगा। इस सूतसे बुने हुए कपड़े पर चारों ओर सम रङ्ग दृष्टि पड़ेगा। सूत अथवा कपड़ा रङ्गनेके पहले खूब साबुन अथवा सोडेसे धो लेना चाहिये।"

अन्य प्रकारके रंग

देशी रंगोंका वर्णन तब तक पूरा नहीं कहा जासकता जब तक मैं उस रंगके विषयमें कुछ नहीं कहूं जिसे अङ्गरेज़ीमें (Peori Dye) पिओरी डाई या (Perri) पर्री कहते हैं। नाम अङ्गरेजी है किन्तु यह रंग भारतवर्षमें बनाया जाता है। रंग पीला होता है और यह गोमूत्रसे बनता है। जिन गौओंके मूत्रसे वह रंग निकाला जाता है उन्हें केवल आमकी पत्ती खानेको दी जाती हैं; अन्य कोई पदार्थ नहीं। हां, पानी पीनेको दिया जाता है। आमकी पत्ती तथा पानी आदि वस्तुओंके साथ गायके पेटमें कोई क्रिया (organic reaction) होती है और यह रंग तैयार होता है। गोमूत्रको कुछ देर ठंडा होनेके लिये छोड़ देते हैं। उसके बाद उसे आग पर रखकर खौलाते हैं, जिससे रंग मूत्रसे अलग होजाता है। इसे इकट्ठा कर सुखा लेते हैं। कोई कोई सुखानेके पहले इसकी छोटी छोटी गोलियां बना लेते हैं। आधी छटांकसे एक गज कपड़ा रंगा जाता है। रंग भड़कीला और चमकदार होता है, किन्तु इस रंगसे कपड़ा रंगनेके बाद भी गो-मूत्र की बू बनी रहती है। जिन गौओंको इस कामके लिये पालते हैं वह अधिक दिन तक जीती नहीं। दो तीन वर्षके बाद उनकी मृत्यु होजाती है। हां, यदि बीच बीचमें आमकी पत्तीके बदले और कुछ खानेको दिया जाय तो वह छः सात साल तक बच सकती हैं, किन्तु अन्य खाद्य पदार्थ देनेसे उनकी रंग-उत्पादन-शक्ति कम हो जाती है। इस तरहका रंग बिहारके मूंगेर ज़िलेमें बनाते हैं।

—रमेशप्रसाद

भारत-गीत—६८

सीधे पंथ को गहो
गहो जो सीधे पंथ को प्यारो तो सुखवन्त रहो

(२)

सीधे सीधे बात बिचारो, सीधे बात कहो
सीधे बको, झको और झिड़को, सीधे झिड़क सहो
सीधे पंथ को गहो

(३)

सीधे सीधे कारज साधो, सीधे भार बहो
सीधे करो सन्त-जन संगत, जो दुख-अन्त चहो
सीधे पंथ को गहो

श्रीपद्मकोट }
२०-१०-२० }

—श्रीधर पाठक

भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

(गताङ्कसे आगे)

[ले०—श्री० "जटायु"]

खिसिर कुछ अपने निजी सैनिकों और बाल बच्चोंको लेकर जो बर्लिनसे भागा तो पहले तो उसने सोचा कि बाल्टिक समुद्र की ओर कोल-बर्ग अथवा स्ट्रालसुन्द नगरोंको चला जाय और यदि यह आकाशी विपत्ति, तब भी पीछा न छोड़े तो बाल्टिक समुद्रको पार करके किसी अन्य देशको भाग जाय। पर कुछ मंत्रियोंने, जो उसके साथ थे, विरोध किया और कहा कि अगर महाराज आप ही एक दमसे निराश हो जायँगे तो कुल जर्मन जनता बताशेकी भांन्ति शोकके जलमें पड़कर नष्ट हो जायगी। मंत्रियोंने सम्मति दी कि "महाराज लीप्ज़िग भाग चलिये और वहां ठहर कर अपने दूतों द्वारा बर्लिन का कुछ हालचाल दरियाफ़ कीजिये। केवल सौ पचास वायुयानोंसे जर्मनी विजय नहीं हो सकता और न अधिक समय तक बर्लिनमें शत्रु ही ठहर सकता है। शत्रु को युद्ध की सामग्री, खाद्य पदार्थ एवम् अन्यान्य वस्तुओं की आवश्यकता होगी। शत्रु वायु-यात्रा करके आ सकता है, पर यह सब सामान उसे वायु की राहसे नहीं प्राप्त हो सकता। इसके अतिरिक्त लीप्ज़िगमें रहनेसे हम अपने मित्र और पड़ोसी आस्ट्रियाके निकट हो जायंगे।

खिसिरने ऐसा ही किया और लीप्ज़िग चले गये। लीप्ज़िगसे उसने अपने दूतोंको बर्लिन का हाल दरियाफ़ करने भेजा और यहांसे ही जर्मनीके सब नगरों को बेतार द्वारा इत्तिला दी कि किसी शत्रुने बर्लिन पर आक्षेप किया है और हम बर्लिन छोड़कर लीप्ज़िग आ गये हैं; सब देश भरके सेनाके दलों को लड़नेके लिये तुरन्त तय्यार हो जाना चाहिये। उन्होंने हजारों वायुयानोंको देश भरसे बुलाकर लीप्ज़िगमें एकत्रित कर लिया। वायुयानों को हुकम दिया कि बर्लिन की ओर चारों तरफसे

आकर शत्रु का पता लगावें और सम्भव हो वायुयानोंसे वायुयान लड़ें और शत्रुपर गोली बरसायें। खिसिरकी आज्ञानुसार वायुयान चल खड़े हुये।

भारतेन्दुके वायुयान बर्लिनके चारों ओर पच्चीस पच्चीस तीस तीस कोस पर पहरा दे रहे थे और हिमरेखाके पाससे अपनी दूर्बीनोंसे ताकरहे थे। जब उन्होंने एक जर्मन वायुयान को आते देखा तो बेतारके द्वारा भारतेन्दुसे आज्ञा मांगी। उन्होंने हुक्म दिया कि वायुयानको पकड़ लाओ और सहायताके लिये दो वायुयान जिधरसे सूचना मिली थी उधर भेज दिये। बर्लिन में जो बेहोश करनेवाली गैसके तमंचे छोड़े गये थे, उसी गैसके बमके गोले भारतीय वायुयानोंके पास थे। जब जर्मनीके वायुयानको इन्होंने निकट आते देखा तो यह ऊपरसे कुछ नीचे उतर आये। जर्मन वायुयानने ऊपरसे शत्रुके वायुयान आते देखे तो खिसिर की आज्ञानुसार आकाशी तोपसे निशाना लगानेके लिये यह कुछ ऊंचा उठा। इसके ऊंचे उठनेके साथ ही भारतेन्दुके एक वायुयानने ऊपरसे गोला छोड़ा। गोला आनकर वायुयानके पंखेपर लगा और फटते ही इसमेंसे गैस निकली और वायुयान चलानेवाला और तोपचलानेवाला दोनों बेहोश हो गये। वायुयान झोकेमें चला जाता था, पर कुछ एक तरफ़को झुक गया और धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। जिस वायुयानने गोले फेंके थे ऊपरसे यह दशा देखकर तुरन्त अपने साथी जहाजोंको सिगनल दिया और एक वायुयान ऊपरसे आनकर जर्मन वायुयानके ऊपर उड़ने लगा और इसमेंसे एक इस्पात का रस्सा लटका दिया गया। इसके सिरे पर आंकड़े लगे थे। जिस प्रकार कुएंमें गिरा डोल आंकड़ेमें अटका लेते हैं उसी प्रकार भारतीय वायुयानने ऊपरसे गिरते वायुयानको अटका लिया। एक और वायुयान तुरन्त जर्मन वायुयानके नीचे उड़ता हुआ आया और अपने वायुयानके पंखों पर इस वायुयान की पूंछ कर ली।

इस प्रकार दोनों वायुयान जर्मनके वायुयानको बर्लिनकी ओर उड़ा ले चले। रास्तेमें ऊपरके वायुयानसे एक रस्सी जर्मनके वायुयान पर लटका दी गई और तुरन्त एक भारतीय योद्धा जर्मनके वायुयान पर उतर आया और देखते देखते इसने जर्मनोंके हाथों पैरोंमें हथकड़ी और बेड़ी डाल दी और वायुयान की कारमें डाल दिया और जर्मन वायुयान चलाने लगा। ऊपरके वायुयान का इसने आंकड़ा खोल दिया और वह वायुयान फिर उड़कर जिस स्थानसे आया था उसी स्थान पर लौट आया। उसको देखते ही नीचेका भी वायुयान अलग हो गया और उसीके साथ चल दिया। बर्लिनके निकट आने पर वायुयानमें जो जर्मन बेहोश थे होशमें आये और आश्चर्यमें डूब गये। भारतीय योद्धाने वायुयान को बर्लिन पहुंचा दिया और जर्मनों को भारतीय सैनिकोंके हवाले किया। जिस समय भारतीय वायुयान जर्मन वायुयान को पकड़ कर बर्लिन की ओर ला रहे थे पहले वाले वायुयान को तीन चार वायुयान और आते दिखलाई दिये। यह वायुयान वहां पर अकेला था। इस कारण जिस वायुयानमें कि तोप नहीं थी उस को केवल नज़दीकसे आनकर बम का गोला पंखे पर गिरा कर पंखा तोड़ डालता था। जिससे वायुयान मरे कागके समान फटफटाकर पृथ्वी पर आ रहता था और जिस वायुयानमें वह तोप-लगी हुयी देखता था उसपर दूरसे गैस का गोला फेंक कर वायुयानके सारथीको बेहोश कर देता था। वायुयान धीरे धीरे उतर कर पृथ्वी पर आ रहता था। इस प्रकार जो जर्मन वायुयान उड़कर बर्लिन की ओर आये चारों ओर पहरे वाले भारतीय वायुयानोंने यातो उन्हें पकड़ कर बर्लिन पहुंचा दिया या लुंजपुंज करके पृथ्वी पर गिरा दिया। एक भी खिसिरका वायुयान लौट कर लीप्ज़िग नहीं पहुंचा।

दिन भर खिसिर इस आसरेमें रहे कि जब कोई वायुयान लौट कर आयेगा तो हाल चाल मालूम होगा। जब सायंकाल तक कोई नहीं लौटा तो बड़ी चिन्ता हुई। रात्रि होने पर कुछ दूत लौट कर आये और अपने साथ कुछ राजभवनके लुंजे पहरेवालों को लाये। इन पहरेवालोंने कहा—"महाराज, यह शत्रु नहीं हैं, यह दैवी कोपका रूप हैं। हमने इन लोगों पर गोली चलाई। गोली का एक ढेला मारनेसे अधिक फल नहीं हुआ। इनके कोटों पर गोली असर ही नहीं करती और इनके पिस्तौल भी बड़े अद्भुत हैं। हमने तो कभी ऐसे सुने भी नहीं। पिस्तौलसे निशाना मारने पर गोली ओली कुछ नहीं निकलती; मनुष्य बेहोश होकर गिर पड़ता है और इसके पश्चात् जब पन्द्रह बीस मिनटमें होशमें आता है तो उसके दोनों हाथ बेहिस हो जाते हैं।" इसने दोनों हाथ उठा कर खिसिरको दिखलाये और कहा—"यह देखिये, महाराज, कोहनीसे नीचे यह दोनों हाथ काम बिलकुल नहीं करते। इनमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है, पर मुझे अत्यन्त कष्ट है। किस प्रकार महाराज मैं भोजन करूं, शौच क्रिया करूं, कपड़े पहनूं।" जर्मन दूतोंने कहा कि नगर भर भयभीत हो रहा है और एक लाख सैनासे इतना भय बर्लिनके नागरिकों को नहीं होता जितना कि एक भारतीय सैनिकको देख कर होता है।

आपके सब राजभवनोंपर भारतीयोंने कब्जा कर लिया है और आपके सब कोषके बक्स इस प्रकारसे तोड़ डाले हैं जैसे कोई काग़ज़के बक्सों-को तोड़ डालता है। और अत्यन्त आश्चर्य्य की यह बात है कि किसीने अभी तक किसी भारतीय-को कुछ भोजन करते नहीं देखा।

रात्रि अधिक व्यतीत होने पर कुछ वायुयानी लीप्जिग की ओर भागते हुये आये और खिसिरसे कहा कि महाराज हमारी दुर्दशा अकथनीय है। जब हम बर्लिनके निकट पहुंचने लगे तो हमें ऊपरसे एक भारतीय वायुयान नीचे आते दिख-लाई दिया। हमने उसपर आकाशी तोप चलानेका विचार किया। इतनेमें एंजिनसे एक पटाखासा छूटा और हम बेहोश होगये। इसके बाद हमें खबर नहीं कि क्या हुआ। जब हम होशमें आये तो देखा कि हमारा वायुयान पृथ्वीपर टूटा पड़ा है और हम भी चुटैल नीचे पड़े हुये हैं और हमारे चारों ओर उस स्थानके निवासी खड़े हैं। उनकी सहा-यतासे हम उठे। इतनेमें आकाशमें हमको एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। एक भारतीय वायु-यान एक रस्सेसे एक जर्मन वायुयानको लटकाये हुये बर्लिनकी ओर उड़ाये ले जारहा था और दूसरा भारतीय वायुयान कैदी वायुयान को नीचेसे साधे था। कुछ समयके बाद एक और जर्मन वायुयान उड़ता दिखलाई दिया। उसको आते देखते ही ऊपरसे एक भारतीय वायुयान उतरने लगा और जर्मन वायुयानके निकट आनकर उसने एक ऐसा गोला गिराया कि वायुयानका पंखा टूट गया। अब वह फट फटाता पृथ्वी पर गिर कर चूर चूर हो गया। उस पर जो जर्मन सवार थे चकना चूर होकर मर गये। जर्मन जासूसने खिसिरसे कहा कि जब तक भारतीय वायुयानोंकी चालोंका कोई काट न निकाला जाय जासूसी वायुयान छोड़ना व्यर्थ है।

खिसिरने अपने जासूसोंसे पूछा कि आखिर यह तो बतलाओ कि शत्रुकी सेना कितनी है? जासूसोंने कहा कि सौ डेढ़ सौसे अधिक वायुयान नहीं होंगे और हज़ारसे अधिक सैनिक नहीं होंगे।

खिसिरने कहा कि बड़े अन्धेरकी बात है कि हमारी इतनी सेना इतने वायुयान इतनी आकाशी तोप होनेपर भी केवल एक हज़ार भारतीयोंने हमारी राजधानी हमसे छुड़ा ली। हमारे पुरुषार्थ पर धिक्कार है।

मंत्रियोंने खिसिर को समझाया और कहा—"महाराज जो कुछ हमसे हो सकेगा करेंगे। वर्तमान दशा को देख कर उचित यह मालूम

होता है कि अभी भारतीयों पर आक्षेप करने का आप खयाल छोड़ दीजिये। बर्लिन के चारों ओर बड़े बड़े नगरों में आधी सेना एकत्रित कराइये और जासूसों को भेज कर यह दरियाफ़्त कीजिये कि भारतीय किस प्रकार की नवीन अपूर्व रीतियों का युद्ध में प्रयोग करते हैं। जर्मन के विद्वानों से उनका काट दरियाफ्त कराइये; फिर उसी के अनुसार शत्रु से सामना किया जाय ?

लीप्जिग, हनोवर, स्टार गार्ड स्थानों पर सेना एकत्रित की गई। कोल बर्ग और एम्डन स्थानों पर जंगी जहाज एकत्रित किये गये और इन स्थानों से बर्लिन तक स्थान स्थान पर उचित सेना विभाजित कर के खड़ी कर दी गई। सेना में पैदल, सवार, तोप खाना, मोटर सेना, वायुयान लाखोंकी संख्यामें थे। सेनाके अतिरिक्त रसदका सामान नाना प्रकारके बार बर्दारीके सामान और वैद्योंकी टोलियां थीं। अगणित वायुयानोंको हुक्म हुआ कि शत्रुके भारतवर्षसे आनेकी राहका खोज लगावें। वायुयान भारतवर्षकी पश्चिमीय सीमा तक आये और लौट गये। खिसिरको रिपोर्टकी कि भारतवर्षसे दैनिक डाकके वायुयान आते हैं, पर यह पता नहीं लगता कि किधरसे आते हैं। जब बर्लिनके निकट आते हैं तब दिखलाई देने लगते हैं। खिसिरने बहुत झुँझलाकर कहा कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि तुम लोग इनकी राहका खोज नहीं लगा सकते। खिसिरने अपने जासूसों द्वारा बर्लिनसे भारतीय वायुयानोंका डाक लेजानेका समय और दिशा मालूम की; फिर हुक्म दिया कि उसी दिशामें बर्लिनकी तरफ मुंह करके वायुयान डाक जानेके समय उड़ें और जब डाकका वायुयान दिखलाई दे उसका पीछा करें। ऐसा ही किया गया। कई वायुयानोंने पीछा करनेका यत्न किया पर निष्फल हुआ। एक वायुयान समय पाकर बर्लिन तक घुस आया और एक वायुयानको भारतकी ओर उड़ते देखकर समयके अनुसार उसने विचारा कि यह डाकका वायुयान है। उसने उसका पीछा किया पर कुछ ही मिनटके बाद भारतीय वायुयान उसकी दृष्टिसे निकल गया। उसने आनकर रिपोर्टकी कि महाराज वायुयान उड़कर इतना ऊंचा चला जाता है कि वह तारेके समान हो जाता है और फिर ऐसे वेगसे उड़ता है कि उसका पीछा करना असम्भव है। खिसिर लज्जावश सिर झुकाकर दूसरी ओर मुंहकर अपने मंत्रियोंसे कुछ और वार्तालाप करने लगा।

जर्मन सदैवके लोभी हैं और लोभमें ग्रसित होकर इन्होंने संसारमें नाना प्रकारके अत्याचार किये हैं। भारतेन्दुने बर्लिनके नागरिकोंके नेताओंको लोभ देकर अपना जासूस बनाया और उनको चारों ओर खिसिरके युद्धके प्रबन्धोंका भेद लगानेके लिये भेजा। इन्होंने आनकर भारतेन्दुसे कहा—"हे पृथ्वीनाथ, खिसिरने अपनी सेनाको विभाजित करके बर्लिनके चारों ओर फैला दिया है और सबसे बड़ा दल लीप्जिगमें है। आस्ट्रियाकी सेना भी सहायताके लिये आ रही है और इसी दलमें आनकर मिलने वाली है।" खिसिरने अपने दूत रूस और फ्रांसको भी भेजे हैं और उनसे सहायता मांगी है और यह कहला भेजा है कि सब यूरोपीय राष्ट्र इस बातको याद रखें कि जर्म्मनी यूरोपीय (European) सभ्यताका केन्द्र है, यह यूरोपका हृदय है; अगर भारतीय इसको विजय कर लेंगे तो यह याद रखना कि एशियाई यवन सब संसारमें फैल जायेंगे, हम लोगोंका नाश हो जायगा और हज़ारों वर्षोंके लिये हमको गुलामी करनी पड़ेगी। सब राष्ट्रोंने युद्धमें सहायता देनेका वचन दिया है।

भारतेन्दुने कहा कि बर्लिन अब हमारे अधिकारमें भली भांति आगया है। अब जासूसी वायुयान भेजकर शत्रुके समूहों और युद्धके प्रबन्धोंका पता लगाना चाहिये। उन्होंने रानाको हुक्म दिया कि जासूसी वायुयानोंको भारतवर्षसे बुलावाकर जर्मनीमें छोड़ें। भारतेन्दुकी आज्ञानुसार कई जासूसी वायुयान बुलाये गये।

इन वायुयानोंकी बनावट बड़ी विचित्र थी। इन वायुयानोंके तले पृथ्वीकी ओर विचित्र केमरा लगा था। चलते समय इनका वेग १०० मील फी घंटा होता था। इनके केमरोंका शटर एक एक सेकंडपर $\frac{१}{१०००}$ सेकंडके लिये बराबर खुलता रहता था। जैसे सिनेमाके फोटोकेमरेमें एक बड़ा लम्बा फ़िलम चरखियोंपर चढ़ा होता है। उसी प्रकार प्रत्येक वायुयानके केमरेमें कई हज़ार फुटका फ़िलम था और यह फ़िलम शटर खुलनेपर आप ही आप एक एक इंच एक फिरकीसे उतरकर दूसरी फिरकीपर चढ़ता जाता था।

इस फिरकीपर पृथ्वीके बहुत बड़े क्षेत्रका चित्र आप ही आप फोटोग्राफ हो जाता था। इस फिलमको फिर घरपर लाकर वायुयानका फ़ोटोग्राफर तय्यार कर लेता था और फिर इस फ़िलम को लालटेनमें रखकर, जैसे कि सिनेमाके तमाशेमें पर्देपर तमाशा दिखलाते हैं, परदेपर प्रकाश करके भारतेन्दु, सेनापति और अन्य अन्य मंत्रियोंको इसके फोटो दिखलाये जाते थे। उपरोक्त रीतिके अनुसार जो फोटो लिये गये थे उनसे जिन जिन दिशाओंमें शत्रुके सैनिक दलोंका एकत्रित होना ज्ञात किया गया था उन दिशाओंमें जासूसी वायुयान भेजे गये। यह वायुयान बिल्कुल आस्मानी रंगके थे। इस कारण आकाशमें उड़ते हुये कठिनाईसे दृष्टि पड़ते थे। फोटो लेते समय यह पृथ्वीके बहुत निकट उड़ते थे। इनके पंखोंका घोर शब्द सुनकर खिसिरके सैनिकोंने इनका आकाशमें पता लगानेके लिये ऊपरकी ओर देखा। कुछ वायुयानोंको यह दिखलाई पड़े और उन्होंने इनका पीछा किया; पर इनको पकड़ न सके। इनपर तोपें छोड़ीं, पर लक्ष्य निष्फल गये। जहां तककी फोटो लेनेकी इनको आज्ञा दी गई थी वहां तककी इन्होंने फोटो ली। उसके पश्चात् यह ऊंचे होगये और लौटकर बर्लिन आगये। इनके फ़िलम तय्यारकर भारतेन्दुको दिखलाये गये। इस प्रकार जर्मनीकी सेनाका सच्चा सच्चा हाल दरियाफ़्त कर लिया गया।

भारतेन्दुने पहले लीप्ज़िगके दल तोड़नेका यत्न किया। लीप्ज़िगकी ओर एक गैसके गोलोंसे सुसज्जित वायुयान भेजा गया। इसने लीप्ज़िगके ऊपर आनकर जर्मन वायुयानों पर बेहोशीके गोले डाले। इनके गिरते ही जर्मन वायुयान एक एककर पृथ्वीपर गिरने लगे। लगभग पन्द्रह सोलह वायुयान पृथ्वी पर गिरे होंगे कि इतनेमें और सब जर्मन वायुयान अपने प्राण बचाकर इधर उधर भाग गये। एक स्थान पर एक सैनिक दलने अपनी आकाशी तोपें भारतीय वायुयानकी ओर सीधी कीं। यह देखते ही भारतीय वायुयानसे इस दलमें एक गोला ऊपरसे टपका दिया गया। यह गोला पृथ्वी पर गिरा और फटा। इसमेंसे सैकड़ों छोटी छोटी शीशेकी नलियां चारों ओर फैल गईं। यह नलिकाएं पृथ्वी पर गिरनेके साथ ही फट गयीं और इनमेंसे एक प्रकारका धुआं ऐसा निकला कि जैसा मिर्चोंको अग्नि पर छोड़ने से निकलता है। इससे जर्मन दलमें एक विचित्र दशा उपस्थित होगई, जिससे प्रत्येक सैनिकका मारे छींकोंके नाकमें दम होगया। एक अफ़सर कहता है कि देखो—अछीं-अछीं-अछीं-वह है-अछीं-अछीं-गोला-अछीं-अछीं-अछीं-या-अछीं-अछीं-लो-अछीं-अछीं-अछीं...। सिपाहीने गोला उठाया, अछीं, गोला हाथसे गिर गया खड़ा छींक रहा है। तोप पर निशाने पर जो सिपाही बैठा है स्क्रू ढीला किये तोपका पहिया हाथमें लिये निशाने पर तोप को लानेको है कि अछीं-अछीं-अछीं-अछीं-अछीं पहिया हाथसे छूट गया तोपकी नाल अररर धम नीचे आगिरी। मोटरकार पर तोपके लिये गोले आरहे हैं। अछीं-अछीं-अछीं अछीं अछीं; शोफर के हाथसे पहिया छूट गया। मोटरकार एक सैनिक दलके ऊपर चढ़ गई। एक सर्कारी अफ़सर दूर्बीनसे आकाशकी ओर देख रहे हैं। अछीं अछीं-अछीं-अछीं। साहबका हाथ रूमाल पर और

दूर्बीन पृथ्वी पर। इन गोलोंमें जो गैस भरी है, उसका नाम भार्गवाइन है। यूरोपीय रसायनज्ञ हरित गैस अर्थात् क्लोरीनको तत्व मानते थे। डाक्टर मोहन-किशोर भार्गवने यह सिद्ध किया कि यह गैस दो गैसोंका मिश्रण है। एक हरी है और दूसरीमें कोई रंग नहीं। इन दोनोंके गुण एक ही हैं; पर जिस गैस में कोई रंग नहीं है उसके सूंघनेसे मुंहमें डालनेसे अथवा शरीरके किसी भागमें स्पर्श होनेसे एक प्रकारकी खुजली पैदा हो जाती है। इसका नाम संसारके रसायनज्ञोंने भार्गवाइन रखा।

भारतीय वायुयान ने लीप्जिगके सैनिक दलमें ऐसी हल चल मचा दी कि सब जर्मन सैनिक इधर उधर भागने लगे। खिसिर इस भगदड़को देख कर बड़े परेशान हुये। सेनाके नायकोंको एकत्रित कर दिलासा दिया और अपने यहांके डाक्टरोंसे और अन्य रसायनज्ञोंसे भार्गवाइनका काट सोचकर निकालनेको कहा और खिसिर स्वयम् सिपाहियोंके दलमें जाकर खुले मैदानमें खड़े हो कर उनको समझाने और निर्भीकता दिखलाने लगे। एक सिपाहीने कहा—"महाराज कोई आदमी हो तो उससे लड़ें। यह तो आकाशी प्रेत हैं। आपका नमक खाया है; हमारे प्राण आपके हैं। आप चाहे अपने हाथोंसे ले लीजिये और चाहे इन प्रेतोंसे दुर्दशा कराइये।

खिसिरको जब कोई चारा नहीं दिखायी दिया तो उसने यह हुक्म दिया कि सेना बाहर खुले मैदानमें न रहे। मकानोंमें रहे अथवा बाहर हरी पत्तियोंकी छान छाकर रहे। उन्होंने कहा कि शीतल समय आ रहा है और कोहरा पड़ना आरम्भ हो गया है, जहां तक हो सके सेना कोहरेमें छिपकर चला करे।

जो सेनाकी दुर्दशा लीप्जिगमें हुई थी उसकी सूचना खिसिर ने और स्थानोंके सेना नायकोंके पास भेज दी और हुक्म दिया कि वह सब अपनी सेनाको भली भांति छिपानेका यत्न करें।

भारतेन्दु ने आज्ञा दी कि जिस प्रकार लीप्जिगकी सेनामें गड़ बड़ी उपस्थित कर दी गई है उसी प्रकार जर्मनीकी चारों ओरकी सेना तितर बितर की जाय। रानाकी अध्यक्षतामें कार्य आरम्भ हो गया। रानाको ख़बर दी गई कि जर्मन सेना छिपा दी गई है। इस कारण राणाने डाक्टर दमड़ी प्रसाद बोसका यंत्र प्रयोगमें लानेका हुक्म दिया।

यह यंत्र बड़ा विचित्र है। एक छोटा सा वायुयान ऐसा बनाया जाता है कि जिसमें साधारण वायुयानोंकेसे सब यंत्र होते हैं पर इसमें कोई मनुष्य नहीं बैठता है। मनुष्यके स्थानपर एक बिजलीका बक्स रखा रहता है। इस बक्ससे छः तार निकले रहते हैं। दो तार उस वायुयानके यंत्रमें लगा दिये जाते हैं कि जिससे वायुयान दायें अथवा बायें घुमाया जाता है। शेष चार तारोंमेंसे दो नीचे उतारने अथवा ऊपर चढ़ानेके यंत्रमें लगा देते हैं। शेष दो तार वायुयानका एंजिन चलाने और उसका वेग रोकने अथवा बन्द करनेके काममें लाते हैं। अब इन तारोंमेंसे जिस तारसे काम लेना होता है उसपर बिजली उसी प्रकारसे चलाई जाती है जिस प्रकार बेतारके तारके यंत्र चलाये जाते हैं। यह चलानेवाली बिजलीका बक्स किसी दूसरे वायुयानपर रखा जाता है। इस बक्सको लेकर इंजीनियर किसी साधारण वायुयानपर चढ़कर आकाशमें उड़ने लगता है और अपने स्थानसे दमड़ी प्रसाद बोसके वायुयानके बक्समें बिजली दौड़ाना आरम्भ करता है। यह वायुयान आप ही आप उठकर आकाशमें उड़ने लगता है। इंजीनियर कई मीलसे दूर्बीन द्वारा बोसके वायुयानको देखता रहता है और अपने आगे जिस दिशामें चाहे चलाता रहता है। भारतीयों ने इस युद्धमें ऐसे वायुयानोंका बड़े अद्भुत रूपसे प्रयोग किया है। एक वायुयान भार्गवाइन भरे गोले लेकर बहुत ऊंचे चढ़ जाता है और बोसके वायुयानके ऊपर ऊपर उड़ता रहता है। दूसरा वायुयान बोसके वायुयानको दूरसे चलाता रहता है और इस प्रकार

दो वायुयानोंको साथ लेकर यह वायुयान युद्ध-स्थलके ऊपर उड़ता है। जहां कहीं जर्मन सेनाका होना सम्भव था यह वोसका वायुयान उड़ाया गया। जैसे ही जर्मन तोपोंने छिपे छिपे इस वायु-यानको अपने गोलोंका लक्ष्य बनाना चाहा, ऊपर उड़ते हुये भारतीय वायुयान ने उन स्थानोंको भली भांति पहचान कर ऊपरसे गैसके गोले टपका दिये। गोले गिरते ही अछीं-अछीं-अछीं होने लगी और जिस प्रकार किसी खेतमें मूसोंके बिलमें पानी भर देनेसे मूस निकल भागते हैं, जर्मन सैनिक अपने अपने स्थानोंसे निकल भागे। इस प्रकार चारों ओरकी जर्मन सेनामें भगदड़ उपस्थित हो गई और किसी स्थानपर सेनाका संगठन होना असम्भव हो गया। भावीवश वोसका वायुयान योज़न् स्थानके ऊपर उड़ाया जा रहा था। वायुयान पृथ्वीके बहुत निकट था। एक जर्मन तोपका गोला उसके एक पोस्टमें लगा। इस कारण वह टूटकर नीचे गिर पड़ा। उसके गिरते ही जर्मन सेनामें हर्ष नाद होने लगा और सेना नायक और अन्यान्य सैनिक उसके ऊपर दौड़ पड़े और चारों ओर सैकड़ोंकी संख्यामें एकत्रित हो गये। पर भयके मारे उसके पास कोई नहीं जाता। वायुयान चूर चूर पड़ा है और सब दूरसे देख रहे हैं। इतनेमें एक सैनिक बड़ी हिम्मत करके आगे बढ़ा और उसके पास आकर डरते डरते उसके पङ्खको छुआ। जब उसको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंची और लोग भी पास आये और योज़न के कमांडरने उसके पास जाकर उसके टूटे टुकड़े हाथमें उठाये और वह वायुयानको जांच करने लगे, पर एक दो मिनटके बाद नायकोंके ध्यानमें आया कि भारतीय वायुयान संचालकका मृतक शरीर उसमेंसे ढूंढकर निकालें। पर जब इसके टुकड़ोंको इधर उधर उठाकर खोला तो मनुष्यके शरीरका वहां कोई चिन्ह भी न मिला। सब लोगोंमें सन सनी फैल गई। घोर आश्चर्यमें डूब गये और एक दूसरेसे कहने लगे कि यह कैसे वायुयान हैं, जो बिना मनुष्यके उड़ते हैं। यह वायुयान हैं कि जीवधारी पक्षी हैं। एक लाल बुझक्कड़ जर्मन भी वहां थे, इन्होंने भारतेन्दुका सैनिकों सहित पोट-स्डाम फाटकपर उतरना देखा था, पर डरके मारे सबसे पहले बर्लिन छोड़कर योज़न भाग आये थे। आप बोल उठे, "अहा अहा मैं समझ गया। भारतीय सैनिक एक प्रकारका पीठपर छोटासा गुब्बारा बांधकर वायुमें उड़ा करते हैं। इस वायुयानका वायुयानी गोला लगते ही तुरन्त आकाश मार्गसे अपने गुब्बारेपर उड़ भागा है। आकाशमें देखो ढूंढ़ो अभी दूर नहीं गया होगा।"

(शेष आगे)

अंगरेज़ी राजसे पहले भारत-वर्षमें बेंकिंग

[ले०—प्रो० व्रजगोपाल भटनागर, एम. ए.]

जैसे कुछ लोग यह कहा करते हैं कि भारतवर्षमें अंगरेज़ोंके आनेसे पहले कला-कौशलका प्रचार नहीं था, उसी प्रकार कुछ मनुष्योंका यह सिद्धांत है कि हमारे देशमें बेंकिङ्गकी प्रथा नहीं थी। मगर यह दोनों बातें थोड़ी ही हद तक ठीक हैं; क्योंकि इतिहाससे ज्ञात होता है कि यह देश उस समयकी कला-कौशल संबंधी संसार व्यापी अवस्थाके अनुसार बहुत बढ़ा चढ़ा था। यहांकी बनाई हुई चीज़ें लगभग सब देशोंमें जाती थीं और वहां बड़े चावसे बड़ीबड़ी कीमतें देकर बड़े बड़े मालदार लोग उन्हें खरीद करते थे। बस यदि कोई कमी की बात थी तो यही थी कि हमारे देशमें यह चीज़ें हाथसे अथवा साधारण औज़ारोंसे बनाई जाती थीं; जैसे कि पश्चिमी देशवाले सन् १७५० से पहिले बनाते थे। जो हम यह कहें कि इंगलैंड आदि देशोंमें मशीनें और भाप तथा बिजली इत्यादिके काममें लानेके पूर्व कला-कौशलकी

बिलकुल बुद्धि नहीं थी तो हम भी उतने ही ग़लत होंगे जितने कि उपरोक्त लोग हैं; क्योंकि शिल्पका अर्थ चीज़ें बनानेका है—चाहे वह हाथसे बनाई जायं अथवा कलोंसे। इसी प्रकार बैंकिङ्गका अर्थ वह व्यवहार है, जिसका ख़ास काम उन लोगोंसे रुपया जमा करना है जो उसको ख़ुद काममें न ला सकें (चाहे यह कुछ व्याजका लालच देकर जमा किया जाय या बिना किसी व्याजके। यह भी हो सकता है कि जमा करने वालेसे उसके मालकी रक्षाके लिये एवज़में कुछ ले भी लिया जावे) और इस रुपयेको फिर उन लोगों को व्याज पर देना जो व्यापार करना चाहते हैं। जो दूकान, चाहे वह एक आदमीकी हो अथवा एकसे अधिक आदमियोंकी इन दोनों कामोंको करे—अर्थात् जो दूसरे लोगोंका बचाया हुआ रुपया जमा करे और अपना तथा औरोंका जमा किया हुआ रुपया व्याजपर चलाती है उसको बंक या कोठी कहते हैं। यदि हम बङ्ककी यही परिभाषा मानें [और हमको यही मानना चाहिये, क्योंकि बहुत से लेखकोंने जो सम्पत्तिशास्त्रके इस विभागके मर्मज्ञ हैं बैंकको ऐसी ही संस्था कहा है] तो हमको यह पता लगेगा कि भारतवर्षमें ऐसी संस्थाएं बहुत थीं और उनके स्मृति-चिन्ह अब भी मिलते हैं।

भारतवर्षमें आज कलकी नई भांतिकी बंकोंकी स्थापनासे पहिले इस कामको बड़े बड़े कोठीवाल अथवा लेन देन करनेवाले घराने किया करते थे। यह कोठियां या सेठ अधिकतासे बड़े बड़े शहरों जैसे मथुरा, आगरा, बनारस, इत्यादि में पाये जाते थे। और प्रत्येककी साख या मातबरी देशके विशेष विभागोंमें होती थी। रेल या तार न होनेसे भारतमें कोई प्रधान बंक नहीं था, जिसके साथ दूसरी व्यापारी संस्थायें लेन देनका संबंध रखती हों और न सारे भारतमें फैली हुई इन व्यापारी संस्थाओंमें कोई घनिष्ट संबंध था। तो भी बड़े बड़े प्रसिद्ध सेठोंकी हुंडियां देश भरमें चला करती थीं। यदि हम मथुराके प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचन्द्रकी कोठीका पुराना-चिट्ठा देखें तो हमको मालूम होगा कि वह कितनी बड़ी कोठी या बंक थी। इसके देखनेसे हमको बहुत सा मसाला ऐसा मिलेगा, जिससे यह सिद्ध हो जायगा कि बहुधा दिल्ली, आगरा, बनारस, कलकत्ता और हैदराबाद इत्यादि बड़े बड़े शहरोंकी मशहूर कोठियोंके नाम इनके यहांसे हुंडियां हुआ करती थीं। करीब करीब यही हाल हमको आगरे वाले सेठ सूरजभानकी कोठीकी पुरानी बही और चिट्ठा देखनेसे मालूम होता है। परन्तु ऐसे व्यवहार कम और सालमें कभी कभी ही हुआ करते थे, क्योंकि उस ज़मानेमें तिजारत और मालका चलन इतना अधिक नहीं था जितना कि इस समय है। इन बड़े सेठोंकी कोठियोंका मुख्य काम अपने आस पासके क़सबे और ग्रामोंमें प्रधान बङ्ककी भांति होता था। आस पासके लोग उनको ख़ूब जानते और उनके धनाढ्य और ईमानदार होनेका विश्वास रखते थे। इसी लिये जिस किसीके पास फालतू रुपया हुआ करता था वह उनके पास जमा किया करता था और जिस किसी व्यापारी या व्यवसायीको रुपयेकी आवश्यकता होती थी वह उनसे हुंडी पुर्ज़ा लिखाकर लेजाता था। जो रुपया उनके पास जमा किया जाता था उसकी रसीद मिला करती थी। परन्तु प्रायः उस पर व्याज कुछ नहीं दिया जाता था। परन्तु कुछ मशहूर कोठियां जिनका काम बहुत बड़ा था जैसे छुन्नामल वालोंकी कोठी गुड़वालोंकी कोठी मथुराके लक्ष्मीचन्द्रकी कोठी इत्यादि कुछ थोड़ा सूद भी दिया करती थीं, जो बहुधा २) रु० से ४) रु० प्रति सैकड़ा तक होता था और जो लोग उनसे रुपया लेते थे उनसे ६) रु० से २४) रु० प्रति सैकड़ा तक व्याज लेते थे।

यह घराने ऐसे ही अच्छे बङ्क थे, जैसे कि आज कलकी बंकें हैं। यदि कुछ अन्तर था भी तो इतना ही कि वह हिन्दुओंकी कोठियां थीं और आज कलकी बंकें ज्वायंट-स्टाक कम्पनियां (joint

stock companies) होती हैं। जिस शहरमें यह कोठियां होती थीं उस शहरके सारे व्यापारी लोग इनसे लेन देन रखते थे और उस नगरके सारे व्यापार तथा उसके आस पासके ग्रामोंके सब कृषि-सम्बन्धी कार्योंकी आर्थिक-पुष्टि करनेवाली यही मुख्य कोठियां होती थीं। प्रायः यह सेठोंकी बड़ी बड़ी कोठियां शहर और देहातके छोटे छोटे व्यवसायी मनुष्योंसे लेन देन नहीं करती थीं। यह केवल उन लोगोंको रुपया दिया करती थीं जो इन व्यवसाइयोंसे व्यवहार किया करते थे और जो साहूकार कहलाते थे। कहीं इनको महाजन या धनी भी कहते हैं। साहूकार या महाजन लोग इन्हीं कोठियोंके भरोसे तथा उनकी सहायतासे देहातोंके कला-कौशल और वहांके व्यापारकी आर्थिक सहायता किया करते थे। परन्तु देहाती इलाकोंमें यह कोठियां साहूकारोंसे सीधा व्यवहार नहीं रखती थीं, किन्तु यह कसबों और तहसीलोंमें रहनेवाले बोहरोंके ज़रियेसे उनतक अपनी मदद पहुंचाती थीं। यह बोहरे लोग एक तरफ़ सेठोंसे लेन देन रखते थे और दूसरी तरफ़ साहूकारोंसे। यह साहूकार या महाजन एक या एकसे अधिक ग्रामोंमें लेन देन करते थे और अब भी करते हैं। जिस प्रकार एक इलाकेके महान् सेठ उस इलाकेके साहूकारों से स्वयम् व्यवहार नहीं करते थे बल्कि बोहरोंको बीचमें डालकर करते थे, उसी प्रकार बोहरे किसानोंसे लेन देन नहीं करते थे। वह एक प्रकार से सेठ साहूकारोंमें बिचोलिया होते थे। यद्यपि अब बैंकोंके खुलनेसे उलट पुलट होती जा रही है—और साहूकार सेठ हो गये हैं और बोहरे साहूकार बन बैठे हैं—और इन तीनों नामोंके मनुष्योंका एकही काम मालूम पड़ता है; मगर पहले इन सब के अलग अलग काम थे। बोहरे लोग ज़मींदारों को भी रुपया दिया करते थे और अकसर ज़मींदार साहूकारका काम भी किया करते थे। बहुतसे छोटे छोटे ज़मींदार अब भी करते हैं

इस प्रकार हमारे देशकी उस ज़मानेकी आवश्यकतानुसार (credit organisation) लेनदेनकी व्यवस्था पूर्ण थी।

हमको इस पुराने व्यवहारके भी चिन्ह अब भी मिलते हैं। पुराने ज़मानेके सेठोंकी कोठियां प्रायः बिलकुल जाती रही हैं, अब उनके पास कोई अपना फ़ालतू रुपया जमा नहीं करता और वह भी साहूकारों और बोहरोंको रुपया नहीं देते। प्रत्येक मनुष्य बैंकके ज़रियेसे काम करता है। सेठ जी अब अपना रुपया बैंकमें रखते हैं और साहूकार लोग बैंकसे लेन देन करते हैं। यद्यपि अभी तक पुराने ज़मानेकी तरह छोटे छोटे कारबार करनेवाले इनसे लेनदेन करते हैं, तथापि ज्यों ज्यों नई तरहके बैंक बढ़ते जायँगे साहूकार बिचारे खिसकते जायंगे और एक दिन वह आवेगा कि प्रत्येक नगरमें प्रत्येक मनुष्य बैंक से ही रुपयेका व्यवहार किया करेगा।

लेकिन चूंकि अभी तक देहाती इलाकोंमें न तो नई तरहकी बैंक ही प्रचलित हुई हैं न सहकारी लेन देन(cooperative credit) ही अच्छी तरह फैला है; इस लिये हमारी पुराने कालकी लेन देनकी संस्थायें बहुधा काम कर रही हैं। बस अगर अन्तर पड़ा है तो इतना ही कि लगभग सारे बोहरे जो सेठोंसे लेन देन करते थे और केवल बिचोलिया ही थे या तो अब स्वयं खुद मुख़तार होकर अपने रुपयेसे कारबार करते हैं या किसी बैंकसे लेन देन करते हैं। मगर अब भी पहिले ही की तरह वह साहूकारोंको ही रुपया देते हैं और साहूकार लोग गांवोंमें उससे व्यवहार करते हैं। अब भी हमको कमसे कम एक गांव पर एक या कभी दो चार गांवों पर एक साहूकार मिलता है जो किसानों और दूसरे कौशल संबंधी कार्य करनेवालोंको रुपया या नाज इत्यादि देता लेता रहता है।

मधुमेह

एलन चिकित्सा

पहले दो लेखोंमें मधुमेह सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें लिखी जा चुकी हैं। महाशय एलनके नामसे जो चिकित्सा प्रसिद्ध है उसका स्वरूप भी दिखाया जाचुका है। तत्सम्बन्धी यह सिद्धान्त भी कि चीनीके पचानेकी शक्ति धीरे धीरे बढ़ानी चाहिये लिखा जा चुका है। इस लेखमें उसीका वृहद् रूपसे वर्णन करना है।

४८ घण्टे अथवा अधिक भूखे रहनेपर जब मूत्र शर्करा रहित हो तो नीचे लिखा पथ्य आरंभ करना चाहिये। मुर्गीके अंडेके स्थानमें कदाचित् कुछ डाकूर दूध बतावें। पर यह बात बहुत कुछ संदेहात्मक है।

पहला दिन—केलोरी २४६

८ बजे सवेरे	बेदूध और चीनीकी १ प्याली चाय; दो अंडे।
१० बजे	१ छटांक साग; २ छटांक मूली (उबालके)।
१ बजे	१ पिन्ट बकरेके मांसकी चाय।
६ बजे सन्ध्या	बेदूध और चीनीकी १ प्याली चाय।

दूसरा दिन—१४८८ के०

८ बजे सवेरे	बेदूध और चीनीकी १ प्याली चाय; २ अंडे।
१० बजे	२ छटांक साग, ३ छटांक मूली, २ छटांक परवर, १ छटांक मीठे तेलमें पकाओ।
१ बजे	१ पिन्ट बकरेके मांसकी चाय।
६ बजे संध्या	२ अंडे, बेदूध और चीनीकी १ प्याली चाय; २ छटांक परवर; २ छटांक साग; १ छटांक मूली; २ छटांक खीरा, १ छटांक घी और १ छटांक मसाला डालो।

तीसरा दिन—१५२२ के०

८ बजे सवेरे	पूर्ववत।
१० बजे "	२ छटांक साग, २ छटांक गोभी, २ छटांक परवर, २ छटांक मूली, १ छटांक घी और १ छटांक मसाला।
१ बजे	पूर्ववत।
६ बजे संध्या	पहलेकी सी चाय, मछली गोभी, साग, परवर, मूली; दो दो छटांक (कड़वा तेल और मसाला एक एक छटांक)।

चौथा दिन—के० १६१४

८ बजे	पूर्ववत।
१० बजे "	मछली, साग, परवर, खीरा—दो दो छटांक (घी मसाला एक एक छटांक)।
१ बजे	पूर्ववत।
६ बजे संध्या	पूर्ववत चाय, मछली, खीरा, परवर, मूली दो दो छटांक (कड़वा तेल और मसाला एक एक छटांक)।

पांचवा दिन— के० १८६०

८ बजे सवेरे	पूर्ववत।
१० बजे "	३ छटांक मछली, २ छटांक परवर, १ छटांक आलू, २ छटांक खीरा (घी मसाला एक एक छटांक)।
१ बजे	पूर्ववत।
६ बजे संध्या	पूर्ववत चाय, २ अंडे, १ छटांक परवर, आधी छटांक मक्खन (तेल मसाला एक एक छटांक)।

छठा दिन—के० १६५०

८ बजे सवेरे	पूर्ववत।
१० बजे "	३ छटांक मछली, १ छटांक आलू २ छटांक खीरा; २ छटांक परवर (घी मसाला एक एक छटांक)।

१ बजे पूर्ववत।
६ बजे संध्या चाय और अंडे पूर्ववत। परवर खीरा ३,३ छटांक; मक्खन आधी छटांक, तेल मसाला एक एक छटांक।

७ वां दिन

कुछ नहीं

८ वां दिन—कै० १३२४

८ बजे सवेरे पूर्ववत।
१० बजे " डेढ़ छटांक मछली, आधी छटांक घी, १ छटांक साग, डेढ़ छटांक परवर; डेढ़ छटांक खीरा, १ छटांक मसाला।
६ बजे संध्या चाय और अंडे पूर्ववत, आधी छटांक घी, डेढ़ छटांक परवर, डेढ़ छटांक खीरा, डेढ़ छटांक मछली, तेल मसाला १।१ छटांक।

९ वां दिन—कै० १७१६

८ बजे सवेरे पूर्ववत।
१० बजे " ३ छटांक मछली, १ छटांक आलू, २ छटांक खीरा, १ छटांक मूली, तेल मसाला १, १ छटांक।
१ बजे ४ छटांक मछलीका शोरवा।
६ बजे संध्या पूर्ववत चाय अंडे, २ छटांक परवर; २ छटांक साग, २ छटांक खीरा, घी मसाला एक एक छटांक।

१०वां दिन—कै० १६२६

८ बजे सवेरे पूर्ववत।
१० बजे " ३ छटांक मछली, १ छटांक आलू, १ छटांक भांटा, २ छटांक खीरा, २ छटांक परवर, तेल मसाला १। १ छटांक।
१ बजे ४ छटांक मछलीका शोरवा।
६ बजे संध्या पूर्ववत चाय और अंडे, आधी छटांक मक्खन, २ छटांक परवर, २ छटांक साग, २ छटांक भांटा, तेल मसाला १।१ छटांक।

११ वां दिन—कै० १९९५

८ बजे सवेरे पूर्ववत।
१० बजे सवा छटांक आलू, २ छटांक खीरा, ३ छटांक साग, २ छटांक परवर, ३ छटांक मछली, १।१ छटांक तेल मसाला।
१ बजे पूर्ववत मछली का शोरवा।
६ बजे संध्या पूर्ववत चाय और अंडे, आधी छटांक मक्खन, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, २ छटांक खीरा, तेल मसाला १।१ छटांक।

१२ वां दिन—के० २०१०

८ बजे सवेरे पूर्ववत।
१० बजे " ३ छटांक मछली, डेढ़ छटांक आलू, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, २ छटांक खीरे, २ छटांक साग, तेल मसाला १।१ छटांक।
१ बजे ४ छटांक मछली का शोरवा।
६ बजे संध्या पूर्ववत अंडे चाय, आधी छटांक मक्खन, २ छटांक परवर, २ छटांक, भांटे, २ छटांक खीरे, तेल मसाला १।१ छटांक

१३ वां दिन—कै० २०४०

८ बजे सवेरे चाय अंडे पूर्ववत।
१० " ३ छटांक मछली, २ छटांक आलू, २ छटांक परवर, ३ छटांक खीरा, २ छटांक भांटे, तेल मसाला १।१ छटांक।
१ बजे ४ छटांक मछली का शोरवा।
६ बजे संध्या पूर्ववत चाय अंडे, आधी छटांक मक्खन, २ छटांक परवर, २

छटांक भांटे, २ छटांक खीरे, तेल मसाला १,१ छटांक।

१४ वां दिन—के० २१८४

८ बजे सवेरे — चाय अंडे पूर्ववत।

१० बजे „ — डेढ़ छटांक चपाती, आधी छटांक आलू, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, ३ छटांक मछली, तेल मसाला १,१ छटांक।

१ बजे — ४ छटांक मछली का शोरवा।

६ बजे संध्या — अंडे चाय पूर्ववत, आधी छटांक मक्खन, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, २ छटांक खीरे, तेल मसाला एक एक छटांक।

१५ वां दिन

कुछ नहीं

१६ वां दिन

१४ वें दिनका पथ्य

१७ वां दिन—१७६४

८ बजे सवेरे — पूर्ववत चाय और अंडे।

१० बजे „ — डेढ़ छटांक चपाती, १ छटांक आलू, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, ३ छटांक मछली, तेल मसाला आधी आधी छटांक।

१ बजे — ४ छटांक मछलीका शोरवा।

६ बजे संध्या — चाय अंड़े पूर्ववत, डेढ़ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, २ छटांक खीरे, तेल मसाला आधी आधी छटांक

१८ वां दिन—के० २०६४

८ बजे सवेरे — पूर्ववत।

१० बजे „ — ३ छटांक चपाती, आधी छटांक घी, १ छटांक आलू, २ छटांक परवर, २ छटांक खीरे, ३ छटांक मछली, तेल मसाला, आधी आधी छटांक।

१ बजे — ४ छटांक मछलीका शोरवा।

६ बजे संध्या — चाय अंड़े पूर्ववत, डेढ़ छटांक चपाती, २ छटांक आलू, २ छटांक खीरा, तेल मसाला आधी आधी छटांक।

१९ वां दिन के०—२५३८

८ बजे सवेरे — पूर्ववत।

१० बजे „ — ३ छटांक चपाती, आधी छटांक घी, आधी छटांक आलू, ३ छटांक मछली, २ छटांक परवर, १ छटांक करेला, २ छटांक मूली, २ छटांक भांटे, तेल मसाला १,१ छटांक

१ बजे — ४ छटांक मछलीका शोरवा।

६ बजे संध्या — पूर्ववत चाय अंड़े, ३ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक खीरे, २ छटांक साग, तेल, मसाला, आधी आधी छटांक।

२० वां दिन-के० १५७४

८ बजे सवेरे — पूर्ववत।

१० बजे „ — ३ छटांक मछली, साढ़े तीन छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक गोभी, आधी छटांक आलू आधी छटांक घी, तेल मसाला आधी आधी छटांक।

१ बजे — ४ छटांक मछलीका शोरवा।

६ बजे संध्या — चाय अण्डे पूर्ववत, साढ़े तीन छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, आधी आधी छटांक घी, तेल, मसाला।

२१ वां दिन—के० १६६४

८ बजे सवेरे — पूर्ववत।

१० बजे „ — ३ छटांक मछली, ४ छटांक

चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक गोभी, आधी छटांक आलू; आधी आधी छटांक घी तेल मसाला।

१ बजे — ४ छटांक मछलीका शोरवा।

६ बजे संध्या — चाय अंडे पूर्ववत, ४ छटांक चपाती; परवर भांटा २, २ छटांक; तेल मसाला १, १ छटांक।

२२ वां दिन—के० २७७४

८ बजे सवेरे — पूर्ववत।

१० बजे „ — ३ छटांक मछली, ४ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक गोभी, आधी छटांक आलू; घीं तेल मसाला आधी आधी छटांक।

१ बजे — पूर्ववत।

६ बजे संध्या — चाय अण्डे पूर्ववत, ४ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटे, तेल मसाला आधी आधी छटांक, दूध २ छटांक।

२३ वां दिन-के २८३०

८ बजे सवेरे — पूर्ववत।

१० बजे „ — ३ छटांक मछली, ४ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, आधी छटांक आलू, घी तेल मसाला आधी आधी छटाक, २ छटांक दूध।

१ बजे — पूर्ववत।

६ बजे संध्या — पूर्ववत चाय अंडे, ४ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटा, तेल मसाला आधी आधी छटांक, दूध २ छटांक।

२४ वां दिन—के० ७७७७

८ बजे सवेरे — पूर्ववत चाय अंडे, २ छटांक दूध।

१० बजे „ — डेढ़ छटांक मछली, २ छटांक चपाती, १ छटांक परवर, आधी छटांक आलू, घी तेल मसाला आधी आधी छटांक।

१ बजे — पूर्ववत।

६ बजे संध्या — पूर्ववत चाय, अंडे नहीं। २ छटांक दूध, २ छटांक चपाती, १ छटांक परवर, तेल मसाला आधी आधी छटांक।

२५ वां दिन—२३वें दिनका पथ्य

२६ वां दिन—केलोरी २८९७

८ बजे सवेरे — पूर्ववत चाय अंडे।

१० बजे „ — ढाई छटांक मछली, साढ़े चार छटांक चपाती, २ छटांक साग, आधी छटांक आलू, २ छटांक परवर, मूंगकी दाल आधी छटांक, २ छटांक दूध; घी, तेल, मसाला, आधी आधी छटांक।

१ बजे — साढ़े तीन छटांक मछलीका शोरवा।

६ बजे संध्या — दूध २ छटांक, पूर्ववत चाय, साढ़े चार छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटा, तेल मसाला आधी आधी छटांक।

२७ वां दिन—केलोरी ३२७६

८ बजे सवेरे — पूर्ववत चाय अंडे।

१० बजे „ — ढाई छटांक मछली, ५ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक भांटा, २ छटांक साग, आधी छटांक आलू, तेल मसाला आधी आधी छटांक, आधी छटांक दाल, ३ छटांक दूध।

१ बजे	३ छटांक मछलीका शोरवा।
६ बजे संध्या	पूर्ववत चाय अंडे, ५ छटांक चपाती, २ छटांक परवर, ३ छटांक साग; तेल, मसाला आधी आधी छटांक, ५ छटांक दूध।

२८ वां दिन—केलोरी २९९१

८ बजे सवेरे	पूर्ववत चाय अंडे।
१० बजे	२ छटांक मछली, साढ़े चार छटांक चपाती, २ छटांक परवर २ छटांक भांटा, २ छटांक मूली, आधी छटांक आलू, घी तेल मसाला आधी आधी छटांक, बेपका चावल आधी छटांक,
१ बजे	आधी छटांक दाल, ३ छटांक मछलीका शोरवा।
६ बजे संध्या	पूर्ववत चाय अंडे; साढ़े चार छटांक चपाती, २ छटांक परवर, २ छटांक खीरे, २ छटांक दूध; तेल मसाला आधी आधी छटांक।

यह पथ्य डाक्टर वाटर्सके ग्रन्थसे दिया गया है। इनके मतसे अंडे की जगह दूध नहीं दिया जायगा। पाठक यदि ध्यान पूर्वक देखेंगे तो इस पथ्यमें जहां जहां भूखे रहना अथवा पहिले किसी दिन का पथ्य लिखा गया है वहां वहां तक केलोरी बढ़ाई गई हैं और वहीं वहींसे फिर केलोरी को घटाकर फिर शनैः शनैः बढ़ाया है। केलोरीसे* प्रोटीड, शर्करा और चर्बीके तौल का तात्पर्य है। इस पथ्यमें केलोरी एक एक वार अधिक बढ़ाई गई हैं और चर्बी भी कुछ अधिक दी गई है। यह पथ्य उन मधुमेहियोंके लिए है जो बहुत बीमार नहीं हैं। जो अधिक बीमार हैं उनके पथ्यमें न तो केलोरी इतनी शीघ्र बढ़नी चाहिएं और न इतनी चर्बी ही देनी चाहिये। यद्यपि अच्छा यही होगा कि जिस किसी को यह चिकित्सा करनी हो वह किसी अच्छे अस्पतालमें रहे; तोभी नीचे दिये हुये कर्बोज शतांश-वत भोज्य पदार्थ विवरण से बहुत कुछ सहायता ली जा सकती है।

५ शतांश वाली तर्कारियां—साग, भांटा, चुकन्दर गंदना, रेवन्दचीनी, गोभी, टोमाटो, सेम, मूली, लौकी, नागदौना, अजवाइन खुरासानी।

१० शतांशवाली तर्कारी—प्याज, गाजर, कुकुरमुत्ता, शलगम

१५ शतांशकी—हरी मटर, हाथीचक।

२० शतांशवाली—आलू, भुट्टा, उबले चावल।

५ शतांशवाले फल—पके जैतूनके फल, अगूंर

१० शतांशवाले फल—नीबू, नारंगी, भिन्न भिन्न झर-बेरी, रसभरी, शफ़तालू, तर्बूज़।

१५ शतांशवाले फल—सेव, नासपाती, आम, मुनक्का, विलायती मकोय।

२० शतांशवाले फल—बेर, केला।

१५ शतांशवाले मेवे—बादाम, पिस्ता, अखरोट।

२० शतांशवाले मेवे—मूंगफली।

निम्न-लिखित पदार्थों के ३० ग्राममें प्रोटीड, चर्बी और कर्बोज कितने कितने होते हैं और इतनी मात्रा खाने से कितनी गरमी पैदा होती है यह नीचे की सारिणीसे ज्ञात होगा।

	प्रोटीड	चर्बी	कर्बोज	केलोरी
पका मांस	८	३	०	६०
आलू	१	०	६	२५
मलाई	१	६।१२	१ या २	१२० ६०
दूध	१	१	२	२०
डबलरोटी	३	०	१८	८०
मक्खन	०	२५	०	२४०
एक अंडा	६	५	०	७५
नारंगी या अगूंर	०	०	१०	४०

* केलोरी अथवा कलारी ताप नापनेकी इकाई है। इन पदार्थोंके खानेसे जितनी गर्मी पैदा होती है उसकी नाप दी गई है। पैदा हुई गरमी खाये हुए पदार्थोंकी तौल पर निर्भर है।

१०० भागमें इतने भाग होते हैं—

	प्रोटीड	कर्बोज	चर्बी
बकरे का मांस	२१.०६	...	२.५०
मछली	१७.८०	...	५.०४
रंगुन का चावल	६.९५	७७.२५	०.९६
देसी चावल	६.६२	८१.०७	०.५०
गेहूं का आटा	११.४७	७०.९०	२.०४
मूंगकी दाल	२३.६२	५३.४५	२.६९
मसूरकी दाल	२५.४७	५५.०३	३.००
अरहरकी दाल	२१.७०	५४.०६	२.५०

इन ब्यौरोंसे यह सहायता ली जा सकती है कि जब तक लगभग आधी छटांक कर्बोजके खानेसे मूत्र साफ न हो तब तक सप्ताहमें १ वार भूखे रहना चाहिये। जब तक आधी छटांक और १ छटांक के बीच का मामला रहे तब तक ५ कर्बोज शतांश वाली तर्कारियां खानी चाहिएं और प्रोटीड और चर्बी आधी कर देनी चाहिये और जब १ छटांकसे ३ छटांक तक कर्बोज खानेसे मूत्र साफ रहे तो १० और १५ कर्बोज शतांशवाले पदार्थ पथ्य हैं, कर्बोजसे उसी कर्बोजशका तात्पर्य है जो भिन्न भिन्न भोज्य पदार्थमें रहती है। प्रति दिन मूत्रमें शर्करा-की जांच करते हुए इन शतांश विवरणों की सहायतासे मधुमेही अपने कष्ट को बहुत कुछ कम रख सकता है।

विश्वेश्वर प्रसाद

सूर्य

(पिछाङ्कसे आगे)

[ले०—प्रो० जयदेव विद्यालङ्कार]

(६)

सूर्य बिम्बपर धब्बे

गैलीलियोने जब पहले पहल सूर्य बिम्बपर धब्बोंको देखा और ईसाई संसारमें इस बातका प्रकाश किया तब सारा ईसाई संसार उनको काफ़िर कह धिक्कारने लगा। ईसाई कहते थे कि परमात्माके बनाये अत्यन्त प्रकाशमान सूर्यमें धब्बे कहांसे आये, इसलिए इस काफ़िरको दण्ड देना चाहिये। इसी कारण गैलीलियोको बड़ी यातना भोगनी पड़ी। परन्तु अब सूर्य बिम्बपर धब्बोंका होना निर्विवाद सिद्ध हो चुका है।

सूर्य बिम्बपर, दूरबीन लगानेपर, कुछ काले धब्बे दिखाई देनेसे बहुत सी शङ्काएं चित्तमें उठती हैं। इसी विषयपर आज हम विचार करेंगे।

ज्वालोद्रेकोंके विषयमें गत लेखाङ्कमें कहा जा चुका है। तो भी उनका धब्बोंके साथ बड़ा भारी सम्बन्ध है। ज्वालोद्रेक, धब्बे (spots) तथा अन्यान्य सभी घटनाएं लगातार गवेषणाकी अपेक्षा करती हैं। इनके विषयमें विद्वान दत्तचित्त होकर प्रतिवर्ष नवीन नवीन निरीक्षण करते हैं। फलतः यह एक परिणाम प्राप्त हुआ है कि सूर्य बिम्बमें जब और जिस स्थान पर भी धब्बे अधिकतम संख्यामें देखे गये हैं तब और वहां ही ज्वाला पटल (Faculæ) और धातवीय ज्वालोद्रेक भी अधिकतम संख्यामें उत्पन्न हुए हैं। जब धब्बोंकी अधिकतम संख्या बदल कर बिम्बके उत्तर भागसे दक्षिणमें आयी तब धातवीय ज्वालोद्रेक भी उत्तर से बदल कर दक्षिणमें ही आ गये। और परिवर्तन ज्वालापटलोंमें भी हुआ। इन घटनाओंसे केवल धब्बों और धातवीय उद्रेकोंका परस्पर सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं होता है, किन्तु एक स्थान और एक ही समयमें होना भी सिद्ध होता है। बिम्बकी विषुवत् रेखापर ४०° उत्तर या दक्षिण तक भी धब्बे नहीं दिखाई देते। विषुवतपर बहुत ही न्यून होते हैं। इसी प्रकार ज्वालापटल और ज्वालोद्रेक भी विषुवतके ४० उत्तर या दक्षिण तकके कटिबन्धमें नहीं होते। विषुवत् भाग पर ज्वालापटलों और ज्वालोद्रेकोंकी संख्या भी बहुत न्यून होती है परन्तु यह नियम प्रशान्त उद्रेक (Quiet prominences) और तिरोहित धब्बोंके (vieled spots) विषयमें ठीक नहीं बैठता तिरोहित धब्बे (vieled spots) वह धब्बे होते हैं जिनमें पूर्णच्छाया या अर्धच्छाया
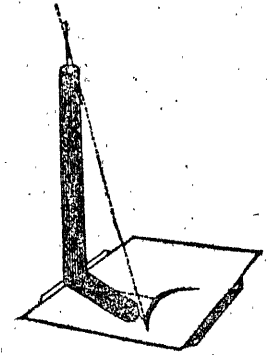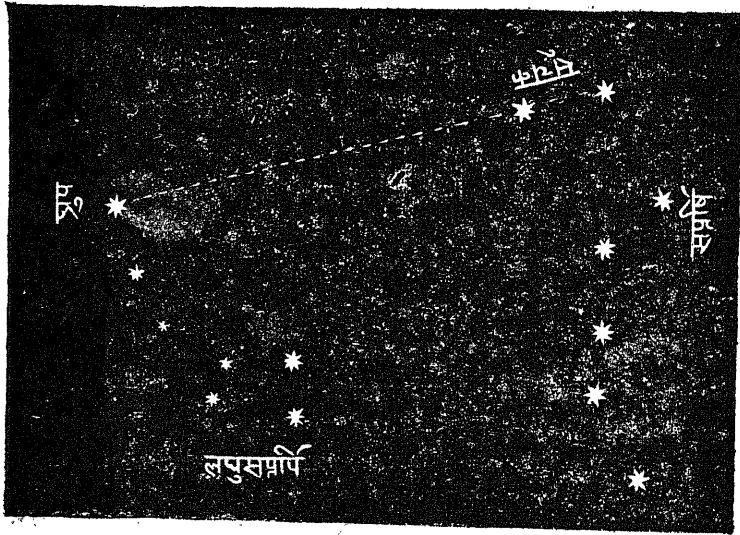
चित्र २७ (इ)—उत्तर दक्खिन रेखा और शङ्कु।

चित्र २८—सप्तर्षि और लघु मप्तर्षि ध्रुव और अन्तिभ सूचक नारेके बीचका अन्तर दोनों सूचकोंके बीचके अम्तरका पचगुण है [देखिये चित्र २८]
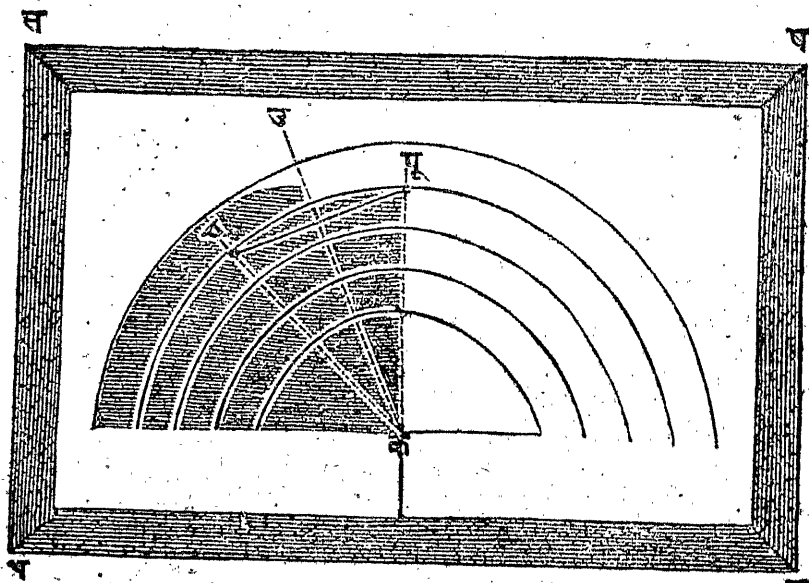
चित्र २७ (अ)—क पर शङ्कु गाड़ते हैं। इसीकी छाया देखकर दिशा निश्चित कर लेते हैं [देखिये पृष्ठ ११२]

भी नहीं होती। यह सूर्य विम्बके एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुव तक फैल जाते हैं। इसलिये शान्तवीय और प्रशान्त उद्रेकोंमें और विक्षुब्ध और तिरोहित धब्बोंमें भारी अन्तर है।

(१०)

छिद्र (pores)

इन्हें भी एक प्रकारके धब्बे ही कहना चाहिये। यह सूर्य विम्ब पर छोटे छोटे छिद्रके सदृश जान पड़ते हैं। उनके साथ साथ हिरण्य-घसन पर साधारण सी लहर उत्पन्न हुई दीखती है।

(११)

तिरोहित धब्बे (vieled spots)

तिरोहित धब्बे वह होते हैं जो अपनी पूर्ण अवस्थाओंपर भी नहीं पहुँचते। यह सम्पूर्ण सूर्य तलपर समान भावसे उठते रहते हैं। और उनके साथ थोड़ा उद्रेक भी उठता रहता है। इनका वर्णन आगे स्पष्ट हो जायगा।

(१२)

सूर्यमण्डलकी प्रशान्तताका काल

सूर्यबिम्बपर धब्बोंकी न्यूनतम संख्यासे बढ़-कर एक बार अधिकतम संख्या हो जाती है। और फिर घट कर वह उसी स्थितिको पहुंच जाती है। इस घटना चक्रके पूर्ण होनेमें ११ वर्षके लगभगका काल लग जाता है। जिस समय सूर्य मण्डल बहुत ही प्रशान्त अवस्थामें होता है उस समय भी कुछ कुछ वृत्ताकार ज्वालोद्रेक विम्बपरसे उठते ही रहते हैं। ध्रुवों और विषुवतके पास इन उद्रेकोंका प्रायः अभाव ही रहता है। इसी प्रकार ज्वालापटल भी बिम्बपर २०° उत्तरसे २०° दक्षिणके मध्यव-र्त्तीयोंमें ही होते हैं। ऐसी शान्त अवस्थाओंमें तरंगीपरीक्षा यन्त्रसे हिरण्यघसनकी क्रमशः परीक्षाकी गयी तब केवल उज्जनकी ४ रेखाएं और द३ (D_3) रेखा ही दृष्टि गोचर होती हैं। जिनमें द३ रेखा पता नहीं किस मौलिककी होती है। साधारणतः ऐसा कह सकते हैं कि उस समय सारा पृष्ठ धब्बों-से रहित होता है। सूर्यका संपूर्ण विम्बस्वच्छ प्रतीत होता है। इस अवस्थामें केवल उन भागोंपर कुछ अन्धकार दीखता है जहां सूर्यका वायुमण्डल अ-पना प्रकाशके स्वतः विलीन करलेता है। धब्बे नाम मात्रको भी नहीं होते। होते हैं तो केवल उच्चअक्षांशों परही। ऐसी न्यूनतम धब्बोंकी अवस्थाओंमें सूर्यके पूर्ण ग्रहणके अवसरोंपर अंशुवलय या (corona) के आलोक चित्र लिये गये हैं उनसे पता लगता है कि धब्बों की न्यूनतमताकी दशामें अंशुवलयकी आकृति प्रायः समान ही होती है। फोटोग्राफीके आवि-ष्कारके पहलेका १८६७ इस्वीका एक हास्तकौशलसे बनाया चित्र इसी सम्बन्धमें उत्पन्न हुआ है। वह १८७८के फोटोग्राफसे सर्वथा मिलता जुलता था। धब्बोंकी न्यूनतमताकी दशामें अंशुवलय सूर्यबि-म्बके विषुवतकी ओर बहुत अधिक दूरतक फैला होता है। और ध्रुवोंकी ओरसे विस्मय जनक कर्वों-से कटा होता है। यह भी सम्भव है कि यह अंशुवलय विषुवतोंपर इतना अधिक बढ़ा होता है कि जिसको नापा जाय तो कदाचित् विश्वास भी न हो। १८७८ के सूर्यग्रहणमें इसकी समुचित परीक्षाके लिये अंशुवलयके अत्युज्वल प्रकाशसे दर्शककी आंखको चौन्ध्या जानेसे बचानेके निमित्त एक ऐसे गोल पर्देकी आयोजना की गयी कि वह चन्द्र विम्ब और १२' इर्द गिर्दका भाग भी ढकलेवे।

महाशय न्यूकम्बने देखा कि सूर्यके विषुवत कटिबन्धका अंशुवलय इतना अधिक फैला हुआ है कि उस समयके आलोक चित्रके आधारपरकी गयी गणना सर्वथा भी सत्य नहीं, क्योंकि दूर तक फैले हुए अंशुवलयकी कोमल अञ्चल मालाएं इतनी मृदु प्रकाशकी बनी थी उनका फोटोग्राफीकी प्लेटपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। पर्देकी आड़में समर्थ हुई चक्षुने उस प्रकाशके सौन्दर्यमय आँचलोंको गगन तलपर अपूर्व शोभासे हिलोरे लेते देखा जो कदाचित् चन्द्रविम्बके व्याससे लगभग ६
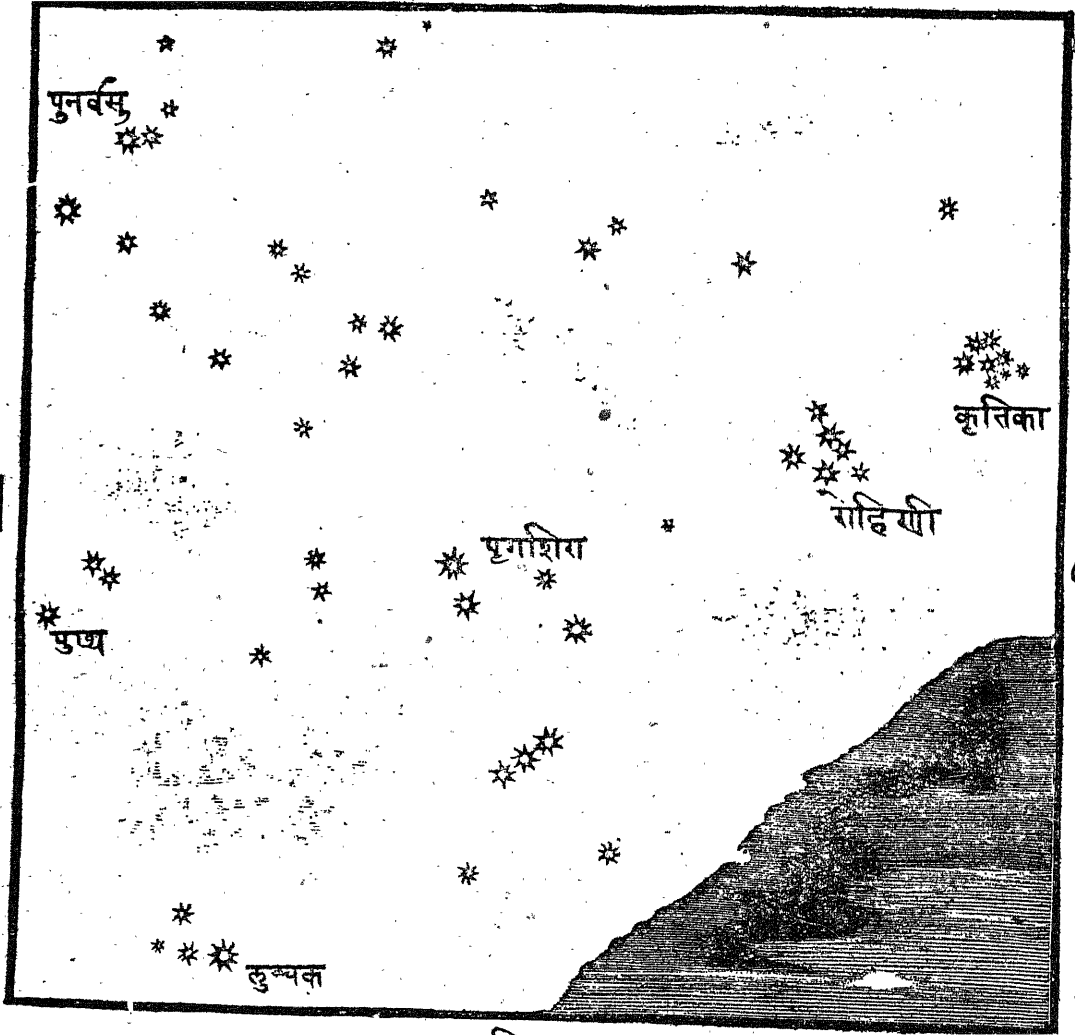
चित्र २६ [देखिये पृष्ठ ११२]

गुनी दूरी तक फैली थीं। फलतः धब्बोंकी न्यूनतमताकी दशामें अंशुवलय विषुवत कटिबन्धपर बहुत दूर तक फैला होता है।

(१३)

धब्बों की अधिकतमता की अवस्था

धब्बों की न्यूनतमता और अधिकतमताके बीच का काल लगभग ३ या ४ वर्ष है और अधिकतमता और न्यूनतमताके बीच का काल ७ या ८ वर्ष है। क्योंकि न्यूनतमतासे अधिकतमता पर आते हुये बिम्बपर बड़ा विक्षोभ और हलचल बड़े वेगसे बढ़ने लगती है और अधिकतमतासे न्यूनतमता पर आते हुये यह वेग अपेक्षया कम होता है। न्यूनतमता और अधिकतमताके बीचमें सूर्य बिम्बपर सभी दिशाओंमें बड़े वेगसे क्रिया होती रहती है। प्रशान्त ज्वालोद्रेक, जो केवल उज्जनके बने होते हैं बहुत ही अधिक संख्यामें उमड़ पड़ते हैं और ज्वालापटल भी बहुत अधिक दीप्तिमय होते हैं। यदि इस समय हिरण्यवसन की सप्तरंगी परीक्षा करें तो उज्जनकी रेखा और द३ (D_3) के अतिरिक्त मग्नीसियम की ३ रेखाएं तथा अन्य भी बहुत सी छोटी छोटी रेखाएं दीख पड़ती हैं। धब्बे भी नीचे अक्षांशों पर बहुत अधिक होते हैं। ३५° अंशोंसे २५° तक उतर आते हैं। धब्बोंके साथ साथ धातवीय ज्वालोद्रेक भी उठने लगते हैं। उनकी सतरंगी पट्टियोंमें प्रतिभास नाना उज्वल रेखाएं निरन्तर बढ़ने लगती हैं। अंशुवलयमें भी बराबर परिवर्तन आने लगता है। उसका आकार और उस की सतरंगी पट्टिकामें भी भेद आजाता है। न्यूनतमता की दशामें अंशुवलय की सतरंगी सतत (continuous) होती है। जिसमें कुछ रेखाओं का ही भेद होता है और कुछ और भी उज्वल रेखाएं दीखने लगती हैं। जिससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि अंशुवलय पूरा गैसमय नहीं होता। न्यूनतमतासे अधिकतमता पर आते हुए सतरंगी पट्टी स्थिर नहीं रहती। उज्वल रेखाएं और अधिक प्रकट होने लगती हैं, जो अंशुवलय की प्रदीप्ति अभिज्वलित गैसोंके कारण होती हैं। उसी समय उसकी दीप्ति भी बढ़ जाती है। ऐसी दशामें अंशुवलय विषुवत कटिबंध पर बहुत अधिक दूर तक फैला भी नहीं होता। यद्यपि लम्बी प्रकाश की धाराएं विचित्र रूपमें फैलती दीखती हैं। १८५८ के ग्रहण का हस्तलिखित चित्र धब्बोंकी न्यूनतमता और अधिकतमताके बीचके कालका है। उसमें मध्यके अक्षांशों और उत्तर और दक्षिणकी ओर ४ प्रकाशके उज्वल शंकु निकले दीख पड़ते हैं, जिनके आधार भाग हिरण्यवसन पर स्थित हैं। अंशुवलय की रचना इतनी चौड़ी हो गयी है कि ध्रुवोंपरके दोहरे चापाकार कटाव जो न्यूनतमता की दशामें प्रगट हुये थे अब प्रबल प्रकाशमें लुप्त हो गये हैं।

धब्बोंकी अधिकतमताके कालमें सूर्य की सभी शक्तियां बड़ी प्रचण्डतासे काम करती रहती हैं। धातवीय ज्वालोद्रेक और ज्वालापटल बहुत अधिक होते हैं। साधारण उद्रेक विषुवतपर न होकर ध्रुवोंपर अधिक होते हैं। ज्वालापटल अति अधिक उज्वल और दूर तक फैले होते हैं। ज्वालापटलोंसे आवृत बड़े बड़े धब्बे एक दूसरेके पीछे गति करते होते हैं। इसी अवसर पर मौलिकोंकी वाष्पोंमें बड़ा भारी वेग होता है। वह अपने वेगसे चक्कर खाती हुई बिम्बके तलमें प्रविष्ट हो जाती हैं। यह भँवर ही धब्बेके रूपमें प्रगट होती हैं। वही वेगसे जब ऊपर उठती हैं तो ज्वालापटल या ज्वालोद्रेकके रूपमें दीखती हैं। अंशुवलयका परिवर्तन पहले कहा जा चुका है। अब यह विचारणीय है कि धब्बोंकी उत्पत्ति की समस्या किस प्रकार सरलकी गयी है।

(१४)

साधारण स्थापना

धब्बोंकी उत्पत्तिका एक प्रकार तो गत लेखांकमें साधारणतः दर्शा दिया। अब दूसरी स्थापनाको स्पष्ट करते हैं।

पहले पहले कुछ कालतक यही स्थापना रही कि सूर्यके धब्बे हिरण्यकोशमें गम्भीर गह्वर हैं। और यह बाहरके शीतल भागके अन्दर धंस जानेसे विशाल गड्ढेके रूपमें प्रगट होते हैं।

परन्तु वर्त्तमान वैज्ञानिकोंने यह सत्य भी ढूंढ़ लिया है कि सूर्यमें इतना अधिक ताप है कि उसमें विद्यमान सभी मौलिकतत्व अपने मौलिक रूपमें ही पृथक् पृथक् हैं। कोई किसीसे मिलकर किसी प्रकारका रासायनिक यौगिक नहीं बना रहा। अर्थात् प्रत्येक मौलिक अपनी शुद्ध अवस्थामें है।

इसके अनन्तर इस प्रकारकी स्थापना करनेका प्रयत्न किया गया कि शीतल होकर ऊपरके भागके अन्दर धंसजाने और गढ़ा हो कर धब्बोंके रूपमें दीखनेकी कल्पना भी बनी रहे और दूसरी सत्यता मौलिकोंके मुक्त रूपमें रहनेकी भी बनी रहे अर्थात् दोनों कल्पनाओंको उचित संगति लगानेका प्रयत्न किया गया। यह अगले लेखांकमें दी जायगी।

अंडोंकी रक्षा

आजकल जिस प्रकार फलोंको रक्षित रखनेके अनेक उपाय निकल आये हैं उसी प्रकार अंडोंको बहुत दिनों तक सुरक्षित रखनेका यत्न भी किया गया है। कुछ दिन पहले अंडोंको सुरक्षित रखनेकी एक साधारण विधि यह थी कि अण्डोंको किसी ऐसी चीज़में गाड़ देते थे, जिसमें हवा न पहुंच पाती थी। ऐसी चीज़ें काठका बुरादा, नमक, ओट्स आदि हैं। बादमें बिनौलेका तेल आदि द्रवोंका भी प्रयोग होने लगा।

हालमें ही जिस विधिका आविष्कार किया गया है वह यह है कि पहले साबुनका घोल बना लेते हैं और इसमें फिटकरी या कोई अन्य अलूमिनियमके यौगिकका घोल मिला देते हैं। दोनों घोलोंके मिलते ही एक थक्का सा बन जाता है, जो अलूमिनियमका साबुन होता है। यह साबुन पानीमें घुलता नहीं है, परन्तु गैसोलीनमें घुल जाता है। अतएव अन्तिम घोलमें डोब देकर सुखा लेनेसे अण्डों पर अलूमिनियम साबुनकी पतली तह चढ़ जाती है, जिसका कोई प्रभाव अण्डोंके भीतरी मसाले पर नहीं होता, परन्तु घोलक, गैसोलीन कुछ जायकेको बिगाड़ देता है। इस त्रुटिको भी दूर करनेका प्रयत्न किया गया। पहले तो अण्डोंको पतले गंधकाम्लमें एक डोब देते हैं। इससे अण्डेके ऊपरके खटिकमगंधेत (calcium sulphate) बन जाता है जो उसके छिद्रोंको बिलकुल भर देता है। अतएव गैसोलीन अण्डोंके अन्दर तब प्रवेश नहीं कर पाता जब उन्हें अलूमिनियम साबुन घोलमें डुबोते हैं।

इस अन्तिम विधिमें पहले अण्डोंको गंधकाम्लमें और बादमें (सुखानेकी आवश्यकता नहीं) अलूमिनियम साबुनके घोलमें डुबाना पड़ता है। अतएव मेहनत ज्यादा पड़ जाती है। इसी कारण किसी अन्य सरल विधिकी तलाश की गई तो मालूम हुआ कि गैसोलीनमें अधिकांश पंचेन (Pentane) रहता है। इसीका गैसोलीनके स्थानपर प्रयोग किया गया। इसने गैसोलीनका काम दिया, परन्तु स्वयम् स्वादहीन और गंधहीन होनेसे अण्डोंके स्वादको न बिगाड़ा। —मनोहरलाल

बीजोंका विद्युन्मय करना

बीजोंको विद्युन्मय करनेकी अनेक विधि हैं, जिनमेंसे बहुत विख्यात वुलफ्रिन महोदयकी आविष्कृत है। इस विधिमें नमक या केलसियम हरिद (calcium chloride)के घोलमें बीजोंको डाल देते हैं और तब विद्युत्धाराका प्रवाह कराया जाता है। तदनन्तर बीजोंको ३८° श पर सुखा लेते हैं। सूखने पर बीज बोये जा सकते हैं। पहले ख्याल किया जाता था कि ऐसा करनेसे बीज खराब कम जाते हैं और पैदावार अधिक होती है। इस बात की परीक्षा हालमें ही सटन एण्ड संस रीडिंग निवासी ने की है।

उक्त विधिमें दो क्रियाएं की जाती हैं। एक तो बीजोंको डोब देना, दूसरे विद्युत्प्रवाह कराना। जांचनेकी बात थी कि बुलफ्रिन विधिसे, अथवा बीजोंके डोब देनेसे, अथवा विद्युत्धारा प्रवाह करानेसे लाभ होता है। इसलिए साधारण बीज, अमोनिया गंधेतके घोलमें डुबोये हुए बीज, नमकके घोलमें डुबोये हुए बीज और विद्युन्मय किये हुए बीज अलग अलग बोये गये। डुबोये हुए बीज पूर्ववत् ३८° श पर बोनेके पहले सुखा लिये गये थे। परीक्षाओंमें गाजर (carrot) स्वीड (swede) गोभी (cabbage) और मेनगोल्ड (mangold) के बीज लिये गये थे। परिणाम यह निकला कि विद्युन्मय करनेसे प्रायः कोई लाभ नहीं होता; केवल मेनगोल्डके बीजोंपर कुछ प्रभाव होता मालूम होता है। उसके साधारण बीज ८२ प्रतिशत, नमकके घोलमें डुबोये हुए ८३% और विद्युन्मय किये हुए ६४% अङ्कुरित हुए। विद्युन्मय किये हुए बीजोंकी पैदावार भी खेतके प्रत्येक पोलमें ३१ सेर अधिक हुई। अन्य बीजोंके विषयमें यह अनुभव हुआ कि विद्युन्मय करनेसे या तो उपज कम हो गयी या इतनी कम बढ़ी कि वह किसी लेखेमें नहीं आ सकती। —मनोहरलाल

निशाना लगानेवाली मछली

गरम देशोंकी रहनेवाली मछलियोंका एक समूह है जो (Toxotes or archers) तीरंदाज़ कहलाता है। इस समूहकी तीन उपजातियां पोलीनेशिया और ईस्ट इण्डियन आरकीपेलेगोमें रहती हैं। इनका रङ्ग पीला या भूरा होता है और गोल लम्बे या काले धब्बे पड़े रहते हैं। आंख गुलाबी रङ्गकी और पेट बिलकुल सफेद होता है। इन चारोंमेंसे अधिक प्रसिद्ध जाति है सेगिट्टेरियस (Sagittarius or Toxotes Jaculator)। यह अपनी शिकार पर, जो प्रायः छोटे छोटे कीड़े मकोड़े होते हैं, जो किनारेके जलीय पौदों घास आदि पर आकर बैठा करते हैं, बड़ी होशियारीसे निशाना लगाती है। बड़ी कुशलतासे यह पानीकी धार निशाना लगाकर फेंकती है और शिकारको गिराकर चट कर जाती है। जलीय तीर वह दो हाथ या इससे भी अधिक दूर तक फेंक सकती है और प्रायः सदा ही निशाना ठीक बैठता है। मलय (malays) लोग इसे स्पिटिंग (थूकनेवाली) फिश कहते हैं। श्रीह्ल महोदयका कहना है कि बहुतसे देशोंमें तो इसे शौकिया पालते भी हैं और कीटोंपर निशाना लगवा कर मनोरञ्जन किया करते हैं। जावामें इसे बरतनोंमें रखते हैं, जिनके ऊपर डेढ़ फुटकी ऊँचाई पर एक लकड़ी लगा देते हैं। इस लकड़ीपर काग बंधी रहती हैं, जिन पर कीटोंको बैठा देते हैं। शिकारको देखते ही मछली ऊपर उठती है; सतह पर आकर कुछ देर चुप चाप ठहरी रहती है और तब पानीकी गोलियां, कई बड़े बड़े कतरे, शिकारपर फेंक मारती है। प्रायः निशाना ठीक लगता है। शिकार गिर जाती है और निशाने बाज मछली उसको हड़प जाती है। यदि निशाना नहीं लगता तो मछली थोड़ा इधर उधर तैरकर, फिर निशाना लगाती है।

—मनोहरलाल

कलियुगका रसायन

[ले॰—श्री॰ सुन्दरलाल, एम. ए.]

सुनते हैं कि देवताओंके वैद्यके पास ऐसी ऐसी दवाइयां हैं कि जिनके सेवनसे बुड्ढे जवान हो जाते हैं। च्यवन ऋषिको भी ऐसी ही औषधोंका सेवन कराके जवान बनाया गया था। रसायनके पान करनेसे यही लाभ होता है। आदमी कभी मरता नहीं है, सदा किशोर बना रहता है। इसी रसायनकी खोज सैकड़ों वर्षोंसे हो रही है। अमृत और पारस अथवा रसेन्द्र इन दो पदार्थोंको लक्ष्य रखकर ही कीमियागरोंने न जाने कितना परिश्रम किया है, कितनी

बार धोखा खाया है, कितनी बार, तन, मन, धन, सर्वस्व खोया है। कीमियागरोंकी मेहनतका फल स्वरूप ही आधुनिक रसायन शास्त्र है, जिसने यद्यपि लोहा तो सोना नहीं बना पाया है, पर कूड़े करकटसे अवश्य सोना बना दिया है। घूरेमें लक्ष्मीका वास साबित करदेना आधुनिक रसायनका ही काम है।

अब मालूम होता है कि मनुष्यकी युग युगान्तरोंकी दूसरी लालसा पूरी होनेका समय भी आगया है। अब ऐसे साधनों का उदय होना सम्भव होता दीखता है कि मनुष्य आजन्म जवान बना रहे। अब अन्तर इतना ही है कि मनुष्य चाहता यह था कि वैद्योंकी पुड़िया खानेसे यह फल प्राप्त हो, पर वास्तवमें यह फल मिलेगा सर्जन, शल्यचिकित्सक, की छुरीके स्पर्शसे।

कुछ दिन पहले पेरिस नगरमें यह सनसनी फैलानेवाली खबर फैली कि डाक्टर सर्ज वोरोनौफ (Dr. Serge Voronoff) ने एक बुड्ढे बकरेको, उसकी खोई हुई जवानी और शक्ति, अन्तरस्थानीय ग्रन्थियोंका (Interstitial glands) पैवन्द लगाकर, फिरसे प्रदान करदी है। इस खबरके फैलते ही अनेक सज्जन इस विषयमें वाद विवाद करने लगे। कुछ तो डा० वोरोनौफकी बातोंपर हंसने और उनका मजाक उड़ाने लगे और कुछ इस बातको सिद्ध करने लगे कि इस क्षेत्रमें वह अगुआ नहीं हैं परन्तु अनुगामी हैं। निस्सन्देह उक्त डाक्टर महोदयने कौशल और योग्यताका काम किया है और वह हालमें ही अमेरिका पहुंचे हैं कि अपने प्रयोग वहांके डाक्टरोंको दिखलायें, परन्तु इनके पहले आस्ट्रियाके एक विख्यात वैद्यने जो काम किया है उसका हाल भी जनताको जानना चाहिये।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भसे ही बहुतसे शल्य चिकित्सक पाशव-पैवन्दके प्रयोग करनेमें लगे हुए हैं। पैवन्द लगानेका अर्थ तो पाठक समझते ही होंगे। पेड़ोंमें जैसे एक वृक्षकी डाली दूसरेपर लगाते हैं उसी प्रकार पशुओंमें, जिनमें मनुष्यको शामिल समझना चाहिये, एक पशुका अंगविशेष दूसरेमें लगा देनेको पैवन्द-लगाना कहते हैं। कपड़े में जब कहीं छेद हो जाता है, तो उसका थोड़ा सा हिस्सा काटकर निकाल देते हैं और दूसरे कपड़े का पैवन्द लगा देते हैं। अतएव पैवन्द शब्दका कोई अनोखा अथवा विलक्षण अर्थ नहीं। उसका मौलिक अर्थमें ही प्रयोग किया जाता है। चमड़ेका पैवन्द लगाना, जैसे जल जानेपर, तो बहुत पुरानी बात हो चुकी है। हालमें ही पेशियों, हड्डियों और तन्तुओंके पैवन्द लगानेका प्रयत्न सफलता पूर्वक हो चुका है।

गत महाभारतकी विकट समस्याओंने इस क्षेत्रमें भी बहुतसा प्रयोगात्मक और गवेषणात्मक काम करनेको बाधित किया और चेहरेकी शल्य-चिकित्साके सम्बन्धमें वस्तुतः बड़ी आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु सबसे अधिक सनसनी पैदा करनेवाले वह प्रयोग हैं जिनमें पूरे अंग ही काटकर बदल दिये गये हैं। इसी नवीन क्षेत्रमें यह भी प्रयोग हुआ कि यदि उत्पादक-संस्थान बदल दिये जायं, तो बुड्ढेको जवान बनाया जासकता है। क्या आश्चर्य है कि भारतमें पुरुने बूढ़े बापको जवानी इसी क्रिया द्वारा दी हो।

चिकेगोके डाक्टर कैरेल ने अपने शरीरकी एक उत्पादक ग्रन्थि (reproductive gland) बदल डाली और उससे बहुत लाभ उठाया। पोर्टलेण्ड, औरेगेन (Portland, Oregan) के एक और डाक्टर मेकोरकिल (Dr. McCorkle) बकरोंके शरीरमेंसे कुछ ग्रन्थियां जिन्हें वह "जवानीकी ग्रन्थि" (glands of youth) कहतेहैं मनुष्योंके शरीरमें लगाते हैं। ४१ पुरुष और स्त्रियोंपर वह इस प्रकार प्रयोग कर चुके हैं और परिणाम यही हुआ है कि नये जीवनका संचार होगया है; फिर जवानीका ज़ोर आगया है। इन स्त्रियोंको उम्र ४५ से लेकर ४८ वर्ष तककी और पुरुषोंकी ६१ से ७४ तककी थी। एक समा-

चारपत्र के प्रतिनिधिसे बातें करते हुए उक्त डाक्टरने हालमें ही कहा है कि इस शल्य क्रियासे न केवल जवानी ही फिरसे आजायगी वरन् आयु भी बढ़ जायगी; इसके अतिरिक्त अधिक रुधिर-दबाव भी कम हो जायगा। उनका कथन है कि—"मैं ग्रन्थियोंके लगानेमें उसी तरहकी शल्य क्रिया करता हूं जैसी एपेन्डिसायटीस प्रदाहमें की जाती है। ग्रन्थियां वस्ति-उदरआछादनी झिल्लीमें जम जाती है (becomes embeded in the peritoneum)। यह प्रायः एक वर्षमें रम जाती हैं। जो लोग पहले उदास और परेशान रहा करते थे, वह इस क्रियासे फिर खुशमिज़ाज और ज़िंदादिल हो गये। जिनके शरीर में रुधिरका बहुत ज्यादा दबाव था, उनका रुधिर दबाव बहुत कम हो गया।"

जितने प्रयोग ऊपर किये गये हैं उनसे ज्यादा अचम्भेके वीना निवासी डाक्टर स्टीनेक (Dr. Eugene Steinach) के प्रयोग हैं। इन प्रयोगोंका हाल हम अगले अंकमें लिखेंगे और चित्र भी देंगे।

तेज़ाबके अवखरोंसे सर्दी (ज़ुकाम) का अच्छा करना

[ले०—श्री० रामचन्द्र त्रिपाठी]

यह बात बहुत दिनोंके अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है कि कृत्रिम ऊनके कारखानोंमें कर्बनी करण (Carbonisation) के कमरोंमें काम करने वालोंका स्वास्थ्य विशेष प्रकारसे अच्छा रहता है। इस बातपर विचार करनेसे एक जर्मन रासायनिकको यह ख़याल आया कि सम्भवतः इसका कारण यह हो कि उक्त कमरे सदैव अम्लोंकी धुआंसे (तेज़ाबके अवखरों) से भरे रहते हैं। यह बात है बहुत आश्चर्य्य जनक, क्यों कि मनुष्यमात्र स्वभावसे ही अम्लोंके अवखरोंसे बचनेका प्रयत्न करता है। परन्तु एक जरमन प्रोफेसर, डा० वान कैफ (Dr. von Kapff) के अनुसन्धानसे यह विचार और भी पुष्ट हो गया है। जिन जिन शिल्पोंमें तेज़ाबके अवखरे निकला करते हैं, उनमें लगे हुए आदमियोंके स्वास्थ्यकी परीक्षा उन्होंने की और यह परिणाम निकाला कि वह लोग न केवल छूतके रोगोंसे ही बरी थे वरन् श्वास संस्थानके रोगोंसे भी मुक्त थे। उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि कभी कभी तो क्षयरोग तक इन अवखरोंसे अच्छा हो गया है। इस बातका अनुभव उक्त शिल्पोंमें लगे हुए आदमियोंको बहुत पहलेसे था। और वह प्रायः रोगी (विशेषतः श्वास संस्थानके रोगोंसे पीड़ित) मज़दूरोंको इलाजकी गरज़से ऐसे कमरोंमें ही भेज दिया करते थे, जहां तेज़ाबके अवखरे बहुत रहते थे।

यह तो स्पष्ट ही है कि हवामें तेज़ाबमें अवखरे बहुत ज्यादा नहीं होने चाहियें, नहीं तो उलटा नुकसान होगा। डा० वानकैफ पर इस अनुसन्धानका इतना प्रभाव पड़ा कि जब उनके लड़कोंको स्निफिल्स (Sniffles or cold in the head) ज़ुकाम हुआ तो उन्होंने अम्लके अवखरोंका प्रयोग कर डाला। प्रायः यह ज़ुकाम दो तीन हफ़्ते रहता है, परन्तु इन बच्चोंको दूसरे दिनही आराम हो गया। यह इलाज इतना अच्छा जंचा कि जर्मनीके अस्पतालों और स्वास्थ्य नगरों (Sanatorium) में जारी कर दिया गया, जहां अनेक प्रकारके अवखरोंका प्रयोग होने लगा है। हे ज्वर (hay fever), कुकर खांसी (Whooping Cough), कंठकी सूजन (throat-inflammation), ब्रौंकाइटीज (bronchitis) अर्थात् श्वासनाली प्रदाह, दमा (bronchial asthma) में भी इस चिकित्सासे लाभ हुआ है।

एक्स (Aix) के स्कूलोंमें भी इसकी परीक्षा की गई। वहां प्रतिदिन कुछ क्लासोंमें दो घंटेके लिए हवामें थोड़े तेज़ाबके अवखरे मिला दिये जाते थे। इन क्लासोंके लड़के छूतके रोगोंसे तो बरी ही रहे, इसके अतिरिक्त अन्यक्लासोंकी अपेक्षा उनका भार भी जल्दी बढ़ा। स्टटगार्ट (Stuttgart) में भी यह प्रयोग किया गया। वहां, उस ज़मानेमें जब इनफ्लूएंज़ा

फैला हुआ था और लड़के हज़ारोंकी संख्यामें मर रहे थे यह सब लड़के स्वस्थ और नीरोग रहे।

हवाके प्रत्येक घनगज़में एक रत्ती भर अम्लके अवखरे होने चाहियें और इस अम्लमय हवामें दो घंटेसे ज्यादा न रहना चाहिये, नहीं तो लाभके बदले उलटी हानि होनेकी सम्भावना रहती है। नमकका तेज़ाब, सिरका, पिपीलका अम्ल (formic acid) अथवा हाईड्रोफ्लारिक अम्लका प्रयोग किया जा सकता है। अन्तिम पदार्थ यद्यपि कांच तकको खाजाता है, तथापि उतना ही लाभकारी है जितना कि अन्य कोई अम्ल। जिन कारखानोंमें यह अम्ल कांचपर खुदाई करनेके काममें आता है, उनमें बहुतसे क्षयरोगी अच्छे हो गये हैं और एक बार तो एक महाभयंकर लूपस (Lupus) का रोगी भी अच्छा हो गया है। आश्चर्य है कि साठसालके लगभग हुए एक फ्रांसीसी रासायनिकने इस अम्लका प्रयोग क्षयरोगमें बतलाया था, परन्तु उसके उपदेशको सब भूलगये।

भिन्न भिन्न अम्लोंका प्रयोग भिन्न भिन्न बीमारियोंमें करना चाहिये। परन्तु क्षयरोग और हेज्वर (hay fever)में अनाङ्गारक अम्लोंका प्रयोग ही श्रेयस्कर है। डा० कैफने जानवरोंके इलाजमें भी अम्लमय वायुका प्रयोग करके सफलता प्राप्त की है। ग्लेण्डर्ज़ रोगवाले घोड़ोंको उन्होंने इस नई चिकित्सासे २ दिनमें अच्छा कर दिया, जब कि पुरानी प्रथाके अनुसार उनके अच्छे होनेमें १२ दिन लगते।

एक बार इङ्गलेण्डमें हैज़ा फैला। उस समय उनके कारखानोंमें काम करनेवाले बहुत बचे रहे। अब हम कह सकते हैं कि यह चमत्कार अम्ल-मय वायुका था।

पतले नमकके तेज़ाबसे यदि घावोंको धो दें तो घाव बिना पीप पड़े ही अच्छे हो जायं। पिकरिक अम्लके घाव भी उसके प्रयोगसे अच्छे हो जाते हैं। पुराने ज़मानेसे यह प्रथा चली आई है कि सिरकेमें भीजे हुए कपड़े रोगीके रहनेके कमरेमें लटका देते हैं। इस प्रथाका रहस्य आज डा० कैफके परिश्रमसे खुला है—(Scientific American Monthly for Nov. 1920)

प्रश्नोत्तर

क्या तेल लगाकर कदापि स्नान न करना चाहिये?

मेरी इच्छा लेख लिखनेकी न थी, परन्तु विज्ञानके तुला सं० १९७७ के अंकमें छपे हुए—"तेल लगाकर कदापि स्नान न करना चाहिये" वाक्यने हठात् मुझे कुछ लिखनेको मजबूर किया।

यह वाक्य सम्पादक महाशयने राय बहादुर श्रीयुत डाकृर सर्यूप्रसाद जी तिवारीकी लिखी पुस्तक 'स्वास्थ्य' की समालोचना करते हुए लिखा है (पृ० ४४)। डाकृर साहबने अपनी पुस्तकमें लिखा है "तेल लगाकर नहानेसे त्वचामें गर्मी जल्दी पहुंचती है"। इसकी समालोचना सम्पादक महाशयने इस प्रकार की है—"यह सरासर ग़लत है; तेल लगाकर कदापि स्नान न करना चाहिये। यह पानीको त्वचासे स्पर्श ही नहीं करने देता, अतएव सफ़ाई अच्छी तरहसे नहीं हो सकती, उलटा मैल चढ़ जाता है। दूसरे तेल लगाने और गर्मी पहुंचानेसे कोई सम्बन्ध नहीं। गर्मी आती कहांसे है? जाती कहां है? क्या तेल पहुंचाता है जो स्वयं कुवाहक है?"

मेरा निवेदन इस विषयमें यह है:—

प्राचीन आर्य वैद्यक शास्त्र तैल मर्दनके पश्चात् ही स्नान करनेकी व्यवस्था देता है। वह तो प्रतिदिन बिना तैल मालिश किये स्नानका विधान ही नहीं करता। और तेल मालिश करनेके पीछे स्नान परम आवश्यक बताता है। आर्य धर्म शास्त्र भी इस विषयमें सम्मत है*। आर्य वैद्यकमें तेल मर्दन और स्नानके बीचमें एक क्रिया और है जिसे उद्वर्तन या उबटना कहते हैं। तेल मालिशके बाद उबटन करनेसे तेलकी अधिक चिकनाई और शरीरका मैल

* तैला भ्यङ्गे तथा·········मैथुने चौर कर्मणि। यावन्न चरेत्स्नानं तावच्चाण्डालवद्भवेत्॥

छूट जाता है उसके बाद स्नान करनेसे त्वचा सर्वथा साफ हो जाती है । हिन्दुओं और अक्सर मुसलमानोंमें भी लड़के लड़कियोंके विवाहसे कुछ दिन पहलेसे इसी प्रकारका वैद्यक शास्त्रोक्त स्नान किया जाता है, जिसे तेल-वान कहते हैं ।

परन्तु उबटन न करनेपर भी तेलकी मालिशके बाद स्नान करने और त्वचाको तौलिया या मोटे कपड़ेसे रगड़कर पोंछ देनेसे बहुत कुछ त्वचा साफ हो जाती है, जैसी केवल जलसे नहीं हो सकती । हजामत बनानेवाला नाई चेहरेका मैल साफ करनेके लिये पहले तेलमें पानी मिलाकर चेहरेपर खूब मलता है फिर उस्तरेसे मैल खुरच लेता है। बात यह है कि तेल पानी लगानेसे त्वचाका मैल फूल जाता है और जल्दी छूटनेके लिये तयार हो जाता है। साबुनमें तेल इस लिये ही डाला जाता है।

रही दूसरी बात तेलके कुवाहक होनेकी, अब उसपर विचार करते हैं। यह आप जानते ही हैं कि शरीरकी गर्मीके लिये भट्टी शरीरके भीतर ही जल रही है। वहींसे गर्मी नित्य रोमरन्ध्रों आदिके द्वारा शरीरके बाहर निकला करती है। स्नान करनेके पीछे शरीर बाहरसे ठंडा हो जाता है। इस लिये स्नान करने वालोंको गर्मीकी आवश्यकता मालूम होती है; लेकिन थोड़ी ही देर बाद त्वचा गर्म हो जाती है, क्योंकि बाहरकी ठंडकी तरफ शरीरकी गर्मी एक दम दौड़ती है। अगर तेल कुवाहक है तो वह भीतरकी गर्मीको और भी रोकेगा और बाहर न निकलने देगा। इस लिये त्वचा और भी शीघ्र गर्म हो जावेगी। तब तो डाक्टर साहब ही की बात ठीक मालूम होती है कि "तेल लगाकर नहानेसे त्वचामें गर्मी जल्दी पहुंचती है।" एक लाभ तेलके इस गुणसे और भी होगा। वह यह कि हवा और पानीकी अनुचित सर्दी गर्मी शरीरपर कोई प्रभाव न कर सकेगी। बाकी डाक्टर साहब जानें और आप। यह विषय आयुर्वेदसे सम्बन्ध रखता था इस लिये दो पंक्तियां लिखदी हैं। —कल्याण सिंह वैद्य

[यहांपर दो प्रश्न उठते हैं। एक तो यह कि तेल लगानेके बाद नहाना चाहिये या नहीं, दूसरे यह कि नहानेके पहले तेल लगाना चाहिये या नहीं। जो श्लोक वैद्यजीने चाणिक्य नीतिसे उद्धृत किया है, उससे यह अभिप्राय है कि तेल लगानेके बाद स्नान करना चाहिये। आयुर्वेदमें तेलकी मालिश करनेके बड़े बड़े लाभ बतलाये हैं। कहीं कहीं तो यहां तक कहा है कि खानेकी अपेक्षा मालिश करनेसे दस गुना फायदा होता है। घी खानेसे तेल खाना और तेल खानेसे तेल लगाना अधिक लाभदायक बतलाया है। तेल लगानेके बाद यदि स्नान न किया जाय तो बदनमेंसे गंध आया करती है, कपड़े जल्दी मैले हो जाते हैं और ऐसा मालूम पड़ता है कि बदन पर कुछ चिपक रहा है। आज कलके मट्टीके तेल पोतनेवाले—सुगंधित तेलोंके शौकीन—बाबूओंकी टोपियां मूर्तिमान सफाई हैं। अतएव तेल लगानेके बाद नहाना परमावश्यक है। जहां तक सम्भव हो गरम पानीसे नहावे, जिससे तेलका वह अंश जो बदनमें जज़्ब नहीं हुआ है, निकल जावे।

अब रहा दूसरा प्रश्न कि नहानेके पहले तेल लगाना चाहिये या नहीं। तेल शरीरमें जज़्ब होकर कुछ फायदा पहुंचाता है या नहीं, इसका ठीक ठीक अन्दाज़ा लगाना मुश्किल है। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मालिशसे बहुत फायदा होता है। इससे व्यायामका काम निकल सकता है, पेशियां मज़बूत होती हैं, बदनमें फुरती आती है और हलकापन मालूम होता है। मालिशके लिए तेलका प्रयोग अनिवार्य है। तेल त्वचाकी रक्षा करता है। शरीरमेंसे स्वयम् एक प्रकारका तेल त्वचाकी रक्षाके लिए निकलता रहता है। यह तेल शरीरसे निकले हुए मल तथा ऊपरसे गिरी हुई धूल आदिको पकड़ लेता है। इसी क्रियाको कहते हैं मैल जमना। कोई भी द्रव पदार्थ बदनपर लगाया जाय मैलको थोड़ा बहुत ढीला कर देगा, परन्तु तेलसे मैल चिकट जायगा।

बदनपरसे अलग न किया जा सकेगा। इसी लिए बेसन, गेहूंका आटा, चिरौंजी पिट्ठी; नारंगीके छिलकोंकी पिट्ठी आदिका प्रयोग तेलके साथ किया जाता है। अर्थात् इनका उबटन किया जाता है। कुछ सूखनेपर हाथके जोरसे उबटन उतारा जाता है, उसके साथ शरीरपर फैला हुआ मैल भी उतर आता है। पर जहांपर मैल जमजाता है उसे न उबटना साफ कर सकता है, न तेल। आश्रय लेना पड़ता है गरम पानीका और मैल खोरोंका। पानी मैलको फुला देता है, मैलखोरा रगड़कर साफ़ कर देता है। पर पूरा मैल इस प्रकार भी नहीं उतरेगा, क्यों कि खालमेंसे खून निकलने लगेगा। इस लिए तेल लगाकर दूसरे दिन या तीसरे दिन फिर रगड़ते हैं, तब कहीं पूरा मैल उतरता है। एक तो विधि हुई यह। इसे रगड़की विधि कह सकते हैं। दूसरी है रासायनिक विधि। इस विधिमें रासायनिक द्रव्यों द्वारा मैलको ढीला किया जाता है। वह रासायनिक द्रव्य है साबुन। यह खालकी चिकनाईको हटा देता है, पर चिकनाईके ही कारण मैल खालपर जमा रहता है, अतएव मैल ढीला हो जाता है और ज़रासे रगड़नेसे अलग हो जाता है।

साबुनमें तेल इसलिए नहीं डाला जाता कि वह मैल फुलावे, बल्कि इस लिए कि क्षार, दाहक सोडा, की तीव्रता कम करदे। साबुनमें तेल तो लेशमात्र भी नहीं रहता। साबुन बनानेमें इसका विच्छेद हो जाता है। साबुन लगानेपर जल-विश्लेषण द्वारा साबुनका कुछ क्षार अलग हो जाता है और यही क्षार चिकनाई हटाकर मैल छुड़ा देता है।

अब सोचिये कि नहाते किस लिए हैं। दो बातोंके लिए-एक तो सफाईके लिए दूसरे त्वचाको ताव देनेके लिए। सफाईकी दृष्टिसे तो तेल लगाकर नहाना अनुचित है। त्वचाको घर्षण अथवा साबुनसे साफ कर लेना चाहिये। उसके बाद मोटी खुरदरी तोलियासे बदन रगड़ डालना चाहिये या नहानेके पहले कभी कभी उबटना लगा लेना चाहिये। मेरे खयालमें हफतेमें एक दिन उबटन किया जाय और छः दिन रगड़कर नहाया जाय तो साबुनकी आवश्यकता न पड़ेगी, पर साबुन लगानेमें समय कम लगता है। यही एक बड़ी भारी बात उसके पक्षमें है। रोज़मर्रा तेल लगाकर नहाया जाय तो सफाई नहीं हो सकती, कपड़े भी जल्दी खराब होंगे और बदनमेंसे गंध आने लगेगी। दूसरा उद्देश्य नहानेका है चमड़ेको ताव देना है। जब शीतल जल त्वचापर गिरता है, तो वह ठंडी हो जाती है। अतएव भीतरकी गरमी त्वचाकी तरफ दौड़ती है, त्वचा एक दम गरम हो जाती है। इसीको ताव देना कह सकते हैं। यह शरीरकी प्रतिक्रिया हुई। नहानेका लाभ इसीपर निर्भर है। जिन लोगोंकी त्वचा इस प्रतिक्रियाके असमर्थ है, जैसे रोगियोंकी, उन्हें नहानेसे अधिक लाभ नहीं हो सकता पर तो भी उनको सफाईकी गरज़से गरम पानीसे न्हिलाना चाहिये। अब यदि तेल लगाकर नहायें तो क्या होगा? साधारण अनुभवकी बात है कि तेल लगाकर नहानेसे सर्दी कम लगती है। पर क्यों? कारण यह है कि पानी त्वचासे अच्छी तरह स्पर्श ही नहीं कर पाता। फिर न तो प्रतिक्रिया होगी और न सफाई। अतएव नहाना व्यर्थ है।

यदि बदनमें खुश्की है या किसी मर्ज़के कारण मालिश करना जरूरी है तो मालिश करनेके बाद साबुन लगाकर नहा डालना चाहिये। इससे सफाई होगी। अन्यथा नहीं। आशा है कि जिस खयालसे समालोचनामें बातें लिखी थीं, उन सब पर वैद्य जी विचार करेंगे। फिर भी उन्हें कोई गलती मालूम हो तो निस्संकोच दुबारा लिखेंगे। ज्ञान वृद्धि और भ्रम संशोधनका धर्मसंगत वाद-विवाद ही एक मार्ग है। और उसका अवलम्बन प्रत्येक विद्या प्रेमी कर सकता है। हमें बड़ा आनन्द है कि वैद्यजीने यह नोट भेजा और हमें बड़ी खुशी होगी यदि अन्य विज्ञान-प्रेमी भी "विज्ञान" द्वारा ऐसी बहस किया करेंगे।]

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानिजायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १२ } मकर, संवत् १९७७ । जनवरी सन् १९२१ । { संख्या ४

कच्चा चिट्ठा

१—मानव विज्ञान

(१)

ईश्वरकी इस विचित्र सृष्टिमें मनुष्य विश्वकी उन सब शक्तियोंका संयोग प्रतीत होता है जिनका अल्पातिअल्प ज्ञान भी उसको अपनी बुद्धि द्वारा हो सकता है। भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनको जो अपना विराट रूप दिखाया था वह उनके मनुष्य रूपका ही विस्तृत दर्शन था। जो दृश्य उस रूपमें अर्जुनको दृष्टि-गोचर हुए थे वह सब उन बातोंके बढ़े हुए रूप थे जो प्रत्येक मनुष्यके शरीर और आत्मामें सूक्ष्म स्थितिमें विद्यमान हैं। अर्थात् ब्रह्म अथवा विश्वका जो प्रकृत विराट रूप है वही सूक्ष्म मात्रामें प्रत्येक मनुष्यमें भरा हुआ है। इसी सादृश्य वा ऐक्यके कारण प्रत्येक मनुष्य ब्रह्मके बड़े बड़े रूप—पृथिवी, आकाश आदि को अपनी बुद्धि द्वारा सहजमें कमसे कम स्थूलतया समझ सकता है। अर्थात् वह अपनेमें उन सबके प्रतिबिम्बित होनेकी योग्यता रखता है।

अतः प्रत्येक मनुष्य एक ही ब्रह्मका भिन्न भिन्न प्रतीत होने वाला रूप है। यही स्थिति एक मनुष्य को दूसरे मनुष्यके साथ साम्य-प्रदान करती हुई प्रत्येकको समान स्थितिका अधिकारी बनाती है। परन्तु संसारमें जो मनुज-समाजमें असमानता-जनित विषम स्थिति व्याप्त है वह क्यों है इस प्रश्नका समाधान ढूंढनेके लिये मानव-विज्ञान-वेत्ता यदि प्रयास करें तो अच्छा हो। जिनको जितना तत्व दूसरोंके निकाले हुए सिद्धान्तों द्वारा अवगत हो, अथवा जो गंभीर विचार पूर्वक हेतु समझा सकें, कृपया ऐसा करें।

श्रीपद्मकोट,
२०-२-२१

—श्रीधर पाठक।

पाला

[ले०—श्रीमहावीरप्रसाद, बी.,एस-सी.,एल-टी., विशारद]

जब कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है तब चना, अरहर, गेहूं, जौ इत्यादि छोटे छोटे पौधे इतना ठिठुर जाते हैं कि उनकी जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है और वह मुरझा जाते हैं। मटर, अरहर इत्यादिकी फलियोंमें बीज भी निर्जीव हो जाते हैं और उनका माधुर्य जाता रहता है, जिससे वह नीरस जान पड़ते हैं। जो बीज पुष्ट नहीं हुए रहते वह तो किसी कामके नहीं रहते। लोग कहते हैं कि इनपर पाला पड़ गया।

किसानोंको पहलेसे पता चल जाता है कि पाला कब पड़ेगा। जिस दिन आकाश साफ़ रहता है और दिन भर पछांही हवा बहती रहती है परन्तु रातको बन्द हो जाती है उस रातको पाला अवश्य पड़ता है। यदि रातको हवा चलती रहे तो पाला नहीं पड़ता। जो खेत सींचे नहीं जा सकते जैसे अरहर या चनेके खेत उनमें पालेका प्रभाव अधिक होता है। जिस खेतकी मट्टी बलुई होती है और जो कुछ ऊंचाईपर और चारों ओरसे खुले रहते हैं उनमें भी पालेका असर बहुत पड़ता है। जिन खेतोंके पास बाग या खेत पेड़ होते हैं और जिनमें खाद खूब पड़ी रहती है और जो सींचे जाते हैं उनमें इतना असर एक तो पड़ता ही नहीं और यदि पड़ता भी है तो बहुत कम। किसानोंके इस अनुभवसे यह पता लगाया जा सकता है कि पाला क्या है।

यह सब जानते हैं कि जिन देशोंमें इतनी सर्दी पड़ती है कि महीनों भूमि बर्फसे ढकी रहती है वहां छोटे पौधे जाड़ेके दिनोंमें नहीं उगते और बड़े बड़े पेड़ोंकी भी पत्तियां झड़ जाती हैं, जिससे वह निर्जीवसे दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह यदि आदमी या जानवर बहुत सर्दी खाजाय तो उनके हाथ पैर ऐंठ जाते हैं और कुछ देर तक कोई काम नहीं कर सकते। कभी कभी तो इससे ऐसी बीमारियां हो जाती हैं जो बहुत दिन तक सताती हैं। यही दशा छोटे छोटे पौधोंकी भी होती है। जब वह इतनी सरदी खा जाते हैं कि उसे सह नहीं सकते तब जो निर्बल होते हैं वह तो इतने क्षीण हो जाते हैं कि फल फूल सबसे बंचित रह जाते हैं और जो बलवान होते हैं उनकी बाढ़ कुछ दिनके लिए रुक जाती है।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि जिस दिन पछांही हवा बहती है परन्तु रातको रुक जाती है उसी रातको पाला पड़ता है। इसका कारण यह है कि उस रातको ओस खूब पड़ती है जो पत्तियों और फलियोंपर सर्दीसे जम जाती है, जिससे पत्तियोंका तापक्रम हिमाङ्कसे भी कम हो जाता है। ऐसी दशामें रहनेसे निर्बल पौधोंकी तो सदाके लिए जीवन क्रियाएं बन्द हो जाती हैं और वह झुलससे जाते हैं। यदि रातको भी हवा चलती रहे तो ओस नहीं पड़ती और पत्तियोंका तापक्रम ही हिमाङ्कसे कम होने पाता है, जिससे पौधे पालेसे बच जाते हैं।

पालेका असर अरहर चने और मटर पर अधिक पड़ता है। इसका कारण यह है कि अरहर या चनेके खेत सींचे नहीं जाते, जिससे उनकी गर्मी रातको बहुत कम हो जाती है, क्योंकि सूखे खेत गर्मीके सुचालक होते हैं। मटर बहुत नरम पौदा होता है इसलिए इसपर पालेका असर अधिक पड़ता है। परन्तु मटरके खेत प्रायः सींचे जाते हैं इसलिए इनकी कुछ रक्षा हो जाती है। सूखे खेत सुचालक होते हैं और सींचे हुए खेत कुचालक। इसी तरह बलुई मिट्टी सुचालक और सूखी होती है, इसलिए बलुए खेतोंमें पालेका असर बहुत पड़ता है। जिस वर्ष बरसात अच्छी नहीं होती उस वर्ष पाला बहुत पड़ता है। इसका भी कारण यही जान पड़ता है कि वर्षाकी कमीसे खेतोंकी मिट्टी बहुधा सूखी बनी रहती है और सूखी सूखी

मिट्टी सुचालक होनेसे बहुत जल्द अपनी गरमी निकाल देती है।*

यदि रातको भी हवा चलती रहे तो पाला नहीं पड़ता इससे यह जान पड़ता है कि हवाके चलने से ओस नहीं जमने पाती और न पौधोंको बहुत देर तक प्रचंड शीतमें ही रहना पड़ता है। इतने विवेचनसे जान पड़ा होगा कि जो खेत सींचे जाते हैं और जिनमें खाद अच्छी तरह दी जाती है वह पालेसे बच जाते हैं क्योंकि उनके पौधोंमें जीवनी शक्ति (vitality) इतनी होती है कि ज़रासे पालेके झोंकेको वह सह लेते हैं। यहां भी यह लोकोक्ति सच निकलती है कि 'दुर्बलो दैव घातकः'।

सूर्य

(१५)

(गताङ्कसे आगे)

[ले०—पं० जयदेव विद्यालङ्कार]

हमें यह भली प्रकार विदित है कि शीतप्रधान देशोंका वायुमण्डल निःसन्देह शीतल होता है। गिरती हुई उल्का उसमें प्रविष्ट होकर अपने बड़े प्रचण्ड वेगसे जब रगड़ खाती हैं, तो इतना अधिक ताप उत्पन्न होता है कि उल्कापिण्ड दीप्त होकर चमकने लगता है। अर्थात् गति-सम्भूत-बल संघर्षणसे प्रचण्ड तापमें बदल जाता है। ठीक इसी प्रकार सूर्यके वायुमण्डलके विषयमें भी कल्पना की जा सकती है। सूर्य मण्डलके वायु-मण्डलकी सबसे ऊपरकी तहके द्रव्य शीतल हो जाते हैं और अपेक्षतः भारी होकर बड़े वेगसे आकर्षण से खिंचकर सूर्यके विशाल वातावरणमें बड़े वेगसे अधःपतन करते हैं। इससे सूर्य मण्डल-पर बड़े बड़े विक्षोभ उत्पन्न होते हैं। सूर्यके अन्दरके भागसे प्रतप्त वाष्प (मौलिकोंकी वाष्प) बड़े वेगसे ऊपर उठती है और फिर ऊपर आकर अपना ताप छोड़ कर शीतल हो जाती है और घनीभूत होकर फिर अधःपतन करती है। इस प्रकार गिरनेमें एक गर्तसा दिखाई देता है। यह भी देखा गया है कि कि धब्बोंके पहले कभी ज्वालापटल तथा अन्य विक्षोभमय घटनाएं नहीं होतीं, प्रत्युत् धब्बोंकी उत्पत्ति हो जानेके बाद ही यह सब उद्रेक और ज्वालापटल उत्पन्न होते हैं। इस कारण धब्बोंकी घटना हिरण्यकोशमें ही होती है।

विकाश क्रम—बड़े बड़े धब्बे पहले छोटे छोटे बिन्दुरूपमें प्रकट होते हैं और प्रायः समूहोंमें बंटे होते हैं। और फिर एक ही बार बहुत बड़े हो जाते हैं।

इस स्थापनाके अनुकूल शीतल द्रव्यके टूट कर गिरनेके प्रथम कालमें वह थोड़ा थोड़ा टूट कर गिरता है, अतः छोटे छोटे काले धब्बे प्रकट होते हैं। और फिर बड़े बड़े भाग भी बड़े वेगसे क्रमशः गिरने लगते हैं। गिरते समय ही अत्यन्त संघर्षसे तापकी सहसा वृद्धि होती है और इसी कारण प्रचंड तप्त वाष्पीय ज्वालाएं प्रकट होती हैं। यही ज्वालापटल कहाते हैं। यही ज्वालापटल फिर ऊपर आकर शीतल होकर फिर नये क्रमसे धब्बों-की उत्पत्तिका कारण होते हैं। इस प्रकार सूर्यके वायुमण्डलमें ही निरन्तर परिवाहन चक्र लग जानेसे धब्बोंकी क्रमिक वृद्धि और न्यूनताका सिलसिला (चक्र) बंध जाता है। इसीका आवर्तन काल ११ वर्ष माना गया है।

---

* पिछली मकर संक्रान्तिके एक सप्ताह बाद दो तीन दिन तक पानी अच्छा बरस गया। इसके साथ जहां पत्थर भी पड़ गया वहां तो फसलकी कुछ हानि हुई, परन्तु इस पानीसे सिंचाईका खर्च ही नहीं बच गया, वरन् पाला पड़नेका डर भी जाता रहा; क्योंकि अब खेत एक पखवारे तक सूख नहीं सकते, उसके बाद गरमी इतनी पड़ने लगेगी कि पाला पड़ नहीं सकेगा।

इस प्रकारके शीतल द्रव्यका अधः पतन प्रायः सूर्यमण्डलमें सभी स्थानोंपर होना सम्भव है—चाहे इससे उत्पन्न होनेवाले विक्षोभ ज्वालापटल ज्वालोद्रेकादि बिम्बके किसी विशेष भागमें अधिक राशिमें होते हों।

अब इस कल्पनाके अनुसार शेष घटनाओंका सम्बन्ध देखना चाहिये।

(१६)

अधःपात (Down Rush) के परिणाम

सूर्यका बिम्ब परिधिके समीप और ध्रुवों पर भी काले काले चिटकनोंसे चित्रित रहता है। छोटे छोटे काले धब्बे जिनको छिद्र या बिल (Granulations or pores) कहते हैं सभी सूर्य बिम्बपर होते हैं। उनकी सप्त रंगी परीक्षासे ज्ञात हुआ है कि उनमेंसे प्रत्येक सच्चा धब्बा है। शेष छोटे छोटे चिटकने कभी सरल सीधी रेखामें और कभी वक्र रेखाओंमें गति करते हुए पाये जाते हैं, जिनके देखनेसे यह प्रतीत होता है कि सूर्यके तलपर प्रबल धाराएं भी गति करती रहती हैं।

तिरोहित धब्बोंका यह कारण हो सकता है कि शीतल द्रव्यका अधःपात इतने प्रबल वेगसे न हो जिससे हिरण्य कोष बहुत अधिक न दबे। और इसी कारण गह्वरके सदृश खोखला स्थान भी न दीख सके।

बहुत से बड़े बड़े धब्बे बड़े छिद्र या गढ़ोंके रूपमें दीखते हैं, जिनके बीचमें पूर्णच्छाया होती है। कुछ आवृत धब्बे होते हैं जिनमें अर्धच्छाया भी होती है। और बहुतसे पूर्ण और अर्धच्छायासे युक्त होते हैं। वह सूर्यके विशेष कटिबन्धोंमें बहुतायतसे पैदा होते हैं। सूक्ष्म निरीक्षणोंसे यह भी जाना गया है कि छोटे मोटे अधःपात प्रायः सारे बिम्बपर ही होते रहते हैं। कुछ धब्बे शान्तरूपमें विक्षोभ रहित रहते हैं। उनकी छाया और अर्धच्छाया स्पष्ट स्पष्ट प्रतीत होती है। उनके मुखोंपर ज्वालापटल भी वेगसे नहीं आते, जिससे पता लगता है कि उनके पास धाराओंका वेग भी मन्द होता है।

कतिपय धब्बे बहुत ही विक्षुब्ध होते हैं, जिनकी पूर्ण और अर्धच्छाया मिलजुल जाती हैं। और इनके आसपासके सूर्यपृष्ठका बहुत बड़ा भाग ज्वालापटलों और ज्वालोद्रेकोंसे भरा होता है।

१८५१ ईस्वीमें एक धब्बा इतना बड़ा देखा गया था कि उसका व्यास १४०००० मील था। और उसके मुख पर ज्वालापटलोंका प्रचण्ड विक्षोभ यंत्रों द्वारा स्पष्ट दीखता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि शीतल घनीभूत द्रव्यके सहसा हिरण्यकोषमें बलपूर्वक धंस जानेसे हिरण्यकोषका पृष्ठ दबकर बहुत गहराई तक नीचे ही धंस जाता है और इस दबावका परिणाम यह होता है कि समीपवर्ती भागमें विक्षोभ पैदा होता है और ज्वालापटल उमड़ने लगते हैं। कालान्तरमें वह धब्बा मिट जाता है और वहां ज्वालापटल ही केवल शेष रह जाते हैं। यह ज्वालापटल धब्बोंके मिट जानेपर भी पर्याप्त काल तक स्थिर रहते हैं।

कभी कभी ऐसा होता है कि पहले धब्बेके स्थानपर ही अन्य भी कतिपय धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि अन्दर धंसता हुआ या दूसरे शब्दोंमें अधःपतन करता हुआ द्रव्य हिरण्यकोष तक पहुंच कर या बीचमें ही फिर तप्त हो कर छिन्न भिन्न हो जाता है। ऐसा होना उसके अधःपातके वेगपर निर्भर है। गुरुताका बल इस अधःपातका मुख्य कारण है। यह द्रव्य निःसन्देह बहुत दूरसे गिरना प्रारम्भ करता है। गिरते हुये द्रव्यका वेग उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। मार्गमें संघर्ष करनेवाला सूर्यमण्डलका तप्त गैसीय वायुमण्डल उसकी गतिमें अवश्य बाधा उपस्थित करता है। इससे संघर्ष और संघर्षसे प्रचण्डतम ताप उत्पन्न होता है। इस तापसे वह गिरता हुआ द्रव्य आयतनमें

फैल जाता है। सम्भव है कि उस समय जिन स्थानोंपर संघर्ष कम है वहांके भाग फिर ऊपरकी ओर उठ आवें इत्यादि सभी परिवर्तन अधःपतन करते हुए द्रव्यके वेगपर निर्भर हैं।

इस अधःपातकी घटनाके अतिरिक्त और भी एक घटना होती है। वह घटना उत्पातों (Uprushes) की है।

(१७)

उत्पातोंके प्रभाव

हिरण्यकोषके अन्दरके प्रतप्त द्रव्यका वेग-पूर्वक उमड़ कर ऊपर आना उत्पात (Uprush) कहाता है। जैसे प्रभाव अधःपातके हैं वैसे उत्पातके प्रभाव भी दीखते हैं। सूर्यके सारे पृष्ठपर ज्वाला-ओंके स्तूप दिखाई देते हैं। कोई पृथक् पृथक् और कोई समूहोंमें होते हैं। प्रतीत होता है कि इन स्तूपोंमें ताप बहुत अधिक होता है। क्योंकि यह प्रायः उज्जनकी धाराओंसे लिपटे होते हैं। इसका कदाचित् यही कारण है कि हिरण्यकोषके द्रव्यमें थोड़ा सा भी विक्षोभ होनेसे हिरण्यवसन (Chromosphere) में कल्लोलें उठने लगती हैं। इसीके बहुत अधिक वेगसे होनेपर हिरण्यकोषके वाष्प भी उसको फोड़कर उमड़ने लगते हैं। या कदाचित् ऊपरसे गिरता हुआ द्रव्य ही पुनः वाष्प हो कर ऊपरको उठता है।

(१८)

इससे उतर कर कम विक्षोभ प्रशान्त उद्रेकों-में होता है। यह बहुत अधिक ऊंचे नहीं होते तो भी लगभग ४०००० मील ऊंचे होते हैं। यही बहुतसे वृत्ताकार होते हैं। यह प्रायः उज्जनके होते हैं।

उद्रेक प्रथम हिरण्यकोषसे ही उठते हैं और अधिक ही अधिक ऊंचे आतेहुए फैल जाते हैं और ठण्डे होकर घने हो जाते हैं। इन उद्रेकोंका तापांश बहुत अधिक नहीं होता। धातवीय ज्वालोद्रेकोंका तापांश बहुत अधिक होता है और वेगभी बहुत होता है। इसमें उज्जनके अतिरिक्त अन्य द्रव्य भी विद्यमान होते हैं। यह बहुत दूरतक उठते हैं। इनके कारण विक्षोभ भी बहुत होता है। उनके उठनेका वेग २५० मील प्रति सै० होता है और ऊंचाई लगभग ४००००० मील तक हो जाती है।

कतिपय उद्रेकोंमें द्रव्यका उत्पात और अधः-पात इकट्ठा ही दीखता है। धातवीय उद्रेक प्रायः ऐसे होते हैं।

(१९)

धब्बोंके चक्रका भौतिक ज्ञान

ध्रुवोंकी अपेक्षा विषुवतके कटिबन्धपर सूर्य-का वायुमण्डल बहुत दूरतक फैला हुआ है। इस लिए ध्रुवोंके समीप अधःपतन करते हुए घन द्रव्यका वेग न्यून होता है। उस वेगसे बड़े धब्बे पैदा नहीं हो सकते। केवल छोटे छोटे छिद्र या बिल पैदा हो सकते हैं।

विषुवत कटिबन्धपर सूर्यका वातावरण बहुत दूरतक फैला हुआ है। उसपरका घन द्रव्य हिरण्यकोषकी ओर बहुत वेगसे अधःपात करता है। और उसकी बाधा भी बहुत होनेसे, अधिक संघर्ष होता है और अधिक ही ताप भी उत्पन्न होता है। फल यह होता है कि प्रचण्ड वेग, प्रचण्ड संघर्ष, और प्रचण्ड तापसे पात करता हुआ घन द्रव्य छिन्न भिन्न हो जाता है। अतः वहां धब्बे ही उत्पन्न नहीं हो सकते। अतः धब्बोंकी उत्पत्ति न ध्रुवोंपर होती है और न विषुवत कटि-बन्धोंपर होती है।

शेष रहे उत्तर और दक्षिणके मध्य कटिबन्ध। यहांका घन द्रव्य बड़े वेगसे अधःपात करता हुआ बड़ा विक्षोभ तथा बड़े बड़े धब्बे पैदा करता है। यही घटना सूर्य तलपरकी भौतिक घटनाओंमें सबसे अधिक मुख्य है।

घनीभूत द्रव्यके प्रबल अधःपातसे हिरण्य-कोषमें धब्बे और उद्रेक उत्पन्न होते हैं। इससे वहांके वायुमण्डलका ताप बहुत अधिक हो जाता है। इस कारण उसके पश्चात् गिरा हुआ घन द्रव्य स्वतः छिन्न भिन्न हो जाता है और उसका पहले

की तरह प्रभाव नहीं होता। छिन्न भिन्न हो जानेसे वह हिरण्यकोष तक भी पहुंच नहीं सकता परन्तु धब्बा पैदा करनेके लिए घन द्रव्यका हिरण्य-कोष तक पहुंचना आवश्यक है। इसलिए धब्बोंके प्रथम आविर्भाव होनेसे प्रारम्भ करके अन्तिम न्यूनतमताकी दशा तक कटिबन्धोंका भेद होना स्वाभाविक है।

प्रारम्भिक धब्बोंकी न्यूनतम संख्यासे लेकर अन्तिम न्यूनतम संख्या तक अक्षांश बराबर घटता ही रहता है। इससे प्रतीत होता है कि घनीभूत द्रव्य ध्रुवोंसे मध्यकटिबन्धकी ओर बहता है और धब्बे भी उधरसे ही पैदा होकर प्रारम्भ होते हैं।

यदि घनीभूत द्रव्यको मध्य कटिबन्धकी तरफ लानेवाला प्रवाह ध्रुवोंकी ओरसे है तो अवश्य आभ्यन्तरिक प्रवाह परिवाहनके नियमके अनुसार मध्यकटिबन्धसे ध्रुवोंकी तरफ होना चाहिये।

ऐसा ही प्रतीत होता है, क्योंकि छोटे छोटे उद्रेक ध्रुवोंकी ओर देखे जाते हैं और उत्पन्न हुए धब्बोंकी गति भी ध्रुवकी तरफ होती है। यह आभ्यन्तरिक गतिका प्रभाव है।

घनद्रव्यके अत्यधिक अधःपातके धब्बे अधिक-तम संख्यामें होंगे। परन्तु उसी समय संघर्षण-की अधिकता और विक्षोभ प्रबल होनेसे ताप बहुत प्रचण्ड हो जायगा। अतः इसके बाद गिरनेवाला घन द्रव्य छिन्न भिन्न हो कर धब्बे पैदा नहीं कर सकेगा। इस प्रकार धब्बोंका उत्पन्न होना सर्व-था रुक जायगा; फलतः अधिकतमताकी दशा-के बाद न्यूनतमताकी बारी आवेगी और एक समय सूर्य सर्वथा धब्बोंसे सून्य और प्रशान्त रूपमें भी हो जायगा। न्यूनतमताकी दशामें ही तिरोहित धब्बे (Veiled spots) और छिद्र (pores) उत्पन्न हुआ करते हैं।

(२०)

सूर्य ग्रहणोंका निरीक्षण

प्रशान्त अवस्थामें सूर्य ग्रहणके समय सूर्य बिम्बका यन्त्रों द्वारा निरीक्षण करनेसे ज्ञात होता है कि जिस घनीभूत द्रव्य को ध्रुवसे विषुवतको बहनेवाला वायु प्रवाह विषुवत या मध्य कटिबन्ध की ओर लाता है वह सूर्यके वास्तविक वायु मण्डलसे भी अधिक ऊंचाईपर आ जाता है। अर्थात् घनीभूत द्रव्यकी मोटी तह सूर्यके वाता-वरणको भी घेर लेती है। उस [आ]धार भाग चौड़ा और सूर्यके वायुमण्डलमें तैरता होता है। यदि यह घना आवरण स्थिर मान लिया जाय तो कभी न गिरे और न धब्बे ही उत्पन्न हों। परन्तु जब ध्रुवसे आया हुआ वायुमण्डलका प्रवाह उसको धक्का लगाता है तो वह टूटकर गिरने लगता है और धब्बोंकी उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है।

इसी प्रकार सूर्य ग्रहणमें यह भी देखा गया है कि धब्बोंकी अधिकतमताकी दशामें अंशुवलय (corona की रचना गैसीय होती है। क्योंकि उस समय ताप बहुत अधिक होता है। इससे प्रतीत होता है कि धब्बोंकी अधिकतमताके कालमें सूर्य ताप भी अधिक छोड़ता है और न्यूनतमताके कालमें न्यून छोड़ता है।

(२१)

सूर्यका तारोंमें स्थान

तारे बहुत दूर होनेके कारण हमारी सूक्ष्म परीक्षाके विषय नहीं हो सकते। सूर्य उनमें सबसे पास है। यदि सूर्य भी दूर होता तो उसकी सत-रङ्गीपट्टी बहुत हलकी होती और गहरी काली रेखाएं वैसी ही दीखतीं।

सौर-जगत्के ग्रहोंके वायुमण्डलोंमें नीले प्रका-शकी किरणें सबसे अधिक विलीन हो जाती हैं। अर्थात् यह वायुमण्डल नीले प्रकाशको बहुत कुछ खा जाते हैं। इसी प्रकारका वायुमण्डल सूर्यका भी है। वह भी नीले रङ्गका भूखा है। वर्तमानमें हमारे पास पहुंचा हुआ सूर्यका प्रकाश श्वेत है। यदि सूर्यका वायुमण्डल और हमारी पृथ्वीका वायुमण्डल नीले रङ्गके प्रकाशको विलीन न कर लेता तो निश्चयसे सूर्य नील रूपमें चमकता और

साक्षात नारायण रूपमें सूर्य घनश्यामकी छवि दिखाते। और यदि यह नीला और अधिक खप जाता तो सूर्य साक्षात हरके तृतीय नेत्रके समान अग्निवर्ण लाल लाल भासा करते।

यदि वायुमण्डल नीले और लाल दोनों रङ्गके प्रकाशको खाजाता तो सूर्यनारायण शुकच्छवि हरे ही हरे अपने घोड़ोंमें ही छिपे हुए होते। पर ऐसा कभी नहीं होता। कतिपय तारोंमें ऐसा होता दिखाई देता है।

तारोंमें बहुत से तारे हरे, बहुत से नीले बहुत से लाल रंगके भी हैं। वास्तवमें उनमें यही घटना उपस्थित होरही है। तारोंके सम्बन्धमें यह घटना बड़ी मुख्य है।

(२२)

सूर्य ठण्डा कब होगा

सूर्य भगवान् ठण्डे हो जायंगे, यह कल्पना सुनकर बड़ा भय होता है। मनमें आता है शीत कालमें घाम कैसे तापेंगे। परन्तु वैज्ञानिक लोग इस चिन्तामें नहीं हैं। वह केवल विज्ञानके आधारपर परीक्षा मात्र करते हैं।

यह देखा जाता है तापमें भेद आजानेसे सतरंगी पट्टीमें भेद आजाता है। जैसे कार्बनके वाष्पकी थोड़े ताप परिमाणपर ली गयी सतरंगीमें वक्र रेखा फैल गयी सी (Fluting) दीखती हैं। परन्तु तापके तीव्र कर देने पर रेखा सरल और स्पष्ट हो जाती हैं। रेखाका फैल जाना रेखा प्रवाह कहाता है। सहस्रों परीक्षणोंसे यही सिद्ध हुआ है कि ताप की न्यूनतामें सतरंगीकी पट्टपर रेखा प्रवाह दीखता है। उग्र ताप हो तो यह नहीं दीखता। निस्सन्देह सूर्य की रेखाएं अभी बहुत स्पष्ट रूपमें हैं। परन्तु जब सूर्यका ताप घटती पर आयेगा तो इसकी रेखाएं भी बह जायंगी। तभी पता लग जायगा कि अब सूर्यनारायण का बुढ़ापा प्रारम्भ हो गया है।

यही दशा बाल्यकालमें भी होती है। बहुतसे तारे वर्तमानमें सूर्यके सदृश उग्र हैं और बहुतसे बूढ़े हो रहे हैं क्योंकि उनकी रेखाओंमें भद्दापन आता जाता है।

(२३)

तापका प्रसरण और सतरंगी पट्टी

महाशय फ्रानहोफ़रकी सतरङ्गी पट्टिकाएं उन सब पदार्थोंको काली धारियां हैं जिनके प्रकाश सूर्यके वायुमण्डलमें लुप्त हो जाते हैं। परन्तु पृथक् सूर्यके आवरणोंकी आलोचना करनेसे यह भी जान लिया गया है कि किस किस आवरणमें कौन कौन सी उज्ज्वल धारी लुप्त हो जाती हैं। इस परीक्षासे सबसे अधिक प्रतप्त आवरण हिरण्यवसनकी लीन रेखाएं भी स्पष्ट होजाती हैं। हिरण्यवसन हिरण्यकोषके सबसे अधिक समीप होनेसे सबसे अधिक तप्त है। यदि सूर्य और भी तप्त होता तो हिरण्यवसनकी पट्टिकामें और भी उज्ज्वल रेखाएं अधिक लीन हो जातीं और कुछ और काली रेखाएं भी प्रकट हो जातीं।

इससे यह अनुमान कर लेते हैं कि यदि किसी तारेकी सतरंगीमें लीन रेखाएं हिरण्यवसनके सदृश हों तो वह अवश्य सूर्यके वायुमण्डलसे भी अधिक प्रतप्त है।

सूर्यका आभ्यन्तरिक भाग उसके वायुमण्डल से इतना अधिक तप्त है कि वह वायुमण्डलकी अपेक्षा १००० गुणा प्रकाशित है। सूर्यका वायुमण्डल अपेक्षतः शीतल होनेसे उसकी रेखाओंकी दीप्तिको खाजाता है। यदि वह भी स्वयं बहुत तप्त होता तो इतनी काली रेखाएं न होतीं।

सूर्यके बाह्य आवरणके क्षेत्रफलसे आभ्यन्तरिक मुख्य केन्द्र बहुत ही छोटा है। परन्तु उसके प्रकाशका और तापका प्रसरण इतना प्रबल है कि वातावरणके स्वतः के प्रकाशको तो हम अनुभव ही नहीं कर सकते। हां उसकी दीप्ति खा जानेका गुण प्रकट हो जाता है।

यदि आभ्यन्तरिक केन्द्र बहुत ही छोटा होता तो काली धारियोंके साथ कुछ उज्ज्वल धारियां भी दीख पड़तीं। यही स्थिति कतिपय तारोंकी है, जिनका

आभ्यन्तरिक हिरण्यकोष बहुत ही छोटा है। उनकी उज्ज्वल धार काली धारको पूरा ढक न सकने के कारण पृथक दीखती है। और ऊपरका गहरा आवरण अन्दरके पिण्डकी उज्वल दीप्तिको पर्याप्त मात्रामें खपा लेता है। अतः सतरंगी पट्टिका न केवल तारेके विम्बपर निर्भर है परन्तु आभ्यन्तरिक केन्द्र या हिरण्यकोषकी छोटाई और बड़ाईपर भी निर्भर हैं।

(२४)

उपसंहार

इस प्रकार हमने सूर्यका वर्णन उसकी मुख्य घटनाओंका संक्षेपसे आलोचन करते हुए कर दिया है और यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि धब्बोंका होना सूर्यमें कोई वास्तविक गढ़े पड़ जाना नहीं है, प्रत्युत् वातावरणके प्रबल प्रवाहमें आवर्त्त पड़ने या घनीभूत द्रव्यके नीचे गिरनेका परिणाम है; यह क्रमशः उठते हैं और शान्त होजाते हैं। दूसरे सूर्यकी रचना एक तारे जैसी है। उसका जीवन और मरण भी वैसा ही होगा।

सारे संसारमें कितना पानी बरसता है?

पृथ्वी तलपर वर्ष भरमें कुल मिलाकर प्रायः २६३४७ घनमील पानी बरसता है। इसका अन्दाज़ लगानेके लिए यह समझ लीजिये कि यह पानी भूमण्डलके सूखे हिस्से पर फैला दिया जाय तो एक गज़ गहरा तालाब बन जाय। इसमेंसे ६५२४ घनमील बहकर समुद्रमें चला जाता है। शेष पृथ्वीमें धंस जाता है। अथवा भाप बनकर उड़ जाता है। नदियोंके जलके एक घनमीलका भार ११७७५८२०००००मन होता है जिसमें ११७६०००० मन ठोस पदार्थ घुले मिले रहते हैं, जो समुद्रमें पहुंच जाते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष पृथ्वी तलका प्रायः ७६७२२२४०००० मन भाग बहकर समुद्रके तले जा जमता है।

—गङ्गाप्रसाद

मक्खियोंके उड़नेका वेग

मक्खियां प्रायः वायु-विहरण करती हुई ५ फुट प्रति सैकण्डके हिसाबसे उड़ती हैं; परन्तु जब कोई शत्रु पीछा करता है तो ३५ फुट प्रति सैकण्डके वेगसे उड़ सकती हैं। कहां बेचारी छोटी सी मक्खी और कहां २४ मील प्रति घण्टेका वेग!

—गङ्गाप्रसाद

ड्राई बैटरी अर्थात् सूखी बाटरी

प्रायः लोग यह प्रश्न किया करते हैं कि ड्राई बाटरी कैसे बनती है। आज हम एक साधारण विधि बतलाते हैं। एक जस्तेका गोल बेलनाकार बरतन लो। उसके भीतरी भागपर इस मसालेकी तह चढ़ा दो—५ भाग प्लास्टर ओवपेरिस, २ भाग नौसादर, पानी ११ भाग। जब यह सख्त हो जाय तो बीचमें कर्बनकी छड़ रखकर यह मसाला भरदो :—१० भाग मोटा पिसा हुआ मङ्गनीज़ (Manganese dioxide), ७५ भाग कर्बन अथवा ग्रैफाइटकी बुकनी, यशद गंधेत (Zinc Sulphate) ५ भाग, नौसादर १५ भाग, ग्लिसरीन २ भाग, पानी इतना कि पिट्ठी सी बन जाय। जस्ते और कर्बनसे तार जोड़ कर पिघले हुए पिचसे मुंह बन्द कर दो।

—गङ्गाप्रसाद

आलू

(गताङ्क से आगे)

[ले०—श्री० गंगाशङ्कर पचौली]

६—बुवाई

देशके जिन भागोंमें आलूकी गांठें अच्छी होती हैं, उनमें गांठें दो विधिसे बोई जाती हैं। एक विधि तो समतल धरतीमें क्यारियां बनाकर गांठें बोने की है; परन्तु इस भांति अच्छी फसल नहीं बैठती। दूसरी विधि खेतमें पाली बांध उसपर गांठ बोनेकी है। जुदे जुदे प्रान्तों तथा देशोंमें वहांकी आबहवा तथा धरतीकी बनावटके भेदसे यह विधि बरती जाती हैं। इस हेतु जुदे जुदे विभागों वा देशोंकी विधिका यहां देना ठीक जान पड़ता है। इनको जानकर कृषक अपनी आवश्यकतानुसार लाभ उठा सकेंगे।

देशी विधि

महाराष्ट्र देशमें खेतको खूब जोतकर हलसे कूंड ४ तसू गहरी करते हैं और उसमें ७ से ८ तसूकी दूरीपर गांठें बोते हैं। पासकी कूंडकी मिट्टीसे उन गांठोंको ढक देते हैं। इस रीतिमें एक कूंडकी गांठें पासकी मिट्टीसे ढक जाती हैं। कूंडोंका आपसका अन्तर ६ वा १० तसू रख उनको साढ़े तीन फुट चौड़ी क्यारियोंमें बांट देते हैं। समतल धरतीमें यह क्यारियां विशेष चौड़ी बनाते हैं। निराई गुड़ाई द्वारा खेतको साफ सुथरा रखते हैं। अठवारेमें नम्बरसे क्यारियोंमें पानी देते हैं। उस प्रान्तमें अक्तूबर मासमें गांठोंको बोते हैं। यह मार्चमें पक जाती हैं। पौदेके पीले पड़नेपर पानी देना बंद करके धरतीके सूख जानेपर गांठोंकी खुदाई शिरू की जाती है।

गुजरात प्रान्तमें भी न्यूनाधिक यही विधि प्रचलित है। गांठोंके लगानेमें, विलायती विधिकी अपेक्षा कम अन्तर रखते हैं। यह देश गरम है; इस हेतु यहांपर फसल ठंडे देशकी अपेक्षा शीघ्र ही तैयार हो जाती है और गांठें छोटी रहती हैं।

देशके उत्तरी भागके मैदानी हिस्सोंमें चौमासा बीतनेपर आश्विनसे अगहन तक आलूकी गांठ बोई जाती हैं। पहाड़ी प्रदेशमें माघसे चैत्र तकका समय गांठ रोपनके लिए उपयोगी माना जाता है। गांठोंकी बुवाईके पूर्व खेतमें पानी देकर मिट्टीको नरम करते हैं और फिर खेतमें १ फुट अनुमान चौड़ी कूंडोंको साढ़े चार फुटके अन्तरसे बना उनमें पांचवा छः इंचके फासलेसे गांठ बोते हैं। गांठ रखनेसे पूर्व कूंडमें नरई बिछा मिट्टी मिलाते हैं, जिससे जड़ वा गांठोंको फैलनेका पूरा अवकाश मिल जाता है और नरई सड़ गलकर खादका काम दे जाती है। गांठोंको बोकर उनपर थोड़ी मिट्टी फैला देते हैं। जब अंकुर फूट कुलहा ५ इंच ऊंचा हो जाता है तब पासकी मिट्टीको ३ इंचके अन्दाज चढ़ाते हैं। यह मिट्टी क्रमसे उस समय तक चढ़ाते हैं जब तक गांठें उत्पन्न होनेपर मिट्टीसे ढक जाती हैं। इस प्रकार मिट्टी चढ़ानेसे धीरे धीरे कूंड पाली हो जाती है और पाली नाली हो जाती है। जिन भागोंमें वर्षा अधिक होती है वहां गांठोंको कूंडमें न बोकर पालीमें गाड़ते हैं, क्योंकि धरतीमें विशेष तरी रहनेसे फसल बिगड़ जाती है।

विलायती विधि

मि० न्यूशामने जो विलायती विधिका दिग्दर्शन कराया है वह भी यहां लिखना किसानोंके उपयोगी हो सकता है।

आलूकी फसल दो प्रकारकी है। एक वह है जो दो मासमें तैयार होजाती है और दूसरी वह जो अधिक समयमें पकती है। पहिले प्रकारकी जितने समयमें पककर तैयार होती है उतने समयमें दूसरे प्रकार की गांठोंका बनना प्रारम्भ होता है। बहुतसे लोगोंका खयाल है कि फसल जितने शीघ्र तैयार होती है उतना ही बाजार हाथमें आजाता है और नई फसल के कारण नफा भी रहता है। पर शीघ्रपाकी फसलके करनेमें

खर्चा अधिक बैठता है। शीघ्रपाकी आलुओंकी अनेक जातियां हैं। इस प्रकारकी फसलके लिये मुलायम, गरम और तरीवाली धरती और पाला रहित ऋतुकी आवश्यकता होती है। खेतमें गांठों-के बोनेसे पूर्व उनकी आंखोंकी कलियोंका अंकुरित होना जरूरी बात है। कुलहा फूटनेके लिए आलू-की गांठोंको एक सन्दूकमें आपसमें भिड़वां रखते हैं। यह सन्दूक २ फुट लम्बे १ फुट चौड़े ३ इंच ऊंचे बनाकर इनके चारों कोनों पर डेढ़ इंच मोटी ७ इंच लम्बी लकड़ी खड़ी लगाकर बगलोंमें आड़े तख़्ते लगाते हैं और आमने सामनेके बगली तख़्तोंमें एक लकड़ी जड़ देते हैं, जिसको पकड़कर सन्दूक उठाया जाता है। ऐसे प्रत्येक सन्दूकमें दस सेर आलू आसकते हैं। गांठोंको सन्दूककी ३ इंच ऊंचाई तक भर देते हैं। गांठोंके बड़े होने पर एक ही तह काफी होती है, और जो वह छोटी होती हैं तो दो तीन तह तक भरे जा सकते हैं। कुलहा फूटनेके लिये पूरी पकी गांठ नहीं लेते। इन सं-दूकोंको प्रकाशमें रखते हैं, पर विशेष गरमीसे बचाते हैं। जब कुलहा फूटकर दो इंचका होजाता है और मोटा मजबूत व हरा होता है उस समय खेतकी तैयार कूंडोंमें जमाते हैं और गांठोंपर मिट्टी चढ़ाते हैं। ज्यों ज्यों पौदा बढ़ता जाता है त्यों त्यों खेतकी पालीकी मिट्टी पौदेकी जड़के पास पत्तोंके खूब निकल आने तक तीन चार दफे करके चढ़ाते जाते हैं, जिससे जो गांठें निकलती हैं वह सब मिट्टीके भीतर रहती हैं। गांठकी आंखोंकी दो कलीसे विशेष फूट निकलने पर उन्हें अलग कर देनेसे बची हुई दो ही जोर पकड़ती हैं।

गांठोंको कितनी दूरी पर लगाना चाहिये, यह आलूके पौदेके फैलावपर निर्भर है। आलू कई जाति का होनेसे उसका कोई पौदा कम फैलता है तो कोई विशेष। इस हेतु गांठोंके बोनेके उचित अन्तरको किसान ही निश्चय कर सकता है। शीघ्र-पाकी पौदेके फैलावको थोड़ा स्थान चाहिये, जब कि देरपाकीको अधिककी आवश्यकता होती है। पर इतना जरूर है कि दोनों प्रकारके पौदोंकी कतार वा मेंडोंके बीच इतना अन्तर रहे कि पौदों-के फैलनेपर वायु और प्रकाश धरती तक पहुंच जाय और निराई गुड़ाईमें भी सुगमता रहे। पूरे फैलनेवाले पौदोंके लिए प्रत्येक पालीमें २॥ फुटका अन्तर रखा जाता है और प्रत्येक पालीपरके पौदोंमें आपसका अन्तर सवा फुटका रहता है। परन्तु कम फैलनेवाले शीघ्रपाकी पौदोंके लिये एक फुट आठ इंचका फासला पालियोंमें और दस इंचका अन्तर पौदोंका आपसमें रखते हैं।

जहां शीघ्रपाकी और देरपाकी दोनोंको एक साथ बोते हैं तो पालियोंमें अन्तर अढ़ाई फुटका रख दोनों प्रकारके पौदोंको एकके बाद दूसरी पाली-पर लगाते हैं अर्थात् एक पालीपर शीघ्रपाकी लगा उसको दोनों बगलो पालियोंपर देरपाकी लगाते हैं, जिससे शीघ्रपाकीके बाद देरपाकी और फिर शीघ्रपाकी इस प्रकारका क्रम बंध जाता है। इस क्रमसे यह लाभ रहता है कि शीघ्रपाकी आलू-की फसल लेनेके पीछे देरपाकी पौदोंको लैनोंके बीच ५ फुट चौड़ी धरती खुदी खुदाई मिल जाती है; जिसमें एकाद फसल और भी बोई जासकती है तथा देरपाकी पौदोंके खूब फैलनेको पूरा अवकाश मिल जाता है।

पालियों तथा पौदोंके आपसके अन्तरके सिवाय गांठोंके बोनेकी गहराई पर भी ध्यान दिया जाता है। शीघ्रपाकी गांठोंको मामूली रीति-से पांच वा छः इंच गहरा लगाते हैं और देरपाकी गांठोंको तीन चार इंच नीचे रखते हैं। इसके साथ यह भी ध्यान रखते हैं कि किसी जातिके पौदेमें गांठ ऊंची लगती हैं तो उनको मामूलसे कुछ अधिक गहरा लगाते हैं और पालियोंपर मिट्टी चढ़ाते रहते हैं, जिससे गांठें मिट्टीसे ढकी रहती हैं।

गांठोंकी बुवाईकी एक और विधि भी प्रचलित है जिसमें खेतको सपाट चौरस कर ४ वा ५ फुट चौड़ी क्यारियां बनाते हैं और दो क्यारियोंके बीचमें डेढ़से दो फुट चौड़ी नाली रखते हैं।

गोबर वा गंदगीका बना खाद इनमें फैला गांठोंको क्यारियोंमें लगाते हैं। नालियोंकी मिट्टी क्यारियों पर ३ वा ४ इंच फैलाते हैं। पौदोंके बड़े हो जानेपर मिट्टी और चढ़ाते जाते हैं। इन क्यारियोंके बनानेसे यह लाभ है कि नालियों द्वारा खेतका विशेष पानी निकल जाता है और प्रति वर्ष नालियोंको स्थान बदल कर बनानेसे सब खेत गहराई तक खुद कर मुलाइम होजाता है। यह विधि उन खेतोंमें काममें लाई जा सकती है कि जिनका अन्तर पड़ मिट्टीका होता है और कंकड़ पत्थर रोड़ोंका नहीं होता।

अमेरिकाकी विधि

यह विधि भी इस देशमें कर देखने योग्य कही जाती है। इस विधिमें धरतीमें हलकी जोत देकर उसपर घास फूंस वा पूले कई इंच बिछा देते हैं। उसपर गांठ बीजको रख ऊपरसे फिर एक तह घास फूंसकी बिछाते हैं और उसको पानीसे तर रखते हैं। जड़ें शीघ्र ही घास फूंसमें होकर धरतीमें घुसजाती हैं और गांठें फूंसके भीतर ही बंधकर बढ़ती हैं। इस तरह बुवाई करनेसे मामूली धरतीकी बुवाईकी अपेक्षा २० वा २५ दिन पूर्व फसल तैयार होजाती है। गांठ भी बड़ी बंधती हैं और बिनाई भी सुगम हो जाती है। पौदेको कोई हानि नहीं पहुंचती, और फसल भी दुगनी बैठ जाती है।

१०—सिंचाई

आलूके पौदोंको पानीकी आवश्यकता पड़ती है; इस हेतु धरतीमें तरीका रहना एक ज़रूरी बात है; परन्तु यह तरी उतनी ही होनी चाहिये कि जिससे धरतीके भीतरके उपयोगी तत्व वा पदार्थ घुलकर जड़ों द्वारा पौदेकी वृद्धि वा पोषणके काम आ सकें और धरतीमें नमी रहनेसे गांठें पूरी पूरी बढ़ सकें। खेतमें पानीके भरे रहनेसे गांठोंकी वृद्धि मारी जाती है। जहां पानी भरा रहता है वहां क्यारियां वा नाली बनाकर उसको निकाल देते हैं।

जब खेतमें खुशकी जान पड़ती है और मेहके लक्षण नहीं दीखते तो सिंचाईकी ज़रूरत पड़ती है। गांठोंके बोनेके पश्चात् भूमिमें खुशकी दीखनेपर पानी देते हैं और फिर प्रति दसवें वा आठवें दिन ऋतु और वायुकी हालतके अनुसार पानी देते हैं। जो वर्षा हो जाती है तो सिंचाई ज़रूरत दीखनेपर करते हैं। प्रत्येक समय उतना ही पानी देते हैं कि जिससे गांठों तक तरी पहुंच जाय और पानी खेत वा क्यारीमें भरने न पावे। पौदेके पीले पड़ने और मुरझानेपर पानी देना बंद कर देते हैं।

११—निराई गुड़ाई

खेतमें फसलके साथ घास पात आदिके निरर्थक पौदे भी उग उठते हैं जो धरतीके फसलके पोषक तत्वोंको अपनी वृद्धिके लिए काममें लाते रहते हैं और मुख्य फसलको इस कारण भूमिमेंसे खुराक मिलनेमें बाधा पड़ती है। ऐसे अनावश्यक और बाधक पौदोंको निराव कर दूर करते हैं। जब आलूका पौदा ४ वा ५ इंच ऊंचा हो जाता है तब खेतमेंसे घास पातको निराई कर उखाड़ लेते हैं। इस घास पातको खेतके एक कोनेमें गढ़हेमें एकत्र कर सड़ाया जाय वा जला कर राख किया जाय तो वह खादके काम आसकता है। आलूकी फसलमें ३ व ४ निरावकी ज़रूरत होती है, जिससे खेत साफ सुथरा तथा मिट्टी मुलाइम रहती है और आलूके पौदोंकी खुराकमें बाधा नहीं पड़ती।

चूंकि आलूकी गांठें भूमिके ऊपर लगती हैं और वायु वा प्रकाशसे वह हरी हो जाती हैं इस हेतु उनको ढकनेके लिए पालीके दोनों ओरकी धरतीको गोड़ कर मिट्टी चढ़ाते हैं। जब जब गांठें धरतीके ऊपर दीखती हैं तब ही तब धरती गोड़ मिट्टी चढ़ाते हैं। गुड़ाईसे धरतीकी मिट्टी नरम और खुली हो जाती है और नीचेके पड़में नमी बनी रहती है और सिंचाईका पानी बह नहीं जाता। गांठोंके ढकनेमें राख वगैरहका खाद भी ज़रूरतके माफिक मिट्टीमें मिलाते हैं। ढकनेसे गांठें रोगोंसे भी बची रहती हैं।

१२—फसलका हेर फेर

आलूकी फसलको साल दर साल एक ही खेतमें करते रहनेसे आलूकी पैदावार कम हो

जाती है और धरतीका कस भी कम हो जाता है। इस खराबीसे बचनेके लिये यह ज़रूरी है कि आलूकी फसलको प्रति वर्ष जुदे खेतमें बोते हैं और तीन चार वर्ष जुदे जुदे खेतोंमें बोकर फिर पहिले खेतमें बोते हैं। ऐसा करनेसे आलूकी पैदावारमें कमी नहीं होती और खेत भी रोगके अंकुरसे रहित और कसदार बना रहता है और दूसरी फसलोंके कामका रहता है।

किसानके पास एक ही खेत हो और आलू भी करना चाहे तो एक वर्ष आलू करके दो तीन वर्ष और फसल खेतसे लेकर फिर आलू बोवे तो लाभ ही रहता है। विलायतमें बाड़ियोंमें गोभी सेम, मटरकी फसल लेकर आलू करते हैं और आलूके पीछे प्याज़ गोभी पोई शलजम वगेरहकी फसल करते हैं। इस हेर फेरसे खेतकी शक्ति और आलूकी होन दोनों ठीक रहती हैं। एक और रीति भी किसान काममें लाते हैं, जिसमें एक ही खेतमें आलूकी दो पालियोंके बीचमें 'मेंगल्स' नामकी चीज़ बोते हैं। दूसरे साल आलूके स्थानपर 'मेंगल्स' वगेरह बोते हैं और 'मेंगल्स' वगेरह जहां बोई थी वहां आलूकी पालियां रखते हैं। इस रीतिसे मिलती जुलती यह रीति भी है कि अपने खेतको चार भागमें विभाजित कर प्रत्येकमें जुदी जुदी फसल बोकर दूसरी साल उन फसलोंको पहिले वर्ष वाले भागमें न बोकर दूसरे भागमें बोते हैं जिससे चौथे वर्ष जाकर फिर पहिले वर्ष वाले भागमें वही फसल बोई जाती है।

१३-गांठकी बिनाई वा संग्रह

जब पौदोंकी पत्तियोंका पीला पड़ना और मुरझाना प्रारम्भ होता है उस समयसे सिंचाई बंद हो जाती है। धरतीके सूख जानेपर पौदोंके नीचे बनी पालियोंको खुरपों हलों वा और मशीनोंसे पोलीकर गांठोंको ऊपर लाते हैं और फिर बीन लेते हैं। एक मनुष्य खोदता जाता है और दो बीनने और उठानेपर रहते हैं। यह बीननेका काम कुछ विशेष महनत और खर्चका है। कलों द्वारा गांठें निकालनेमें प्रथम पालीको ढीलीक के गांठोंको बिखेर देते हैं और पीछे बीनते हैं। इस विधिमें कुछ गांठें नीचे दब जाती हैं और कुछ रगड़ खाकर बिगड़ जाती हैं। हलसे जो काम लिया जाता है तो मिट्टी ऊपर उठ आती है और गांठें बिखर जाती हैं और गांठोंको कोई नुकसान नहीं होता।

गांठोंको बीननेके पीछे उनकी छंटाई की जाती है। यह छंटाई या तो बीननेके समय ही हो जाती है या गांठोंके इकट्ठा हो जानेपर 'रिडिल' नामके बड़े छटनेसे करते हैं। सबसे छोटी बिचली और सबसे बड़ी इस प्रकार तीन आकारकी छांटते हैं; जिनमें बड़ी तो बेचदी जाती हैं, बिचली जो ४ तोलेसे ८ तोले तककी होती हैं बोनेके काम आती हैं और इनसे छोटी गांठें खाने वा चारेमें काम आती हैं। शीघ्रपाकी गांठोंको इस प्रकार नहीं छांटते।

जो आलू बिकनेसे बच रहते हैं और छिले रगड़ खाये या रोगी नहीं होते वह धरतीपर ढेर करके रखे जाते हैं। शीघ्रपाकी आलूकी गांठें टोकरोंमें इस तरह रखते हैं कि वह रगड़ न खा जावें। देरपाकी गांठोंको बोरों वा कोठियोंमें इस तरह भरते हैं कि जिसमें मिट्टीकी एक परतके ऊपर दूसरा परत गांठोंका एकके ऊपर एक रहता है। इस देशमें गांठोंके चौमासेमें अंकुरित हो जाने तथा सड़ जानेका भय रहता है। गांठोंको मिट्टीकी तहके बीचमें रखते हैं तो ढेर १॥ वा २ फुटसे अधिक ऊंचा नहीं लगाते। गांठोंको संग्रह करनेके लिये सवामन पानीमें एक सेर गंधकका तेजाब मिला कर इस मिश्रणमें पहले गांठोंको आठ दस घंटे भिगोकर धूपमें सुखा लेते हैं।

गांठोंके संग्रह करनेमें इन बातोंपर विशेष ध्यान दिया जाता है। (१) गांठें सड़ी गली वा रोगीली न हों। (२) गांठोंको तरी न पहुंचे, वह खुश्क हों। (३) पालेसे बची रहें। (४) संग्रह करनेके स्थानमें वायुका आना जाना ठीक रहे। संग्रह करनेके खास प्रायः खेतके पास ही बनाते हैं। खास बनानेके स्थानकी धरतीमें हल चला कर उसको ३ से

६ इंच तक गहरी जोत लेते हैं और मिट्टीको खासके किनारोंपर लगाते हैं। इन खासोंको ४ फुट चौड़ी खोदते हैं, परन्तु गांठोंके पके और नीरोग, खुश्क होनेपर यह चौड़ाई ५ फुट रखते हैं। शीघ्रपाकी गांठोंके लिये ४ से कम फुटकी भी चौड़ाई काम दे जाती है। खासके खुद जानेपर उसके तलेको चौरसकरके उसपर फूंस पत्तोंकी हलकी तह बिछा कर ऊपर आलूकी गांठोंका एक समत्रिभुजाकार वा सूच्याकार सूरतमें ४ से ५ फुट ऊंचा ढेर बनाते हैं। ढेरके ऊपर फूंस या गेहूंके पयालकी तीन चार इंच मोटी तह छप्परकी सी जमाते हैं, जिसमें उनकी वर्षा व प्रकाशसे रक्षा होती है और वायुका भीतर संचार होता रहता है। एक सप्ताह इस रीतिसे रखकर उसपर मिट्टी चढ़ाई जाती है। पहिले तो हलका परत देते हैं और फिर आठसे दस इंच तक मोटा परत कर देते हैं। ढेरके ऊपरी सिरेपर ४ इंच चौड़ा पुराना पाइप या बांसकी पोली भोगली लगाते हैं, जिससे वायुका संचार ठीक होता रहता है। मिट्टी चढ़ानेके पीछे खास ढेरकी सब बगलोंको गुबरोटीसे लीप लहेसकर ऐसा ढाल देते हैं कि जिसपर होकर वर्षाका पानी भीतर न जाकर ढाल परसे बगली नालियोंमें चला जाता है।

खासोंमेंसे आलूकी गांठोंको निकालनेके लिये वह ऋतु ठीक होती है जिसमें वर्षा वा पालेका भय न हो। बसन्त ऋतुमें जो गांठ निकालते हैं तो बड़ी फुरती करनी पड़ती है। ऐसा न करनेसे गांठोंकी आंखोंकी कलियां फूट निकलती हैं। गांठोंको सूखी हवा वाले दिन निकालते हैं और बोरोंमें भर ४५ दर्जेकी गरमीके स्थानमें रखते हैं। हमारे देशमें बहुत कम स्थानोंमें इतनी कम गरमी रहती है और वह भी बहुत थोड़े दिन रहती है। इस कारण यह खास बनानेकी रीति लाभप्रद हो सके यह संदिग्धही है।

अमेरिकामें गांठ संग्रह करनेकी एक रीति यह भी है कि धरतीपर पहिले एक परत महीन बिना बुझा चूने वा प्लास्टरका बिछा उसपर चार पांच इंच मोटी तह गांठोंकी इस रीति लगाते हैं कि जो चालीस पैमाने गांठोंके होते हैं तो एक पैमाना चूने वा प्लास्टरका रहता है। इस रीति कई परत लगा गांठोंको ढक देते हैं, जिससे आलू रोगसे बचा रहता है।

'इण्डस्ट्री' नामके मासिक पत्रमें गांठोंके संग्रह कर रखनेकी रीति इस प्रकार लिखी है। एक बड़े बरतनमें पानीको उबाले, फिर एक डलिया गांठोंसे भर कर उसमें एक दो मिनिट डुबो रखे। पश्चात् टोकरी निकाल कर गरम चूल्हे ? पर सुखावे। फिर बोरेमें भर कर सूखे स्थानमें रखे रहनेसे बहुत दिनो तक गांठें नहीं बिगड़तीं।

१४—आलूके रोग

और पौदोंकी तरह आलूके पौदोंको भी रोग होते हैं और कीड़ोंसे भी पौदोंको हानि पहुंचती है। शरीरमें निर्बलताके बढ़नेसे रोग होते हैं। निबलता अंगोंके पूरे पुष्ट न होनेसे मालूम होती है। इसी तरह पौदोंमें भी अंगोंके पुष्टि न पानेसे निर्बलता हो रोगोंको स्थान मिलता है। आलूके पौदोंको पोटासके क्षारोंकी कमीसे रोगोंका शिकार होना पड़ता है। प्रत्येक किसान जो आलूकी खेती करता है यह जान लेता है कि गांठमें रोग है या नहीं। गांठके बाहरी भागमें ऊपरी छिलका खराब होना वा कोई उसमें विकृति होनेसे रोगी गांठ पहिचान ली जाती है पर जो गांठके भीतर रोग होता है तो वह गांठके बिना काटे नहीं जाना जाता। बहुतसे रोग देशके जल वायुके कारण होते हैं। वह किसी एक देश वा प्रान्तमें होते हैं तो दूसरेमें नहीं होते। कई रोग ऐसे हैं जो इंगलैण्डमें तो होते हैं पर यूरोप तथा हिन्दुस्तानमें नहीं होते। जो इस देशमें दिखाई पड़ते हैं वह और देशमें नहीं होते। जो रोग प्रायः सब देशोंमें होते भी हैं तो वह एकसे ही मिलते लक्षणके नहीं होते। यहां पर उन ही रोगोंका दिग्दर्शन कराया गया है जो प्रायः बड़े समझे जाते हैं और जिनका कुछ हाल मि.

न्यूशामने दिया है। किसानोंको चाहिये कि इन लक्षणोंको अपने देशके रोगोंके लक्षणोंसे मिलानकर निदान और औषधका निश्चय करें। सरकारी कृषि विभागकी ओरसे जो समय समय-पर रोगोंके विषयमें सूचना निकली हैं उनपर भी संकेत किया गया है।

१. गेरू वा पेड़ीमें सड़न—पेड़ीका वह भाग जो भूमिमें रहता है उसपर भूरे दाग पड़ जाते हैं जो धीरे धीरे कुल पेड़ी पर फैल पत्तों तक पहुंचते हैं। जिस स्थान पर यह दाग होते हैं वह काला पड़कर सड़ जाता है। इस बीमारीसे पत्ते भी सिकुड़ जाते हैं और पीले पड़कर अन्तमें मुर्झा जाते हैं। चूंकि रोग भूमिके भीतर पेड़ीसे ऊपर-को बढ़ता है इस लिये पत्ते भी नीचेसे ऊपरको मुरझाते जाते हैं। यह रोग अच्छे चंगे पौदोंके बीच एकाधको होता है, पर गरमीमें नम हवा चलने पर यूरोपमें यह फैलने लगता है। गांठोंको न काटना और नीरोग गांठें छांटकर बोना और खेतमें चूना वा अधिक नत्रजनको धरतीमें खात रूपसे न पहुंचना ही इस रोगकी रोक है।

२. फफूंदन वा फुंगी (स्कैब)—यह बीमारी गांठकी ऊपरी छालपर ही होती है। भीतरके मावे वा गूदेमें नहीं होती। फफूंदन कई प्रकारकी होती है। कोई हानि कारक नहीं होती और कोई एकसे दूसरी पर फैल जाती है। इससे बचाव करनेके लिये यह ख्याल रखते हैं कि गांठ रगड़ न खाजाय। जो रगड़ लग जाती है तो उस रगड़ पर फफूंदन आ जाती है। इस लिये गांठोंको दो घंटे तक अढाई पाव तिजारती 'फार्मेलिन' और ४॥ मन पानीके मिश्रणमें डोब देकर और फिर फैला कर सुखा लेवे और बोवे। ऐसा कहते हैं कि चूना, लीद वा विष्टाके खादसे यह फफूंदी प्रायः हो जाती है। इस हेतु जिन खेतोंमें यह रोग हो जाता है उनमें अम्ल अर्थात खटाई युक्त खात देना ठीक होता है।

३. एक प्रकारकी फुंगी—जो गांठपर लगती है वह काले रङ्गकी फूल गोभीकी सी होती है। कभी यह फुगी खेतकी मिट्टीके ऊपर और कभी पेड़ोंके धरतीके पासके भागपर पीले हरे रङ्गकी दिखाई पड़ती है। यह रोग उन खेतोंमें विशेष होता है जिनमें प्रति वर्ष एक दो वर्षके हेर फेरसे आलू बोये जाते हैं। ऐसे खेत छः सात वर्ष तक काश्तके योग्य नहीं रहते। जो इस रोगके अंश वाली गांठें बोई जाती हैं तो उस रोगका बीज खेतमें रह जानेसे नीरोग गांठोंमें भी रोग हो जाता है; क्योंकि रोगके अंकुर बहुत काल तक निष्क्रय रह कर फिर फैलते हैं। बचावके लिये बोनेसे पूर्व गांठोंकी परीक्षा करनी आवश्यक है। जो रोगी गांठ हों उनको उबालकर पौहोंको खिला देनी चाहिये और जो पेड़ी पत्तोंपर भी रोग फैले तो पौदोंको उखाड़ जला देना चाहिये—यही इस रोगसे बचनेका उपाय है।

४—जब आलूके खेतमें पौदा खूब बढ़ता नहीं दीखता और पत्ते भी छोटे होते हैं, तथा पौदोंको कतारमें कहीं कहीं पौदा नहीं उगता तो यह माना जाता है कि रोग लग गया है। इस रोगका अंकुर धरतीमें रहता है, जो गांठमें होकर पेड़ीके भीतर पहुंच जाता है और वहां पहुंच पेड़ीके मार्गको रोक देता है, जिस कारण पौदेके पोषणोप-योगी रस मूलसे पत्तों तक नहीं पहुंच सकता। और इसी कारण पत्र वगैरहका ऊपरी भाग ढीला पड़ जाता है और पत्ते मरोड़ खाजाते हैं। इस प्रकार पत्तोंमें ऐंठन दीखनेपर पौदेको नोच लेते हैं। गांठोंपर रोगका प्रभाव न होनेसे वह बीजके उपयोगमें आसकती हैं, क्योंकि गांठोंमें रोग उसकी अन्तिम अवस्थामें पहुंचता है। यह रोग विलायतमें गरम सूखे और रेतेली खेतोंमें सूखा पड़नेपर प्रायः होता है। इस रोगकी रोक रोगी पौदोंको जला देना है।

५ कीड़ा—गांठोंपर एक कीड़ेका आक्रमण बहुत होता है जिसको विलायतमें मिलीपिडीज

(सहस्रपाद) कहते हैं। इन कीड़ोंके लगनेसे गांठोंमें कम गहरा घाव पड़ उसके चारों ओर फफूंदन आजाती है। जब यह घाव बड़ा हो जाता है तो फफूंदन मिटसी जाती है। इसके संग भूमिके और कीड़े भी आक्रमण करते हैं जिनके अंकुर भूमिमें अनेक वर्षों तक रहते हैं। एक गांठमें यह कीड़े लग जाते हैं तो फिर सारे खेतमें फैल जासकते हैं। ऐसी रोगी गांठोंको जो पौहोंको बिना उबाले ही खिलाया जाता है तो यह कीड़े गोबर द्वारा फिर खेतमें पहुंच सकते हैं। कीड़े पौदेकी पेड़ी पत्तों तक पहुंच जाते हैं, उस समय पेड़ी पत्तोंको जला देना उचित है।

संयुक्त प्रान्तके कृषि विभागने जो आलूके इस कीड़ेके विषयमें लिखा है उसका सार यह है। कीड़ा भूरे रङ्गका आध इंच लम्बा होता है। गांठपर अण्डोंके गुच्छोंसे बच्चे एक सप्ताहमें निकल गांठको खाने लगते हैं और छेदकर देते हैं, जिन पर फफूंदन धौंधे रूपमें बंध जाती है। कीड़ा पौदेमें पत्ते तक छेद कर देता है और गांठ, और पेड़ी पत्ते सब ही मारे जाते हैं। इस रोगसे बचनेके यह उपाय हैं। प्रथम इस रोगवाली गांठ ही न बोई जाय। दूसरे रोग हो गया जान पड़े तो उस खेतमें कई वर्ष आलूकी फसल न कर और फसल करे। तीसरे खेतमें कोई पौदा पीला पड़ सूखता दीख पड़े तो उसे उखाड़ कर जला देवे। चौथे कड़ तथा गांठोंको मिट्टीसे ढका रखे।

१५—आलूका उपयोग

यह पहले लिख आये हैं कि आलू एक जंगली पौदा है। यह पौदा अब मनुष्य और पौहोंके उपयोगमें आजानेसे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि जंगली पौदे भी खाद्य पदार्थोंमें सम्मिलित हो सकते हैं। पर इतना तो अवश्य है कि किसी और जंगली उद्भिजके उपयोगी बनानेमें मनुष्यका परिश्रम इतनी सफलताको नहीं पहुंचा जितना कि आलूके बारेमें हुआ। यह सफलता केवल उसके खुराकके तौरपर काममें लानेमें ही नहीं हुई वरन् इसके हुनर दस्तकारी तथा औषधोंमें उपयोगी बनानेमें भी हुई है।

आलूसे क्या खाद्य वस्तु बनाई जाती है इसके दिखानेको यह कहना ही बस होगा कि ईसाकी अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें फ्रान्स देशके मौशीओ पारमेण्टीर महोदयने जो एक भोज दिया था, उसमें जितने खानेके पदार्थ और पीनेके लिये मदिरा थी, वह सब आलूसे ही बने हुए थे।

मनुष्यके शरीरके पोषणके लिये जिन पदार्थोंकी आवश्यकता है जैसे 'प्रोटीन' अर्थात् 'एल्बूमिनोइड' (सफेदीवाले); 'कार्बोहाइड्रेट्स' (श्वेतसार) आदि वह आलूमें पाये जाते हैं। इनमें नत्रजन रहित पदार्थ, श्वेतसार (मंड), खाने पर जब भीतर पहुंचता है तो वहां ओषजनसे मिलकर गर्मी उत्पन्न करता है और दूसरे नत्रजनमय पदार्थ पट्ठोंको दृढ़ मज़बूत बनाते हैं और शरीरको श्रम सहनशील करते हैं। इन दोनोंके उत्पादक वस्तुओंके आलूमें होनेसे यह बहुत उपयोगी भोजन सामग्री माना जाता है।

आलूकी गांठमें 'स्टार्च' अर्थात् मांडी मौजूद है, जो एक बड़े महत्वकी वस्तु है और जिससे रसायन शास्त्री अनेक उपयोगी पदार्थ बना सकते हैं। खानेकी अनेक वस्तुओंके सिवाय आलूकी मांडीका खमीर उठाकर 'अल्कोहोल' अर्थात् मद्यसार बनाया जाता है, जिससे केवल 'बीअर' 'ह्विस्की' नामकी मदिरा ही नहीं तैयार होती; वरन् उसमें तारकोलसे रंग बनाने तथा मीना लाखका रंग चढ़ाने और वारनिश और रबरके कामके उपयोगके घोल बनाते हैं। आलूसे बने मद्यसारको भभकेमें खेंच कर रोशनीके वा मोटर गाड़ी वगैरहके कामके बना लेते हैं। आलूके मद्यसारसे 'एसीटोन' नामका पदार्थ बनता है, जिससे बिना धूंएकी बारूद बनती है। क्लोरोफार्म, ईथर और बहुतसे डिस इन्फेक्टेण्ट इससे तैयार होते हैं। इनके सिवाय बहुतसे मैकैरोनी वर्मीसेली और आटे इसी मांडीसे बनते हैं। इसी मांडीसे साबूदानेकी माफिक दाने तैयार किये जाते हैं जो असली साबूदानेसे कम नहीं होते।

धोबी वा कपड़ा बुननेवालोंको कलफ भी आलूकी मांडीसे मिल जाता है।

मांडीको जब किसी तेज़ाबके संग उबाला जाता है तो उससे एक प्रकारकी शर्करा निकलती है, जिसको 'डेक्सट्रोज़' वा ग्लूकोज़ कहते हैं। यह शर्करा शर्बत वा खांड़ वा कंद रूपमें बेची जाती है और कागज तथा स्याही बनानेमें काम आती है। यही नहीं बल्कि शहद और मुरब्बे मिठाई वगेरहके काममें भी लाई जाती है।

आलूकी मांडीको जलके साथ उबालनेसे उसमेंके दाने फूलकर फट जाते हैं और वह चिपचिपे गोंद जैसे रसमें बदल जाती है, जिसको होशयारीसे अधिक गरम करनेसे सफेद गोंद 'डेक्सट्रीन' नामका बनाया जाता है। यह गोंद कपड़े को कड़ा करने, कागजपर कलफ चढ़ाने, छीपियोंके कपड़े छापनेके रंगोंको गाढ़ा करने, दवाकी टिकिया गोली बनाने, टिकिट स्टाम्प चिपकाने और सर्जनोंके कामकी पट्टी बनानेके काममें आता है। इन कामोंके सिवाय इस गोंदकी और बनावटें बनावटी रेशम तथा कचकड़ा बनानेमें भी काममें आती हैं।

खाद्य गुण

खानेके कामके लिये वह गांठें अच्छी मानी जाती हैं जिनका भीतरी मावा आटे काला सूखा होता है। गांठोंके खाद्यगुण खेतकी मिट्टी और आलूकी जातिपर निर्भर हैं। जो धरतीमें चूना व फास्फेतके अंश ठीक नहीं होते तो गांठें स्वादिष्ट नहीं होतीं। खड़िया मिट्टीके अंशवाली धरतीकी गांठें स्वादमें अच्छी होती हैं।

आलूकी गांठोंके खाद्य गुण उनके उबालनेपर ही प्रगट होते हैं। गांठके ऊपरी छिलकेमें एक विषैला पदार्थ 'सोलेनिन' नामका है जो उबालने वा भाप द्वारा पकानेपर निकल जाता है। छिलकेको गांठोंको खुरदरी वस्तुपर रगड़नेसे दूर किया जासकता है और आंखें भी पीछेसे निकाल ली जा सकती हैं। बिना उबाली वा सेकी गांठोंका छिलका छीलनेसे उसके संग कुछ मावा भी छिल जाता है, जिससे अच्छा खाद्य भाग निकल जाता है, क्योंकि ऊपरके छिलकेके पासही जो भाग है उसमें ही खाद्य पदार्थ विशेषतासे है। कुल गांठमें प्रतिशत २$\frac{1}{2}$ भाग छिलका, ८$\frac{1}{2}$ भाग बीचका मावा और बाकी भीतरका गूदा ८९ भाग है। बीचका मावा और भीतरी गूदा खाद्य हैं, जिनमें ७५ भाग जल और २५ भाग खाने योग्य पदार्थ हैं। पर छिलकेके पासका भाग ही खाद्य पदार्थसे पूर्ण है। ऐसी दशामें आंखोंके गहरी होने और छिलकेको भी गहरा छीलनेमें आलूका पंचमांश भाग तक निकल जाता है। ऐसा करनेसे खाद्य पदार्थमें ही घाटा नहीं पड़ता वरन् गांठके उबालनेमें कुछ भाग पानीमें घुल जाते हैं और उबालते समय गांठ खिलकर बिखर जाती है जो अभीष्ट नहीं। इस लिये अच्छी रीति तो यही है कि गांठोंको उबालकर ही छिलका दूर किया जावे। उबालनेके लिये गांठोंको ठंडे पानीमें न रख खौलते पानीमें ही उबालना चाहिये। यदि गांठोंको रगड़कर छिलका दूर किया हो तो भी उनको ठंडे पानीमें रखकर नहीं उबालते क्योंकि ठंडे पानीमें रख कर उबालनेसे मावा यानी गूदा मोमका सा चिम्मड़ हो जाता है।

आलूकी गांठको दो रीतिसे उबालते हैं। एक तो गांठके ऊपरका छिलका रगड़ वा छीलकर दूसरे गांठको छिलके सहित उबालते हैं। छिलका छीलकर उबालनेमें गांठमेंके खाद्य पदार्थमेंसे 'प्रोटीन' अर्थात् मांस वधर्कके १५ प्रतिशत भाग खनिज सारमेंका १६ प्रतिशत और मांडीमेंसे ३ प्रतिशत भाग कम हो जाता है अर्थात् गांठमेंके कुल खाद्य पदार्थमेंसे १२ वा १३ प्रतिशत भाग कम हो जाता है। गांठोंकी कतलीकर खौलते जलमें रखकर उबालनेसे कमी प्रतिशतमें मांसवर्धक प्रोटीनकी ८ भाग, खनिज क्षार की १८ भाग, मांडीकी चौथाई भाग होती है। परन्तु छिलके सहित गांठोंको खौलते पानीमें उबालनेसे वह कमी और भी गिर जाती है अर्थात् कमी

प्रतिशत प्रोटीनकी १ भाग, क्षारकी ३ भाग, मांडीकी भाग १ होती है। इससे सिद्ध होता है कि खाद्य वस्तुकी तौरपर गांठोंका उपयोग करनेके लिये यह आवश्यक है कि छिलके सहित ही गांठोंको उबालना चाहिये। गांठोंके उबालनेकी रीति यूरोपके महाद्वीपमें जो काम आती है और जो इस देशमें भी न्यूनाधिक तौरपर प्रचलित है वह यह है—

छिलका सहित गांठोंको प्रथम ठंडे पानीसे धोते हैं। धोनेके पूर्व खराब भाग तथा आंखको काट फेंकते हैं और गांठके दोनों सिरोंपर छोटी फांकसी करदेते हैं। इन गांठोंको तवीमें रख इतना पानी भरते हैं कि जिसमें पानी उनके ऊपर फिर जाय। जब पानी खौलने लगता है तो उसमें थोड़ा ठंडा पानी और मिलाते हैं और उसके साथ थोड़ा नोन भी देते हैं। फिर जब गांठें उबाल खाकर पूरी मुलायम वा नरम हो जाती हैं तो पानीको निकाल तईको भूभल पर रखते हैं कि जिससे रहासहा तवीके तलेका पानी भाप हो कर निकल जाय। जो तत्काल उनका उपयोग नहीं करना होता तो गांठोंको मोटे सफेद वस्त्रमें रख चूल्हे पर ही काममें लानेके समय तक रहने देते हैं।

केवल भुनी हुई आलूकी गांठें स्वादिष्ट होती हैं। भूननेके लिये बड़ी गांठोंको खूब धोकर सूए वगैरहसे कौंचते हैं वा काटते हैं। फिर उन्हें मामूली गरम तन्दूरमें रखते हैं और रहरहकर उलट पलट करते रहते हैं। इस प्रकार डेढ दो घंटेमें गांठे भुनकर तैयार हो जाती हैं। धीरे धीरे भुनना अच्छा है। तैयार होने पर साफ छन्नेमें रखते हैं।*

* उबाली हुई गांठोंको छील कर, मावेको आटेमें मिला करी रोटी बनाई जाती हैं। गांठोंको काट कर सुखा लेनेसे वह बहुत काल तक नहीं बिगड़त और मनुष्य तथा पशुके लिये पौष्टिक खुराक होती हैं।

पौहोंका चारा

आलूकी गांठोंमें शरीरके पोशक पदार्थ रहनेसे यह पशुओंको भी खिलाया जाता है। विशेष कर यह उन पौहोंको फायदा करता है कि जिनको महनतका काम करना पड़ता है। गांठोंको उबालकर केवल इतनी ही खिलाते हैं कि उनका पेट न चल जाय। गांठें खिलानेमें उनके अन्दाज़का दाना कम कर देते हैं और पानी भी कम पिलाते हैं।
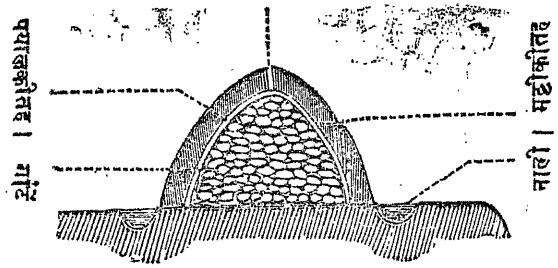
चित्र ३० आलूका वास

घोड़ेको कच्चो गांठोंको कतली कर घास के भूसेके संग मिलाकर खिलाते हैं, परन्तु जो उबाल कर गांठें दी जाती हैं तो अधिक गुण करती हैं। दूसरे चारेके साथ इस हिसाबसे मिलाते हैं जिसमें १ सेर गांठ ढाई सेर दूसरे दाने वा चारेके हिसाबसे रहे। हिसाबसे ७ वा साढ़ेसात सेर गांठें उतना पोषण करती हैं जितना कि दो ढाई सेर जइके दानेसे हो सकता है। और २।) गांठें, १।)६ सूखी घासके बराबर लाभदायक होती हैं। जब आलू बहुतायतसे पैदा होते हैं और भावमें भी सस्ते होते हैं तो उन दिनों दूध देनेवाली गायोंको भी खिलाते हैं। देनेका तरीका गांठोंको उबाल कर साबित ही गरमा गरम सूखी घासकी कुटी वा भूसेके संग मिलाकर देनेका है। ७॥ सेरसे ११ सेर तक रोज़ाना पूरी गायको देसकते हैं। जो गांठोंको पीसकर देते हैं तो उनमेंकी मांडी कम पचती है।

पानीमें उबाली हुई गांठोंको सूखी घास वा भूसेमें मिलाकर १॥ सेर २ मासके जंगरा जंगरीको

खिलाते हैं। जो उनके दस्त हो जाते हैं तो गांठोंकी मिकदार कम कर देते हैं। बछिया बछड़ोंको हृष्ट-पुष्ट करनेके लिये गांठोंसे भी भारी खुराक 'स्वीडस' और 'मैंगिल्स' चारेमें देते हैं॥

ऊपर लिखी बातें मि. न्यूशामकी पुस्तकसे ली गई हैं। इस देशमें जिस विधिका उपयोग होता है उससे सब परिचित ही हैं।

(असमाप्त)

भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

(गताङ्कके आगे)

[ले०-श्री० 'जटायु']

(स्थान ब्रह्मावर्त्त)

राज भवनके दर्बारके कमरेमें एक ऊंचे स्थानपर भारतेन्दुका सिंहासन रखा है। सिंहासनके ऊपर मणि-जटित धनुषबाण रखे हैं। दाईं ओर युवराज बैठे हैं। बाईं ओर प्रधान मंत्री, अन्तरराष्ट्रीय सचिव और अन्य मंत्री बैठे हैं। सिंहासनके सामने जगह छोड़कर दोनों ओर अनेक दर्बारी बैठे हैं। बाहरसे एक बिगुलका शब्द सुनाई देता है। थोड़ी देर बाद एक चोबदार आता है; सिंहासनको प्रणाम करता है और अर्ज करता है कि जर्मन सम्राट्का दूत आया है और दर्बारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा मांगता है। युवराज अन्तर-राष्ट्रीय सचिवको इशारा करते हैं। वह उठकर बाहर जाता है और कुछ समय पश्चात् जर्मन-दूतको उसके कुछ और कर्मचारियों सहित दर्बारमें उपस्थित करता है। उसी समय एक नक़ीब ऊंचे शब्दसे कहता है—"कौंट—फ़ान—टौनफौस्टिस, बवेरियाके ड्यूक, होहेनज़ोलर्नके प्रिंस, रीकसटेगके मेम्बर, जर्मन सम्राट्के दूत जर्मन सम्राट्का ख़रीता लेकर पधारे हैं।" युवराज, अन्य सचिव, मंत्री और दर्बारी उठकर स्वागत करते हैं; फिर सब अपने अपने स्थानपर बैठ जाते हैं। कुछ देर बाद जर्मन दूत खड़ा होता है और उसके साथ उसके पीछे उसके कर्मचारी भी खड़े होते हैं।

जर्मनदूत—"इस समय जो जर्मनीमें शोक जनक दशा उपस्थित हो गई है जर्मन जनताको स्वप्नमें भी उसकी आशा न थी। जर्मनी और भारतवर्षमें जो आपसमें मित्रता थी उसको देखते हुये जो अब हो रहा है उसपर हम केवल आश्चर्य प्रकट करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते हैं। बहुत अच्छा हो अगर दोनों राज्योंमें मनमोटाव न रहे और सफाई हो जाय। इसी उत्तम कार्यके लिये हम जर्मन सम्राट्का ख़रीता लेकर आपके दर्बारमें उपस्थित हुये हैं। आशा है कि हमें शीघ्र उत्तर मिलेगा।"

अन्तरराष्ट्रीय सचिव ख़रीता लेकर युवराजको देते हैं, युवराज उसे प्रधान मंत्रीको देते हैं।

युवराज—हम आपके सम्राट्का ख़रीता आदर-पूर्वक स्वीकार करते हैं और इसकी सूचना मंत्रि-मंडल तुरन्त भारतेन्दुको जो अब जर्मनीमें हैं भेजते हैं। आशा है कि शीघ्र सन्तोष जनक उत्तर दिया जायगा।

इसके बाद अन्तरराष्ट्रीय सचिवने जर्मन दूतसे अतिथि भवनमें चलकर कुछ जल पान करनेकी प्रार्थना की और दर्बार बरख़ास्त हुआ। तदनन्तर राष्ट्रीय सचिव, जर्मन दूत और उसके साथके कर्मचारी कुछ मंत्रियों सहित अतिथि भवनकी तरफ़ चले गये।

पाठक चलिये हम भी चलकर देखें कि अतिथि भवनमें क्या हो रहा। यह देखिये सब सज्जन आरामसे मेज़ कुर्सियोंपर बैठे हुए छप्पन प्रकारके भोजन उड़ा रहे हैं और बातें कर रहे हैं—

जर्मनदूत—मेरी बुद्धि नहीं काम करती कि पूर्णिमाके दिन जब मैं आपसे सचिव-भवनमें मिला था, आपने कहा था कि आप कुछ नहीं जानते।

अन्तर राष्ट्रीय सचिव—मैं आपसे सत्य कहता हूं, मुझे कुछ नहीं मालूम था। प्रथम समय मैंने

आपसे सुना कि भारतवासियोंने बर्लिनपर आक्रमण किया है। यह तो आप भी जानते हैं कि भारतेन्दुको आकाशी शेमफ़ाइट (दिखावटी लड़ाई) बड़ी प्रिय है और वह प्रायः पन्द्रह सोलह दिनके लिये आकाशमें चढ़ आया करते हैं। जिस दिन आप आये उससे एक दिन पहले भारतेन्दु वायु सेना लेकर शेम फाइटके हेतु गये थे।

ज० हु०—यह बड़ा अन्याय है। किसी राष्ट्रको किसी दूसरे राष्ट्रपर बिना सूचना दिये आक्रमण करना निन्दनीय समझा जाता है।

अ० रा० स०—यह न कहिये, जब सिंह किसी मृगोंके झुण्डपर आक्रमण करता है तो समयकी सूचना नहीं देता।

ज० हु०—आप पशु पक्षियोंका उदाहरण देकर क्या सिद्ध करना चाहते हैं कि मनुष्य भी उन्हींके समान है?

अ० रा० स०—जब कैसरने बेलजियमपर हमला किया था तो उस समय किस प्रकार सूचना भेजी थी?

ज० हु०—हम नहीं कह सकते कि यह सत्य है अथवा असत्य है। पर हाँ बेलजियम वर्षोंसे टर्रा रहा था और जब उसको आक्रमण करके परास्त किया, न्यायकी दुहाई देकर चिल्लाने लगा और अन्य राष्ट्रोंको अपनी तरफ करनेके लिये कहने लगा कि बिना सूचना दिये और बिना किसी कारणके जर्मनीने हमें निर्बल समझ कर हड़पकर लिया। आप ऐसी बातोंमें विश्वास करके और उनका अनुकरण करके अपनी सभ्यतामें कलंक न लगाइये।

अ० रा० स०—अजी कलंकका हमें कुछ भय नहीं है। कमसे कम जर्मनजनता हमें कलंकित नहीं कर सकती। आपके यहां एक कौंट बाहांडाय हो गये हैं, जिनको कैसर और जर्मनजनता भविष्य वादी ऋषि मानती थी। उनका मत है कि पशु पक्षी मनुष्य सब में यही एक प्राकृतिक नियम बरतता है कि निर्बलको सबल हड़प कर जाता है। उनका तो मत है कि इस पृथ्वीमंडलमें उन्नतिके लिये यह नियम बहुत आवश्यक है और इसीके आधारपर उन्नति होती है। जर्मनजनताकी तो दृष्टिमें जो भारतेन्दुने किया है सभ्यताके विरुद्ध न होना चाहिये।

ज० हु०—कौंट बाहांडायके वाक्योंको सब संसार तो सत्य नहीं मानता? उनको सत्य मानकर काम करनेसे संसारमें खलबली उत्पन्न हो जावेगी और न्याय अन्यायमें फिर कोई भेद न रहेगा। किसी राष्ट्रको अपनी प्रजामेंसे किसी सबलको किसी निर्बलके सतानेपर दण्ड देनेका अधिकार नहीं रहेगा।

अ० रा० स०—क्यों क्या हम यह नहीं कह सकते कि राजा सबल होता है इस लिये निर्बलको दण्ड देनेका अधिकारी होता है?

ज० हु०—आप "अहिंसा परमोधर्म्मः" सिद्धान्तके माननेवाले हैं। आप कैसे युद्धको निकृष्ट नहीं समझते?

अ० रा० स०—वाह क्या हत्या और युद्ध एक है? कोई हमारा गला काटने आये तो हम उसे मारें नहीं?

ज० हु०—जर्मनी तो आपका गला काटने नहीं आई थी? फिर जर्मनीमें क्यों आपने हत्याकांड खोल दिया?

अ० रा० स०—प्रथम तो आपका यह कहना असत्य है कि हमको जर्मनीसे किसी प्रकारका भय नहीं था। कौंट बाहांडायकी जर्मनीसे संसार सदासे भयभीत रहा है। यह सदैव निर्बलकी शिकारकी ताकमें रहा करते हैं। इस कारण ऐसे राष्ट्रको संसारमें न रखना ही उचित है। फिर दूसरे यह देखिये कि इस बातकी आपको याद नहीं रही कि जिस रीतिसे भारतेन्दु युद्ध करते हैं उसमें हत्या होना अत्यन्त असम्भव है। फिर अगर हो जाय तो भावीवश है।

ज० हु०—मैं नहीं समझता कि आप युद्धमें हत्या किये बिना कैसे शत्रुको परास्त कर सकते हैं, इतिहास तो इसका साक्षी नहीं है।

अं० रा० स०—खैर आइये पहिले आपको जल भवनकी सैर करावें। आप अभीसे क्यों अपना हृदय ऐसा मलीन करते हैं।

भोज समाप्त होनेपर सब उठ कर इधर उधर चल दिये और अतिथि भवन सब ख़ाली होगया।

× × × × ×

(जर्म्मन दूतका भवन । जर्म्मन दूत और उसका मन्त्री एक कमरेमें बैठे बातें कर रहे हैं)

मंत्री—देखिये मैं न कहता था? जैसा मैंने पहले कहा था वैसा ही हुआ, बल्कि उससे अधिक हुआ।

जर्मनदूत—हां पर क्या चारा है? यह सब दोष बृटिश राष्ट्रका है। इन यवनोंको स्वाधीन बनाकर यूरोपीय सभ्यताको नष्ट कराया।

मंत्री—कांटे तो हमारे लिये हो गये उनका क्या बिगड़ा?

जर्मनदूत—जब अफरीकामें हमने काङ्गोके निवासियोंको अपने अधीन कर उनको अपनी सभ्यताके भूषण नहीं पहनाये थे बृटिश जनता बड़े ज़ोरसे चीख़ मार कर चिल्लाई थी।

मंत्री—यदि आज कहीं काङ्गोमें ऐसा आंदोलन होता और हमारी काङ्गोकी प्रजा बृटिशपर अक्रमण करती तो हमें बड़ा आनन्द होता।

जर्मनदूत—यह एशियायी मनुष्य दूबके समान हैं। इनको जितना हो अधिक काटो और दबाओ उतनी ही इनकी अधिक वृद्धि होती है और यदि कहीं कुछ समयके लिये इनको बिना रोक टोकके छोड़ दो तो चारों ओर बस यही दिखलाई देंगे।

मंत्री—पर भारतकी उन्नति इस वेगके साथ होना अत्यन्त आश्चर्य्य जनक है। सौ वर्षमें इन्होंने इतनी उन्नति की है जितनी दो हज़ार वर्षमें भी यूरोप ने नहीं की थी।

जर्मनदूत—इस सबका गुरु है स्वाधीनता और विशेषकर विद्या विभागमें तो एशियाई जनताको कभी स्वाधीनता न देनी चाहिये। इनको सदैव यही सिखाना चाहिये कि सेवा तुम्हारा परम धर्म है।

ज० मं०—मुझे अब याद आया। मैंने एक समय प्रोफेसर मोक्षमूलरकी एक पुस्तक पढ़ी थी, उसमें उक्त प्रोफेसरने लिखा था कि जब भारतवर्षमें आर्य्योंका राज्य था तो वह अपनी अधीन प्रजाको सदैव यही शिक्षा देते थे कि सेवा शूद्रका परम धर्म है और शूद्रको वेद और शास्त्र पढ़ाना महा पाप है। इतना तो मैं मानता हूं कि राज तंत्रमें यह आर्य्यन हमसे अधिक चालाक थे।

जर्मन दूत—पर इस समय यह कौन बता सकता है कि इस भारतवर्षकी जनतामें कौन प्रोफेसर मोक्षमूलरके ऐतिहासिक शूद्र थे और कौन आर्यन सर्दार। झंडासिंह अमृतसरके सिक्ख तो इसको मानते ही नहीं, यह प्रोफ़ेसर मोक्षमूलरको झूठा बतलाते हैं।

इतनेमें एक नौकर आया और उसने इत्तिला की कि रूसके राजदूत कौंट हनाफ़टफ़ और फ्रांसके राजदूत मासियो शैम्पेन पधारे हैं। जर्मनदूत और मंत्री दोनों उठकर बाहर गये और दोनों राजदूतोंको साथ लेकर आये।

हनाफ़टफ—मैं यही सुनकर आया हूं, आपने अच्छा किया।

ज० रा० दू०—पर इसका फल क्या होगा? क्या भारतेन्दु जर्मनी छोड़ कर यहां लौट आवेंगे?

शैम्पेन—आप बिल्कुल निराश हुये जाते हैं, अभी हुआ क्या है?

ज० रा० दू०—नहीं मैं निराश नहीं होता। अगर निराश ही होता तो भारतेन्दुके दर्बारमें ख़रीता लेकर क्यों जाता। पर मुझको इन लोगोंकी वैज्ञानिक उन्नति भयभीत करती है।

शैम्पेन—यह मुझे भी खटकती है और मैं बराबर फ्रांसको लिखता रहता हूं कि जगो और होशियार हो जाओ।

हनाफटफ—खैर आइये; बैठिये; तीन सिर मिलाकर कुछ तदबीर निकालनी चाहिये।

ज० रा० दू०—आपकी क्या राय है ?

इनाफटफ—इनमें किसी प्रकार फूट पैदा करो।

ज० रा० दू०—अजी फूट तो इनमें बहुत पुरानी है, पर हमारे किस काम आती है ?

इनाफ़टफ़—मैं एक तरकीब बतलाऊं, मुसलमानोंको फोड़ो।

शैम्पेन—और यह देखिये कि फ़ारिस और टर्कीके राजदूत कानमें तेल डाले बैठे हैं; कोई टससे मसतक नहीं हुआ।

इनाफटफ—आपके पास कोई इनमें कुछ पूछने ताछने आया था ?

ज० रा० दू०—जी नहीं।

शैम्पेन—तुमको भी इनसे उस मामलेमें कुछ बात चीत न करनी चाहिये।

इनाफटफ—(शैम्पेनसे कहता है) आप जाइये इनको उकसाइये।

शैम्पेन—नहीं आप ही जाइये। इनको नेपोलियन द्वारा पददलित होना अभी याद है और कैसरके समयकी लड़ाईका अभी तक उन्हें खयाल है।

इनाफटफ—जी हां और कैसरके समयकी मित्रता मानते हैं ?

शैम्पेन—(ज० रा० द० से) आप ही जाइये, क्योंकि तुर्कोंसे आपका पूरा दोस्ताना है।

ज० रा० दू०—मैं ऐसा अपमान सहनेको तैयार नहीं हूं।

शैम्पेन—आपने सुना नहीं है कि कुसमय पर गधेको भी बाप बना लेते हैं।

इनाफटफ—हां ! हां ! आप ही जाइये। यह आप कैसे मान लेते हैं कि फारिस और तुर्कोंके राजदूत शत्रुताके भावसे आपसे मिलने नहीं आये ?

ज० रा० दू०—(फ्रांसीसी राजदूतसे) आप जाइये। आप एशियाई जनताको खूब समझते हैं और आपको उनसे व्यवहार करना भली भांति आता है। इसके अतिरिक्त मेरे उकसानेसे वह भड़केंगे कि स्वार्थसे मैं उनको भी इसमें लपेटना चाहता हूं।

इनाफटफ—हां आपका ही जाना ठीक है।

शैम्पेन—अगर आप लोगोंकी यही राय है तो मैं जाता हूं और कम असकम मैं यह अवश्य ही टटोल आऊंगा कि यह ऊंट किस करवट बैठेगा।

इतना कहकर फ्रांसीसी राजदूत तो विदा होता है और शेष दोनों राजदूत भी चले जाते हैं।

× × × ×

(स्थान तुर्कोंके राजदूतका भवन तुर्की-फारसी—और फ्रांसीसी राजदूत बात चीत कर रहे हैं)

तु० रा दू०—आप इसका अर्थ उलटे लगाते हैं। यों कहिये कि एशियाई सभ्यताने आज सफलता से यूरोपीय सभ्यता पर आक्रमण किया।

फ्रांसीसी रा० दू०— हां, यों भी कह सकते हैं, पर कल जब भारतीय सभ्यता फारिस और टर्की पर आक्रमण करेगी तब क्या अर्थ लगाइये ?

फारिसका रा० दू०—वही जो नेपोलियनके समयमें रूस और फ्रांसने टर्कीके विरुद्ध लगायेथे।

फ्रांसीसी रा० दू०—पर टर्कीका तो उसमें लाभ ही रहा।

फ़ारसी रा० दू०—इसमें यूरोपका लाभ रहेगा।

फ्रा० रा० दू०—हम और आप अहले किताब हैं। मसीहको नबी हम और आप दोनों मानते हैं। मूर्तिका खंडन हम आप दोनों करते हैं। क़यामतको आप भी मानते हैं हम भी मानते हैं। आपको इन बुतपरस्त यवनोंकी विजय कैसे शांतिमें बिठाले है।

फा० रा० दू०—जब भारतवर्षमें हमारा राज्य था हमारी रिआयामें लाखों बुतपरस्त थे। उनसे हमारे धर्ममें किसी प्रकार विघ्न नहीं होता था। बल्कि राज्य काजमें सहायक और प्रायः हमारे रक्षक सिद्ध हुये हैं। फिर इसके अतिरिक्त गत शताब्दियोंमें हमारे और यूरोपके दर्मियान युद्धोंमें यूरोप सदैव जिहादका झंडा खड़ा करनेसे रोकता रहा है। फिर अब जब हमसे उनसे कोई शत्रुता भी नहीं है, तो भी आप क्यों जिहादका झंडा खड़ा करनेको कहते हैं ?

फ्रां० रा०दू०—नहीं नहीं मेरा यह मतलब नहीं है। मैं केवल जो वर्तमान दशा उपस्थित हो गई है मित्रतासे आपका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करता हूं।

तु० रा०दू०—हम आपको धन्यवाद देते हैं और जो कुछ आपने कहा है उसको हम अवश्य ध्यानमें रखेंगे।

(तीनों राजदूत खड़े हो जाते हैं और फ्रांसीसी राजदूत बिदा होता है। तुर्की और फारसी राजदूत बैठ जाते हैं।)

तु० रा० दू०—हज़रत; आपने देखा।

फा० रा० दू०-किब्ला स्वार्थमें मनुष्य अंधा हो जाता है। हमारे सैकड़ों विद्यार्थी भारतवर्षमें इस समय शिक्षा पा रहे हैं और कितने इंजीनियरों और अन्यान्य शास्त्रियोंको भारतेन्दुने हमारे देशकी उन्नतिके लिये हमें मांगे दिया है। हम जब यूरोपसे अपनी सेनाके सुधारके लिये सहायता मांगते थे यह लोग बगलें झांकते थे। अब जिस सेनाको हमने भारतेन्दुके सेना नायकोंकी सहायता से इतना प्रबल बनाया है, उसको यह कठपुतलियों की तरहसे अपने हाथमें नचाना चाहते हैं।

तु० रा० दू०—यूरोपीय राष्ट्र हमें केवल दूध पीता बालक ही समझते रहे हैं और सदैव फुसलानेका ही यत्न किया किरते हैं। (शेष आगे)

स्थिर विद्युत पैदा करनेकी कलें।

एबोनाइट या कांचकी छड़को फलालेन या रेशमसे घिसनेसे बहुत थोड़ीसी विद्युत् पैदा होती है। यदि बहुतसी बिजली पैदा करनी हो तो ऐसे सीधे सादे यंत्रसे काम नहीं चलेगा। बड़ी बड़ी कलें बनाना पड़ेंगी। यह कलें दो प्रकारकी होती हैं। पहली प्रकारकी कलोंमें बिजली घर्षणसे पैदा की जाती है। इनको घर्षण कलें कह सकते हैं। दूसरे प्रकारकी कलोंमें उत्पादनसे काम लिया जाता है। इनको उत्पादन-कलें कहना चाहिये।
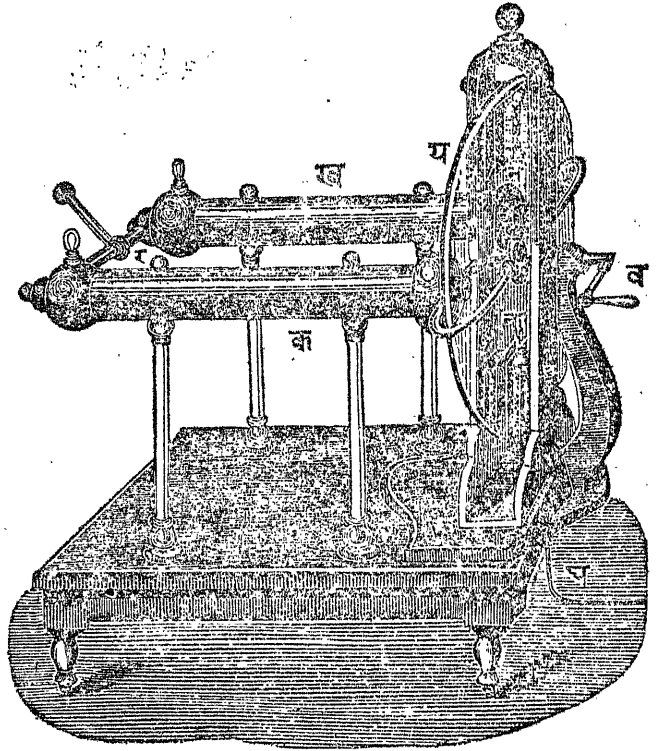
चित्र ३१—व हत्था; क, ख, पीतलकी पोली छड़ें; र—से चिंगारी लेते हैं; न, ना—गद्दियां; य—शीशेका चाक जो 'व' हत्थेसे घुमाया जाता है।

१—घर्षण कलें

जब स्थिर विद्युत्का पता चला ही चला था तब तो इससे प्रयोग करनेके लिए कई प्रकारकी कलें बनायी गयी थीं, परन्तु आज कल यह कलें काममें नहीं आती हैं। इस लिए हम केवल एक ही प्रकारकी कलका यहां वर्णन करेंगे। इस एक से ही औरोंका अनुभव हो जायगा; क्योंकि सिद्धांत सबका एक ही है—केवल बनावटमें थोड़ा बहुत भेद है। एक कांचके वृत्ताकार टुकड़ेके बीचमें छेद करके धुरी लगा दी जाती है। इसमें

एक हत्था भी लगा रहता है। जब यह धुरी उचित रीतिसे दो स्तंभों पर रखदी जाती है तो इस हत्थेकी सहायतासे घुमायी जा सकती है। इसीके साथ शीशा भी घूमने लगता है। दो स्थानों पर—ऊपर और नीचे-दो रेशम या चमड़ेकी गद्दियां इस कांचको दबाती रहती हैं। चित्र ११ से यह आसानीसे समझमें आ जायगा। इन गद्दियोंसे समकोणपर दो पीतलके नाल आमने सामने काँचसे कुछ अलग रहते हैं। इन नालोंमें शीशेकी ओरको नोकीले पीतलके दांते लगे रहते हैं। इन पीतलकी नालोंसे पीतलकी छड़ें जुड़ी रहती हैं। यह पीतल की छड़ें शीशेके खंभोंपर रखी रहती हैं। इन्हें बिजलीके जमा होनेका स्थान कहना चाहिये। जब शीशा घुमाया जाता है, उसके उस हिस्सेपर जो गद्दियोंसे रगड़ खाकर निकलता है बिजली रहती है। जैसे ही यह विद्युन्मय हिस्सा दांतोंके सामने आता है असमान बिजली दांतोंके नौकीले सिरोंपर खेंचलेता है और समान बिजली नलोंपर चली जाती है। नौकीले सिरोंकी असमान बिजली बहुत शीघ्र हवामें चली जाती है अर्थात् कांचके पासकी हवा असमान विद्युत्से विद्युन्मय हो कर कांचके विद्युन्मय हिस्सेसे टकराती है और उसे विद्युत् शून्य कर देती है। इससे यह हिस्सा जो दांतोंके सामनेसे निकल कर आता है ऐसी अवस्थामें होता है कि गद्दियोंकी रगड़से विद्युन्मय हो सकता है। इसी तरह रगड़से बिजली उत्पन्न होती और छड़ोंमें होकर चली जाती है। यदि इस स्थानके पास उंगली लायी जावे तो छोटीसी चिंगारी निकलेगी। यदि हम एक शीशेके पायों वाली चौकी पर खड़े हो जायं और बिजली-के स्थानको छुएं तो हम विद्युन्मय हो जायंगे। हमारे बाल खड़े हो जायंगे और यदि कोई हमारा मित्र हमसे हाथ मिलानेकी इच्छासे हमारे हाथकी ओर अपना हाथ बढ़ायेगा तो पहले हमारे हाथमें-से चिंगारी निकलेगी।

उत्पादन कलें
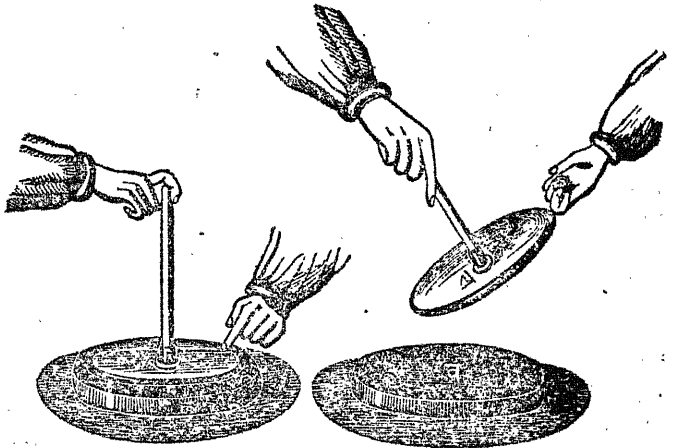
चित्र १२—व-चमड़ेकी रोटी; त-टीनका टुकड़ा। विद्युत्स्फुरकके प्रयोगकी विधि।

इन कलोंमेंसे सबसे सरल और सस्ती कलको विद्युत्स्फुरक कहते हैं, जो इस प्रकार बनाकर काममें लाया जाता है:—

एक एबोनाइट या लाखकी ३ इंच या अधिक व्यासवाली आधि इंच मोटी रोटी बना ली जाती है। इस रोटीको उतनी ही (चित्र १२) चौड़ी पीतल या टीनकी थाली पर रखकर फलालैनसे घिस देते हैं, जिससे इसके ऊपरका पृष्ठ विद्युन्मय हो जाता है। एक पीतल या टीनकी उतनी ही बड़ी थाली जिसके बीचमें कांच या किसी दूसरे रोधककी डंडी लगी होती है इस विद्युन्मय पृष्ठ पर रखकर छुई जाती है। जिस उंगलीसे छूते हैं उसको हटा कर थाली उठाली जाती है तो विद्युन्मय मिलती है। इस थालीको फिर विद्युत् शून्यकरके, फिर रोटी पर रखकर और छूकर विद्युन्मय कर सकते हैं। इस प्रकार रोटीको एक बार विद्युन्मयकरके थालीको कई बार विद्युन्मय कर सकते हैं।

विमशर्स्टकी कल

दूसरे प्रकारकी उत्पादन कल जो इतनी सरल और सीधी नहीं है, परन्तु जो आजकल काममें आती है विमशर्स्टकी कल कहलाती है। इसमें वार्निश किये हुए दो कांचके गोल टुकड़े एक ही धुरी पर इस तरह लगे होते हैं कि धुरीके घुमानेपर एक एक ओर दूसरा दूसरी ओर घूमने लगता है। इनके किनारे किनारे बाहरकी तरफ समान दूरी पर टीनके बरकके टुकड़े लगा दिये जाते हैं। धुरीपर दोनों टुकड़ोंके सामने बाहरकी तरफ एक एक धातुकी छड़ लगायी जाती है, जिसके सिरे मुड़े रहते हैं। इन सिरों पर बारीक तारोंके गुच्छे लगा दिये जाते हैं जो कांचोंसे छुए हुए रहते हैं। यह धातुकी छड़ें एक दूसरेसे सम कोण होती हैं। इन छड़ोंसे लग भग ४५° के कोणपर आमने सामने दो दांतेदार नाल कांचोंसे अलग रहते हैं। यह नाल पतली नलियों द्वारा खोखले गोलोंसे जुड़ी होती हैं। यह गोले एक दूसरेसे बिलकुल अलग रहते हैं किन्तु इनकी दूरी घटायी बढ़ायी जा सकती है।

चित्र ११—'र र' कांचके चाक जो 'ता' हत्थेसे घुमाये जाते हैं। इनके किनारे किनारे टीनके टुकड़े लगे हैं जिनको 'ग' धातुकी छड़ पर लगे हुए गुच्छे छूते रहते हैं। 'व व' दांतेदार नाल। 'त त' पीतलकी नलियां। 'प प' पीतलके खोखले गोले। 'द द' कांचके स्तंभ; 'स' एबोनाइटका दस्ता जिसकी सहायतासे 'प प' पास लाये या दूर हटाये जा सकते हैं।

यदि एक चाक (कांचका गोल टुकड़ा) का कोई विद्युन्मय टीनका टुकड़ा दूसरे चाकके ऐसे टीनके टुकड़ेके सामने आयगा कि जिससे तारका गुच्छा छुआ हुआ है तो सामनेवाले टुकड़ेपर असमान विद्युत् उत्पादित होजायगी और समान विद्युत् छड़ द्वारा चाकके व्यासके दूसरे सिरेपर लगे हुए टुकड़े पर चली जायगी। इसलिए जब एक व्यासके दो सिरोंपर लगे हुए टुकड़े गुच्छोंसे निकल कर जायंगे एक एक प्रकारकी बिजलीसे विद्युन्मय होगा और दूसरा दूसरी प्रकारकी बिजलीसे। जब एक टुकड़ा एक दांतेके सामने आयगा तो समान विद्युत् गोलेपर मिलेगी और हवा असमान विद्युत्से विद्युन्मय होकर टुकड़ेको विद्युत् शून्य कर देगी। इस प्रकार दोनों गोलोंपर दो प्रकारकी बिजलियां उत्पन्न होजायंगी। दोनों गोलोंको उचित दूरीपर लानेसे चिंगारी निकलेगी।

इस कलमें दोनों प्रकारकी बिजलियां एक ही साथ उत्पन्न होती हैं। यह इसका बड़ा गुण है और दूसरे यह कल बड़ी ही सरलताके साथ काम करने लगती है। यही कारण इसके अधिक प्रचलित होनेका है।

चर-गीत ६

साधु-प्रयाणक
अथवा
नारायण-मार्च

नारायण, नारायण, नारायण, नारायण,
नारायण, नारायण, हर, हर, हर
हर शिव, हर शिव, शिव हर, शिव हर
शिव शिव, हर हर, विश्वम्भर

(२)

गंगा, यमुना, रेवा, कृष्णा, विष्णो, विष्णो, विधि, हरि, हर
लक्ष्मी कमला, वाणी विमला, दुर्गा, दुर्गा, दुर्गति-हर
जय गायत्री, जय जय गीता। जय सावित्री, जय जय सीता
धर्म सनातन पर्म पुनीता। मधुर, मनोहर, अनघ, अमर
हर हर शिव शिव, शिव शिव हर हर
हर शिव हर शिव, शिव शिव हर
नारायण.....................

(३)

श्री गोविन्दे, परमानन्दे, करुणाकन्दे, दुःख-निकन्दे
श्रीप्रद, श्रीपद, श्रीधरणीधर, श्रीधर, श्रीनिधि, श्रीपति वन्दे
श्रीपति वन्दे, वन्देसन्ता। वन्दे भव-पारग, भगवन्ता
वेद, पुराण, शास्त्र, सद ग्रन्था। शुभ मति, गति, सत-सङ्ग, सुघर
नारायण, नारायण, नारायण, नारायण
श्री श्री हर हरि, श्री हरि हर
नारायण.....................

(४)

"इह संसारे, बहु-विस्तारे, कृपयापारे, पाहि मुरारे"
जय कंसारे, दशकन्धारे, अघ-संघारे, अग-जग-प्यारे
लोकत्रयपति, त्रिगुणातीता। पुण्य-श्लोक, अशोक, अभीता
ताप-त्रय-हर, नाम-गृहीता। अव अवनीश्वर, अविनश्वर

नारायण, हरि, हरि, नारायण, शिव शिव
शिव शिव नारायण, शिव हर हर
हर शिव शिव हर, शिव हर, हर शिव
शिव, शिव, हरि हरि, हरि शिव हर
नारायण....................

(५)

"माकुरु धन-जन गौरव-गर्वम् हरति निमेषात्कालः सर्वम्"
भज रामम्, जन-कामम् । अभि रामम्, सुख-धामम्
जग-वन्द्यम्, अभिनन्द्यम् । भव-बन्धुम् छवि-सिन्धुम्
नं नं नर हरि, रं रं रुज-अरि, यं यं यम-भय-भंजन-कर
शं शं श्रम-हर, वं वं विभु-वर, हं हं हल-धर, अं अघ-हर
नं नं रं रं यं यं णं णं, शं शं वं वं हं हं हर
नारायण घट घट, नारायण पट पट, नारायण रट रट रे श्रीधर

श्रीपद्मकोट
पौ० १२, १९७७

—श्रीधर पाठक

धूमकेतु अथवा पुच्छलतारे

[ले०—श्री० जयदेव विद्यालङ्कार]

कुछ दिन हुए एक लेखमें हमने उल्का-ओंके विषयमें पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंका मत दर्शाया था। इस लेखमें हम धूमकेतुओंके विषयमें वैसा ही करना चाहते हैं।

यहां हम यह दिखलायेंगे कि भारतवर्षके प्राचीन विद्वानोंने धूमकेतुओंका कितना निरीक्षण और अध्ययन किया था और इस विषयमें उनके क्या सिद्धान्त थे।

नवग्रहोंमें केतु भी एक ग्रह है। यह बड़ा भयंकर ग्रह है। इससे भी अधिक भयानक और उत्पातकारी धूमकेतु माने जाते थे, जैसा कालिदासके इस श्लोकसे पता चलता है:—

उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः।

अर्थात् तारकासुर लोकोंके विनाशके लिये धूमकेतुके सदृश उदित हुआ था।

अब हम प्राचीन ज्योतिषियोंकी सम्मतियों और वर्णनोंका उल्लेख करते हैं।

वराहमिहिर अपने कालके निःसन्देह बड़े प्रामाणिक ज्योतिषी हो गये हैं। उन्होंने अपने कालके पूर्वीय और पश्चिमीय ज्योतिष शास्त्रोंका आलोचनात्मक अध्ययन किया था। इसी कारण हम भी अपने लेखमें उन्हींके सिद्धान्तोंका पहले उल्लेख करेंगे।

केतुके लक्षण

वराहमिहिरका मत था कि गणित विधिसे* केतुओंका उदय और अस्त नहीं जाना जा सकता।

* दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम्।

परकेतु है क्या वस्तु, पहले इस विषयपर ही विचार करना चाहिये।

केतु क्या वस्तु है, पूर्वीय मतसे यह बतलाना बहुत कठिन है। पौराणिक कथाके अनुसार समुद्रमथनके समय अमृतकी उत्पत्ति हुई। उस समय अमृत पान करते हुए देवोंके बीचमें राहु दैत्य भी छिपकर अमृत पीने लगा। इसपर विष्णुने अमृतके गलेसे नीचे उतरनेके पहले ही राहुका गला काट दिया। इसपर शिर तो राहु और शेष कबन्ध या धड़भाग केतु बन गया। यही समय समयपर लोकोंके विनाशके लिये उदय होता है और राहु सूर्य और चान्दका ग्रास करता है। यह पौराणिक कथा है, जो केवल अलङ्कारिक वर्णन होनेसे एक पहेलीके सदृश है। हम इसको बच्चोंके लिए प्ररोचन समझते हैं, क्यों कि राहु कोई दैत्य नहीं है, वह छायामात्र है। भूमिकी आड़में चान्द और चान्दकी आड़में सूर्यका आजाना क्रमशः चान्द और सूर्य का ग्रहण कहाता है। यह तथ्य पुराने ज्योतिषी भी खूब अच्छी तरहसे जानते थे, जैसा वराह० स्वयं लिखते हैं—

"भूछायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः"

अर्थात् चान्दचन्द्र ग्रहणके समय भूमिकी छायामें और सूर्यग्रहणके समय सूर्यके विम्बमें प्रविष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार केतुको राहुके धड़ माननेकी कथा भी असत्य ही है। अब देखना यह है कि केतुका वास्तविक रूप क्या है।

केतु शब्दका अर्थ है ध्वजा, झण्डा। केतुके लिये इस शब्दका प्रयोग केवल रूपसाम्यके कारण होने लगा।

ज्योतिषके ग्रन्थोंमें केतुके पर्याय शिखी शब्दका प्रयोग किया है। शिखी अर्थात् शिखावान् चोटीवाला ग्रह। उस चोटीको ध्वजा मान लेनेसे वह ग्रह केतु कहाता है। दूसरे इस ग्रहको शिखी इस लिए कहा जाता है कि धूमकेतु और अग्नि और शिखी तीनों शब्द पर्याय हैं।

वराह अपनी बृहत्संहितामें धूमकेतुका रूप बतलाते हुये लिखते हैं।

खद्योत, पिशाचालय, मणि और रत्न इन उज्वल वस्तुओंके अतिरिक्त जो पदार्थ अग्नि न होता हुआ भी अग्निके रूपमें दीखे वह केतु* का रूप कहा जाता है।

केतुके भेद

यह केतु ध्वजा, शस्त्र, घर, वृक्ष, घोड़ा, और हाथी आदिके रूपमें प्रगट होता है। इसके तीन प्रकार हैं। १—दिव्य, २—अन्तरिक्षस्थ, ३—भौम। जो अन्तरिक्ष या वायुमण्डलमें दिखाई देते हैं वह अन्तरिक्षस्थ कहाते हैं। जो नक्षत्रोंमें दिखाई देते हैं वह दिव्य कहाते हैं, शेष सब भौम हैं।

इनकी संख्याएं कोई नियत नहीं हैं। किसीके मतसे १०१ हैं, किसीके मतसे १०००। नारदके मतमें एक ही केतु नाना रूपका है।

केतु दोनों प्रकारके माने गये हैं। प्रथम वह जो उदित होकर पृथ्वीपर सुभिक्ष और सुखके कारण होते हैं; दूसरे वह जो उत्पन्न होकर त्रासका कारण होते हैं। दोनों प्रकारोंके केतुओंके हम क्रमशः वर्णितरूपोंकी तालिका बना लेते हैं जिससे आलोचना करनेमें बड़ी सरलता हो जायगी।

(१) केतु छोटे आकारका निर्मल, चिकना, सीधा, मनोहर कान्तिवाला श्वेतवर्णका सुभिक्षकर होता है।†

(२) इससे उलटे रूपका धूमकेतु शुभ नहीं होता—खासकर इन्द्र धनुषके समान टेढ़ा पूंछका

---

* अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत् केतुरूपमेवोक्तम्।
खद्योत पिशाचालय मणिरत्नादीन् परित्यज्य॥ (वराह०सं०)
ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाःस्युरतोऽन्यथा शिखिनः॥

† ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरचिर संस्थितः शुक्लः।
उदितोऽथवाभिवृद्धः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः॥ (वराह०)
उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः॥

(३) और दो या तीन पूंछों वाला भी।*

धूमकेतुकी पूंछके लिए संस्कृतमें पुच्छ शब्द नहीं प्रत्युत् चूड़ा और शिखाशब्द प्रयुक्त होते हैं। परन्तु सुगमताके लिये हम पूंछ और चोटी दोनों शब्दोंका एक ही अर्थमें व्यवहार करेंगे।

धूमकेतुके नाना प्रकार दर्शाते हुए और उनका वर्गीकरण करते हुए वराहमिहिरने विचित्र पचड़ा खोला है। उनमें कोई सूर्यके पुत्र हैं, कोई अग्निके, कोई बुधके, कोई मंगलके, कोई पृथिवीके, कोई शुक्रके, कोई शनिके, कोई बृहस्पतिके, कोई ऋषियोंके, कोई राहुके, कोई वरुणके और कोई यमके पुत्र हैं। वास्तवमें उनका वर्णन पढ़कर हमारी समझमें तो कुछ आता नहीं; तोभी कदाचित् कोई विशेषज्ञ इसका पूरा आशय समझ सकें और बतला सकें तो बड़ी कृपा हो। हम प्रसङ्गवश उनका उल्लेख इस लिये करेंगे कि उनके लक्षणों-की नवीन वैज्ञानिक युगके खोजे हुए धूमकेतुओं-से कुछ तुलना कर सकें।

(४) किरण, नामके केतु—हार अग्नि और सुवर्णके रङ्ग रूपवाले चोटीदार २५ केतु सूर्यके पुत्र हैं। यह किरण कहाते हैं। यह पूर्व और पश्चिम दिशामें दिखाई देते हैं।

(५) पूर्व दक्षिण दिशामें तोता, आग दुपहरिया फूल लाख या लहूके रूप रङ्ग वाले २५ केतु पूर्व दक्षिण दिशामें दिखाई दिया करते हैं। यह अग्नि-के पुत्र हैं।

(६) दक्षिण दिशामें रूखे और काले रंगके टेढ़ी चोटीवाले २५ केतु दीखते हैं। यह यमके पुत्र हैं।

(७) ईशान (उत्तर पूर्व) दिशामें दर्पणके समान गोल आकारवाले बिना चोटीके चमकदार किरणोंसे युक्त जल या तेलके रूप रंगके २२ केतु दिखाई दिया करते हैं। यह भूमिके पुत्र हैं।

* इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥

(८) उत्तरदिशामें चन्द्रकिरण, चान्दी, हिम, कुमुद और कुन्द के फूलोंकी कान्तिवाले ३ केतु दीख पड़ते हैं। यह चन्द्रके पुत्र हैं।

(९) ब्रह्मदण्ड—तीन पूंछवाला, तीन रंगोंसे युक्त एक ही धूमकेतु ब्रह्मदण्ड कहाता है। उसकी कोई नियत दिशा नहीं वह ब्रह्माका पुत्र है।

यह एक सौ एक (१०१) धूमकेतुओं की संख्या पूरी हुई। अब इनके अतिरिक्त भी जो धूमकेतु माने जाते हैं उनकी संख्या एक कम नौ सौ है

(१०) उत्तर और ईशानदिशामें बड़े तारेके आकार-वाले चिकने रूप रंगके ८४ केतु शुक्रके पुत्र हैं।

(११) चिकने रूप रंगके चमकदार दो पूंछवाले ६० केतु शनिश्चरके पुत्र हैं। यह सब दिशाओंमें दीख जाते हैं। इनका विशेष नाम कनक है।

(१२) दक्षिण दिशामें श्वेतवर्णके तारोंके सदृश बिना चोटीके चिकनेरूप रंगके ६५ केतु गुरु बृहस्पतिके पुत्र हैं। इनका विशेष नाम विकच है।

(१३) अस्पष्ट साफ तौरपर न दीखनेवाले, छोटे छोटे कुछ लम्बे, श्वेत रङ्गके प्रायः सभी दिशा-ओंमें ५१ केतु बुधके पुत्र हैं, जिनका विशेष नाम तस्कर है।

(१४) लाल रुधिरके रङ्गवाले तीन चोटियोंसे युक्त उत्तर दिशामें ६० केतु दीखते हैं। यह मङ्गलके पुत्र हैं। उनका विशेष नाम कौंकुम है।

(१५) ३३ केतु राहुके पुत्र हैं जिनका नाम तामसकीलक है; जो प्रायः सूर्य और चान्दमें दिखाई देते हैं।

(१६) लपटोंसे लिपटे १२० केतु अग्नि विश्वरूप नामके कहे जाते हैं।

(१७) लाल काले रङ्गके बिना तारेके, चंवरके आकारके अपनी फैलती किरणोंसे युक्त ७७ पवनके पुत्र कहाते हैं।

(१८) तारोंके पुञ्जोंके सदृश चौकोर आकार वाले ८ केतु प्रजापतिके पुत्र कहाते हैं। उनका विशेष नाम गणक है।

(१९) चन्द्रके सदृश कान्तिवाले गुच्छोंके आकारके ३२ केतु वरुणके पुत्र हैं। इनका विशेष नाम कङ्क है।

(२०) धड़ (कवन्ध) के आकारवाले नाना रूपोंके तारोंसे युक्त ९६ केतु कालके पुत्र हैं। इनका विशेष नाम कवन्ध है।

(२१) बहुत बड़े बड़े तारोंसे युक्त ८ बड़े बड़े केतु हैं, जो विदिशाओंके पुत्र हैं।

इस प्रकार यह मिलकर ८९९ हो जाते हैं। इनके भी अतिरिक्त कुछ और केतु हैं जो क्रमसे इस प्रकार हैं।

(२२) वसाकेतु—उत्तरकी ओरको लम्बा होनेवाला चिकने रूप रंगका पश्चिममें उदय होता है।

(२३) इसी प्रकारका केतु पूर्वमें उदय होनेवाला अस्थि केतु होता है। इसका रूपरंग कुछ रुखाई लिये होता है। इसका नाम शस्त्र है।

(२४) अमावास्याके दिन धूम और किरणों सहित चोटीवाला जो केतु दीखता है वह कपालकेतु कहाता है। वह प्राची दिशासे उदय होकर शीघ्र ही आधे आकाश तक गति करता है।

(२५) रौद्रकेतु—यह केतु पूर्व दक्षिण मार्गमें शूलके अग्रभागके समान लाल काला मिला हुआ ताम्बेकेसे रंगवाला आकाशके तीन भाग तक गमन करता है।

(२६) चलकेतु—पश्चिम दिशामें चलकेतु एक अंगुलभर उठी हुई चोटीको दक्षिणकी ओर किये हुए उत्तरकी ओर गतिकरता है और ज्यों ज्यों उत्तरकी ओर बढ़ता है त्यों त्यों लम्बा होता जाता है। और बढ़कर सप्तर्षि या अभिजित् नक्षत्रतक बढ़ आता है।

(२७) श्वेतकेतु और क केतु—पूर्व अर्धरात्रिमें दक्षिणकी तरफ मुख किये हुए दोनों श्वेत केतु और ककेतु गाड़ीके जूएके समान आकार वाले दोनों इकट्ठे ७ दिन तक दीखा करते हैं। इनमें एक पूर्वमें और एक पश्चिममें होता है। रंगरूप दोनोंका चिकना होता है। यदि दोनोंमेंसे ककेतु अधिक दिन ठहर जाय तो देशमें दशवर्ष तक मारकाट होती रहती है। श्वेतका आकार जटाके सदृश रूखा लाल काली आभासे युक्त कभी कभी आकाशके तीन भाग तक बढ़ आता है और फिर वायीं ओरको घूम जाता है।

(२८) रश्मिकेतु—हलके हलके धूएँदार चोटी वाला कृत्तिका (Pleadies) नक्षत्रोंमें यह केतु दिखाई देता है।

(२९) ध्रुवकेतु—इसकेतुकी गति परिमाण और आकृति कुछ भी नियत नहीं। यह भौम अन्तरिक्ष और दिव्य तीनों प्रकारका होता है। यह सेनाओं घरों वृक्षों पर्वतों और घरके कूड़े कर्कटमें भी प्रकट होता है।

(३०) कुमुदकेतु—इसकी कान्ति कुमुदपुष्पके समान श्वेत होती है और पश्चिम दिशामें उत्पन्न होता है और चोटी पूर्वकी ओर होती है।

(३१) मणिकेतु—इसके सिर भागमें छोटासा तारा होता है। पूंछ सरल श्वेत जैसे थनमेंसे दूधकी धार निकलती हो, वैसी दीखती है। यह एक ही बार चमककर एक पहर भर तक दीखता है।

(३२) जलकेतु—चिकने रूपरंगका, पश्चिमकी ओर पूंछ ऊंची किये उदय होता है।

(३३) भवकेतु—छोटेसे तारेसे युक्त बन्दरकी पूंछके सदृश दक्षिण दिशाको घूमती हुई चोटीवाला होता है।

(३४) पद्मकेतु—यह मृणालके सदृश गौर रंगका एक रातभर दिखाई देता है। इसके उदयसे सुभिक्ष होता है।

(३५) आवर्त्तकेतु—यह मध्यरात्रिमें दक्षिण दिशाको चोटी किये हुए कुछ क्षणके लिये प्रकट होता है। इसके दर्शन भी सुभिक्षकर होते हैं। इसकी लाल कान्ति होती है।

(३६) संवर्त्तकेतु—सायंकालके समय, धूम और ताम्बेके सदृश चोटीवाला, आकाशके ३ भागों तक फैला हुआ त्रिशूलके अगले भागके समान होता है।

वराह०की बृहत्संहिताके आधारपर ३३ प्रकारके भिन्न भिन्न केतुओंका वर्णन हमने पाठकोंके भेंट किया। अन्य इससे भी प्राचीन ज्योतिषियोंने और भी विशेष आश्चर्य कर घटनाओंका उल्लेख किया है। जैसे धूमकेतुओंके उदय होनेके पूर्वके लक्षण भृगुसंहिताकार लिखते हैं—

"केतुओंके उदय होनेके पूर्व बहुत गर्मी या बहुत सरदी, वायु मण्डलमें धड़ाकेकी आवाज़ें, आकाशसे धूली बरसना, कुहरा छा जाना, भूमिका कांपना, दिशाओंका जलना सा प्रतीत होना, और आकाशसे उल्का पिण्डोंका गिरना यह घटनाएं प्रायः दीखती हैं* ।"

परन्त यह चिन्ह अशुभ धूमकेतुओंके हैं। शुभ केतुओंके पूर्व अनेक मनोहर वायु बहती हैं। सब दिशाएं स्वच्छ रहती हैं। मृग पक्षी शान्त रहते हैं ग्रहोंकी कान्ति निर्मल दीखती है।

पाठकोंको यह अवश्य सन्देह होगा कि उक्त लेखमें वराहके उद्धरणमें कितने केतु देवताओंके पुत्र हैं उनका क्या तात्पर्य है। हम भी स्पष्ट रूपमें मानते हैं कि उनका तात्पर्य हमें स्वतः नहीं मालूम हुआ। परन्तु तो भी भृगुसंहिताने इसपर कुछ विशेष प्रकाश डाला है। भृगुने वर्षके भिन्न भिन्न मासोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके केतुओंका आगमन और उनके लक्षण बतलाये हैं। जैसे चैत्र वैशाखमें कुबेरके पुत्र आते हैं। उस समय आकाशमें धूम सा फैला हुआ दिखाई देता है। प्रजाएं बड़ी प्रसन्न होती हैं।†

जेठ और अषाढ़में वायुपुत्रोंका उदय होता है। बड़ी बड़ी आंधियां चलती हैं। बड़े वृक्ष टूटा करते हैं, बड़े मकान अटारियां घर टूट फूट जाते हैं। झील तालाब सूख जाते हैं।*

सावन भादोंमें वरुण पुत्र आते हैं। वह अपने साथ मेघ लाते हैं। सब पृथ्वीपर पानी बरसाते हैं; नदियां जलकी बाढ़से अपना मार्ग छोड़कर भी बहने लगती हैं। धान्य खूब होता है। अकाल नहीं पड़ता।†

आश्विन और कार्तिकमें सूर्य पुत्र आते हैं। चन्द्र अन्नोंको जला देता है। सूर्य भी गरमी करता है। गौएं मरती हैं। विशेषतया मांस भोजी पशु बहुत मरते हैं। मांसभोजी पशुओंमें विषकी प्रबलता होती है‡।

मार्ग शीर्ष और पौषमें अग्निके पुत्र आते हैं। उस समय जगह जगह आग लगती है; जंगल और खेतोंमें आग लग जाती है। लोग भय खाकर इधर उधर भागते हैं। किसी देशमें अमन चैन होता है और कहीं त्रास होता है।

माघ और फाल्गुनमें यमके पुत्र उदय होते हैं। दुर्भिक्ष बहुत पड़ते हैं। प्राणियोंमें हाहाकार होता है। लोगोंमें हैज़ा, अतीसार आंखोंका दुखना, आदि कष्ट होते हैं ×।

---

* उष्णं वा यदि वा शीतं निर्घाताः पांशुवृष्टयः।
नीहारोभूमिकम्पश्च दिशादाहस्तथैव च॥
उल्काया दर्शनेकेतो रूपं विवादनागतम्॥ (भृगु०)

† हविर्धूमाकुला तत्र दृश्यते च वसुन्धरा।

* वान्तिचैव महावाता महायुद्धं महाभयम्।
भज्यन्ते च महावृक्षा स्तोरणाट्टालकानि च॥
गृहाणि रमणीयानि क्षयं यान्ति जलानि च।
उदये वायुपुत्राणामेतद्भवति लक्षणम्॥

† आवाहयन्तितेमेघान् पूर्णांकुर्याद्वसुन्धराम्।
उन्मार्गाः सरितो यान्ति जलवेग समाहताः॥
धान्यं समर्घतां याति, ईतयो न भवन्ति हि।
उदयेवरुणानान्तु एतद्भवति लक्षणम्॥

‡ ततोदहतिशीतांशुः सर्वान्नानि दिवाकरः।
म्रियन्ते च तदागावः श्वापदाश्चविशेषतः॥
विषं च प्रबलं तत्र सर्वदंष्ट्रिषुदारुणम्।
उदये सूर्य पुत्राणामेतद् भवति लक्षणम्॥

× अग्निर्दहतिग्रामाणि इरितश्चवनानिच।
विद्रवन्तिततोदेशाः समन्ताद्भयपीड़िताः॥
कस्मिंश्चिज्जायते क्षेमं कस्मिंश्चिज्जायतेभयम्।
उदये वन्हिपुत्राणामेतद्भवति लक्षणम्॥

इस भृगुसंहिताके उद्धरणसे यह एक बात विशेष। टपकती है कि इन केतुओंका दर्शन नहीं होता, प्रत्युत् इन चिन्होंसे इनके उदयका अनुमान कर लिया जाता है।

परन्तु देवलने ऋतुओंका निर्देशन करके नक्षत्रोंका निर्देश किया है और उनके भी उपरोक्त प्रकार से संख्याएं गिनाई हैं और उनके लक्षण दिखाये हैं। परन्तु वहां उन्होंने कई विशेष केतुओंका दीखना स्वीकार किया है और उनके फल भी बड़े विषम हैं। हम विस्तार भयसे नहीं लिखते हैं।

गर्गाचार्य मङ्गल पुत्रोंके विषयमें विशेष लिखते हैं कि तीन तारे उनके शिरोभागमें होते हैं। और तीन तीन पूंछें भी होती हैं। *

ब्रह्माके पुत्रोंके विषयमें गर्ग एक विशेषता लिखते हैं। कि वह चौकोर, या तिकोने होते हैं और कोई पगड़ी बांधे होते हैं। †

कदाचित् इसका तात्पर्य छल्लेदार शनिकी तरह वलयवेष्टित होनेका हो।

अथर्व मुनिके वर्णनसे हमें एक और बात प्रतीत होती है। इन्होंने उक्त नाना केतुओंके साथ और भी कतिपय विशेष केतुओंका वर्णन किया है और उनके विशेष स्थान दर्शाये हैं। उन सबको ग्रहोंके रूपमें वर्णन किया है। विस्तार भयसे हम इनका उल्लेख नहीं करते।

इन सब केतुओंका क्रान्तिकाल प्रायः अनियमित होता है। यह पाठक पहले पढ़ आये हैं परन्तु कतिपय ज्योतिषियोंने कुछ एक केतुओंके उदयका नियमकाल भी लिखा है। जैसे पराशर और गर्गाचार्यने लिखा है कि चलकेतु १५०० वर्षमें लौटता है। ‡

कपालकेतुका आगमनकाल पराशरके मतसे २५ सौ वर्ष है।

कलिकेतुके विषयमें गर्ग कहते हैं कि यह केतु ३०० वर्ष और ९ मासमें लौटता है। पराशर भी यही कहते हैं। ×

पराशरके मतसे ऊर्मिकेतु १३ वर्षमें लौटता है। गर्गके मतसे श्वेतकेतु ११० वर्षमें लौटता है। पद्मकेतु ७ वर्षमें लौटता है। रश्मिकेतु १५०० वर्षमें। रश्मिकेतु सौ वर्षमें। अग्निकेतु तीन वर्ष ६ मासमें। इत्यादि।

प्रतीत होता है इन नाना केतुओंकी क्रान्तिके काल तकका निश्चय प्राचीन विद्वानोंने कर लिया था। और वह इन धूमकेतुओंको भी वैसा ही ग्रह मानते थे जैसा शनि आदि ग्रहोंको। क्यों कि गर्ग लिखते हैं कि जैसे आकाशमें नक्षत्र चक्र घूमता है उसी प्रकार यह केतुचक्र भी आकाशमें चक्कर लगाता है।

कोई केतु तो हजारों वर्षोंके बाद भी लौटते हैं जैसे धूमकेतु और संवर्त्त केतु दोनों गर्गके मतसे हज़ार वर्षके बाद लौटते हैं। परन्तु पराशरके मतसे संवर्त्त केतु १०८ वर्षमें लौटता है।

यह सब कुछ होने पर भी यह सन्देह बना रहता है कि पौर्वात्य विद्वानोंने केतु किस वस्तुको माना है। इसका कुछ स्पष्टीकरण वृद्ध गर्गके इस वचनसे होता है।

"अन्तरिक्षमें जब धूम या ज्वाला प्रगट होती है। वह अन्तरिक्ष केतु है। यदि तारोंमें दिखाई दे तो दिव्य केतु कहाता है। पर्वतों वृक्षों घरों नगरोंमें अकस्मात् धूप और ज्वाला दीखे तो वह भौम केतु समझना चाहिये।"

इत्यादि सभी वर्णनोंसे हम निम्न लिखित परिणामोंपर पहुंचते हैं कि पौर्वात्य विद्वानोंके मतसे निम्न लिखित वस्तुएं केतुके नामसे कही गयी हैं।

---

* त्रिशिखाश्च त्रितारारश्च रक्तालोहितरश्मयः।

† चतुरस्त्राऽस्त्र्यस्त्रावा जोष्णीषाःरूप्यरश्मयः।

‡ पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्योदितःपैतामहश्चलकेतुः। पराशरः।

× कलिकेतुःत्रीणि वर्षशतानि नवमासान् प्रोष्यउदयते। परा०।

१. बन, नगर, पर्वत वृक्ष मकानादिमें कहींभी आग या धुआँ अकस्मात् सुलग पड़ना है तो वही भौमकेतु है, जिसमें मार्श गैसका सहसा भड़कना, गन्दे स्थानोंकी हवाका जल उठना, भड़ाका हो जाना आदि सम्मिलित हैं।

२. उल्कापात होते समय अन्तरिक्षमें चिरकाल तक धूएंकीसी चमकती वाष्पका दीखना। या समय समय पर बहुत छोटे छोटे बादलके टुकड़ोंका दीखना अन्तरिक्ष केतुका दीखना है।

३. नोवा या संधु सुप्त तारोंका स्थान स्थानपर प्रगट होना, "बड़े ग्रहोंके अतिरिक्त लघुग्रह (minor planets) का दीखना आकाशमें नीहारिकाओंका आना, या उल्का पुंजोंका मार्गमें क्रान्ति करते हुए प्रकट होना धूमकेतुओं (comets) का दीखना यह दिव्य केतुमें सम्मिलित है।

(४) सूर्यमें समय समय पर गहरे धब्बे दीखना और नाना आकारके धब्बोंका प्रकट होना राहुके पुत्र तामस कीलकोंका उदय कहा गया है।

इसके अतिरिक्त धूमकेतुओंकी निम्न लिखित विशेषताएं देखनेमें आती हैं।

(१) धूममयपुच्छ; (२) कईपूंछें होना; (३) शिरोभागमें कई तारे होना; (४) धूमकेतुके प्रकट होनेके समय उल्काओंका गिरना, अर्थात् उल्काओंका धूमकेतुओंसे विशेष सम्बन्ध होना; (५) धूमकेतुओंकी पूंछोंमें चमकदार नाना टुकड़ोंका दीखना जिसको स्फुलिङ्ग कहागया है; (६) पूंछोंका सीधा और वक्र होना; (७) पहले धूमकेतुका छोटा दीखना और फिर बड़ा दीखना, फैलजाना फिर लुप्त हो जाना; (८) आकाशके विशेष देशमें विशेष दिशामें गति करते हुए प्रकट होना; (९) भिन्न भिन्न केतुओंका विशेष नियत कालके बाद लौट आना; (१०) प्रकट होकर धूमकेतुओंका पृथ्वीके वायुमण्डलमें विक्षोभ परिवर्तनका कारण बनना (११) विषैली गैसोंका बना होनेके कारण गुज़रते हुये पृथ्वीके वायुमण्डलमें अपने तात्विक प्रभावोंको छोड़ जाना; इत्यादि बातोंका निरीक्षण हमारे प्राचीन आचार्योंने किया था। यह सब बातें ऊपर लिखे वर्णनमें स्पष्ट झलकती दीखती हैं।

हम विस्तार भयसे और अधिक न लिखकर इतना अवश्य कहेंगे कि केतुओंको नाना ग्रहोंका पुत्रादि कहनेका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि वह उन ग्रहोंके क्रान्ति मार्गोंमें प्रकट होते हैं और उनके रूप रंग उनके सदृश हैं। पुत्रता केवल साधारण सम्बन्धको जतलाती है। दूसरे बृहस्पति और मंगलके बीचमें अनन्त लघुग्रह गति कर रहे हैं। कदाचित् उनके प्रकट होनेको देख कर उनकी भी केतुओंमें गणना की गई है। इस विषयमें कुछ निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। बहुतसे केतु प्रलयके समय प्रकट होते हैं अतः उनकी वास्तविकता नहीं परखी जा सकती।

यूरोपके ज्योतिषके इतिहासमें नवीं सदीसे पहलेका कोई धूमकेतु उल्लिखित नहीं। परन्तु हमारे (प्रीहिस्टोरिकएज) इतिहासकी सीमासे भी परेके ऋषिमुनियोंके कालमें धूमकेतुओंकी चर्चा मिलती है। महाभारतके युद्धके कालमें भी धूमकेतुका उदय हुआ था। भीष्मपर्वमें* लिखा है कि—

"पुष्य नक्षत्रमें बड़ा क्रूर धूमकेतु उदय होकर दोनों सेनाओंके विनाशकी सूचना देता हुआ चलकर ज्येष्ठाके नक्षत्रमें ठहर गया है। इत्यादि।"

इस सबके होते हुये भी प्राचीन किसी पुस्तकमें धूमकेतुओंके घटक मूलतत्वोंका अनुसन्धान नहीं मिलता। निरीक्षणसे पूर्व रूप और सहकारी घटनाएं उनका दृश्यमाण स्वरूप और गतिका ज्ञान आदि तो बहुत कुछ निःसन्देह देखा बल्कि फलादेशमें भी कोई कमी नहीं की, अब अगले लेखमें विषयकी स्पष्टताके लिए पाश्चात्योंके किये अनुशीलनका दिग्दर्शन कराया जायगा।

---

* धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यया कुम्भतारकम्।
सेनयोरशिवंघोरं ज्येष्ठाया कुम्भतिष्ठति॥

विचार शक्तिका महत्व ।

"यत्राकृतिः तत्र गुणाः वसन्ति"

विचार शक्तिका महत्व भारतीय विद्वान अनन्त कालसे समझते आये हैं और उसका जितना सदुपयोग चरित्र संगठन और अन्य सभ्यता सम्बन्धी कामोंमें उन्होंने किया है उतना शायद किसी अन्य जातिने नहीं किया। "भृङ्गी भयते भ्रमर होत है कीट महा जड़। कृष्ण प्रेमसे कृष्ण होय तो कह अचरज बड़"—नन्ददासजीने इस वाक्यमें एक बड़े भारी सिद्धान्तका निष्कर्ष बड़ी उत्तमतासे दिखला दिया है और वह सिद्धान्त है विचार शक्तिकी निर्माण और परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य। विचार शक्तिके बलसे मनुष्य चाहे तो देवता बन सकता है—नहीं नहीं साक्षात् परब्रह्म तक पहुंच सकता है—और चाहे तो भयानक राक्षसका रूप धारण कर सकता है!

मनुष्यके विचारोंका सूचक हाथ और पदर्शक चेहरा है। मुंहपर मनुष्यके समस्त भावोंका अक्स पड़ता रहता है। मनुष्य सुखी है या दुखी, स्वभाव अच्छा है या बुरा, प्रसन्न है अथवा चिन्ता ग्रस्त, साहसी है अथवा भीरु, इन सब बातोंका पता उसका चेहरा देखते ही चल जाता है। श्री हर्षने भी इस सिद्धान्तको अपने काव्य नैषध चरित्रमें इङ्गित किया है और इसका समर्थन हम सब नित्यके अनुभवसे भी कर सकते हैं।

जहां कोई शुद्ध पवित्र आध्यात्मिक विचार हमारे मनमें आया कि सिकुड़ी हुई भौंहें फैलकर मनोहर रूप धारण कर लेती हैं ललाट पर पवित्रता-की आभा दिखलाई देने लगती है, आंखोंमें पवित्र प्रकाश प्रदीप्त हो उठता है और शरीर हल्का और स्वस्थ प्रतीत होने लगता है। यह अवस्था विचारोंके अन्त होनेके कुछ देर पीछे तक रहती है। यदि ऐसे पवित्र विचार दिनके अधिकांश समयमें रहाकरें तो ऊपर जितनी बातें दी हैं, चिरस्थायी हो जायं और हमारे बाह्यरूपमें अद्भुत परिवर्तन पैदा करदें।

साधारणतया मनुष्यका स्वभाव कुछ होता है और वह दूसरोंको किसी दूसरे ही रंगमें दिखलाई देनेका प्रयत्न करता है। अतएव साधारणतः चेहरेपर सच्चे भावोंकी झलक जब तब ही, भावोंके प्रकोपके समयको छोड़कर, दिखाई पड़ती है। अधिकांश मनुष्योंके चेहरे छल कपटके रंगोंसे रंगे रहते हैं।

उपरोक्त बातोंसे स्पष्ट हो गया होगा कि मनुष्यका सच्चा रूप स्वभाव है। स्वभावके अच्छे होने और विचारोंके पवित्र और प्रौढ़ होनेसे बाह्य आकृतिमें स्वभावतः अद्भुत परिवर्तन आजाता है, जिसको न केवल मनुष्य ही, वरन् पशुपक्षी तक चीन्ह सकते हैं। ऋषियोंके पास वन्य मृगों, चिड़ियोंका निर्भय होकर चला आना कथा कारोंकी कल्पनामात्र नहीं है। अब भी संसारमें ऐसे मनुष्य हैं जो कैलाश वासी महाप्रभू भूतनाथकी नाई सर्पों और बिच्छुओंके आभूषण धारण कर सकते हैं और उनके मधुर प्रभावसे शेर और बकरी एक घाट पानी पी सकते हैं।

विज्ञान मानता है कि पहले पहल जीवनकी उत्पत्ति समुद्रमें हुई। उसका विकाश अनेक अद्भुत और आश्चर्य जनक राहोंसे हुआ, जिसमें जलवायु, भोजन, अन्धड़, शीत, उष्ण और सबसे अधिक विचार शक्तिने सहायता दी। बाहरी कारणोंके संघातसे मस्तिष्कमें विचार उत्पन्न होते थे और यह विचार विकाश चक्रके लिए नये नये मार्ग अङ्कित कर देते थे। विचारशक्ति ही विकाशकी कुंजी है। यही जादूकी लकड़ी है जिसके प्रभावसे प्रकृतिकी अनन्त विचित्रताएं और विभिन्नताएं दिखलाई देती हैं। इसीने प्रकृतिको अनेक प्रकारके बाने पहनाये और अद्भुत अद्भुत नाच नचाये। निर्जीव पदार्थोंसे सजीव एककोषीय अणुवीक्षणीय जीव पैदा करनेवाली और उस अत्यंत
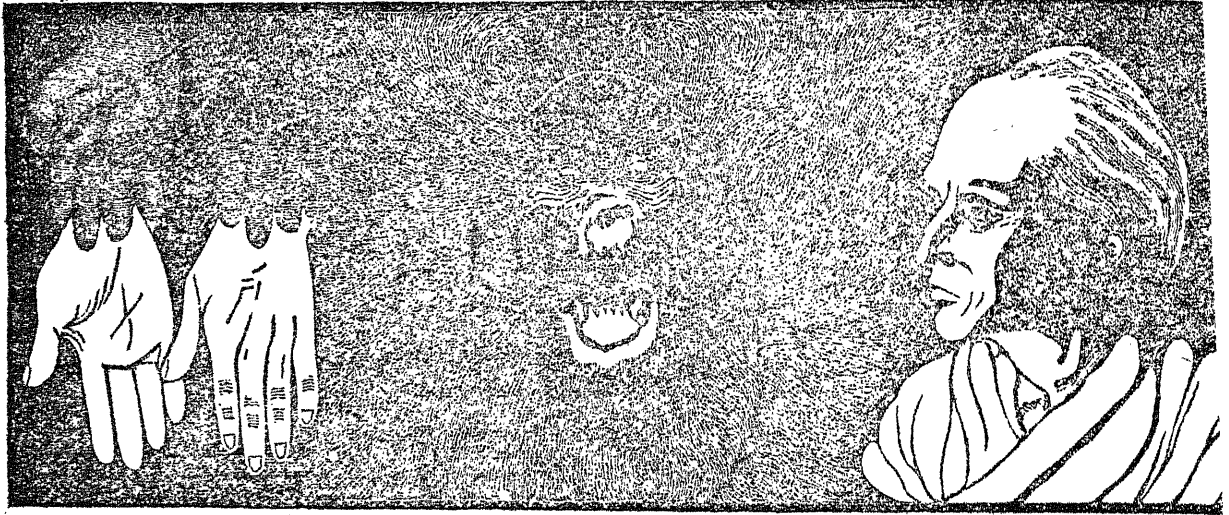
चित्र ३४—दो भाइयोंमें विचार शक्तिने कितना परिवर्तन कर दिया है !

छोटे जीवसे महाकाय व्हेल या भयङ्कर उत्पाती बन्दर, मनुष्य, को उपजानेवाली यही शक्ति है। सृष्टिकी अनन्त शृङ्खलामें मनुष्यसे पहलेकी एक कड़ीका तो पता अभी तक विज्ञानको नहीं चला है; परन्तु उसके पहलेकी कड़ी बनमानुस रहा होगा, यह सब मानते हैं।

अफरीकाके मिकिनो ज्वालामुखीकी तराईमें एक जंगल है जिसमें यह भयङ्कर बनमानुस (पुच्छ हीन बन्दर) पाया जाता है। इसका वज़न लगभग ५॥ मन, ऊंचाई ८ फुट और छातीकी नाप ६१ इंच होती है। इसमें इतनी प्रबल शक्ति होती है कि मनुष्योंको तो कोमल कमलकी पंखड़ियोंकी तरह मसलकर फेंक सकता है। साथके चित्रमें मनुष्य और गौरीलाके हाथों और चेहरोंकी तुलना की गई है। कालान्तरमें इनमें इतना अन्तर क्यों पड़गया? मनुष्यका ललाट इतना अधिक प्रशस्त और अंगूठा इतना सुदीर्घ और सुडौल कैसे बन गया? इसका शिल्पकार है विचारशक्ति। विचारकी कुशल छेनीसे ही बन्दरका महापन मनुष्यकी प्रबलता पूर्ण कोमलतामें परिणत हो गया है।

मनुष्य और गौरीलाकी शरीर रचना, अंग प्रत्यंग, एक समान है; मस्तिष्कके दो विभाग भी एकसे हैं, जो शरीरके विपरीत भागोंका शासन करते हैं हड्डियां उतनी ही और प्रायः वैसी ही बनावटकी हैं। आजसे कई लाख वर्ष पहले मनुष्य और गौरीलाकी मानसिक परिस्थिति एक समान थी; केवल अन्तर था तो शारीरिक बलमें। गौरीला शेरसे लड़सकता था; हाथों और दांतोंसे शत्रुओंका ध्वंस कर सकता था। निदान वह अपने पशुबल और भीषणताके भरोसे ही जीवनयात्रा कर सकता था। उसे सोचने विचारनेकी आवश्यकता न थी।

उधर मनुष्य था निर्बल और निस्सहाय। उसे अनेक पशुओंसे भय लगता था, उसे कोई भी पशु मार कर हड़प कर सकता था। पर निर्बलके सहायक परमात्माने उसे विचार शक्ति रूपी शस्त्र ऐसा शक्तिशाली दिया था कि उसके बड़े कामका निकला। पहले तो वह कन्दराओंमें छिपकर, वृक्षपर चढ़कर प्राण बचा लेता था, पर बादमें विचार शक्तिका प्रयोग करने लगा। इसीमें उसका कल्याण भी था।

गौरीला और मनुष्य दूरके रिश्तेसे भाई लगते हैं। उनकी शरीर रचनाके अतिरिक्त स्वभावमें भी समानता है। मनुष्यमें बन्दरत्व और बन्दरमें मनुष्यत्वकी झलक दिखायी पड़ती है। गौरीलाके चेहरेमें पशुबल, घृणा, भयङ्करता प्रतिभासित होती है; मनुष्यका मुख उन शान्तिमय विचारों द्वारा गढ़ा हुआ है जो घृणाकी जगह प्रेम, दुःख देनेकी जगह समझाने और लड़ने झगड़नेकी जगह तर्क और न्यायकी ओर मनुष्यको प्रेरित करते हैं। जहां मनुष्य मनुष्यत्वसे फिसलता है कि छिपा हुआ बन्दरपन प्रकट हो जाता है। रोते चीखते क्रोधित बालककी विकृत मुखाकृतिका साधारण अवस्थाकी अथवा बन्दरकी आकृतिसे तुलना करनेसे यह कथन स्पष्ट हो जायगा। यही बन्दरकी झलक प्रौढ़ मनुष्योंके चेहरेपर आपसमें, लड़नेमें परस्पर धोखा देनेकी चेष्टा करनेमें, तुच्छ बातोंपर आपेसे बाहर हो जानेमें दिखलाई देती है। सांसारिक व्यसनोंमें फंसे मनुष्योंके चेहरोंके उतार चढ़ावमें, जल्दी जल्दी होने वाले परिवर्तनोंमें बन्दरत्व अनेकबार व्यक्त होता रहता है।

दिये हुए चित्रसे गम्भीर विचार-सूचक-मनुष्य-मुखाकृति और क्रोध-घृणा-संयुत गौरीलाके चेहरेमें क्या अन्तर है यह स्पष्ट हो जायगा। गौरीला और मनुष्य दोनों एक ही समस्या हल करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। गौरीला सोचता है कि मैं किस तरह ध्वंस कर सकता हूं। जो मुझे रुचिकर नहीं है कैसे हटा या मिटा सकता हूं, अपनी इच्छानुकूल काम पशुबलके प्रयोगसे कैसे कर सकता हूं। वह हाथ उठाकर चीरने फाड़ने, मारने काटनेको उद्यत है, इसके सिवा उसके लिये कोई अन्यमार्ग नहीं है।

मनुष्यका परन्तु कुछ और ही ढंग है। वह सोचता है कि पशुबल और बलात्कार पर न्याय और बुद्धिसे कैसे विजय पा सकता हूं। बिना पशु-बलका प्रयोग किये मस्तिष्ककी विचार शक्तिके सहारे मनुष्य व्रज विहारी बनवारीकी तरह काली नागके समान हजारों फनोंसे फुफकारते हुए जल प्रपातोंको नाथ लेता है, उनसे वह काम निकालता है जो करोड़ गौरीलोंकी शक्तिके बाहर हैं। इस मस्तिष्कके बलसे विद्युत् देवीको सिद्ध कर लेता है, जिससे बातकी बातमें बड़े बड़े आश्चर्य जनक कामकर डालता है।

मनुष्यकी विचारशक्ति शान्तिमय कारखानेमें कहीं बन्दूक बनाती है और कहीं गोली। अफरीकाके जंगलोंमें मनुष्य इन दोनों वस्तुओंको लिये बेधड़क चला जाता है, सामने झपट कर हमला करनेवाले गौरीलाकी परवाह न करके छाती तान कर खड़ा हो जाता है। गौरीला पास आजाता है तो मनुष्य अपनी पतली रोमहीन उंगलीसे घोड़ा गिरा देता है, बातकी बातमें गौरीलाकी असीम शक्ति और अद्वितीय भयङ्करता ठंडी हो जाती है। यह चमत्कार केवल शान्तिमय विचारका है।

विचारशक्तिने बनमानुससे मनुष्यको इस उच्च स्थान तक पहुंचाया है, इसीका सदुपयोग करके हमें देवता बनने और फिरसे सत्युग ले आनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसका मार्ग हमारे पूर्वजोंने योग शास्त्रके रूपमें दिखला दिया है। उन्हींके पुण्य प्रतापसे आज भी हिन्दू जाति जीती जागती खड़ी है। पर अब लक्षण ऐसे दिखलाई देते हैं कि हम अपने अमूल्य धनका तिरस्कार कर औरोंकी नकल पर उतारू हुए हैं। यदि सावधान हो न चेते तो जो परिणाम होगा वह सबको मालूम ही है। *

—गंगाप्रसाद।

---

* श्रीयुत मेके (McCay) ने यह चित्र बनाया है और उसपर सायंस सिफटिंग्स ने एक नोट दिया है।

ब्लेनको

हमारे देशमें सभी आवश्यक पदार्थ मिलते हैं। हमें अपनी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए परमुखापेक्षी होनेकी आवश्यकता नहीं। किन्तु बात यह है कि हम सभी पदार्थोंसे परिचित रहते हुए भी उनकी उपयोगितासे अनभिज्ञ हैं। देशी भाषामें ऐसी कोई पुस्तक नहीं जिसे पढ़कर हम लोग अपनी यहांकी वस्तुओंको काममें लाना सीखें। इस लिये अंगरेजी पुस्तकोंका सहारा लेना पड़ता है, किन्तु उनमें साधारण चीजोंके नाम भी विचित्र रूपमें दीखते हैं। कोषकी सहायता लेनेपर भी कोई विशेष फल नहीं निकलता। इसका नतीजा यह होता है कि हम भारतवासी हाथपर हाथ दिये बैठे रह जाते हैं और विदेश वाले हमारे यहांसे कच्चा माल मंगाकर और नयी नयी उपयोगी चीजें बनाकर लखपती करोड़पती बन जाते हैं।

लड़ाईके पहले जर्मनीके बहुतसे जहाज मद्रास के नजदीक मालाबार कोस्टसे कुछ दूर समुद्रमें आकर डेरा डाल देते थे। जहाजमें जो बालू रहता था उसे मल्लाह निकाल कर समुद्रमें फेंक देते थे और किनारेपरकी बालू भर लेते थे। उस समय लोगोंका विश्वास था कि मल्लाह जहाजको समुद्र में सीधा रखनेके लिये बालू भर कर उसे वजनी बना रहे हैं, किन्तु लड़ाई छिड़ जानेके बाद लोगोंको पता लगा कि मालाबार कोस्टकी बालूसे जर्मनीवाले टंगस्टन धातु निकालते थे। पाठकोंको मालूम होगा कि यह धातु यदि लोहेके साथ मिला दी जाय तो लोहा बड़ा मज़बूत हो जाता है। यह धातुमिश्रण (Alloy) बड़ी बड़ी मेशीन-गन जहाज आदि बनानेके काममें आता है। यहांकी मिट्टी और बालूसे भी विदेशवाले लाखों रुपये पैदा कर रहे हैं। नीचे मैं एक प्रकारकी मिट्टीके विषयमें कुछ कहूंगा जिसे व्यवहारमें लाकर लोग मालामाल हो सकते हैं।

गत जून मासके "विज्ञान" में जूतेकी रोशनाई की चर्चा करते समय हमने कैनवेस (canvas shoe) के रंगनेका कुछ भी जिक्र नहीं किया था। इसी लिए आज फिर "जूतेकी रोशनाई" पर लिखना आवश्यक समझा।

कैनवेस या सफेद क्रोम चमड़ेके जूते, बैग आदिको उजला रंगनेके लिए एक प्रकारकी उजली बट्टी बाज़ारमें बिकती है जिसे "ब्लेनको" कहते हैं। नाम अंगरेजी होनेके कारण हमें यह एक विदेशी वस्तु जान पड़ती है, किन्तु इसके बनानेके लिए जो वस्तु काममें लाई जाती है वह देशी है —इस देशमें बहुतायतसे मिलती है। भारतवासियोंने इसके बनानेकी ओर बहुत कम ध्यान दिया है। इस लिए इसका व्यापार ज्यादातर विदेशियोंके हाथमें है। यदि हम थोड़ा कष्ट उठावें तो बहुत धन उपार्जन कर सकते हैं और जो धन विदेश जाता है उसके एक भागकी रक्षा कर पुण्यके भागी बन सकते हैं।

ब्लेनको तैयार करना बड़ा सहल है। यह केवल दो तीन पदार्थोंसे बनता है, जो भारतवर्षमें प्रचुर परिमाणमें मिलते हैं। काओलिन (kaolin) एक प्रकारकी उजली मिट्टी होती है। यह मिट्टी भारतवर्षके कई हिस्सोंमें पाई जाती है। इसी मिट्टीसे सन्यासी अपने ललाटपर उजला तिलक करते हैं। जहां यह मिट्टी मिलती है वहां इसे इकट्ठा करनेके लिए केवल नाम-मात्र खर्च पड़ता है। ब्लेनको तैयार करनेकी यह मुख्य सामग्री है।

उजली मिट्टीको धोकर साफ करना कुछ कठिन काम है। बालू, कंकड़ या अन्य पदार्थ जो इसके साथ मिले रहते हैं उन्हें दूर करनेके लिए मिट्टीको पानीमें घोल देते हैं। तब उसे पतले कपड़ेसे छानते हैं। मिट्टी छाननेके लिए नीचे लिखी हुई रीतिको काममें लाते हैं। लकड़ीके चार टुकड़ोंको ज़मीनमें एक चतुर्भुजके चारों कोनोंपर गाड़ देते हैं और एक पतले कपड़ेको कई तह करके इनपर कसकर बांध देते हैं। यह यन्त्र मिट्टी

छाननेके काममें बराबर आता है। जब तक कपड़ा फटता नहीं तब तक यह काम देता रहता है। कपड़ा फट जानेपर दूसरा कपड़ा बांध देते हैं। जब पानीमें घुली हुई मिट्टीको छाननेकी आवश्यकता होती है तब इस यन्त्रके नीचे कोई बड़ा सा बरतन रख देते हैं, जिसमें मिट्टीके छोटे छोटे कण पानीके साथ छनकर गिरते हैं और बालू कंकड़ आदि कपड़ेपर रह जाते हैं। इस छने हुए पानीको बरतनमें कुछ देर छोड़ देते हैं—इस क्रियासे पानी ऊपर रह जाता है और मिट्टी बरतनके तलेमें बैठ जाती है। फिर पानीको निकालकर फेंक देते हैं। इस क्रियाको कभी कभी दुहरानेपर अच्छी और चिकनी मिट्टी मिलती है, किन्तु यदि छाननेका कपड़ा अच्छा पतला तथा कई तह किया हुआ हो तो एक ही बारमें काम लायक मिट्टी मिल जाती है। अन्तमें इस मिट्टीमें मांड (starch) या गोंद मिला कर टिकिया बनाते हैं। मांड गोंद यह दोनों मिट्टीमें इस लिये मिलाये जाते हैं कि जिस चीज़पर यह लगायी जाय वहां सटी रहे; सूखनेपर झड़ न जाय, प्रत्युत् चमक लावे।

गीली मिट्टीमें यदि थोड़ा सा नीला रङ्ग (२५ सेर मिट्टीमें आधा सेर प्रुशियनब्लू) मिला दिया जाय तो उसका उजलापन अधिक हो जाता है। गोंदके अलावा थोड़ा सा अच्छे साबुनका फेन भी डाला जाता है; इससे मिट्टीकी घुलनशक्ति अधिक हो जाती है।

कोई होशियार बढ़ई "ब्लेनको" की बट्टीके आकारका सांचा बना सकता है। यह गोल और इस के बाचमें प्रायः एक इंचका एक गड्ढा होता है, इसका व्यास प्रायः डेढ़ इंच होता है। मिट्टीको सांचेमें डालकर दबा देते हैं और ब्लेनकोकी बट्टी तैयार होजाती है। हां एक बात और याद रखनी चाहिये, सांचेमें डालनेके पहले मिट्टीको इतना सुखा लेना आवश्यक है कि सांचेसे निकालने पर इसकी शकल खराब न होजाय। यदि पानी अधिक हो तो व्यवहारके पहले जो पानी अधिक रहता है उसे सुखा देते हैं। ब्लेनकोकी बट्टी तैयार होजानेके बाद उसके सूखनेके लिये प्रायः एक हफ्ताचाहिये। सूख जानेपर उन्हें काग़ज़में लपेटकर बेचते हैं।

आज कलके लोग किसी व्यापारको हाथमें लेनेके पहले उसके नफा नुकसान पर विचार करने लगते हैं। इसलिए यदि मैं इस विषयकी आलोचनामें "विज्ञान" का कुछ स्थान लूं तो अनुचित न होगा। पहले कहा जाचुका है कि ब्लेनको बनानेमें अधिक खर्च नहीं पड़ता। जहां उजली मिट्टी होती है वहां एक मन मिट्टी इकट्ठा करनेके लिए दो चार आने लगेंगे। मिट्टी धोने तथा साफ करनेका खर्च आठ आने प्रति मन रख लीजिये। गोंद, साबुन, प्रुशियन ब्लू आदिके दाम जोड़कर दो रुपयेसे अधिक खर्च नहीं पड़ेंगे। यदि एक मनमें १०० बट्टियां हुईं और एक बट्टीका मूल्य एक आना रखलिया जाय तो १०० बट्टियोंके दाम सवा छः रुपये हुये। इसमेंसे यदि दो रुपये खर्चके निकाल दिये जायं तो नफा सवा चार रुपये हुआ।

इस व्यापारको आरम्भ करनेके लिये १००) से भी कम पूंजीकी आवश्यकता है। जहां उजली मिट्टी मिलती है वहांवालोंको इसपर ध्यान देना चाहिये।

—रमेश प्रसाद

ऐरोप्लेन अथवा हवाई जहाज़

(गताङ्क से आगे)

[ले०—प्रो० डा. बी. देवधर, एम. एस-सी.]

३. हवामें ऐरोप्लेन चलता है तो उसका वज़न उसको नीचे खींचता है और ऊपर उठानेवाला दबाव उसको ऊपर तोलता है। पंखा और हवाके प्रवाहके बीचमेंके कोणको हमेशा लघु रखनेसे, दबावकी दिशा करीब करीब लंब रेखामें ही रहती है। (चित्र ३६ देखो) इसलिये समतोल रखनेके वास्ते दबाव तथा वज़न इनका मूल्य बराबर होना चाहिये।

चित्र ३५—दबाव किधर पड़ेगा ।

चित्र ३६—दबाव प्रायः लम्ब रेखामें ही रहता है ।

$\therefore$ व (वजन)=दबाव=अ × त्त × ग^2 × को$^\circ$.

$$\therefore ग = \sqrt{\frac{व}{अ\ त्त\ को^\circ}} \text{..................} (इ)$$

यहां पर ऐरोप्लेनकी गतिका बाकीकी चार बातोंसे संबंध समीकरण द्वारा बतलाया गया है ।

जिस समय कोई हवाई जहाज़ उड़ता है उस समय अ, व, त्त, यह तीन बातें कायम रहती हैं; परन्तु कोण "को" को चलते चलते जहाज़ चलानेवाला कम ज्यादा कर सकता है। इस कोणको कम ज्यादा करनेसे गति भी अधिक या कम हो सकती है। कोण कम ज्यादा करनेकी व्यवस्था उत्थापक (एलीवेटर) नामक यंत्र द्वारा होती है। इस उत्थापक (एलीवेटर) की चर्चा आगे चल कर की जायगी। आज कल जितने विमान चलते हैं,उनमें इसीका प्रयोग होता है। कुछ दिनके बाद यह संभव है कि हांकनेवाला पंखोंका क्षेत्रफल भी चलते चलते कम ज्यादा कर सके*। विमानकी गति कोण पर निर्भर है; और वह कोणके साथ बदल जाती है। यहां पर एक बात आश्चर्य कारक मालूम होती है। ज़मीनपर चलनेवाली मोटर गाड़ीकी गति अश्वबल (Horsepower) के प्रमाणमें रहती है। अश्वबल बढ़ाया तो गाड़ी अधिक चलती है व अश्वबल घटानेसे मोटर कम जोरसे चलेगी। मोटर बंद करदो तो मोटरगाड़ी रुक जायगी, परन्तु विमानकी बात न्यारी है। ज़मीनपर चलनेवाली मोटर गाड़ीका क्षेत्रफलसे संबंध है; किन्तु विमानका सम्बन्ध घनफलसे है; क्योंकि वह ऊपर भी उठता है। मोटर गाड़ी ज़मीनसे ऊपर नहीं उठती। जो मोटर ऐरोप्लेनमें काम करती है उसकी ताक़तका प्रत्यक्ष परिणाम उसकी गतिपर नहीं होता। किन्तु वह अप्रत्यक्षतया कोणके ज़रियेसे होता है। कभी कभी ऐरोप्लेन वाले चलते चलते अपनी मोटर एकदम बन्द कर देते हैं, तो भी विमान बन्द नहीं होता और वह अपनी पूर्व गतिसे धीरे धीरे उतरता जाता है। परन्तु मोटर गाड़ीकी मशीन बन्द करते ही गाड़ी एक दम ठहर जाती है। यह दो तरहके यंत्रोंमें विशेष भिन्नता है। मोटर बन्द करके जब विमान चलता है तब उस चालको सरकना (ग्लाइडिंग् gliding) कहते हैं। ऐरोप्लेनके आंतरिक मोटरका काम केवल यंत्रको अर्थात् विमानको पृथ्वीके समानांतर रखना, उसको ऊपर नीचे नहीं होने देना, है। मोटरकी पूर्ण पावर काममें लानेके लिए कौनसा कोण रखना है, यह बात विमान चलाने वाला प्रत्यक्ष अनुभवसे देख लेता है। कोण छोटा हुआ तो पावर ज्यादा लगती है। और कोण बड़ा हुआ तो पावर कम लगती है।

समीकरण (इ) में व, अ, त्त कायम रखके "को$^\circ$" बदलते गये तो गति किस ढंग बदलेगी यह देखनेके वास्ते आकृति ३७ देते हैं। कम कोणसे अधिक गति मिलती है, यह आकृतिपरसे मालूम होगा। परंतु अति कम कोण रखनेसे

* बड़े हर्षका विषय है कि यह अब सम्भव हो गया है। महाशय लेथन आदिने एक नमूनेके वायुयानमें यह करके दिखा दिया है। बड़े पैमाने पर भी शीघ्र ही सम्भव हो जायगा।
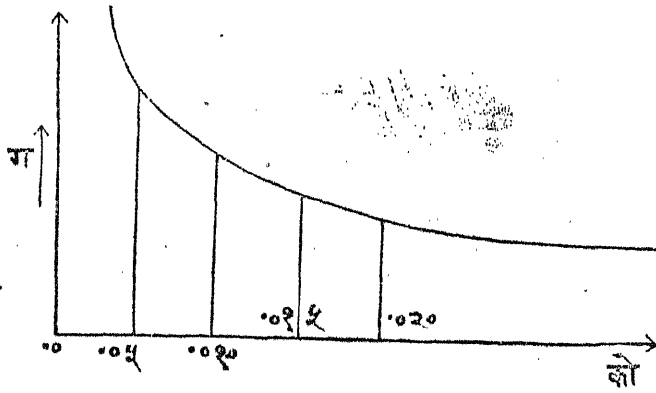
चित्र ३७—गति और कोणका सम्बन्ध।

अति शक्तिमान मोटरकी जरूरत पड़ती है व अन्य अड़चनें आती हैं; इसलिए बहुधा किसी निश्चित कोणसे कोण कभी कम नहीं करते। भिन्न भिन्न प्रकारके ऐरोप्लेनोंके लिए भिन्न भिन्न लघुतम कोण रखते हैं। प्रयोगोपरांत यह मालूम हुआ कि ३° से कम कोण नहीं रखा जा सकता। साधारण छोटा कोण रख कर उसके लिए कितनी पावर लगेगी इसका निश्चय कर लेते हैं; इस समय विमान जिस गतिसे चलेगा उस गतिको साधारण गति कहते हैं। प्रायः सब विमान अपनी अपनी साधारण गतिसे ही चलाये जाते हैं। परन्तु जब वैमानिक अपना विमान इस साधारण गतिसे अधिक वेगसे चलाना चाहता है तब उसको कोणमें तथा मोटर पावरमें भी फरक करना होगा। साधारण गतिके लिए जितनी पावर लगती है उससे अधिक पावरकी मोटर काममें लानेसे यह अधिक गति करनेमें कभी काम आसकेगी। (अपूर्ण)

कलियुगी रसायन

[ले०—श्री० सुन्दरलाल, एम० ए०]

डा० स्टीनेक युद्धके पहले भी बड़े विख्यात थ्रात शल्यचिकित्सक माने जाते थे। इन्होंने प्रगमें (Prag) यूरोपमें पहली तुलनात्मक शारीर शास्त्रकी प्रयोगशाला खोली थी और इसीके कुछ समय पश्चात् वह वीनाकी प्राणी-विद्यापीठ (Biological Institute) के संचालक नियत हो गये। इसी पीठमें नीचे लिखे प्रयोग उन्होंने किये हैं।

डा० स्टीनेकने औरोंकी तरह विशेष ग्रन्थियोंको बदल कर या पैवन्द लगाकर तो मनुष्यों और जानवरोंको फिरसे चेतन और जवान बना ही दिया है, किन्तु एक्सकिरणोंके विशेष प्रयोग और विशिष्ट प्रणालियोंमें टांके लगाकर भी इस विषयमें सफलता प्राप्त की है। विशेषतः एक्स-किरणोंका प्रयोग बड़े चमत्कार और महत्वका है, क्योंकि जो व्यक्ति पाशव ग्रन्थियोंको अपने शरीरमें लगवाना न चाहें, उन्हें एक्स-किरणोंके प्रयोगमें कुछ आपत्ति न होगी।

डा० स्टीनेकने हालमें ही एक बड़े महत्वका ग्रन्थ प्रकाशित किया है जिसका नाम है Rejuvenation by Means of Experimental Revivification of Senescent Puberty Glands अर्थात् "प्रौढ़ताकी ग्रन्थियोंके प्रायोगिक पुनरुद्दीपनसे पुनर्यौवन प्रदान"। प्रौढ़ताकी ग्रन्थियोंसे" यहांपर केवल जननेन्द्रियोंसे ही मतलब नहीं है किन्तु उन अन्तरस्थानीय ग्रन्थियोंसे भी है जिन्हें नरोंमें लीडिग (Leydig cells) सेल और मादाओंमें लूटियनसेल (Lutien cell) पीतांगकी सेल कहते हैं। इनमें एक आभ्यन्तरिक उद्गार (secretion) भी होता है जिसका लिङ्ग-निर्णय और प्रौढ़तापर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

चूहेको चूही और चूहीको चूहा बनादिया

स्टीनेक महाशयने गिनी पिगों और चूहोंके बच्चोंपर बड़े कौतूहलोत्पादक प्रयोग किये हैं। उन्होंने दो सप्ताहके नर बच्चोंके मुख्य लैंगिक अंगोंको निकालकर चार सप्ताहकी चूहियोंके डिम्बाशय उनकी जगह लगा दिये। घाव भर जाने पर चूहे चूही बनगये। कुछ दिन बाद स्टीनेकने उलटा प्रयोग किया अर्थात् चूहियोंके डिम्बाशयको निकाल कर चूहोंके जनन अंग लगा दिये। अच्छे

चित्र ३८—दो सप्ताहके चूहेको चूही बना दिया।

(१) बूढ़ी चूही। (२) जवान चूहेमें परिवर्तित हो गयी।
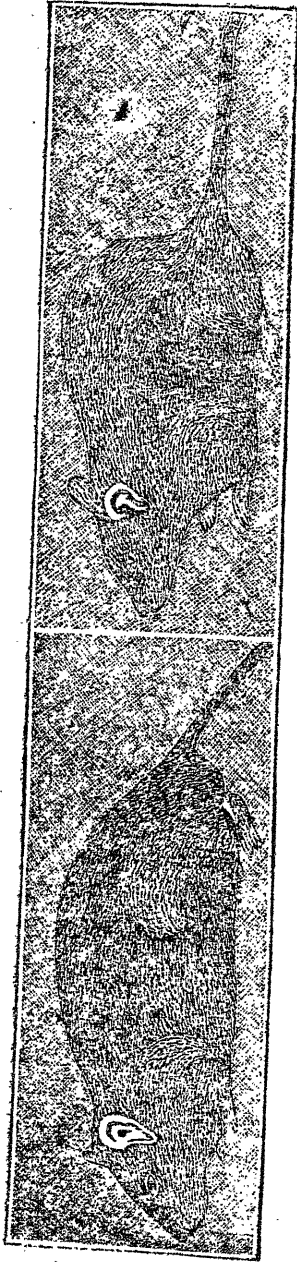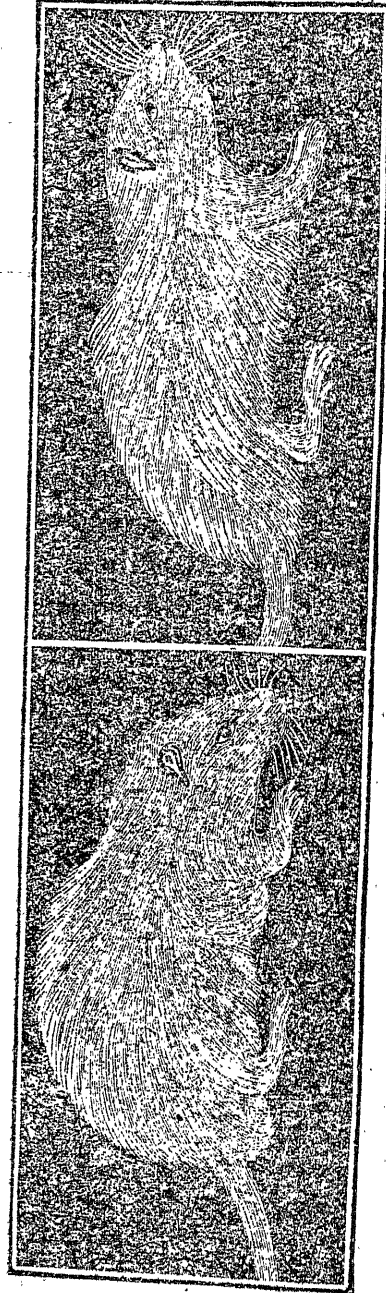
चित्र ३९—बूढ़ी चूहीको चूहा बना दिया।
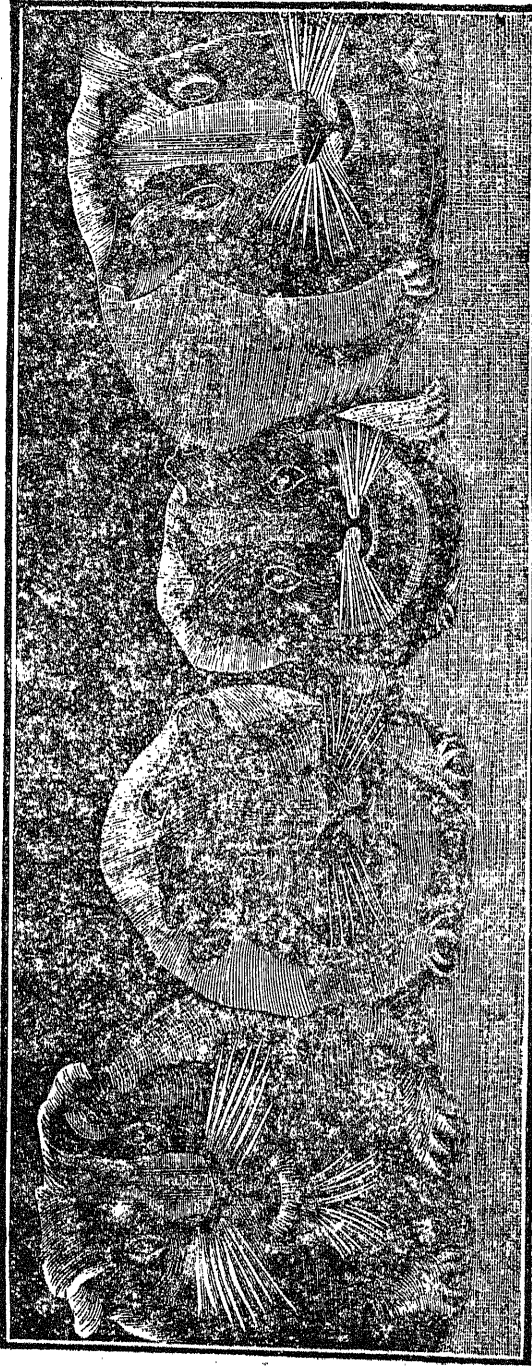
चित्र ४०—गिनी पिग जिनमें लिंग परिवर्तन किया गया। देखिये पहलेसे डील डौल कितना बढ़ गया।

होनेपर चूहियोंमें अद्भुत परिवर्तन पाया गया। उनमें मर्दोंकी खूबू और औरोंसे लड़नेकी लालसा बढ़ी चढ़ी पायी गयी।

यह प्रयोग वीनामें सन् १९१५ में प्रकृति-विज्ञान विशारदों और भिषग्शिरोमणियोंकी सभामें किया गया था। इन प्रयोगोंसे जन्मके लैङ्गिक लक्षणोंपर नया प्रकाश पड़ा। स्टीनेकने यह राय क़ायम की कि नर और मादामें जो लैङ्गिक भेद होता है वह स्थूल अंगोंके कारण नहीं किन्तु अन्तरंस्थानीय कोषोंके (interstitial glands) कारण होता है। इन्हीं कोषोंका प्रभाव भरीजवानी और प्रौढ़ता पर एक ओर और बुढ़ापेपर दूसरी ओर पड़ता है। यह सोच कर स्टीनेकको ख़याल आया कि क्या इन ग्रन्थियोंके पुनरुद्दीपनसे फिर जवानीकी बहार लूटनेको नहीं मिल सकती। बारम्बार उनके हृदयमें यही प्रश्न उठने लगा।

डा० स्टीनेकने फिर चूहोंकी ओर ध्यान दिया। उन्होंने जन्मसे लेकर मृत्यु तकके इनके विविध परिवर्तनोंको भली भांति जांचा। चूहोंकी जराजन्य क्षीणताका मुख्य लक्षण बालोंका उलझा हुआ और कड़ा पड़ जाना, उनका गिरने लगना, भूखका कम हो जाना, बोझका घटना, गरदनका गिर जाना, कमरमें कूबड़का निकल आना, आंखकी ज्योति और स्वच्छताका कम हो जाना, और पेशियोंकी दुर्बलता आदि हैं। बुढ़ापेका एक और विलक्षण लक्षण आस पासकी वस्तुओंसे उदासीन रहना भी है—यहां तक होता है कि चूहीको देख कर भी उमंग नहीं आती और दूसरे नरको देख कर बढ़कर चोट लेनेकी जगह दुम दबाकर भागना सूझता है।

परन्तु क्या जवानीकी चमक दमक फिरसे इस जीर्ण क्षीण उदासीन निर्जीव जीवमें पैदा नहीं हो सकती? क्या फिरसे यह कलोलें करने और खम ठोक कर बैरियोंको पछाड़ने योग्य नहीं हो सकता? स्टीनेक महोदयने कहा कि प्रकृतिके बिगाड़े हुए कामको मैं सुधारूंगा, भालके अंक मैं मिटाऊंगा, बिधाताका गर्व मैं घटाऊंगा। उन्होंने एक नहीं तीन तरीकोंसे यह कर दिखलाया।

(१) पहिली और सबसे सरल विधि थी शुक्र प्रणालीमें टांके लगानेकी।

(२) दूसरी विधिमें एक्स किरणोंका अक्स डाला जाता है और यह विधि मादाओंपर भी प्रयुक्त हो सकती है।

(३) तीसरी विधि वह है जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है अर्थात् जर्म ग्लेंड (germ gland) का जवानमेंसे निकालकर बुड्ढेमें लगा देना।

इन तीन विधियोंमेसे किसीके द्वारा भी पशुका संस्कार करनेके उपरान्त कुछ दिनोंमें ही सब शकल सूरत, आहार व्यवहार बदल गया। गरदन सीधी होगई, मस्तक उठ गया, आंखें खुल गयीं और चमकने लगीं, शरीरमें तेज और बल दीखने लगा, गंजके धब्बोंपर बाल उग आये।

पर क्या विचारा मनुष्य ही वञ्चित रहता? १९१८ में स्टीनेकके परामर्शसे उनके सहायक डा० लिकटेन्स्टर्नने मनुष्योंपर भी प्रयोग कर डाला। बुड्ढोंको जवानीका मजा आनेलगा। चेहरेसे ताजगी और जवानी टपकने लगी। बल वीर्यमें वृद्धि हो गयी। कांपते हुए हाथ और हिलती हुई गर्दन दृढ़ और बलवान होगयी। लड़खड़ाते हुए कदम जम कर पड़ने लगे और दिलके वलवले फिर शुरू हो गये।

पशुओंमें तो जीवन काल १/३ या १/४ बढ़ गया और जिनका लिङ्ग परिवर्तन किया गया था उनके नियमानुसार बच्चे भी पैदा होने लगे। पर देखना यह है कि इन प्रयोगोंका प्रभाव मनुष्य-पर कैसा पड़ता है।

हाहन्त जिनमें योग्यता है, जो कुछ विद्या और ज्ञानकी वृद्धि कर सकते हैं, वह धनाभावसे दुखी और बेबस रहते हैं। डा० स्टीनेकको भी सब काम धनाभावसे बन्द कर देना पड़ा है, इसी लिए लीपजिगके शारीर शास्त्र वेत्ता रूक्स (Wilhelm Roux) ने धनके लिए अपील की है।

(—Scientific American से)

शल्य चिकित्साका नया चमत्कार

लगभग २५ वर्ष व्यतीत हुए होंगे जब एक विख्यात् शल्य चिकित्सकने कहा था कि मस्तिष्ककी चीर फाड़ बड़ी भयावह है, परन्तु उसके थोड़े दिनों बाद ही प्रत्येक व्यक्ति, जो शल्यचिकित्सक होनेका दावा रखता था, बेखटके मस्तिष्ककी शल्य चिकित्सा करने लगा। इसी प्रकार दस बरस पहले सर्जनोंकी राय थी कि रीढ़पर हाथ न लगाना चाहिये, और वह भूलसे भी कभी रीढ़पर उस्तरा न चलाते थे। जो कुछ हो हालमें ही यह खबर सुननेमें आयी है कि—एक मनुष्यकी रीढ़का १४ इंचका टुकड़ा काटकर अलग करदिया है और उसके स्थानपर गायकी पसलीका टुकड़ा लगा दिया है। यह हड्डीका पैबन्द लगाने-का एक बड़े पैमानेका उदाहरण है। क्योंकि अब तक केवल आठ या नौ इंच रीढ़को काट कर निकाल देनेकी बात ही सुननेमें आयी थी। चिकि-त्सकोंका कहना है कि रोगी दो चार हफतेमें बैसा-खियोंके सहारे चलने फिरने लग जायगा।

इस रोगीका नाम विलियम कोसग्रोव है। दस बरस हुए कि एक घोड़ेने उसके लात लगा दी थी। जो चोट उसकी रीढ़में उस समय लगी थी उसका प्रभाव अब तक चला जाता था, परन्तु गत वर्षोंमें मोटर चलाते रहनेके कारण धक्के लगलगकर उसका कष्ट और असमर्थता और भी बढ़ गयी थी। चोट खाये हुए मुहरों (रीढ़ कई टुकड़ों की बनी होती है, जिन्हें मुहरे या कशेरुका

कहते हैं) की विकृतिके कारण रीढ़पर दबाव पड़ता रहता था, जिससे कुछ कुछ लकवेके आसार दिखाई देने लगे थे (developed partial paralysis)।

कोसग्रोवने सर्जनोंसे परामर्श किया तो उन्होंने बतलाया कि रीढ़का अधिकांश हिस्सा खराब हो गया है। रुग्न विभागको काटकर गायकी पसलीका टुकड़ा उसके स्थानपर लगा देनेकी बात भी उन्होंने कही। उन्होंने बतलाया कि यद्यपि यह इतनी लचीली न होगी जितनी रीढ़ होती है, तथापि जम जायगी और शेष रीढ़की रक्षा करती रहेगी।
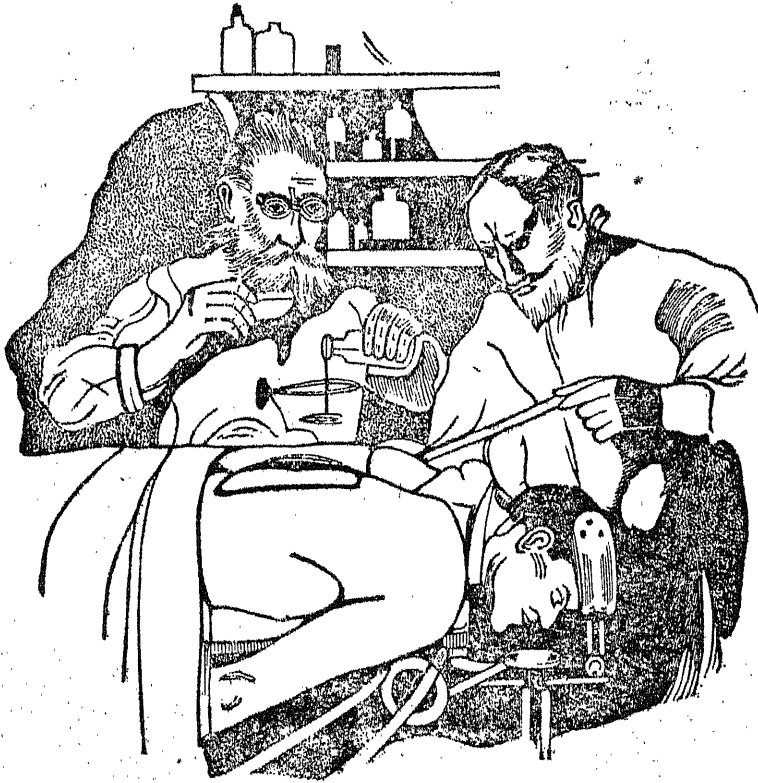
चित्र ४१

रोगीको लिटा दिया गया और चीर फाड़की तय्यारी होने लगी। दो तीन दिन तक बहुत हलका खाना दिया गया और उसे यथाशक्य शान्त और निश्चेष्ट रहनेकी आज्ञा दी गयी। उधर डाक्टरोंने एक अच्छी जवान गाय ढूंढ़ी, जिसकी अच्छी प्रकारसे परीक्षा करके देख लिया कि क्षय रोग या कोई अन्य रोग तो नहीं है।

क्षय रोगकी जांच परमावश्यक थी, क्योंकि इसका लवलेश भी महा भयङ्कर परिणाम उपस्थित कर देता। गायकी कम उम्र भी आवश्यक थी क्योंकि पसलीमें लचीलापन अभीष्ट था। जितनी बुड्ढी गाय होती उतनी ही कठिनाई पसलीके नये स्थानमें जमनेमें होती और उसमें लचीलापन भी उतना ही कम होता। उचित गाय चुन लेनेके बाद उसके ओपरेशनकी भी तय्यारी की गयी।

गायको बेहोश करके, एक पसली निकाल ली, पर बड़ी सावधानी इस बातकी की गई कि अस्थिवेष्टपर किसी प्रकारका आघात न पहुंचे। यह आवरण एक झिल्लीकी तरह अस्थियोंपर चढ़ा रहता है। इसमें संघात पहुंचनेपर उसके अन्दरकी हड्डीमें रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे हड्डियोंके संयोग करनेमें भी यह बड़े काममें आती है।

पसलीको विशेष शस्त्रोंसे और मोटर आरियोंसे ठीकठाक करनेके उपरान्त जीवाणुशून्य किया गया और अत्यन्त ठण्डे बरतनोंमें काममें लानेके समय तक रक्षित रखा।

कोसग्रोवको शल्य क्रियाकी मेज़पर लिटा कर बेहोश किया और उसे उलट दिया, जिसमें पीठपर शल्य किया होसके। एक ही हाथमें पूरी रीढ़की हड्डीपरका कपड़ा फाड़ दिया। तदनन्तर बड़ा

सावधानीसे त्वचा और पेशियोंको चीरा यहां तक कि रीढ़की रुग्न कशेरुकाएं दीखने लगीं। सहायक लोग चीरे हुए मांसको यंत्रोंसे इधर उधर खींच रहे थे जिसमें शस्त्रोपचारक सुगमता पूर्वक काम कर सके। यहां यह न समझ लेना चाहिये कि रीढ़को दो स्थानोंपरसे काटकर अलग कर दिया और उसके स्थानपर पसली लगा दी, क्योंकि ऐसा करनेसे रीढ़के अन्दरकी सुषुम्ना कट जाती और रोगी मर जाता। रीढ़का ऊपरी हिस्सा जो खराब हो गया था, बिजली द्वारा चलने वाले यंत्रोंसे रेत कर काट दिया गया। फिर पसलीके बैठाने और जोड़नेके लिए कई जगहपर रेताई आदि क्रियाएं की गई और अन्तमें पसलीको इस प्रकार रखा कि वह सुषुम्नाको ढक ले और जोड़ोंसे मिलकर बैठ जाय। तदनन्तर पेशियोंको अपने स्थानपर जमा कर त्वचामें टांके लगा दिये। जीवाणुशून्य गौज़ (जाली) और शोषक रुईसे ड्रेसिंग किया गया और रोगीका शरीर प्लास्तरके केसमें बन्द कर दिया गया।

सेनापतिके सैनिकका हाथ

सेना पति सैनिकोंके हाथोंसे लड़ता ही है, पर सैनिकका हाथ नहीं हथिया लेता। परन्तु गत युद्ध में ऐसी घटना हुई है। जेनेरेल ट्रमबेलेट फेवर (General Trumbelet Faver)का हाथ गोला लगनेसे टूटकर अलग हो गया था। उसी जगह एक और सिपाही पड़ा था, जो इतना ज़खमी हो गया था कि उसके बचनेकी आशा न थी। उसका हाथ काटकर डा० एलिक्सिस केरेल (Dr. Alexis Carrel) ने जेनेरेल महोदयके लगा दिया। यह शल्य क्रियाका सबसे बड़ा चमत्कार है।

(—Science Siftings से)

—मौलाना मुहम्मद हुसैन कुरैशी, एम, ए,

पृथ्वीकी दैनिक गति (अक्षभ्रमण)

(गताङ्कसे आगे)

[ले०—श्रीमहावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद]

पृथ्वीकी दैनिक गति सिद्ध करनेके लिए दो प्रयोगोंका वर्णन वृश्चिकके अङ्कमें किया जा चुका है। आज एक और प्रयोगका वर्णन किया जाता है। यदि किसी चक्रका किनारा बहुत भारी हो और उसका अक्ष उसके केन्द्रपर जाता हुआ उसके धरातलसे समकोण बनाता हो और वह चक्र अपने अक्षपर बड़े वेगसे घूम सकता हो तो ऐसे चक्रको घुमना पहिया (gyrostat) कहते हैं। यदि इसके साथ वह सब सामग्री भी हो जिससे यह थमा रहता है तो सब सामग्री समेत इसका नाम घुमना चक्र (gyroscope) पड़ जाता है। एक साधारण घुमना चक्र (gyroscope) का चित्र यह है:—
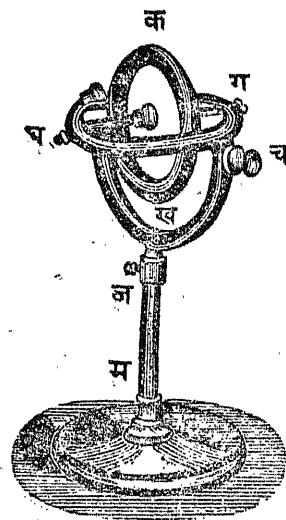
चित्र ४२

नीचेके चित्रमें एक साधारण घुमना चक्र दिखाया गया है। क ख चक्र समधरातल अक्ष ग घ के चारों ओर घूम सकता है और छ घ च ग समधरातल अक्ष छ च पर घूम सकता है और छ च कुल साथ लेता हुआ ज झ लम्ब अक्षपर घूम सकता है। यह ऐसा बनाया जाना चाहिये कि घूमते समय रगड़ जहां तक कम हो सके रहे। यह तीनों अक्ष एक दूसरेसे समकोण बनाते हैं। दो तो समधरातल हैं और तीसरा लम्ब रेखामें। यदि रगड़ बहुत कम हो जिससे प्रत्येक अक्षकी गति पूरी तरह स्वतंत्र हो तो घुमनेयन्त्रमें अनेक अनोखे गुण पाये जाते हैं,

जब कि 'क ख' चक्र खूब तेजीसे घूम रहा हो। इन गुणोंमें सबसे अद्भुत और महत्वका गुण यह है कि ग घ अक्षकी दिशा सर्वदा एक ही बनी रहती है, जब कि घुमना चक्र एक जगहसे दूसरी जगह ज भ को पकड़ कर हटाया जाता है। पृथ्वीकी दैनिक गति सिद्ध करनेके लिए फोकोने घुमनेचक्रका भी प्रयोग किया था। उसने दिखा दिया कि जब घुमने चक्रकी धुरीकी दिशा पृथ्वीके अक्षके समानान्तर रखी जाती है तब तो इसकी दिशा आस पासकी वस्तुएंके अनुसार स्थिर रहती है परन्तु यह इसकी धुरी किसी अन्य दिशामें करके यह घुमाया जाय तो धुरी उसी प्रकार रहती है जैसे तारे। यदि यह धुरी किसी विशेष तारेकी दिशामें कर दी जाय और तब चक्र घुमाया जाय तो जब तक यह घूमता रहेगा वह धुरी सदा उसी तारेकी ओर लगी रहेगी। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि तारोंकी दिशा स्थिर है। और उनका पूरबसे पश्छिमका प्रति दिनका घूम जाना पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण है?

पृथ्वीकी दैनिक गति (अक्षभ्रमण) के तीन प्रमाण ऐसे दिये गये हैं जो प्रयोग दिखाकर सिद्ध किये जा सकते हैं। इनके सिवा दूरबीनसे देखा गया है कि सूर्य, ग्रह और चन्द्रमामें भी जो पृथ्वीकी नांई गोल हैं अक्षभ्रमण होता है। इस लिए यह मान लेनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि पृथ्वीमें अक्षभ्रमण होता है जिसके कारण यह २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकंडमें एक बार अपने अक्ष पर घूम आती है।

इन प्रयोगोंके सिवा बहुत सी घटनाएं भी ऐसी देखी जाती है जिनसे पृथ्वीका अक्षभ्रमण सिद्ध होता है। उनमेंसे कुछ यह हैं:—वर्षमें कुछ महीनों तक हवाके बहनेकी दिशा लगातार एकसी रहती है। ऐसी हवाको व्यापारी हवा कहते हैं। समुद्रमें कुछ धाराएं ऐसी बहती हैं जिनका कारण पृथ्वीके अक्षभ्रमणके सिवा और कुछ नहीं समझ पड़ता। निरक्ष देशके दक्षिणमें बवंडरोंका चक्कर उसी प्रकार होता है जैसे कि घड़ी की सुई घूमती है, परन्तु निरक्ष देशके उत्तरमें बवंडरोंका चक्कर ठीक उलटी दिशामें होता है अर्थात् घड़ीकी सुईकी प्रतिकूल दिशामें होता है।

पृथ्वीके आकारसे भी यही परिणाम निकलता है कि इसमें अक्षभ्रमण होता है। मोटे हिसाबसे तो कहा जाता है कि पृथ्वी गोल है परन्तु यथार्थ में यह गोल नहीं है। बहुत सूक्ष्म रीतिसे नापनेपर और गणना करनेपर यह सिद्ध होता है कि ध्रुवोंके पास पृथ्वी चपटी है और इसका ध्रुव देशीय व्यास निरक्ष देशीय व्याससे २६॥ मील छोटा है। इसका कारण यही समझ पड़ता है कि जब पृथ्वी पिघली हुई अवस्थामें थी तब इसके अक्षभ्रमण के कारण अक्षके पासवाले प्रदेश चपटे पड़ गये, जैसा कि किसी द्रवके भ्रमणमें देखा जासकता है। किसी गिलास या लोटेमें पानी लेकर घुमाइये तो थोड़ी देरमें पानी घूमने लगेगा और बीचमें जिस रेखाके चारों ओर चक्कर लगावेगा उसके पास कुछ नीचा पड़ जायगा।

शुद्ध विज्ञान की गत पचहत्तर वर्षोंमें क्या उन्नति हुई है?*

[ले०—अध्या० विश्वेश्वरप्रसाद, बी. ए.]

यदि हम आधुनिक विज्ञानकी तुलना १८४५ ई०के विज्ञानसे करें तो सहज ही यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारे पास आज जो साधन उपस्थित हो गये हैं उनका ७५ वर्ष पहले किसीको स्वप्न भी न हुआ होगा। और तब यह कहना नितान्त युक्तियुक्त ही है कि आज हम जिन बातोंको जाननेमें समर्थ हैं उनका ७५ वर्ष पूर्व किंचिन्मात्र भी किसीका ध्यान न हुआ होगा। इन साधनोंकी नामावली

* २ अक्टूबर Scientific American के Seventy Years of Pure Science नामक लेखके आधारपर।

यहां देना तो है नहीं; हां, उनमेंसे विशेष साधनोंका उल्लेख अवश्य ही करना है।

७५ वर्ष पूर्व (microscope) अणुवीक्षण और (telescope) दूरवीक्षण दोनों ही यंत्र विद्यमान थे। पर नई उन्नतियोंके कारण यदि यह कहा जाय कि दोनों यंत्रोंने अब बिल्कुल नया ही रूप धारण कर लिया है तो अनुचित न होगा। १८०६ ई०में फ्रौनहौफर (Fraunhofer) ने (Spectroscope) रश्मि चित्रदर्शक यन्त्रका सूत्रपात किया था। ५० वर्ष पीछे किरचौफ (Kirschhoff) और बुन्सन (Bunsen) ने उसका परिष्कार किया। भिन्न भिन्न पदार्थोंके तत्तज्जनित प्रकाशके भिन्न भिन्न तरंगान्तर होंगे; भिन्न भिन्न तरंगान्तरवाले प्रकाशके भिन्न भिन्न रङ्ग होंगे; प्रकाशके जन्म स्थानकी गर्मी सर्दी और दबावके कारण प्रकाशमें कुछ भिन्नता आजायगी; प्रकाश प्रवाहके जन्म स्थान और यन्त्रके बीचकी आपेक्षिक गतिसे भी प्रकाश-पर कुछ प्रभाव पड़ जायगा—यह सभी बातें सहजमें ही हम समझ सकते हैं। पर क्या यह आश्चर्ययुक्त बात नहीं है कि यह सब बातें हमें एक छोटेसे यन्त्र द्वारा मालूम हो जायं; चाहे प्रकाश प्रवाहका जन्म स्थान कितनी ही दूर क्यों न हो। यदि सचमुच ऐसा करके दिखाया न जा सकता तो भला क्यों किसीको इसका विश्वास होता।

जबसे वैज्ञानिकोंने अपना कार्य आरंभ किया तभीसे यह बड़ी कठिनाई रही है कि जिस वस्तुका ज्ञान प्राप्त करना है उसका शुद्धता और शीघ्रतासे निरीक्षण कैसे हो। आज हमें इस कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि यदि किसी वस्तुका निरीक्षण, चाहे दूरवीक्षण द्वारा चाहे अणुवीक्षण द्वारा चाहे केवल आंखोंसे ही, करना है तो फोटोग्राफीके यन्त्रसे हम उसका चित्र लेकर फुरसतसे अध्ययन कर सकते हैं और यदि आवश्यकता हो तो चलते फिरते चित्रोंवाले यन्त्रको भी काम में ला सकते हैं अर्थात् जो प्रकृतिका दृश्य हमारी दृष्टिसे परे हो गया है उसका भी निरीक्षण हम अब उन यन्त्रों द्वारा उनके दृष्टि गोचर होनेके बाद भी अपने अवकाश और इच्छाके अनुसार कर सकते हैं। यदि किसी शब्द सम्बन्धी निरीक्षण की आवश्यकता पड़े तो फोनोग्राफ उपस्थित है। वह शब्द आपके पास रह सकता है। जब चाहिये जै बार चाहिये तत्सम्बन्धी विचार करते रहिये और शब्दको उसके निरीक्षणार्थ सुनते रहिये। केवल इतना ही नहीं ऐसे ही और अन्य अनेक प्रकारके साधन उपस्थित हो गये हैं जिनके द्वारा निरीक्ष्य वस्तु सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातोंका चिन्ह आप सदा पा सकते हैं और यथावकाश उसका संपूर्ण निरीक्षण कर सकते हैं।

बड़े बड़े साधनोंकी प्रशंसामें हम छोटे छोटे साधनोंको भूल नहीं सकते। सेली नियम सेल (Selenium cell) जिसके द्वारा प्रकाश विद्युत्प्रवाहमें और विद्युत्प्रवाह फिर प्रकाशमें परिवर्तित हो सकता है किसी प्रकारसे कम महत्वका साधन नहीं माना जा सकता। यद्यपि (X-ray) एक्सरे और रेडियमके निकलनेसे पदार्थ-प्रकृतिके ज्ञानकी अधिक वृद्धि हुई है तथापि यह दोनों बड़े मार्केके साधन हैं।

जिन पाठक महाशयोंको कुछ भी भौतिक विज्ञानसे परिचय है वह (Conservation of energy) "शक्तिका अमरत्व" नामक सिद्धान्तके विषयमें अवश्य ही कुछ जानते होंगे। इस सिद्धान्तके स्थिर होते होते ५० वर्ष बीत गये। इस कार्यकी पूर्ति करके लार्ड केलविन तो अमर ही हो गये।

भौतिक विज्ञानमें यही एक बड़ी बात अकेली न हुई। इसके साथ ही साथ एक दूसरा बड़े महत्वका विचार हो रहा था वह यह था कि प्रकाश वास्तवमें तरंगात्मक है। यह मन्तव्य जब स्थिर हो गया तो इन लहरोंके आधारकी खोज होने लगी। शीघ्र ही एक वस्तु आकाश (Ether) मान ली गई। 'मान ली गई' इस कारण लिखा जाता है कि अभी तक उसके अस्तित्वके लिए किसी

प्रकारका प्रायोगिक प्रमाण नहीं मिला है पर यह सिद्धान्त भी बड़े महत्वका समझा जाता है।

१८९५ ई० के दिसंबरमें जब एक्स किरणों (X-rays)का आविष्कार होगया तो एक विचित्र समस्या उपस्थित हुई। इस आविष्कारका अर्थ यह था कि (Rontgen) रंजन महाशयने एक इस प्रकारके प्रकाशको खोज निकाला जिसके द्वारा कतिपय वस्तुओंके भीतरका दृश्य स्पष्ट हो जाता है। कठिनाई यह पड़ी कि यह प्रकाश विद्युत्की भी लहरें मालूम होती थीं और पदार्थमय (Material) लहरें भी जान पड़ती थीं और यदि रासायनिक इस अवसर पर अपने विज्ञान द्वारा इस समस्या-की पूर्तिमें भौतिक विज्ञानियोंको सहायता न देते तो यह लोग कदाचित् कुछ दिनों तक इसी तम-पूर्ण अवस्थामें पड़े रहते।

१८४० और १८९६ ई० के भीतर पदार्थ विज्ञान को परमाणु और (Molecule) अणु मिल गये। इनके सहारे शनैः शनैः पदार्थोंकी बनावटका पता चला-और परमाणुभार और (molecular) अणुभारका अन्तर भी मालूम हुआ। मेंडीलेफ नामक महाशय ने इस तौलके हिसाबको इतना परिपूर्ण किया कि लोग प्राचीन कीमियाके रूपमें यह सोचने लगे कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें परिणत हो जाना संभव है कि नहीं। प्रसिद्ध क्यूरी-युगलके रेडियमको प्राप्त करते ही मानों नये ही युगका आविर्भाव हो गया। तुरन्त ही (Conservation of energy) "शक्तिका अमरत्व" और (Conservation of matter) "पदार्थका अमरत्व" नामक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें भय उत्पन्न होने लगा कि यह दोनों कहीं लीन न हो जायं। प्रचुर विचार और प्रायोगिक खोजके अनन्तर अब यह निश्चय सा जान पड़ता है कि विद्युत् और प्रकृति (matter) में कुछ भेद नहीं है और सभी पदार्थ एक ही चीज़से बने हैं। परमाणुके विषयमें भी यही जान पड़ता है कि परमाणु एक (nucleus) केन्द्रपर बना है, जो पदार्थमय है और एक या अधिक (electron) विद्युत्कण भी उसके साथ सम्मिलित हैं जो विद्युत रूप हैं। रेडियमकी क्रियाको यह मान कर सहज ही में समझ सकते हैं कि विद्युत्कण पदार्थसे अलग हो कर विशेष अवस्थामें इतस्ततः आजा सकते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थोंका ऐक्य आधुनिक गणितज्ञ एन्सटीन (Enstein) के विचारोंसे भी सिद्ध होता है।

१८४५ ई० का ज्योतिषी आधुनिक ज्योतिषीके समान (Spectroscope) रश्मिचित्र दर्शक द्वारा किसी तारेके विषयमें यह नहीं बता सकता था कि अमुक तारेमें अमुक पदार्थ हैं। इतनी गर्मी सर्दी है। तारा प्राचीन है अथवा अभी थोड़े दिनका है। उसकी कौन कौनसी अवस्थाएं व्यतीत हो चुकी हैं और कौन कौनसी अभी अवशिष्ट हैं, अथवा हमारी पृथ्वीकी ओर या पृथ्वीसे दूर कितने वेगसे आ या जा रहा है। ७५ वर्ष पूर्वके ज्योतिषीसे यदि आप यह पूछते कि महाशय अमुक तारा कितना बड़ा है, उसका कितना प्रकाश है, अथवा वह पृथ्वीसे कितनी दूरी पर है तो वह यही कहता कि वहां बिना गये इन बातोंका पता नहीं चल सकता। पर आज तो प्रयोगशालामें तारेगण पकड़ लाये जाते हैं और ऐसी बहुत सी बातोंका पता चला लिया जाता है जिनका जानना वैसे तो बिना उन तारों तक पहुंचे संभव न था। इन बातोंके जाननेमें रश्मिचित्र दर्शक (Spectroscope) ही ने काम नहीं किया, पर फोटोग्राफीसे बड़ी सहायता मिलती है।

प्रश्नोत्तर

(१)

पूर्ण चन्द्रग्रहणके समय चन्द्रमा क्यों दिखलाई पड़ता है ?

आश्विनी पूर्णिमाको जब चन्द्र ग्रसित होता जारहा था, तब उसका एक भाग श्वेत दूसरा काला विदित होता था। मुझे आशा थी कि आलोकित भागके प्रकाशके कारण ग्रसित भाग भी दिखलाई पड़ता है, जब छाया पूर्ण रूपसे चन्द्रमा

पर पड़ जावेगी तब चन्द्रमें स्वयं अपना प्रकाश न होनेसे वह बिलकुल न दीख पड़ेगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। खग्रास ग्रहण होनेपर भी ऐसा मालूम होता रहा कि किसी अपने प्रकाशसे प्रकाशित बिम्बको काले कपड़ेसे ढक दिया है। अब यहांपर प्रश्न यह है कि जब चन्द्रमा सूर्य्यके प्रकाशसे चमकता है तो पृथ्वी द्वारा सूर्यका प्रकाश रुक जानेपर भी वह क्यों पूर्ण रूपसे दृष्टिसे ओझल न हुआ।

—गोपालसाह।

आपने जो निरीक्षण किया और उसका कारण जाननेकी इच्छा प्रकट की वह अत्यन्त सराहनीय है। यह तो सब जानते हैं कि सूर्यका प्रकाश सब ग्रहों और उपग्रहोंपर पड़ता है। वही प्रतिफलित होकर पृथ्वी तक पहुंचता है और उसीके कारण यह उपग्रह प्रकाशमान प्रतीत होते हैं। सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर पड़ता है और वहांसे प्रतिफलित होकर पृथ्वी तक पहुंचता है, इसी प्रकार जो प्रकाश सूर्यका पृथ्वीपर पड़ता है पृथ्वीसे प्रतिफलित होकर चन्द्रमापर पड़ता है। चन्द्रलोकमें यदि हम जा सकें तो हमें पृथ्वी भी प्रकाशमान दीखेगी।

पृथ्वीके पिण्डको घेरे हुए एक आवरण है, जिसे वायुमण्डल भी कहते हैं। वह प्रायः २००-५०० मील तक ऊंचा है। पृथ्वीके ठोस पिण्डकी छायामें तो चन्द्रमा ग्रहणके समय पूर्णतया अथवा थोड़ा सा प्रवेश कर जाता है, परन्तु वायुमण्डल है पारदर्शक इसकी छाया तो पड़ती नहीं, उसमें होकर प्रकाश बराबर निकला करता है। वह यदि सीधा चला जाता तो कुछ न होता, परन्तु वायुमण्डलमें होकर निकलनेके अपराधसे मार्गच्युत हो जाता है और चन्द्रलोकको आलोकित करता है। परन्तु ट्रैसपास करनेके अपराधसे उसे केवल मार्गच्युत ही नहीं होना पड़ता, कुछ जुर्माना भी देना पड़ता है। जुर्मानेके रूपमें वह अपना नीला अंश अंशतः खो बैठता है, अतएव लाल रंग की प्रधानता रह जानेसे लाल होजाता है। यह रहस्य तब खुलता है जब वह चन्द्र बिम्ब पर पड़कर प्रतिफलित हो हम तक पहुंचता है। सारांश यह कि सूर्यका प्रकाश वायुमण्डलमें होकर निकलनेके कारण मन्दा, लाल हो जाता है और मुड़ जाता है और चन्द्रग्रहणके समय चन्द्रबिम्बपर गिर कर उसे ताम्रवर्णकी आभा दे देता है। इसीलिए खग्रास होने पर भी चन्द्र बिम्ब लाल रंगका दिखाई देता रहता है।

जब तक चन्द्र बिम्बका थोड़ा सा अंश ही छायामें रहता है, शेष भागके तेजके कारण छाया-प्रविष्ट भाग काला दीखता है। वास्तवमें ग्रसित भाग काला दीखना न चाहिये।

रंगीन प्रकाशसे मोटर वालोंकी रोक

मोटर चलानेवाले प्रायः इस बातकी परवाह नहीं करते कि किसी नगरके नियमोंके अनुसार वह तेज़ चला रहे हैं या धीरे। तेज़ चलती हुई मोटरका यदि चालान भी कर दिया जाय तो यह साबित करना कठिन होजाता है कि नियमित वेगसे उसका वेग अधिक था। इन सब झगड़ोंको मिटानेके उद्देश्यसे करनेल चार्ल्स गोरे (Col. Charles Gore of Los Angeles) ने एक वेग सूचक बनाया है जिसे देखकर हर कोई बता सकता है कि नियम-विरुद्ध वेगसे तो मोटरकार नहीं जा रही है।

यह यन्त्र एक बकसमें बन्द है, जिसमें तीन लेम्प—सफेद, हरे और लाल लगे हुए हैं। यंत्र रेडीएटर के सामने लगाया जाता है और उसका सम्बंध सामनेके पहियोंसे कर दिया जाता है। गाड़ीके चलते ही सफेद लेम्प जल उठता है। नियमानुकूल वेग जब तक रहता है यह जलता रहता है। वेग बढ़ने पर हरा लेम्प जल उठता है। इससे प्रकट होता है कि नगर बाहरके वेगसे मोटर जारहा है। यदि इससे भी ज्यादा वेगसे मोटर जाता है तो लाल लेम्प जल उठता है। यह लेम्प वेग कम होनेके बाद भी कुछ देर तक जलते रहते हैं। अतएव पुलिसको देखकर वेग कम कर देने-वाले भी पकड़े जा सकते हैं। —सुन्दरलाल।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १२ } कुम्भ, संवत् १९७७ । फरवरी सन् १९२१ । { संख्या ५

फसलके शत्रु

विषय-प्रवेश

गाय भैंस आदि पालतू जानवरोंको छोड़कर कीड़ोंके सिवा एक प्राणी ऐसा नहीं, जिसका मनुष्य जातिसे चोलीदामनका सा सम्बन्ध हो। शहद, रेशम, लाख आदि कई उपयोगी पदार्थ कीड़ोंकी बदौलत ही प्राप्त होते हैं। इस वैज्ञानिक युगमें नकली पदार्थ क्यों न बना लिये जायं परन्तु वह असलीकी होड़ कदापि न कर सकेंगे।

बहुत से कीड़े ऐसे भी हैं जो रोग फैलाते हैं। कुछ कीड़े हमारे धान्यके कोठोंमें घुसकर उन्हें नष्ट कर डालते हैं। कुछ इमारतोंकी लकड़ीको खाकर मटिया मेट करदेते हैं और कुछ कीड़े खेतोंमें खड़ी हुई फसलका सत्यानाश करडालते हैं। सारांशमें मनुष्य और कीड़ेका सम्बन्ध तोड़ना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

इस बीसवीं सदीमें भी वैज्ञानिक यह नहीं जान पाये हैं कि ईश्वरने अमुक कीड़ा किस उद्देश-से बनाया है।

स्थूल दृष्टिसे कीड़े नीचे लिखे हुए वर्गोंमें बांटे जा सकते हैं—

१—फसलको हानि पहुंचानेवाले।
२—कोठोंमें भरे हुए अनाज आदिको हानि पहुंचानेवाले।
३—पालतू जानवरोंको हानि पहुंचानेवाले।
४—रोग फैलानेवाले।
५—खेतीमें सहायता पहुंचानेवाले।
६—कीमती माल पैदा करनेवाले।

पौदे पर तथा उसके अन्दर रहनेवाले कीड़े पहले वर्गमें शामिल हैं। घुन आदि कोठेमें भरे हुए अनाज वगैराको नष्ट करनेवाले कीड़ोंसे हमारे अधिकांश पाठक परिचित होंगे। डांस, मच्छर, पिस्सू आदि कीड़े तीसरे वर्गके हैं। बहुत से कीड़े ऐसे हैं जो ज़मीनमें छेद करके रहते हैं। इस प्रकार वह खेतकी मट्टीमेंके अवयवोंसे

फसलके लिए उत्तम खुराक बनानेमें बहुत मदद पहुंचाते हैं। कई कीड़े ऐसे भी हैं जो फसलको हानि पहुंचानेवाले कीड़ोंको खाते हैं। छठे वर्गमें वह कीड़े शामिल हैं जो लाख, रेशम, शहद आदि उपयोगी पदार्थ पैदा करते हैं।

ऊपर किया हुआ वर्गीकरण साम्पत्तिक दृष्टिसे किया गया है। परन्तु शरीर रचनाकी दृष्टिसे कीड़ोंका वर्गीकरण करना अधिक सुभीते-का होगा, एवं आगे लिखे हुए विवरणको समझनेमें कठिनाई नहीं होगी।

शरीरकी बनावटके आधार पर कीड़े ६ वर्गोंमें बांटे गये हैं—

१. अपक्ष (aptera)—इस वर्गके कीड़ेके पंख नहीं होते। कीड़ेके छः पैर होते हैं। इस वर्गका कीड़ा उड़ नहीं सकता।

२. सरल पक्ष (orthoptera)—इस वर्गके कीड़ेके ऊपरके पंख सरल और सकड़े होते हैं। नीचेके पंख कुछ चौड़े और महीन होते हैं। यह ऊपरके पंखोंकी तरह जमे होते हैं। इस वर्गके कीड़ेका मुख चोंचके समान होता है। इसे "चंचुमुख" संज्ञा देते हैं।

३. शिराल पक्ष अथवा जालपक्ष (neuroptera)—इस वर्गके कीड़ेके पंख पर नसोंका जाल बना रहता है। पंख बड़े और पारदर्शक होते हैं।

४. त्वकपक्ष (hymenoptera)—पंख छोटे, पारदर्शी और झिल्लीके समान मजबूत होते हैं। ऊपरके पंख नीचेके पंखसे कुछ बड़े होते हैं। पंखोंपर कुछ नसें भी होती हैं।

५ पट पक्ष (coleoptera) ऊपरके पंख मजबूत होते हैं। यह कीड़ा चंचुमुख होता है।

६. वल्क पक्ष (lepidoptera)—इस वर्गके कीड़े के पंखों पर बारीक धूलसी जमी होती है। पतंग रंग बिरंगे और मनोहारी होते हैं।

७. द्विपक्ष (Diptera)—इस वर्गके कीड़ोंके दो ही पंख होते हैं। मुख सुंडाकार होता है। कीड़ा अपनी सूंड पदार्थमें घुसाकर रसपान करता है।

८. अर्धपक्ष (hemiptera)—आधे पंख मोटे व मजबूत होते हैं और आधे महीन और नाज़ुक। मुख सुण्डाकार होता है।

९. अंचल पक्ष (thymeptera)—इस वर्गके कीड़े बहुत ही छोटे होते हैं। फूलोंमें यह अधिक पाये जाते हैं। इनके पंख झालरदार होते हैं। मुख सुण्डाकार होता है।

कीड़ोंका विकासक्रम

कीड़ोंका विकासक्रम दो प्रकारका होता है।

१—मादा अण्डे देती है। अण्डेमेंसे निकलनेवाले कीड़ेको परी (mymph) कहते हैं। परी त्वचा बदलती हुई बढ़ती रहती है। पूर्ण बाढ़को पहुंचनेके पहले उसे ६ या ७ बार त्वचा बदलनी होती है। परी और पूर्ण बाढ़ तक पहुंचे हुए कीड़ेके आकारमें बहुत कम अंतर होता है।

२—मादा अन्डे देती है। अण्डेमेंसे इल्ली निकलती है। यह इल्ली तब त्वचा बदलती हुई बढ़ती जाती है। पूर्ण बाढ़ होजाने पर वह कोश बनाती है और बिना हिले डुले कुछ समय तक कोशमें पड़ी रहती है और तब कीड़ा कोश तोड़ कर तितली या पतंगके रूपमें बदल जाता है।

जिस प्रकार मनुष्य शाकाहारी और मांसाहारी होते हैं, वैसे ही कीड़े भी शाकाहारी और मांसाहारी होते हैं। शाकाहारी कीड़े वनस्पति पर जीवन निर्वाह करते हैं और मांसाहारी कीड़े अन्य प्राणियोंपर। कुछ मांसाहारी कीड़े ऐसे भी हैं जो अपनी जातिके कीड़ोंको भी खाजाते हैं। मांसाहारी कीड़े दो प्रकारके होते हैं—

(अ) परोपजीवी

(ब) शिकार करनेवाले

परोपजीवी कीड़े दूसरे कीड़ोंके शरीरमें रहकर उन्हें खाते हैं। मादा किसी कीड़ेके शरीरमें अन्डे रखती है। अन्डेमेंसे निकली हुई इल्ली उस कीड़ेको खाती हुई उसीकी देहमें बढ़ती रहती है और उसे खोखला कर बाहर निकल आती है।

शिकार करनेवाले कीड़े उसी प्रकार अन्य कीड़ोंको खाते हैं जिस प्रकार शेर बिल्ली आदि अपनी शिकार खाते हैं। कुछ कीड़े ऐसे भी हैं जो किसी प्राणीके शरीरमें अपनी सूंड डाल कर रक्त पान करते हैं।

बरसातमें कीड़ोंका प्राबल्य अधिक रहता है। बरसातमें कीड़ोंकी वृद्धि भी खूब होती है; कारण कि इस समय न तो सरदी ही ज्यादा होती है और न गरमी ही। इसके अलावा इस समय उन्हें खाने को भी खूब मिल जाता है। ठंडके मौसममें बहुत कम कीड़े नज़र आते हैं। इससे यही अनुमान निकलता है कि या तो भोजन की कमी और मौसम बदलनेके कारण अधिकांश कीड़े मर जाते हैं या वह कहीं छिपकर निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। बहुत से कीड़े ठंड और गरमीके मौसममें बिना खाये पिये कहीं छिपकर निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। इस दशामें कीड़ा जिन्दा तो अवश्य रहता है। पर वह अपने स्थानसे बाहर बिलकुल नहीं हिलता। बरसात शुरू होते ही वह अपने स्थानसे बाहर निकल आता और फसल पर हमला करता है।

कीड़े फसलके शत्रु क्यों होते हैं ?

संसारमें प्रत्येक प्राणी को जीवन संग्राममें सम्मिलित होना पड़ता है। सशक्त की ही हमेशा जीत होती है और अशक्त बेचारे खेत रह जाते हैं। यही कारण है कि सालके आखिरमें बहुत कम कीड़े जीवित रह पाते हैं।

मौसमके बदलने, खुराककी कमी और दुशमनोंके कारण बहुत से कीड़े अकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं। यदि इस प्रकार कीड़ोंकी वृद्धिमें रुकावट न होती तो अब तक सारा भूमंडल कीड़ोंसे भर गया होता। प्रकृति माताने मनुष्य जातिके भलेके लिए कीड़ोंकी वृद्धिको रोकनेके लिए अनेक उपाय रचे हैं। मनुष्य अपने प्रयत्नसे कीड़ोंकी प्रजा-वृद्धिमे बहुत सहायता देता है। वह उन्हें खानेको भोजन और रहनेको स्थान देता है। तथापि प्रकृति देवी कीड़ोंकी वृद्धि रोके रहती है, वह साम्य बनाये रखती है। यही कारण है कि फसलको कीड़ोंसे ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचने पाता।

जब बहुत से कीड़ों का समुदाय मिलकर फसलको नुकसान पहुंचावे तभी उन्हें "फसलके शत्रु" कह सकते हैं। जिस प्रकार शत्रुका जोर चढ़ जानेपर उसका नाश करनेके लिए चढ़ाई करना अनिवार्य हो जाता है, उसी प्रकार कीड़ोंके बढ़ जानेपर उनसे फसलकी रक्षा करनेकी कोशिश करना हर एक किसानके लिए जरूरी है।

२—फसलकी रक्षाके उपाय

रोग हो जानेपर उसे दूर करनेकी कोशिश करनेकी अपेक्षा उस रोगको पैदा न होने देना ही अच्छा है। कीड़ोंका ज़ोर बढ़ जानेपर उनके नाशका उपाय करनेकी अपेक्षा कीड़ोंकी प्रजावृद्धि रोकनेकी कोशिश करना ही सबसे अच्छा है।

कीड़ोंकी वृद्धि रोकनेके कई उपाय हैं। उनमेंसे कुछ उपायोंपर, आगे चलकर, विचार किया जायगा—सुभीतेके लिए यह उपचार नीचे लिखे हुए विभागोंमें बांटे गये हैं।

१ कृषि-सम्बन्धी-उपचार।

२ यांत्रिक (Mechanical) उपचार।

३ कृमि नाशक औषधोपचार।

कृषि सम्बन्धी उपचार

सफाई—कीड़ोंकी वृद्धि रोकनेके लिए सबसे अच्छा उपाय खेतोंको साफ़ रखना है। खेतमें घास पात न उगने देना चाहिये और मेंड़परका भी काट डालना चाहिये। खेतमेंसे उखाड़ा हुआ खरपतवार मेंड़पर कदापि न डालना चाहिये, कारण कि इस घासमें कीड़ोंकी वृद्धि होती रहती है और फसल बोनेपर यही कीड़े उसपर हमला कर देते हैं। इसलिए खेतोंमें ऐसी जुताई करनी चाहिये कि खरपतवार उगने ही न पावें और उगे हुए घास पातको उखाड़ कर दूर फेंक देना चाहिये। अकसर देखा जाता है कि किसान खेतोंमें ज्वार मक्का आदि फसलोंके डंठल रहने देते हैं।

इन डंठलोंमें बहुत से कीड़े पाये जाते हैं। यह ठंड और गरमीका मौसम इन डंठलोंमें छिपकर बिताते हैं और बरसात आते ही उनमेंसे बाहर निकल कर अण्डे देते हैं। इस लिए हरएक किसानको चाहिये कि खेतोंमें मक्का ज्वार आदिके डंठल कदापि न रहने दे। मक्का तथा ज्वारके राड़े चूल्हे-में जलानेके काम भी आते हैं। इससे दो लाभ हैं। एक तो खेत साफ हो जायंगे और दूसरे जमा किये हुए राड़े जलानेके काम आयंगे।

फसलका हेर फेर—एक ही खेतमें लगातार कई वर्षों तक एक ही फसल बोना भी हानि-कारक है। क्योंकि उस फसलपर निर्वाह करनेवाले कीड़ोंकी संख्या उचित और पर्याप्त भोजन मिलनेके कारण हर साल बढ़ती जायगी और कुछ वर्षोंके बाद यह कीड़े इतने बढ़ जायंगे कि उस खेत की ही नहीं वरन् आस पासके सब खेतोंकी फसल नष्ट कर डालेंगे। इसलिए फस-लमें हेर फेर करते रहना चाहिये। परन्तु इस बातपर भी ध्यान रखा जाय कि आस पासके सब खेतोंमें एक ही प्रकार की फसल बोई जाय। यदि ऐसा न किया जायगा तो फसलमें हेर फेर करनेसे कुछ भी लाभ न होगा।

कल्पना कीजिये कि गोविंद और अनन्तके खेत पास पास हैं। पहले साल गोविंद अपने खेतमें गेहूं और अनन्त कपास बोवे और दूसरे साल गोविंद कपास बोवे और अनन्त गेहूं। गेहूंपर रहने-वाले कीड़े दूसरे वर्ष अनन्तके खेतमें जा रहेंगे और कपासके कीड़े गोविंदके खेतमें। यदि यह क्रम जारी रहा तो थोड़े ही वर्षोंमें कीड़ोंका ज़ोर इतना बढ़ जायगा कि दोनोंको ही नुकसान उठाना पड़ेगा।

जुताई—कीड़े अकसर मट्टीमें ४ या ५ इंच गहरे अण्डे रखते हैं। बहुत से कीड़े खेतोंकी मट्टीमें भी छिपकर रहते हैं। गहरी जुताईसे दो लाभ होते हैं। एक तो खरपतवारोंकी जड़ ऊपर निकल आती है, जिससे धूपसे जलकर नष्ट हो जाती हैं, और दूसरे मट्टीके अन्दर छिपकर रहनेवाले कीड़े अपने अपने बिलोंमेंसे भागने लगते हैं और इस दौड़ धूपमें अनायास ही पक्षियोंकी शिकार बन जाते हैं। जुताई-से कीड़ोंके अण्डे भी मट्टीके साथ ऊपर आ जाते हैं और सूर्यकी गरमीसे नष्ट हो जाते हैं।

मिली हुई फसल—एक ही जातिकी दो फसलें एक ही खेतमें बोना हानिकारक है। अकसर कपास और भिंडी तथा आलू और तमाखू एक ही खेतमें बोये जाते हैं। भिंडीपर रहनेवाले कीड़े प्रारंभमें तो भिंडीपर रहते हैं परन्तु बादमें ज्यों ही भिंडी सूखने लगती है कीड़ा कपासपर हमला करता है। यदि कीड़े नष्ट करनेके लिए इस प्रकार मिली हुई फसल बोई जाय तो अच्छा है। परन्तु यह काम विशेष सावधानीसे करना चाहिये। ज्यों ही भिंडी पर कीड़े अधिक हों त्यों ही उन्हें उखाड़कर जला डालिये।

आबपाशी—ऊपर लिखा जा चुका है कि बहुत कीड़े जमीनके अन्दर रहते हैं। खेतोंमें पानी देनेसे यह कीड़े अपने अपने घर छोड़ प्राण ले भाग खड़े होते हैं। इस दौड़ादौड़ीमें वह पक्षियोंकी शिकार बन जाते हैं। बहुत से कीड़े पानीसे मर भी जाते हैं। तथापि खेतोंमें पानी देनेसे ज्यादा लाभ नहीं होता। क्योंकि बहुत से पानीमें रहनेवाले कीड़ों-पर सिंचाईका असर उलटा होता है; सिंचाईसे उनकी वृद्धिमें सहायता मिलती है।

खाद—बहुत से खाद कीड़ोंपर जहरका सा असर करते हैं। पोटैशयुक्त खादसे फसलकी जड़ोंके आस पास रहनेवाले कीड़े मर जाते हैं। खादसे एक लाभ यह भी होता है कि फसल पुष्ट और मजबूत हो जाती है, जिससे कीड़े तथा अन्य रोग उसे उतनी हानि नहीं पहुंचा सकते। अंडी आदि कुछ प्रकारकी खली कीड़ोंपर जहरका सा गुण दिखाती है।

यांत्रिक उपचार

कीड़ोंकी पैदायशको रोकनेके लिए ऊपर लिखे हुए उपचार काममें लाये जाते हैं। तथापि एकबार

कीड़ोंकी प्रजा बढ़ जानेपर यह उपचार कुछ भी कामके नहीं रह जाते और इसीलिए दूसरे उपचार काममें लाये जाते हैं।

कीड़ोंको पकड़ कर जला डालना ही सबसे अच्छा उपाय है। परन्तु यह काम कठिन है और कीड़े पकड़ पकड़ कर जमा करनेमें वक्त भी ज्यादा लगता है। इसलिए यही काम दूसरी रीतिसे किया जाता है।

चारसे छः फुट लम्बी, दो फुट चौड़ी और चार पांच फुट गहरी थैली बनाई जाती है। इसे दो बांसोंसे बांधते हैं और तब चारों कोनोंपर रस्सी बांधकर लोग फसल परसे खींचते हैं। खींचनेवाले तेज चलते हैं। ज्योंही थैलीमें बहुत से कीड़े आ जाते हैं उसे खाली कर लेते हैं। इस प्रकार पांच सात रोज़ तक करते रहनेसे बहुत से कीड़े नष्ट किये जा सकते हैं। दिन भरमें पकड़े हुए कीड़े शामको जला डालने चाहिएं। जीवहिंसासे डरनेवाले लोग पकड़े हुए कीड़ोंको अपने खेतसे बहुत दूरीपर, जंगलमें छोड़ आते हैं। परन्तु ऐसा करना अच्छा नहीं। क्योंकि इससे कुछ लाभ नहीं होता। यह कीड़े फिरसे खेतोंमें वापस आ जाते हैं। अतः एक बार पकड़े हुए कीड़ोंको या तो जला डालना चाहिये या दो तीन फुट गहरे गड्ढे खोदकर जमीनमें गाड़ देने चाहियें।

थैलीके बदले धोती या चद्दरसे भी काम निकाला जा सकता है। धोतीके पल्ले दोनों तरफसे पकड़ कर पौदों पर थैलीकी तरह चलानेसे भी कीड़े पकड़े जा सकते हैं। परन्तु धोती या चद्दरसे कीड़े पकड़नेवालेको चाहिये कि कपड़े पर कोई चिपकनेवाला पदार्थ लेई आदि लगा दे ताकि कीड़े उससे चिपक जायं और जलदीसे उड़ न जायं।

बहुत से कीड़े उजालेको ज्यादा पसंद करते हैं। उजाला देखते ही वह पागलकी तरह उधर दौड़ पड़ते हैं। इसलिए अंधेरी रातको खेतोंमें कंदील जला कर भी कीड़े मारे जा सकते हैं।

खेतोंमें जगह जगह पर कंदील जलाये जायं। इन कंदीलोंके नीचे मट्टीके तेल और पानीके मिश्रणसे भरा हुआ बरतन रखा जाय। उजाला देखते ही कीड़े सब सुध बुध भूल कर उधर दौड़ पड़ेंगे और कंदीलके कांचसे टकरा कर तेलके बरतनमें गिर कर मर जायंगे।

अंधेरी रातको खेतोंकी मेड़ों पर आग जलाना भी अच्छा है। उजाला देखते ही कीड़े दौड़ पड़ेंगे और तब आगकी झाल (ज्वाला) में प्रवेश कर जल जायंगे।

"एंड्ज़ ट्रैप" से भी कीड़े पकड़े जाते हैं। इसे खेतोंमें रख देते हैं। और तब कीड़े गुड़ आदिकी सुगन्धसे आकर्षित हो मट्टीके तेलके बरतनमें गिरकर मर जाते हैं। साधारण किसानोंके लिए इसका खरीदना फायदेमन्द नहीं और यही सोच कर हमने इसके सम्बन्धमें सविस्तर नहीं लिखा है।

ऊपर लिखे हुए उपायोंसे भी यदि कीड़ोंकी प्रजा वृद्धि कम न हो और उनसे फसलको बहुत ही ज्यादा नुकसान पहुंचे तो फिर दूसरे उपाय काममें लाये जाते हैं। कीड़ोंको मारनेके लिए पौदोंपर ज़हरीली दवाइयां छिड़कते हैं। इन दवाइयोंको छिड़कनेवालेको विशेष सावधानी रखनी चाहिये। हमने आगे चलकर जिन दवाइयोंके बारेमें लिखा है वह सरल हैं तथा सब जगह मिल भी सकती हैं।

कीड़े मारनेकी दवाई

फसलको लगे हुए कीड़ों को मारने के लिए कई प्रकारकी दवाइयां काममें लाई जाती हैं। इन दवाइयोंका उपयोग बहुत कम किया जाता है। ज़्यादातर छोटे छोटे खेतों और बगीचोंमें ही इनका उपयोग करना फायदेमन्द है। किसान कीड़े मारनेकी दवाइयां जानते जरूर हैं, परन्तु धर्मके विचारसे उनका उपयोग बहुत कम करते हैं। अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशोंमें आजकल खनिज द्रव्योंका उपयोग ज्यादा किया जाता है। हम नीचे खनिज द्रव्योंके मिश्रण बनाने और उनके उपयोगके विषयमें लिखेंगे।

कीड़े दो प्रकारके होते हैं। १ चंचुमुख और २ सुण्डमुख।

चंचुमुख कीड़ेका मुख चोंचके समान होता है। यह कीड़े पत्ते आदि खाते हैं। इसलिए ऐसे कीड़ोंको मारनेके लिए जो दवाइयां काममें लाई जाती हैं वह पौधोंपर छिड़की जाती हैं। कीड़ा इन पत्तोंको खाता है और तब ज़हरसे मर जाता है।

सुंडमुखवाले कीड़े पौदोंका रस पीते हैं। इसलिए पत्तोंपर छिड़की हुई दवाईका उनपर कुछ भी असर नहीं होता। इसलिए उनको मारनेके लिए जो दवाई काममें लाई जाती हैं, वह दूसरी तरह की होती हैं। दवाई कीड़ोंके शरीरके रंध्रों द्वारा भीतर प्रवेश कर ज़हरका काम देती है। मट्टीका तेल भी अच्छी दवाई है। परन्तु खालिस तेल छिड़कने से पौदोंको नुकसान पहुंचता है।

चंचुमुख कीड़ोंके लिए दवाई

सोमल मिश्रण—सोमल तीव्र विष है। इसलिए ज्यादातर लेडक्रोमेट (Lead chromate) का ही उपयोग किया जाता है। यह पानीमें घुलता भी नहीं, ऊपर तंग करता है और पौदोंपर छिड़कनेसे पत्तों और डालियों पर जम जाता है। यही कारण है कि इससे पौदोंको नुकसान पहुंचनेका डर नहीं रहता। पानीमें घुलनेवाले विषके छिड़कनेसे पौदोंको नुकसान पहुंचनेका डर रहता है।

४० पौंड (रत्तल) पानीमें आधी छटांक सोमल या लेडक्रोमेट डालकर उसे खूब चलाओ ताकि वह पानीमें घुल जाय। इस मिश्रणमें थोड़ा सा गुड़ मिला दिया जाय तो और भी अच्छा है, क्योंकि गुड़के कारण यह ज्यादा वक्त तक पत्तोंपर टिका रहेगा*। कभी चूना भी मिलाया जाता है। आधे रत्तल दवाईमें ५०० सेर पानी, ५ पौंड चूना और १० पौंड गुड़ मिलाते हैं। यह मिश्रण तब पौदों पर छिड़का जाता है।

* कीड़े मारनेकी दवाइयां सुबह या शामको छिड़कनी चाहियें। पत्ते और डालियां अच्छी तरहसे तर कर देनी चाहियें। बरसातमें यह दवाइयां तभी छिड़कनी चाहियें जब पानीसे इनके जल्दीसे धुल जानेका डर न हो।

सुण्डमुखवाले कीड़ोंकी दवाई

साबुन, फिनाइल मट्टीका तेल आदि अच्छी दवाइयां हैं; तथापि इनमें साबुनकी दवाई बहुत ही सस्ती है।

१. मट्टी के तेलका मिश्रण—एक पाव बार सोप (बाजारमें मिलनेवाली कपड़ा धोनेकी लम्बी टिकिया) को ५ सेर पानीमें डालकर इतना उबालो कि साबुन पानीमें अच्छी तरह घुल जाय। ठंडा होने पर इस मिश्रणमें १० सेर मट्टीका तेल डालकर इतना चलाओ कि तेल अच्छी तरह मिल जाय और मिश्रण सफेद नज़र आने लगे। यह मिश्रण तब अलग रख दिया जाय। काममें लानेके पहले एक भाग मिश्रणमें सात भाग पानी मिलाओ और तब छिड़को।

२. क्रूड आयल इमलशन—यह दवाई बम्बई कलकत्ता आदि नगरोंमें मिलती है। ५ छटांक दवाई को २० सेर पानी मिलाकर काममें लाते हैं।

३. रालका मिश्रण—एक सेर राल और आध सेर वाशिंग सोडा (कपड़ा धोने का सोडा) को ५ सेर पानीमें डालकर आग पर रखो और थोड़ा थोड़ा ठंडा पानी मिलाते जाओ। परन्तु किसी हालतमें १० सेर से ज्यादा पानी न मिलाओ। ज्योंही मिश्रण साफ नजर आने लगे उसे आगपर से अलग करलो और तब बरतनमें भरकर रखदो।

२० सेर पानीमें $2\frac{1}{2}$ सेर मिश्रण मिलाकर काममें लाओ। यदि इसमें थोड़ा सा क्रूड आइल इमलशन मिला दिया जाय तो और भी अच्छा है। २० सेर मिश्रणके लिए ६ छटांक क्रूड आइल इमलशन काफी है।

तम्बाखूका सत—यह दवाई दोनों ही प्रकारके कीड़ों पर ज़हर का असर दिखाती है।

१ सेर तम्बाखूको २४ घंटे तक पानीमें भिगो रखो या आध घंटे तक पानीमें उबालो और तब

उसे दोनों हाथोंसे मसलकर छान लो। बादमें इसमें एक पाव कपड़ा धोनेका साबुन मिलाओ।

एक भाग मिश्रणमें सात भाग पानी मिलाकर काममें लाओ।

यदि ऊपर लिखे पदार्थोंमेंसे एक भी न मिले तो आध सेर साबुनको ५ सेर पानीमें उबाल कर मिश्रण तयार करलो। १५ भाग पानीमें एक भाग मिश्रणका मिलाकर काममें लाओ।

५. फिनाइल—नरम चमड़ी वाले तथा छोटे कीड़ोंके लिए १०० भाग पानीमें एक भाग फिनाइल मिलाकर छिड़कना चाहिये। परन्तु बड़े और कड़ी चमड़ीवाले कीड़ोंके लिए ६० भाग पानीमें एक भाग फिनाइल मिलाते हैं।

यह दवाई भाजी पाला पर छिड़की जाती है।

६. नीलेथोथेका मिश्रण—आध सेर नीलाथोथा और ६ छटांक कलईके चूनेको अलग अलग पानीमें घुलाओ और तब दोनोंको मिलाकर इतना पानी डालो कि सब मिश्रण २० सेर होजाय। इसे तब छानकर अलग रखदो। इस मिश्रणमें चाकूको डुबाओ। यदि उस पर दाग पड़ जाय तो कुछ चूना और मिलाओ। इस मिश्रणको टीन या तांबेके बरतनमें कभी न रखना चाहिये।

७. नेपथलीन—२ छटांक सरेस और आध सेर साबुनको ढाई सेर पानीमें घुलाओ। और तब एक दूसरे बरतनमें १० सेर मट्टीके तेलमें ४ सेर नेपथलीन मिलाकर धीरे धीरे गरम करो। इसके बाद इन दोनों मिश्रणोंको मिलाकर उसमें ढाई सेर पानी और मिलाओ।

यह मिश्रण बहुत अच्छी दवाई है और अपना असर भी जलदी दिखाता है। २४ घंटे तक तो यह ठीक रहता है परन्तु बादमें भाप बनकर उड़ने लग जाता है।

गमलेके पौदों या छोटे छोटे जमीनके टुकड़ोंके पौदोंपर तो उक्त दवाइयां झाड़ोंको पानी देनेके हजारेसे छिड़की जा सकती हैं। परन्तु बड़े झाड़ों तथा ज्यादा बड़े बगीचोंमें कृमिनाशक औषधियां छिड़कनेके लिए मशीनें बनाई गई हैं। यह मशीन कई प्रकारकी होती हैं।

ऊपर लिखी औषधियां पानीकी तरह पौदों पर छिड़की जाती हैं। परन्तु इनके अलावा कुछ औषधियां ऐसी भी हैं जो चूना, राख मट्टी, आदिमें मिलाकर पत्तों पर डाली जाती हैं। अधिकतर सोमल या लेड क्रोमेट (lead chromate) ही राख या मट्टीमें मिलाकर काममें लाते हैं।

चूना, राख, या मन मट्टीको माहू लगे हुए पत्तों पर डालनेसे भी फायदा होता है।

पौदोंके नीचे गंधक आदि विषैली चीजोंकी धूनी देनेसे भी कीड़े मर जाते हैं। (असमाप्त)

—शङ्करराव जोषी।

अंत्रके अन्य जीवाणूत्पादित रोग
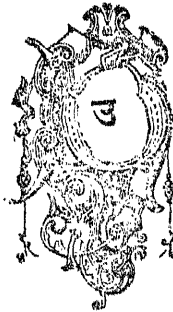
उदरामय (diarrhea) और अंत्र प्रदाह (inflammation of the intestine) के कारण छोटे बच्चों की प्रायः मृत्यु हो जाया करती है। सन् १९१७में बृटिश भारत में इन सब रोगोंसे मिल कर कोई २६०,९८४ मृत्यु हुईं। परन्तु इन अंकोंके एकत्रित करनेकी असंतोषजनक रीतिका ध्यान रखते हुए मृत्युकी वास्तविक संख्या इनसे कुछ अधिक ही होनेकी संभावना है। हमारे प्रान्तमें भी (संयुक्तप्रान्त) यह अनुमान किया जाता है कि सन् १९१४ से सन् १९१८ तक १०४००० बच्चे केवल इस एक रोगके कारण मरे। इस संख्याकी भयंकरता विज्ञानके पाठकोंको तभी मालूम होगी जब वह यह विचार करेंगे कि गत यूरोपीय महायुद्धमें केवल ३६, १६२ भारतीय सिपाही मारे गये। और इस संख्यामें यदि हम १४० ४२ * वह भी मिला लें जिनका कि

पता नहीं चला तो भी महायुद्धकी भारतीय मृत्यु संख्या ५०, २०४ ही रहती है। यह बात नीचेके चित्रसे स्पष्ट की जाती है।
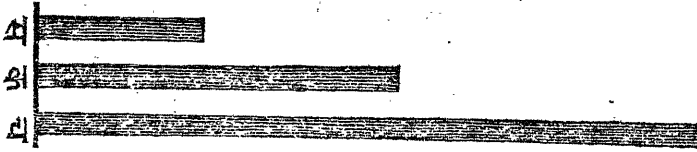
चित्र—४३

च—सन् १९१८में वृटिश भारतमें उदरामय और पेचिशसे मनुष्योंकी मृत्यु संख्या।

क—सन् १९१४ से १९१८ तक संयुक्तप्रान्तमें बच्चोंकी उदरामय और पेचिशके कारण मृत्यु संख्या।

स—गत यूरोपीय महायुद्धमें भारतीय सिपाहियोंकी मृत्युसंख्या।

यहां यह कह देना उचित है कि सरकारी रिपोर्टोंसे पता चलता है कि गरमियोंमें इन रोगोंसे अधिक मृत्यु होती हैं। अतएव इस ऋतुमें इनसे बहुत भय है—क्योंकि गरमीमें बच्चे दुर्बल हो जाते हैं और जीवाणु भी बहुत जल्दी पानी इत्यादिमें वृद्धि करते हैं। यह जीवाणु पानी दूध और अन्य खाद्य पादर्थके ज़रियेसे शरीरमें प्रवेश करते हैं। मक्खियां इस रोगके फैलानेमें विशेष सहायक होती हैं।

जीवाणु जो उदरामय पैदा करते हैं

यह संभव प्रतीत होता है कि कई भिन्न भिन्न प्रकारके जीवाणुओंसे किसी प्रकारके भी जीवाणु उदरामय और अंत्रप्रदाह पैदा कर दें। कभी कभी तो मवादोत्पादक (pusforming), Streptococcus और कभी *Bacillus pycyaneous* इसका कारण मालूम होते हैं। और कभी इसका कारण शायद बृहदंत्र निवासी जीवाणु भी होते हैं। संभव है कि टाइफायड ज्वर या पेचिशका आक्रमण सामान्य-उदरामय समझ लिया जाय। यह रोग संक्रामक है, इस लिए रोगोके मल मूत्र द्वारा निकले हुए सब जीवाणुओंको नाश कर देना चाहिये।

अंत्र संबन्धी जीवाणुओंकी निर्बल तथा बलवान जातियां

यह प्रायः मुमकिन है कि जीवाणुओंकी उन नाना प्रकारकी जातियोंमेंसे जो प्रायः साधारण तौरपर अंत्रमें पाई जाती हैं कुछ ऐसी भी हों जो दूसरोंसे अधिक शक्ति शाली हों। और यह भी संभव है कि इन जीवाणुओंकी नई जातियां, उन जातियोंकी अपेक्षा जिनके कि हम आदी हैं, अधिक पीड़ा देती हों। क्योंकि यह अकसर देखा गया है कि जो पानी उन लोगोंको जो उसे रोज इस्तेमाल करते हैं कुछ हानि नहीं करता, वही नये आगन्तुक (newcomers) और यात्रियोंको आंत्रिक पीड़ाका कारण हो जाता है। इसका कारण शायद यह है कि जो लोग उस पानीका रोज़ सेवन करते हैं (अर्थात् पीते हैं) वह उसके जीवाणुओंके आदी हो जाते हैं और उनके शरीर उन जीवाणुओंका प्रतिरोध (resist) करना सीख जाते हैं। परन्तु एक नया आदमी विशेष जीवाणुओंकी जातियोंको पराजित करनेमें आसानीसे सफल नहीं होता।

बच्चोंका उदरामय वा हैजा (cholera infection or summer compaint in children)

यह अभी पूर्णरूपसे परीक्षित नहीं हुआ है कि केवल एक ही जीवाणु इस रोगका कारण होता है। बहुत सी महामारियोंमें पेचिशका बैसिलस पाया गया है; लेकिन कई जगह अन्य जीवाणु भी इसका कारण होते हुए मालूम पड़े हैं। गरमीकी ऋतुमें गरमीके कारण बच्चे दुर्बल हो जाते हैं और जीवाणुओंके आक्रमणको नहीं रोक सकते। गंदा दूध या देरका रखा हुआ दूध, जो अकसर जीवाणुओंसे भरा होता है देनेसे यह रोग अकसर हो जाता है। जहां तक हो सके बच्चोंको ताज़ा दूध देना चाहिये। दूधके बर्तन तथा शीशियां अच्छी तरह धोनी चाहिये; खूब साफ़ रखनी चाहिये, और

सेर भर तेल ४ सेर आटा पहिले कभी न बिका था। सबसे अधिक शोककी बात यह है कि भाव जब एक बार चढ़ जाता है तो फिर कम होना जानता ही नहीं। पुराना भाव मानों एक स्वप्न-की बात थी। भाव दिनों दिन बढ़ता जाता है पर वेतन उसी हिसाब से कभी नहीं बढ़ सकता, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि चारों ओर दारिद्र्य और असंतोष फैल रहा है। दरिद्र और मध्य श्रेणीके लोगोंको बड़ी कठिनाई हो रही है और उनकी दशा दिन प्रतिदिन शोचनीय और असाध्य प्रतीत होती है। सरकारका धर्म है कि इस महान आपत्तिको रोकनेका शीघ्र उपाय करे क्योंकि यही इस समयके असन्तोषका मूल कारण है।

अनपढ़ लोगोंसे जब पूछा जाता है कि अंग-रेज़ी राज्य कैसा है तो उत्तर देते हैं "यदि अंग-रेजी राज्यमें मंहगी न होती तो यह सर्वोत्तम होता। हम ग़रीबोंका पेट नहीं भरता, इस कारण सदा कष्टमें रहना पड़ता है।" यह जनताकी राय है। सरकारको इस समस्या की पूर्ति करनी उचित है।

मंहगी दो प्रकारसे जा सकती है, या तो निर्यात बन्द कर दिया जाय, तब चीज़ोंका भाव सस्ता हो जायगा या उद्योग तथा व्यवसायकी उन्नति हो, जिससे लोगोंकी आमदनी बढ़ जाय। पहिला उपाय कठिनाइयोंसे भरा है, परन्तु दूसरा उपाय हर प्रकारसे सुगम और लाभदायक है। कहनेका तात्पर्य यह है कि या तो भावमें कमी हो जाय और हमारी आर्थिक अवस्था जैसी है वैसी ही रहे या भावकी तेज़ीके साथ ही साथ हमारी आमदनी भी उसी हिसाबसे बढ़े। तब हमारा कष्ट दूर हो सकता है। पर यह उस समय हो सकता है जब हमारा वाणिज्य हमारे ही हाथमें आ जाय। व्यवसायके चलानेवाले हमीं लोग हों और देशोन्नति की बागडोर हमारे हाथमें हो।

औद्योगिक अवस्था

नक्शोंके डाइरेक्टर (Director of Statistics)का कथन है कि युद्ध चमड़ेके उद्योगके निमित्त बड़ा हितकर हुआ। निस्सन्देह युद्धके समय तक यह बात सर्वाङ्ग सत्य थी। यदि इस समय भी बिना कमाये हुये चमड़ेका निर्यात बन्द करके उसके स्थान पर कमाया हुआ चमड़ा और चमड़ेकी बनी हुई चीज़ें बाहर जाने लगें तो युद्ध के हम लोग अवश्य कृतज्ञ होंगे। हम लोगोंने बारम्बार विचार प्रकट किया है कि खनिज पदार्थोंका बाहर जाना हमारे लिए अत्यन्त हानिकारक तथा अनु-चित है। किसी देशकी खानोंके खनिज पदार्थ वहांके गड़े हुए धन हैं जो प्रकृतिने उस देशको दिये हैं। यदि वह निकाल कर दूसरे देशोंको भेज दिया जाय तो उनसे माल बनानेका लाभ दूसरे देशवालोंको होगा। जब तक हम खनिज पदार्थों-का माल बनानेके योग्य होंगे तब तक खानें बिल-कुल ख़ाली हो जायंगी। इस कारण खानोंके उद्यमकी उन्नति जब तक विदेशियोंके हाथमें है तब तक देशको बड़ी हानि हो रही है।

केवल रुई कातना और कपड़ा बुनना एक ऐसा उद्यम है जिसको हम देशी उद्यम कह सकते हैं। देशी रुईके उद्यममें युद्धके पहिलेकी अपेक्षा ४६ फीसदी उन्नति हुई है। देशी कपड़ेका निर्यात भी पहिलेकी अपेक्षा ८ लाख गज़से सन १९१७ और १८ में १८ लाख गज़ पहुंच गया था। इस उन्नतिके होते हुए भी इस देशका मुख्य आया-त कपड़ा है। जापान इस व्यापारमें बाज़ी मारनेकी बड़ी कोशिश कर रहा है। हमारे उद्योगका भविष्य अन्धकारमय हैं, क्योंकि मशीन नहीं बना सकते और मशीनके दाम लड़ाईके पहिलेकी अपेक्षा अब बहुत अधिक हैं। यह एक ऐसी समस्या है कि जिससे कपड़ेके उद्यमकी उन्नतिमें बड़ी बाधा पड़ रही है। अङ्गरेज सौदागर जो एशियामें कपड़ेका कारख़ाना चलाते हैं वह इस समय अपने कामको बढ़ा रहे हैं जिसमें

सिक्कों की कमी है, जिसका बहुत बड़ा अंश सरकार को निर्यातके निमित्त प्रयोग करना पड़ता है। सरकार अब यह कहती है कि यदि सिक्के इसी तरह ग़ायब होते रहेंगे तो हम को भारतीय प्रचाल मुद्रा तथा विनिमय मन्तव्यमें परिवर्तन करना पड़ेगा। हम लोगों की भी यही इच्छा है, क्योंकि सब बातों को देखते हुये यह स्पष्ट होता है कि यदि लोगोंके पास जमा हुआ रुपया प्रचार में आजावे तो हमारी कठिनाइयां कम न होंगी। इसका परिणाम केवल यही होगा कि चीज़ोंका भाव अत्यन्त तेज़ हो जायगा और नोटों पर बट्टा लगना प्रारम्भ हो जायगा, जैसा कि पहिले कई देशोंमें हुआ है। हम वाणिज्यमें प्रायः नोटोंका व्यवहार कर रहे हैं। निःसन्देह नोट एक सीमा तक व्यापारके कामके निमित्त अच्छे हैं पर यदि नोट और रुपये दोनों प्रचारमें आ जायं तब भाव को अवश्य तेज़ कर दें। अतएव इस बातकी आवश्यकता है कि इतने नोट निकाल कर कम कर दिये जायं और केवल इतने नोट प्रचालमें रखे जायं कि उनके बदलेमें सरकार रुपया बिना किसी कठिनाईके दे सके। इस समय नोटोंके आधिक्यसे सरकार उनके बदले रुपया नहीं दे सकती। याद रखना चाहिये कि जब तक सरकार नोटोंका रुपया सुगमतासे देने योग्य न होगी तब तक लोग अपना जमा किया हुआ रुपया जैसा कि बहुत से अङ्गरेज़ोंका अनुमान है नहीं निकालेंगे। पहिली बात जो कि आवश्यक है वह यह है कि सरकार की मुद्रा-प्रचालकी पुष्टिमें लोगोंका पूर्ण विश्वास हो, जो युद्धके समय डाँवाडोल हो गया था। युद्धकालमें हमको अवसर मिला था कि हम नोटोंके गुणोंको भली प्रकार समझें; अतएव वाणिज्यके हितके निमित्त यह आवश्यक है कि नोट सिक्कों की अपेक्षा बहुत कम न कर दिये जायं, पर साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि जो रुपया लोगों के पास व्यर्थ जमा है वह व्यवहार में आजाय। समय आगया है कि सर्वसाधारणको अर्थ शास्त्र का कुछ ज्ञान होना उचित है, जो उनको समाचार पत्रों द्वारा मिलना चाहिये। बिना अर्थ शास्त्र के ज्ञानके लोग इस बातको कदापि नहीं समझ सकते कि यदि सोना और चांदी गहनों में खर्च किया जाय तो देश तथा लोगों को इससे क्या लाभ वा हानि पहुंच सकती है।

यह अति आवश्यक है कि सरकार प्रचालको व्यवस्थाको परिवर्त्तित करके इसका भली भांति सुधार करे, पर इस विषयमें हाथ लगानेसे पहिले कई बातोंका ध्यान रखना निहायत ज़रूरी है। पहिली बात जिस पर ध्यान देना आवश्यक है वह यह है कि यह मालूम होना चाहिये कि सरकारने प्रति प्राणी कितना सिक्का बनाया है। कदाचित यह अधिक न होगा, यदि यह २०५) प्रति मनुष्य है। यदि हम इसके निरर्थक व्यवहारको कम कर दें तो बड़ा लाभ हो सकता है। यूरोप अमेरिका में लोग सजावट और गहनेके निमित्त हिन्दोस्तानियों की अपेक्षा अधिकतर रुपया खर्च करते हैं; परन्तु भेद केवल इतना ही है कि उनकी विलास की वस्तुयें ऐसी हैं जिनसे उनके देशों के व्यसायोंको बड़ी सहायता मिलती है। उन लोगोंकी विलासता की वस्तुएं अच्छे कपड़े मेज़ कुर्सी, अलमारी आदि, सोनेकी जञ्जीर और रकाबियां और इसी तरहकी दूसरी चीजें हैं। इन चीजोंका जितना व्यवहार किया जाता है उतना ही उन चीजोंका व्यवसाय तथा धन्धा बढ़ता है। और उन लोगों का रुपया मुद्रा मण्डी में बराबर प्रचलित रहकर वहां के व्यापार की वृद्धि में सहायक होता है।

भाव की तेज़ी

सन १९१७ इसवीमें वर्षा बहुत अच्छी हुई जिस से अनाज खूब पैदा हुआ और अति अधिक बाहर भेजा गया। सन् १९१८ की वर्षा ऐसी कम हुई कि अनाज तथा दूसरी वस्तुओं का भाव इतना तेज हो गया कि इसके पहिले कभी सुना नहीं गया था। एक रुपये का चार सेर दूध, ८ छटांक घी

है, जिसका प्रभाव देशीय वाणिज्य की उन्नति और आमदनीपर बराबर पड़ता रहा है। इस रुपये से जो मुनाफा होता है सब बाहर चला जाता है। इसके अतिरिक्त सरकार हर साल बहुत सा माल इङ्गलैण्डमें खरीदती है जिसका दाम यहाँ से भेजना पड़ता है। तीसरा मद उन अङ्गरेजोंकी पेन्शन का है जो यहां पहिले काम कर चुके हैं और इसके लिए सरकारको हर साल लगभग १० करोड़ रुपया भेजना पड़ता है। इन सब मदों-को मिलाकर सरकारको प्रत्येक वर्ष ३० करोड़ रुपया भेजना पड़ता है। इस खर्चे की प्रत्येक वर्ष बढ़नेकी सम्भावना है, जैसा कि प्रतीत होरहा है, क्योंकि पहिले की अपेक्षा यह खर्चा अब बहुत बढ़ गया है। जैसे जैसे अधिक विदेशी मूलधन-का प्रयोग इस देशमें होता रहेगा और हरसाल अधिक माल खरीदा जायगा और ज्यादा कर्मचारी अङ्गरेज़ यहां नौकर रखे जायेंगे वैसे ही वैसे यह खर्चा बढ़ता रहेगा। इसके अतिरिक्त अङ्गरेजी व्यापारियों अथवा पूंजी पतियों ने यहां बहुत रुपया अनेक उद्योग तथा धन्धोंमें लगा रखा है। इस पूंजी का मुनाफा भी इङ्गलैण्ड भेजा जाता है। इन सब को जोड़कर जो धन भारत को हर साल अदा करना पड़ता है वह एक बड़ी भारी रकम हो जाती है।

उपरोक्त कारणों से भारत से इतना माल बाहर जाना चाहिये अर्थात् निर्यात इतना होना चाहिये कि उपरोक्त सब रुपयेको अदा कर सके। गत दो वर्ष में हमारा निर्यात यहां तक बढ़ा हुआ था कि सब विदेशी ऋण चुकाने पर भी हमको ४२ मिलियन पौण्ड या ६७ करोड़ रुपया पाना था। यह इस देश की ओर से इङ्गलैण्डको उधार दिया गया था। अब यह प्रश्न कि ६७ करोड़ रुपया क्या भारत में नहीं आया और यदि नहीं आया तो जिन लोगों का माल विदेशियों ने मंगाया था उनको उसका दाम नहीं दिया गया। निस्संदेह जिन लोगोंने माल बाहर भेजा था उनको दाम मिल गया। भारतकी सरकारने उनका रुपया अदा कर दिया। दूसरा प्रश्न यह हो सकता है कि भारत सरकारके पास इतना रुपया उनको देनेके लिए कहां से आया। पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिये कि यह ६७ करोड़ रुपया सरकार का ही हो गया, जिसने बहुत से नोट छपा कर यहां के माल भेजनेवालों का रुपया अदा कर दिया। कुल नोट इस समय १५० करोड़ रुपये से अधिक के हैं और युद्ध के पहिले से अब तिगुने से अधिक हैं।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रचलित मुद्रा की कठिनाइयां बढ़ने लगीं। देशीय टकसाल बहुत जोर शोर से दिन रात काम करती थीं। जो चांदी बाहर से आती थी उसका सिक्का तुरन्त तैयार किया जाता था। तब भी नोटोंके भुननेमें कठिनाई प्रतीत होती थी। जो सिक्के जारी किये जाते थे वह फिर मुद्रा प्रचारमें लौट कर नहीं आते थे। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिये कि बहुत से सिक्के एरशिया, मेसो-पोटामिया, पेलेस्टाइन (Persia, Mesopotamia, Palastine) तथा ईस्ट अफ्रीकामें गये। निस्सन्देह कुछ सिक्के लोगोंने जमाकर लिये और वह वाणि-ज्य प्रचारसे निकल गये। युद्ध जनित शङ्काके कारण जो सिक्का लोगोंके हाथ लगता उसको जमा करते पर बंकमें रखनेका साहस न करते थे। इसके अतिरिक्त नोट इस प्रकार बनाये गये कि सरकारके पास जितना सिक्का था उससे कई गुने बढ़गये। सन १९१९ में कुल चांदीके सिक्के जो सरकारके पास थे मय उस चांदीके जो अमेरिकासे आरही थी नोटोंके तिहायी थे। एक समय नोट चांदीके सिक्केसे पंच गुने हो गये। जब यह दशा हो रही थी तब मुद्रा-मण्डीमें नोटों-के भुनाने की कठिनाई और हलचल आवश्यक थी। यह हलचल अब भी बन्द नहीं है, क्योंकि जिन कारणोंसे यह हलचल मची थी वह इस समय भी वर्तमान हैं। हलचल का मुख्य कारण

दिये परन्तु अविश्वासी लोगोंको इसका निश्चय करा देना बड़ा कठिन था। तिसपर भी और भी पहले इतिहासको खोजनेसे पता लगा कि यही केतु पहले १४५६, १३७१, ११४५, १०६६में भी देखा था।

हेलीकी भविष्यद्वाणी और केतुके प्रकट होनेके कालके बीचमें गणित विज्ञानमें बड़ी भारी उन्नति हुई। गुरुत्वाकर्षण विषयक अद्भुत गणनाएँ होने में आयीं। इसी बीचमें क्लेरोट और लालैण्डने भी गणनासे उक्त धूमकेतुका मार्ग तथा सूर्यके समीपतमताका काल पहले से ही गणना करके रख दिया। अन्ततः केतु प्रकट हुआ। सब भविष्यद्वाणियां पूरी हुईं और वैज्ञानिकोंको केतुके मार्गमें आनेवाले महाग्रहोंकी शक्ति जांचनेका पूरा मौका मिला।

१७५८के पश्चात् यही केतु १८३५ में प्रकट हुआ। वैज्ञानिकोंने इसके भी विषयमें वैसे ही भविष्यद्वचन कहे थे।

इसके पश्चात् १९१०में प्रकट हुआ। इस वार वैज्ञानिकोंने इस केतुकी बड़ी गहरी खोज की।

धूमकेतु और उल्कापात

बेलाके केतुके विषयमें हम पहले लिख आये हैं। यह वही केतु है जो १८४६में फटकर दो भागों में दीखा। अपने अगले आगमनकालमें वेही दोनों भाग १८५२में फिर दीखे। १८७२में जब पृथ्वी बेलाके धूमकेतुके मार्गमें से गुजरी तब बड़ी भारी उल्कावृष्टि देखनेमें आयी। यही वृष्टि १८८६की नवम्बरमें प्रकट हुई। निःसन्देह यह वृष्टि धूमकेतुसे सम्बद्ध है। कदाचित् केतुके फट जानेसे यह उल्कापिण्ड उसीके खण्ड हों जो उसके मार्गमें बिखरे रूपमें गति कर रहे हों।

एक विशेष दृश्य

जब १८८२का केतु प्रकट हुआ उसके साथ बहुत से छोटे छोटे उज्वलकण चिनगारियोंके सदृश चमकते थे। यही दृश्य १९०८की ३ नवम्बरको प्रकट हुए केतुमें दीखते थे।

वराहमिहिरने प्रायः बहुत से केतुओंको भिन्न भिन्न ग्रहोंका पुत्र कहा है और उनकी भिन्न भिन्न संख्याएं गिनायी हैं; इसका क्या तात्पर्य है। हम समझते हैं कि इसका तात्पर्य वही है जो यूरोपियन विद्वानोंने भी वर्गीकरणमें रखा है। जैसे बहुत से धूमकेतु भिन्न भिन्न ग्रहोंके आकर्षणसे खिंचकर अपना मार्ग नियत कर चुके हैं; वह मानों उसी ग्रहके परिवार बन चुके हैं।

सभी स्वल्पकालमें लौट आनेवाले धूमकेतु जो ३ से ८ वर्षकी अवधिमें लौट आते हैं प्रायः बृहस्पतिके क्रान्तिमार्ग तक जाकर लौट आते हैं। वह उसीकी गुरुतासे खिंचे हुए उसके परिवारमें हैं। ऐसे लगभग १६ केतु हैं। इसी प्रकार शनिके परिवारमें दो केतु हैं। उनमेंसे एकका क्रान्तिकाल १२ वर्ष है। व्योमक ग्रहके परिवारमें ३ केतु हैं। वरुणग्रहके परिवारमें ६ केतु हैं, जिनमें वह केतु भी सम्मिलित हैं जो ७० या ८० वर्षमें लौटते हैं; जिनमें प्रसिद्ध हेलीका धूमकेतु भी है।

उपसंहार

इस प्रकार हम पाश्चात्योंकी की हुई धूमकेतु विषयक आलोचना देते हुए देखते हैं कि पौर्वात्य विद्वानोंने भी धूमकेतुओंका निरीक्षण तो खूब किया था परन्तु उनके लेख स्वतः इतने रहस्यमय हो गये जितने धूमकेतु स्वतः हैं। विद्वान् पाठक स्वतः इसका परामर्श करेंगे।

भारतकी औद्योगिक अवस्थाकी परीक्षा

भारत यद्यपि औद्योगिक उन्नतिके पथ पर है तथापि इसको मूल धन तथा पूँजीकी बड़ी आवश्यकता है। अब तक रेलवे तथा दूसरे सार्वजनिक हितकर कारखानोंके लिए यह देश अपनी पूंजी नहीं लगा सका है। इसको विवश होकर इंगलिस्तानसे बहुत ऋण लेना पड़ा

पिण्ड था। परन्तु फट जाने पर दोनों भागोंमें छोटी छोटी पूंछें थीं। फट जानेके बादसे मूलपिण्ड कुछ छोटा हो गया था और छोटा भाग बड़ेकी अपेक्षा (१० फरवरी) अधिक उज्वल था और ५, ६ दिन तक बराबर उज्वलता बढ़ती गयी। फिर मूलपिण्डकी दीप्ति बढ़ी और छोटे भागकी घटने लगी। दो दिनके बाद ही दोनों समान दीप्तिके हो गये। २२ अप्रैलको वह धूमकेतु लुप्त हो गया। लुप्त होनेके पूर्व छोटा भाग पहले अदृश्य होगया था और उसके अदृश्य होते ही उसकी ३ पूंछें निकल आयीं, जिनमें १२० अंशोंका अन्तर था। एक पूंछ उसी दिशामें थी जिसमें कि छोटा साथी था।

इस विषयमें यह संशय किया गया है कि कदाचित् यह साथी १८५२में प्रकट हुआ केतु ही हो। यदि ऐसा है तो वह सदाके लिए पृथक् है, और परस्पर की दूरी भी पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीके लगभग होगी।

३. फाईका धूमकेतु।—२२ नवम्बर १८४३ को म० फाईने पेरिसकी वेधशालामें एक धूमकेतुका पता लगाया, जो अतिपरवलय मार्गपर गति करता देखा गया। परन्तु बादमें डा० गोल्डशिमट्ने सिद्ध कर दिया कि उक्त धूमकेतु ७½ वर्षमें पुनः लौट आता है और उसका मार्ग दीर्घवृत्त है। वह सूर्यसे अधिकतम दूरताकी दशामें बृहस्पतिके कान्तिमार्गके समीप होता है। इसका पहले कभी दर्शन नहीं हुआ था। यही कल्पना की गयी है कि अपने परवलयाकार कान्तिमार्ग पर गति करते समय बृहस्पतिके प्रबल आकर्षणसे वह अपने मार्गसे विचलित हो गया और अपनी लम्बी मार्गयात्राको छोड़ छोटे दीर्घवृत्त मार्गमें घूमने लगा।

४. लैक्सलका धूमकेतु—यह केतु १७७०के जून मासमें धनुष राशिमें प्रकट हुआ और अगस्तमें लुप्त होगया। और ६ वर्षके बाद फिर १७७६ में प्रकट हुआ। यह अनुमान किया गया कि यह केतु भी बृहस्पतिसे खिंचकर ५½ वर्षके बाद अपने स्वल्प दीर्घवृत्तका यात्री हो गया है। लैक्सलमहाशयने सिद्ध कर दिया कि बृहस्पतिके मार्गमें यह फिर लौटा है, अतः जब इसके जाते हुए बीचमें बृहस्पतिसे भेंट न होगी तभी यह रोड़ अनन्तमार्गका पथिक हो जायगा और से अब ऐसा ही हुआ। वह केतु फिर लौटकर न[illegible]

इसी कोटिमें और भी बहुत से छोटे छो[illegible] हैं, जिनके लौटनेका काल बहुत अधिक नहीं। उनको पृथक् लिखकर हम लेख लम्बा न करेंगे।

इनके अतिरिक्त ऐसे विशाल केतु भी पाये गये हैं जो चिरकालके बाद दर्शन देते हैं। इनका दूसरी बार देख लेना एक जीवनमें सम्भव नहीं है। कोई सैकड़ों और सहस्रों वर्षोंकी आयुवाला योगी भले ही देख पावे।

ऐसे धूमकेतुओंके विषयमें न्यूटनने लिखा है कि "मैं धूमकेतुओंका परिवर्तन काल, कान्तिमार्गके व्यासादिका निर्णय आनेवाले विद्वानोंके लिए छोड़ता हूँ। वह चिरकालमें लौटनेवाले केतुओंसे तुलना करके नियत करेंगे।"

इन शब्दोंमें न्यूटनने चिरकालिक धूमकेतुकी सूचना दी। इसी आधार पर अगले विद्वानोंने भी श्रम किया और सबसे अधिक सफलता हेली महाशयको हुई। उसने देखा कि १६८२के प्रकट हुए विशाल धूमकेतुका मार्ग वही है जो पहले १६०७और १५३१में प्रकट हुए केतुओंका था। इसपर उसने यह भविष्यद्वाणी की कि वही केतु फिर ७५, ७६ वर्षमें लौट कर आवेगा। १६८२ का केतु लाहायर, पिकार्ड, हवेलियस और फ्लेमस्टीड आदि ने देखा था। १६०७का केप्लर और लांगोमेण्टसने देखा था। १५३१का केतु म० पेरीअपैलने देखा था। हेलीने कहा कि वह केतु अब १७५८-या ५९में प्रकट होगा। हेली महाशय तो इसको सच अनुभव करते

भी प्रमाणित होगयी। इसीसे इसका नाम एनकेका धूमकेतु पड़ गया।

यह केतु सूर्यसे समीपतम दशामें बुधके मार्गके भीतर होता है और दूरतम दशामें मङ्गल और बृहस्पतिके मध्य लघु ग्रहोंके मार्गमें होता है।

इसके लौट आनेके कालकी सूक्ष्मगणना की गयी तो पता लगा कि इस धूमकेतुके १० चक्रोंके बाद ही लगभग १ दिनका क्षय हो गया। इससे यह अनुमान किया गया कि इसका मार्ग स्वतः छोटा होता जाता है। इसके कारणकी खोज की गयी। ग्रहोंका आकर्षण इसमें कोई कारण न सिद्ध हुआ, फिर यही अनुमान किया गया कि ईथर या आकाश तत्व ही इसकी गतिमें बाधक है।

इसी आधारपर यह एक सम्भावना न्यूटनने प्रस्तुतकी कि किसी समयमें यह सब धूमकेतु अपना मार्ग छोटा करते करते सूर्यमें ही गिर जायंगे; यदि सूर्यके तापने समीप आते ही इनका रूपान्तर न कर दिया तो।

यदि यही क्रान्तिमार्गका निरन्तर घटते जानेका भाग्य आकाश तत्वसे बाधा होनेके कारण होना सत्य है तो सूर्यके ग्रहोंपर भी यही बड़ी विपत्ति अवश्य आवेगी। परन्तु ग्रहोंके विषयमें यह बात घटती नहीं देखी गयी। कदाचित् अत्यन्त घन शरीरके ग्रहोंपर इसका प्रभाव इतना न्यून है कि गणनातीत है और धूमका विरलतम देह इस आकाश तत्वकी बाधासे बाधित होता है।

यह केतु सूर्यके समीपतम आते हुए जब बुधके क्रान्ति मार्गके भीतर आजाता है; निरीक्षणसे देखा गया है कि उस समय ग्रहकी गतिमें थोड़ा भेद आगया। पण्डित एनकेने १८३८ में इसकी गणना करके बुधके पिण्डपुंज (mass) का निर्णय किया। लेपलेस महोदयके निर्णय और इस निर्णयमें १२ और ७ का अन्तर है। यह समस्या अब भी बराबर हल की जा रही है।

२. बेलाका धूमकेतु—१८२६ में एम. बेला महाशयने बोहेमिया स्थानमें इस केतुको देखा। यह १७७२ और १८०६ में प्रकट हुए केतुओंके मार्गपर था। और भी निरीक्षणोंसे पता लगा लिया कि इसका फिर लौटकर आनेका नियत काल ६ वर्ष ८ मास है। इसका क्रान्तिमार्ग ग्रहोंके क्रान्तिमार्गसे कुछ कोण बनाता है। सूर्यकी समीपतम दशामें पृथ्वीके क्रान्तिमार्गके समीप ही आजाता है और दूरतम दशामें बृहस्पतिके मार्ग तक पहुंच जाता है।

१८३२ इसवी के निरीक्षणमें इस तारेको देखकर बड़े आश्चर्य जनक परिणाम प्राप्त हुए। सूर्यके समीतम दशामें यह धूमकेतु पृथ्वीके क्रान्तिमार्गको काटते हुए एक बिन्दुपर इतना समीप हो कर जाता है कि दोनों मार्गोंका अन्तर पृथ्वी और केतुके व्यासार्धों से भी कम होता है। यदि कभी ऐसा घटित हुआ कि केतु और पृथ्वी दोनों एक ही समयमें उस बिन्दुसे गुज़रे तो अवश्य दोनोंकी मुठभेड़ होगी। यह धूमकेतु बिना पूंछका, अण्डाकार, धूमखंडके सदृश है। उसका व्यासार्ध २१००० मील है। १८३२में २६ अकतूबरके दिन धूमकेतु पृथ्वीके क्रान्ति मार्गसे १८६०० मीलके अन्तरसे निकल गया। अर्थात् यदि दोनों एक समयमें उस पातबिन्दुपर आगये तो दोनोंके केन्द्र १८६०० मील दूर होंगे। पृथ्वीका व्यासार्ध ४००० मील है; अतः निश्चयसे पृथ्वीके व्यासका ६४०० मील भाग केतुमें धंस जायगा अर्थात् पृथ्वी $\frac{3}{4}$ से अधिक धूमकेतुमें लिपट जायगी।

१८३२ में ऐसी टक्करकी सम्भावना की थी परन्तु ठीक मौके पर पृथ्वी कुछ कुछ बच गयी।

इसी धूमकेतुके विषयमें एक बड़ी अद्भुत बात देखनेमें आई। वह यह कि १८४६ ई० में यह दो भागोंमें विभक्त हुआ हुआ प्रकट हुआ। दोनों भागोंका मार्ग भिन्न भिन्न था। गणना करनेसे उनका परस्पर अन्तर पृथ्वीसे चान्दकी दूरीका $\frac{2}{3}$ था। पहले यह धूमकेतु बिना पूंछका, अण्डाकृति धूममय

इसलिये प्रथम धूमकेतुओंपर बहुत कम ध्यान दिया गया। यह भी पहले निश्चय न था कि उनकी गणना उल्काओंमें करें या पृथक् रचनाका नमूना माना जावे। उनके प्रकट होनेका रङ्ग स्थल वायुमण्डलको मानें या आकाश मण्डलको जहां कि अन्य दिव्य परिव्राजक गति कर रहे हैं। पहले भी कैसलादि या कई धूमकेतुओंके विषयमें बहुत जांच पड़ताल हुई। यद्यपि उनके मार्गका कोई निर्णय न हुआ तो भी उनके प्रकट होनेका काल इतिहासमें बहुत अच्छी प्रकार सुरक्षित है और बहुतोंके प्रकट होनेके नक्षत्रों तकका उल्लेख मिलता है।

उन्हींके आधारपर निरीक्षण करनेसे तथा उनकी और सूर्य पृथ्वी तथा ग्रहोंकी पारस्परिक स्थितिकी आलोचनासे यही निर्धारित किया गया कि उनका मार्ग परवलय चापका कोई भाग है जिसकी नाभि सूर्य है। बस इतना निर्णय ही इस बातके लिए पर्याप्त प्रमाण है कि धूमकेतु अवश्य गुरुताबलके शासनमें हैं। इनके क्रान्तिमार्गकी समस्या तिस पर भी हल नहीं हुई। यह सन्देह बना ही रहा कि क्या इनका मार्ग दीर्घवृत्त है, परवलय चाप है या अतिपरवलय है।

ग्रह अपनी क्रान्तिमार्ग पर निरन्तर नियमसे गति करते हैं और बराबर अपना एक नियतरूप ही रखते हैं, परन्तु धूमकेतुओंका कोई नियत वृत्ताकार क्रान्तिमार्ग नहीं है और धूममय या वाष्पमय शरीरका भी कोई नियत आकार नहीं रहता; अतः उनका पहचानना बड़ा कठिन हो जाता है। यदि उसका मार्ग भी ग्रहोंकी तरह वृत्ताकार होता तो अवश्य अपने सारे मार्गमें दीखते रहते। इसके विपरीत वह केवल अपने मार्गके उसी भागमें दीखते हैं जो भाग सूर्यके समीपसे होता हुआ गुज़रता है, उसके बाद फिर लुप्त हो जाते हैं। इससे उनके मार्गमें सन्देह ही रह जाता है कि मार्ग परवलय है या अतिपरवलय चाप है या दीर्घवृत्त है।

यदि यह निश्चय हो जाय कि केतुका मार्ग निस्सन्देह परवलय चाप या अतिपरवलय चाप है तो स्पष्ट है कि धूमकेतु अवश्य सौर जगत्से बाहरकी सृष्टिका भाग है, जो सूर्यके आकर्षणके बलसे खिंचके सौर जगत्की सीमामें घुसकर और पार्श्व परिक्रमा करके सदाके लिए निकल जाता है। इस प्रकारसे वह केतु नियत काल परिवर्ती कभी नहीं हो सकते।

यदि धूमकेतु नियत काल परिवर्ती हुए तो निश्चयसे एक बार प्रकट होकर फिर भी प्रकट होंगे या यदि एक बार प्रकट हुए तो उनका मार्ग अवश्य दीर्घवृत्त होगा। फलतः धूमकेतुका लौट आना या दूसरी बार प्रकट होना ही उसके मार्गका पूरा निश्चायक है।

इसी आधार पर निरीक्षण और गणना करनेसे बहुत से केतुओंका समान मार्ग और उसी नियत कालके बाद प्रकट होना देखकर नियत किया गया कि एक ही धूमकेतु इतनी बार प्रकट हुआ और उसका क्रान्तिकाल इतना है।

१७ वीं सदीके अन्त तक भिन्न भिन्न देशोंके इतिहासोंमें लगभग ४०० धूमकेतुओंका उल्लेख पाया गया, जिनके वर्णनोंकी ऊहापोह तथा गणना आदि मिला मिलाकर लगभग ६० केतुओंका क्रान्तिकाल नियत किया गया।

न्यूटनके बाद हेलीने अपने अधिक शक्तिशाली यन्त्रोंसे धूमकेतुओंका निरीक्षण किया और और भी विद्वानोंने इस क्षेत्रमें बड़ी गवेषणा की। इसका परिणाम हम भिन्न भिन्न प्रसिद्ध धूमकेतुओंके विषयमें क्रमसे लिखते हुए बतलायेंगे।

१. एनकेका धूमकेतु—मार्सिलस स्थानपर महोदय एम. पान्सने १८१८ ई० में एक धूमकेतु देखा। म० अरेगोने इस केतुको वही बतलाया जो १८०५ में प्रकट हुआ था। म० एनकेने बर्लिनमें इसके मार्गका पूरा पता चलाया। और उसका क्रान्तिकाल १२०० दिन बतलाया। इस निर्णयकी सत्यता इसी केतुके १८२२ में प्रकट होनेसे और

क्षीण होता रहता है। और कभी, एक समय धूम-, केतु सर्वथा ही मलियामेट हो जायगा।

केतुके शरीरकी रचना

केतुके शरीरकी रचनाके विषयमें बहुत ही कम ज्ञात है। परन्तु नवीन गवेषणाओंने सिद्ध कर दिया है कि धूमकेतु और उल्कावृष्टियोंमें परस्पर बड़ा सम्बन्ध है। इससे इसी परिणामपर पहुंचते हैं कि धूमकेतु सूक्ष्मकणोंका पुंज है और उसका प्रत्येक कण प्रकाशमान वैसीयपदार्थ-से आवृत है। धूमकेतु और उल्काओंके परस्पर सम्बन्धपर बेलाके धूमकेतुके इतिहाससे बड़ा प्रकाश पड़ता है।

धूमकेतुओंका कान्तिमार्ग

धूमकेतुओंके कान्तिमार्गके विषयमें लिखदेनेके पूर्व हम यह आवश्यक समझते हैं कि मार्गोंका साधारण गुण पहले वर्णन कर दिया जाय। न्यूटनने अपने गुरुत्वाकर्षणके नियमकी व्याख्यामें यह स्पष्ट कर दिया था कि गुरुत्वाकर्षणसे नियन्त्रित होकर गति करनेवाले पिण्डोंका कान्ति-मार्ग या तो वृत्त, या दीर्घवृत्त या परवलय या अतिपरवलय होगा। इन तीनों मार्गोंका स्वरूप प्रथम समझ लेना आवश्यक है।

१. दीर्घवृत्तमार्ग ग्रहोंकी गतिका मार्ग प्रायः स्वल्पदीर्घ वृत्त है। दीर्घवृत्त अपनी उत्केन्द्रताके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारके हो सकते हैं। वृत्त भी एक ऐसा दीर्घचाप कहा जा सकता है जिसकी एकसेन्ट्रिसिटी शून्य है। निम्न लिखित चित्रमें अ, आ दीर्घवृत्त है, जिसकी एकसेन्ट्रिसिटी बहुत अधिक है। (देखो चित्र ५३)

यदि कोई पिण्ड इस प्रकारके मार्गपर गति कर रहा हो और उसके मार्गका धरातल भी वही हो जो ग्रहोंके कान्तिमार्गोंका है, तो उसका मार्ग कहीं ग्रहोंके मार्गको काटेगा। और उस पिण्डकी सूर्यसे अधिकतम दूरी अवश्य ग्रहोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होगी।

२. परवलय (Parabola)—चित्रमें पत्र पा परवलय दर्शाया है। इसके दो अपरिमित सजातीय बाहु हैं, जो दोनों ओर आकारमें सदृश हैं। और स नाभिके समीप मिलती हैं। प पा की दिशामें दोनों शाखाएं निरन्तर बढ़ती जायंगी। और अ आ अक्षके प्रायः समानान्तर ही रहेंगी और कभी न मिलेंगी। वह समानान्तर रेखाओंके सदृश अनन्त दूरीपर भी नहीं मिलतीं।

इस मार्गपर गति करनेवाला पिण्ड सूर्यकी प्रदक्षिणा बार बार नहीं कर सकता। उसकी प्रदक्षिणा भी नियत कालिक नहीं कही जा सकती। किसी नियत दिशा पा प से किसी अनन्त दूरीसे आकर सौर जगतमें प्रविष्ट हो सकता है। और सौर आकर्षणसे प्रभावित होकर और सूर्यके अत्यन्त समीप होकर दूसरे मार्ग प पा से सदाके लिए लौट जायगा। इस मार्गके यात्रीका केवल एक ही बार दर्शन हो सकेगा।

६. अतिपरवलय (Hyperbola) चित्रमें ह्हा मार्ग अतिपरवलय है। इसकी दोनों शाखाएं परवलयकी भांति अक्षके समानान्तर न जाकर निरन्तर खुलती ही रहती हैं। फलतः इस मार्गपर गति करनेवाले पिण्ड भी हा ह दिशासे गुरुत्वबलसे खिंचकर सौर जगतमें अनन्तदूरीसे आरहा होगा। और सूर्यके समीपसे गुजर कर फिर हहा मार्गसे सदाके लिए अनन्त पथका यात्री हो जायगा। इस परिव्राजकके भी एक ही बार दर्शन होंगे।

इतनी भूमिकाके अनन्तर अब फिर प्रकृत विषय पर आते हैं।

जब गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त इतना सर्वसम्मत भी नहीं हुआ था तभी से विद्वानोंने इसका उपयोग धूमकेतुओंपर भी लगाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु धूमकेतुओंके सभी काम अन्य ग्रहोंसे सर्वथा विलक्षण हैं। इनकी गति, स्थिति, प्रकट होना आदि सभी अन्य ग्रहोंसे विलक्षण हैं।

का आयतन सूर्यसे परे हटते समय और भी बड़ा हो जाता है। इस विचित्र सम्भावित घटनाकी व्याख्या करनेके लिए बहुत सी स्थापनाएं की गयी हैं। महाशय वाल्ज़ (Valz) कहते हैं कि जब धूमकेतु सूर्यके समीप आकर सूर्यके वातावरणमें प्रविष्ट होता है तो उसके प्रबल दबावसे धूमकेतुका विरल वाष्पमय देह सिकुड़कर छोटा हो जाता है और दूर चले जाने पर यह दबाव नहीं रहने से शरीर फिर फैल जाता है। जैसे अपराधी डाकू हवलदारोंके कड़े नियन्त्रणमें दबके रहता है और थोड़ा छोड़ दो कि फिर अपनी करतूतोंसे हर जगह मशहूर होने लगता है। इस स्थापनाकी पुष्टि नाना प्रकारसे होने लगी। परन्तु इस स्थापनामें बड़ी भारी भयानक भूल की गयी है। वह यह कि इस स्थापनाके पहिले यह मान लेना पड़ेगा कि १म धूमकेतुका शरीर स्थितिस्थापक द्रव्य सेबना है; २य धूमकेतुके शरीरमें सूर्यका वातावरण प्रविष्ट नहीं हो सकता। इस स्थापनाको माननेके लिए यह भी मानना पड़ेगा कि धूमकेतुकी स्थितिस्थापक देह एक गिलाफ़से मढ़ा हुआ है और सूर्यका वातावरण उस गिलाफ़में घुस नहीं सकता। परन्तु यह असम्भव है। इसी प्रकारकी अन्य भी कतिपय स्थापनाएं रेतकी दीवारकी तरह खड़ी हो हो कर टूट गयीं। अन्तमें सबसे प्रबल स्थापना यह है कि:—

धूमकेतुके सूर्यके बहुत समीप आ जानेसे सूर्यके प्रचण्ड तापके कारण वाष्प या धूममय द्रव्य इतना स्वच्छ और पारदर्शक हो जाता है कि वह अत्यन्त अदृश्य और तरल हो जाता है। और ज्यों ज्यों दूर हटता जाता है त्यों त्यों इसकी तरलता कम हो जानेसे घनता अधिक हो जाती है और स्वच्छता और पारदर्शकता भी घट जाती है। फलतः अर्धपारदर्शक और धुन्धला हो जाता है। जैसे जलीय वाष्प देगचीके मुखपर अधिक तप्तावस्थामें दृष्टि गोचर नहीं होती प्रत्युत् कुछ दूर हट जानेपर प्रगट होती है; उसी प्रकार धूमकेतुका शरीर दूर होनेपर अधिक दीखने लगता है।

पुच्छकी रचना

पुच्छकी भौतिक रचनाके विषयमें रूसके विद्वान् ब्रेडखिनका कथन है कि भिन्न भिन्न आकारकी पूंछे भिन्न भिन्न मूलतत्वोंकी बनी हुई हैं। लम्बी सीधी पूंछ केवल उज्जनके कणकी होती हैं। बड़ी और कलगीके आकार की पूंछ कर्बोज्ज पदार्थोंकी बनी होती हैं। छोटी और वक्राकार पूंछ लोह वाष्पकी बनी होती हैं, जिसमें सम्भवतः सोडियम और अन्य पदार्थोंका मेल भी होता है।

महाशय ब्रेडखिनके सिद्धान्तका पोषण बहुत कुछ सप्तरंगीय परीक्षणोंने भी किया है, यद्यपि परिणाम बहुत सन्दिग्ध हैं। कलगीकी आकारवाली बहुत सी पूंछों में कार्बोज्ज पदार्थों की विद्यमानता पायी गयी है। हेलीके धूमकेतु तथा अन्य केतुओं की सप्तरंगी परीक्षासे यह ज्ञात हो गया है कि धूमकेतुओंमें कर्बोज्ज पदार्थकी सत्ता किन्हींमें है और किन्हींमें नहीं है। पुच्छमें न्यून तापक्रमपर कर्बन एकौषिद (carbon monoxide) की सत्ता पायी गयी है और शिरोभागमें वही गैस अत्यधिक ऊंचे तापक्रम की पायी गयी है।

पुच्छकी स्थिति और उत्पत्ति

धूमकेतुकी पुच्छ सदा सूर्यसे परे ही रहती है। इसका कारणानुसन्धान बहुत प्रकारसे किया गया और अन्तिम निश्चय यही है कि इसकी पुच्छमें उसी जातिकी विद्युत् है जिस जातिकी विद्युत् सूर्यमें है। सजातीय विद्युत परस्पर भागती हैं। इस कारण धूमकेतुकी पूंछ भी सूर्यसे सदा परे ही भागती है। बहुतोंका मत है कि पुच्छका घटकद्रव्य भी धूमकेतुके कन्दल भागसे ही निकलता है और सूर्यके प्रभावमें आकर शिरोभागसे पूंछ और भी वेगसे निकलती है। इस स्थापनाके अनुसार धूमकेतुका शरीर निरन्तर

निजका प्रकाश नहीं है; प्रत्युत सूर्यके प्रकाशसे वह उज्वल दिखाई पड़ते हैं। परन्तु उक्त दोनों पहचान धूमकेतुओं पर नहीं लग सकतीं। न उनकी कला ही बदलती हैं और न उनके उपग्रह ही हैं, जिनकी छाया उनपर पड़े। परन्तु जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि धूमकेतुमें ठोस द्रव्य भी होता है, जिसको पार करके सूर्यका प्रकाश नहीं जा सकता तब तक कला परिवर्तनकी परख नहीं लग सकती।

केवल धूम वाष्प या मेघका पुञ्ज स्वतः प्रकाशमान न भी हो तो भी दूसरे के प्रकाश से चमकता दिखाई दे सकता है और कलापरिवर्तनका दृश्य उसमें नहीं दीख सकता। क्योंकि अत्यधिक विरल होनेसे उसकी सारी गहराईमें सूर्यका प्रकाश व्याप जाता है और अत्यन्त विरल मेघखंडके सदृश सब भागोंसे प्रकाशित दीखता है। इसलिए धूमकेतुओंके विषयमें अभी तक यह सन्देह बना है कि आया धूमकेतु मेघखण्डकी तरह सूर्यके प्रकाशके ऋणी हैं या स्वतः प्रकाशसे युक्त हैं। इस बातके निर्णयके लिए आरेगो महाशयने एक विधि प्रस्तुत की है।

यह स्पष्ट है कि यदि किसी पिण्डकी दीप्ति न बदले तो उसकी प्रतीयमान दीप्ति सब स्थानों पर एक जैसी रहेगी। इसी प्रकार यदि धूमकेतुकी अपनी दीप्ति हो तो और सूर्यसे प्रकाशका ऋण न लिया हो तो उनके दूर जाते हुए प्रतीयमान (apparent) दीप्ति कम न होनी चाहिये। यदि वह अदृश्य भी हों तो प्रकाशकी न्यूनताके कारण न हों बल्कि प्रतीयमान आकार लघुताके कारण अदृश्य हों। परन्तु यहां बात उलटी है। धूमकेतु ज्यों ज्यों दूर जाता है ज्यों ज्यों उसका प्रकाश एकदम कम होने लग जाता है। और प्रकाश बहुत विरल होनेके कारण ही दीखना भी बन्द हो जाता है। फलतः धूमकेतु स्वतःप्रकाशमान नहीं है। परन्तु विवाद इतने पर समाप्त नहीं हो गया। कुछ विद्वानोंका कथन है कि धूमकेतुका प्रकाश कुछ तो सूर्यका प्रकाश ही प्रतिफलित होकर दीखता है। परन्तु कई अवस्थाओंमें धूमकेतुका स्वतः प्रकाश भी होता है। सप्तरंगी परीक्षण (spectroscopic examination)से जाना गया है कि धूमकेतुका सारा प्रकाश प्रतिफलित प्रकाश नहीं है, परन्तु बहुत बार उसके प्रकाशमें सहसा ऐसे परिवर्तन देखे गये हैं जिसमें सूर्यकी समीपता आदिका कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी कभी धूमकेतु अपने साधारण प्रकाशकी अपेक्षा ७, ८ गुणे प्रकाशसे सहसा चमक उठा है और कुछ घण्टोंके बाद ही वह फिर इतना मध्यम हो गया कि अपने साधारण प्रकाशसे भी कम हो गया। इससे उसकी स्वतः प्रकाशता प्रमाणित होती है। यह प्रकाश धूमकेतुके अपने घटक द्रव्यसे ही उत्पन्न होता है। वराहमिहिरने धूमकेतुओंके स्वतःप्रकाशताकी दृष्टिसे दो विभाग किये हैं। एक कृष्ण, दूसरे दीप्त; जैसे मृत्युके पुत्र धूमकेतु कृष्ण हैं। धराके पुत्र किरणोंसे युक्त हैं। वरुणके पुत्र केतु चन्द्रकी तरह चमकते हैं अर्थात् प्रतिक्षिप्त प्रकाशसे चमकते हैं। अग्निविश्वरूप नामक केतुओंके देह ज्वाला और लपटोंसे युक्त हैं*।

दूर जाते हुए धूमकेतुकी आकार वृद्धि

यह सुनकर आश्चर्य होगा कि धूमकेतुका आकार सूर्यसे परे हटते समय बड़ा हो जाता है। यह बहुत देर तक माना जाता रहा कि धूमकेतु सूर्यके समीप जाता हुआ आकारमें बड़ा होता जाता है; क्योंकि धूमकेतुका गैसमय शरीर सूर्यके प्रचण्ड तापसे भौतिक नियमके अनुसार अवश्य फैल जाता होगा। परन्तु वर्तमान गवेषणाओंने सिद्ध किया है कि धूमकेतुओंका दृश्यमान शरीर-

---

*(क) वक्रशिखाः मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः १२

(ख) दर्पण वृत्ताकाराविशिखाः किरणान्विताः धरातनयाः १३

(ग) विंशत्याधिकसमन्यच्छत मग्नि विश्वरूप संज्ञानाम् ।
तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम् ॥ २३ ॥

(घ) कङ्कानाम वरुणजाः द्वात्रिंशद् वंशगुल्म संस्थानाः ।
शशश्रभासमेत : तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः ॥ २६ ॥

१८१० धूमकेतु की पूंछोंमें एक विशेषता और भी दिखाई दी। उसकी वक्र बृहत् पुच्छके अतिरिक्त शिर से दो श्वेत सीधी धारें और दिखाई देती थीं। यद्यपि धूमकेतुका विषय सभी सन्दिग्ध है तो भी यह निस्सन्देह है कि इसकी भिन्न भिन्न प्रकारकी पूछोंकी भौतिक रचना भी भिन्न भिन्न होगी।

वराहमिहिरने इन सूक्ष्मधार स्वरूप सीधी पुच्छका वर्णन भी किया है, जैसे मणिकेतुके वर्णनमें लिखा है कि इसके सिरमें छोटा सा तारा होता है और इसकी चोटी श्वेत सीधी जैसी स्तन से निकलती हुई दूधकी धार हो उसी प्रकार होती है। *

धूमकेतुका पिण्ड द्रव्य (mass) आयतन (volume और घनता (density)

धूमकेतुके पिण्ड द्रव्यका परिमाण तभी लगाया जा सकता है जब कि धूमकेतु और अन्य ग्रहोंके पारस्परिक गुरुत्वाकर्षणके कारण एक दूसरे पर होनेवाले प्रभावोंका ज्ञान हो। यह बात स्पष्ट है कि शुक्र, बुध, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, व्योमक, और वरुण यह सभी ग्रह समीप से गुजरते धूमकेतुओं पर बड़ा भारी प्रभाव डालते हैं। इस प्रभावकी गणना तक भी की गयी है। परन्तु यह भी देखा गया है कि धूमकेतुके पिण्ड द्रव्यका छोटे से छोटे ग्रहपर भी इतना प्रभाव नहीं देखा गया कि जिसकी सूक्ष्म गणना भी की जा सके; चाहे धूमकेतु उनके कितने ही समीप पहुंच जाय।

यह ठीक है कि धूमकेतुओंकी अत्यधिक संख्या निरन्तर अपने मार्गपर यात्रा करते हुए प्रकट होती है। यह भी ठीक है कि उनमें से बहुत से धूमकेतु अपने नियत मार्गपर गति करते हैं और नियत कालके बाद पुनः दर्शन देते हैं। यह भी ठीक है कि कतिपय धूमकेतु सौर जगतमें गति करते हुए सूर्यके समीप आकर सूर्य बिम्बको चुम्बन तक कर जाते हैं। तो भी सौर जगत्के अन्य ग्रहों—क्या महाग्रह और क्या लघुग्रह और क्या क्षुद्रग्रह और उपग्रह सभी—की गति पूर्ववत ही रहती है। मानों उनके पास कोई पिण्ड प्रकट ही नहीं हुआ। धूमकेतुओंका तिल भर भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत ग्रहोंका धूमकेतुओं पर बहुत ही प्रभाव पड़ता है, क्योंकि धूमकेतु सदा दीर्घवृत्त और परवलय (Parabola) और अतिपरवलय (Hyperbola) मार्गमें गति करते हैं। इससे यह तो स्पष्ट है कि धूमकेतुका घटकद्रव्य अवश्य ही भारवान है, जिस पर सूर्य और ग्रह उपग्रहोंकी गुरुताका बल अवश्य प्रभाव करता है और साथ ही धूमकेतु भी ग्रहोंपर गुरुताका बल लगाता होगा; तो भी उसका प्रभाव हमारी सूक्ष्म गणनाके भी बाहर है। गुरुताके कारण पारस्परिक प्रभाव उनके घनद्रव्य के अनुपातमें हुआ करता है। इसलिए धूमकेतुका पिण्ड द्रव्य छोटे से छोटे भी ग्रहके बराबर नहीं है।

धूमकेतुओंका आयतन (volume) ग्रहों से इतना अधिक होता है जितना कि ग्रहोंका घनद्रव्य (mass) धूमकेतुओं से अधिक होता है। फलतः धूमकेतुओंकी घनता ग्रहोंकी अपेक्षा इतनी न्यून है कि जिसका हिसाब भी लगाना कठिन है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि धूमकेतुकी घनता पृथ्वीकी घनताका $\frac{१}{१००००००}$ वें भाग से भी कम होनी चाहिये। नहीं तो धूमकेतुका प्रभाव अवश्य देख पड़ता।

धूमकेतुओंका प्रकाश

ग्रह स्वतः प्रकाशमान नहीं हैं, क्योंकि अभ्यन्तरीय ग्रहोंका कला परिवर्तन होना दीख पड़ता है और शेषोंके बिम्बोंपर उनके उपग्रहोंकी छाया पड़ती दिखाई देती है। इससे उनके अन्दर अपना

---

* सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः ।
ऋज्वी शिखास्यशुक्ला स्तनोद्‌गता क्षीरधारेव ॥ ४४ ॥

(२) व्योमक (uranus) कोई विद्वान यूरेनस ग्रहका नाम अरुण रखते हैं। परन्तु अरुण शब्द यूरेनस शब्दके सदृश अवश्य है, परन्तु मूल शब्दार्थका लेश नहीं है। इसीसे मैंने व्योमक नाम रखा है (Uranus = आकाश = व्योम)

धारणा है कि धूमकेतुके उदय होनेसे देश उजड़ जाते हैं, राजा मरते हैं, राज्य पलट जाते हैं और बड़े उपद्रव होते हैं। भारतीय प्राचीन विद्वानोंकी तथा आधुनिक पोथी पत्रावाले ज्योतिषियोंकी अभी तक यही धारणा है। पुराने यूनानी लोग भी इसके उदय और अस्त, गति और स्थितिसे बहुत फलादेश किया करते थे। धूमकेतुके विषयमें यह कहना कि वह किसी देश विशेषके लिए सुभिक्ष या दुर्भिक्षका कारण हो सकता है या उपद्रव और राज्य क्रान्तिमें कारण हो सकता है, हमें बहुत हास्यास्पद प्रतीत होता है। इस विषयमें हम इतना ही कह सकते हैं कि फलादेशप्रिय विद्वान जिस रूपमें धूमकेतुओंका सम्बन्ध भूमण्डलकी घटनाओंसे जोड़ना चाहते हैं उस रूपमें मान लेना तो मूर्खता है। हां उनके, मार्गमें गति करते हुए, परस्पर समीप आनेसे भौतिक संसारमें परिवर्तन होने सम्भव हैं। उनका कहना वास्तवमें कुछ विश्वास्य हो सकता है, जिसका कुछ नमूना हम दर्शाते हैं। *

कल्पना कीजिये अपने मार्गमें भ्रमण करते हुए एक कोई बड़ा भारी धूमकेतु पृथ्वीके समीपसे गुज़र रहा है। उसके आकर्षणसे पृथ्वीके वायुमण्डलमें या समुद्रमें कोई विशेष विक्षोभ उत्पन्न हुआ। या उसकी पूँछमें पृथ्वीका प्रवेश हो जानेसे कुछ विषाक्त गैस वायुमण्डलमें रह गयीं। इससे किसी देशमें प्राणियोंको रोग और ताप उत्पन्न हो जाय या धूमकेतुकी सहचरी उल्काओंकी वृष्टि हो जाय तो कुछ किसी नगरमें पत्थर बरस गये या कुछ मृत्यु हो गयीं; इस प्रकारकी घटना तो मानी जा सकती हैं†। परन्तु शेष बातोंमें धूमकेतुको कारण नहीं मान सकते। धूमकेतुके वास्तविक वर्णनसे आपको विदित हो जायगा कि जितना गरीब और भोला धूमकेतु है उतना गगनचारी कोई भी पिण्ड नहीं है। उसकी रचना तथा रूप रंगमें वस्तुतः कोई ऐसी चीज़ नहीं जो किसीके लिए हानिकारक सिद्ध हो। धूमकेतुको व्यर्थ ही बदनाम करनेका प्रयत्न किया गया है। हिन्दुस्तानमें जैसे सवेरे ही सवेरे क्षपणक या बौद्ध सन्यासीका मुख देखना लक्ष्मी विनाशका हेतु समझा जाता है चाहे वह सन्यासी बिचारा किसीका भी बुरा न चाहता हो और किसीका धन अपनी कुचालियों से ही बरबाद हो गया हो तो भी दोषी क्षपणक ठहराया जाता है। उसी प्रकार धूमकेतुको भी दोषी ठहराया गया है। भारतीय ज्योतिषियोंका यह घोर अन्याय सहन नहीं किया जा सकता। अब हम धूमकेतुके विषयमें पाश्चात्य अनुशीलनका दिग्दर्शन कराते हैं।

यूनानके प्राचीन तत्ववेत्ता और उनके अनुयायियोंकी यही धारणा थी कि धूमकेतु पृथ्वी मण्डलसे ही उत्पन्न होते हैं, जो ऊपर वायुमण्डलमें जाकर जलने और चमकने लग जाते हैं। बहुत लोंका यह विश्वास था कि धूमकेतु कोई सजीव प्राणी हैं, जो अपनी स्वच्छन्द उच्छृङ्खल गतिसे आकाशमें विहार करते हैं। यह विचार भारतके प्राचीन विद्वानोंके इस विचारसे मेल खाता है कि सूर्यचन्द्र और तारे सभी पुण्यात्मा तपस्वी देवता हैं और धूमकेतु उनके पुत्र हैं; जैसा कि गत लेखमें लिखा गया है। बहुत प्राचीन कालसे धूमकेतुका प्रकट होना शुभाशुभ फलका सूचक और अधिकतः उत्पात और उपद्रवका सूचक ही समझा जाता था। १७वीं सदी तक बराबर यही विश्वास ज़ोर पकड़े हुए था कि धूमकेतुओंकी गति सदा अनियत है। आखिर यह विचार उत्पन्न हुआ कि धूमकेतु चापीय मार्गमें गति करते हैं। हेली महोदय सबसे प्रथम इस बातके संस्थापक हुए कि बहुत से धूमकेतु ग्रहोंके सदृश गति करते हैं और उनका क्रान्ति मार्ग अण्डाकृति दीर्घवृत्ताकार है। वह नियत कालके बाद

* परन्तु इन भौतिक परिवर्तनोंका मनुष्यके शरीर और मस्तिष्क पर और फलतः उसके व्यवहार, स्वास्थ्य आदि पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह अनिश्चित है। अतएव फलादेश को निरी मूर्खता बतलाना युक्ति संगत नहीं। —सं०

† क्या यह बातें फलादेशमें शामिल नहीं हैं ?—सं०

भेद बतलाने को राजी नहीं हुआ था अब आनकर कहा कि "प्राणदाता यह लोग आपको धोखा दे रहे हैं। इन्होंने अभी उस स्थानको नहीं बतलाया है कि जहां डाइनेमाइट गड़ी हुयी है।" इस जर्मनके उस स्थानके बतलाने पर वहांसे कई मन गड़ी हुयी डाइनेमाइट निकाली गई। इस पर शेष जर्मनोंको कमांडरने बहुत डाँटा और कहा कि "तुम विश्वासघातक हो। तुम हमें धोखा देना चाहते थे।" यह जर्मन गिड़ गिड़ाकर हाथ पैर जोड़ने लगे और कहने लगे कि "बाइबिलकी सौगन्द हमको नहीं मालूम था। यह साहब जर्मन कप्तान हैं। इन्हींने गड़वाकर डाइनेमाइट रखी होगी या डाइनेमाइट रखवाई होगी। इसी लिए इन्हें मालूम थी।" जर्मन कप्तान साहब कहने लगे कि "यह लोग जर्मन रैशनालिस्टिक हैं। कमांडर महाशय इनकी सौगन्दका विश्वास न करें।" सर्दार कमांडरने कहा कि "यह लोग सब बेधर्मी हैं। जर्मन कप्तान नाक कान काटकर छोड़ दिया जाय और शेष जर्मन कैदिये नाक काटकर छोड़ दिये जायं शेष जर्मन कैदियोंको दोनों हाथोंमें अङ्क शिथिलीकर टीका लगाकर छोड़ दिया जाय।"

इस प्रकारसे जब लीप्जिगका क़िला भी खाली करवा लिया और सब नगर पर भारतीयोंका क़ब्ज़ा होगया तब आस्ट्रियाकी सेना भी जर्मनोंकी सहायताके लिए लीप्जिगके निकट आगई और खिसिर अपनी टूटी फूटी सेना लेकर उनमें जा मिला। खिसिर और आस्ट्रियाकी सेनाके कमांडर प्रिंस ग्लाष्टमें आपसमें सलाह होने लगी। प्रिंस ग्लाष्टने खिसिरसे युद्धका हाल पूछा। खिसिर ने कहा कि क्षयके अतिरिक्त जय कहीं नहीं हुई। प्रिंसने कहा कि "आख़िर कुछ बतलाओ क्या हुआ है। हम आगये हैं हम और आप दोनों मिलकर शत्रुको मार निकालेंगे।"

खिसिरने कहा—"मैं बड़ा कृतज्ञ हूं और आस्ट्रिया की जनताको धन्यवाद भी देता हूं पर प्रियवर आप किससे लड़ेंगे? आपको कौन सा शत्रु बतलावें? आप वायुमंडलसे लड़ेंगे, आकाशसे लड़ेंगे, पृथ्वीसे लड़ेंगे कि किससे? इस युद्धमें हमारे सामने तो कोई शत्रु कभी आया ही नहीं। देखते देखते आकाशसे केवल कोई आपत्ति आगिरती है और हमें प्राण बचा कर भागना पड़ता है।"

प्रिंसने खिसिरको दिलासा दिलाया और उसका उत्साह बढ़ाया। फिर युद्धकी बात-चीत होने लगी।

(शेष आगे)

धूमकेतु

(पाश्चात्य आलोचन)

पूर्वीय विद्वानोंकी धूमकेतु विषयक कल्पना गत लेखमें दिखा दी गयी है। इस लेखमें हम पाश्चात्य विद्वानोंके पुराने विचार तथा नवीन विचारोंकी तुलना करेंगे।

नित्य प्रति गगन-मण्डलको देखते देखते हजारों लाखों तारोंकी नाना आकार प्रकारकी रचना, रंग आदि देखकर भी उनके प्रति उपेक्षा हो जाती है। परन्तु कभी कभी ऐसी विशेष घटना चित्तको आकर्षित करती है कि सर्वसाधारण सब काम छोड़कर आकाश निहारने लगते हैं। उल्कावृष्टिकी बौछारोंको कौन नहीं देखना चाहता? सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहणकी घटनाएं कितनी कौतुक उत्पन्न करती हैं। और अचानक धूमकेतुका प्रकट होना तो कितना विक्षोभ तथा उत्कण्ठा पैदा करता है। जब से धूमकेतु उदित होता है और जब तक अस्त नहीं हो जाता तब तक उसको देखते देखते चित्त नहीं भरता। हालमें ही १९१०में विशालपुच्छ-धारी हेलीका धूमकेतु प्रकट हुआ था। उसको देखकर सम्पूर्ण जनताके हृदय तरङ्गित होगये थे।

पुराने संसारमें धूमकेतुओंका प्रकट होना बड़ा अनिष्ट-जनक माना जाता था। और अब भी अन्ध-विश्वासका मूल जमा है। सर्वसाधारणकी यह

है तो चौड़े और जब कम तो सकड़े बरहे बनाते हैं। बरहे खेतकी ढाल देख कर बनाये जाते हैं। उन्हें सदा ऊँचे स्थानोंपर बनाते हैं। वह ढालपर आड़े बनाये जाते हैं। उनकी संख्या जहां तक हो सके कम बनानी चाहिये। एक समधरातल खेतमें क्यारी और बरहे चित्र ५१ की तरह होते हैं।
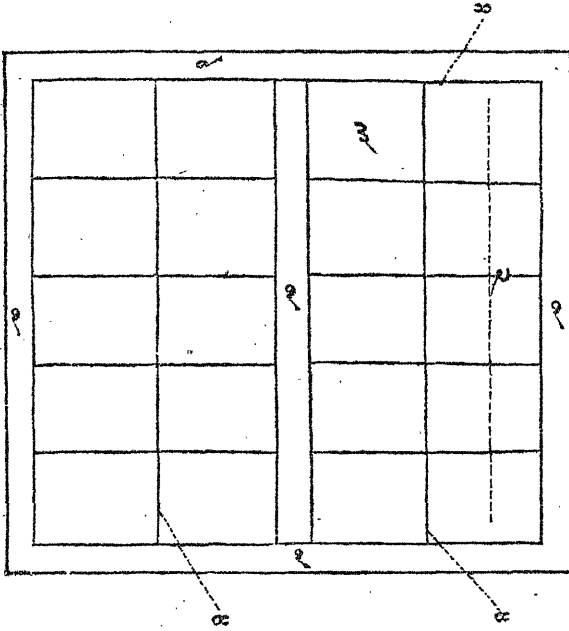
चित्र ५१—१—बरहा; २—नख या पाला ;
३—क्यारी ; ४—डांड

क्यारी बरहे बनानेके लिए जो यन्त्र प्रयोगमें लाया जाता है उसे करहा, जतरा, पाखी या मांझे के नामसे पुकारते हैं।

इसे दो आदमी चलाते हैं। एक दस्ता पकड़ता है और दूसरा रस्सी। दस्ता पकड़नेवाला तखते को नीचेको तिरछा दबाता है और रस्सी खींचनेवाला अपनी ओर को खींचता है। ऐसा करनेसे मिट्टी खिंच कर मेंड़की शक्लमें जमा होती चली जाती है। दोनों आदमी एक दूसरे के सामने खड़े होकर काम करते हैं। यह यन्त्र लकड़ीका होता है।

सिंचाईकी रीति—यदि बरहेके एक ही ओरकी
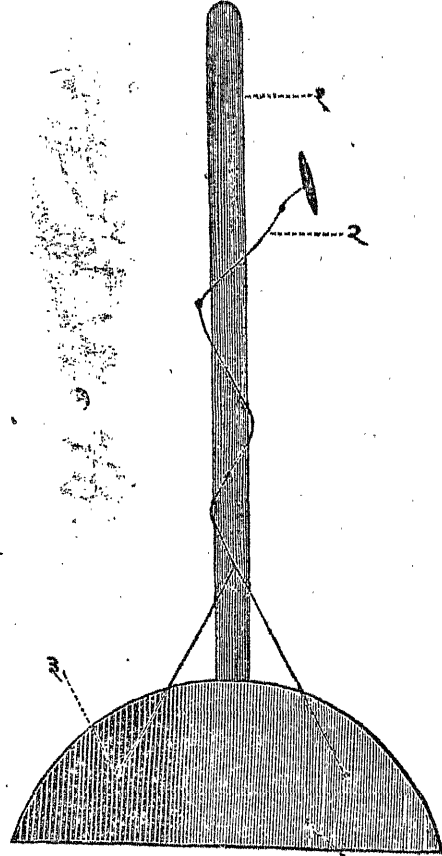
चित्र ५२—करहा, जतरा पाखी या मांझा
१—दस्ता; २—रस्सी; ३—सूराख; ४—तखता।

क्यारियोंको सींचना हो तो पानीको बरहेके आखिर तक ले जाते हैं और फिर एक एक क्यारीको सींचते हुए लौट आते हैं। यदि दोनों ओर की क्यारियोंको सींचना होता है तो पहिले एक ओरकी क्यारियोंको सींचते चले जाते हैं और फिर दूसरी ओरकी क्यारियोंको सींचते हुए लौट आते हैं। सिंचाई करते हुए सींची हुई क्यारियोंमें न घूमना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे पौदे दबकर मर जाते हैं। क्यारीमें पानी ऐसी जगहसे खोलना चाहिये जिससे कि वह अपने आप क्यारीमें फैल जाय। यदि पानी

उसे ढाल का पानी कहते हैं। ढालके पानीके लगाने-में अधिक खर्च पड़ता है।

जमीनकी दशा, फसल, मौसिम और पानी मिलनेकी मिक़दारके अनुसार खेतमें कम या ज्यादह पानी लगाया जाता है। फसलोंकी पहिली सिंचाईमें अधिक और बादकी सिंचाइओंमें कम पानी लगता है; क्योंकि पहिली सिंचाईसे मिट्टी-के कण मिल जाते हैं और भूमि कड़ी हो जाती है, जो कि बादको कम पानी सोखती है।

प्रायः जाड़े (रबी) और गरमियों (जायद) की फसलों की सिंचाईकी जाती है। वर्षा (खरीफ) की फसलोंकी सिंचाई केवल तभी की जाती है जब कि वर्षासे पहिले उन्हें बोया जाता है या वर्षा समयानुसार नहीं होती या शीघ्र बंद हो जाती है। सूखे खेतोंमें जब मिट्टीके कड़े रहनेके कारण हल नहीं लगता या जब खेत बोनेसे पहिले सूख जाते हैं तब उन्हें सींच दिया करते हैं। इस सींचने को पलेवा या परहनी या परेवट के नाम से पुकारते हैं। जब सिंचाई करनेके लिए पानीकी मिक़दार कम होती है या खेतमें कम पानी देनेकी इच्छा होती है तो पानी खेत में एक खीपड़े के ज़रिये से छिड़क दिया करते हैं। कहीं कहीं खीपड़ेकी जगह एक लकड़ी का यंत्र इस्तैमाल करते हैं जिसे कि हत्था (चित्र ५०) कहते हैं।
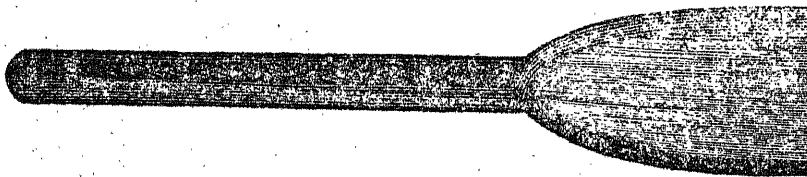
चित्र ५०—हत्था

इसके लिए आवश्यकतानुसार खेतमें गड्ढे बना लेते हैं। जब उनमें पानी भर जाता है तो चारों ओर उसे छिड़क देते हैं। बागोंमें ऐसा हज़ारेसे किया जाता है।

जाड़े और गरमियोंकी फसलोंमें कई बार सिंचाई करनी पड़ती है। यदि हर एक सिंचाईके बाद खेतमें गुड़ाई कर दी जाय तो इनकी तादाद कम की जा सकती है; क्योंकि गुड़ाई करनेसे खेत-की नमी शीघ्र नहीं उड़ती। पौंड़ा, ऊख, आलु और तरकारियोंको कई बार सींचना पड़ता है। रबीकी फसलें जैसे गेहूँ, जौ, जई, मटर आदिको २, ३ सिंचाई ही काफी होती हैं।

सिंचाईके समय इस बातका विचार रखना चाहिये कि पानी बेफ़ायदा खराब न जाय और खेतमें आवश्यकतासे अधिक न भर दिया जाय। इससे दो नुकसान होते हैं। एक तो कम रक़बेकी सिंचाई होती है, जिससे बादमें सींचे जानेवाले खेतोंके सूख जानेका डर रहता है और दूसरे अधिक पानीसे पौदोंकी बढ़वार मारी जाती है। इसलिए इन दो नुकसानोंसे बचनेके लिए खेतमें क्यारी और बरहे बनाये जाते हैं। इनके बनानेसे

(१) अधिक रक़बा सींचा जाता है।

(२) पानी आवश्यकतानुसार खेतमें लगाया जाता है।

(३) पानीकी बचत होती है।

(४) खेतमें हर जगह पानी पहुँचाया जा सकता है।

(५) समय कम लगता है।

छोटी या बड़ी क्यारियां बनाना सिंचाईके लिए मिलनेवाले पानी-की मिकदारपर अवलम्बित है। यदि खेतमें अधिक पानी आता है तो बड़ी और कम तो छोटी क्यारियां बनाई जाती हैं। प्रायः नहरकी सिंचाईके खेतोंमें बड़ी और कुएंकी सिंचाईके खेतोंमें छोटी क्यारियां बनाते हैं। बरहे भी पानीके ही अनुसार चौड़े या सकड़े (तङ्ग) बनाये जाते हैं। जब पानी अधिक आता

जीवाणुओंको नाश करनेके लिए उनको खूब गर्म पानीसे अच्छी तरह धोना चाहिये। यदि हर समय जब कि बच्चेको शीशीसे दूध देना हो शीशी धो ली जाय तो और भी अच्छा है। बोतलसे एकबार दूध पिला चुकनेके बाद जो दूध बाकी बच रहे उसे फेंक देना चाहिये। शीशीको साफ़ करते समय निपिलको (चूचक) भी उलट कर साफ कर देना चाहिये।

जिस शीशीमें पतली लंबी नली होती है और तंग मुँहकी होती है उसका साफ रखना बहुत मुश्किल है। (चित्र ४४ व ४५) जिस शीशीका
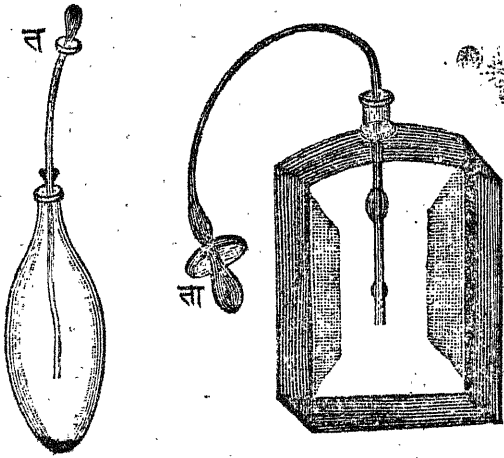
चित्र ४४—त, चूचक। दूध पिलानकी खराब शीशी।

चित्र ४५—दूध पिलानकी खराब शीशी। त—चूचक

मुँह चौड़ा होता है वह आसानी से साफ की जा सकती है। (चित्र ४६)

इसके अतिरिक्त गंदा पानी जिसमें ऐसे जीवाणु हों कि जिनसे उदरामय हो जानेका भय हो बच्चोंको नहीं देना चाहिये। अक्सर विचार हीन ग्वाले दूधमें पानी मिलाते समय गंदा पानी मिला देते हैं जिससे दूध बड़ा हानिकारक हो जाता है। इसी कारण शहरोंमें बाजारका दूध बहुधा बच्चोंके लिये—और बड़ोंके लिये भी नुकसानदह साबित होता है।

हज़म न होनेवाले खाद्य पदार्थ जो अंत्रमें पड़े रह जायं और जीवाणुओंके (breeding place) पोषण स्थान बने छोटे बच्चोंको न देने चाहियें। बच्चोंको जितनी ताज़ी हवा मुमकिन हो देनी चाहिये और उनके साधारण स्वास्थ्यको हर प्रकारसे ठीक रखने और बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि शिशुका उदरामय वा हैज़ा संक्रामक रोग होता है, इसलिए "जो व्यक्ति छोटे बच्चों की देख भाल करते हैं उन" को रोगीके पाससे दूर रहना चाहिये।
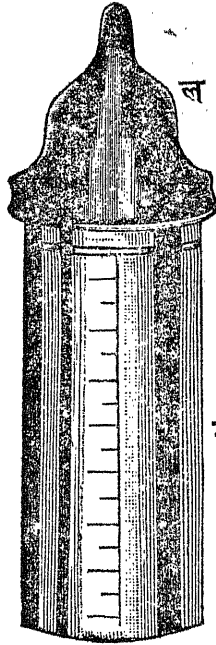
चित्र ४६—ख शीशी; ल रबर का चूचक।

—मुकटबिहारी लाल दर, बी. एस-सी. एल-एल. बी.

आलू

[ले०—श्री गङ्गाशङ्कर पचौली]

औषधमें उपयोग

(गताङ्कसे सम्मिलित)

आलूकी गांठोंका उपयोग औषधमें भी होने लगा है; परन्तु अभी बहुत कुछ इस विषयमें होना बाकी है। अब तक जो कुछ जाना गया है वह यह है कि बिना उबाली वा पकाई गाँठोंमें से जो रस निकलता है, वह शरीरकी संधियोंकी पीड़ामें विशेष उपयोगी होता है।

जापान बाज़ी न ले जाय। इससे हमको कुछ लाभ न होगा। हिन्दुस्तानमें जापान या इङ्गलिस्तानका बना हुआ मोटा कपड़ा आवे और यहांका कपड़ा अरब, मेसोपोटेमिया, पैलेस्टीन आदि (Arabia, Mesopotamia, Palastine, Armenia, Syria और East Africa) में भेजा जाय। यहांका बना हुआ मोटा कपड़ा इन्हीं जगहोंमें बिक सकता है और यही कपड़े बन भी सकते हैं। परन्तु ऐसे कपड़ोंके बनानेसे हमको अधिक लाभ नहीं है। देशकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने आवश्यकताकी वस्तुएं स्वयं तैयार करें। दूसरोंके धनपर दृष्टि डालनेके पहिले हमको अपने धनकी रक्षा करनी उचित है।

निस्संदेह युद्धके समय बहुत कुछ औद्योगिक उन्नति हुई है। लड़ाईके पूर्वकी अपेक्षा हमारा निर्यात सात फी सैकड़ा बढ़ गया है। पर यह देखना चाहिये कि यह उन्नति कितनी स्थायी है और इस उन्नतिके पश्चात् और भी उन्नति हो सकती है या नहीं। यदि यह थोड़े कालके वास्ते थी तो कोई लाभ नहीं। यदि यह उन्नति बराबर जारी रहेगी तो हमको अवश्य लाभ होगा। युद्ध-कालमें बहुत से छोटे बड़े धन्धे जारी किये गये थे, जो छोटे निर्बल बालकोंके सदृश थे और जिनके पालन पोषणकी आवश्यकता थी। यदि उन निर्बल धन्धोंको सरकारसे यथोचित सहायता न मिली तो उनका अल्पायु मरण निश्चय है।

जब हम उद्योगके नकशों (Statistics) को देखते हैं तो हमको बहुत बड़ी आशा होती है, पर हमको ठीक दशा जाननेके लिए औद्योगिक नकशोंको बड़े ध्यानसे पढ़ना चाहिये। खनिज उद्योगके सम्बन्धमें तो हम ऊपर कह चुके हैं। ऊन, जूट, मट्टीके तेलके कारखाने चाय और कोयलेके धन्धे भी खनिज उद्योग की भांति विदेशियोंके हाथमें हैं। यह नकशे देशकी उन्नतिका ठीक परिचय नहीं देते। यदि हिन्दुस्तानियों को इन उद्योगोंके चलानेकी आवश्यक शिक्षा मिले, हिन्दुस्तानी मूलधनसे यह चलाये जायं, हिन्दुस्तानी अध्यक्षोंके हाथमें इनका शासन हो और इनकी आमदनी देशमें ही रहे तो हम अवश्य समझेंगे कि देशकी उन्नति हो रही है।

हिन्दुस्तानी औद्योगिक उन्नति केवल नाम-मात्रकी है, क्योंकि इससे देशकी दशा नहीं सुधरती और हमारी आमदनी बिलकुल नहीं बढ़ती।

नकशोंके डाइरेक्टर (Director of Statistics) ने कहा है कि सरकारने चार रीतिसे औद्योगिक उन्नतिमें सहायता दी है। यह ठीक है क्योंकि युद्धके समयमें सरकार ने अवश्य सहायता दी पर हमारा विश्वास उस समय दृढ़ होगा जब सरकार लड़ाईके पश्चात् भी औद्योगिक उन्नतिमें यथोचित सहायता करके और विदेशियोंके व्यापारिक विद्रोह तथा द्वेष से इसकी रक्षा करके इस महान औद्योगिक संग्राममें विजयका उपाय करेगी। अब हम उन चारों रीतियोंकी आलोचना करेंगे जिनके बारे में डाइरेक्टर ऑव इंडस्ट्रीज़ (Director of Industries) ने ऊपर वर्णन किया है।

(१) सरकारने युद्धके समयमें यह नियम रखा था कि जो चीज़ें यहां मिल सकती हों और यदि वह अच्छी तथा सस्ती हों तो वह बाहरसे न मंगाई जायं। यदि सरकारने यह नियम बराबर जारी रखा तो हमारी औद्योगिक उन्नति निश्चय है। यह सबको मालूम है कि लड़ाईसे पहिले सरकारने इस नियमका पालन कभी नहीं किया था। युद्धके कारण सरकारको विवश होकर ऐसा करना पड़ा। उस समय भी अङ्गरेज़ अफ़सरोंकी देश-भक्तिने इस नियमका विरोध किया। परन्तु जहाज़ोंकी कमीके कारण बाहरसे माल आनेमें बड़ी कठिनाइयां और असुविधायें होती थीं। यदि सरकार इस बातका ध्यान रखे कि जो माल यहां मिल सकता है वह बाहरसे न मंगाये और जो चीज़ें यहां नहीं बन सकतीं उनके यहां बनाये जानेमें सहायता दे तो हमारी उन्नति अवश्य होगी। हम यह माननेके लिए कदापि

तैय्यार नहीं हैं कि जो उद्योग विदेशियोंके मूल-धनसे या उनके शासनसे होता है उससे देशीय औद्योगिक उन्नति हो सकती है। एक और शोक-जनक बात जो आजकल सुननेमें आई है वह यह है कि अङ्गरेज़ धनी अब यहां आकर विविध धन्धोंके खोलनेका ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि उनको इतने दूर रहनेसे जो व्यापारिक असुविधायें पड़ती थीं न पड़ें। यदि यह बात सत्य है और सरकारने उनका पक्ष करके हमारे औद्योगिक हानिका कुछ विचार न किया तो हमारी, सब आशाओंपर पानी फिर जायगा। यह हम लोगोंको स्मरण रखना चाहिये कि अङ्गरेज़ धनियोंका इस देशमें आना ही हमारे व्यापारके कोमल वृक्षके लिए तुषार है।

(२) सरकारने पहिली बार औद्योगिक समाचार जनतामें फैलानेका प्रबन्ध किया था, जिससे ऐसे लोगोंको जो कोई धन्धा खोलना चाहें आवश्यक औद्योगिक बोध व समाचार मिलें और व्यापारमें सुगमता और सुविधा हो। सरकारको उचित है कि औद्योगिक समाचार फैलानेका ऐसा प्रबन्ध करे जिससे यहांके साहूकार धन्धोंकी ओर आकृष्ट हों, जैसा कि दूसरे देशोंमें होता है। हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा देश है और सर्वसाधारणमें बहुधा अङ्गरेज़ी विद्याका अभाव है। अतएव प्रान्तोंके औद्योगिक मुहकमोंको चाहिये कि औद्योगिक समाचार प्रत्येक प्रान्तकी भाषा द्वारा फैलावें।

संक्षेप

युद्धका भारतके उद्योग तथा वाणिज्यपर प्रभाव

(१) युद्धका एक प्रभाव यह हुआ कि हमारा निर्यात बहुत बढ़ गया पर निर्यात सरकारके द्वारा होता था। इसलिए मालका दाम इतना नहीं चढ़ सका जितना कि उनकी मांगके आधिक्यसे होना चाहिये था। यदि सरकार इसका शासन अपने हाथमें न ले लेती तो हमारे मालके दाम बहुत चढ़ जाते और हमको अधिक अर्थ लाभ होता। इसके प्रतिकूल आयातके दाम बहुत बढ़ गये। सन् १९१७-१८ में हमको आयात के दाम २८ करोड़ ज्यादा देना पड़े और निर्यातके दाम केवल १७ करोड़ अधिक मिले; यद्यपि हमारा निर्यात आयात की अपेक्षा कहीं अधिक था। इस प्रकार हमको ११ करोड़ का घाटा हुआ।

(२) युद्धके कारण शत्रुजातियों का माल आना बन्द होगया था और हम ब्रिटेन, संयुक्तराज्य और जापान (Britain, United states और Japan) से अधिकतर व्यापार करने लगे थे। भारत और संयुक्तराज्य अमेरिकाके बीच व्यापार २०० फीसदी बढ़ गया था और जापानसे ४०० फीसदी। हमारा निर्यात युद्धके पहिले की अपेक्षा ७ फीसदी बढ़ गया है।

(३) (Great Britian Allies) ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंकी हिन्दोस्तानी मालकी माँगके कारण भारतीय व्यापारको बड़ा लाभ हुआ। चांदी तथा सोनेके आयात के ऊपर रोक होनेके कारण यह इङ्गलैण्डमें जमा किया जाता था।

इस हेतु निर्यात से जितना लाभ होना चाहिये था नहीं हुआ। निर्यातके दाम यहांके माल भेजने वालोंको अदा करनेके वास्ते सरकारने बहुत से नोट जारी किये, जिससे प्रचाल मुद्राकी कठिनाइयां बहुत बढ़ गईं। चांदी बाहरसे मंगा कर टकसालमें बराबर मुद्रा बनती रहीं। टकसालमें दिन रात काम जारी रहता था। युद्ध जनक शङ्का और भयसे लोगोंने सिक्के जमा करने आरम्भ किये। इन कारणों से स्थिति बड़ी कठिन तथा दुखदायी होगई। विनिमयका भाव धीरे धीरे बढ़ता गया। विनिमय का भाव चांदीके भावके बढ़ जानेसे बढ़ गया। आजकलके भावके अनुसार एक रुपयेका माल भेजनेसे हमको इङ्गलैण्डमें २ शिलिङ्ग ११ पेंस मिलेगा अथवा एक रुपये का माल भेज कर हम इङ्गलैण्डसे २ शिलिङ्ग ११ पेन्सका माल मंगा सकते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि हमारा

आयात बहुत बढ़ेगा और हमारे व्यवसायके वास्ते हानिकारक होगा; पर उन लोगोंके लिए जिनको इङ्गलैण्डमें ऋण चुकाना है अथवा मूलधन पर सूद देना है उनको इससे लाभ होगा।

(४) विदेशियोंकी माँग तथा यहांके अकालने चीजोंके दाम बहुत मंहगे कर दिये और मंहगीने जानता की दशाको अति शोचनीय तथा दुःखमय बना दिया है। यहां का भाव संसारके भावसे सम्बद्ध है और संसारका भाव अभी कुछ समय तक मद्दा नहीं हो सकता। अतएव यहां का भी भाव बहुत दिनों तक ऐसा ही तेज रहेगा। लोगोंकी आमदनीमें उसी सीमा तक अधिकता नहीं हुई; अतएव प्रजा बड़े क्लेशमें जीवन व्यतीत कर रही है। मंहगी ही उस समयके घोर असंतोषका मूल कारण है। ऐसी दशामें सरकारका यह परम धर्म है कि इस कठिन समस्याकी पूर्ति करके प्रजामें शांति तथा संतोष फैलावे। यह कठिनाई उसी समय दूर हो सकती है जब उद्योग तथा धन्धोंकी उन्नति की जाय, जिससे लोगोंको काम मिलनेमें सुगमता हो और उनका वेतन बढ़े। यदि सरकार देशी व्यवसायकी उन्नतिमें सहायता दे तो हमको पूर्ण आशा है कि जनताका असंतोष दूर हो जायगा।

(५) युद्धने भली भांति सिद्ध कर दिया है कि औद्योगिक उन्नति बिना सरकारकी सहायताके नहीं हो सकती। औद्योगिक समर्थता बढ़ानेके वास्ते हमको शिक्षा प्रणालीमें परिवर्तन करके सुधार करना होगा। शिक्षाके वास्ते हमको अधिक तर रुपयेकी आवश्यकता है। उसके बिना हमारा औद्योगिक भविष्य शून्य है। अच्छी शिक्षा जिसमें विज्ञानका मुख्य अङ्ग हो इस औद्योगिक कठिनाईको दूर कर सकती है।

—नाथप्रसाद, बी. ए., एल-टी.

पानीके रोगोत्पादक जीवाणु

रोगोत्पादक जीवाणु, जो पानीमें सबसे ज्यादा पाये जाते हैं, आंत्रिक (intestinal) रोग सम्बन्धी होते हैं। इसलिए हम लोगोंको साफ पानीकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। साधारणतया इसकी आवश्यकता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है, क्योंकि बहुत से लोग न तो यह जानते हैं कि ख़राब पानीके कारण कितनी अधिक मृत्यु होती है और न यह समझते हैं कि इस प्रकारकी मृत्यु संख्याका घटाना कहां तक संभव है। संयुक्त राज्य अमेरिकाके कुछ शहरोंमें—हमें भारतीय शहरोंके अङ्क प्राप्त नहीं हैं—जैसे एलबनी (Albany), न्यूयार्क (Newyork) और लारेन्स (Lawrence, Massachusettes) के शहरोंने छानकर (filter) पानी देनेका प्रबन्ध करके अपने यहांके उन आदमियोंमेंसे २/३ को अकाल मृत्युसे बचा लिया है, जो ख़राब पानी पीते रहनेके कारण टाइफोइड* ज्वरसे प्रतिवर्ष मर जाते थे। वीनामें (Vienna) भी, जहां पहले डेन्यूब (Danube) नदी का पानी पिया जाता था, अब स्वच्छ पानीका इंतजाम हो जानेके कारण टाइफोयडसे होनेवाली मृत्यु संख्या पहिलेसे १/३० ही रह गई है। इसी तरह फिलीपाइन द्वीप पुंजके बहुत से शहरोंमें पाताल तोड़ (artesian wells) कुओंकी वजहसे मृत्यु संख्या पहिले की अपेक्षा जब कि वह ख़राब (impure) पानी पीते थे केवल आधी रह गई है। हमारे भारतवर्षमें भी जिन शहरोंमें पानीका (water supply) ठीक प्रबन्ध है टाइफोयडकी मृत्यु संख्या बहुत कम रह गई है।

पानीसे फैलनेवाले रोग—रोग जो पानीसे फैलते हैं यह है—हैज़ा, टाइफोयड (typhoid), पेचिश, व उदरामय (diarrhea)। इन रोगोंके जीवाणु मनुष्य

* * मोती ज्वर।

ही की देहसे आते हैं और पीनेके पानीके द्वारा फिर मनुष्यके मुखमें पहुंचते हैं। यह हम पिछले लेखमें बता आये हैं कि भारतवर्षमें उदरामय और पेचिशसे बहुत मृत्यु होती हैं।

साफ़ पानीके सेवनसे केवल टाइफोयड और दूसरे अंत्र-रोगोंसे पीड़ित रोगियोंकी ही मृत्यु संख्यामें न्यूनता नहीं होती वरन् किसी अज्ञात कारणसे—जिसका अभी तक ठीक ठीक पता नहीं चला है—निमोनिया, क्षय और अन्य बहुतसे रोगोंकी मृत्यु संख्यामें भी न्यूनता होने लगती है। यह मालूम हुआ है कि निमोनिया, इंफ्लूएंज़ा, डिपथीरिया और क्षय रोगोंमें जीवाणु प्रायः हमेशा रोगीके अंत्रसे निकले हुए मल मूत्रमें भी पाये गये हैं। क्षय रोगोत्पादक जीवाणु तो एक ऐसे चश्मेमें भी पाये गये हैं, जिसमें कि एक 'क्षय स्वास्थ्य भवन' (sanitorium) का मल गिरता था। यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि फेफड़े (फुफ्फुस) सम्बन्धी रोगोंके जीवाणु पानीमें रहते हैं और कुछ लोग इन रोगोंका शिकार गंदा पानी पीनेसे होते हैं।

पानीमें रोगोत्पादक जीवाणु कैसे पहुँचते हैं ?

साधारणतया रोगोत्पादक जीवाणु यातो गंदी नालियों (sewage) द्वारा अथवा ऐसी भूमि द्वारा जहां मनुष्यका मल मूत्र फेंका जाता हो, पानीमें बहकर आते हैं। यह उस तालाब अथवा कुएंमें भी पहुंच सकते हैं जहां कोई मनुष्य जिसके हाथोंमें जीवाणु हों, काम करे या घड़े वगैरा छुए। कोई कोई तालाब या चश्मा किसी रोगीके कपड़े धोए जाने या उसके स्वयं उसमें नहानेसे खराब हो जाता है। परन्तु साधारण तौर पर जीवाणु अशुद्ध ज़मीन परसे बह कर पानीमें पहुंचते हैं। अमेरिकाके एक नगर (Plymouth Pennsylvania) के नीचे दिये हुए सन १८८५ की टाइफोयड महामारीके हालसे विज्ञानके पाठकोंको यह मालूम होगा कि एक नगरका पानी (water supply) किस तरह रोगोत्पादक जीवाणुओंसे दूषित हो सकता है। इस नगरमें सन् १८८४-८५ के जाड़ेमें एक मनुष्य जो एक ऐसी नदीके किनारे रहता था जिसका पानी कलके जरियेसे शहर भरको जाता था, टाइफोयड ज्वरसे पीड़ित हुआ। रोगीका मैला सब बर्फ पर फेंक दिया जाता था, परन्तु सर्दीके बाद जब वसन्त ऋतुमें पिघली हुई बरफ और मेहके पानीके साथ जीवाणु सब बहकर शहरकी पानीकी कलोंमें फैल गयेतो एक दमसे टाइफोयड ज्वर शहरमें फैल गया। इस शहरकी मनुष्य संख्या ८००० थी। बीमारी फैलनेके दिनोंमें ५०से २०० मनुष्यके लगभग रोज पीड़ित होते थे। कुल ११०४ रोगी हुए और उनमें से ११४ की मृत्यु हुई। इस कालमें जिन मनुष्योंने केवल कुएंका ही पानी पिया बच गये। अतएव इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवाणु शहरके कलके पानी द्वारा फैले। हमारे देशमें भी रोगोंका ऐसा भयंकर रूप प्रकट हुआ करता है। प्लेग और हैज़ेका सालमें दो एक बार हो जाना यहांके लिए एक मामूली बात है। इनमेंसे हैजा तो अधिकतर पानी ही द्वारा फैलता है। इन महामारियोंके अतिरिक्त यदि जांच की जाय तो मालूम होगा कि अक्सर शहर और गांवोंमें कई मनुष्य पानी द्वारा फैले हुए रोगोंसे हरसाल मर जाते हैं।

हानिकारक पानी

ऊंचेसे गिरनेवाले झरनोंका पानी यदि रोगीके मल मूत्रादिसे दूषित न कर दिया गया हो तो रोगोत्पादक जीवाणुओंसे रहित होता है। जो पानी कि पृथ्वीकी ऊपरी सतहसे आता है, उसमें रोगोत्पादक जीवाणु रहनेकी संभावना रहती है। कम गहरे कुएं चश्मे और छोटे नालों और तालाबोंका पानी अन्य प्रकारके पानीकी अपेक्षा अत्यन्त हानिकारक होता है। ऐसा पानी सेवन करना ठीक नहीं, चाहे वह कितना ही स्वच्छ और शीतल क्यों न मालूम होता हो। तजुरबेसे मालूम हुआ है कि अंत्र सम्बन्धी रोग प्रायः सतहके (surface water) पानी पीनेसे ही होते हैं और जो हम

लोगोंसे पहिले होचुके हैं उनके तजुरबेसे फ़ायदा न उठाना कोई अक़लमंदीका काम नहीं है।

ठीक पानी

साधारणतया जो पानी ज़मीनकी ऊपरी सतहसे नहीं आता उसके सेवनमें कोई डर नहीं है। गहरे पाताल तोड़ (artesian wells) कुओंका पानी बहुत अच्छा होता है। मेहका पानी जो कि किसी टंकी (tank or reservoir) में ज़मीनके ऊपर ही जमा कर लिया गया हो उसमें भी कोई डर नहीं है। अक्सर लोगोंका यह खयाल है कि हानि कारक (dangerous) जीवाणु धूल द्वारा ऊपर भी पहुंच सकते हैं परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि अंत्र संबंधी रोगोंके जीवाणु अगर वह अच्छी तरह सूख जायं तो मर जाते हैं और मेहके पानीमें जो कि ज़मीनके ऊपर ही इकट्ठा किया गया हो नहीं पाये जाते। (Distilled water) आबमुकत्तर, स्रुत जल, ठीक होता है। परन्तु कुछ बोतलमें भरे हुए चश्मोंके पानी (spring water) में बैक्टीरिया पाये गये हैं।

कुओंको रोगोत्पादक जीवाणुओंसे रहित रखना

आजकल अधिकांश जगह कुओंके पानीका ही सेवन किया जाता है और अभी बहुत काल तक—गांवोंमें विशेषकर—कुओं से ही पीनेका पानी लिया जाया करेगा। इसलिए इनको जहां तक हो सके दोष रहित बनाना अत्यन्त आवश्यक है। कुएंको हानिकारक जीवाणुओं से बचानेके लिए निम्न लिखित विशेष बातोंका ध्यान रखना चाहिये।

(१) ऊपरी पानीको कुएंके भीतर जाने से रोकना—दो तीन फ़ुटसे अधिक नीची भूमिमें बहुत कम बैक्टीरिया रहते हैं। इसलिए उस कुएंका पानी जो कि लगभग २० फ़ुट नीचेसे आता है प्रायः जीवाणु रहित होता है। ऐसे कुओंका पानी साधारणतया बरसाती पानी और अन्य गंदे पानीके कुएंके भीतर जानेसे—जिसमें कि भूमिमें ऊपरी तलके जीवाणु बहकर मिल जाते हैं—खराब होजाता है। हर एक कुआं एक उलटी सूची (cone) के आकारमें जिसका कि तल (base) कुएंकी गहराईका चौगुना होता है आस पासकी भूमिसे प्रभावित होता है। यदि कुएंकी गहराई ५० फ़ुट हो तो वह ऊपरी भूमिका रकबा (area) जिसका व्यास (diameter) २०० फ़ुट हो उससे वह प्रभावित होगा, अर्थात् इस रकबे (area) में जितनी भी गंदगी होगी सब कुएंमें छन कर आयेगी और पानीको खराब करेगी। इसलिए हमको पीनेके कुएंके आस पास पाखाना, नाबदान व नाली न रखनी चाहिये और न उसके पास सड़े जानवर या सड़ी घास पत्तियां डालनी या गाड़नी चाहियें।
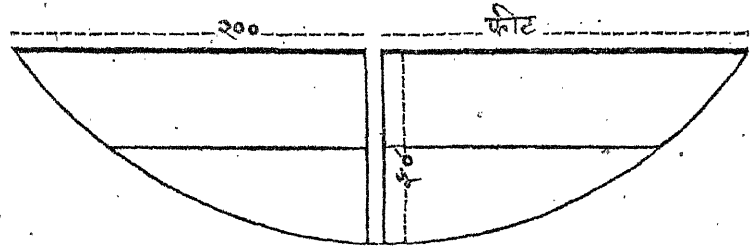
चित्र ५४—बीच में कुआं है। इसमें इतनी दूर तक का पानी पहुंच जाता है।

कुएंको हानिकारक जीवाणुओंसे बचानेके लिए उसको ऊंची भूमिपर बनाना चाहिये। नाबदान बगैरा तो किसी हालतमें उसके पास न होने चाहियें। और पीनेके कुएंकी आस पासकी भूमि हर तरहसे गंदी होनेसे बचानी चाहिये। किसी हालतमें भी पीनेके कुएंपर कपड़े छांटने, बर्तन मांजने या मनुष्योंको नहाने न देना चाहिये और न पशुओंको पानी पिलाना चाहिये। क्योंकि ऐसी हालतोंमें पानी जो कपड़े धोने, बर्तन मांजने या नहानेसे गन्दा होगया है कभी न कभी (कुएंके मुंहरकी चारों तरफकी) ज़मीनमें सोखकर नीचे जायगा और कुएंके पानीको गन्दा करेगा।

इन्हीं कारणोंसे कुएं जो घरके भीतर हों ठीक नहीं। कुआं कभी किसी पेड़की छायाके नीचे न

होना चाहिये, क्योंकि ऐसा होनेसे चिड़ियोंकी व गिलहरियोंकी बीट व डंठल व पत्तियां उस पेड़से कुएंमें गिरेंगी और उसको गन्दा करेंगी। कुएंके ऊपर छतके तौरपर कोई चीज़ होनी चाहिये। लकड़ीकी छतकी अपेक्षा चूने या टीनकी छत अच्छी होती है। कुएंके अन्दरकी कुल दीवार (या कमसे कम सतहसे पहिले १० फुट) पक्की और घनी चुनी होनी चाहिये, जिसमें उसकी बग़लोंसे बाहरी पानी कुएमें न रिसे (प्रवेश करे)। कुएं की भीतरी दीवारकी सतह चिकनी होनी चाहिये, जिसमें चिड़िया अपना घोंसला उसमें न बना सकें। यह कंकरीट वा पत्थरकी दीवार कुएंके मुंहपर भूमि तलसे २ फुट ऊंची होनी चाहिये। कुएंके चारों ओरकी भूमिमें पत्थरोंसे चुनवा कर कंकरीट कुटवा देना चाहिये। यह ढलवां बनाना चाहिये और इसके अखीरमें कंकरीट या पत्थरकी एक
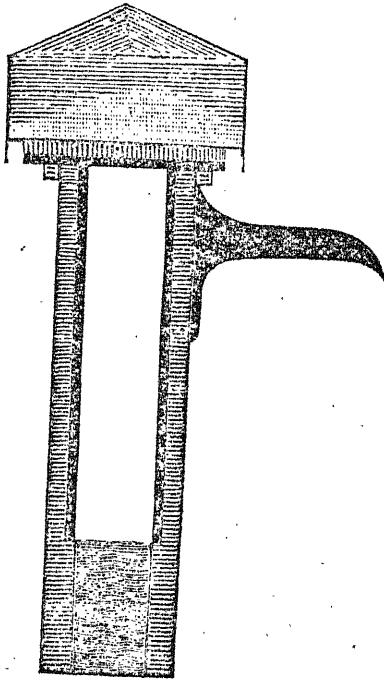
चित्र ५५—एक अच्छा कुआ

नाली रहनी चाहिये, जिसमें जो कुछ पानी गिरे वह इस नालीसे जमा होकर एक दूसरी नालीसे होता हुआ शहरके नालेमें गिरे और ज़मीनमें जमा होकर अन्दर न खोखे। कुएंके अन्दर की दीवारमें थोड़े थोड़े फासलेपर लोहेकी ज़ंजीर रखनी चाहिये, जिसमें अगर कोई मनुष्य उसमें गिर जाय तो निकल सके और सालमें एक दफा कमसे कम पानी आसानीसे उगरवाया (निकाला) जा सके। कुंएको गरमीके अखीरमें जब कि पानी सबसे कम होता है एक दफ़ा अवश्य उगरवाना चाहिये और नीचेकी सब कीचड़ व गंदगी खूब अच्छी तरह साफ़ करवा देनी चाहिये। कुए का चबूतरा इतना काफ़ी चौड़ा होना चाहिये कि ऊपरी पानी फिर कुएके अंदर न जासके।

इन बातोंसे केवल भूमिमें रहने वाले बैक्टीरिया-से ही बचाव न होगा परन्तु उन वस्तुओंसे भी रक्षा होगी जिनको कि बैक्टीरिया खाकर वृद्धि करते हैं। फिर भी अगर किसी कुएके आस पास-की भूमि गंदी होजाय (जैसा कि घनी आबादीमें जहां कई पाखाने या गंदी नलियां हों अकसर हो जाता है) तो कुछ जीवाणु अवश्य पानीमें प्रवेश करेंगे। और जहां यह मालूम हो कि कोई कुआ किसी रोगका कारण है तो उस कुएके पानीका इस्तेमाल ज़रूर फ़ौरन बंद कर देना चाहिये।

(२) जीवाणु वाहकों (germ carriors) को कुएंसे अलग रखना—किसी रोगीको अथवा उनको जो संक्रामक रोगके रोगियोंकी सुश्रूषा (nurse) करता हो अपने बर्तन (डोल अथवा बरतन) कुएमें न डालने चाहिये। इस बातमें घरके हातेमें जो कुआ हो वह बहुत अच्छा होता है, क्योंकि पंचायती कुएमें यह सब देख भाल करना बहुत मुश्किल है।

पानीको रोगोत्पादक जीवाणुओं से रहित करना

पानी बहनेमें बहुत कुछ कर्बनद्विओषिद सोख लेता ही है पर पृथ्वी तलके नीचे भी इस गैस को सोखता है, और तब गैसकी सहायतासे बहुत सी वस्तुओंको घोल लेता है। पानीमें कर्बनद्विओषिद गैसका होना बहुत

अच्छा है और इसीसे पानीमें ताज़गी और चमक आती है। यह गैस वायु मंडल (atmosphere) की अपेक्षा पृथ्वीकी वायुमें २५० गुना अधिक होती है।

हर एक शहरका कर्त्तव्य है कि वह अपने निवासियोंके लिए स्वच्छ व पवित्र जलका प्रबन्ध करे या जो पानी अपने निवासियोंको दे उसे छान करके (filter) या और अन्य किसी तरह उसे जीवाणु रहित करके दे। परन्तु बहुतसे स्थानोंमें ख़ासकर गावोंमें स्वच्छ जलका कोई विशेष प्रबन्ध नहीं होता और निवासियोंको अस्वच्छ (impure) पानी अथवा किसी साधारण तालाब व कुएं के पानी का ही सेवन करना पड़ता है। ऐसी दशामें सबसे अच्छा उपाय यह है कि पानी उबाल डाला जाय, क्योंकि ऐसा करने से उसमेंके सब हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। मामूली छन्ने तो पानी छाननेके लिए ख़राबसे भी बदतर हैं, क्योंकि उनमें से बैक्टीरिया निकल जाते हैं। कोयलेमें पानी छाननेसे पानी का रंग निकल जाता है और वह निर्मल और चमकदार मालूम होने लगता है परन्तु इससे जीवाणु नहीं निकलते। यह बात हमेशा स्मरण रखनी चाहिये कि दूध और खानेके बर्तनोंको गंदे पानीमें धोना ऐसा ही हानिकारक है जैसा कि गंदा पानी पीना।

चित्र ४६ एक खराब कुंआ इसमें सब तरफसे पानी पहुंचता है

पीनेके पानीको उबालनेकी आवश्यकता

स्वास्थ्य कर्मचारियों (health officers)की ओर से विशेषकर जहां कलका पानी इस्तेमाल नहीं होता अकसर सूचनाएं दी जाया करती हैं कि कब उबले हुए पानी का सेवन करना उचित है। यदि इनपर हमेशा अमल किया जाय तो न जाने कितनी जानें हर साल बच जायं। हमारे देशमें बहुत से लोग ऐसे कुओंसे जिनमें कि ऊपर का पानी बह कर जाता है पानी पीते हैं, परन्तु यदि यह सब लोग ऐसे पानीको उबाल कर पिया करें (और इन कुओंकी मरम्मत करवाते रहें) तो हर साल हज़ारों लाखों मनुष्यों की जान बच जाया करें।

पानी का निर्मल होना यह नहीं ज़ाहिर करता है कि वह जीवाणुओंसे रहित है, क्योंकि जीवाणु इतने छोटे होते हैं कि बिना यंत्रके नहीं देखे जा सकते। और न यह बात कि किसी कुएका पानी सौ वर्षसे पिया जा रहा है इसको ज़ाहिर करता है कि वह पानी जीवाणु रहित है और स्वच्छ है; क्योंकि यह सम्भव हो सकता है कि कोई कुआ २५ वर्ष पहिले बिलकुल ठीक हो परन्तु अब बाहरका पानी उसके अंदर जाता हो। और यह भी सम्भव है कि बहुत से लोग जिन्होंने इन सौ वर्षोंमें ऐसे कुएंसे पानी पिया किसी ऐसे रोगसे मरे हों जो पानीके कारण हुआ हो। यह हरगिज़ न ख़याल करना चाहिये कि कोई कुआं बार बार सफ़ा करा देनेसे ठीक रहेगा, क्योंकि टाइफोयड़ जीवाणु गंदे पानीकी अपेक्षा स्वच्छ पानीमें अधिक काल तक जीवित रहते हैं। इसलिए हर एक कुआ केवल जीवाणुओंसे बचा रखने से ही ठीक रखा जा सकता है।

—मुकुट बिहारीलाल दर, बी. एस-सी. एल-एल. बी.

समालोचना

भारतके प्राचीन राजवंश (प्रथम भाग)—ले० पं० विश्वेश्वर नाथ रेउ प्रकाशक—हिन्दीग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

लेखकने बड़े परिश्रम और अनुसंधान से यह पुस्तक लिखी है। हिन्दी भाषामें इस प्रकार की

पुस्तकें बहुत कम हैं। प्रारम्भमें सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी की एक भूमिका है।

आशा है कि हिन्दी संसार हृदयसे इस पुस्तकका स्वागत करेगा और लेखकको प्रोत्साहन देगा।

भारतवर्षका इतिहास (प्रथम भाग)—ले० मिश्रबन्धु। प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

मिश्र बन्धुओंके नामसे हिन्दी संसार अच्छी तरह परिचित है। आलोच्य पुस्तक उनके बृहत भारतीय इतिहासका प्रथम भाग है। दूसरा भाग थोड़े दिनमें प्रकाशित होनेवाला है।

प्राचीन भारतीय इतिहास जैसे कठिन पर मतभेद अवश्यम्भावी है, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि इस पुस्तकको लिख कर मिश्र बन्धुओंने हिन्दी पाठकोंका बड़ा ही उपकार किया है।

रोमका इतिहास—ले० प्रो० ज्वालाप्रसाद। प्रकाशक तरुण भारतग्रन्थावली दारागंज प्रयाग। मूल्य १)

प्रो० ज्वालाप्रसाद कृत रोमका इतिहास हिन्दी साहित्यकी एक आवश्यकताको पूर्ण करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। रोमन राज्य यूरोपीय इतिहासका केन्द्र है। उसका प्रभाव आज भी दृष्टिगोचर है और बहुत दिन तक अनुभव किया जावेगा। विषयके महत्त्वको देखते हुए कहना पड़ता है कि आलोच्य पुस्तक वर्तमान परिमाण से कम से कम दुगनी तिगुनी होती तो अच्छा होता। यदि कुछ नकशे इत्यादि लगा दिये जाते तो उसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती।

तथापि पुस्तक उपादेय है और मध्यमा परीक्षाके पाठ्यक्रम में स्थान पाने योग्य है।

—वेनीप्रसाद

धन्यवाद

निम्न लिखित सज्जनोंसे जो आर्थिक सहायता विज्ञानके लिए मिली है उसके लिए हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। —मंत्री

श्री० बृजराज, बी. एस-सी. प्रयाग ...	१३)
श्री० नाथूराम प्रेमी, पूना	२५)
श्री० दयाचंद प्यारेलाल, खुरई	२)
श्री० शारदाप्रसाद, सतना	२५)
श्री० लालचंद सेठी वाणिज्य भूषण सेठ, झालरापाटन	५०)
श्री० काशीराज पांडे, नेपाल	१)
श्री० गोपालप्रसाद भार्गव, रईस, आगरा	५०)
श्री० बा० शिवप्रसाद गुप्त रईस, बनारस	१५०)
श्री० राधा मोहनगोकुल जी, कलकत्ता ...	१२)
श्री० चिन्तामणि पाण्डे, रायबरेली ...	५)
श्री० सूर्य्यनारायण, इटावा	१०)
श्री० स्वामी हरि शरणानंद	२)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १२ { मीन, संवत् १९७७ । मार्च सन् १९२१ । } संख्या ६

अपेक्षता वाद

[लेखक—प्रो० सालिगराम भार्गव, एम. एस-सी]

नवम्बर १९१९ से सारे वैज्ञानिक संसार में बड़ी खलबली मच रही है। इसका मूल कारण यह था कि इंगलैण्डकी रायल सोसाइटीके एक अधिवेशनमें उस बड़े भारी सिद्धान्त का भाग्य-निर्णय हुआ जो गतवर्षोंसे कई बड़े बड़े विद्वानोंको सन्देह और चिन्ता में डाले हुआ था। यह सिद्धान्त था आयंस्टेनका "अपेक्षता वाद"। १९१५ ई०में आयंस्टेन महोदय ने अपने सिद्धान्त की सत्यता प्रकट करनेके उद्देश्य से तीन भविष्यद्वोक्ति (पेशीन गोईयां) की थीं।

(१) जितने ग्रह सूर्यकी परिक्रमा दे रहे हैं वह अपना चक्कर पूरा न करके, निच्चतमस्थानके निकट पहुंचने पर सूर्यकी ओर अन्दरको खिंच आते हैं। इसलिए उनका निच्चतमस्थान हटता हुआ नज़र आता है।

(२) जब कभी प्रकाशकी किरण सूर्यके पास होकर निकलती हैं तो वह सूर्यकी ओर मुड़ जाती हैं। इस कारण जिस तारेसे यह किरणें आ रही हैं, वह सूर्यसे हटा हुआ प्रतीत होता है।

(३) सूर्यके रश्मिचित्रमें जो मौलिकोंकी रेखाएं देखी जाती हैं उनका यदि पृथ्वीपर पैदा किये गये रश्मिचित्रोंसे मुक़ाबिला किया जाय तो रेखाएं रश्मिचित्रके लाल छोरकी तरफ़ हटी हुई प्रतीति होंगी।

१९१९ ई० की २८ मईको पूर्ण ग्रहण होने वाला था। वह प्रिंसिपद्वीप और सोब्राल (ब्राज़ील) में दीखने वाला था। अतएव कई विख्यात विद्वन्मण्डलियोंने अपने प्रतिनिधियोंको दूसरी पेशीन गोईकी जांच करनेके लिए यंत्रोंसे सुसज्जित करके भेजा। इसके नेता थे प्रो० एडिङ्गटन। इन्हींकी रिपोर्ट उक्त अधिवेशनमें पेश हुई। जब वैज्ञानिकोंको यह मालूम हुआ कि पेशीनगोई सच्ची निकली तो उनमें बड़ी खलबली मचगई। सर्वसाधारण

को शायद इसमें इतनी दिलचस्पी न होती, पर "अपेक्षता वाद" का एक अङ्ग था वह सिद्धान्त जिसे न्यूटनका गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त कहते हैं। इसके अनुसार सूर्य, ग्रह, उपग्रह सभी जकड़े हुए अपने अपने पथ पर घूमते आते जाते थे, यह सर्वव्यापी नियम माना जाता था। अब यह, सर्वथा, सर्वदा और सब अंशोंमें ठीक नहीं है। अतएव विलायतके जितने दैनिक, साप्ताहिक, अर्ध-साप्ताहिक और मासिक पत्र थे उन सब ने इस नये सिद्धान्तके बारेमें कुछ न कुछ लिखना अपना कर्तव्य समझा। उन पत्रोंके उद्धरण हिन्दुस्तानके सामयिक पत्रोंने भी दिये। इनको पढ़कर जब लोगोंको यह मालूम हुआ कि त्रिभुजके तीनों कोणोंका योग सदा ही २ समकोणके बराबर नहीं होता, न वृत्तकी त्रिज्या का परिधि से सदा एक ही सम्बन्ध रहता है तो कुछ दिन उक्त सिद्धान्तकी चर्चा रही। हमारे मित्रों-ने भी प्रायः इस विषयमें प्रश्न किये। आज हम उनकी ही तृप्तिके लिए कुछ हाल यहां पर देते हैं।

यह आजकल सब मानते हैं कि पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा देरही है, परन्तु उसकी गतिका ज्ञान पृथ्वी परकी घटनाओंको देखकर प्राप्त करना असम्भव है। आकाशस्थ पिण्डों-स्थित तारोंकी गति देखकर ही हमें इस बातका ज्ञान होता है। ऐसा क्यों होता है इसका कारण यह है कि हमारा सदा आपेक्ष होता है। यदि दो आदमी दो रेलवे ट्रेनमें बैठे हों, जो उसी दिशामें उसी वेगसे चल रही हों तो वह एक दूसरेको स्थिर जान पड़ेंगे। परन्तु किनारे पर के वृक्षोंको देखकर जो स्थिर हैं या पैदल चलते आदमीको देखकर जो अपेक्षतया कम वेगसे चलरहा है, उन्हें अपने चलनेका ज्ञान होजाता है। अब एक दूसरे उदाहरण पर विचार कीजिये। मानलीजिये कि हम पश्चिमकी ओरको चलने लगे। यदि पृथ्वी पश्चिम से पूरबको सूर्यके चारों ओर घूम रही है तो हम पश्चिममें स्थित मीलोंके पास जल्दी क्यों नहीं पहुँचजाते। इसी प्रकार यदि हम पूरबकी तरफ़ चल पड़ें तो उतनी ही दूरीपर स्थित वस्तु तक उसी वेगसे चलते हुए अधिक देरमें क्यों नहीं पहुंचते। इन बातोंका उत्तर यह दिया जायगा कि हम और दीवार दोनों पृथ्वीके साथ घूम रहे हैं, अतएव सदा उतनी ही दूरीको, उतने ही वेगसे, उतने ही समयमें तय कर लेते हैं। यह तो हम मान लेंगे क्योंकि हम पृथ्वी पर चलते हैं, उसे कभी छोड़ते नहीं, पर यदि हम उछल कर एक ही छलांग से किसी वस्तु तक पहुंच सकें तो उसकी प्रत्येक स्थितिमें, जब उसकी दूरी प्रत्येक स्थितमें उतनीही रहे तो भी उतनाही समय लगता है। इसका कारण क्या है? आप न्यूटन के मतके अनुसार चट कह उठेंगे कि ऐसा करने पर भी पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणसे हम स्वतंत्र नहीं हो जाते, अतएव हमारा व्यवहार उससे प्रभावित होता है और समय उतना ही लगता है। अतएव उन चीज़ोंकी गतिको देखकर जिन पर पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणका प्रभाव पड़ना है हम पृथ्वीकी गतिका हाल नहीं मालूम कर सकते। यह "अपेक्षता वाद" न्यूटन महोदयका है।

अब ज़रा इस बात पर गणित की भाषामें विचार कीजिये। $\text{वेग} = \frac{\text{तयकी हुई दूरी}}{\text{उसे तय करनेका समय}}$ अतएव जब हम उसी वेगसे चलते हैं तो दूरी अर्थात लम्बाई और समयकी निष्पत्ति एक समान रहती है। इसके समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये, क्योंकि समान वेगसे चलनेका अर्थ है प्रत्येक इकाई समयमें उतनीही लम्बाईकी इकाइयोंको तय करना।

परन्तु यहां पर एक शंका उठ सकती है कि क्या यह सम्भव नहीं है कि समय और लम्बाई की इकाइयोंमें ही भेद आजाता हो! यदि दोनों की इकाइयोंमें इस प्रकार अन्तर उत्पन्न हो जाय कि उनकी निष्पत्तिमें अन्तर न आने पाये तो हमें वेग सदा सर्वदा सब दिशाओं में स्वभावतः एक ही मिलेगा। महाशयो, आगेचलकर यही आश्चर्य-जनक बात माननी पड़ेगी?

पर क्या यह सम्भव नहीं कि किसी ऐसी गतिमान वस्तुकी खोजमें हम सफल हों जिसपर गुरुत्वाकर्षण का कुछ प्रभाव न होता हो? १८७०ई० के पहले तो कोई ऐसी वस्तु मालूम न थी, परन्तु उसवर्ष एक वैज्ञानिकने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि एक वायुशून्य नलीमें जब विद्युत् प्रवाह कराया जाता है तो ऋण ध्रुवसे ऋण विद्युत् के विद्युत्कण निकलते हैं। यह एक ऐसी वस्तु थी जो पदार्थमय न थी—अर्थात् जो गुरुत्वाकर्षण के शासन के बाहर थी—तथापि गतिमान थी। वैज्ञानिक इस अनोखी और अपूर्व वस्तुको जान उसके पीछे पड़ गये। और यह जानने का प्रयत्न करने लगे कि उस की गति भी उन्हीं नियमोंके अनुसार होती है या नहीं या उसकी गति के नियम निराले ही हैं।

एक और भी चीज़ पहलेसे मालूम थी जो चलतीतो थी पर पदार्थमय न थी। वह वस्तु थी शब्द। यह हम सब का अनुभव है कि शब्द एक स्थानसे दूसरे स्थान तक जाता है, परन्तु उसका वेग सब दिशाओंमें एकही रहता है। कारण न्यूटन के अनुयायोंने यह बतलाया कि शब्द वायुमें प्रयाण करता है, जो पृथ्वीसे सम्बन्ध और उसके गुरुत्वाकर्षणसे शासित है। इस प्रकार शब्दका वेग भी "आपेक्षित" माना गया।

प्रकाश भी एक वस्तु है जो शब्द की नाईं चलता है परन्तु जिस माध्यममें प्रकाश चलता है उसका हाल मालूम न था और इस लिये यह खोज होने लगीकि यह माध्यम स्थिर रहता है अथवा पृथ्वीके साथ चलता है।

न्यूटन महोदय मानते थे कि प्रकाश की किरणें वह कणावली होती हैं जो प्रकाशमान वस्तुमें से निकल कर चारों ओर प्रयाणकरती हैं। यह कण गुरुत्वाकर्षणसे प्रभावित होते हैं, यह बात वह मानते थे और इसी लिए यह बात उन्होंने कही थी कि जब प्रकाशकिरण सूर्यबिम्बके पास से निकलेंगी उसकी ओर आकर्षित होकर मुड़ जायँगी। उनके हिसाबसे यह मुड़ाव आयंस्टीन के बतलाये हुए मुड़ावसे प्रायः आधा था। परन्तु जान पड़ता है कि दशवर्ष बादही हाइगेंज़के तरंग सिद्धान्त ने वैज्ञानिकों पर वह मोहनी डाली—उनकी प्रकाश विषयक जटिल समस्याओंको हल करनेका वह सहल तरीक़ा बतला दिया कि वह मतवाले हो न्यूटन का मत भूलगये और उस की पेशीनगोई की जांच तक न की। प्रकाश तरंगों के चलनेके लिए एक सर्वव्यापी माध्यम की कल्पना करनी पड़ी थी वही माध्यम वैज्ञानिकों का आकाश है।

इस आकाश का महत्व और हाइगेंज़के कथन का बल मेक्सवेल के आविष्कारोंसे और भी बढ़ गया। मेक्सवेल ने यह साबित कर दिया कि वैद्युतिक और चुम्बकीय प्रभावोंका वेग भी प्रकाश के वेगके समान ही है अतएव उन्होंने भी इनके संचालन के लिए आकाश का सहारा लिया। तब तो लोगों को, जैसा पहले लिख चुके हैं यह प्रबल लालसा उत्पन्न हुई कि यह मालूम करलें कि आकाश भी वायु की नाईं पृथ्वी के साथ चलता है या स्थिर रहता है।

प्रायः पाठक कह उठेंगे कि इसकी जाँच तो प्रकाश का वेग विविध दिशाओं में निकालकर सहज ही में हो सकती है, क्योंकि यदि आकाश पृथ्वी के साथ चलता है तो वेग हर तरफ़ उतना ही होगा; यदि आकाश स्थिर है और पृथ्वी उसमें यात्रा करती है तो प्रकाश के वेग के मूल्यमें भी दिशा परिवर्तनसे अन्तर हो जायगा। पर यह काम इतना सरल नहीं है, क्योंकि प्रकाश इतना शीघ्र गामी है कि उसका वेग ठीक ठीक, बावन तोले पाव रत्ती, निकाललेना असम्भव है। जो विधियां प्रकाशके वेग निकालने की मालूम हैं, उनमें से सर्वोत्तम विधिसे भी यदि कई बार वेग नापें तो जो अंक मिलते हैं उनमें पृथ्वी के वेगके बरा-

हर अशुद्धि रह जाने की सम्भावना है। इसी लिए १८८७ ई० में माइकेलसन और मौरले महोदय ने एक विचित्र विधिका प्रयोग किया।

उन्होंने दो दर्पण क,ख समकोण बनाते हुए रखे। उनसे समान दूरीपर एक ऐसा काँच रखा जिसके ऊपर बहुत ही पतली तह चाँदी की चढ़ी हुई थी, जिससे उस पर पड़ने वाले प्रकाश का आधा भाग प्रतिफलित हो क पर गिरा और आधा भाग उसमेंसे निकलकर ख पर गिरा। क, ख से प्रतिफलित हो प्रकाश अपने पूर्वमार्ग से लौटकर ग पर गिरा और वहां से ग घ दिशामें चला। इस दिशामें देखनेसे प्रकाशका एक बिम्ब न दीखेगा किन्तु प्रकाशमान और तमोमय बिम्बों की पंक्ति दीख पड़ेगी। यदि क ख,गसे समान
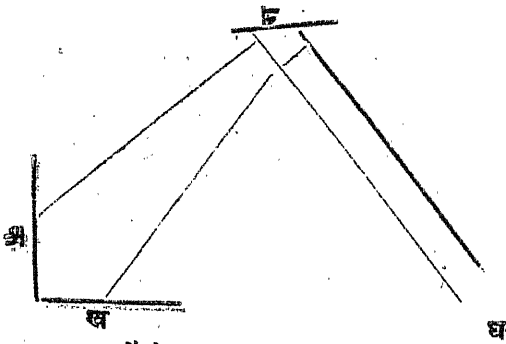
अन्तर पर हों तो बीचोंबीच तमोमय बिम्ब दिखाई देगा और इधर उधर रंगीन बिम्ब दिखाई पड़ेंगे। किन्तु समानतामें तनिक भी न्यूनता आजाय तो तमोमय बिम्ब इधर उधर हट जायगा। या यों कहिये कि कदाचित् ग क, ग ख बराबर रहते हुए भी प्रकाशका वेग एक दिशामें कुछ हो और दूसरी में कुछ तोभी तमोमय बिम्ब बीचसे हट जायगा। अतएव यदि प्रकाशका वेग विविध दिशाओंमें भिन्न है तो यंत्रको जुदीजुदी स्थितियोंमें रखकर निरीक्षण करने पर तमोमय मध्य बिम्ब हटता नज़र पड़ेगा। माइकलसन और मौरलेने बहुत प्रयोग किये पर उसकी स्थितिमें कभी भी अन्तर दृष्टिगोचर न हुआ। इसी प्रयोगको मौरले और मिलरने वर्तमान सुविधाओं, शोधों और सूक्ष्म साधनों का सहारा ले बड़ी होशियारीसे दुबारा किया, पर वही परिणाम निकला। इससे यही एक सिद्धान्त निकल सकता था कि आकाश पृथ्वी के साथ चलता है।

इस प्रयोग के परिणाम के विषय में आकाश को स्थिर मानने वालों में से लौरेंज़ और फिटज़-गीरेल्ड ने पहले यह विचार प्रकट किया कि आकाशको पृथ्वी के साथ चलता हुआ मानने के स्थानमें यह मान लेना अधिक न्यायसंगत है कि गतिकी दिशामें वस्तुओंकी लम्बाई कम हो जाती है और घड़ियां सुस्त चलने लगती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि प्रकाशका वेग उतने का उतना ही बना रहता है।

सन् १९०५ में यह स्थिति थी। लोगोंको बड़ा भ्रम था। वह गाढ़ी दुविधा में थे कि एक की बात मानें कि दूसरेकी। इसी समय आयंस्टीन ने अपने विशेष (संकुचित) अपेक्षतावादकी घोषणाकी और यह बतलाया कि वस्तुतः कोई भी भौतिक घटना नहीं है जिससे हमें अपने रेखात्मक समान गतिका निरपेक्ष ज्ञान हो सके। उन्होंने दो और बातें मानीं। एक तो यह कि प्रकाशका वेग सदा सर्वदा एक समान रहता है दूसरे यह कि जो घटनाएँ एक निरीक्षकको समकालीन प्रतीत होती हैं यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरेके लिए भी समकालीन हों। इन तीनों बातोंको मान कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि समयकी इकाई कोई निरपेक्ष, स्वतंत्र वस्तु नहीं है, जैसा कि अब तक मानते आये हैं, किन्तु लम्बाईकी इकाईके समान ही अपेक्षात्मक है। इन सब बातों पर विचार करके उन्होंने कहा कि आकाश चलता है या स्थिर है, इस का पता चलाना असम्भव है। अतएव इसकी खोज में समय लगाना भी व्यर्थ है।

खानेका समय और परिमाण

[ले०—श्री० रमेशप्रसाद, बी. एस-सी.]

यह एक ऐसा आवश्यक विषय है कि इसके बारेमें प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ जानकारी रखनी चाहिये। भारतवर्ष में दस दस सेर चिवड़ा दही खाने वाले मंगिल, बारह बारह सेरलड्डू खाने वाले भट्ट और चौबे हैं। इसी देशमें ऐसे भी मनुष्य हैं जो महात्मा गान्धीकी तरह बहुत थोड़ा भोजन कर हृष्टपुष्ट रह सकते हैं। किन्तु अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं जो न तो दस बारह सेर खा सकते हैं और न बहुत थोड़ा खा कर अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं। उन लोगोंको बीचका रास्ता पकड़ना पड़ता है। किन्तु इस बातसे बहुत से मनुष्य अनभिज्ञ हैं कि भोजनका यथोचित परिमाण जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य ठीक रह सके कितना है। यहां इसी विषय पर विचार किया जाता है।

दिनमें कितनी बार और कितना भोजन करना चाहिये इसका कोई एक निर्दिष्ट नियम सबके लिये नहीं लिखा जा सकता। क्योंकि यह बात देश, अवस्था, दैनिककार्य, अभ्यास, पाचनशक्ति और परिश्रमपर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, मनुष्यके शरीर, मस्तिष्कके बल और उनके व्यवहारसे भी भोजनका बहुत कुछ सम्बन्ध है। संसारके प्रायः सभी देशोंमें दो बार भोजन करनेका नियम है। बहुत से लोग बीच बीचमें जलपान भी किया करते हैं। कोई कोई दिन रातमें केवल एक बार भोजन कर स्वस्थ्य रह सकते हैं। इस विषयमें एक बात अवश्य कही जा सकती है कि जब तक एक बारका किया हुआ भोजन पच न जावे और जब तक भूख न लगे तब तक खाना उचित नहीं है।

बालक और युवाओंको जिस परिमाणमें भोजनकी आवश्यकता होती है बूढ़ोंको उतनी नहीं होती क्योंकि बालक और युवाओंका आहार उनके शरीरकी क्षय-पूर्ति और वृद्धि दोनों काम करता है। ३० वर्षके बाद मनुष्यका शरीर नहीं बढ़ता, इसलिये इस अवस्थाके उपरान्त शारीरिक वृद्धिके लिये भोजनकी आवश्यकता नहीं होती। ज्यों ज्यों मनुष्य बढ़ता जाता है वैसे ही शारीरिक यन्त्रादि क्रमशः दुर्बल होते जाते हैं। दुर्बल यन्त्रसे अधिक काम कराना अच्छा नहीं है। इसलिये प्रौढ़ावस्थाके मनुष्योंको अपना भोजन कम कर देना चाहिये।

यह बात सभी विचारशील मनुष्य मानते हैं कि यदि आमदनी और खर्च बराबर हो तो कोई अनिष्ट नहीं होता। हमारा शरीर बराबर छीजता रहता है। हमारे स्वांस, मल मूत्र, पसीना आदि द्वारा हमारे शरीरसे कुछ पदार्थ बराबर निकल रहे हैं। यदि हमें यह पता लग जाय कि हमारे शरीरसे २४ घंटेमें कौन पदार्थ कितना निकलता है और उनकी पूर्ति भोजन द्वारा कर दी जाय तो हमारे स्वास्थ्य को, किसी अनिवार्य कारणके बिना कोई हानि नहीं हो सकती। हमारे शरीर से जो पदार्थ निकल रहे हैं, उनमें मुख्य नत्रजन और कार्बन हैं। परीक्षा द्वारा उनका परिमाण भी जाना गया है और यह भी निश्चित किया गया है कि कौन पदार्थ कितना खाने से उल्लिखित नत्रजन और कार्बनकी पूर्ति हो सकती है।

एक जवान यूरोपियनके शरीरसे प्रति दिन ३०० ग्रेन नत्रजन और ४५०० ग्रेन कार्बन मल मूत्र, पसीना, स्वांस आदि दूषित पदार्थोंके साथ निकलता है। भारतवासियोंका शरीर साधारणतः यूरोपियनसे तौलमें कम होता है और हम लोग उनसे काम भी कम करते हैं। इसलिये हम लोगोंके शरीरसे ३०० ग्रेन से कम नत्रजन प्रति दिन निकलता है किन्तु कार्बनका परिमाण प्रायः बराबर ही है। यदि मान लिया जाय कि हमारे शरीर से प्रति दिन २५० ग्रेनके करीब नत्रजन निर्गत होता है तो

यह ग़लत नहीं कहा जा सकता। इसलिये हम लोगों को भोजन इस परिमाण से करना चाहिये कि २५० ग्रेन नत्रजन और ४५०० ग्रेन कार्बन खा सकें।

हम जानते हैं कि हमारी शरीररक्षाके लिये चार उपादानोंकी आवश्यकता होती है। अब यह देखना है कि कौन कौन पदार्थ किस किस परिमाणमें खानेसे हमें यथावश्यक नत्रजन और कार्बन मिल सकते हैं। किसी एक पदार्थ से हम लोग नत्रजन और कार्बन दोनों यथा परिमाणमें नहीं पा सकते। एक सेर मांस खाने से ३०० ग्रेन नत्रजन तो मिल सकता है किन्तु १८०० ग्रेनसे अधिक कार्बन उसमें नहीं रहता। ३ पाव चावल से ४५०० ग्रेन कार्बन मिल सकता है किन्तु ७८ ग्रेन से अधिक नत्रजन नहीं पा सकते। कोई भी एक पदार्थ शरीरकी क्षति पूरी करनेमें असमर्थ है। किन्तु यदि हम लोग भिन्न भिन्न प्रकारकी खाद्य सामग्रियोंको एक साथ खायँतो हमें यथाप्रयोजनीय पदार्थ प्राप्त होंगे और हमारे शरीरकी क्षतिपूर्ण होकर स्वास्थ्य रक्षा होगी।

किस खाद्य पदार्थ को कितना खाने से हमारे शरीरकी रक्षा हो सकती है, और हम काम करनेमें समर्थ हो सकते हैं यही इस समय आलोचना करना है। यह तो सभी जानते हैं कि जो आदमी जितना कम या अधिक परिश्रम करता है उसीके अनुसार कम या अधिक भोजन करता है। परीक्षा द्वारा जाना गया है कि यदि हम लोग कुछ भी काम न करें और चुपचाप पड़े पड़े समय व्यतीत करें तो हमारे शरीरके वज़नके हिसाब से हर एक सेर पीछे $\frac{१}{५}$ औंस निर्जल (Water-free) खाद्य ग्रहण करने से शरीर रक्षा हो सकती है। साधारण परिश्रमके बाद सेर पीछे $\frac{२}{७}$ औंस निर्जल खाद्य की आवश्यकता होती है। अधिक परिश्रम करनेसे इससे अधिक भोजनकी ज़रूरत पड़ती है। एक अङ्गरेज तौलमें प्रायः ७५ सेर होता है। इसलिये उसे बिना परिश्रमके १५ औंस और मामूली परिश्रमके बाद २३ औंस निर्जल भोजन चाहिये। इतने निर्जल भोजनमें शरीर रक्षाके चारों उपादान यथा परिमाणमें रहने चाहिये।

नीचे एक ऐसी तालिका दी जाती है, जिसे देखनेसे मालूम होगा कि परिश्रमके अनुसार किस जातिका उपादान कितना ग्रहण करना आवश्यक होता है।

पदार्थ	बिना परिश्रम।	सामान्य परिश्रम	अधिक परिश्रम
(छेना) प्रोटीड ...	२·० ...	४·५ ...	६·५
मक्खन (Fat) ...	०·५ ...	३·५ ...	४·०
शक्कर (Carbohydrate)	१२·० ...	१४·० ...	१७·०
लवण (Salts) ...	०·५ ...	१·० ...	१·३
	१५·०	२३	२८·८

संसारकी प्रायः सभी वस्तुओंमें जलका अंश रहता है। उनमें खाद्य पदार्थ भी निर्जल नहीं होते जलका अंश कुछ न कुछ अवश्य रहता है। दूधमें प्रति सैकड़ा ८६ भाग, माँसमें ७४, दालमें १२, चावलमें १०, आटेमें १५, आलूमें ७४, मछलीमें ७८ भाग जल रहता है। तरकारी, साग, सब्ज़ी, और फल मूलोंमें प्रायः ६० फ़ी सैकड़ा जल पाया जाता है। किन्तु हमारे खाद्य पदार्थोंमें प्रायः ५० भाग जल और ५० भाग पदार्थ (Solid matter) रहता है। हम लोगोंके लिये जितना निर्जल पदार्थकी आवश्यकता होती है, उसके प्रायः दूना सजल पदार्थ खानेसे हम लोग पूर्ण रूपसे स्वस्थ रह सकते हैं। इस हिसाबसे हर एक मामूली काम करने वाले अंग्रेज़को २३×२=४६ औंस या प्रायः डेढ़ सेर भोजन करना चाहिये।

इतने भोजनसे ३०० ग्रेन नत्रजन और ४५०० ग्रेन कार्बन मिल सकता है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि हिन्दुस्तानियोंका वज़न अङ्गरेज़ोंसे कुछ कम होता है और साधारणतः उनकी अपेक्षा हम लोग कम काम करते हैं, इसलिए हमारे शरीरसे कम नत्रजन निकलता है। अब हमें यह देखना है कि भिन्न भिन्न प्रकारके खाद्य पदार्थोंमें से किसे कितना खानेसे उक्त परिमाणमें नत्रजन और कार्बन मिल सकते हैं। इसका विवरण नीचे दिया गया है:—

खाद्य पदार्थ	छटांक	नत्रजन (ग्रेन)	कार्बन (ग्रेन)
चावल	३	२१	१,०५०
आटा	५	७७	१,६६०
दाल	१$\frac{१}{२}$	४६.२	४६८
मांस वा मछली	२$\frac{१}{२}$	५०.४	२६०.८
आलू	२	५.६	१८०.०
दूसरी तरकारी	२	६.०	८०.०
घी या तेल	$\frac{१}{२}$	०.०	३२८.२
दूध	८	४४.८	४८०.०
नमक	$\frac{१}{४}$	०.०	०.०
मसाला	यथापरिमाण		
	२४$\frac{३}{४}$ छटांक	२५१.० ग्रेन	४५३७.० ग्रेन

इन्हीं सुविधाओंके अनुसार दिनमें तीन बार खाना चाहिये।

चावल या आटे को कम करके उसके बदले मिठाई या फल खा सकते हैं। जो निरामिष-भोजी हैं उन्हें मांस और मछलीके बदलेमें २ छटांक अधिक दाल या आध पाव छेना खाना चाहिये।

डाक्टर केडफ़ोर्ड अपनी स्वास्थ्य रक्षा नामक पुस्तकमें एक युवक परिश्रमशील उत्तर-पश्चिम देश-वासी व्यक्तिके आहारके लिये निम्नलिखित वस्तुओंके खाने की सलाह देते हैं। इसकी एक तिहाई एक बारमें खाना चाहिए और २४ घन्टेमें सब खा जाना चाहिए।

आटा	६$\frac{१}{२}$	छटांक
चावल	$\frac{१}{६}$	"
दाल	३	"
घी वा तेल	$\frac{१}{२}$	"
मांस (दालके बदले)	४	"
तरकारी	५	"
नमक	$\frac{१}{४}$	"
मसाला	यथाप्रयोजन	

कलकत्ता मेडिकल कालेजके अध्यापक डाक्टर म्याकने विद्यार्थियोंके भोजनके सम्बन्धमें बड़ी खोज

पड़ताल की थी। अन्तमें वे इस निर्णय (conclusion) को पहुँचे कि जो भोजन विद्यार्थियों को मिलता है, उसमें नत्रजन का अंश बहुत कम रहता है, इस लिये वहांके विद्यार्थियों की शारीरिक पुष्टि और स्वास्थ्यलाभ उचित रीति से नहीं होता। विद्यार्थियोंके भोजनके विषयमें हम लोगों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। छेना जातीय उपादान (Nitrogenous Food) की मात्रा उन्हें बढ़ानी चाहिए, नहीं तो धीरे धीरे भारतीयों की शारीरिक दुर्बलता बढ़ती जायगी और हम अवनति की ओर अग्रसर होते जावेंगे। छेना जातीय उपादान मांस, मछली, दाल, पनीर (cheese) आदि पदार्थोंमें अधिकता से रहता है। दालके सिवाय दाल की बड़ी, पकौड़ी पापड़, आदिके खाने का भी अभ्यास रखना चाहिये।

एक बार अधिक नहीं खाना चाहिए। थोड़ा थोड़ा ३-४ बार खाना अच्छा है किन्तु थोड़ी थोड़ी देर पर खाना अच्छा नहीं है क्योंकि ऐसा करने से आमाशय को विश्राम करने का समय नहीं मिलता। एक दफ़ेमें अधिक खा लेने से पचानेमें बाधा उपस्थित होती है। आमाशय बड़ा हो जाता है, उसकी परिपाक शक्ति कम हो जाती है। आलस्य आ घेरता है और शरीर परिश्रम करने से जवाब दे बैठता है। आप सेठ साहूकारों को बड़ा बेडौल और मोटा देखते हैं, इसका कारण अधिक खाना ही है। अधिक भोजन कर लेने से विद्यार्थी स्कूलमें ऊँघा करते हैं। हमेशा भूकसे कुछ कम खाना चाहिये। रातमें थोड़ा खाना चाहिए और सोनेके प्रायः २ घंटे पहिले ब्यालू कर लेना अच्छा है। प्रति दिन नियमित समय पर खाना स्वास्थ्यरक्षाके लिये आवश्यक है। एक बार पेट भर भोजन करनेके बाद ४-५ घंटा कुछ खाना नहीं चाहिए। जलपान के बाद पेट को २ घंटेका विश्राम देना उचित है। हां, लड़कोंके विषयमें ये बातें लागू नहीं हैं।

अध्यापन वृत्ति

[ले० अध्यापक विश्वेश्वरप्रसाद बी० ए०]

मनुष्यकी सब वृत्तियोंमें यह वृत्ति सदासे श्रेष्ठ मानी गई है; ज्ञानका संचय करना और उसका वितरण करना अध्यापन कार्य है। पहले कार्यके बिना दूसरेकी संभावना नहीं। दिन प्रतिदिन अपने ज्ञानकी वृद्धि करना अध्यापक का परम कर्तव्य है।

प्राचीन कालसे हमारे देशमें इसका महत्व माना गया है। ब्राह्मण वृत्तिवालेको उदरपूर्ति की चिन्ता न हो इसका उपाय किया गया था। आजदिन अवस्था दूसरी है अतएव इस वृत्तिके अनुयाइयोंमें अनेक दोष आगए। इस वृत्तिके ग्रहण करने वाले भी बहुत हैं और जैसे जैसे शिक्षाकी आवश्यकता प्रतीत होती जाती है इसवृत्तिके धारण करनेवालोंकी सख्या और भी बढ़ती जाती है। हड़तालका रोग कमसे कम इस वृत्तिको शोभा नहीं देता तथापि इंगलैण्डके मास्टरों ने इसकी धमकी दी। दूर क्यों जाइए अपने संयुक्त प्रान्तके कुछ मास्टरों ने इसकी शरण लेनेकी चेष्टा प्रकट की।

इस दशामें यदि हम यह स्मरण करेंकि अध्यापन वृत्तिसे कैसे कैसे उत्तम कार्योंके सम्पादनकी सम्भावना है तो अनुचित न होगा। कदाचित अपने उच्च आदर्श के स्मरणसे हम अधोगतिकी ओरसे हटनेकी चेष्टा करें।

सारे संसारमें जब गुरुकी कुटीमें रहकर पढ़ने की प्रथा थी उस समय शिष्योंको सदाचारी बनानेका जो एक मात्र उपाय था वह धर्मका सहारा था, धर्मसे यहां मेरा तात्पर्य उन नियमोंसे है जो दैनिक क्रिया कहलाती थीं और जिनके द्वारा बालकमें धर्मबुद्धिके द्वारा सदाचारी बननेकी इच्छा जगमाई जाती थी। आजकलका समय कुछ दूसराही है, स्कूल खुले हैं, हर प्रकारके आचरणोंके बालक और अध्यापक कुछ घण्टोंके लिए एकत्र

होते हैं, बाकी समय लड़के अपने घर व्यतीत करते हैं और अध्यापक अपने घर। अध्यापक का कुछ समय ट्यूशनमें जाता है और बाकी और आवश्यक कार्योंमें उन्हें फंसाए रहता है. अध्यापनवृत्ति दूकानदारी हो रही है। मातापिताने मूल्य ठीक कर रक्खा है, लेने वाले आए, ज्ञानकी बिक्री हुई, सबने पांच घंटे के उपरान्त अपना अपना रास्ता लिया न तो लेनेवालेको चिन्ता है कि क्या मिला और न देनेवालेहीको चिन्ता है कि क्या दिया।

समस्या यह है कि क्या जब तक गुरु और शिष्यके साथ रहनेकी प्रणाली फिर न चल निकले तब तक अध्यापन वृत्तिकी यह अधोगति रुक नहीं सकती? वास्तविक प्रश्न तो यह है कि क्या उस समय भी केवल उस प्रणाली हीके चल निकलने मात्रसे अभीष्ट-अर्थ सिद्ध हो जावेगा? नहीं कोई ऐसा उपाय अवश्य होना चाहिये जिससे अध्यापनवृत्ति के उच्च आदर्शवाले हो इस कार्यको कर सकें। जर्मनीके विश्वविद्यालयोंमें ऐसा प्रबन्ध किया है कि जिस बालक की इच्छा जिस अध्यापकसे पढ़नेकी होपढ़े, अध्यापकका वेतन उसके यहां आने वाले शिष्योंकी संख्या पर निर्भर है शिष्यजो फीसदे वही फीस अध्यापकका वेतन है इस प्रकार बिना किसी परीक्षा या अन्य उपायके अनभीष्ट लोग इसवृत्तिको ग्रहण करनेसे रोक दिए जाते हैं, मेरी समझमें यह उपाय स्कूलोंमें भी सफल हो सकता है।

पढ़नेके अतिरिक्त और उससे अधिक महत्वका कार्य शिष्यको सदाचारी बनानेका है। यह प्रश्न अनेक कठिनाइयोंसे भरा है कुछ विद्वानोंका विचार है किजब तक प्रतिदिन प्रार्थना न कराई जावे, जब तक शिष्यके धर्मके आवश्यक और मूल सिद्धान्त उसे न जनादिए जावें तब तक उसका सदाचारी रहना असंभव है। कुछ अन्य विद्वानोंका विचार है, कि नीतिकी कथाएँ सुनाई जावें, धर्मकी बातों पर व्याख्यान होने लड़के सदाचारी बनेंगे। कुछ तीसरी कोटिके विद्वान हैं जोयह कहते हैं कि प्रतिदिनके जीवन में सदाचारके व्यवहारका अभ्यास ही कराते जाना शिष्यको सदाचारी बनानेका एकमात्र उपाय है। किसी अनुचित व्यवहारका अवसर ही न मिलेतो स्वाभाविक रीतिसे अच्छे व्यवहारकी आदत पड़ जायगी।

क्या इन सब बातोंका विचार करते हुए आज कलके स्कूलके मास्टर यदि चाहें और उनमें योग्यता हो, तो शिष्योंके जीवनको ठीक रास्ते पर नहीं चलादे सकते? प्रत्येक कार्यके करनेके कुछ रहस्य होते हैं, विशेष रहस्य के जान लेने पर कार्य बहुत कुछ सरल हो जाता है और जोबात इस अनुभवके पूर्व असंभव जान पड़ती है वही बादको बिल्कुल संभव होजाती है।

स्कूलमें जितनी कक्षाएं होती हैं उससे अधिक संख्यामें मास्टर होते हैं, प्रत्येक कक्षाका एक क्लास मास्टर होता है, क्लास मास्टर वस्तुतः अपने कक्षाका उत्तरदाई है, वह उस कक्षाका नेता हो सकता है। योग्यता, शक्ति और इच्छाकी आवश्यकता है। प्रत्येक क्लास मास्टरके पास तेतींस बालकोंसे अधिक विद्यार्थी नहीं होते। आरंभ हीमें क्या यह संभव नहीं कि क्लास-मास्टर तेतींस लड़कोंके पिता या गार्जियनसे परिचय करले और उनके घर जानले? इतना होजाने पर प्रत्येक बालकके लिए एक पेज छोड़कर एक कापीमें उसके पढ़ाई और आचरणके सम्बन्धमें नोट लिखता रहाकरे, पढ़ाईके दोष जानना सरल है, पर आचरणकी त्रुटियोंका जानलेना कठिन है, पढ़ाईके दोषको ठीक करना अत्यन्त सरल है पर आचरणकी त्रुटियोंकी शुद्धि अत्यन्तही कठिन काय है, पर क्या यह असंभव है? परिश्रम करनेकी आवश्यकता है, यह कठिन कार्यभी अत्यन्त सरल है, परिश्रमभी ऐसा नहीं जो न हो सकें।

यह बात प्रसिद्ध है कि प्रतिदिन के छोटे छोटे कार्योंको देखनेसे मनुष्यके स्वभावका पता चलता है। जिसके स्वभावका पता चलाना हो उसके

कार्यको इस प्रकारसे देखिए कि उसे मालूम न हो कि आप देख रहे हैं, तभी उसके स्वाभाविक आचरणका पता आपको चलेगा। बालकोंके स्वभावको जाननेका एकमात्र श्रेष्ठ उपाय यह है कि क्लास-मास्टर अपने शिष्योंके साथ रिसेसमें और स्कूलके समयके उपरान्त खेले खेलमें बालक अपने स्वाभाविक आचरण प्रकट करेंगे, क्लासमास्टरको तीनचार बालकोंको एक दिनकी आंचके लिए निर्दिष्टकर लेना चाहिये, इस प्रकारसे जब भिन्न भिन्न दोषोंका पता चल जावे तो मनो-वैज्ञानिक रीतिसे उनके रोकनेका उपाय करें। सालभरके परिश्रम के उपरान्त अवश्य दोतीन बालक सुधर जावेंगे, और यदि कई वर्ष इस प्रकार वही बालक साथ रहें तो अवश्य उनका भला होगा और अध्यापन वृत्तिभी सार्थक होगी।

इस कार्यमें बालकके पिता अथवा गार्जियनसे सहायता लेना चाहिये, यदि क्लास-मास्टर सालमें तीनवार अपने क्लासके बालकोंके पिता अथवा गार्जियन महाशयोंको एकत्रित करके उनके सम्बन्धमें उन्हें सूचना दिया करें और ऐसी बातें बताया करें जिन्हें साधारणतया आजकलके गार्जियन विचारते ही नहीं तो बालकोंका अत्यन्त उपकार हो क्लासक्लबके द्वारा बालकोंमें पुस्तक प्रेमकी वृद्धि कराई जा सकती है। सेवाका धर्म जड़ पकड़ सकता है। यह नियम रहे कि जिस दिन किसी बालकके बीमार होने की सूचना आवे उस दिन कोई न कोई सहपाठी अवश्य उसे देखने जाय। क्लास-मास्टर को तो अवश्य देखने जाना चाहिए।

इन तीन उपायों की शरण लेनेसे अध्यापक अपने वास्तविक कार्यके सम्पादनमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। सदाचार सम्बन्धी दोषोंके पहचानने और उनके निवारणार्थ मनोवैज्ञानिक उपायोंके विषयमें कमसे कम दो पुस्तकोंसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। पहली थर्नडैक की 'चाइल्ड स्टडी' और दूसरी श्री० जी-एस अरण्डेल की लिखी (In the service of the student) नामक पुस्तक है यह पुस्तकें (League of Parents and Teachers) के मंत्रीके पास से मिल सकती है। जिनका पता लश्कर कालिज ग्वालियर है।

अध्यापन सम्बन्धी उच्चादर्शके विचारों का प्रचार तब तक नहीं हो सकता जब तक प्रत्येक स्थानके अध्यापक गण अपने नगरका एक टीचर्स एसोसिएशन बना कर कभी कभी इन बातों की चर्चा न किया करें।

—:o:—

जंगलों का प्रभाव

लेखक:—अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव
बी. एस. सी., एल. टी. विशारद

ज कल बाग बगीचे बहुत कम लगाये जाते हैं। जो बाग बहुत आसानीसे लगा सकते हैं उनके दिलमें यह समाया हुआ है कि जहां तक हो सके एक इंच भूमि भी बेजोते न छोड़ी जाय जिससे लगान अधिक आवे और जो थोड़ी पूंजी के आदमी हैं उनको बाग लगानेके लिए भूमि ही नहीं मिल सकती। धनी आदमियोंमेंसे दो एक ने हौसला हुआ तो कभी आम अमरूद इत्यादि छोटे छोटे पेड़ोंके बाग इस लिए लगवाते हैं कि भूमि कम लगे और फल थोड़े ही दिनोंमें अधिक प्राप्त हों। और दूसरोंके काममें न आने पावें क्योंकि छोटे पेड़ोंकी रक्षाके लिये चहारदीवारी और फाटकको अवश्यकता पड़ती है जिससे न तो गाय गोरू उसके भीतर जाकर धूपमें आराम कर सकते हैं और न आदमी ही जाने पाते हैं। इस प्रकार दिन दिन गावोंमें बागों की और छायादार बड़े बड़े पेड़ोंकी कमी हो रही है। कुछ तो पुराने होकर सूख जाते हैं और कुछ हरे हरे पेड़ कटकर शहरोंमें चले जाते हैं जहां बड़ी बड़ी

सिल्लियां तो मेज़ कुरसी बनानेके काममें आती हैं और छोटी छोटी लकड़ियां जलानेके काममें; जहां कहीं छोटे मोटे जंगल हैं उनकी भी यही दशा है कि जहां कटकर कुछ सफ़ाई हुई और भूमि जोतने बोने लायक़ हुई वहां वे ज़रूर जोत लिए जाते हैं चाहे उनसे मजदूरीभरको भी अनाज न पैदा हो।

पेड़ोंकी इस कमीके कारण देशकी दशा जैसी खराब हो रही है वह सब पर अपना प्रभाव डाल रही है। जहां दूध घीकी नदियां बहती थीं वहां बच्चोंके लिये भी दूध पीनेको नहीं मिलता; जहां गोपालन प्रत्येक गृहस्थके लिए कर्तव्य समझा जाता था वहां अच्छे अच्छे गृहस्थ और एक गायका रखना कठिन काम समझते हैं क्योंकि उनके लिए चारा कहांसे आवे। फ़सलके दिनों में गावोंमें इतनी भूमि भी नहीं बच रहती कि गाय गोरू अच्छी तरह घूम फिर कर अपना निर्वाह भी करसकें। एक समय वह था किप्रत्येक गांवमें कुछ भागमें एक भाग भूमि गाय बैल चरनेके लिए छोड़ दी जाती थी और एक समय यह है कि जितनी ज़मीन जोती जासके जोत लीजाय और जितने पेड़ कटजांय उनकी जगह नये पेड़ न लगने पावें। देखिये और देशोंमें चरनेके लिए भूमिका कौनसा भाग छोड़ दिया जाता है:—

देशका नाम	कुल क्षेत्रफल (लाख एकड़ोंमें)	चरनेकी भूमिका क्षेत्रफल (लाख एकड़ोंमें)	कुल क्षेत्रफलके कितने भागमें चरनेकी भूमि का एक भाग
इंगलैंडका संयुक्त राज्य	७७५	२३०	३ भागमें १ भाग
इंगलैंड	३२५	१००	३ भागमें १ ,,
जर्मनी	१३३०	२१४	६ भागमें १ ,,
निउज़ीलैंड	६७	२७	३ भागमें १ ,,
अमेरिका का संयुक्त राज्य	१९०३०	११७०	१६ में १ ,,
जापान	१०५६	१७६	६ में १ ,,
भारतवर्ष	९६००	३५०	२७ में १ ,,
बंगाल	५०५	३०	१७ में १ ,,

देखिए जापान और इंगलैंड जैसे टापुओंमें भी एक तिहाई भूमि बेजुती हुई छोड़ी जाती है परन्तु भारतवर्ष में २७ बीघा पीछे एक बीघा भूमि चरनेके लिए छोड़ी जाती है जो सबसे कम है। फिर यहां दूधकी कमी क्यों न हो।

नीचे लिखी सारिणीसे जान पड़ेगा कि एक 'मूंड' गोरूके लिए कहां कहां कितनी भूमि चरने के लिए छोड़ी जाती है:—

देशका नाम	चरनेकी भूमिका क्षेत्रफल (हज़ार एकड़ों में)	गोरूकी संख्या (हज़ारों में)	एक मूंड पीछे चरनेकी भूमि (एकड़ों में)
अमेरिकाका संयुक्त राज्य	१९०३०००	१,४६,३०८	१३
बंगाल	२९२४	१७,०५४	·१७
बंबई (कैरा अहमदाबाद)	४०६	३१६	१·३

लोगोंकी यह धारणा है कि जितनी ही भूमि अधिक जोती जायगी उतना ही अधिक अनाज उत्पन्न होगा परन्तु बात ऐसी नहीं है। नीचेकी सारिणीसे जान पड़ेगा कि जिस वर्ष जितनी

अधिक भूमि जोती बोयी जाती है उस वर्ष उसके अनुपातसे अनाज नहीं उत्पन्न होता वरन कम होता है।

	बंगाल		बम्बई		उत्तर पश्चिमसीमा परके सूबे	
वर्ष	१६०२-३	१६०४-५	१६१०-११	१६१३-१४	१६०३	१६०८
कितनी भूमि जोती गयी (१००० एकड़ोंमें)	५६,२१४	६१,०३४	३०,७४२	३०,८४५	२,४३६	२,६५७
कितना अनाज हुआ (१००० टनोंमें)	२६,२३७	२४,६७६	७,६१५	६,८६८	७२४	६२१

ऊपरके कुल अंक मार्च की माडर्न रिव्यूके श्रीयुत नीलाम्बर चटर्जी महोदयके लेखसे लिये गये हैं। यहां तक तो यह दिखाया गया कि गावोंमें सब भूमि जोत लेनेसे पशुओंको क्या हानि पहुँचती है। अब यह बतलाया जायगा कि बाग़ बग़ीचे तथा चरनेकी जगह न होनेसे क्या क्या हानियां हैं।

५, ६ वर्ष हुए कि लखनऊमें एक मित्रके घर मुझे एक सज्जनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ जो प्रो० गेडीज़ प्रसिद्ध नगर निर्माणकर्त्ताके साथ काम करते थे। उनका कहना था कि नगर ऐसे बनने चाहिए कि उसकी सड़कों पर धूल न उड़े क्योंकि इससे उड़ने वाले रोगकी कीटाणु फैलते हैं परन्तु सड़क पत्थर ईंट या सीमेंटकी भी नहीं होनी चाहिये जैसी कि लखनऊके कुछ नये महल्लोंमें है क्योंकि इनसे तो गरमीके दिनोंमें बड़ा कष्ट होता है और स्वास्थको भी हानि पहुंचती है। उनका कहना था कि सड़कें चौड़ी होनी चाहिए। दोनों किनारों पर घास लगी रहनी चाहिए और जगह जगह कुछ अंतर छोड़ कर छोटे छोटे उद्यान बनने चाहिए जिनसे वायुमण्डल बहुत गरम या बहुत ठंढा न होने पावे और लोगोंका स्वास्थ भी अच्छा रहे। घासके लगाने तथा उद्यानोंके रखनेसे धूल भी नहीं उड़ेगी, तापक्रमका घटना बढ़ना भी बहुत मंद रहेगा।

इस बातचीतसे यह सिद्ध होता है कि बाग़ बग़ीचोंसे मनुष्योंके स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है। जब शहरोंमें जहां बस्ती बहुत घनी होती है और जगह कम, उद्यानोंके लगानेका तथा घास जमानेका प्रबन्ध होना आवश्यक समझा जाता है तब क्या गावोंमें इसकी आवश्यकता नहीं है कि चरनेके लिए भूमि छोड़ी जाय और जो बाग़ बग़ीचे हैं वह जोत न लिये जांय वरना और लगाये जाँय जिससे लोगोंका स्वास्थ्यभी अच्छा रहे और पशुओंके चरनेका भी सुभीता हो जिससे खानेके लिए दूध घी बहुतायत से मिलें।

बाग़ बग़ीचोंसे खेतीको भी अत्यन्त लाभ पहुं-चता हैं। जहां बाग़ बग़ीचे अधिक हैं वहां भूमि कुछ न कुछ तर रहती है क्योंकि वर्षाका जल पहले तो पत्तियोंमें समाता है फिर भूमिमें आकर पेड़ के नीचे जो छोटे छोटे पौदे और गिरी पत्तियां होती हैं उनमें सोखता है और बहुत दिनतक ठहरा रहता है। यदि बहुत वर्षा हुई तो कुछ पानी बह जाता है परन्तु बहाव बहुत मंद होता है इसलिए भूमि बहुत कम कटती है जिससे न तो नाले बहुत गहरे होते हैं और न भूमि कंकड़ीली होने पाती हैं। जो जल ठहर कर भूमिके नीचे चला जाता है वह भूमिके नीचे जलकी तहको उठा देता है जिससे कूओंमें पानी बहुत गहराई पर नहीं मिलता और पेड़ पौदे गरमीके दिनोंमें भी हरे भरे रहते हैं। वायुमण्डल नितान्त रूखा नहीं होने पाता वरन कुछ न कुछ तरी रहती है जिससे तापक्रम का असर आस पास भी अत्यन्त अधिक नहीं होने पाता।

जङ्गलोंसे व्यापार और शिल्पकलाकी भी उन्नति होती है। हज़ारों मनुष्य काममें फंसे रहते हैं और सबको खेती पर ही भरोसा नहीं करना पड़ता। जङ्गलोंकी उन्नति करनेके विषयमें अमेरिका-के प्रसिद्ध सभापति रूज़वेल्ट महोदय ने १६०५ ई० में कहा था :—

"कृषि, जहाज़, रेलकी खानि खुदाई, चराई (grazing) और घरकी विविध सामग्री बनवाई इत्यादि प्रत्येक कामके लिए जङ्गलकी लकड़ी घास और पानीकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। उद्योग धंधोंमें लकड़ीका काम सीधे और प्रकट रूपसे पड़ता है। उनके सिवा कल कारख़ाने उन्नतिके लिए भी उतनेही महत्वके हैं। जिस भौतिक ढांचेपर सभ्यता निर्भर है उसमें लकड़ीका एक बहुत बड़ा भाग होता है यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि लकड़ीकी जगह लोहा तथा अन्य चीज़ोंके प्रयोग करनेसे लकड़ीका सापेक्ष परिमाण कम हो गया तथापि प्रयोगमें आने वाली लकड़ीका परिमाण अधिक हो गया। पहले जितनी लकड़ी काममें आती थी उससे कहीं अधिक अब काममें आती है। यदि जङ्गलोंका काटना इसी प्रकार जारी रहा जैसा कि आज कल है और कोई बात इस कमीको पूरी करनेके लिए न की गई तो भविष्यमें लकड़ीका अकाल अवश्य पड़ जायगा।

प्रेसीडेंट रूज़वेल्टकी भविष्य वाणी ठीक हो रही है। "मुन्शी मैगज़ीन" में लिखा है कि सिनेट के प्रस्तावानुसार संयुक्तराज्य अमेरिकाकी जङ्गलात विभाग ने पूरी तरह जांच करके यह निश्चय किया है कि संयुक्तराजमें पहले ओरसे चीरी जानेवाली लकड़ी जितनी मिल सकती थी उसका तीन पांचवां भाग अब खप गयी। जो बच रही है उसका आधा भाग शान्ति महासागरके किनारे बसे हुए तीन राज्योंमें है और आधेका एक बहुत बड़ा अंश दक्षिणमें है। और दक्षिणके कारख़ानेवाले कहते हैं कि अच्छी तरह जांच करनेके बाद पता चल गया है कि १५ वर्षसे अधिक लकड़ी चल नहीं सकती है।

रेलकी सड़कोंके प्रबन्ध करनेवाले, घरका सामान बनाने वाले, सन्दूक बनाने वाले, और सबसे अधिक अख़बार वाले, (क्योंकि अख़बारका काग़ज़ भी तो जङ्गलकी लकड़ीसे ही बनता है) कहते हैं कि उनके काममें विघ्न पड़ रहा है क्योंकि जिस लकड़ी से उनका काम चलता है वह जितनी चाहिये नहीं मिलती है।

दस वर्ष पहले संयुक्त राज्यको अख़बारके लिए काग़ज़की आवश्यकता नहीं पड़ती थी सब यहीं तैयार होता था। परन्तु १६१६ ई० में अख़बारके लिए जितना काग़ज़ लगा उसका दो तिहाई अंश बाहरसे मंगाया गया था।

ताड़पीनका तेल, गन्धाबीरोज़ा इत्यादिके उद्योग धंदेमें अमेरिका सौ वर्षसे दुनियामें सबसे आगे बढ़ा हुआ है और अब भी सबसे आगे है। परन्तु यदि यही चाल रही तो दस वर्षमें दीवाला निकल जायगा और बाहर भेज सकनेके लिए यह सब चीज़ें नहीं मिल सकेंगी। बड़े दुर्भाग्यका दिन आवेगा यदि अपने खर्चके लिए भी दक्खिनी फ्रांस में लगाये हुए जङ्गलसे तारपीन मंगाना पड़ेगा।

इसलिए जङ्गल सम्बन्धी कठिन समस्याको हल करनेके लिए यह उचित नहीं है कि कम लकड़ी काममें लायी जाय वरन् अधिक उत्पन्नकी जाय। जङ्गलकी जो भूमि बेकाम पड़ी हुई है उसमें पेड़ लगाये जांय। यह काम कठिन नहीं है। तीन चौथाई काम तो ऐसा है कि दावानलसे रक्षाकी जाय परन्तु साथ ही साथ ख़ूब ज़ोरोंसे जङ्गलकी जगह जङ्गल लगवानेका भी यत्न होना चाहिए।"

देखिए और देशोंमें जंगलकी रक्षा और उन्नतिके लिए क्या किया जा रहा है। क्या अब भी छोटे मोटे जंगलोंको कटवा कर मैदान बना देनेकी इच्छा बनी रहेगी? यदि जंगल कटाना ही हो तो यह धर्म समझिए कि उसकी भूमि खेतके काममें न आने पावे वरन् नये नये पेड़ लगवाये जांय।

रेडियम की करामात !

[लेखक:—श्री कृष्णगोपाल माथुर, साहित्यरत्न]

रेडियम की खानें।

रेडियमकी खानें संयुक्तराज अमेरिका के कोलोरेडो प्रान्तमें हैं। यह स्थान रेलवे लाइनसे ५८ मीलकी दूरीपर है। यहांसे रेडियमका कच्चा माल निकालकर गाड़ियोंके द्वारा स्टेशन पर पहुंचाया जाता है। स्टेशनसे फिर उसको रेलगाड़ी के द्वारा "आरेंज़" नगरको पहुंचाते हैं। यहीं इसको साफ़ करनेका कारखाना है। साफ़ करनेमें जितना कच्चा माल होता है उतना ही रासायनिक द्रव्य लगजाता है। रेडियमकी शोधन-क्रिया बड़ी-टेढ़ी है। ८ गाड़ीभरे कच्चे मालमें कोई चुटकीभर रेडियम शुद्धकरने पर मिलता है। संसारभरमें अभीतक ५ आउंससे ज़्यादा रेडियम नहीं है।

रेडियम के गुण।

रेडियमके गुणका एक छोटासा चमत्कार आपको बता दिया जाता है। इससे आपको पता लगजायगाकि रेडियम क्या चीज़ है।

कोलोरेडो प्रान्तसे, जहां रेडियमकी खानें हैं अमेरिकाके अलबामा प्रदेशका एक किसान कुछ पत्थर खोद कर लाया। उसके लड़के लड़की घर पर उन पत्थरोंसे खेला करते थे। एक दिन खेलते खेलते उन्होंने उन पत्थरों को जलमें फेंक दिया। घरकी मुर्गी रोज़मर्रा वह जल पीती थी। पत्थर डालने के बाद जबसे वह पानी पीने लगी तभीसे उसने रोज़मर्रा दो अंडे देना शुरूकिया। उन अंडों को खाकर किसानके सब घरवाले खूब हृष्ट पुष्ट होगये। इस आश्चर्यजनक परिवर्तनका कारण किसीकी समझमें नहीं आया, सब सोच कर हैरान होगये। अन्तमें परीक्षा करके देखा गया, तो मालूम हुआकि उन पत्थरोंमें रेडियम मिला हुआ था। रेडियमके गुणसे जलकी उत्पादन शक्ति बढ़ी और उससे यह अद्भुत परिवर्तन हुआ।

रेडियम की शक्ति।

वैज्ञानिकोंने निश्चित किया है कि एक पउंड रेडियममें इतनी शक्ति मौजूद है जितनी ५१ लाख टन कोयलेसे प्राप्त हो सकती है। इस शक्ति के द्वारा १५ हज़ार टनका जंगी जहाज़ घंटेमें १५ मीलके हिसाबसे ३० वर्षतक चलाया जा सकता है। अर्थात् वह जहाज़ ४० लाख मील तक इस शक्तिके द्वारा चलाया जा सकता है। जिस वस्तुमें इतनी अपरिमित शक्ति मौजूद हो उसकी क्या उपयोगिता होगी यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं है पर, एक पाउंड रेडियमकी क़ीमत जब आप सुनेंगे, तो आश्चर्य करेंगे।

रेडियम का मूल्य।

एक ग्राम रेडियमका मूल्य १२०००० डालर अर्थात् ३७५००० रुपया होता है और एक पाउंड का मूल्य क़रीब २ करोड़ पाउंड अर्थात् ३० करोड़ रुपया होता है। इतनी अधिक क़ीमत होनेसे जहाज़ोंमें, कोयलेकी जगह इसकी शक्तिसे काम नहीं लिया जा सकता।

रेडियम का व्यवहार।

रेडियमका उपयोग दवाओंमें ज़्यादे होता है। अंधेरी रातमें बिना लेम्पकी रोशनीके घड़ीमें समय देख लेनेका सुभीता, इसीकी सहायतासे हुआ है। आश्चर्य होगाकि इतनी क़ीमती चीज़ घड़ियोंमें कैसे लगादी जाती है, पर बात असलमें यों है कि रेडियम घड़ियों पर चुपड़ नहीं दिया जाता और न वह खुद प्रकाशही देता है। बल्कि उसके छोटे छोटे कणों या किरणोंके समीप रहकर दूसरे पदार्थ प्रकाशपूर्ण हो जाते हैं। घड़ियोंमें चमक पैदा करनेके लिये जस्तेके टुकड़े लगाये जाते हैं और उनटुकड़ोंमें रेडियमकी शक्तिका प्रवेश करा दिया जाता है, बस, वे खूब चमकने लगते हैं। इसकामके लिये जस्तेको खूब शुद्धकरना पड़ता है। अभीतक ४० लाख घड़ियोंमें रेडियम लगाया जाचुका है, पर एक तिहाई आउंसभी खर्च नहीं हुआ।

व्यापारी पत्र व्यवहार

लेखकः—श्री कस्तूरमल बांठिया बी० काम०

आउटवर्ड पत्र व्यवहार

जिन कारणोंसे आई हुई चिट्ठियोंका सुरक्षित रखना प्रत्येक व्यापारीके लिए आवश्यक और उपयोगी है उन्हीं कारणोंसे उसके लिए अपनी भेजी हुई चिट्ठियोंका भी सुरक्षित रखना आवश्यक व उपयोगी है। सच बात तो यह है कि इनके लिए उसे विशेष सावधानी रखना चाहिए। क्योंकि इन चिट्ठियों द्वारा वह अपने हाथकी दस्तावेज़ लिख कर अपने आढ़तियेको दे देता है। और इस प्रकार अपने ऊपर उनमें लिखी हुई बातोंका दायत्व ले लेता है। आढ़तिया उसके इन्कार करने पर इन चिट्ठियोंके सबूत पर कोर्टकी मारफ़त इक़रारोंको पूरा करा सकता है।

भेजी हुई चिट्ठियां नीचे लिखे मुताबिक़ सुरक्षित रक्खी जा सकती हैं।

१—इनके लिए एक चिट्ठी नूंध रक्खी जाय और डाकमें छोड़नेके पहले उनकी इस बहीमें नोंध कर ली जाय।

२—चिट्ठियां नक़ल करनेकी स्याहीसे लिखी जांय और डाकमें छोड़नेके पहिले प्रेसकापी सिस्टमसे कापी लेनेकी किताबमें उनकी नक़ल छाप ली जाय। जो चिट्ठियां लिखी जांय उनकी दो नक़लें रखनी चाहिये।

३—जो चिट्ठी लिखी जाय उसकी दो नक़लें की जायँ, उनमें से एक आढ़तियेको भेज दी जाय और दूसरी जिस पत्रका वह जावाब है उसके साथ फ़ाइल कर दी जाय। इन तीनों तरीक़ोंमें से पहले तरीक़ेका पिछले पाठमें विवेचन हो चुका है। आई हुई चिट्ठियोंकी नोंध करनेका विवेचन करते समय और इनवर्ड रजिस्टरकी खानाबंदी आदि देते समय इस रजिस्टरकी खानाबंदी भी दी जा चुकी है। अस्तु हम दूसरे तरीक़ेका वर्णन शुरू करते हैं।

नक़ल छापनेकी विधि (प्रेस कापी सिस्टम)

पत्रोंकी नोंध करनेकी अपेक्षा नक़ल रखना बहुत ही सुविधाजनक है। पत्रोंका आशय लिखते समय कुछ भूल रह सकती है, इसके अलावा लेखके आशयकी खींचातानी से कुछका कुछ अभिप्राय लगाया जा सकता है। परन्तु पत्रकी हूबहू कापी रखनेसे यह कोई भी बात संभव नहीं हो सकती। तीसरे चिट्ठियोंकी नोंधमें क्लर्क लोगोंकी कार्यवाही चल सकती है। वे आवश्यक बात भी नोंधना भूल सकते हैं परन्तु कापी सिस्टममें इनमें से किसी बातका भय नहीं रहता। पत्र भेजने वालेके पास भेजे हुये पत्रकी हूबहू कापी रह जाती है। इससे हम जब चाहें तब जान सकते हैं कि हमने किसी तरहका कुबाला करते समय किन किन शर्तोंको स्वीकार किया है।

पत्र तीन तरह से नक़ल किये जा सकते हैं:—

१—नक़ल करनेके प्रेससे।

२—कारबन यानी स्याहीके काग़ज़से।

३—नक़ल करनेकी घूमने वाली मशीनसे।

नक़ल करनेका प्रेस—कापी करनेका यह तरीका सबसे प्राचीन है। इसको हटानेवाले यद्यपि
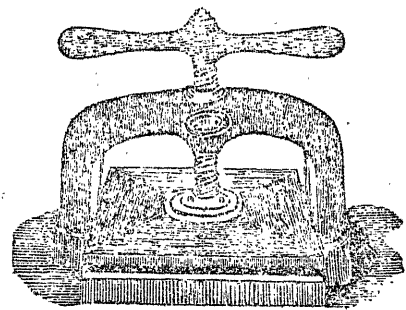
चित्र १—नक़ल करने का प्रेस

अब अनेक तरीक़े आविष्कृत हो चुके हैं परन्तु फिरभी इसका बराबर उपयोग किया जाता

है। इसमें खर्चा बहुत पड़ता है, सुभीता भी अधिक नहीं है, और समय भी बहुत लगता है। इतना ही नहीं परन्तु इस विधिकी एक त्रुटि यह भी है कि अगर किसी चिट्ठीकी नक़लसे उसविषय की पहली चिट्ठियोंका पता लगाना हो तो बड़ी कठिनाई होती है, इस लिये अब बड़े बड़े व्यापारालयोंमें इसका उपयोग प्रति दिन कम होता जा रहा है। नक़ल करनेकी सामग्रियोंमें पहली सामग्री नक़ल करनेकी कापीबुक यानी किताब है। यह किताब पतले टिस्यू काग़ज़की बनी होती है। इसके पत्रों पर इक तरफ़ा नंबर लगा रहता है यह किताबें २५०, ५०० अथवा १००० पत्रोंकी बहुत मज़बूत जिल्दमें बंधी हुई स्टेशनरी बेचने वाले व्यापारियोंके यहांसे मिल सकती हैं। प्रत्येक किताबमें कापी निकालनेके इन पत्रोंके अलावा पत्रोंकी सूची बनानेके लिए प्रारम्भमें अक्षरानुक्रमसे लगे हुए २४ या २६ काग़ज़ भी होते हैं इन काग़ज़ोंके बीचमें एक एक किताबकी साइज़का ब्लाटिंग पेपर भी लगा रहता है। इस किताबके अलावा नक़ल करनेके लिए और जिन चीज़ोंकी आवश्यकता पड़ती है वे ये हैं। १—तेलिया काग़ज़ २—शोषक काग़ज़ ३—पानीका प्याला ४—पानीलगानेका ब्रुश और ५—कापी निकालनेके लिए दबानेका प्रेस।

हस्त लिखित पत्रोंकी कापी कैसे ली जाती है।

कापी निकाल सकनेके लिए सब पत्र कापीइंग स्याहीसे लिखे जाने चाहिए। सादी ब्लूब्लेक स्याहीके लिखे हुए अक्षरोंकी कापी नहीं निकल सकती। यह स्याही ब्लूब्लैक स्याहीकी तरह स्टेशनरी वालोंके यहांसे ख़रीदी जा सकती है। इसके अलावा कापी साफ़ और स्पष्ट आवे इसके लिए पत्र ताज़ा लिखा हुआ होना चाहिये। कापी निकालनेके लिए पहले कापीबुकका एक पत्र थोड़ा गीला करना होता है। इस पत्रको बहुत ज़्यादा गीला न करदेना चाहिये और पानी लगाते समय पहले कापी किए हुए पत्रको बिगड़नेसे बचानेके लिए पानी लगानेके काग़ज़ और कापी निकले हुए काग़ज़के बीचमें तेलिया काग़ज़ रख दिया जाता है। इसके बाद ख़ाली काग़ज़ उस तेलिये काग़ज़ पर रख ब्रुशको पानीसे गीला करके उस पर धीरे धीरे चारों तरफ़ फिराया जाता है। पानी लगाते समय इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि पानी किताबकी बंधाईकी तरफ़ न आने पावे। क्योंकि इससे तेलिये काग़ज़की खुल्ल किनारसे कटकर उस काग़ज़का किताब वहांसे अलग हो जानेका भय है। जब इस प्रकार पत्र गीला कर लिया जाता है तो फ़ालतू पानीको सुखानेके लिए उसपर शोषक काग़ज़ (Drying paper) * रखकर एक तेलिया काग़ज़ और रख दिया जाता है और किताब बंदकर मिनट दो मिनटके लिए प्रेसमें दबा दी जाती है। प्रेसमें दबाते समय इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि किताबकी सिलाई न दबने पावे। क्योंकि सिलाईके दबनेसे उसके टूटनेका भय रहता है। और इससे अन्तमें किताब की जिल्द टूटकर किताब बिखर जाती है। किताबको इस प्रकार प्रेसमें दबानेका हेतु यह है कि जितना भी फ़ालतू पानी काग़ज़ पर लगा हो उसे शोषक काग़ज़ भली भांति सोख ले। इसके बाद किताब प्रेसमेंसे निकाल ली जाती है और शोषक काग़ज़को उठाकर उसकी जगह वह पत्र जिसकी कि हमको कापी निकालना है गीले काग़ज़की तरफ़ मुंह करके रख दिया जाता है और फिर सारी किताब प्रेसमें दबा दी जाती है। दो तीन मिनटके बाद जब किताब बाहर निकाल कर खोली जाती है और पत्र निकाला जाता है तो उस गीले काग़ज़ पर उसकी साफ़ और स्पष्ट प्रतिलिपि उतरी हुई मालूम पड़ती है। कापी निकाल लेनेके पश्चात् भी किताबमें तेलिये काग़ज़ रक्खे रहने दिए जाते हैं ताकि काग़ज़की नमीसे अगल

* (ड्राईंग पेपर एक प्रकारका मोटा ब्लाटिंग यानी स्याहीचट काग़ज़ है)

बग़लके दूसरे काग़ज़ों पर वह नक़ल न उतरने पावे। यदि काग़ज़ ज़्यादा गीला हो तो कापी फैल जाती है और कम गीला होने पर कापी बहुत भद्दी आती है तथा कठिनाईसे पढ़ी जा सकती है। इसलिये इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि काग़ज़ बराबर गीला रहता है या नहीं।

टाइप किए हुए पत्रोंकी नक़ल लेना

जिस प्रकार हस्त लिखित काग़ज़ोंकी नक़ल ले सकनेके लिए उनका कापीइंग स्याहीसे लिखा जाना आवश्यक है उसी प्रकार टाइप किए हुए काग़ज़ोंकी भी नक़ल ली जानेके लिए कापीइंग स्याहीके फ़ीतेसे लिखा जाना आवश्यक है। ऐसे टाइप किए हुये काग़ज़ोंकी नक़ल लेनेके लिए ऊपर लिखे मुताबिक़ कापीबुकका पन्ना ब्रुशसे गीला नहीं किया जाता वरन् किताबकी साईज़का एक छोटा सा मोटा चमड़ा अथवा पतला रबड़का टुकड़ा गीला कर जिस पन्ने पर किसी पत्रकी नक़ल निकालना हो उसके नीचे वह पत्रके लिखे काग़ज़के ऊपर रख दिया जाता है और फिर सब के ऊपर एक और तेलिया काग़ज़ रख कर किताब प्रेसमें कुछ देरके लिए दबा दी जाती है। टाइप किए हुए काग़ज़ोंकी नक़ल निकालनेमें हस्तलिखित काग़ज़ोंकी अपेक्षा विशेष देर और विशेष दबावकी आवश्यकता होती है।

कभी कभी हमें किताबमें कापी निकालनेके अलावा पत्रोंकी खुली कापियां निकालनेकी भी आवश्यकता होती है। परन्तु उसके लिए एक ही पत्रकी दो बार कापी निकालनेकी चेष्टा नहीं की जाती। कापी बुकका पन्ना गीलाकर कापी निकालनेके लिए जब उसपर लिखा हुआ काग़ज़ रक्खा जाता है तो उसके पहले उसके नीचे एक खुला टिस्यू काग़ज़ रख दिया जाता है और तब लिखा हुआ पत्र रखकर किताब, कापी निकालनेके लिए दबा दी जाती है। इस तरीक़ेसे कापीके काग़ज़ पर नक़ल आनेके साथ साथ उस अलग काग़ज़ पर भी पत्रकी नक़ल आ जाती है, यह नक़ल दूसरी नक़ल होती है। इसके लिए काग़ज़में कुछ विशेष नमी रखना पड़ती है। इस तरकीबसे कापीइङ्ग स्याही से लिखे हुए काग़ज़की तीन या चार नक़लें तक एक साथकी जा सकती हैं।

कारबन पेपर यानी स्याहीदार काग़ज़ोंकी सहायतासे नक़ल निकालना:—

नक़ल करनेका यह तरीक़ा पहले बताये गए तरीक़ेसे नया है। इसमें नक़ल बहुत शीघ्र हो सकती है। इसके अलावा वह ज़्यादा साफ़ भी आती है और इसमें उसकी अपेक्षा ख़र्च भी कम पड़ता है। इस तरीक़ेसे पहले बताये हुए तरीक़ेकी अपेक्षा ज़्यादा कापियां एक साथ निकाली जा सकती हैं। ये कापियां खुली रहनेके कारणसे जिस पत्रका इनमें उत्तर लिखा हुआ है उसके साथ फ़ाइल की जा सकती हैं इससे पहले तरीक़ेकी अपेक्षा रेफ़रेंसके (पूर्वापरसम्बन्धका) पता लगानेमें बहुत सरलता हो जाती है। जहां एक ही तरहकी एकसे ज़्यादा कापियोंकी आवश्यकता हो वहां यह तरीक़ा बहुत ही उपयोगी है। इस तरीक़ेसे एक समयमें लगभग ७ नक़लें एक साथ निकाली जा सकती हैं। परन्तु इस तरीक़ेमें जो एक दो दोष हैं वह और किसी तरीक़ेमें नहीं हैं। पहलेतो इसकी प्रत्येक कापीमें उस मनुष्यकी सही नहीं आती जिसका होना सब पत्रोंपर आवश्यक है; अपनी सहीके लिए उसे हर एक पत्रपर अलहदा सही करना होती है। दूसरे मुख्य पत्रमें कुछ काट छांटकी गई है तो वह भी इनमें नहीं आती। प्रत्येक पत्रमें पृथक पृथक मुख्य पत्रके अनुसार सुधार करना पड़ता है। क़ानूनके अनुसार इस प्रकार ली हुई नक़लें उपयुक्त काम नहीं देतीं। इसलिए व्यापारी लोग इनके अतिरिक्त अपने सब पत्रोंकी लेटरबुकमें ऊपर बताये हुए तरीक़ेसे भी नक़ल लिया करते हैं। इस प्रकारसे कापी निकालनेका तरीक़ा बहुत ही सीधा सादा है। कापी निकालने वाला लेखक मुख्य

काग़ज़के नीचे जितनी नक़लें उसे निकालना होती हैं उतने ही काग़ज़ रख लेना है और प्रत्येक काग़ज़के बीचमें एक एक कारबन काग़ज़ रख दिया जाता है। कारबन काग़ज़ सदा नीचेके काग़ज़की तरफ़ मुंह करके रक्खे जाते हैं। इसके बाद यह काग़ज़ टाइप मशीनमें लगा दिये जाते हैं और सब मज़मून उसी तरह टाइप द्वारा छाप लिया जाता है जैसे कि अकेले काग़ज़ पर टाइप किया जाता है।

मैनीफ़ोल्ड बुकः—

बहुतसे व्यापारलयोंमें पत्र व दूसरे काग़ज़ात जैसे बीजक एस्टीमेंट आदि मैनीफ़ोल्ड किताब द्वारा नक़ल किये जाते हैं। ये किताबें भिन्नभिन्न साईज़की होती हैं। हर महकमेके लिए जुदी जुदी किताबें रक्खी जाती हैं प्रत्येक किताबके पन्नों पर संख्या छपी होती है। इसके अलावा हर-एक किताबमें एक एक संख्याके दो दो पन्ने रहते हैं। ऊपर का पन्ना किताबकी जिल्द बंधीके पाससे छिद्रांकित रहता है ताकि वह ग्राहकको फाड़कर दिया जा सके। इन दोनोंके बीचमें कारबन पेपर यानी स्याहीदार काग़ज़ दिया जाता है और इन दोनों काग़ज़ोंके नीचे टीनकी चद्दरका एक टुकड़ा अथवा अन्य कोई सख़्त चीज़ उसी साईज़ की रख ली जाती है और सख़्त पैन्सिल अथवा अन्य किसी लिखनेकी सख़्त चीज़से पत्र अथवा बीजक जो कुछ लिखना हो वह लिख लिया जाता है। लिखना समाप्त हो जाने पर ऊपरका पन्ना छिद्रांकितसे फाड़ कर जिसके पास भेजना है वहां भेज दिया जाता है। और यह किताब जिसमें ऐसे सब काग़ज़ोंकी नक़ल रहती है समाप्त होनेपर सुरक्षित रख दी जाती है।

(रोटरी कापीइङ्ग) नक़ल करनेकी घूमनेवालीमशीनः—

नक़ल करने का यह तरीक़ा आधुनिक और उपयोगी है, इसमें प्रेस कापीइंगकी सारी झंझट छोड़ दी जाती है। परन्तु यह तरीक़ा ख़र्च भी बहुत चाहता है। अतएव बड़े व्यापारालयोंमें ही काममें लाया जा सकता है। जिस काग़ज़ पर कापी निकाली जाती है वह ख़ास तौर
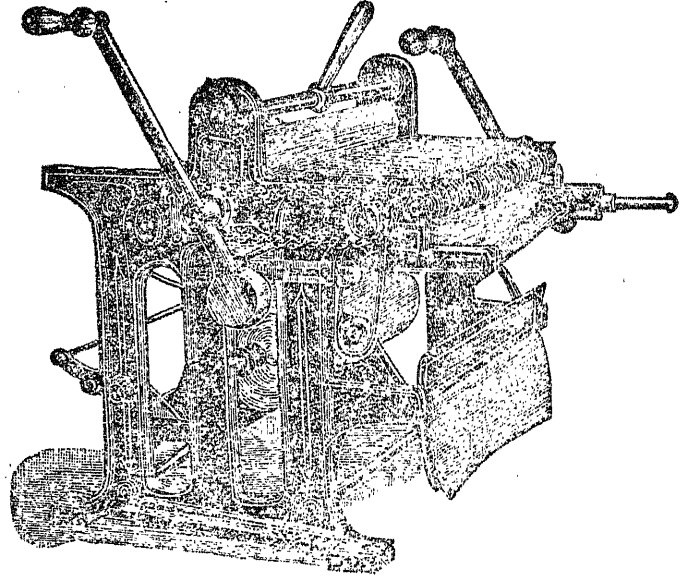
चित्र ३—नक़ल करने की घूमनेवाली मशीन

पर बनाया जाता है, यानी वह एक ख़ास तरहका होता है। इस काग़ज़को गीला करने और फिर सुखानेकी झंझट नहीं करनी पड़ती। यह काग़ज़ एक बेलनपर लिपटा हुआ रहता है। रोटरी मशीनमें लगे हुए चाकूसे जितना बड़ा चाहिए उतनी लंबाईका काग़ज़ काटा जा सकता है। जिस पत्रकी कापी निकालना होती है वह पत्र इस मशीनमें रखदिया जाता है और फिर मशीन घुमाई जाती है। मशीनके घुमानेसे उस पत्रकी कापियोंका एक ख़रीता निकलता जाता है। जब आवश्यक कापियां निकल चुकती हैं तो मशीनमें लगे हुए चाकू द्वारा वे सब काटकर अलगकर ली जाती हैं। यह चाकू एक साथ ७० कापियां तक काट सकता है। इस तरीक़ेसे पत्रकी लगभग १०० कापियां तक निकाली जा सकती हैं। इस मशीनमें पोस्टकार्डके साईज़ से लगा

फुलसकेप कागज़ जितने चाहें काटे जा सकते हैं।

व्यापारी पत्रोंकी अनेकों कापियां निकालना

आजकल बहुतसे व्यापार विज्ञापनों द्वारा ही सफल होते हैं। कई व्यापार ऐसे हैं जो जनता के बहुत ही उपयोग और फ़ायदेके हैं। परन्तु विज्ञापन दिये बिना उनका चलाना कठिन हो रहा है। हर व्यापारके चलानेके लिये किसी न किसी रूपसे विज्ञापन देनेकी आवश्यकता पड़ती है। प्रसिद्ध विज्ञापनोंसे हमारा अभिप्राय केवल यही नहीं है कि नोटिसों, पोस्टरों और हैंडबिलों द्वारा जनताको सूचना दी जाय तथा दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंमें नोटिस मौजूद रहें। व्यापारकी पुष्टि होनेके साथ साथ जिन विधियोंके अनुसरण करने से उसके फैलनेमें सहायता मिले, उन सबको विज्ञापन कहा जाता है। उदाहरणके लिये सूची-पत्र छपाने और हरएकको बिना मूल्य और अपने पाससे डाकख़र्च करके भेजनेकी रीति पर विचार कीजिये।

यह भी एक प्रकारका विज्ञापन नहीं तो और क्या है। हां यह एक ख़ास तरहका विज्ञापन कहा जा सकता है। इसी तरह अपनी दुकानके शुभ मुहूर्तकी चिट्ठी भेजना अथवा बज़ारका रुख आदि लिखना, भावकी रंधौती भेजना ये सब विज्ञापन-विधिके ही एक अंग हैं। हमारे देशी व्यापारियोंमें इस बातका बहुत कम रिवाज है कि वे अपने आढ़तियोंके पास, उनके बिना लिखे ही, भावकी रंधौती तथा बाज़ारका रुख लिखकर समय समय पर भेजते रहें। परन्तु पाश्चात्य देशोंके व्यापारी हर एक आढ़तियेके पास, चाहे वह थोड़ासा मालही मंगानेवाला क्यों न हो बाज़ारके मामूली भाव और रुख बिना मांगे भेजना अपना कर्तव्य समझते हैं। वे डाक खर्च और विज्ञापनके ख़र्चको व्यर्थ नहीं समझते। यहीं नहीं वे उसे व्यापारमें लगाई हुई एक प्रकारकी पूंजी समझते हैं। अस्तु उन्हें ऐसी चिट्ठियोंकी कई कापियां करना होती हैं। इतनी ज्यादा कापियां न तो हाथसे लिखकर की जा सकती हैं और न कारबन कागज़की सहायताहीसे की जा सकती हैं। इन तरीक़ोंसे नकल करनेमें ख़र्चा भी बहुत होता है और समय भी व्यर्थ नष्ट होता है। फलतः व्यापारी लोग इसके लिए और ही युक्तियोंका अवलम्बन करते हैं। ये इस प्रकार हैं:—

(१) छपाई (२) हेक्टोग्राफ़ (३) मिमिओग्राफ़ (४) रोटरी मलटीप्लायर।

छपाई

जब किसी कागज़की सैकड़ोंकी संख्यामें कापियोंकी आवश्यकता होती है अथवा जब यह काफ़ीसे ज़्यादा लम्बा होता है तो उसको छपवाकर उसकी नक़लें करवाना बहुतही सस्ता और उपयोगी होता है। यदि हमें उसमें किसी तरहके ब्लाक आदि छपवाने हों जो हमारी बिक्रीकी चीज़ोंको बतानेके लिए ख़ास ज़रूरी हे, तो फिर छपाईका काम बहुतही सस्ता पड़ता है। हाफ़टोन ब्लाक और इसी तरह इकरङ्गे, दोरङ्गे, तीनरङ्गे आदि ब्लाक मनुष्यकी दृष्टिको आकर्षित करते हैं। ग्राहकोंकी मांग बढ़ानेके लिये उनकी रुचिको अपनी ओर खींचना विज्ञापनका एक मुख्य और आवश्यक काम है। जो विज्ञापन ऐसा नहीं करता वह विज्ञापनही नहीं कहा जा सकता। इसके अलावा इबारतकी अपेक्षा चित्रादि मनुष्यकी निगाह पड़तेही उसे आकर्षित कर लेते हैं। इबारतको आकर्षक बनानेके लिए सुन्दर और फूलदार टाइप बहुत अच्छा काम देते हैं परन्तु उन सबकी अपेक्षा चित्र और कार्टून विशेष आकर्षक होते हैं। छपे हुए विज्ञापनमें यदि कोई कमी है तो वह यही है कि उसका पढ़नेवाला फ़ौरन यह बात जान लेता है कि वह इस विज्ञापनके हज़ारों पढ़नेवालोंमेंसे एक है। यह बात विज्ञापनकलाके नियमोंके बिलकुल विरुद्ध है। विज्ञापन देनेवाला इस बातकी चेष्टामें होता है कि उसका विज्ञापन हरएक मनुष्यको

इस तरहसे पहुंचना चाहिए जैसे कि वह विज्ञापनतुमा पत्र खास उसीको लिखा गया है। छापेकी इस कमीको दूर करनेके लिए हमारे पाश्चात्य विद्वानोंने एक ऐसी शोधभी करली है कि जिससे हस्तलिखित अथवा टाइप किये हुए पत्रादि हूबहू वैसेही नक़ल हो जाते हैं। और इसमें उन्हें इतनी सफलता प्राप्त हो चुकी है कि उन्हें पढ़नेवाला बहुत कठिनाईके साथ उनका छपा हुआ होना मालूम कर सकता है। हम लोगोंमें यह स्थिति अभी बहुत दूर दीख पड़ती है। इतना होतेहुए भी प्रत्येक पत्र पर सिरनामा जैसा पत्र छपा हुआ हो उसी तरह हाथ अथवा टाइपसे लिखा जाता है। इससे पढ़नेवाला यदि उस पत्रका छपे हुए हालतमें सन्देह करे तो वह सन्देह उठतेही भङ्ग हो जाता है।

हैक्टोग्राफ़

कापी करनेका यह तरीक़ा इन तरीक़ोंमें सबसे प्राचीन है। यह बहुतही कम उपयोगी है। इसकी मुख्य तीन चाज़ें होती हैं। एक तो छोटी किनार वाली धातुकी चोकोर तसली, दूसरा सरेस, तीसरा हैक्टोग्राफ़की स्याही। सरेस सबसे पहले किसी बरतनमें डालकर गरम पानीकी सहायतासे पतला कर लिया जाता है। पतला करनेके लिए उसमें गरम पानी नहीं मिलाया जाता। परन्तु सरेसका बरतन गरम होनेको उस गरम पानीके बरतनमें रख दिया जाता है और सरेसको पानीकी गरमीसे धीरे धीरे पिघलने दिया जाता है। जब सरेस अच्छी तरहसे पतला हो जाता है तो फिर वह उस तसलीमें उंडेल दिया जाता है और ठंडा होकर जमनेके लिए छोड़ दिया जाता है। उंडेलते समय इस बातका ख्याल रक्खा जाता है कि उसमें कोई बुदबुदा न पड़ने पावे। जब यह सरेस उस तसलेमें फैलकर जम जाता और काफ़ी गाढ़ा हो जाता है तो फिर कापी निकालनेवाले मज़मूनको इस यंत्रके लिए खास तौरसे बनाई गई स्याहीसे ऐसे काग़ज़ पर लिखा जाता है जिसपर स्याही न फैलती हो। इसे ब्लाटिंग पेपरसे नहीं सुखाते हैं बरन् हवामेंही सूख जाने पर उलटी तरफ़ यानी लिखी हुई ओरसे चिपका देते हैं। हलके हाथसे थोड़ी देरतक काग़ज़को ऊपरसे दबानेके पश्चात् वह काग़ज़ वापिस उखाड़ लिया जाता है और उसकी जगह नया कोरा काग़ज़ चिपका कर पोले हाथसे अथवा रबरके बेलनसे धीरे धीरे दबाया जाता है, और थोड़ी देरके बाद उखाड़ लिया जाता है और उसकी जगह नया काग़ज़ चिपका दिया जाता है। यह भी इसीप्रकार दबाया जाया है। इस तरहसे लगभग ४० से ६० कापियाँ तक स्वच्छ और साफ़ साफ़ निकाली जा सकती है। कापियां निकाल लेनेके बाद सरेसकी सतहको गरम पानीसे किसी स्पंज जैसी नरम चीज़की सहायतासे साफ़कर दिया जाता है। जब इस यंत्रसे नई कापी निकालनेका काम लिया जाया है सरेस पिघलाकर नये तौरसे ढाला जाता है। यदि एक ही मज़मूनकी इस संख्यासे ज़्यादा कापियोंकी आवश्यकता होती है तो पहलेके लिखे हुएको पानीसे साफ़ करके नये सिरेसे लिखे हुए मज़मूनका काग़ज़ उसपर फिर चिपकाया जाता है और जितनी चाहिये उतनी कापियां उससे उतार ली जाती हैं। यह यंत्र बड़े बड़े व्यापारालयमें कर्मचारियोंको हिदायतें देने और छोटी छोटी सभा सोसाइटियोंके सभासदोंको सभाकार्यकी सूचना आदि देनेमें बहुत काम आता है।

सिमियोग्राफ़

इस यंत्रको अच्छे अच्छे व्यापारी अपने आढ़तियों के पास बाजार व्यवस्था और रोज़ाना निर्खके सरक्यूलर छाप कर भेजनेमें काममें लाते हैं। जब किसी वस्तुकी बाज़ार दरकी घटती या बढ़तीकी ख़बरें बाज़ार बंद होनेके समय उन्हें मिलती हैं तो इस यंत्रके सिवा उनका काम किसी तरह नहीं चल सकता। उसी डाकमें वे

सवेरे आढ़तयोंको मिलना चाहिए। इस लिए इसका कैसे उपयोग किया जाता है यह हमें अच्छी तरह जानलेना चाहिए। इस मशीनके मुख्य दो हिस्से होते हैं। एक तो लिखनेकी तख्ती और दूसरी छापनेकी तख्ती और सामान। मिमिओग्राफ़की मुख्य बात उसका लिखनेका तेलिया कागज़ है। इसे अंगरेज़ीमें स्टैन्सिल कहते हैं। तेलिया कागज़ पर जब हाथसे लिखा जाता है तो वह हाथका लिखा हुआ स्टैन्सिल कहलाता है। और जब उस पर टाइप द्वारा लिखा जाता है तो वह टाइप किया हुआ स्टैन्सिल कहलाता है। जब स्टैन्सिल हाथसे लिखकर तैयार करना होता है तो पहले तेलिया कागज़ लिखनेकी तख्तीसे लगी हुई स्प्रिंग द्वारा उस तख्ती पर फैला दिया जाता है और तब इसपर लिखनेकी छोटीसी गिर्रीदार पहिएकी नौकवाली स्टीलकी क़लमसे लिख दिया जाता है। क़लमका लोहेका पहिया लिखते समय तेलिया कागज़ का मोम कुछ कुछ हटाता जाता है और अक्षरोंके आकारके उसमें छेद करता जाता है। जब इस छिद्रांकित तेलिये कागज़ पर जिसको स्टैन्सिलका नाम दिया गया है स्याही लगाई जाती है तो वह इन छेदोंमें प्रवेश कर नीचेके कागज़ पर वैसाही आकार बना देती है और इस प्रकार लिखे हुए मज़मूनकी नक़ल उतार ली जाती है। परन्तु जब स्टैन्सिल टाइप द्वारा लिखकर तैयार किया जाता है तो पहले फीता अथवा स्याहीकी गद्दी हटा दी जाती है। और कागज़ लगानेकी जगह इस तेलिये कागज़को लगाकर मामूली मज़मूनके टाइप करनेकी तरहसे नक़ल करनेकासारा मज़मून टाइप कर लिया जाता है। परन्तु टाइप करते समय अकेला तेलिया कागज़ही टाइपमें नहीं लगाया जाता। उसके ऊपर एक पतला टिस्यू कागज़ और पीछे एक रेशमका मोटा कपड़ा और एक और कागज़ रक्खा जाता है। टिस्यू कागज़ और तेलिया कागज़के सिरे चारों ओरसे सबसे पीछे लगे हुए कागज़के चारों ओर मोड़ दिये जाते हैं। और तब स्टैन्सिल तैयार करनेके लिए टाइपमें लगाया जाता है।

जब स्टैन्सिल तैयार कर लिया जाता है तो वह फिर छापनेकी तख्तीसे लगी हुई चौखट पर फैला दिया जाता है। फिर उसके नीचे कोरा कागज़ रखकर ऊपरसे स्याहीका बेलन धीरे धीरे स्टैन्सिल पर चारों ओर फिराया जाता है। जब नीचेके कागज़ पर स्टैन्सिलकी नक़ल छप जाती है तो वह निकाल कर उसकी जगह दूसरा कोरा कागज़ रख दिया जाता है। इस प्रकार एक स्टैन्सिलमें कई कापियां निकाली जा सकती हैं। कापियां साफ़ और स्पष्ट निकलें इसके लिए पहले स्टैन्सिलको स्याहीसे अच्छी तरह रंग दिया जाता है। ऐसा करनेका हेतु यह है कि बेलन की स्याही स्टैन्सिलके छिद्रों द्वारा नीचेके कागज़में अच्छी तरह लग सके और उनका आकार साफ़ साफ़ बना सके। स्टैन्सिल की स्याही अच्छी तरह लग गई है अथवा नहीं इस बातकी जांच करने लिए पहले प्रूफ़के तौर पर कुछ कापियां निकाल लेना चाहिए और जब वे साफ़ आने लगें तो फिर नक़लें निकालनेका काम प्रारम्भ कर देना चाहिए।

नई चालकी आजकलकी इन मशीनोंमें कोरा कागज़ अपने आप खींच लेनेका भी यंत्र लगा रहता है। इससे कापी एक तरफ़ छपकर निकलती जाती है और दूसरी तरफ़ से कागज़ अपने आप पुरता चला जाता है। इस लिए जिधर से कागज़ पुरा जाता है वहां पहलेसे उचित साईज़ का कागज़ काट कर काफ़ी संख्यामें रख दिया जाता है। इससे प्रति मिनिट कितनी ही कापियां निकाली जा सकती हैं। इस प्रकार छपे हुए कागज़ों को डाकमें छोड़नेके पहले अच्छी तरहसे सुखा लेना चाहिए। सुखानेके लिए या तो ये टिस्यू कागज़ की बनी हुई किताबमें एक एक पन्नेके बीचमें रख दिए जाते हैं अथवा स्याही-चटकी वैसी ही बनी हुई किताबमें थोड़ी देरके

लिए रख दिए जाते हैं। और जब इनमेंसे कोई काग़ज़ किसी आढ़तिये को भेजना होता है तो उस पर उसी रंग की स्याही से उसका नाम लिख अथवा टाइप कर दिया जाता है।

रोटरी मल्टीग्राफ़रः—यह मशीन हाथ अथवा बिजली आदि किसी भी शक्ति से चलाई जा सकती है। ऊपर बताये मुताबिक़ स्टेन्सिल्स तैयार करके इस मशीनके लिखनेके स्याहीके गद्दे पर जो कि उसके सिलिन्डरके बाहरी तरफ़ लगा हुआ होता है रख दिया जाता है। यह गद्दा रबरके बेलन द्वारा स्याही की टंकी से स्याही पाता रहता है जो सिलिन्डर को सम्हालनेवाले लोहेके खंभो पर रक्खी रहती है। एक छोटे से लिवर द्वारा यह बेलन सिलिन्डरके अन्दरकी ओर लगा दिया जाता है। इस तरह यह स्टेन्सिल को पीछे से स्याही पूरता रहता है। इस सिलिन्डर को घुमाने के लिए एक ओर हत्था लगा होता है। इस हत्थे द्वारा सिलिन्डर घुमाया जाता है और काग़ज़ पूरा जाता है। यह काग़ज़ सिलिन्डरके नीचे लगे हुए रबरके दो बेलनों द्वारा अन्दर को खींच लिया जाता है। और इस खिंचाईमें वह सिलिन्डर पर लपेटे हुये स्टेन्सिलसे चिपट कर सिलिन्डरके चारों ओर लिपट जाता है और मशीनके दूसरी ओर छाप कर फेंक दिया जाता है। इस मशीन द्वारा हाथसे लगभग ६० से ८० कापियां प्रति मिनट निकाली जा सकती हैं। और एक स्टेन्सिल लगभग ५००० कापी निकालनेके लिए काफ़ी होता है। यह मशीन रोनियो मेककी बहुत मशहूर है। इसको साइक्लोस्टाइल भी कहते हैं। इसकी क़ीमत लगभग ४००) के हैं। सादा मिमिओग्राफ़ ३० से ४० रुपये तक आता है।

बालकोंका भोजन कैसा होना चाहिये।*

(लेखिका—मैरी के० नेफ़)
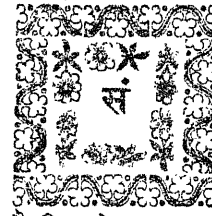
संभव है कि बहुतसे गृहस्थ यह न समझ सकें कि बालकोंके आहारका "गृहस्थ तथा शिक्षकोपयोगी संस्था"के उस उद्देश्यसे क्या विशेष सम्बन्ध है जिसके द्वारा हर माता पिता तथा हर शिक्षकका यह कर्तव्य है कि बालकोंपर होनेवाले अनुचित अत्याचारोंको रोका जाय। परन्तु उन्हें स्मरण रहना चाहिये कि अत्याचार भी अनेकों हैं और अनेकों प्रकारसे किये भी जाते हैं। हम मानते हैं कि हमारी इस संस्थाका परम कर्तव्य उन अत्याचारोंको रोकना है जिनके अन्तर्गत मारना पीटना भी है; परन्तु हमारे कर्तव्यकी सीमा यहीं तक परिमित नहीं है क्योंकि बालकोंकी प्रकृति और आवश्यकताओंकी अनभिज्ञताकी भी गणना अत्याचारमेंही की जाती है। अतः इस छोटेसे प्रबन्धमें हमारा निर्दिष्ट विषय यही होगा।

लूथर बरबंकने "मानुषिक पौधा" नामक अपनी पुस्तकमें बालकोंकी शिक्षण प्रणालीका वर्णन करते हुये यह आश्चर्य्यजनक परन्तु परमोपयोगी बात लिखी है—"हर बालकके भविष्यत् जीवन पर उस भोजनका जो उसे पहिले छह वर्षों में मिलता है बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और उसके जीवनमें किन किन महत्वपूर्ण घटनाओंकी संभावना है तथा उनका होना कहां तक परिमित है इसका भी बहुत कुछ ज्ञान होना संभव है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बहुतसे लोग इन

---

* 'गृहस्थ तथा शिक्षकोपयोगी संस्था (League of Parents and Teachers) की एक पुस्तक "माता पिताका कर्तव्यके एक लेखके आधार पर यह लेख लिखा गया है।

विचारोंके पूर्णरूपमें सत्य होनेपर सन्देह करेंगे; परन्तु हमारे विचारमें निम्नलिखित बातोंके माननेमें किसीको आनाकानी न होगी। ये बातें प्रत्येक बालकके शरीर को उसके जीवन के प्रत्येक कार्य्यमें सुस्वस्थ और निरोग बनानेके लिये उपयोगी और आवश्यक हैं।

(१) उसे सरल, स्वच्छ और पुष्ट अहार दिया जाय।

(२) उसके अहारकी मात्रा काफ़ी हो परन्तु अधिक कभी न हो।

(३) भोजन करनेका समय नियमित हो और प्रत्येक भोजके पश्चात दूसरे भोज तक यथोचित अवकाश हो।

१—अब अगर हम अपने देशके बालकोंके संबंधमें पहिली बातका विचार करें तो हमें मालूम होगा कि कई प्रकारके भोजन जो उन्हें प्रायः दिये जाते हैं उनका निषेध होना चाहिये। हमारे देशमें आमिष भोजनका प्रश्न पाश्चात्य देशोंकी भांति महत्वपूर्ण और उलझनमें डालने वाला नहीं है। बहुतसे हिन्दू निरामिषाहारी हैं। हां मुसल्मान और ईसाइयों में इसका प्रचार खूब है परन्तु यह अनुभवसे प्रमाणित हो चुका है कि यदि किसी बालकको उसकी मर्ज़ी पर छोड़ दिया जाय तो वह आमिष अहार कभी पसंद न करेगा। हमने स्वयम् देखा है कि अमेरिकामें मातायें प्रायः अपनी सन्तानोंको झिड़क करही माँसाहारी बनाने में सफल होती हैं। अतः किसी अन्य शारीरिक कारणके अभावमें हर गृहस्थका यह परम कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपनी संतानको निरामिषाहारी बनावे। इसका एक बड़ा कारण यह है कि पशुओंके रगपट्ठोंमें भी हमारी ही तरह कुछ न कुछ उच्छिष्ट वस्तुएं अवश्य मौजूद होती हैं और चूंकि इन पदार्थोंको मेधा सदा हज़म करनेकी चेष्टामें लगा रहता है अतः यदि इन्हें किसी प्रकार बाहर न निकाल दिया जाय तो यह विषके समान अवगुण करनेवाले हो जाते हैं। अतः यदि किसी बालकको मांस खिलाया जाय तो उसकी पाचकेन्द्रियको इस उच्छिष्ट पदार्थके हज़म करनेमें अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। इसके उपरान्त मांसाहारके विरुद्ध एक बात और भी है कि निर्जीव पदार्थ होनेके कारण उसका विनाश होना प्रारंभहो जाता है; अतः उसमें ऐसी अवस्था में वह सारे गुण उस मात्रामें विद्यमान नहीं रह सकते जितने कि उसकी पहिली अवस्थामें थे। परन्तु आमिषाहारके विरुद्ध सबसे बड़ा कारण यह है कि आमिषाहारसे रजोविकारकी वृद्धि होती और इन विकारोंसे तामसी विचार उत्पन्न होते हैं। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि संसारकी सभी लड़ाकू जातियां मांसाहारी हैं। यदि हम अपनी सभ्यतासे लड़ाईका विलोप करना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि उसकी संभावनाके बाह्य तथा आन्तरिक दोनोंही प्रकारके कारण दूर किये जायं।

मिर्च और गरम मसाले भी बालकोंको अहारमें नहीं दिये जाने चाहिये। इस विषयमें भारतवर्ष भर अपनी सन्तानोंके प्रति पापका भागी है। क्या आप लोगोंने कभी इस बात पर विचार किया है कि बालकोंको ऐसा मसालेदार भोजन देनेसे क्या हानि होती है। यदि नहीं, तो समझ लीजिये कि इन चीज़ोंके प्रयोगसे मेधामें ही विकार उत्पन्न नहीं होते हैं वरन् उनके कारण बच्चोंको बहुधा (Bilious) पैत्तिक रोग होजाता है और सबसे बड़ी हानि यह होती है कि इनसे तमोगुणी इन्द्रियोंमें विकार पैदा होजाता है। इस देशकी गर्मजलवायुके साथ साथ, बाल विवाहकी कुप्रथा, तथा संभोग विषयोंका थोड़ीही अवस्थामें ज्ञानहो जाना और इस पर भी ऐसा भोजन मिलना कि जिससे तमोगुणी वृत्तिमें वृद्धि हो, यह सब बातें मिलकर इस देशमें युवकोंका विषय-लोलुपताकी ओर अधिक

झुका देती हैं और इन सबका परिणाम अवश्य ही बड़ा भंयकर होता है। हमारे देशवासी गृहस्थोंके समीप यह प्रश्न मार्केका है और इसके निराकरणमें सफल-मनोरथ होनेके लिये बालकों तथा युवाओंको यथोचित अहार देनाही परमोपयोगी प्रमाणित होगा।

(२) भारत जैसे दरिद्री देशमें प्रत्येक गृहस्थको अपनी सन्तान पर इतना प्रेम है कि वे स्वयम् उबले हुये चावलोंका मांढ़ (पानी) पीकर अपने बाल बच्चोंको चावल खिलानेकी चेष्टा करते हैं। अतः यहां पर इस बात का तो कोई भय नहीं है कि माता पिता अपनी संतानोंको यथावश्यक अहार न दें! हां! अगर भय है तो इस बातका कि वे उन्हें लाड़के कारण बहुत साठँस ठूंसकर खिला देते हैं। जैसे त्यौहारोंके दिनोंमें बालकोंको ख़ूब मिठाई उड़ाने को मिलती है, इसी प्रकार परिवारमें कोई उत्सव होनेपर तो उनके लिये दिन रात तरह तरह के षटरसव्यंजन खानेको मिलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे यातो रोग ग्रस्तहो जाते हैं या उन्हें कोई ऐसा शारीरिक तथा मानसिक विकार होजाता है कि वे कई दिनों तक स्कूलमें ठीक तरह पर काम नहीं कर सकते। यह बात मैंने अपने निजी अनुभवसे लिखी है और मुझे आशा है कि बहुतसे गृहस्थ इससे सहमत भी होंगे।

परन्तु हमारे विचारमें किसी बच्चेको क्षणिक सुखके लिये उसे एक दिन अथवा एक सप्ताह तक रोगी बना देना, उस पर कृपा करनेकी जगह उसके साथ बुराई करना है। और यदि इस विषयमें बच्चेकी हठ पूरी करनेके लिये अधिक दुलार हुआतो उसे सदाके लिये रोगी और निर्बल बनानेके साथ साथ उसे बिल्कुलही निकम्मा कर देना है। अतः माताओंको इस प्रकारके लाड़ चावसे विशेष रूपसे सावधान रहना चाहिये और साथ ही इस पुरानी मसलको ध्यानमें रखना चाहिये कि 'गुड़ देनेसे भी मनुष्य मारा जा सकता है।'

इसके अतिरिक्त अधिक अहार देनेसे तथा जो चीज़ बालकको बहुत अच्छी लगे उसे ज़्यादा खिलाने से बच्चों को बहुत हानि पहुंचती है। छोटी उमरसे ही बालक अपने माता पिताकी इस आदतसे बुरी शिक्षा ग्रहण करते हैं और समझदार होजाने पर सांसारिक प्रलोभनोंसे बचने तथा उन्हें दमन करनेकी अपेक्षा शीघ्रही उनमें फंस जाते हैं! क्योंकि जो स्वभाव उनका भोजनके लिये पड़ जाता है, वही और दूसरे कामोंमें भी बना रहता है।

(३) बहुतसे गृहस्थ तीसरी बात पर ज़रा भी ध्यान नहीं देते हैं और अपने बालकोंको दिन भर जो वह चाहें बकरीकी भांति चरने देते हैं। परन्तु यह लाड़ भी बुरा है क्योंकि मेधा आदि पाचकेन्द्रियोंको पचानेका काम भली भांति करनेके लिये विश्राम मिलनेकी बड़ी आवश्यकता है। और यदि दिन भर भोजन करनेसे दिन भर पाचनरस काममें लाया जायगा तो नियमित भोजनके समय अवश्य ही यह पाचन रस यथावश्यक मात्रामें न मिल सकेगा। इस कारण भोजन ख़ूब भूक लगने पर ही खाना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि, जहां तक हो सके नियत समयपर भोजन करना चाहिये और सोने तथा आराम करनेका समय भी नियत होना चाहिये। ऐसा करनेसे बालक सदा स्वस्थ रहते हैं और उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का भी पूरा विकास होता है।
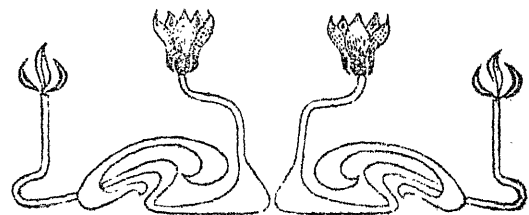
फ़सलके शत्रु

(गतांकसे सम्मिलित)

३—कीड़ों की जीवनी

कपासके शत्रु

१—ढेढ़ुईका कीड़ा—ढेढ़ुईमें घुसकर बीज खाने वाले कीड़े दो प्रकार के होते हैं—चितकबरा और गुलाबी। इस कीड़े को मध्य प्रदेशमें करा कहते हैं।

चितकबरा (Spotted Ball-worm) करा इल्ली की अवस्थामें ही फ़सल को हानि पहुँचाता है। यह कीड़ा चरक-पक्ष वर्ग का है। इल्ली पहले पौधे के बढ़नेवाले भाग पर हमला करती है। वह तनेमें छेद कर भीतर घुसकर उसे खोखला कर डालती है, जिससे वह मुरझा जाता है। यह इल्ली फूल तथा ढेढ़ुई पर भी हमला करती है। इल्ली ढेढ़ुईमें घुसकर बिनौले खा डालती है और ख़ाली जगह में मल भर देती है, जिससे रुई ख़राब हो जाती है। इल्ली खेत की मट्टीमें कोशावस्था बिताती है और तब तितलीमें परिवर्तित हो कोशसे बाहर निकल आती है।

तितली का रंग ख़ाकी होता है। उसकी पीठ पर हरा पट्टा होता है। यह कीड़ा "मालवेसियस" वर्गके (इस वर्गमें कपास, भिंडी, अम्बाड़ी आदि पौधे हैं) पौधोंपर रहता है। इस कीड़ेके नाशका सर्वोत्तम उपाय यही है कि मुरझाया हुआ अंकुर (shoot) तोड़ कर जला दिया जाय। परन्तु इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाय कि कीड़ा पौधे पर न रहने पावे। कपास की फ़सल काट लेनेके बाद खेतमें बनसठी न रहने देना चाहिए।

ऊपर लिखा जा चुका है कि कपासके खेतमें भिंडी न बोई जाय। यदि कीड़े नाश करनेके लिए भिंडी बोई जाय तो कुछ हर्ज नहीं।

२—गुलाबी करा (Pink Ball worm) ढेढ़ुईके सिवा यह कीड़ा कपासके पौधेके अन्य किसी भाग पर नहीं रहता। बिनौले ही इसका एकमात्र भोजन हैं। ढेढ़ुईमें घुस कर रुई या बिनौलेमें यह कीड़ा अपनी कोषावस्था बिताता है। तितली भूरे रंग की होती है। इससे कपासकी फ़सलको बहुत नुक़सान पहुंचता है। इस कीड़े को पकड़नेके लिए भिंडी बोनेसे भी कुछ लाभ नहीं होता। कारण यह है कि कीड़ा भिंडी पर जीवन-निर्वाह नहीं करता।

कीड़ा बीजोंमें अपनी कोशावस्था बिताता है। अतः बोनेके पहले बीजोंकी परीक्षा करना बहुत ज़रूरी है। बीजोंको पानीमें डालो और तब उन्हें ख़ूब चलाओ। नीरोग बीज बरतन की तलीमें बैठ जायगे। पानी पर तैरनेवाले बीज निकाल कर जला डालना चाहिए। कारण इन बीजोंमें कीड़ा कोशावस्थामें मौजूद है।

३—तनेमें छेद करने वाला कीड़ा—यह कीड़ा कोशपक्ष वर्गका है। इल्लीकी अवस्थामें ही कीड़ा फ़सल को हानि पहुँचाता है। मादा अण्डे देती है। इल्ली अण्डेमेंसे निकलने पर, तने में छेदकर उसे खाने लग जाती है। तना खोखला होते ही पौधा सूख जाता है। तने और जड़ोंके जोड़ पर एक गांठ सी बंध जाती है। कीड़ा इसी ग्रंथिमें रहता है। कीड़ा तनेमें ही कोशावस्था बिताता है।

कीड़ा लगे हुए पौधे कुम्हला जाते हैं। इन कुम्हलाए हुए पौधों को उखाड़ कर जला डालना चाहिए। अकसर देखा जाता है कि कीड़ों द्वारा खाये हुए पौधे यातो उखेड़े ही नहीं जाते याउखाड़ करखेत मेंही फेंक दिये जाते हैं। परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं। यदि सूखे हुए पौधे जला न दिये जायंगे तो कीड़ा अनुकूल समय आने तक तनेमें आरामसे छिपा रहेगा और तब उचित समय पातेही तनेसे बाहर निकलकर अपनी प्रजा-वृद्धिका कार्य फ़ुर्तीसे शुरू करदेगा। और तब दूसरे वर्ष कीड़े इतने बढ़ जायंगेकि उनसे फ़सलकी रक्षा करना कठिन होजायगा।

कीड़े तने या टहनीके अन्दर रहते हैं। अतः कृमिनाशक औषधिसे इनका नाश करना संभव नहीं।

बेहना (Red-cotton Bug)—इसे कामबुग्में भांगा पीलोभीतमें झंझा और मध्यप्रदेशमें लाल झिंगुरा, मिया आदि नामोंसे पुकारते हैं।

कीड़ा कोमल ढेंढुओंका रस पीता है। जिससे यातो यह ज़मीनपर गिर पड़ती हैं या पकनेके पहले ही फूट जाती हैं। पूर्णावस्थाको पहुँचा हुआ कीड़ा ढेंढुईमें ही रहता है। वह बहुत चपल होता है।

छोटी छोटी कपड़ेकी थैलियोंमें पानीमें भिगोये हुए बिनौले भरकर उन्हें खेतमें स्थान स्थान पर डाल देना चाहिये। कीड़े इन थैलियोंपर जमा हो जायंगे। यह कीड़ा जलदी नहीं उड़ता। अतएव एक बरतनमें पानी तथा मट्टीके तेलका मिश्रण भरकर उसमें थैलियां झटक दी जायं। ऐसा करनेसे कीड़े उक्त मिश्रणमें गिर कर मर जायंगे।

२-धान के कीड़े.

बंकी—(Rice-case Worm) इसे मध्य-प्रदेशमें बेड़ा, बेहली, बिर्डी, पई आदि नामसे पुकारते

चित्र नं० १—बेहना-झंझा या झिंगुरा

हैं। यह कीड़ा चावल पैदा होनेवाले प्रदेशोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। इल्ली अपने चारों ओर पत्तों का आवरण बनालेती हैं। वह इसीमें कोशावस्था बिताती है। तितली प्रकाशकी ओर आकर्षित होती है। इस लिए खेतोंमें कंदील जलाकर या खेतों के पास आग जलाकर इस कीड़ेका नाश किया जा सकता है। इल्लीके नाश करनेका सरल उपाय यह है कि खेतोंमें भरे पानीमें मट्टीका तेल डाला जाय और तब पानी इतना चलाया जायकि तेल पानीकी सतहपर फैल जाय। तदनन्तर एक लम्बी रस्सी लेकर दोनों सिरोंपर दो आदमी उसे पकड़ें और तब वह रस्सी पौधों परसे खींची जाय। ऐसा करनेसे इल्ली पानीमें गिरकर मर जायंगी।

चरक—(Rice Grasshopper) इसे मध्यप्रदेश मेंघुल्ली, नाकतोल और अलीगढ़में बोट या बोटी कहते हैं।
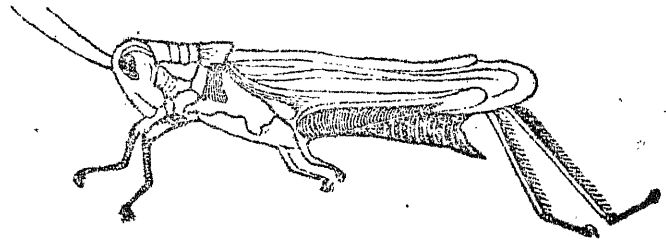
चित्र नं० २—चरक-घुल्ला या बोटी

यह कीड़ा ज्वार और गन्ने परभी पाया जाता है। मादा अक्टूबर या नवम्बरमें ज़मीनमें अण्डे देती है। ये अण्डे जून तक ज़मीनमें ही पड़े रहते हैं। बरसात शुरू होनेपर अण्डेमेंसे कीड़ा निकलता है। पूर्णावस्था प्राप्त कीड़ा बहुत कम वक्त तक जिन्दा रहता है। मादा सालमें एकही बार अण्डे देती है। पौधों पर थैली चढ़ाकर कीड़े पकड़े जा सकते हैं।

तनेमें छेद करने वाला कीड़ा—तितली बहुतही छोटी पीले रंगकी होती है; मादा पत्तों पर अण्डे रखकर उनपर बाल ढक देती है। इल्ली तनेमें छेद करके उसीमें रहती हैं। उचित समय आने तक कीड़ा तनेमेंही छिपा रहता है। इसलिए इनके नाशका

सर्वोत्तम उपायतो यही है कि खेतोंमें फ़सलके डंठल न रहने दिये जायँ।

तितली प्रकाशकी ओर आकर्षित होती है। जिस पौधेको यह कीड़ा लगजाता है उसकी बालियोंमें दाने नहीं भरते वह ख़ाली रहजाती हैं।

गंधी—(Rice Bug) इस कीड़ेके शरीर पर कुछ ग्रंथियां होती हैं जिनमेंसे दुर्गंधि-युक्त प्रवाही-पदार्थ निकलता है। यह कीड़ा बालियों और पत्तों को नुक़सान पहुँचाता है। यह कीड़े शुरूमें खेतकी
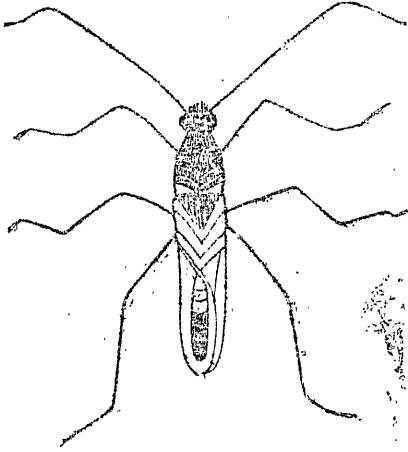
चित्र नं० ३—गंधी

मेड परके घास आदिखाकर रहते हैं। एक बार खेत मेंइनका प्रवेश होजाने पर फ़सलकी रक्षा करना कठिन होजाता है। रातके समय खेतोंके पास धुंआ करनेसे यह गंधी खेतमें नहीं घुस पाती।

३-ज्वारके कीड़े

ज्वारके पौधे पर कई प्रकारकी इल्लियां पाई जाती हैं, किन्तु उनसे फ़सलको ज्यादा नुक़सान नहीं पहुँचता। एक जातिकी इल्ली अंकुर खा डालती हैं। कुछ तनेमें घुसकर रहती हैं और कुछ पत्तोंके कोष (Sheath) में।

ज्वार पर रहने वाली इल्लियां मक्का और गन्ने परभी पाई जाती हैं। अतः इन पर आगे चलकर विचार किया जायगा।

फ़सल काट लेने पर रोड़ें (डंठल) खेतोंमें से उखाड़ कर जला डालना चाहिए।

४-सन के कीड़े

बुट—(Surface grasshopper) इसे दर्की दुर्की गदहिया और गदेहला भी कहते हैं। मादा मट्टीमें अण्डे रखती है। कीड़ा पत्तों तथा छोटे छोटे पौधों
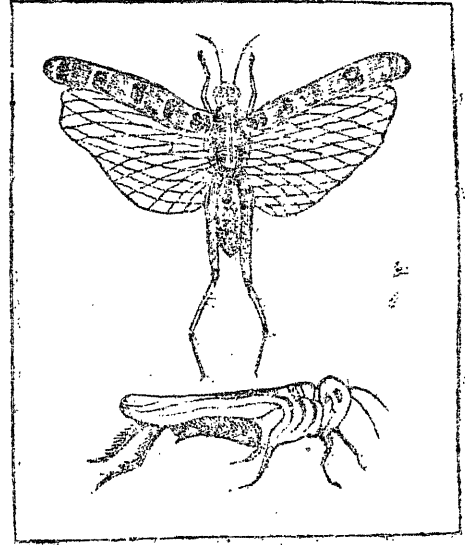
चित्र नं० ४—बुट-दर्की या गदहिया

पर जीवन निर्वाह करता है। यह कीड़ा सभी मौसमोंमें पाया जाता है।

छोटे खेतोंमें सोमल-मिश्रण छिड़कना लाभ-दायक है। पौधों पर थैली फिराकर भी कीड़े पकड़े जा सकते हैं।

बालदार इल्ली—(Hairy Catterpillar) इस इल्ली के शरीर पर बड़े बड़े बाल होते हैं। यह सन तथा घास पर रहती है। कीड़ा जमीन पर पड़े हुए सूखे पत्तोंमें कोशावस्था बिताता है। कभी पौधे परभी कोष पाया जाता है।

चंचुमुख कीड़ोंको मारनेके लिए काममें लाई
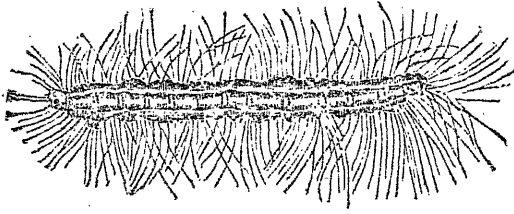
चित्र नं० ५—बालदार इल्ली

जानें वाली औषधियोंसे इस कीड़ेका नाश किया जासकता है।

५—गेहूंके कीड़े

तनेमें छेद करनेवाली इल्ली—यह कीड़ा बल्कपक्ष वर्गका है। धान, ज्वार, मक्का, गन्ना, गिनी घास आदि भी इसके खानेके पदार्थ हैं। यह तनेमें घुस-कर उसे खोखला कर डालता है। कीड़ा लगे हुए पौधेकी बालियां खाली रह जाती हैं।

कीड़ा लगे हुए पौधोंको उखाड़कर जला डालनाही इसके नाशका एकमात्र उपाय है।

दीमक—दीमक पौधोंकी जड़ें खा डालती है। दीमकका नाश करना कठिन है, कारण इनके घर ज़मीनमें १२ से १५ फ़ीट गहरे होते हैं। इसलिए गहरी जुताईसे भी कुछ लाभ नहीं पहुँचता।

अक्सर खेतोंमें बिना सड़ा गोबर और कचरा फेंक दिया जाता है। खेतोंमें फ़सलके डंठल भी खड़े रहने दिये जाते हैं और इन्हींकी बदौलत खेतोंमें दीमक घुस आती है।

इसलिए जहां तक हो सके खेतोंमें बिना सड़ा खाद कचरा कूड़ा आदि कभी न डालना चाहिये।

बगीचे, तथा छोटे खेतोंमेंकी दीमक नाश करनेका उपाय यह है कि पानी देती बार पानीकी नालीमें नमक और हींग एक पोटलीमें बांधकर डाल दिये जायँ। इनकी गंधसे दीमक न लगेगी।

६—गन्नेके कीड़े

दीमक—दीमकसे गन्नेको बहुत नुकसान पहुँचता है। कभी कभी तो गन्ना उगनेही नहीं पाता। क्रूड आइल इमलशनको कपड़ेमें बांधकर सिंचाईके वक्त, पानीकी नालीमें डाल देनेसे दीमक खेतमें नहीं आती; परन्तु इससे वे मरती नहीं। गन्नोंके टुकड़ोंको सोमल मिश्रणमें भिगोकर बोने से भी दीमकसे उनकी रक्षा होती है। अंडीकी खली आदि कुछ खाद भी दीमकके हमलेको रोकते हैं।

घिरई—(Moth borer) इसे मुज़फ़्फ़रनगरमें अहोल, और, होशंगाबादमें तुर्का, तुर्की बुड्डा, मुरादाबाद, सीतापुर अलीगढ़ और लखनऊमें गिरार, कानपुरमें मकोहा, बिजनौरमें मकोड़या और अन्य कुछ स्थानोंमें ओग्रा, खेंठा खेंठी आदि नामसे पुकारते हैं।

चित्र नं० ६—घिरई या गिरार

ज्वार और मक्कापर पाये जाने वाले कीड़े गन्ने पर भी पाये जाते हैं। तीन प्रकारकी इल्लियां गन्नेको बहुत नुक़सान पहुँचाती हैं। इनमेंसे एक जातिकी इल्ली सांठेमें छेदकर ऊपरसे नीचेकी ओर बढ़ती है। यह गन्नेके अंकुरको नष्ट कर डालती है। अतः उस पौधेकी वृद्धि रुक जाती है और तब उसके पास एक और नया पौधा अंकुरित हो उठता है।

इस इल्ली द्वारा खाया हुआ पौधा छेदके कुछ नीचेसे काट डालना चाहिए और तब उसमेंसे इल्लीको निकालकर मार डालना चाहिए।

घिरई सबसे अधिक पौधोंको नुक़सान पहुँचाती है। उसे जलाकर नष्ट कर डालनाही फ़सलकी रक्षाका एकमात्र उपाय है।

अक्सर गन्नेके खेतमें मक्का बोई जाती है। घिरई मक्काके पौधोंपर हमला करती है। ये कीड़ा लगे हुए पौधे तब खेतमेंसे उखाड़कर जला दिये

जाते हैं। ऐसा करनेसे फ़सलकी बहुत कुछ रक्षा हो जाती है।

गन्ना मक्खी—(Sugarcane Fly) यह मक्खी गन्ने का रस पीती है, जिससे उसमेंका शर्करांश कम हो जाता है। मादापत्तों पर अण्डे देती है। अण्डे सफ़ेद होते हैं। मक्खीका रंग कुछ गुलाबी होता है। त्वकपक्ष के बहुतसे कीड़े इस मक्खीके शत्रु हैं। एक काले रंगका कीड़ा इस मक्खीके शरीरमें अण्डे देता है। इल्ली मक्खीके शरीरमेंही बढ़ती रहती है। वह मक्खीके शरीरसे निकलकर मट्टी या सूखे पत्तोंमें कोष बनाती है।

फलीवाली फ़सलके शत्रु

जूरी-(Grainpod-Borer) यह कीड़ा चनेकी घेंटोंमें घुसकर दाने खाता है। तुअरकी फलीमें भी यह पाया जाता है। एक-दल वर्गकी फ़सलोंको छोड़कर अन्य सब फ़सलों पर यह पाया जाता है। अमेरिकामें तो यह कीड़ा कपासकी ढेढ़ुई भी खाता है। कीड़ा जमीनमें अपनी कोशावस्था बिताता है। कभी कभी यह कीड़ा अपने जाति भाइयोंको मारकर खाता है।

फ़सल काट लेनेपर हल चलाना अच्छा है। कारण हलसे कोष जमीनकी ऊपरी सतहपर आ जायंगे और तब अनायासही पक्षियों द्वारा तथा धूपसे इनका नाश हो जायगा।

छोटे खेतोंमें कृमिनाशक औषधि छिड़कना फ़ायदेमंद है।

कटवर्म (Cot worm)—यह कीड़ा दिनभर तो खेतोंकी दरारोंमें तथा पत्तोंके अन्दर छिपा रहता है और रातको बाहर निकलता है। यह पौधेकी डालियां काट काटकर अपने बिलमें खींच ले जाता है। यह खाता कम और नुकसान ज्यादा करता है। पत्तेकी बीचकी मोटी नसको छोड़कर यह कीड़ा तनेका सब भाग खा डालता है। गोभी, टमाटर, तम्बाकू आदि भी इस कीड़ेकी ख़ुराक हैं। पौधेके आस पासकी मट्टी हटानेसे यह कीड़ा सहजही पकड़ा जा सकता है। गुड़ व सोमल मिलाकर खेतमें डालनेसे कीड़ोंका नाश होजाता है।*

तिलहन (Oilseed) फ़सलके शत्रु

तिल—यह एक इल्ली है जो पत्ते लपेटती है। फूल और डोंडियों पर भी यह हमला करती है। इल्ली द्वारा खाई हुई डोंडियां काली पड़ जाती हैं। तितली नाज़ुक तथा पीले रंग की होती है। बहुत से परोपजीवी कीड़े इसके शत्रु हैं।

प्रारंभमें कृमिनाशक दवाई छिड़कना अच्छा है।

पड़ बिच्छू या तिलंग (Tit. hawk moth)—यह कीड़ा वल्कपक्ष वर्ग का है। इल्ली बहुत ही बड़ी होती है। यह कीड़ा कुलथी पर भी पाया जाता है तितली बहुत चपल होती है। वह प्रकाश की ओर आकर्षित भी होती है। यह कीड़ा पाया तो हरसाल जाता है परन्तु इससे फ़सल को ज़्यादा नुकसान नहीं पहुँचता।

कृमिनाशक औषधि छिड़कना फ़ायदेमंद है।

अंडी—एक प्रकार की इल्ली पत्ते खाती है। मादा पत्तेकी नीचेकी सतह पर अण्डे रखती है। यदि पत्ते रेशमके कीड़े को खिलाए जाते हों तो उन्हें ख़ूब देख भाल कर खिलाना चाहिए। एकबार इस कीड़ेकी प्रजा बढ़ जानेपर उसका नाश करना कठिन है। यह कीड़ा गुलाब पर भी पाया जाता है। त्वकपक्षका एक परोपजीवी कीड़ा इसका शत्रु है।

अण्डोके बीजका कीड़ा—यह कीड़ा आमके बौर पर भी पाया जाता है। लुकाट, सपाटू, रीठे आदि पर भी यह कीड़ा रहता है। पत्ते और डोंडियां ही इसकी ख़ुराक हैं। पहले निकली हुई

* आटेमें गुड़ और सोमल डालकर गोलियां बनाई जायं और तब ये गोलियां खेतमें डाल दी जायं।

डौडियोंपर यह कीड़ा ज़्यादा पाया जाता है इस लिए सारी फ़सल की रक्षाके लिए पहले आई हुई डौडियां तोड़ कर जला डालनी चाहिए।
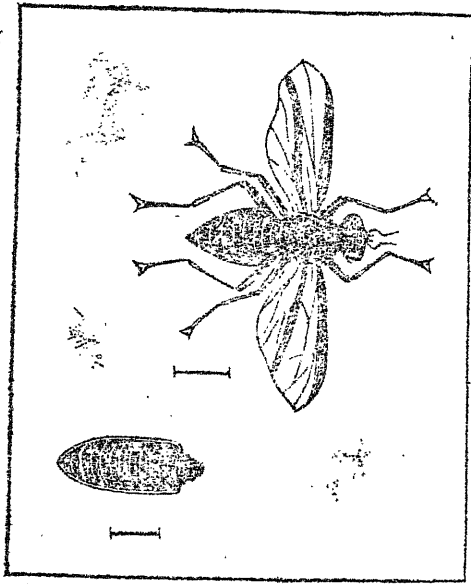
चित्र नं० ७—आरहरीके ढौलका कीड़ा और इल्ली

४—शाक भाजीके शत्रु

बरसातमें शाक भाजी ज़्यादा बोई जाती है। और यही मौसम कीड़ोंकी वृद्धिके लिए भी अनुकूल है। बरसातमें अनेक प्रकारके कीड़े पाये जाते हैं। इन कीड़ोंसे फ़सलको ज़्यादा नुक़सान भी पहुँचता है।

फल मक्खी—यह मक्खी फलकी ऊपरी त्वचा के नीचे अण्डे रखती है। अण्डेमेंसे निकलतेही इल्ली गूदेमें प्रवेश करती है और अपनी कीटावस्था वहीं बिताती है। फलसे बाहर निकलकर कीड़ा ज़मीनपरही कोशावस्था बिताता है। इस मक्खीकी एक पीढ़ी १४ से २१ रोज़में ख़तम हो जाती है। सड़े गले फलोंमें बहुतसी इल्लियां पाई जाती हैं। इसलिए किसानको चाहिये कि सड़े गले फल खेतमें कदापि पड़े न रहने दिया करे। उन्हें इकट्ठाकर जला डालना चाहिये।

यह मक्खी अमरूद, बेर, लीची, कुदरू आदि कई जातिके फलदार वृक्षों पर पाई जाती है॥

तेलिन—(Large blister beetle) यह कीड़ा कुम्हड़ेके फूलोंपर बहुत पाया जाता है। भिंडीपर भी एक प्रकारकी तेलिन पाई जाती है, जिसकी पीठपर लाल या भूरे पट्टे होते हैं। इल्ली ज़मीन पर रहती है। पूर्णावस्थाको पहुँचा हुआ कीड़ाही कुम्हड़ेके फूलोंको ख़राब कर डालता है।

पत्र भक्षक कीड़ा—(Leaf-aeting Beetle) यह कीड़ा लाल रङ्गका होता है और इसकी पीठपर काले धब्बे होते हैं। यह कीड़ा पत्ते खाता है। आलू टमाटर आदि कई पौधों पर यह पाया जाता है।

छपका—(Lady-bird Beetle) इसे मध्यप्रदेशमें सोन पांखरू कहते हैं। यह अधिकतर लही (aphis) और चिकटा या माहू (Plant-lice) खाता है।

चंचुमुख कीड़ेके लिए बनाये हुए मिश्रणसे यह कीड़ा भी मारा जा सकता है।

बैंगन छेदनेवाला कीड़ा—यह कीड़ा बरसातमेंही ज़्यादा पाया जाता है। यह फलमें छेदकर भीतर घुस जाता है जिससे फल पीला होकर गिर पड़ता है। इल्ली पौधेके अंकुरको भी खाती है। यह अपनी कोशावस्था पौधेपर या ज़मीन पर पड़े हुए सूखे पत्तोंमें बिताता है।

कीड़े लगे हुए फल जला डालने चाहिये।

तनेमें छेदकरनेवाला कीड़ा—यह कीड़ा तनेमें घुस कर उसे खोखला कर डालता है जिससे पौधा सूख जाता है।

सूखे हुए पौधोंको जला डालना ही एकमात्र उपाय है।

लही—(Aphis) लहीसे गोभीको बहुत नुक़सान पहुँचता है। अठवाड़ेमें एक बार पौधोंको देख लेना चाहिये। खेतमें रोपलगानेके पहले देख लेना चाहिये कि उनपर लही तो नहीं लगी है। तम्बाकू

केसतमें या वाशिंग सोडाके मिश्रण*में धोकर रोपे खेतमें लगाना अच्छा है।

गोभीके पौधोंपर ज़हरीली दवाइयां छिड़कना हानिकारक है। क्योंकि ज़हरसे मनुष्योंको नुक़सान पहुँचनेका डर रहता है।

मूली, नोलकोल, राई, सरसों, शलजम आदि पर एक काले रंगकी तितली पाई जाती है। तितलीके १० पैर होते हैं। तितलीसे तो फ़सलको कुछ नुक़सान नहीं पहुँचता परन्तु इल्ली फ़सलके पत्ते सफ़ाचट कर डालती है। इसीसे फ़सलकी रक्षा करनेके लिए कृमिनाशक औषधि छिड़कनाही एकमात्र उपाय है।

शकरकन्द—कभी कभी शकरकन्द पर काली पट्टियां या बारीक छेद नज़र आते हैं। यह सब एक कीड़ेका काम है। एक आध सड़े हुए शकरकन्दको काटकर देखनेसे उसमें असंख्य इल्लियां पाई जांयगी। पूर्णावस्था प्राप्त कीड़ा $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा और काले रंगका होता है। यह कन्दमेंही कोशावस्था बिताता है। कीड़ा मट्टीमें घुसकर शकरकन्दमें छेद करता है। कन्दके सिवा पौधेके और किसी भाग पर यह कीड़ा नहीं पाया जाता।

सड़े तथा कीड़ा लगे हुए शकरकन्द अलग कर जला डालने चाहिये।

आलू—विदेशसे मंगाये हुए आलूके साथ एक जातिकी तितली भी हिन्दुस्तानमें आगई है। जब तक आलू खेतोंमें रहते हैं इसका कुछ भी ज़ोर नहीं चलता। परन्तु खेतमेंसे निकाल लेनेके बाद यह उनपर हमला करती है। मादा पत्तोंपर अण्डे देती है। और इसीही आलूको नुक़सान पहुँचाती है। कोठेमें भरनेके पहले ख़राब आलू छांटकर अलग कर डालने चाहिये। नीचे आलूकी रक्षाकी सरल और उत्तम तदबीर दी जाती है।

जिस कमरेमें आलू भरना हों वह सीलदार न हो। कमरेकी ज़मीन बिलकुल सूखी हो। ज़मीन पर चटाइयां बिछाकर उनपर १२ इंच मोटी सूखी रेतकी तहसे अच्छी तरह ढक दिये जायं। महीनेमें एकबार आलूको देख भा लेना चाहिये और ख़राब आलू अलग छांट डालने चाहिये।

क्रूड ऑइल इमलशनसे धोकर रखे हुए आलू भी ज़्यादा दिन तक रखे जा सकते हैं।

कहीं कहीं लोग मचानोंपर भी आलू रखते हैं किन्तु उसमें ख़र्च ज़्यादा बैठता है।

६—फल झाड़के शत्रु

१ संतरा

संतरेवरका पतंग—यह प्राणी बहुतही सुन्दर होता है। मादा कोमल पत्तों और नये अंकुरोंपर अण्डे रखती है। अण्डोंका रंग पीली झाईं-युक्त हरा होता है। अण्डेमेंसे हलके लाल रंगकी इल्ली निकलती है, जो कोमल पत्ते खाती है। हर बार त्वचा बदलने पर इल्लीका रंग भी बदलता रहता है। दूर से देखने वालेको इल्ली पक्षियोंकी विष्ठाके समान नज़र आती है, जिसके कारण शत्रुसे इसकी रक्षा हो जाती है और यही कारण है कि यह पत्तोंपर बैठकर मज़ेमें उनको खाया करती है। कीटावस्था पूर्ण होनेपर इल्ली हरे रंगकी हो जाती है और बादमें वह कोष बनाती है। कोष पत्तोंपर लटकता रहता है। एक पीढ़ी २० से ३० दिनमें ख़तम हो जाती है। यह पतंग नारंगीके बगीचोंमें बारहों महीने पाया जाता है। परन्तु बरसातमें इससे ज़्यादा नुक़सान पहुँचता है। बावची और बेलके झाड़पर भी यह पतंग पाया जाता है।

सबेरेके वक़्त पतंग सहजहीमें पकड़ा जासकता है अण्डोंसे भरे हुए पत्ते तोड़कर जला डालने चाहिये।

---

*आध सेर वाशिंग सोड़ा २० सेर पानीमें डालकर गरम करनेसे यह मिश्रण तैयार होता है।

छेद करनेवाला कीड़ा—इल्ली और बीटिल*दोनों ही वृक्षके धड़में छेद करते हैं। छेदमें छिपकर रहते हैं और अक्सर रातको बाहर निकलकर वृक्षकी छाल खाते हैं। मादा सालमें एकही बार अण्डे देती है।

यह कीड़ा लीची, सीताफल, पारिजाति, बबूल, खैर, जामुन, आँवला और जायफल पर भी रहता है। गुलाबके बहुत पुराने पौधोंपर भी यह कीड़ा पाया जाता है। कई दूसरे वृक्षोंपर भी यह कीड़ा देखा जाता है।

इस कीड़के लग जानेसे वृक्षको एकदम तो कुछ नुक़सान नहीं पहुँचता, परन्तु वह कमज़ोर ज़रूर हो जाता है और तब कुछ वर्षों बाद वह आपही आप सूख जाता है। छेदमें क्रूड ऑइल इमलशन या फ़िनाइल डालनेसे कीड़ा मर जाता है।

एक प्रकारका बीटिल और है जो वृक्षके सड़े हुए भागमें छेद करके रहता है। यह बीटिल वृक्षके हरे भाग पर बिलकुल नहीं पाया जाता। और इससे नुकसान कम होता है। यह कीड़ा ज़्यादातर बहुत पुराने वृक्षों पर पाया जाता है।

बांस और आमपर यह कसरतसे पाया जाता है।

२ अनार

एक जातिका पतंग फूलोंमें अण्डे रखता है। फल आने पर इल्ली छेदकर उनमें घुस जाती है। जिससे वह गिरपड़ते हैं। उत्तम जातिके अनारको बचानेका एक मात्र उपाय यही है कि फूलोंपर महीन कपड़ेकी थैलियां बांधदी जायँ। परन्तु थैलियां बांधनेके पहले फूलको अच्छी तरह देख लेना चाहिये कि उनमें अण्डे तो नहीं हैं।

३ आम

एक प्रकारका टिड्डा आमके बौरका रस पीता है जिससे फसल मारी जाती है। वृक्षके नीचे जाकर खड़े रहने पर एक प्रकारका हलकासा भिनभिनाहटका शब्द सुनाई पड़ता है और कपड़ेपर एक प्रकारका चिपकनेवाला पदार्थ जम जाता है। आमके वृक्षपर इन टिड्डोंके झुंडके झुंड पाये जाते हैं।

इल्ली
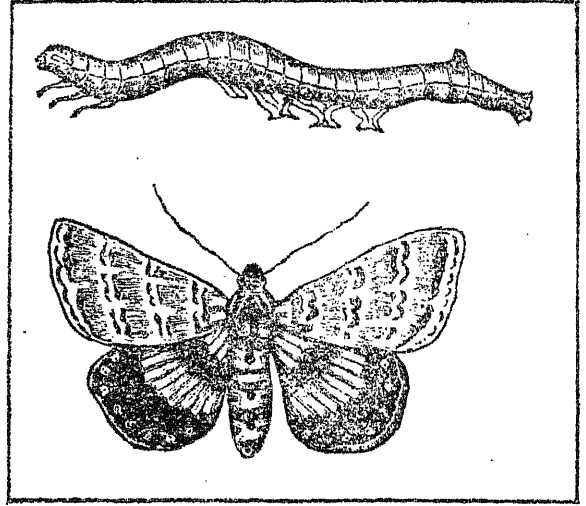
चित्र नं० ८—आम की मक्खी

छोटे वृक्षों पर क्रूड आइल इमलशन छिड़कना फायदेमंद है। कीमती झाड़ों पर सप्ताहमें एक बार ऊपर लिखी औषधि ज़रूर छिड़कते रहना चाहिए। बड़े झाड़ों पर उक्त औषधि छिड़कना खर्च और परिश्रमका काम है और तिस परभी अधिक लाभकी संभावना नहीं।

४-अन्य प्रकारके शत्रु

घुन—यह कीड़ा कोठोंमें भरे हुए अनाजको खाकर खोखलाकर डालता है। घुन अनाजके दानेमें ही अपनी सारी ज़िन्दगी बिताता है। घुन लगे हुए अनाज को धूपमें सुखाना अच्छा है। परन्तु स्मरण रहे कि चावल कभी धूपमें न सुखाया जाय, कारण ऐसा करनेसे यह टूट जाते हैं। अतः चावल हमेशा खुली, हवादार जगहमें छायामें सुखाना चाहिये।

बीजके लिए रखे हुए अनाजमें नेफ्थलीनकी गोलियां डालदेनेसे घुन नहीं लगता। परन्तु

* पूर्णवाढ़को पहुंचे हुए कोषपक्षके कीड़ेको अङ्गरेज़ीमें बीटिल (Beetle) कहते हैं।

खानेके लिए रखे हुए अनाजमें नेफ़थलीन न डाली जाय क्योंकि उसकी दुर्गंध अनाजमें आने लगती है।

चना, मूंग, उड़द आदि द्विदल वाले धान्योंको लगने वाले कीड़े पर नेफ़थलीनका कुछभी असर नहीं पड़ता। इस लिए नीचे लिखी तदबीरसे उनकी रक्षा हो सकती है।

चना आदिको पहले धूपमें अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये और तब कोठीमें भर कर उनपर सूखी रेतकी ६ इंच मोटी तह डाल दो। अण्डेमेंसे निकलने पर कीड़े रेतकी ऊपरी सतह पर निकल आवेंगे। एक बार ऊपर निकल आने पर कीड़ा फिर धान्य तक न जासकेगा, और बीज ख़राब होने से बच जायगा।

ऊनी कपड़ोंको भी कीड़े खा डालते हैं। कपड़ेकी पेटीमें नेफ़थलीनकी गोलियां रखनेसे कीड़े उसमें कभी न घुसेंगे।

तिलचुता भी कई चीज़ें ख़राब कर डालता है। आधी छटांक सुहागेको एक छटांक गुड़में मिलाकर रोटीके टुकड़ों पर लगादो और तब उन्हें घरमें इधर उधर डाल दो। रोटीके खातेही उनकी मृत्यु होजाती है।

बघई—कुत्ता, बैल, घोड़ा आदि जानवरोंके शरीर पर बघई पाई जाती हैं। इससे पशुओंको बड़ी तकलीफ़ होती है। छाछमें प्याज़का रस मिलाकर लेप करनेसे बघईसे उनकी रक्षा होती है।

परिशिष्ट

१-दीमक की दवाई

सवासेर पानी में दो छटांक सोमल और दो छटांक (वाशिंग) सोडा मिलाकर ख़ूब गरम करो। इस मिश्रणमें २० सेर पानी मिलाकर उसे वृक्षके आस पासकी ज़मीन पर छिड़क दो या सिंचाईके वक्त थालेमें भरे हुए पानीमें मिलादो।

२-कट वर्म की दवाई

दोसेर चूनी में एक छटांक सोमल और दो छटांक गुड़ मिलाकर उसे दोसेर पानीमें भिगो दो। इसे सब खेतोंमें जगह जगह डालदो। इसे खाकर 'कटवर्म' मर जायंगे।

३-छोटे कीड़े

लाल रंगके छोटे छोटे कीड़े पत्तोंकी ऊपरकी तहको खा डालते हैं, जिससे पत्तों पर पीले धब्बेसे नज़र आने लग जाते हैं।

(१) एक भाग गंधकमें चार भाग महीन धूल या राख मिलाओ और तब उसे कीड़े लगे हुए पत्तों पर डालो।

(२) एक सेर चूना तथा आध सेर गंधक को पानीमें डालकर ख़ूब उबालो और तब इसमें इतना पानी मिलाओ कि सब मिश्रण करीब ३० सेर होजाय। तब यह मिश्रण पौधों पर छिड़क दिया जाना चाहिये।

हर्बर्ट स्पेंसर

(लेखक:—श्याम सुन्दर वर्मा)

सर्वव्यापक विकासवादी

बहुतसे मनुष्योंका यह भ्रम है कि आविष्कारकही विज्ञानके सब कुछ हैं। विज्ञानपर केवल उन्हींका अधिकार है और वेही विज्ञानके आचार्य और प्रचारक हैं; किन्तु यह धारणा ठीक नहीं है। यद्यपि यह बिलकुल सत्य है कि आविष्कारकही विज्ञानके प्रमुख प्रचारक हैं। आविष्कारोंहीके कारण विज्ञानकी इतनी महिमा है और उसका इतना प्रसार है। ये आविष्कार ही दिगदिगन्त तक विज्ञानकी कीर्ति पताका फैला रहे हैं। उनके सहारे हम आज चन्द्रलोककी सैर करनेके इच्छुक हैं। न्यूयार्क में बैठकर कलकत्ता निवासीसे बातचीत कर रहे हैं। परन्तु जिस प्रकार आविष्कारककी प्रयोगशाला विज्ञानके अनेकों आश्चर्योंका जन्म-स्थान है उसी प्रकार तत्वज्ञानी के मस्तिष्कसे उतनेही

आश्चर्यजनक वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी उत्पत्ति हुई है।

इन तत्वज्ञानियोंने विज्ञानके लिए बहुत कुछ किया है और इसीलिए विज्ञान क्या सारा संसार इनका ऋणी है। आज हम "विज्ञान"के पाठकोंको एक ऐसेही तत्वज्ञानीके जीवनसे परिचित कराना चाहते हैं जिसने न केवल भौतिक, रसायन तथा वनस्पतिशास्त्र वरन् मनोविज्ञान तथा समाज-शास्त्र इत्यादि सभीमें व्याप्त एक सर्वव्यापक सिद्धान्तकी खोज की थी। जिसने प्रयोगशालाओं-की अपने समयमें बढ़ती हुई प्रतिष्ठाको कम न करके यह भी प्रमाणित कर दिया था कि मनुष्यका मस्तिष्क भी एक बड़े आश्चर्यका घर है। यह इंग्लैण्डका सुविख्यात, सर्वव्यापक विकासवादी, दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर है। यद्यपि उसका स्मारक वेस्टमिनिस्टरके प्रसिद्ध गिरजाघरमें नहीं है तथापि वह इंग्लैण्डके महान-पुरुषोंमेंसे एक है जिनका उस देशको गर्व हो सकता है।

हर्बर्ट स्पेंसरका जन्म एक धार्मिक कुलमें २७ अप्रेल सन् १८२० ई० को हुआ था—उसके पिताका नाम जार्ज स्पेंसर था—वे एक साधारण किन्तु कुलीन, प्रतिष्ठित, धर्मिष्ठ तथा विज्ञ मनुष्य थे। स्पेंसरकी माता भी बड़ी विदुषी थी। स्पेंसर-की (Auto-biography) में लिखा है कि इनका उसके जीवनपर बड़ा और अच्छा असर पड़ा है और इसी कारण इनका भी नाम आदरणीय है। आज भारतमें कितने मातापिता ऐसे यशके भागी हैं इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है।

हर्बर्ट स्पेंसरकी बाल्यावस्थाके बारेमें बहुत कम मालूम है। उसके कोई भाई या बहिन नहीं जी सके; वही अपने माता पिताके भाग्यसे बच गया था। वह बड़ा दुर्बल था। उसमें बालकोचित गुणोंका अभावसा था, वह बाल्यावस्थाहीमें बड़ा गम्भीर था। बालकोंके साथ खेलनेके बदले वह सयानोंके साथ बात करना अधिक पसन्द करता था। किन्तु उसमें बालकोचित एक बड़ा भारी गुण था कि वह सदा कुछ न कुछ जाननेका इच्छुक रहता था। कोई भी चीज़ देखकर वह अवश्य जानना चाहता था कि वह क्या, क्यों और कैसे वैसी है। इसी गुणके कारण वह इतना बड़ा वैज्ञा-निक हो सका।

इसके माता पिताने थोड़ी शिक्षा तो घरहीमें दी और फिर स्पेंसर एक स्कूलमें पढ़ता रहा। स्कूलकी शिक्षासे वह संतुष्ट न था और शिक्षाके सुधारके सम्बन्धमें उसके मनमें बहुत विचार उत्पन्न हुए और इन्हीं विचारोंको लेकर उसने शिक्षाके ऊपर कई निबन्ध लिखे। उसमें उसने बालकोंकी शिक्षामें माता पिताकी क्या जिम्मेदारी है यह ख़ूब अच्छी तरह दिखाया है (हिन्दीमें इसका अनुवाद सरस्वती सम्पादक, हिन्दीके धुरंधर विद्वान पंडित महाबीर प्रसाद द्विवेदीने किया है।)

जब वह १६ या १७ वर्षका हुआ तब व्यवसायका प्रश्न उसके सामने आया वह अपना व्यवसाय ठीक ठीक निश्चित नहीं कर सका और उसे अपने प्राथमिक जीवनमें बड़ी बड़ी कठिनाइयों तथा ग़रीबी का सामना करना पड़ा। वह अध्यापन-कार्य करना चाहता था किन्तु उसके पिताने कहा कि वह उसके उपयुक्त नहीं है। गिरजाघरमें वह पादरी होनेके बहुत उपयुक्त था किन्तु वह गिरजा-घरमें काम नहीं करना चाहता था क्योंकि गिरजा-घरकी बहुतसी रीतियां उसे पसन्द नहीं थीं। उसके धार्मिक विचार भी भिन्न थे। वह बाइबिलकेही अनुसार चलनेको तैय्यार नहीं था; अर्थात् वह अपनी बुद्धिके प्रतिकूल कुछ भी नहीं करना चाहता था। उसके एक मित्रने उसे इञ्जी-नियरिंग (शिल्पकला) में जानेकी सलाह दी। यह उसे बहुत पसन्द आई क्योंकि वह सोचता था कि वहां बहुतसे आविष्कार कर सकेगा। यह उसकी चित्त-वृत्तिके अनुकूल होगा और आवि-

ष्कारोंसे उसे बहुत आर्थिक लाभ भी होगा। यही सोचकर और माता पिताकी आज्ञा लेकर १८३७ से १८४१ तक चार वर्ष वह इञ्जीनियरिंगमें काम करता रहा। पहले तो वह उत्साहसे काम करता रहा किन्तु थोड़े दिन बाद उसका उत्साह जाता रहा। २१ वर्षकी अवस्थामें उसने इञ्जीनियरिंग छोड़कर साहित्य सेवा करनेका विचार किया। वह लण्डन चला गया किन्तु उसे वहां कुछ भी काम न मिला। उसके दो चार लेख तो सामयिक पत्रोंमें निकल गये किन्तु उसे पुरुस्कार कुछ भी न मिला। जब उसके पास एक पैसा भी नहीं रहा तो वह अपने घर चला गया और अब उसका विचार फ़ीते (Lace Industry) का व्यवसाय करनेका हुआ क्योंकि उन दिनों इस व्यवसायका प्रचार बढ़ रहा था। वह कुछ दिन तक घरमें रहा, कुछ पढ़ता भी रहा और फिर उसने इञ्जीनियरिंगमें जाना चाहा। दो वर्ष उसने इसमें काम भी किया किन्तु फिर छोड़ दिया। वह फिर लण्डन चला गया वहां वह (Economist) "एकानामिस्ट "का सहकारी सम्पादक हो गया। फिर धीरे धीरे उसका नाम बढ़ने लगा और उसने अपनी इस नौकरीको भी छोड़ दिया। व्यवहार कुशलताके अभावके कारण ही उसे इतने समय तक सफलता नहीं मिली।

अब वह पुस्तकें लिखने लगा और १८४८ से १८५३ तक (२८ से ३३ वर्षकी अवस्था तक) वह अपनी पहिली पुस्तकमें लगा रहा। और वही उपर्युक्त "शिक्षा सम्बन्धी निबन्ध" (Essays on Education) नामक पुस्तक प्रकाशित हो गई। हर्बर्ट स्पेंसरके ग्रन्थोंका अध्ययन इसी पुस्तकसे आरम्भ करना चाहिये। यह पुस्तक सन् १८६१ में प्रकाशित हुई थी। इसी पुस्तकके कारण स्पेंसरको १९ वीं शताब्दीके शिक्षा सुधारकोंमें एक बड़ा स्थान मिला है। यह पुस्तक सभी देशों और भाषाओंमें पढ़ी पढ़ाई जाती है। इसका निचोड़ यह है कि बालककी शिक्षा उसके पूरे स्वभावके अनुकूल होनी चाहिये। जिसमें शिक्षासे उसके सारे गुणोंका बराबर विकास हो सके, शिक्षा मनुष्यके जीवनके सभी कर्मोंके लिए उपयोगी हो, केवल लिखना पढ़ना सिखानाही उसका काम न होना चाहिये। इसके लिए बालकोंके स्वभावको ठीक ठीक समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। बालकोंको स्वभावके अनुसारही काम करना चाहिये। बहुत लोग उन्हें अपना खिलौना समझते हैं और उनके साथ बहुत बुरा और निर्दय बर्ताव करते हैं परन्तु यह सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि बालक भी मनुष्य हैं और खिलौना नहीं। बालकोंके स्वभावकी परीक्षा और प्रतिष्ठाके कारणही स्पेंसरकी पुस्तकका दर्जा बहुत ऊंचा है।

इसके बाद हर्बर्ट स्पेंसरने बालकोंके स्वभावका अध्ययन करना आरम्भ किया और अपने चार सालके परिश्रम (१८५३ से १८५७) के बाद उसने मनोविज्ञान सम्बन्धी एक पुस्तक 'Principles of Psychology' लिखी जो अपने ढंगकी एकही पुस्तक है। इससे मस्तिष्क विज्ञानके एक भागका द्वार खुल गया। अभी तक मनोविज्ञानी युवाओं और वृद्धोंकेही मस्तिष्कका अध्ययन किया करते थे किन्तु अब बालकोंके स्वभावका भी अध्ययन होने लगा। दार्शनिकके मस्तिष्कके समान जानवरों और बरबरोंके मस्तिष्ककी भी क़ीमत होने लगी।

स्पेंसर इस बीचमें बहुतसे राजनैतिक लेख लिखता रहा और उसके वे पत्र जो उसने 'नानकनफ़ार्मिस्ट' (Nonconformist) को लिखे थे बहुत प्रसिद्ध हैं। इसमें उसने राज्य सत्ताके अधिकारों (Scope of Government) की विवेचनाकी है। वह बड़ा व्यक्तित्व-वादी रहा है और व्यैयक्तिक स्वतन्त्रता पर राज्यके हस्ताक्षेपका सदा विरोध करता रहा। यहां यह भी बता देना चाहिये कि राजनीतिमें वह उदारदलका (Liberal) था। और इसी उदारनीतिके कारण उसने अपनी जरावस्थामें दक्षिणी अफ्रीकाके बोर-युद्धकी निन्दाकी थी।

इसके अनन्तर स्पेंसरके उस कार्यका आरम्भ होता है जिसके कारण उसका आज तक नाम प्रसिद्ध है। वह एक दिन अपने लिखे हुए कागज़ पत्रोंको उलट पुलट रहा था कि, उसे एक लेख मिल गया जिसे पढ़कर उसके मनमें उस लेखमें प्रतिपादित सिद्धान्तको प्रमाणोंसे सत्य सिद्ध करनेका विचार उत्पन्न हुआ। बस उसने अपने जीवनके आगामी ३६ वर्ष इसी कार्यमें लगा दिये। वह अहर्निश, अथक और अविरत परिश्रम करने लगा। वह अविवाहितही रहा। उसके पास जो कुछ भी रुपया था उसने अपनी पुस्तकोंके प्रकाशनमें लगा दिया, उसका स्वास्थ्य जर्जरित होगया तथापि उसने अपना काम समाप्त कर डाला। उसकी (Synthetic Philosophy) तैय्यार हो गई और उसके द्वारा उसने संसारभरको सर्वव्यापक विकासवादका सिद्धान्त सिखलाया। उसने अपने सिद्धान्तका प्रतिपादन (First Principles) (प्राथमिक सिद्धान्त—मौलिक नियम), जीवशास्त्रके सिद्धान्त (Principles of Biology), (Principles of Psychology) मस्तिष्क विज्ञानके सिद्धान्त, (Principles of Sociology) (समाजशास्त्रके सिद्धान्त), (Principles of Ethics) (नीतिशास्त्रके सिद्धान्त) पुस्तकें लिखकर किया है। नैतिक नियमोंका प्रतिपादनही उसका ध्येय था। इसलिए उसने "नीतिशास्त्रके सिद्धान्तों" का प्रकाशन "समाजशास्त्रके सिद्धान्त" से पहिले लिखकर इसलिये किया कि कहीं वह उन्हें लिखनेके पूर्वही मर न जाय। ये पुस्तकें उसने १८६० ई०के (६ वर्ष) बीचमें लिखीं। उसने एक पुस्तक धर्म सम्बन्धी लिखी थी (Religious discussion) किन्तु वह प्रचलित न हो सकी। उसने और भी कई पुस्तकें और लेख जुदे जुदे विषयोंपर लिखे हैं। कुछ पुस्तकोंकी पुनरावृत्तियां भी उसके सामनेही प्रकाशित हुईं। इससे स्पष्ट है कि उसके ग्रन्थोंका प्रचार उसीके समयमें अधिक होने लगा था। वह अपने अन्त समयमें बहुत प्रसिद्ध हो गया था। अमेरिका मिश्र, जापान आदिमें उसकी ख्याति होने लगी थी।

हर्बर्ट स्पेंसरने इस संसारमें खूब नाम और सुख भोगकर ८३ वर्षकी अवस्थामें ८ दिसम्बर सन् १९०३ को परलोक वास किया। वह गुणवान होते हुए भी दोषोंसे रिक्त नहीं था। उसे बड़ा आत्म-विश्वास था, वह समझता था कि इस दुनियामें वह कुछ करने आया है। वह दूसरोंकी पुस्तकें अधिक नहीं पढ़ता था और न पढ़नेकी परवाह करता था क्योंकि वह अपने मतके सामने उनका कुछ मूल्यही नहीं समझता था। वह समालोचनासे भागता था उसे सहन करनेकी उसमें सामर्थ्य नहीं थी। वह मित्रता करनेके लिए मन्दोत्सुक रहता था किन्तु एकबार मित्र भाव हो जाने पर वह उसे सदा एकसा बनाये रखता था। अपनेसे विरोधमत वालोंसे भी उसकी मित्रता थी। प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका जार्ज इलियटको उसनेही उपन्यास लिखनेकी सलाह दी थी। इलियटने भी स्पेंसरके विचारोंका बहुत उपयोग किया है। लीवेसनेही उसे दर्शनोंका इतिहास पढ़नेकी ओर रुचि दिलायी और इमेनुअल कान्टकी मृत्यु (सन् १८५७ ई०) के बाद स्पेंसरहीने "विकास" (Evolution) शब्दका आधुनिक अर्थमें प्रयोग किया और यह भी बताया कि वह विज्ञानकी सभी शाखाओंमें व्याप्त है। कुछ दिनों बाद डारविनने जीवशास्त्रमें उसका प्रयोग किया। स्पेंसरने डारविनको Natural Selection के बदले Survival of the fittest का प्रयोग करनेको कहा था।

"Social Organism" शब्दका प्रयोग भी सबसे प्रथम स्पेंसरनेही किया था। जान स्टुअर्ट मिलसे भी इसकी बड़ी मित्रता थी। और स्पेंसरके बहुतसे ग्रन्थ मिलकी सहायतासेही प्रकाशित हुए हैं। कहा जाता है कि स्पेंसरको दुनियासे बहुत कम प्रेम था किन्तु बात ऐसी नहीं है।

यद्यपि स्पेंसर पञ्चत्वको प्राप्त हो गये, यद्यपि अविवाहित रहनेके कारण उसकी कोई सन्तान भी नहीं है तथापि वह और उसका नाम आजतक है और समयके साथ उसकी ख्याति बढ़ती जाती है। बहुतोंका मत है कि स्पेंसरका नाम अमर रहेगा। हम किसी दूसरे लेखमें बतायेंगे कि स्पेंसरका नाम क्यों अमर रहेगा।

—:o:—

क्या नमक खाना जरूरी है ?

[लेखकः—श्री शालिग्राम वर्मा, बी० एस-सी]

नमक जिसे रासायनिक-शास्त्र-वेत्ता सोडियम हरिद (Sodium Chloride) कहते हैं हमारे भोजनका इतना अवश्यक अंश हो गया है कि सब लोग यह समझने लग गये हैं कि नमक खाये बिना जीवित रहना असंभव है। बड़ी बूढ़ियोंका कहना है कि १२ वर्ष तक नमक न खानेसे मनुष्यके खूनमें एक प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है। अस्तु जीवन बचाये रखनेके लिये नमक खाना परमावश्यक है। इस लेखमें इस बातकी विवेचनाकी जायगी कि यह विश्वास कहां तक मिथ्या है। इस विश्वासके कारण हैं हम लोगोंमें प्रचलित कुछ ऐसे साधारण विचार जिनमेंसे बहुतसे तो अनेकानेक कारणोंके परिणाम मात्र हैं।

पाठकोंमेंसे बहुत लोगोंको मालूम होगा कि हिरन नमक चाटने का बड़ा शौक़ीन है, परन्तु इससे यह नतीजा निकाल लेना कि हिरनोंके लिये नमक बड़ी ज़रूरी चीज़ है ठीक वैसे ही मालूम होता है जैसे कौवोंको दाल भात खाते देखकर समझ लेना कि बिना दाल भातके कौवे रह ही नहीं सकते। इसी प्रकार मवेशियोंको नमक खिलाकर या अन्य पालतू जानवरोंको नमक पड़ा हुआ भोजन खिलानेसे यह नहीं कहा जा सकता कि नमक उनका वास्तविक भोजन है। (Texas) टेक्ससके मैदानमें और पश्चिमी देशोंके रहनेवाले मवेशी बिना नमक खाये खूब हृष्ट पुष्ट रहते हैं। दुनियांमें ऐसे और भी कई प्रदेश हैं जहांके लोग अपने मवेशियोंको नमक की आदत नहीं डालते हैं। मवेशियों व अन्य पालतू जानवरोंको नमक खिलानेकी बहुतसे देशोंमें रिवाज पड़ गई है, इन जानवरोंको भी नमक खानेकी वैसे ही आदत पड़ जाती है जैसे बालकोंको चीनी खाने की।

संसारमें ऐसे मनुष्योंकी कमी नहीं है जिन्होंने अपने जीवनमें कभी नमक खाया ही नहीं। उत्तरी अमेरिका निवासी लाल इंडियन नमक नहीं खाते हैं। यूरोप और अमेरिकाके उत्तरी टापुओंके निवासियोंमें भी नमक खाने की सभ्यताका अभी प्रचार नहीं हो पाया है। इसी प्रकार मध्य-अफ़्रीका निवासी भी कुछ ऐसी जातियां मौजूद हैं जो नमक खाना जानती ही नहीं हैं। परन्तु इन सब दृष्टान्तोंसे मुख्य दृष्टान्त तो यह है कि इस बातके सत्य होने का सबसे बड़ा सबूत यह है कि हर मनुष्य अपने अनुभवसे ही यह जान सकता है कि नमक खाना उसकी शारीरिक वृद्धिके लिये परमावश्यक नहीं है। जिन लोगों को नमक खाने की आदत नहीं है उन्हें नमकका न होना ज़रा भी आवश्यक या हानिकारक नहीं प्रतीत होता। इन लोगोंको नमक खानेका व्यसन न होनेकी वजहसे बरसों तक इन्हें नमककी आवश्यकता नहीं मालूम देती। इस व्यसनके न होनेसे इनकी शारीरिक वृद्धि पर कैसा अच्छा प्रभाव पड़ता है यह भी प्रयोगों द्वारा देखाजा सकता है।

मनुष्यके शरीर पर नमक खानेसे जो प्रभाव पड़ता है वह श्लेष्मिक झिल्ली (Mucous Membrane) पर उत्तेजकोंकी भांति असर डालकर उसमेंसे जलस्राव (Watery discharge) उत्पन्न कर देता है। वैद लोग इसी लिये अपने नुसख़ोंमें नमक खिलाते हैं। इसके उत्तेजक (Irritant) प्रभाव से जलस्राव होकर मेदा साफ़ होजाता है।

इस कार्यके लिये अवश्य हो नमक कभी कभी खाना चाहिये न कि हर रोज़ ही चार चार-और पांच बार उससे पेट भरा जाय। इस संबंधमें यह बात बड़े महत्वकी है कि नमक और चीनी दोनों हीका मनुष्योंके अंग पर एक साही उत्तेजक प्रभाव होता है। ज़ुकाम बन्द होजाने और गलेमें ख़राश पड़ने पर मिसरी, या बताशेकी चाशनी पीते ही ज़ुकाम बहना शुरू हो जाता है यह इनके उत्तेजक प्रभावका बड़ा सरल सबूत है। इसी बातको प्रमाणित करनेकी दूसरी विधि यह है कि चीनी के शरबत या नमकके घोलको नाकमें होकर सुड़क लिया जाय तो इससे तुरन्त ही छींकें आकर नाक सेपानी बहने लगेगा। ठीक यही असर नमक या चीनी खानेसे पेटमें जाकर मेदे पर पड़ता है। अस्तु नमक बहुत खानेसे शरीरकी श्लेष्मिक झिल्लियोंमें कफ़ उत्पन्न हो जाता है और यह ज़ुकाम और कफ़ (chronic) पुराना होकर जड़ पकड़ लेते हैं।

नमक खानेसे कई छोटी छोटी बीमारियां भी उत्पन्न होजाती हैं जिनमेंसे फोड़े फुंसी और ख़ारिश बहुत मामूली हैं। कभी कभी नमक बहुत खानेकी वजहसे नाकका अगला भाग सुर्ख़ और संक्षुब्ध (Sensitive) होजाता है। इसी प्रकार आंखके पलकों पर भी यही असर होता है। इसी कारणसे कभी कभी लोगोंको पेचिश भी होजाती है।

अगर नमक एक ही वार बहुत सा खालिया जायतो इससे कै होजाती है और दस्त भी होने लगते हैं। जब कभी किसी मरीज़को मतली करानेकी बड़ी आवश्यकता होती है तो गुनगुने पानीमें नमक घोल कर देनेसे शीघ्रही कै होजाती है। नमकके इस हानिकारक प्रभावके कारण बहुतसे जानवरोंको नमक देना निषेध किया है, विशेष कर कुत्तों और चिड़ियों पर इसका असर बड़ा हानिकारी होता है। वृक्क (Kidneys) पर इसका प्रभाव विशेष रूपसे देखा गया है। नमक खानेसे ही दिलकी कई बीमारियां तथा वृक्कका घातक रोग जिसे (Bright's Disease) कहते हैं उत्पन्न होजाते हैं। पाठकोंको इसव्याख्यासे विदित होगया होगा कि वृक्क संबंधी रोगमें दूध के आहारसे कैसा शीघ्र फ़ायदा होता है। अंगूर केरसका भी यही प्रभाव होता है यह तन्तुयोंसे नमकको धो डालता है इससे रोगीको बड़ा फ़ायदा होता है। इस रोगके अच्छे होजानेका कारण यही है कि रोगीके भोजनमें नमक बिल्कुल रहता ही नहीं। रोगका कारण दूर होते ही आराम होनेमें देर नहीं लगती। कुछ लोगोंका विचार है कि भोजन पचानेके लिये नमक खाना परमावश्यक है। हमारी समझमें इससे अधिक भ्रममूलक कोई बात नहीं है। नमक खानेसे ज़ुकाम होजाना ही इस बातका प्रमाण है कि इसके दुरोपयोगसे कैसे भयानक रोग होसकते हैं। क्योंकि ज़ुकाम ही अकेला सैकड़ों बीमारियोंका घर है।

मनुष्योंके प्राकृतिक भोजनमें अनैन्द्रिक लवणों कीकाफी मात्रा मौजूद होती है, इनमें सोडियम हरिदको ऊपरसे मिलानेकी आवश्यकता नहीं है। फुस्फेत, गन्धेत आदिक बहुतसे यौगिक हैं जिन्हें लवणके नामसे पुकारा जाता है। बहुतसे डाक्टर लोग भ्रमसे सोडियम हरिदको ही नमक समझ लेते हैं और इसी लिये उनका मत है कि बिना नमकके भोजनका पचाना संभव नहीं है। इस जगह पर नमकसे तात्पर्य है उन अनैन्द्रिक लवणोंसे जो हर भोज्य पदार्थमें मौजूद होते हैं और जिनके बिना उन चीज़ोंको पचाना असंभव है। इन लवणोंमेंसे फुस्फेत तो विशेष रूपसे आवश्यक उपदानोंमेंसे हैं। भोज्य पदार्थोंमें अकेले सोडियम हरिदसे ही नहीं वरन् कई अनैन्द्रिक लवणोंके संयोगसे नमककी उपयोगिता उपस्थित होजाती है। जो मनुष्य अपने भोजनमें सात्विक पदार्थोंका अधिक उपयोग करते हैं उन्हें ऊपरसे नमक मिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जोलोग तरकारियां बनानेमें अधिक मसाला डालते हैं वे ऐसा करनेसे

इन प्राकृतिक लवणोंको उन तरकारियोंमेंसे निकाल देते हैं और इसी लिये उनमें पौष्टिक गुण नहीं रहजाते। इस लिए तरकारियां कच्चो या भूनकर खानी चाहिये। डाक्टरोंने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी अवस्थामें एक मनुष्य के लिये एक दिनमें १५ से लेकर ३० ग्रेनसे अधिक नमक नहीं दिया जाना चाहिये। जो लोग इससे अधिक नमक खाते हैं उनके शरीर और वृक्कोंसे यह जैसा कातैसा विना पचाया हुआ निकल जाता है। खानेमें नमक कुछ भी ज़्यादा होतो खाना खा भी लिया जासकता है परन्तु अधिक नमक होने पर खाना ऐसा कड़वा होजाता है कि उसे कोई भी नहीं खा सकता। इससे स्पष्ट ही है कि हमें नमक अधिक कभी न खाना चाहिये!

भोजनमें नमक मसाला ख़ूब पड़नेसे उसे खालेने पर बड़ी प्यास लगती है। यह प्यास कृत्रिम होती है क्योंकि शरीरकी तन्तुयोंमेंसे पानी की मात्रा बराबर कम होजानेके कारण उन्हें अधिक पानीकी आवश्यकता होती है। हमारे पाठकोंमेंसे दही पकौड़े आदिक चाट खाने वालों को हमारे इस कथनका पूरा अनुभव प्राप्त होगा। लोगोंको नमक अधिक खानेकी आदत पड़ जाती है। इससे उनकी पाचन-शक्तिका बड़ाह्रास होता है; परन्तु उन लोगोंका इलाज करते समय कोई भी डाक्टर या वैद यह नहीं कहता है कि नमक बहुत खानेकी आदतसे ही उन्हें यह रोग उत्पन्न हो गये हैं। हम अभी लिख चुके हैं कि नमकीन चीज़ें अधिक खानेसे झूठी प्यास बढ़जाती है क्योंकि श्लैष्मिक झिल्लियोंमें उत्तेजना होनेसे उनसे जलस्रावके साथ कुछ प्रोटीड भी निकल जाता है। इस झूठी प्यासके बुझानेके लिये जो पानी पिया जाता है उसमें प्रोटीडका कोई अंश नहीं रहता अस्तु अधिक नमक खानेसे दिन प्रति दिन हमारे शरीरसे प्रोटीड की कमी होती जाती है। नमक अधिक खाने वालोंके ज़ायक़ेमें भी फ़रक़ आजाता है, यह लोग चटपटे भोजनको बड़े चावसे खाते हैं और इनके इस चटपटे खानेके स्वभावसे ही इन्हें भोजन बहुत जल्दी खानेकी आदत पड़ जाती है। इस बुरी आदतसे न तो इन्हें भोजनमें ही ठीक स्वाद मिलता है, न ही ख़ूब चबाकर खानेसे इनका भोजन भली भांति पचता है। जिस तरकारीमें नमक और मसाला कम होगा ज़बान आप ही आप भोजनका स्वाद ढूंढनेके लिये आपको ख़ूब चबाकर खानेकी आदत डाल देगी। यह आदत कैसी उपयोगी है इसका लिखना निरर्थक ही मालूम होता है। जिन चीज़ोंके खानेसे हमारे शरीरमें प्रोटीड बनता है या रक्तसे मांस बनाने वाली यंत्रियों तथा तन्तुओंको स्वास्थ्य लाभ होता है वे निरैन्द्रिक खनिज लवण (Organic Mineral Salts) हैं। यह लवण ही इन तन्तुओंको सड़ने गलनेसे बचाते हैं। इनको न हम चख सकते हैं, न सूंघ सकते हैं और न खा सकते हैं। अगर हमारे रक्त और मांसको, चाहे वह शरीरके अंदर हों अथवा बाहर, किसी विशेष रीतिसे बचाया न जाय तो उनमें (Fermentation) किण्व-क्रिया उत्पन्नहो जाती है। यह बात मनुष्यकी शक्तिके परे है कि वह अपने वृक्क (Kidneys) यकृत (Liver) और मस्तिष्कको किण्व क्रिया द्वारा विश्लिष्ट होनेसे बचा सके; परन्तु प्रकृतिके लिए ऐसा करनेमें कोई कठीनाई नहीं है। इस कार्यके लिये मनुष्यके रुधिरमें निरैन्द्रिक खनिज लवणोंका यथोचित परिमाण मौजूद होना आवश्यक है; जिससे कोषों और अन्य तन्तुओंको किण्व-क्रियाके आक्रमणसे रोक सके। अस्तु मनुष्योंके आरोग्य रहनेके लिये पवित्र जल वायु, के साथ इस प्रकारका अहार मिलना चाहिये जिसमें यथोचित परिमाणमें उन निरैन्द्रिक लवणों या नैसर्गिक उपक्रमों का होना ज़रूरी है। मनुष्य चाहे स्वस्थ हों अथवा उनके शरीरके अवयवों, कीटाणुओं और किण्व-क्रियाओं द्वारा जो स्वक्रिय विष-प्रसार होता है उसे मिटानेके लिये इन निरैन्द्रिक लवणों की बड़ी आवश्यकता है।

अस्तु ऊपरके विवेचनसे पाठकोंको भली भांति मालूम होगया होगा कि आज दिन सभ्य संसारमें जितना नमक खाया जाता है उसका उपयोग मनुष्योंके शरीर तथा स्वास्थ्यकी वृद्धिके लिये। उतना आवश्यक नहीं है। इस लिये नमक जितना ही कम खाया जाय उतना ही उपयोगी प्रतीत होगा।

यदि पृथ्वी न घूमे !

[लेखक:—श्री शालिग्राम वर्मा बी० एस-सी]

कई सौ वर्ष हुए जब तक जन साधारणका यह विचार था कि हमारी पृथ्वी गोल नहीं है और वह स्थिर है। उन्हें यह समझमें ही न आता था कि यह वसुंधरा सूर्य देवकी परिक्रमा करनेके साथ साथ अपनी धुरी पर भी २४ घंटेमें एक चक्कर लगा लेती है। कुछ खगोलवेत्ताओंने जब यह बातें पहले पहल बतलाईं तो लोग उनका मज़ाक़ उड़ाकर उन्हें पागल ठहराने लगे। परन्तु अब वह समय नहीं रहा है। आज कल तो छोटे छोटे बालक भी भूगोलमें पहला पाठ यही पढ़ते हैं कि पृथ्वी गोल है तथा वह क़रीब ३६५ दिनमें सूर्यकी एक परिक्रमा पूरी कर लेती है और २४ घंटेमें एक बार अपनी धुरीके चारों तरफ़ घूम जाती है। परन्तु यह सब जानने पर भी हमारी समझमें यह बात अभी तक नहीं आई है कि पृथ्वीका इस प्रकार घूमना कैसा आश्चर्यजनक या कौतूहलोत्पादक विषय है। पृथ्वी अपनी धुरीके चारों ओर लट्टूकी भांति घूम रही है और मंगल, बुध, चन्द्रमा आदिक ग्रह उपग्रह भी घूम घूम कर अनन्त आकाशमें अनन्त कालसे विचर रहे हैं। यह सब ग्रह, उपग्रह एक ही चालसे नहीं घूमते हैं, कोई बड़े भारी वेगसे चला जा रहा है तो कोई उससे कम तथा मध्यम वेगसे चल रहा है। शनि और बृहस्पति अपनी धुरीके चारों ओर प्रायः १० घंटेमें एक चक्कर पूरा कर लेते हैं; मंगल और पृथ्वी को क़रीब २४ घंटे लगते हैं। शुक्रको २२५ दिन, सूर्यको २६ दिन और चन्द्रमाको क़रीब २७ दिन एक चक्कर लगानेमें लगते हैं। परन्तु चाहे इनका वेग तेज़ हो अथवा मंद यह सब अपनी प्रामाणिक चालसे, एक अचल अपरिवर्तनशील और सार्व-भौमिक नियममें बंधे हुये, चक्कर लगा रहे हैं।

ऐसे ही विचारोंसे मुग्ध होकर 'पूर्ण कवि' लिखते हैं।

अगिनत रचे चन्द्र ग्रह तारे, ,
निराधार जे नभ बिच न्यारे।
दै विधि अद्भुत शक्ति सहारे,
करत प्रमानी चाल ॥
तिहारे को बरने गुन जाल !

यह ग्रह और उपग्रह करोणों और अरबों वर्षोंसे इसी प्रकार घूम रहे हैं, परन्तु इनके इतने अधिक कालसे घूमते रहनेके कारण यह धारणा कर लेना ठीक नहीं होगा कि वे सदासर्वदा इसी भांति घूमते रहेंगे। वास्तवमें यह बात सत्य नहीं है क्योंकि खगोलवेत्ताओं ने गणित द्वारा यह पता लगा लिया है कि इनका वेग कम होता चला जा रहा है यदि यह बात ठीक है तब तो हमारी पृथ्वी की चाल भी धीमी पड़ जानी चाहिये। अस्तु इस नई जानकारीके साथ हमारे लिये हमारी पृथ्वीके चक्कर लगाने का विषय बड़ा गंभीर और महत्व-पूर्ण है क्योंकि इस पर सब मनुष्यों, जीव जन्तुओं, तथा वनस्पतियोंके जीवनका आधार है। पृथ्वीके घूमनेके कारण ही हमारे यहां दिन रात होते हैं, समुद्रोंमें ज्वार भाटा आता है और मौसमी तथा व्यापारी हवायें (Trade Winds) चला करती हैं!

आज कलतो हमारी पृथ्वीकी गतिको रोकने वाला (विशेष रूप से) चन्द्रमा है। असंख्य वर्ष हुये जब चन्द्रमा आज दिनकी तरह उपग्रह नहीं था, वह भी हमारी पृथ्वीमें सम्मिलित था; परन्तु जब यह नीहारिका कुछ ठंडी हुई तो जो भाग इस समय चन्द्रमा कहलाता है विशेष ठंडा होनेके

कारण पृथ्वीसे अलग होकर आकाशमें घूमने लगा। चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वीसे होनेके कारण ही इसे पुराणोंमें पृथ्वीका पुत्र कहा गया है। उस समय यह वसुंधरा ठोस नहीं हो पाई थी। यह अधगले तप्तपिण्ड की भांति थी और सूर्यका आकर्षण इसे बराबर अपनी ओर खींचे हुये था। जिस समय चन्द्रमा पृथ्वी से टूटकर जुदा हुआ वह केवल १० हज़ार मीलकी दूरी पर था। उस समय वह सिर्फ़ अपनी ही धुरी-के चारों ओर घूमता था, पृथ्वीकी परिक्रमा नहीं करता था। हमें यह तो ठीक ठीक ज्ञान नहीं है कि इसकी स्थिति कहांपर थी—वह पुरानी दुनियाके ऊपर था अथवा नई दुनियाके, उत्तरी मंडलपर था या दक्षिणी पर—पर जहां भी यह रहा हो, चन्द्रमा पृथ्वीके साथ साथ अपनी धुरीके चारों ओर घूमता रहता था। उस समय चन्द्रलोकका दृश्य एक अनुपम दृश्य रहा होगा, क्योंकि वह पृथ्वीसे इतना नज़दीक था कि पृथ्वीपरसे नज़र आने वाला सारा आकाशमंडल चन्द्रलोकसेही घिरा हुआ मालूम होता होगा। उस समय चन्द्र-लोकमें बड़े बड़े भयानक आग बरसाने वाले ज्वालामुखी पहाड़ मौजूद थे जिन्हें पृथ्वीपरसे आंखसेही साफ़ साफ़ देख लेना सम्भवही नहीं वरन् सहज था। परन्तु उस समय इस दृश्यका देखने वालाही कोई न था क्योंकि पृथ्वी तो सुर्ख़ अङ्गारेके भांति तप्तपिण्ड थी; उसपर प्राणि-जीवनका श्रीगणेश भी नहीं हुआ था।

सहस्रों वर्ष बाद चन्द्रमाका वेग धीमा पड़ने लगा और वह पृथ्वीके चारों ओर परिक्रमा भी करने लग गया, परन्तु अब यह पृथ्वीके चारों ओर ऐसे डरावने वेगसे परिक्रमा करने लगा कि जितने समयमें पृथ्वी अपनी धुरीके चारों ओर एक बार चक्कर लगा पाती चन्द्रमा उतनेही समय में इसकी कई प्रदक्षिणायें करलेता था। इस गति-का प्रभाव यह हुआ कि (Attraction of Gravity) गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी तलपर चन्द्रमाके आकर्षणसे बड़े भारी ज्वार भाटे उठने लगे और पृथ्वीके आकर्षणसे चन्द्रलोकमें बड़े बड़े ज्वार भाटोंका युग स्थापित हो गया। इन पारस्परिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंका परिणाम यह हुआ कि चन्द्रलोक पृथ्वीसे अधिक दूरको हटता गया और चन्द्रमा और पृथ्वी दोनोंके (Rotation) चक्कर याघूमनेका वेग कम होता गया। इस प्रकार जैसे जैसे समय गुज़रता गया चन्द्रलोक भूमंडलसे दूर हटता गया और इसके घूमनेका वेग भी कम होता गया, यहां तक कि आज दिन चन्द्रलोक पृथ्वीसे २४०,००० मील दूर है और पृथ्वीकी एक प्रदक्षिणा २७ दिनमें कर लेता है।

यह ज्वार भाटे चन्द्रलोककी गतिको सदा रोकते रहे हैं और इन्हींके द्वारा पृथ्वीकी गतिमें भी धीमापन आ गया है। इन्हीं ज्वार भाटोंके कारण आज दिन भी पृथ्वीका वेग कम होता चला जा रहा है। ज्वार भाटों द्वारा चन्द्रलोक और भूमण्डलकी गति किस प्रकार धीमी होती चली जा रही है इसका समझना बहुत कठिन है; परन्तु (Sir George Darwin) सरजार्ज डारविनने इसे भलीभांति स्थापित कर दिया है। उन्होंने गणित तथा प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि पृथ्वी और चन्द्रमाकी भांति दो चक्कर लगाने वाले पिण्डों द्वारा ज्वार भाटा उत्पन्न होनेका परिणाम यह है कि दोनों पिंड एक दूसरेसे दूर हटते चले जावें और अन्तमें एक ऐसा समय भी आ जाय जब उनकी गति स्थगित हो जाय। चन्द्रलोकको अपनी धुरीके चारों ओर एक चक्कर लगानेमें २७ दिन लगते हैं अस्तु उसका वेग तो इतना धीमा हो गया है कि उसे स्थगितही सम-झना चाहिये। इसी प्रकार हमारी पृथ्वीको अपनी धुरीका एक चक्कर लगानेमें २४ घंटे लगते हैं। यह वेग भी कम होता जा रहा है। अस्तु दिन बड़ा होता चला जा रहा है। इसी प्रकार समयके चक्रमें बंधे हुये इन दोनों पिण्डोंके लिये एक ऐसा

दिन आवेगा जब चन्द्रलोक हमसे असंख्य मीलों-की दूरीपर पहुँचकर दो महीनेमें अपनी धुरीके चारों ओर एक बार घूम सकेगा और पृथ्वी भी दो महीने में एक चक्कर लगा पावेगी।

'ज्वार भाटा आना बन्द हो जायगा और आधी पृथ्वीपर अन्धकारका साम्राज्य होगा'

जब ऐसा दिन आयगा तो ज्वार भाटा आना बन्द हो जायगा क्योंकि चन्द्रलोक पृथ्वी की प्रदक्षिणा उतने ही समयमें कर लिया करेगा जिसमें पृथ्वी अपनी धुरीके चारों तरफ़ एक चक्कर लगा पायगी। ऐसी अवस्थामें पृथ्वीके कुछ भाग ऐसे भी होंगे जहां चन्द्र-लोक स्थिर मालूम होगा अथवा यों कहिये कि जहां चन्द्रमा हमेशा अपनी चांदनी फैलाये रहेगा। इसी प्रकार पृथ्वीका एक भाग सदा सर्वदा सूर्यके समीप रहने से उजालेमें रहेगा और दूसरे भागमें सदाके लिये सूर्यास्त रहेगा। हम ऐसी अवस्थाका भी अनुमान कर सकते हैं जब पृथ्वी की गति और भी अधिक धीमी हो जावेगी और अपनी धुरीका एक चक्कर लगानेके लिये उसे दो महीनेसे भी अधिक समय लगेगा। क्योंकि भूमंडल अबभी सूर्य देवकी प्रदक्षिणा करता रहेगा इस लिये सूर्यके आकर्षण द्वारा उत्पन्न हुआ ज्वार भाटा पृथ्वी पर ज़रूर आता रहेगा। जब पृथ्वी की गति इतनी मंद हो जायगी कि चन्द्रलोक भी इससे अधिक वेगसे चल रहा होगा उस समय मनुष्योंको चन्द्रलोकका वह भाग फिर दिखलाई देने लगेगा जिसे उन्होंने करोड़ों वर्ष से न देखा था! उस समय जो महा आश्चर्यजनक घटना घटित होगी उसका वर्णन इस समय पाठकों को ऐसा मालूम होगा जैसे शेख चिल्लीका क़िस्सा! उस समय दिन महीने भरसे भी बड़ा हो जायगा! क्योंकि एक दिन हम उस समयको कहते हैं जो पृथ्वी अपनी धुरीका एक चक्कर लगानेमें व्यतीत करती है! और महीना वह समय है जो चन्द्रमा को पृथ्वीके चारों तरफ़ एक चक्कर लगानेमें ख़र्च होता है! इस हिसाबसे इस नये महीने और नये दिनके समय की कल्पना करना पाठकों को बड़ा कौतुहलोत्पादक होगा।

'आठ सप्ताह का एक दिन'

क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि पृथ्वी और चन्द्रलोक पर इन नई गतियोंमें इस नये परि-वर्तन होनेके कारण यह सब नई घटनायें घटित हो कर ही यह कार्य समाप्त हो जायगा! नहीं ऐसा नहीं हो सकता! जिन कारणोंके उपस्थित हो जानेसे जो एक नई घटना या जो नया परिवर्तन होना शुरू हो जाता है वह उन कारणों के मौजूद रहते हुये उस समय तक नहीं रुक सकता जब तक कि वह पूर्णावस्था को न पहुंच जावे! अस्तु सूर्यके आकर्षण द्वारा उत्पन्न हुऐ ज्वार भाटे के प्रभावसे यही परिणाम उपस्थित होता रहेगा, यहां तक कि असंख्यों वर्षों बाद ऐसे समय की कल्पना की जा सकती है जब पृथ्वीका अपनी धुरीके चारों तरफ़ घूमना बन्द हो जायगा और पृथ्वी सूर्यके चारों तरफ़ एक तरफ़से झुकी हुई उसी प्रकार घूमना शुरू कर देगी जैसे चन्द्रमा हमारी पृथ्वीके चारों तरफ़ घूमता है! उस समयका संसार क्या ही अद्भुत होगा क्योंकि उस समय दिन और महीना एक ही समयका नाम होंगे यानी आज कलके ६० दिनके बराबर उस समयका एक दिन होगा। उस समय एक मासमें दो ही बार ज्वार भाटा आया करेगा और एक सालमें ६ महीने हुआ करेंगे।

परन्तु इतनी अधिक दूर न जाकर हम ज़रा उस अद्भुत दिन का ही विचार करें जब पृथ्वी की गति मंद हो जानेके कारण दिनमें ४० या ५० घंटे होने लगेंगे! जब जाड़ोंमें दिन छोटे होते हैं और काम अधिक होता है तो हमें अकसर इस बातकी शिकायत रहती है कि दिन छोटा होनेसे हम अपना काम पूरा नहीं कर पाते! परन्तु अगर २४ घंटे लंबा दिन होने लगे और इतनी ही बड़ी रात, तो क्या हमें

इससे कठिन होगा और क्या हम उकता न जायेंगे। परन्तु जब एक महीना लंबा दिन होगा और एक महीने की रात तो क्या हम इतने अधिक समय तक परिश्रम कर सकेंगे! कदापि नहीं! ऐसी अवस्था में हम कुछ देर काम करके कुछ देर आराम करने लगेंगे, उस समय सब लोगों के काम करने और आराम करने का समय भी एक न रहेगा! और लोगों को महीने भरतक कृत्रिम प्रकाश में रहकर अपना सारा काम काज करना पड़ेगा।

ऐसे बड़े दिन होनेके कारण गरमी इतनी अधिक बढ़ जाया करेगी और रात को इतनी ज़्यादा सरदी होजाया करेगी कि हमें उसकी कल्पना करना भी मुश्किलही नहींवरन् असंभव है। इसका प्रभाव मनुष्यों पर ही न पड़ेगा वरन् पशु पक्षियों और वनस्पतियों की भी तापक्रमों के इस महान परिवर्तन के कारण बहुत कुछ अवस्था बदल जायगी। ऐसा होते होते एक दिन वह समय भी उपस्थित होजायगा कि छः महीने का दिन और छः महीने की रात सारी वसुंधरा पर इसी भांति होने लगेगी जैसे आज दिन मेरु और सुमेरु ध्रुव मंडलों में होती है। परन्तु जब इस अवस्था सेभी बढ़ कर वह अवस्था आयगी कि सालभर का दिन और साल भरकी रात होने लगेगी, उस समय की अवस्थाका अनुमान करना बड़ाही मनोरंजक और आश्चर्यजनक होगा।

"पृथ्वी पर अनन्त जाड़े और अनन्त गरमी का समय"

ऊपर जिस परिवर्तनका हम वर्णन कर चुके हैं उसका परिणाम यही होगा कि पृथ्वीके एक भागमें सदा दिन रहेगा और दूसरेमें सदा रात। इसका परिणाम इतना अद्भुत होगा कि हम उसका कल्पना द्वाराभी अंदाज़ा नहीं लगा सकते हैं। पृथ्वीके जिस भाग पर सदा रात रहेगी वह निहायत ठंडा और हिमपूर्ण होजायगा और जिस भाग पर सदा सूर्य चमकता रहेगा वहांकी गरमी का कोई ठिकाना न रहेगा। इसी महान गरमीके कारण पृथ्वी तलका सारा जल भाप बन कर उड़ जायगा और कुछ समय तक बादल इतने अधिक होंगे कि वे सूर्य को भी छिपा लेंगे। परन्तु धीरे धीरे यह बादल पृथ्वीके उस भागकी तरफ़ चले जायेंगे जहां पर सदा रात रहनेके कारण असहनीय ठंडक होजायगी। इन देशोंमें पहुंच कर यह बादल बरफ़ बन कर पृथ्वी पर गिर कर जम जायेंगे। इसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि पृथ्वीके एक भाग पर बरफ़ और हिमनदियोंके सिवाय कुछन रह जायगा और दूसरे पर रेत और रेतीली चट्टानों काही भयानक दृश्य होगा। ऐसी अवस्थामें मनुष्य ऐसेही स्थानोंमें रह सकेंगे जो इन रेतीले मैदानों और बर्फ़से ढके हुये पहाड़ोंके बीचमें होगा! इस भागमें सदा (Twilight) अरुणोदय बना रहेगा और यहाँका तापक्रमभी (Moderate) मातदिल रहेगा। परन्तु फिरभी यहाँकी जलवायु मनोरम न रहेगी क्योंकि जिस समय पृथ्वीके गरम भागकी तरफ़ से हवा चलनी शुरू होगी उसकी गरमी भट्टीमेंसे निकलती हुई आंचकी ज्वाला से भी अधिक होगी। इसकी गरमीसे बर्फ़ से ढके हुये पहाड़ों और मैदानोंकी बरफ़ गल जाया करेगी और इन प्रदेशोंमें एक धूम तूफ़ान आजाया करेगा। इसी प्रकार जब हिमपूर्ण भागोंकी तरफ़से हवा चलने लगेगी तो वह इतनी अधिक ठंडी होगी कि हमें उसका अनुमान करना असंभव है। इस समय ऐसी ठंडी हवाके झोंके आवेंगे कि आज कलके ध्रुव-देशोंकी ठंडी हवाओंका भी उनके सामने कोई मुक़ाबिला न रहेगा। उस समय मनुष्योंको इन ठंडी हवाओंके तूफ़ान या अंधड़ से बचनेके लिये नये नये उपाय ढूंढने पड़ेंगे। ऐसी अवस्थामें बर्फ़ और अग्निके बीच किसी मनुष्यको जीवन बिताना सुखप्रद न होगा क्योंकि उसे सदा बर्फ़में जम जाने या आगकी ज्वालासे झुलस जानेका डर लगा रहेगा।

अन्त परिणाम यह होगा कि जो थोड़े बहुत

मनुष्य इस भागमें जीवित बच रहे थे वे भी मर जावेंगे क्योंकि ऐसी असीम ठंडकमें हवा भी इतनी ठंडी हो जावेगी वह जम कर द्रव रूप हो जायगी और मनुष्योंको सांस लेना असंभव हो जायगा।

हवामें यह परिवर्तन होते ही पृथ्वीका यह भाग भी इस अवस्थामें न रह सकेगा और यह सारी हरी भरी, धन धान्य पूर्ण, उर्वरा वसुन्धरा चन्द्र लोक की भांति ऊजड़ और निर्जीव हो जायगी।

ऊपर जिस अन्तिमावस्थाका वर्णन किया गया है वही प्रलय कहलाती है। विज्ञान हमें बतलाता है कि ऐसा दिन आना संभव है जब पृथ्वी अपनी धुरीके चारों ओर घूमना बंद करदे। अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा ध्रुव लोकोंकी स्थितिके अनुमानसे हम इस घटनासे जो परिवर्तन और परिणाम निकालते हैं वे इस लेखमें क्रमबद्ध कर दिये गये हैं। हम निश्चय रूपसे यह नहीं कह सकते कि ऐसी घटना वास्तवमें होगी परन्तु पाश्चात्य विज्ञान और हमारे देशके धर्म ग्रंथ और पुराण सभी इस प्रलयकी कल्पना करते हैं।

इस समय तो हमारे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि हमारी पृथ्वी अपनी धुरीके चारों तरफ़ २४ घंटेमें घूम जाती है।

वैज्ञानिकीय

तितलियोंसे कीटाणु-जनित रोग नष्ट हो जाते हैं।

कीटाणु विज्ञानके प्रसिद्ध फ़रासीसी विद्वान मेटलनिकोफ़ (Metalnekor) ने अपनी खोजोंकी एक रिपोर्ट पास्चूर इन्स्टीट्यूटमें भेजी है जिसमें लिखा है कि प्रयोगोंसे यह सिद्ध होता है कि तितलियों और पतंगों (Moths) के अंडोंसे नये निकले हुए बच्चोंमें कोई ऐसा रस होता है जो भयंकर रोगोंके कीटाणुओंको भी थोड़ेही समयमें नष्ट कर देता है। इस विद्वानने इन अंडोंके शरीरमें (Diphtheria), प्लेग, (Tetanus) और यक्ष्मा रोगके कीटाणुओंको प्रवेश करके देखा है कि कीटाणुओंकी संख्या कितनी अधिक क्यों न हो सब, कुछही दिनोंमें नष्ट हो जाते हैं। कोच (Koch) के कीटाणु यदि मनुष्यके शरीरमें घुस पावें तो बरसोंके लिए अपना अड्डा जमा लेते हैं परन्तु तितलियोंके शरीरमें दो तीन दिनसे अधिक नहीं रहने पाते और नष्ट हो जाते हैं।

इन अंडोंकी जीवन-शक्ति इतनी अधिक होती है कि अभी तक जितने प्रकारके कीटाणु देखे गये हैं कोई भी इतनी क्षमता नहीं रखते कि अंडोंके शरीरमें अपना घर कर सकें। अब मेटलनिकोफ़ महोदयका यह उद्योग है कि तितलियोंके अंडेसे ऐसा रस (Serum) तैयार किया जाय जो संसारसे कीटाणु-जनित रोगोंको (यक्ष्मा, प्लेग इत्यादि) समूल नाश करदें। [लीडर १३ मार्च २१ ई०]

अब तक युरोपियनोंके बच्चे तितलियोंके रंग बिरंगे पंखोंसे मुग्ध होकर उनका पीछा किया करते थे। यदि यह सिद्ध हो सका कि इनके अंडोंका रस रोगीके शरीरमें पहुंचकर रोग समूल नष्ट हो सकता है तो न जाने कितनी तितलियोंको मनुष्यके कारण शिकार होना पड़ेगा! क्या यह सम्भव नहीं है कि तितलियोंकी बलि न हो और साथही साथ इनकी संख्या इतनी बढ़ायी जाय कि वायु-मण्डलमेंही रोगोंके कीटाणु रहने न पावें? क्योंकि जब ये वायुमण्डलमेंही नहीं रहेंगे तब मनुष्यके शरीरमें कैसे घुस पावेंगे। 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी'। क्या अहिंसा परमोधर्मःके मानने वाले भारतका ऐसा कोई लाल है जो इस विषयमें खोज करे कि तितलियां अपनी रोग निवारिणी शक्तिके कारण बलिकी वेदीपर न चढ़ायी जांय, परन्तु रोगको निवारण करदें?

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

भोजन करते समय पानी न चाहिये

जून मासके विज्ञानमें एक नोट 'भोजन करते समय पानी पीजिये' शीर्षक निकला है। उसीपर मुझे कुछ कहना है। जबसे मैंने इस शीर्षकको पढ़ा है मेरे दिलमें यह विचार उठा कि इसको खूब ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। मैंने विचारा कि लेखक महाशय कुछ दलील पेश करेंगे। उसीके अनुसार मैं अपने सिद्धान्तको झूठा ठहराऊंगा। पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि लेखमें कोई ठीक दलील नहीं है। लेखक महाशयने लिखा है कि 'भोजन करते समय पानी न पीजिये।' यह नियम शीत प्रधान देशोंमें चाहे जैसा अच्छा जान पड़ता हो, भारतवर्ष जैसे गरम देशोंमें बड़ा ही कष्टप्रद हो जाता है। परन्तु महाशयजीने न्यूयार्क विश्वविद्यालयका उत्तर पेश किया है। मैं नहीं समझा कि इसका क्या कारण है।

यदि उपवास चिकित्सा नामक पुस्तक जिस के लेखक अमेरिकन हैं, पढ़ी जाय तो विदित होगा कि पानी नहीं पीना चाहिये। अब मैं अपना अनुभव कहता हूं। जब मैंने यह पढ़ा, तो सोचने लगा कि यह बात ठीक है या नहीं; इसके बाद मैंने निश्चय किया कि स्वयं अनुभव द्वारा इस बातका निर्णय करना चाहिये। उसी दिनसे मैंने खाना खानेके बाद पानी पीना छोड़ दिया। उसका फल यह हुआ कि उस दिनसे मुझे अनपचकी बीमारी नहीं हुई। ऐसा करते हुए मुझे आज तीन वर्षसे अधिक हुए हैं। बहुतसे लोग ऐसे हैं जो खाना खानेके बाद पानी नहीं पीते। उनकी धारणा है कि पानी न पीने से बाईकी बीमारी नहीं होती। कितने लोग यह भी कहते हैं कि ऐसा करनेसे अंडकोषका रोग नहीं होता। हां यह मैं अवश्य कहूंगा कि अगर आवश्यकता पड़े तो खाना खानेके कमसे कम आध घंटेके बाद पानी पीना चाहिये।

—"विद्यार्थी"

[आयुर्वेद ग्रन्थोंमें, जहां तक सुना है, यह बतलाया है कि खाना खाते समय पानी पीना चाहिये, अन्तमें पीनेसे पानी विष समान हानि पहुंचाता है (भोजनान्ते विषम् वारि)। और यह ठीक भी मालूम पड़ता है, जैसा कि जूनके विज्ञानके अंकमें दिये हुए एक अमेरिकन महोदयकी खोजसे भी सिद्ध हो चुका है।

दूसरे पानी पीने या न पीनेका निर्णय खानेकी चीजोंको देखकर किया जा सकता है। शोरबेदार, तरकारी खायी जाय या दूध मट्ठा पीया जाय तो पानी पीनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि पकवान या पूरी और शुष्क तरकारी खायी जाय तो पानी पिये बगैर खाना खाना मुश्किल हो जाय।

विद्यार्थी जी खानेके बीचमें पानी थोड़ा २ पीकर भी देखें क्या होता है। जिन लोगोंको अजीर्ण होता है उनका आमाशयिक रस वैसे ही बहुत पतला होता है। यह अनुमानसे कहता हूं, सम्भवतः यह बात ठीक है, लिखनेके पहले ग्रन्थ देखने या डाक्टरसे पूछनेका अवसर नहीं मिला। उन्हें पानी पीनेसे पचानेमें कुछ अधिक कष्ट होगा।]

—मनोहर लाल, एम. ए.

समालोचना

सौरभ—सम्पादक, पं० रामनिवासशर्मा। वार्षिकमूल्य ४)। मैनेजर "सौरभ" सौरभ कार्यालय, झालरापाटन केन्द्र से प्राप्य।

जो राजपूताना कुछ दिनों पहले सभ्यता-केन्द्र, गुणियों और विद्वानों का आश्रम और स्वदेशाभिमानका स्तम्भ था वह आजकल भारतके अन्य प्रान्तों से पिछड़ा हुआ है, परन्तु अब आशा होती है कि वहां भी शीघ्रता से उन्नति होगी और वह उचित स्थान ग्रहण करेगा। इसी जाग्रति का लक्षण यह है कि मातृ-भाषा प्रचारके लिए वहां

एक सभा स्थापित हुई है जो पुस्तक प्रकाशन और प्रचारका कार्य आरम्भ करेगी। उधर हमारे परम उत्साही राजपूत-कुल-कमल-दिवा-कर श्री महाराज की संरक्षकता में यह पत्र निकलने लगा है। पत्र अच्छा निकल रहा है। श्री झालरा पाटन नरेश भी उसमें लेख देते हैं। हमें राजपूताने से विशेष प्रेम है। वह हमारी जन्म भूमि है। इस नाते तथा सहयोगी के नाते हम इस नवीन पत्र का स्वागत करते हैं और ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि इसकी सौरभ से चारों ओर ज्ञान का प्रसार हो और देश का उपकार हो।

प्रभा—सम्पादक श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी तथा देवदत्त शर्मा, बी. ए। प्रकाशक प्रताप प्रेस कानपुर। वार्षिक मूल्य ४)

इसके सम्बन्ध में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि यह सुप्रसिद्ध पत्रिका "प्रताप" की सुयोग सुपुत्री है। अतएव अपने पिता के सद्गुण इसकी पैत्रिक-सम्पत्ति हैं। राजनैतिक क्षेत्र में यह अद्वितीय है। सम्पादन बड़ी योग्यता से होता है। लेख अच्छे और उपदेश-प्रद होते हैं, परन्तु राजनीति और अर्थ-शास्त्र की भाषा अभी उतनी परमार्जित नहीं हुई है जितनी होनी चाहिये। अतएव पारिभाषिक शब्दों की ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये और उन्हें निश्चित कर लेना चाहिये।

"प्रभा" हिन्दी की सर्वोत्तम पत्रिकाओं में से है तथापि इसकी ग्राहक संख्या उतनी नहीं जितनी होनी चाहिये। कमसे कम इसके १०००० ग्राहक होने चाहिए। २० करोड़ हिन्दी बोलने वालों में से इतने ग्राहक मिल जाना कठिन नहीं है।

स्वार्थ-सम्पादक अध्यापक जीवन शङ्कर याज्ञिक एम. ए. एल-एल बी. प्रकाशक-ज्ञानमण्डल काशी। वार्षिक मूल्य-४)

विषय की दृष्टि से यह पत्र सर्वोत्तम है। ऐसे पत्र का निकलना हिन्दी के लिए गौरव का विषय है। इसके सब लेख अत्यन्त उपयोगी और उच्च कोटि के होते हैं। ऐसे अच्छे पत्र के संचालन के लिए ज्ञानमण्डल को बधाई देनी चाहिये। इस पत्र को ईश्वर पूर्ण सफलता प्रदान करे।

चैतन्य चन्द्रिका—सम्पादक—श्री चैतन्य गोस्वामी गुलज़ारबाग़ पटना से प्राप्त वार्षिक मूल्य ३)

श्री चैतन्य महाप्रभू की सम्प्रदाय का यह पत्र है। बड़ी योग्यता और सजधज से इसका संचालन और सम्पादन होता है। लेख सब के सब अच्छे, मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होते हैं।

श्री शारदा यह पत्रिका भी बड़ी योग्यता से सम्पादित होती है। जन साधारण के लिए सर्वाङ्ग-पूर्ण पत्रिका आजकल हिन्दी में कोई नहीं है। इसे यदि हिन्दी भाषा का आभूषण कहें तो अनुचित न होगा। तथापि जैसी कि प्रायः अन्य सब पत्रों की दशा है इसके भी ग्राहक थोड़े हैं। मध्य प्रान्त में एक यही अच्छी पत्रिका है। यदि वहां वाले भी जैसा कि उनका कर्तव्य भी है इसका उचित आदर करें तो इसे किसी तरह की कमी न रहे। हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करें।

हिन्दी के विख्यात लेखक और अनन्य भक्त पं० नर्मदा प्रसाद, बी, ए, साहित्य शास्त्री विशारद को इस अनुपम पत्रिकाके सुसम्पादनके लिए हम बधाई देते हैं।

शान्ति के लिये पुकार

[लेखक:—डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

इस समय समस्त संसार शान्तिके लिये पुकार रहा है। पाश्चात्य देश शक्ति-संघ (League-of Powers) द्वारा शान्ति स्थापन करना चाहते हैं। परन्तु क्या शक्तियोंका साम्य (Equilibrium) शक्तियों में ही पाया जा सकता है। कोई भी शक्ति

दूसरी शक्ति के मुकाबिले में ही निःशंक नहीं रह सकती है, उसे कमज़ोर के मुकाबिले में भी निर्भय बना देना चाहिये क्यों कि यही एक ऐसे मुकाबिले का औसर है यही ऐसा सामना है जिनमें शक्ति (Balance) साम्य बिगड़ जाता है। कमज़ोर या शक्तिहीन शक्तिशालियों के लिये उतनेही विपत्तिजनक हैं जितना कि रेता हाथीके लिये। शक्तिहीन उन्नतिके बाधक होते हैं वे सहायक नहीं हैं, क्योंकि प्रतिरोध (resistance) की योग्यता न होनेके कारण वे शक्तिशालियों को भी अपने साथ नीचे घसीट लेते हैं। जिन लोगोंको दूसरों पर निरंकुश शासन करनेका स्वभाव होजाता है वे प्रायः यह भूल जाते हैं कि ऐसा करनेसे वे एक अदृश्य ह्रासकारी शक्तिको जन्म दे रहे हैं जो अन्तमें उसी शक्तिका विनाश करने वाली ठहरती है जो उसकी जन्मदायक थी। पददलित जातियों के हृदयमें भनकती हुई अशान्ति (Lawof Moral Balance) नैतिक साम्यके सार्वभौमिक नियम की घृत-आहुत से और भी अधिक प्रज्वलित होती रहती है। जब हवा फैलनेसे पतली हो कर कमज़ोर होजाती है तो बड़े बड़े तूफानोंका आना सहल होजाता है। इतिहास द्वारा यह विचार अनेकों बार प्रमाणित होकर सत्य ठहरे हैं। आज कल भी पद-दलित, अपमानित और घोर अत्याचार से पीड़ित मनुष्य जातियोंके हृदयसे उठी हुई आहोंका तूफ़ान जमा होरहा है। परन्तु शक्तिशाली जातियों के मस्तिष्क में इतना सब कुछ होने परभी इतिहासके इस विषम पाठका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे अब भी शक्तिहीन जातियों के असन्तोषकी बढ़ती हुई भयानक लहर को तुच्छही समझती हैं। यह इन जातियोंकी इतनी बड़ी भूल है कि इसे मूर्खता कहनेसे भी संतोष नहीं होता। जिस प्रकार किसी हरे भरे फलदार पौधेकी जड़में कोई कीट छेद करके अपनी सन्तानवृद्धि कर बिना जाने हुयेही उसके नाशका कारण होता है उसी प्रकार इनकी यह जड़ता अन्तमें इनको सांसारिक उन्नति रूपी वृक्षकी जड़ पर कुठाराघात कर इनके विनाशका कारण होगी। क्या हमें इतिहासमें ऐसी शान-शौकत वाली, शक्तिशाली जातियों का हाल पढ़नेको नहीं मिलता है जो अपनी शक्ति, महानता और ऐश्वर्य के घमंडमें अपने अज्ञानवश अपनी स्थिति को चिरस्थायी समझ बैठी थीं, परन्तु जो अपमानित और अत्याचार पीड़ित कमज़ोर जातियोंके आर्त्तनादकी एकही गुहारमें क्षणमात्रमें तहस नहस होकर मिट्टीमें मिल गईं। राजनीतज्ञ सदाही अपने सुसज्जित सैन्यदलोंके शस्त्रयुक्त बाहुबलका भरोसा करते आये हैं परन्तु उन्हें उस निर्दिष्ट बाहुबलके देखने के लिये तीसरी आंखकी अवश्यकता है जो घोर अत्याचारों से पीड़ित, असहाय जातियोंका हाथ चुपचाप थाम कर उपयुक्त समयकी उपेक्षा करता रहता है। शक्तिशाली जातियां अपने साथियोंका संगठन कर शक्तिसंघकी स्थापना करके, कमज़ोर और अन्याय पीड़ित जातियोंको उस सर्वशक्तिमान परमेश्वरका सहारा ढूंढनेके लिये विवश कर देती हैं जो उन दोनों ही का कर्ता, धर्ता और विधाता है। जब कि पाश्चात्य जातियां मशीन द्वारा स्थापितकी हुई शान्ति निर्माणमें लगी हुई हैं और पूर्वी जातियोंके हृदयोंमें अपने अन्यायपूर्ण व्यवहारों द्वारा उस उथल पुथल रूपी भूकम्पका बीजारोपण कर रही हैं, मैं जानता हूँ कि मेरी यह पुकार उसी प्रकार निरर्थक है जैसे सुनसान जंगलमें किसीकी चिल्लाहटका शब्द। पाश्चात्य जातियोंको इस बातका ज्ञान नहीं है कि विज्ञान द्वारा नई नई शक्तियां प्राप्त होने से वे आत्महत्याके प्रलोभनमें पड़ गई हैं, उन्हें असहाय और दीन हीन जातियोंका चेलेंज मंज़ूर करलेनेका आश्वासन मिल रहा है। उन्हें अपनी शक्तिके अहंकारसे इस बातका ज्ञान नहीं रहा है कि यह चेलेंज किस महान शक्ति की तरफ़से है।

संसारके दो प्रमुख धर्मोंमें संसारके परित्राण या निस्तारके लिये दो पेशीनगोइयां मौजूद हैं।

ये मनुष्य की सर्व्वोच्चकामनाओंको प्रदर्शित करती हैं, इनसे प्रतीत होता है कि उस सत्य प्रेम के लिये मनुष्योंकी धारणा कितनी अधिक है, जिसे वह सब चीज़ों और सब कार्योंका अन्त समझे हुये हैं। इन पेशीनगोइयोंमें संसारको किसी परम शक्तिशाली जातिकी स्टील फ़ैक्टरी में बनी हुई ज़ंजीरों द्वारा जकड़ा हुआ नहीं माना गया है। एक धर्मके अनुसार उसके अनुयाइयोंका विश्वास है, उनकी धारणा है कि मैत्रेयी रूपमें बुद्ध भगवानका अवतार होगा। यह अवतार संसारके सब प्राणियोंमें प्रेमका संचार करनेके लिये होगा। उस समय सारे संसारमें प्रेम-धर्म ही व्यापक धर्म होगा। इसी प्रेमके प्रसारसे संसार को शान्ति प्राप्त होगी। दूसरा धर्म, ईसा मसीहका पुनर्जन्म होगा, इस बात पर विश्वास करता है। ईसा ने भी अपने जीवन कालमें प्रेम धर्मका उपदेश दिया था। इस प्रेमोपदेश का अर्थ है वास्तव में शांत्योपदेश। संसार भरका एक पिता, परम पिता, परमेश्वर है, इस उपदेश द्वारा संसार की सभी जातियोंको एक दूसरेसे भ्रातृवत प्रेम करना चाहिये। ईसा मसीहके यही मुख्य उपदेश थे और इसका सरांश था "शान्ति।" ईसा मसीह का कभी भी यह उपदेश न था कि शान्ति सर्व्वोत्तम नीति (पालिसी) है, क्योंकि,जो पालिसी है वह सर्वदा सत्य नहीं हो सकती। लोभने पाशविक वृत्तियोंका—जो प्रेमको नष्टभ्रष्ट कर उसका सर्वनाश करने वाली हैं—मुक़ाबिला करना असंभव है। प्रलोभनोंका प्रतिकार केवल प्रेमसे ही हो सकता है। जब तक पाश्चात्य शक्तिशाली जातियां अपने बचाव और लड़ाईमें जीते हुये देशों तथा अन्य युक्तियों द्वारा प्राप्त किये हुये अधिकारोंकी रक्षाके लिये, अथवा पूर्व समयमें किये हुये अन्यायपूर्ण व्यवहारोंके प्रतिपादनके लिये, अत्याचारोंके मुआवज़ेसे बचने और उसका दायित्व टाल देनेके लिये, शक्तिसंघोंका निर्माण करेंगी, जब तक सल्तनतों की जुआचोरीके लिये उनके हाथोंमें सरसराहट होती रहेगी तथा जब तक उनकी पैशाचिक रक्त पिपासा न बुझ जावेगी, उस वक्त तक उनके मेलमें फूटका विष मिला रहेगा उनकी शान्तिमें सदा अशान्तिके अंकुर मौजूद रहेंगे और भविष्यमें होने वाली लड़ाइयां इससे भी अधिक पैशाचिक और रुधिर-पूर्ण होंगी। राष्ट्रीय और व्यापारी अहंकारही पाश्चात्य देशोंमें लड़ाईका मुख्य कारण हैं। इन्हीं दोनों कारणोंके जुदे जुदे रूपोंमें जुदे जुदे अवतार होनेसे हर लड़ाईके नये नये कारण निकल आते हैं। परन्तु पाश्चात्य देशोंमें यह अहंकार अब तक सार्वभौमिक धर्म हो रहा है। इस धर्मके उपासनालयों और पुजारियोंके परिवर्तनसे हो इस धर्म (अधर्म) का नाश नहीं हो सकता और न इसे सुधर्म ही बनाया जा सकता है। हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जिस प्रकार विज्ञान और व्यापार की सहायता से इस भौतिक संसारकी एकताका ज्ञान प्राप्त कर हम शक्तिशाली बन सकते हैं, उसी प्रकार मनुष्य जातिकी आध्यात्मिक एकताका पूर्ण ज्ञान प्राप्त होनेसे हमें स्थायी शान्ति मिलेगी।

आवश्यक सूचना

विज्ञानकी आर्थिक अवस्था संतोषजनक न होने पर भी देशके नवयुवकोंमें हिन्दी भाषाके लिखने पढ़नेके विशेष प्रोत्साहनके लिये हमने नये वर्षसे पुरस्कार-योग्य लेखोंके लिये उचित पुरस्कार देना निश्चित किया है।

सम्पादक